प्राप्ति स्थान :

प्रथम संस्करण
१०००

❀ श्री शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला ❀
शान्तिवीर नगर
श्री महावीरजी (राज०)

मूल्य :
स्वाध्याय

☼ आभार ☼

निम्न महानुभावों ने 'सिद्धांतसार दीपक' के प्रकाशन का व्यय भार वहन कर जिनवाणी के प्रचार में अपना स्तुत्य सहयोग प्रदान किया है, अतः हम आप सबके अत्यन्त आभारी है।

—प्रकाशक

२५०	प्रतियां	श्रीमान् दानवीर पूनमचन्दजी गगवाल झरिया (बिहार)
२३५	,,	श्रीमान् माणिकचन्द्रजी पालीवाल, कोटा
२३५	,,	श्रीमान् रामचन्द्रजी कोठ्यारी, जयपुर
२००	,,	श्री दि० जैन समाज, टोडारायसिंह
३५	,,	श्रीमान् चिरंजीलालजी पचेवर
१५	,,	श्री ब्र० डालचन्द्रजी टडैया, टीकमगढ वाले
१५	,,	श्री दि० जैन समाज, नासरदा
१५	,,	गुप्त
१०००	प्रतियां	

वीर नि० संवत्
२५०७

मुद्रक :
पाँचूलाल जैन
कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज-किशनगढ

विक्रम सं० २०३८
सन् १९८१

निवेदन

भट्टारक सकलकीर्ति विरचित जैन भूगोल के ग्रन्थ 'सिद्धान्तसार दीपक' अपर नाम 'त्रिलोकसार दीपक' का प्रस्तुत संस्करण पाठकों के हाथों में पहुँचाते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। सतत स्वाध्याय शीला तथा अध्ययन-अध्यापन में ही अपने समय का सदुपयोग करने वाली पूज्य १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमतिजी ने इसकी हिन्दी टीका की है। 'त्रिलोकसार' के प्रकाशन के कुछ समय बाद से ही पूज्य माताजी इस ग्रन्थ की टीका करने में प्रवृत्त हो गई थीं। कर्म विपाक से इन वर्षों में आपका स्वास्थ्य अनुकूल नही रहा है फिर भी आप अपने कर्तव्यों में सदैव सलग्न रही है, इसी दृढता का परिणाम है कि आपने साढे चार हजार श्लोकों से भी अधिक संख्या वाले इस बृहत्काय ग्रन्थ की हिन्दी टीका तीन वर्ष में ही पूरी कर ली। यो यह ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था परन्तु सशोधन-परिमार्जन-प्रकाशन व्यवस्था सम्बन्धी कतिपय अपरिहार्य कारणों से इसमें विलम्ब होता ही गया, जिसका हमें बहुत खेद है।

विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों से मूल पाठ का मिलान करने के बाद विषय की जटिलता को सरल बनाने का काम स्वर्गीय पण्डित ब्रह्मचारी श्रीयुत् रतनचन्दजी सा० मुख्तार सहारनपुर वालों द्वारा सम्पन्न हुआ था। खेद है कि आज इस ग्रन्थ के प्रकाशन अवसर पर जैन जगत् की वह अद्वितीय विभूति हमारे बीच नहीं रही, इसे प्रकाशित देखकर उन्हें परम सतोष की अनुभूति हुई होती। हम स्वर्गीय पण्डितजी के अत्यधिक ऋणी है।

सस्कृत भाषाजन्य अस्पष्टताओ का स्पष्टीकरण व त्रुटियों का निराकरण समाज के वयोवृद्ध विद्वान श्रद्धेय पण्डितजी डा० पन्नालालजी सा० साहित्याचार्य, सागर ने किया है; साथ ही अपनी व्यस्त दिनचर्या मे से समय निकालकर विस्तृत प्रस्तावना लिख कर हम पर जो अनुग्रह किया है, उसके लिए हम उनके चिर कृतज्ञ है। पूज्य पण्डितजी की निष्ठा, विद्वत्ता और सरलता के सम्बन्ध में क्या लिखूँ, अभिभूत हूँ, उनका जीवन सबके लिए अनुकरणीय है।

श्रीयुत् कजोडीमलजी कामदार, जोबनेर वालों ने टीकाकर्त्री पूज्य माताजी का संक्षिप्त परिचय लिखकर भेजा है। हम आपके आभारी हैं। आप कुछ वर्षो से पूज्य माताजी के पास ही रह कर अध्ययन करते है। व्रती है। आपकी भावना अधिकाधिक उज्ज्वल बनेगी, ऐसी आशा है। इस ग्रन्थ के प्रबन्ध सम्पादन में आपका सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ है।

ग्रन्थ का मुद्रण-कार्य कमल प्रिण्टर्स, मदनगंज किशनगढ़ में सम्पन्न हुआ है। दूरस्थ होने के कारण प्रूफ भी मैं नहीं देख पाया हूँ, संस्कृत में समस्त पदावली की शिरोरेखा कहीं-कहीं अलग-

अलग हो गई है और कहीं-कहीं अनावश्यक रूप से संयुक्त भी हो गई है; कुछ भूलें भी रह गई हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वे स्वाध्याय से पूर्व शुद्धिपत्र के अनुसार आवश्यक संशोधन अवश्य कर लें।

गणितीय ग्रन्थों का मुद्रण वस्तुतः जटिल कार्य है। अनेक तालिकायें, अनेक आकृतियां, अनेक चित्र, जोड-बाकी-गुणा-भाग, बटा-बटी आदि की विशिष्ट संख्यायें आदि सभी इस ग्रन्थ में है। विद्युत व्यवस्था की रुग्णता के बावजूद जिस धैर्य के साथ श्री पांचूलालजी ने इस ग्रन्थ का मुद्रण पूरा किया है, उसके लिए वे और उनके सुपुत्र श्री सुभाषजी अतिशय धन्यवाद के पात्र हैं।

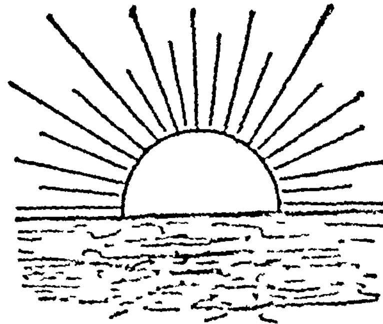
दातार महानुभावों ने आर्थिक सहयोग प्रदान कर इसके प्रकाशन में रुचि दिखाई है; ज्ञान के प्रचार-प्रसार में उनकी यह अभिरुचि उन्हें ज्ञान-लक्ष्मी से सम्पन्न करे, यही कामना है।

वस्तुतः अपने वर्तमान रूप में जो कुछ उपलब्धि है, वह सब इन्हीं पुण्यात्माओं की है। मैं आप सबका अत्यन्त आभारी हूँ। सुधी गुणग्राही विद्वानों से अपनी भूलों के लिए क्षमा चाहता हूँ।

पूज्य माताजी का रत्नत्रय कुशल रहे और स्वास्थ्य भी अनुकूल बने ताकि वे जिनवाणी की अधिकाधिक सेवा कर सकें—यही कामना करता हूँ।

श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर,
शास्त्री नगर, जोधपुर

विनीत :
चेतन प्रकाश पाटनी



परम पूज्य तपस्वी आचार्य प्रवर

१०८ श्री शिवसागरजी महाराज



तपस्तपति यो नित्यं, कृशांगो गुणपीनक ।
शिवसिन्धुगुरुं वन्दे, भव्यजीवहितंकरम् ।।

जन्म :	क्षुल्लक दीक्षा :	मुनिदीक्षा :	समाधि :
वि० स० १९५८	वि० स० २००१	वि० स० २००६	फाल्गुन अमावस्या
अडग्राम	सिद्धवरकूट	नागौर (राज०)	वि० स० २०२५
(महाराष्ट्र)			श्रीमहावीरजी

सम्पादन सामग्री

प्रतियों का परिचय

सिद्धान्तसार दीपक के प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन विशेष अनुसन्धान पूर्वक निम्नलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है—

(१) मूल प्रति

यह प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर (राजस्थान) की है। इसमें १२"×५३" के २४३ पत्र है। प्रत्येक पत्र में ९ पंक्तियां है और प्रति पंक्ति में ३५ से ३८ अक्षर है। लाल और कालो स्याही का उपयोग किया गया है। बीच बीच में कहीं पर टिप्पण दिए गए है। पुस्तक का लेखन-काल वि० सम्वत् १७८९ आषाढ कृष्ण चतुर्दशी शनिवार है। प्रति की लिपि सुवाच्य है। पुस्तक दीमक का शिकार हुई है। परन्तु प्रसन्नता की बात है कि दीमक का प्रकोप आजू-बाजू में ही हुआ है। लिपि सुरक्षित है।

प्राकृत संस्करण का सम्पादन इसी प्रति के आधार पर किया गया है।

(२) 'अ' प्रति का परिचय

इसमें ११"×४३" के १९२ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में ११ पक्तियाँ है और प्रति पंक्ति में ३५ से ४० अक्षर हैं। काली स्याही का उपयोग किया गया है। प्रति का लेखन काल सम्वत् १५१९ श्रावण सुदी पंचमी गुरुवार है। अन्त में इसकी श्लोक सख्या ४५१६ दी हुई है। यह प्रति पड़ी मात्राओं से लिखी गई है। इसका पाठ उपलब्ध अन्य प्रतियो की तुलना में अधिक शुद्ध है।

परम पूज्य अजितसागर महाराजजी से प्राप्त होने के कारण इसका साकेतिक नाम "अ" है।

(३) 'स' प्रति का परिचय

यह प्रति श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार, बडा मन्दिर कैराना जिला मुजफ्फरनगर (यू०पी०) से स्व० श्री रतनचन्दजी मु० के द्वारा प्राप्त हुई है। इसमें १०"×४३" के २७५ पत्र है। प्रत्येक पत्र में ९ से ११ पंक्तियां है और प्रति पंक्ति मे २८ से ३२ अक्षर है। लाल और काली स्याही का उपयोग किया गया है। बीच-बीच में कही पर हिन्दी भाषा में टिप्पण दिए गए हैं। प्रति का लेखन काल सम्वत् १८०४ चैत्र कृष्णा प्रतिपदा है।

स्व० श्री रतनचन्दजी मु० ने यह प्रति सहारनपुर से भेजी थी, अतः इसका सांकेतिक नाम 'स' है।

(४) 'न' प्रति का परिचय

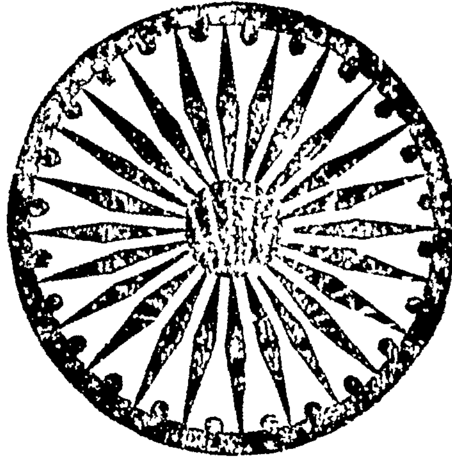
यह प्रति जयपुर से श्रीमान् डा० कस्तूरचन्दजी एव अनूपलालजी के द्वारा प्राप्त हुई है। इसमे १०''×५३'' के २२६ पत्र हैं प्रत्येक पत्र में ११ पक्तियाँ है और प्रति पंक्ति में ३३ से ३६ अक्षर हैं। लाल और काली स्याही का उपयोग हुआ है। प्रति का लेखनकाल सम्वत् १७२६ माघ सुदी नवमी गुरुवार है। श्लोक सख्या ४५१६ दी हुई है।

इस प्रति का साकेतिक नाम 'न' है।

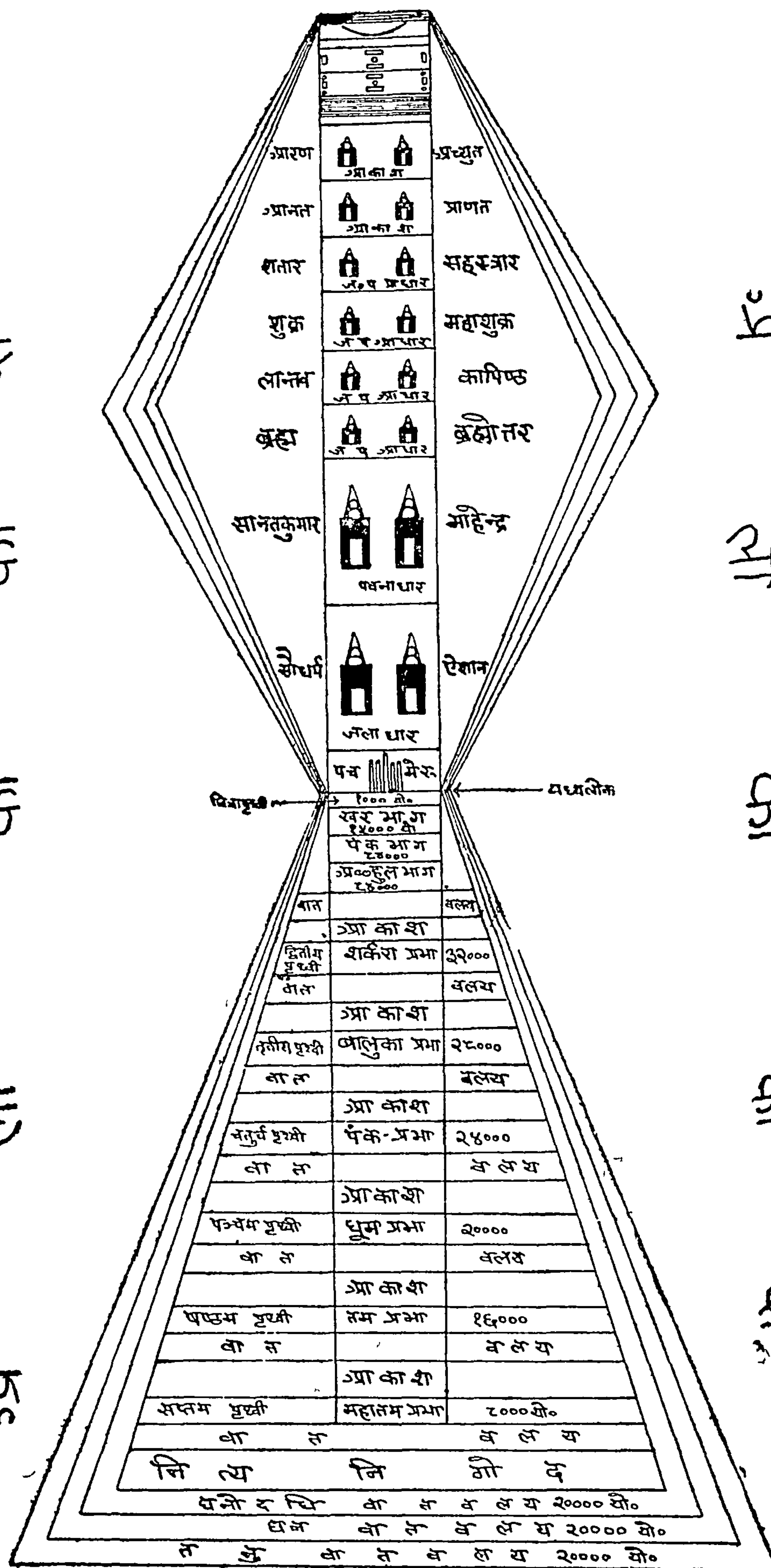
(५) 'ज' प्रति का परिचय

यह प्रति जयपुर से श्रीमान डा० कस्तूरचन्दजी एवं श्री अनूपलालजी के द्वारा प्राप्त हुई है। इसमें १२''×६'' के २३४ पत्र है। प्रत्येक पत्र में १० से १२ पक्तियाँ हैं। प्रारम्भ के १३६ पत्रो मे १०, १० पंक्तियाँ है, शेष मे १२, १२ पक्तियाँ हैं, प्रत्येक पक्ति मे ३० से ३५ अक्षर है। लाल और काली स्याही का उपयोग किया गया है। प्रति का लेखनकाल सम्वत् १८२३ आपाढ वदी एकम् है। श्लोक सख्या ४५१६ दी हुई है।

जयपुर से प्राप्त होने के कारण इसका साकेतिक नाम 'ज' है।



त्रि लो का कृ ति



आरण
अच्युत
आनत
प्राणत
शतार
सहस्त्रार
शुक्र
महाशुक्र
लान्तव
कापिष्ठ
ब्रह्म
ब्रह्मोत्तर
सानतकुमार
माहेन्द्र
पवनाधार
सौधर्म
ऐशान
जलाधार
मेरु
चित्रापृथ्वी
मध्यलोक
खर भाग
पंक भाग
वात
वलय
आकाश
द्वितीय पृथ्वी
शर्करा प्रभा ३२०००
आकाश
तृतीय पृथ्वी
वालुका प्रभा २८०००
वात
वलय
आकाश
चतुर्थ पृथ्वी
पंक-प्रभा २४०००
वात
वलय
आकाश
पञ्चम पृथ्वी
धूम प्रभा २००००
वात
वलय
आकाश
षष्ठम पृथ्वी
तम प्रभा १६०००
वात
वलय
आकाश
सप्तम पृथ्वी
महातम प्रभा ८००० यो०
वात वलय
नित्य निगोद
घनोदधि वातवलय २०००० यो०
घन वातवलय २०००० यो०
तनु वातवलय २०००० यो०



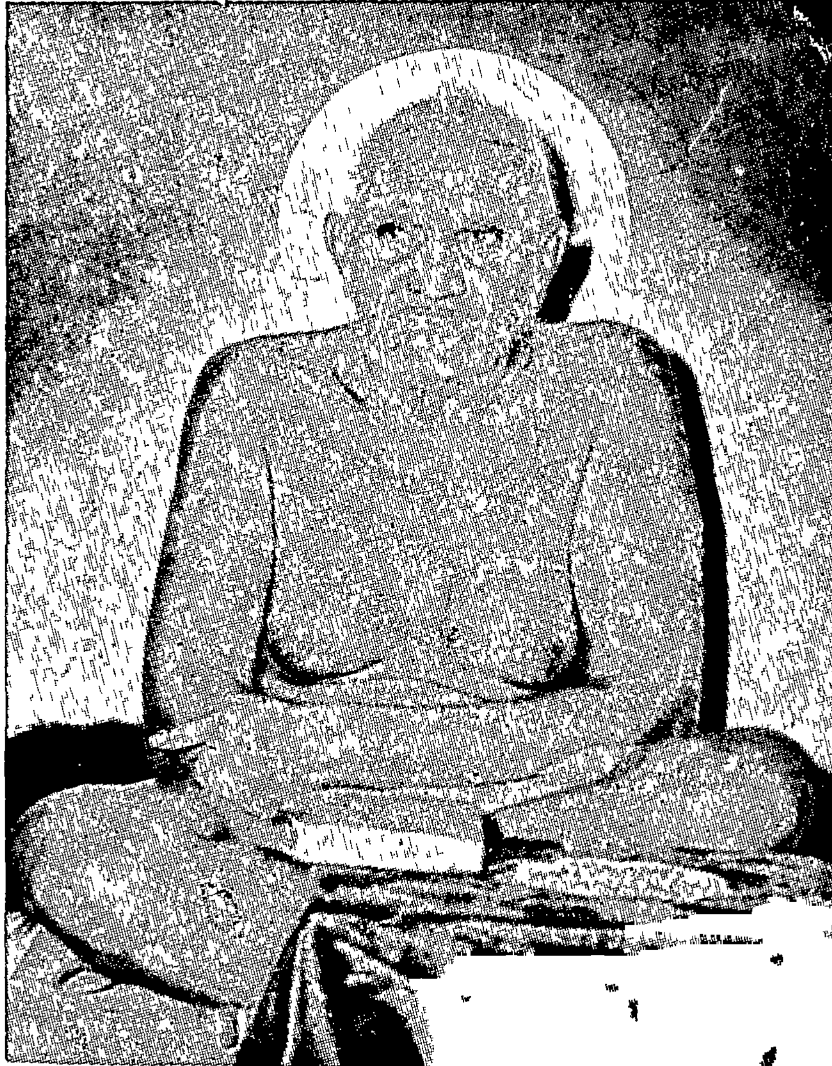
समर्पण



जिन्होने असंयमरूपी कीचड मे फँसी हुई मेरी आत्मा को
अपनी उदार एवं वात्सल्यवृत्ति रूपी डोर से
बाहर निकाल कर विशुद्ध किया तथा
रत्नत्रय का बीजारोपण कर मोक्षमार्ग
पर चलने की अपूर्व शक्ति
प्रदान की
उन्ही परमोपकारी
परम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय
शतेन्द्र नमस्करणीय चारित्र चूड़ामणि गुरुदेव
दि० जैनाचार्य श्री १०८ स्व० शिवसागरजी महाराजकी
बारहवी पुण्य तिथि के
उपलक्ष्य मे
उन्हीके पट्टाधीशाचार्य परम तपस्वी
जगद्वन्द्य चारित्र शिरोमणि परम पूज्य धर्म दिवाकर
आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज
के
पुनीत कर-कमलो में
अनन्य श्रद्धा एव भक्ति पूर्वक
सादर सर्मपित

—आर्यिका विशुद्धमति

परम पूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज



तुभ्यं नमोस्तु शुभधर्मसमर्थकाय,
तुभ्यं नमोस्तु जनतापविनाशकाय;
तुभ्यं नमोस्तु भवशोषकपद्मबन्धो !
तुभ्यं नमोस्तु गणपोषक धर्मसिन्धो !

जन्म . गम्भीरा (राज०)
वि० स० १९७० पौष शुक्ला १५

मुनिदीक्षा : फुलेरा (राज०)
वि० स० २००८ कार्तिक शुक्ला १४

❀ आमुख ❀

अठारह दोषो से रहित, छयालोस गुणो से सहित, सर्वज्ञ और हितोपदेशी अरहन्त-भगवन्तों के मुख-कमल से निर्गत दिव्य-वाणी का विभाजन चार अनुयोगो मे हुआ है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इनके नाम है। जैनागम में करणानुयोग का बहुत विस्तार है। षट्खण्डागम आदि अनेक ग्रन्थ करणानुयोग के अन्तर्गत है। सिद्धान्त-चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार करणानुयोग का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ मे तीनों लोको का विस्तृत वर्णन है, इतना अवश्य है कि गणित सम्बन्धी वासना-सिद्धि आदि के कारण इसका प्रमेय अति कठिन हो गया है, इसीलिए सकलकीर्त्याचार्य ने सिद्धान्तसार दीपक के प्रारम्भ मे कहा है कि पूर्व मुनिराजो के द्वारा जो त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों की रचना की गई है, वह अति दुर्गम एव गम्भीर (तद्-दुर्गमार्थ-गम्भीर ……॥४२॥ श्लोक) है, अत मै [1]बालजनों को जो सुगम पड़े ऐसे त्रैलोक्य सार (सिद्धान्त सार) दीपक की रचना करूँगा।

सिद्धान्तसार दीपक ग्रन्थ यथा नाम तथा गुण युक्त है, इसमें तीनो लोको के विस्तृत वर्णन के साथ साथ अन्य भी सैद्धान्तिक विषयो का सागोपांग वर्णन किया गया है। रचना अत्यन्त सरल और सरस है। छठे अधिकार मे पाण्डुकवन विवेचन के अन्तर्गत चतुर्निकाय देवो का जो चित्रण किया है, उसे पढते समय यह अनुभव होता है कि मानो जन्माभिषेक को जाते हुए देवो की विभूति आदि को प्रत्यक्ष देख कर लिखा हो।

ग्रन्थ में दो विषय विचारणीय है—

१. पृष्ठ १५९ पर जिनेन्द्र जन्माभिषेक के लिए पाण्डुक आदि शिलाओं पर स्थित तीन-तीन सिहासनों का वर्णन करते हुए लिखा है कि मध्य का सिंहासन जिनेन्द्र की स्थिति अर्थात् बैठने का है, दक्षिण दिशागत सिहासन सौधर्मेन्द्र के (उपवेशनाय) बैठने का तथा उत्तर दिशागत सिहासन ऐशानेन्द्र के (सस्थितये) बैठने का है। इस कथन से यह ज्ञात होता है कि जन्माभिषेक के समय सौधर्मैशान-इन्द्र, भगवान का जन्माभिषेक बैठ कर करते है।

२. पृष्ठ ५९० श्लोक ८ में सिद्धभगवान का आकार पूर्व शरीर के आयाम एवं विस्तार के प्रमाण से एक त्रिभाग ($\frac{1}{3}$ भाग) कम कहा गया है, जब कि सभी जैनागम पूर्व शरीर से किञ्चित् कम (ऊन) कहते हैं।

---

१. निज-शक्त्या मुदाभ्यस्य, त्रैलोक्यसार दीपकम्।
सुगम बालबोधायान्यान् ग्रन्थानागमोद्भवान्॥

प्रेरणा-स्रोत

सं० २०२९-३० में त्रिलोकसार ग्रन्थ की टीका की थी। टीका कार्य समाप्त होते ही सिद्धान्त-भूषण स्व० रतनचद्रजी मुख्तार एव विद्वद् शिरोमणि प० पन्नालालजी साहित्याचार्यने विचार विमर्श कर मुझसे कहा कि—सकलकीर्त्याचार्य विरचित सिद्धान्तसार दीपक ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है, अत: आप इस ग्रन्थ की हिन्दी टीका करे, प० पू० आ० कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज ने भी इस अप्रकाशित ग्रन्थकी टीका करने की प्रेरणा की, आपके शुभाशीर्वाद से ही यह बृहद् कार्य करने का साहस किया।

महाराज श्री का आशीर्वाद प्राप्त होते ही प्रतियों की खोज प्रारम्भ कर दी गई। परम पूज्य विद्यागुरु १०८ श्री अजित सागर म० के पास से एक प्रति प्राप्त हुई, जो प्राय. शुद्ध थी। श्रीमान् डा० कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल और श्री अनूपलालजी न्यायतीर्थ जयपुर वालो के सौजन्य से एक प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर से प्राप्त हुई। टीका कार्य सम्पन्न करने में यही प्रति प्रमुख रही। आप दोनो के ही माध्यम से दो प्रतियां जयपुर के किसी शास्त्रभण्डार (शास्त्रभण्डार का नाम याद नही रहा) से और भी प्राप्त हुईं। स्व० श्री रतनचन्दजी मुख्तार के प्रयास से एक प्रति कैराना (यू०पी०) शास्त्रभण्डार से प्राप्त हुई। इन प्रतियो को प्राप्त करने में बहुत कठिनाई हुई, तथा समय भी बहुत व्यय हुआ।

ग्रन्थ मुद्रित न होने के कारण सर्व प्रथम इसके सम्पूर्ण मूल श्लोक मात्र लिखे, जिनका संशोधन श्रीम न् प० मूलचन्दजी शास्त्री महावीरजी वालो ने किया। सं० २०३२ के सवाई माधोपुर वर्षायोग मे प० पू० १०८ श्री अजितसागरजी महाराज के सान्निध्य में वयोवृद्ध विद्वद्वर्य पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, डा० प० पन्नालालजी सागर, स्व० प० रतनचन्दजी मु० सहारनपुर एव श्री नीरजजी सतना आदि ने उपलब्ध समस्त प्रतियो का मिलान कर अनेक पाठ भेद लिए जिससे अर्थ करने मे सरलता प्राप्त हुई।

चातुर्मास की समाप्ति के समय श्रीयुत पण्डित लाडलीप्रसादजी 'नवीन' सवाई माधोपुर के सौजन्य से नथमल विलास नामक ग्रन्थ प्राप्त हुआ जिसमे सिद्धान्तसार दीपक का हिन्दी पद्यानुवाद था। अर्थ करने मे यह प्रति भी सहायक हुई।

सं० २०३४ द्वि० आषाढ शुक्ला ५ गुरुवार दि० २१।७।१९७७ को दिन के ११½ बजे श्री दि० जैन मन्दिर रेनवाल किशनगढ मे कन्या लग्न के उदित रहते टीका समाप्त हुई। इसी वर्षायोग में श्रीमान् स्व० पं० रतनचन्दजी मु० ने विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण टीका का अवलोकन किया। श्रीमान् विद्वद्वर्य पं० डॉ० पन्नालालजी साहित्याचार्य से ग्रन्थ सशोधन कराने का मेरा हार्दिक परिणाम था,

आपका सहयोग एक वर्ष बाद अर्थात् सं० २०३५ के निवाई चातुर्मास में प्राप्त हुआ। संशोधन होने के तुरन्त बाद ग्रंथ प्रेस में दे दिया, किन्तु कुछ विशेष कारणों से श्री पांचूलालजी, मालिक–कमल प्रिन्टर्स करीब एक सवा वर्ष पर्यन्त ग्रन्थ का मुद्रण कार्य प्रारम्भ नहीं कर सके। गत वर्ष कार्य प्रारम्भ किया और अल्पकाल में ही उसे पूर्ण मनोयोग पूर्वक सम्पन्न किया।

श्रीमान् डॉ० चेतनप्रकाशजी पाटनी विश्वविद्यालय जोधपुर ने बड़ी संलग्नता पूर्वक इसका सम्पादन किया। श्री ब्र० लाडमलजी बाबाजी ने अत्यन्त समतापूर्वक प्रकाशन कार्य सम्हाला। श्रीमान् पूनमचन्दजी गंगवाल पचार (जिन्होंने श्रीयुत शान्तिकुमारजी कामदार शान्ति रोडवेज के साथ बाहुबलि सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक के शुभावसर पर एक सहस्र साधर्मी बन्धुओं को दो माह पर्यन्त अनेक पुण्य क्षेत्रों की यात्रा कराई), श्रीमान् रामचन्द्रजी कोठारी जयपुर, श्रीमान् माणिकचन्द्रजी पालीवाल कोटा आदि अनेक द्रव्य दाता महानुभावों ने अपनी चंचल लक्ष्मी का सदुपयोग कर अनुकरणीय सहयोग प्रदान किया। संघस्थ श्री कजोडीमलजी कामदार जोबनेर वालों का चार वर्ष से पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहा है।

इस प्रकार जिन जिन भव्यात्माओं ने इस महान ज्ञानोपकरण में अपना सराहनीय सहयोग प्रदान किया है, उन्हें परम्परया केवलज्ञान की प्राप्ति अवश्यमेव होगी, तथा यह सिद्धान्त ग्रन्थ अनेक भव्यात्माओं के कर्मोपशमन एवं ज्ञानवृद्धि मे कारण होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

३०।३।१९८१

—आ० विशुद्धमति



संक्षिप्त जीवन परिचय

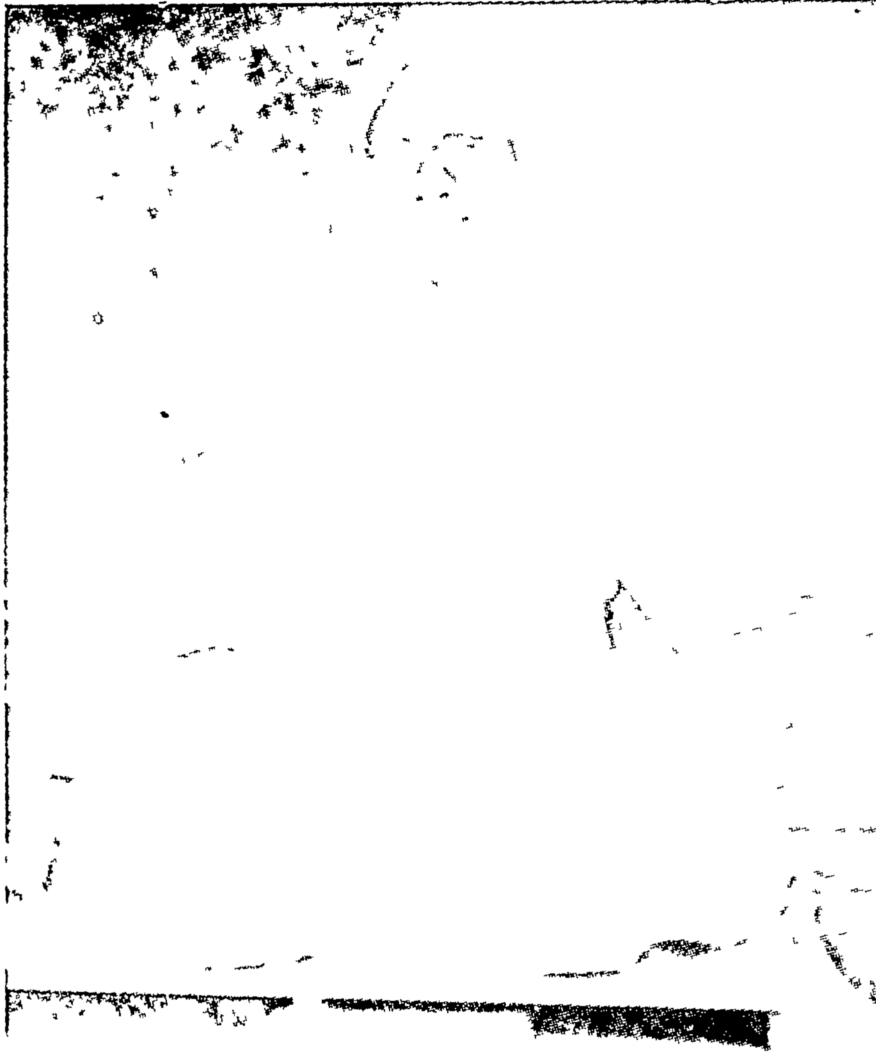


परम पूज्य, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्रवरवक्ता, परम विदुषी रत्न, आर्यिका
१०५ श्री विशुद्धमति माताजी ।

गृहस्थाश्रम का नाम	—	श्री सुमित्रावाई
जन्म स्थान	—	रीठी (जि० जवलपुर) म० प्र०
पिता	—	श्रीमान् सि० लक्ष्मणलालजी
माता	—	सौ० मथुरावाई
भाई	—	श्री नीरज जी जैन एम. ए (गोमटेश गाथा के लेखक) और श्री निर्मलकुमारजी जैन मु० सतना (म० प्र०)
जाति	—	गोला पूर्व
जन्म तिथि	—	सं० १९८६ चैत्र शुक्ला तृतीया शुक्रवार दि० १२।४।१९२९ ई०
लौकिक शिक्षण	—	१ शिक्षकीय ट्रेनिंग (दो वर्षीय) २. साहित्य रत्न एव विद्यालकार ।
धार्मिक शिक्षण	—	शास्त्री (धर्म विषय मे)
धार्मिक शिक्षा गुरु	—	परम माननीय विद्वद्-शिरोमणि प० डा० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर (म० प्र०)
कार्य काल	—	श्री दि० जैन महिलाश्रम (विधवाश्रम) का सुचारु-रीत्या संचालन करते हुए प्रधानाध्यापिका पद पर करीब १२ वर्ष पर्यन्त कार्य किया एव अपने सद्‌प्रयत्नों से सस्था मे १००८ श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय की स्थापना कराई ।
वैराग्य का कारण	—	परम पूज्य परम श्रद्धेय आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज के सन् १९६२ सागर (म० प्र०) चातुर्मास मे पू० १०८ श्री धर्मसागर महाराज जी की परम निरपेक्ष-वृत्ति और परम शान्तता का आकर्षण एव सघस्थ प० पू० प्रवर-वक्ता १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज के मार्मिक सम्बोधन ।

सिद्धान्तसार दीपक :

पू० १०५ श्री आर्यिका विशुद्धमती माताजी



जन्म स्थान :
रीठी (जबलपुर) म० प्र०
जन्म तिथि
चैत्र शुक्ला ३ सं० १९८६

दीक्षा गुरु :
प० पू० १०८ आचार्य श्री
शिवसागरजी महाराज

दीक्षा स्थान :
श्री अतिशय क्षेत्र पपौराजी
दीक्षा तिथि :
श्रावण शुक्ला ७ सं० २०२१

आर्यिका दीक्षा गुरु — परम पूज्य कर्मठ तपस्वी, अध्यात्मवेत्ता, चारित्र शिरोमणि, दिगम्बराचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज।

शिक्षा गुरु — परम पूज्य सिद्धान्त वेत्ता आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागर जी महाराज।

विद्या गुरु — परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी श्री १०८ श्री अजितसागरजी

— महाराज।

दीक्षा स्थान — श्री अतिशय क्षेत्र पपौराजी (म०प्र०)

दीक्षा तिथि — सं० २०२१ श्रावण शुक्ला सप्तमी
दि० १४ अगस्त १९६४ ई०

वर्षा योग — सं० २०२१ में पपौरा क्षेत्र पर दीक्षा हुई पश्चात् क्रमशः श्री अतिशय क्षेत्र महावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़, टोडारायसिंह, भिण्डर, उदयपुर, अजमेर, निवाई, रेनवाल (किशनगढ़), सवाई माधोपुर, सीकर, रेनवाल (किशनगढ़), निवाई, निवाई, टोडारायसिंह।

१२-४-६ ०??

जिनमुखोद्भव साहित्य-सृजन (टीकाएँ)

१ श्रीमद् सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार की सचित्र हिन्दी टीका।

२ भट्टारक सकल कीर्त्याचार्य विरचित सिद्धान्तसारदीपक अपर नाम त्रैलोक्यसारदीपक की हिन्दी टीका।

मौलिक रचनाएं:—१ श्रुत निकुंज के किंचित् प्रसून। (व्यवहार रत्नत्रय की उपयोगिता)।
२ गुरु गौरव।
३ श्रावक सोपान और बारह भावना।

संकलन — १ शिवसागर स्मारिका २ आत्म-प्रसून।

सम्पादन — १ समाधि-दीपक २ श्रमणचर्या
३ दीपावली पूजन विधि ४ श्रावक सुमन संचय आदि।

विशेष धर्म प्रभावना—आपकी प्रखर और मधुर वाणी से प्रभावित होकर श्री दि० जैन समाज जोबनेर जि० जयपुर ने श्री शान्तिवीर गुरुकुल को स्थायित्व प्रदान करने हेतु श्री दि० जैन महावीर चैत्यालय का नवीन निर्माण कराया एवं आपके सान्निध्य में ही वेदी प्रतिष्ठा कराई। जन धन एवं आवागमन आदि अन्य साधन विहीन अलयारी ग्राम स्थित जिन

मन्दिरका जीर्णोद्धार, २३ फुट ऊँची १००८ श्री चन्द्रप्रभु भगवान की नवीन प्रतिमा तथा संगमरमर की नवीन वेदी की प्राप्ति एवं वेदी प्रतिष्ठा आपके ही सद्प्रयत्नो का फल है। इसीप्रकार अनेक स्थानो पर कलशा-रोहण महा महोत्सव हुए, जैन पाठशालाए खोली गई, श्री दि० जैन धर्मशाला टोडारायसिंह का नवीनीकरण भी आपकी ही सद्प्रेरणा का फल है।

सयमदान — श्री ब्र० सूरजबाई मु० ड्योढी जि० जयपुर को क्षुल्लिका दीक्षा, श्री ब्र० मनफूलबाई मातेश्वरी श्री गुलाबचन्दजी कपूरचन्दजी सर्राफ टोडारायसिंह को अष्टम प्रतिमा एवं श्री कजोडीमलजी कामदार (जोवनेर) आदि को द्वितीय प्रतिमा के व्रत आपके कर कमलो से प्रदान किये गये।

दि० ३-४-८१

कजोड़ीमल कामदार
(जोवनेर वाले)



प्रस्तावना

सिद्धान्तसारदीपक अपर नाम त्रिलोकसार दीपक ग्रन्थ लोकानुयोग का वर्णन करने वाले संस्कृत ग्रन्थो मे परवर्ती होने पर भी भाषा की सरलता और प्रमेय की बहुलता से श्रेष्ठतम ग्रन्थ माना जाता है। तिलोयपण्णत्ति तथा त्रिलोकसार आदि प्राकृत भाषा के ग्रन्थ गणित की दुरूहता के कारण जब जनसाधारण के बुद्धिगम्य नही रहे तब भट्टारक श्री सकल कीर्ति आचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना कर जन साधारण के लिये लोक विषयक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमें गणित के दुरूह स्थलो को या तो छुआ नही गया है और छुआ गया है तो उन्हे सरलतम पद्धति से प्रस्तुत किया गया है।

सिद्धान्तसारदीपक के आधार का वर्णन करते हुए ग्रन्थान्त मे लिखा है—

'एष ग्रन्थवरो जिनेन्द्र मुखजः सिद्धान्त सारादिक—
दीपोऽनेकविधस्त्रिलोकसकलप्रद्योतने दीपकः।
नानाशास्त्रपरान् विलोक्य रचितस्त्रैलोक्यसारादिकान्
भक्त्या श्रीसकलादिकीर्तिगणिना संघैर्गुणैर्नन्दतु ॥१०२॥

यह सिद्धान्तसार दीपक नाम का ग्रन्थ अर्थ की अपेक्षा श्री जिनेन्द्र के मुख से समुद्भूत है, विविध प्रमेयो का वर्णन करने से अनेक प्रकार का है, तीन लोक की समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिए दीपक के समान है तथा त्रिलोकसार आदि अनेक उत्तम शास्त्रो का अवलोकन कर श्री सकलकीर्ति गणी के द्वारा भक्ति पूर्वक रचा गया है, अनेक गुण समूहों से यह ग्रन्थ समृद्धिमान् हो।

ग्रन्थ के आशीर्वचन मे ग्रन्थकर्ता ने लिखा है—

'सिद्धान्तसारार्थ निरूपणाच्छ्रीसिद्धान्तसारार्थभृतो हि सार्थः।
सिद्धान्तसारादिक दीपकोऽयं ग्रन्थो धरित्र्यां जयतात् स्वसङ्घैः' ॥१०६॥

जिनागम के सारभूत अर्थ का निरूपण करने से यह ग्रन्थ सिद्धान्त के सारभूत अर्थों से भरा हुआ है तथा 'सिद्धान्तसार दीपक' इस सार्थक नाम को धारण करनेवाला है। अपने सघों के द्वारा यह ग्रन्थ पृथिवी पर जयवन्त प्रवर्ते।

सिद्धान्तसार दीपक ग्रन्थ का परिमाण :

इस ग्रन्थ का परिमाण ग्रन्थकर्ता ने स्वय ४५१६ अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण लिखा है। ग्रन्थ के १६ अधिकारो में ३१५८ पद्य है। इन पद्यो में कुछ पद्य शार्दूल विक्रीडित तथा इन्द्रवज्रा आदि विविध छन्दो मे भी विरचित है। शेष प्रमाण की पूर्ति गद्यभाग से होती है। किसी वस्तु का सुविस्तृत और

विशद वर्णन करने के लिये ग्रन्थकर्ता ने गद्यभाग को स्वीकृत किया है। उनकी इस शैली से जिज्ञासुजन सरलता से प्रतिपाद्य वस्तु को हृदयगत कर लेते है।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय यद्यपि विषय सूची के द्वारा स्पष्ट है तथापि अधिकार क्रमसे उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन करना आवश्यक लगता है। यह ग्रन्थ १६ अधिकारो मे पूर्ण हुआ है—

प्रथम अधिकार मे ६५ श्लोक है जिनमे मङ्गलाचरण के अतिरिक्त लोक के आकार आदि का वर्णन है। द्वितीयाधिकार मे १२५ श्लोक है जिनमे अधोलोकके अन्तर्गत श्वभ्रलोक का वर्णन है। नरको के प्रस्तार तथा उनमे रहनेवाले नारकियो की अवगाहना और आयुका वर्णन है। तृतीयाधिकार मे १२३ श्लोक है जिनमे नारकियो के दु:खो का लोम हर्षक वर्णन है। पढते पढते पाठक का चित्त द्रवीभूत हो जाता है, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और नेत्रोसे अश्रु धारा प्रवाहित होने लगती है। चतुर्थाधिकार मे ११६ पद्य है जिनमे मध्यलोक के अन्तर्गत जम्बूद्वीप के छह कुलाचलो, छह सरोवरो तथा उनमे रहनेवाली श्री आदि देव कुमारियो की विभूति का वर्णन है। पञ्चमाधिकार मे १४७ श्लोक है जिनमे चौदह महानदियो, विजयार्धों, वृषभाचलो और नाभिगिरि पर्वतो का वर्णन है। षष्ठाधिकार मे ११० श्लोक हैं जिनमे सुदर्शनमेरु, भद्रशाल आदि वन और जिन चैत्यालयो का वर्णन है। सप्तमाधिकार मे २६१ श्लोक हैं जिनमे देव कुरु, उत्तर कुरु, कच्छादिदेश, चक्रवर्ती की दिग्विजय और विभूति का वर्णन है, अष्टमाधिकार में विदेह क्षेत्रस्थ समस्त देशो का वर्णन है। विदेह क्षेत्र मे मोक्ष का द्वार सदा खुला रहता है अत. उसकी प्रशसा करते हुए ग्रन्थकर्ता ने लिखा है—

पत्रोच्चैः पदसिद्धये सुकृतिनो जन्माश्रयन्तेऽमरा,
यस्मान्मुक्तिपदं प्रयान्ति तपसा केचिच्च नाकं वृतैः।
तीर्थेशा गणनायकाश्च गणिनः श्री पाठकाः साधवः,
सङ्घाढ्या विहरन्ति सोऽत्र जयतान्नित्यो विदेहो गुणैः ॥१९०॥

जहा पर पुण्यशाली देव मोक्षपद की प्राप्ति के लिये जन्म लेते है, जहा से कितने ही भव्यजन तपके द्वारा मुक्ति को प्राप्त करते है, कितने ही व्रतो के द्वारा स्वर्ग जाते है और जहा तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी सघ सहित विहार करते है वह विदेह क्षेत्र इस जगत् मे अपने गुणो के द्वारा निरन्तर जयवन्त रहे।

नवमाधिकार मे ३६७ श्लोक है जिनमें अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी के छह कालो और उनमें होनेवाले कुलकरों, तीर्थंकरो, चक्रवर्तियो, वलभद्रों, नारायणों, प्रतिनारायणों, रुद्रो और नारदों का वर्णन किया गया है।

दशमाधिकार मे ४२५ श्लोक है जिनमें मध्यलोक का सुविस्तृत वर्णन है। एकादशाधिकार मे २१६ श्लोक है जिनमें जीवो के कुल, काय, योनि, आयु संख्या तथा अल्पबहुत्व का वर्णन है। द्वादशा-

धिकार में १७३ श्लोक है जिनमें भवनवासी देवों के अवान्तर भेदों, इन्द्रों, निवास तथा आयु आदि का वर्णन है। त्रयोदशाधिकार में १२२ श्लोक है जिनमें व्यन्तर देवों के आठ भेदों उनके इन्द्रों तथा निवास आदि का वर्णन है। चतुर्दशाधिकार में १३५ श्लोक हैं जिनमें ज्योतिर्लोकका वर्णन है। उसके अन्तर्गत सूर्य चन्द्रमा गृह नक्षत्र आदि की संख्या तथा उनकी चाल आदि का निरूपण है। पञ्चदशाधिकार में ४०३ श्लोक है जिनमें वैमानिक देवोंके अन्तर्गत सौधर्मादि स्वर्ग उनके पटल, इन्द्र, देवाङ्गना तथा वैभव आदि का वर्णन है। अन्तिम षोडशाधिकार में ११९ श्लोक है जिनमें पल्य आदि प्रमाणों का वर्णन है तथा ग्रन्थ के समारोप आदि की चर्चा है।

इसप्रकार हम देखते है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ उत्तमोत्तम सामग्री से परिपूर्ण है। नरक गति के दु:खों का वर्णन कर वहाँ से निकलने वाले सम्यग्दृष्टि जीवो के कैसे विचार होते हैं इसका भी मार्मिक वर्णन है।

ग्रन्थ के रचयिता--

इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य सकलकीर्ति है। आचार्य सकलकीर्ति भट्टारक होते हुए भी नग्न मुद्रा में रहते थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थावली को देखते हुए लगता है कि इन्होंने अपना पूरा जीवन सरस्वती की आराधना में ही व्यतीत किया है। चारों अनुयोगों के आप ज्ञाता थे। संस्कृत भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। इन्हीं के द्वारा रचित और हमारे द्वारा संपादित तथा अनूदित पार्श्वनाथचरित की प्रस्तावना में माननीय डा० कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल जयपुर ने इनका जो जीवन परिचय दिया है उसे हम उन्ही के शब्दों में यहां साभार समुद्धृत करते हैं—

जीवन परिचय--

भट्टारक सकलकीर्ति का जन्म संवत् १४४३ (सन् १३८६) में हुआ था। इनके पिता का नाम करमसिह एवं माता का नाम शोभा था। ये अणहिलपुर पट्टण के रहनेवाले थे। इनकी जाति हूमण थी[1] "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" कहावत के अनुसार गर्भ धारण करने के पश्चात् इनकी माता ने एक सुन्दर स्वप्न देखा और उसका फल पूछने पर करमसिह ने इसप्रकार कहा—

---

१ हरषी सुणीय सुवाणि पालइ अन्य ऊअरि सुपर।
चोऊद त्रिताल प्रमाणि पूरइ दिन पुत्र जनमीउ ॥
न्याति माहि मुहुतवत हूबड हरषि बखाणिइये।
करमसिह वितपन्न उदयवत इम जाणीए ॥३॥
शोभित रस अरधागि, भूलि सरीस्य सुन्दरीय।
सील स्यगारित अंगि पेखु प्रत्यक्ष पुरदरीय ॥४॥

—सकलकीर्ति रास

तजि वयण सुणीसार, कुमर तुम्ह होइसिइए ।
निर्मल गंगानीर, चन्दन नन्दन तुम्ह तणुए ॥९॥
जलनिधि गहिर गम्भीर खीरोपम सोहामणुए ।
ते जिहि तरण प्रकाश जग उद्योतन जस किरणि ॥१०॥

बालक का नाम पूर्नसिंह अथवा पूर्णसिंह रखा गया । एक पट्टावलिमे इनका नाम पदर्थ भी दिया हुआ है । द्वितीया के चन्द्रमा के समान वह बालक दिन प्रतिदिन बढने लगा । उसका वर्ण राजहस के समान शुभ्र था तथा शरीर बत्तीस लक्षणो से युक्त था । पाच वर्ष के होने पर पूर्णसिंह को पढने बैठा दिया गया । बालक कुशाग्र-बुद्धि का था । इसलिये शीघ्र ही उसने सभी ग्रन्थोका अध्ययन कर लिया । विद्यार्थी अवस्था मे भी इनका अर्हद्-भक्ति की ओर अधिक ध्यान रहता था । तथा वे क्षमा, सत्य, शौच एव ब्रह्मचर्य आदि धर्मो को जीवनमे उतारने का प्रयास करते रहते थे । गार्हस्थ्य जीवन के प्रति विरक्ति देखकर माता-पिता ने उनका १४ वर्ष की अवस्था मे ही विवाह कर दिया, लेकिन विवाह बन्धन मे बाधने के पश्चात् भी उनका मन ससार मे नही लगा और वे उदासीन रहने लगे । पुत्र की गति-विधिया देखकर माता-पिता ने उन्हे बहुत समझाया लेकिन उन्हे कोई सफलता नही मिली । पुत्र एव माता-पिता के मध्य बहुत दिनो तक वाद-विवाद चलता रहा । पूर्णसिंह के समझ मे कुछ नही आता और वे बार बार साधु-जीवन धारण करने की उनसे स्वीकृति मागते रहते ।

अन्त मे पुत्र की विजय हुई और पूर्णसिंह ने २६वे वर्ष मे अपार सम्पत्ति को तिलाजलि देकर साधु-जीवन अपना लिया । वे आत्म-कल्याण के साथ साथ जगत्कल्याण की ओर चल पडे । "भट्टारक सकलकीर्ति नु रास" के अनुसार उनकी इस समय केवल १८ वर्ष की आयु थी । उस समय भट्टारक पद्मनदि का मुख्य केन्द्र नेणवां (उदयपुर) था और वे आगम ग्रन्थों के पारगामी विद्वान् माने जाते थे । इसलिये ये भी नेणवा चले गये और उनके शिष्य बनकर अध्ययन करने लगे । यह उनके साधु जीवन की प्रथम पद यात्रा थी । वहां ये आठ वर्ष रहे और प्राकृत एवं सस्कृत ग्रन्थो का गम्भीर अध्ययन किया । उनके मर्म को समझा और भविष्यमे सत्साहित्य का प्रचार प्रसार ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया । ३४ वे वर्ष मे उन्होंने आचार्य पदवी ग्रहण की और नाम सकलकीर्ति रखा गया ।

विहार—

सकलकीर्ति का वास्तविक साधु-जीवन सम्वत् १४७७ से प्रारम्भ होकर सम्वत् १४९९ तक रहा । इन २२ वर्षो मे इन्होने मुख्य रूप से राजस्थान के उदयपुर, बासवाडा, प्रतापगढ़ आदि राज्यों एव गुजरात प्रान्त के राजस्थान के समीपस्थ प्रदेशो मे खूब विहार किया ।

उस समय जन-साधारण के जीवन मे धर्म के प्रति काफी शिथिलता आ गई थी । साधु-सन्तो के विहार का अभाव था । जन-साधारण की न तो स्वाध्याय के प्रति रुचि रही थी और न उन्हे सरल

भाषा में साहित्य ही उपलब्ध होता था। इसलिये सर्वप्रथम सकलकीर्ति ने उन प्रदेशों में विहार किया और सारे समाज को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने कितने ही यात्रा संघों का नेतृत्व किया। इसके पश्चात् उन्होंने अन्य तीर्थों की वन्दना की जिससे देश में धार्मिक चेतना फिर से जागृत होने लगी।

प्रतिष्ठाओं का आयोजन—

तीर्थ-यात्राओं के पश्चात् सकलकीर्ति ने नवीन मन्दिरों का निर्माण एवं प्रतिष्ठाएं करवाने का कार्य हाथ में लिया। उन्होंने अपने जीवन में १४ बिम्ब-प्रतिष्ठाओं का संचालन किया। इस कार्य में योग देने वालों में संघपति नरपाल एवं उनकी पत्नी बहुरानी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। गलियाकोट में संघपति मूलराज ने इन्हीं के उपदेश से "चतुर्विंशति-जिनबिम्ब" की स्थापना की थी। नागदा जाति के श्रावक संघपति ठाकुरसिंह ने भी कितनी ही बिम्ब प्रतिष्ठाओं में योग दिया। भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा सम्वत् १४६०, १४६२, १४६७ आदि सम्वतों में प्रतिष्ठापित मूर्तियां उदयपुर, डूंगरपुर एवं सागवाड़ा आदि स्थानों के जैन मन्दिरों में मिलती हैं। प्रतिष्ठा महोत्सवों के इन आयोजनों से तत्कालीन समाज में जो जनजागृति उत्पन्न हुई थी, उसने देश में जैन-धर्म एवं संस्कृति के प्रचार प्रसार में अपना पूरा योग दिया।

व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य—

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे। इन्होंने जिन जिन परम्पराओं की नींव रखी। उनका बादमें खूब विकास हुआ। वे गम्भीर-अध्ययन-युक्त संत थे। प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं पर इनका पूर्ण अधिकार था। ब्रह्म जिनदास एव भ० भुवनकीर्ति जैसे विद्वानों का इनका शिष्य होना ही इनके प्रबल पांडित्य का सूचक है। इनकी वाणी में जादू था इसलिये जहां भी इनका विहार हो जाता था, वहीं इनके सैंकड़ों भक्त बन जाते थे। वे स्वयं तो योग्यतम विद्वान थे ही, किन्तु इन्होंने अपने शिष्यों को भी अपने ही समान विद्वान् बनाया। ब्रह्म जिनदास ने अपने ग्रन्थोमे भट्टारक सकलकीर्ति को महाकवि, निर्ग्रन्थराज शुद्ध चरित्रधारी एवं तपोनिधि आदि उपाधियों से सम्बोधित किया है।[1]

भट्टारक सकलभूषण ने अपनी उपदेश-रत्नमाला की प्रशस्ति में कहा है कि सकलकीर्ति जन

---

१. ततोऽभक्तस्य जगत्प्रसिद्धः, पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्तिः ।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी, निर्ग्रन्थराजो जगति प्रतापी ॥

जम्बूस्वामी चरित्र

जन का चित्त स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। ये पुण्यमूर्ति स्वरूप थे तथा अनेक पुराण ग्रन्थों के रचयिता थे[1]।

इसी तरह भट्टारक शुभचन्द्र ने सकलकीर्ति को पुराण एवं काव्यो का प्रसिद्ध प्रणेता कहा है। इनके अतिरिक्त इनके बाद होने वाले प्रायः सभी भट्टारको ने सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एव विद्वत्ता की भारी प्रशसा की है। ये भट्टारक थे किन्तु मुनि नाम से भी अपने आपको सम्बोधित करते थे। धन्य-कुमार चरित्र ग्रन्थ की पुष्पिका मे इन्होने अपने आपका मुनि सकलकीर्ति नाम से परिचय दिया है।

ये स्वयं नग्न अवस्था में रहते थे और इसलिये ये निर्ग्रन्थकार अथवा निर्ग्रन्थराज के नाम से भी अपने शिष्यो द्वारा सबोधित किये गये है। इन्होने वागड प्रदेश मे जहा भट्टारको का कोई प्रभाव नही था। सम्वत् १४९२ मे गलियाकोट मे एक भट्टारक गादी की स्थापना की और अपने आपको सरस्वती-गच्छ एव वलात्कारगण की परम्परा का भट्टारक घोषित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी थे तथा अपने जीवन मे इन्होने कितने ही व्रतो का पालन किया था।

सकलकीर्ति ने जनता को जो कुछ चरित्र सम्बन्धी उपदेश दिया था, पहिले उसे अपने जीवन मे उतारा। २२ वर्ष के एक छोटे समय मे ३५ से अधिक ग्रन्थो को रचना, विविध ग्रामों एव नगरो मे विहार, भारत के राजस्थान, उत्तरप्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश आदि प्रदेशों के तीर्थों की पद यात्रा एव विविध व्रतो का पालन केवल सकलकीर्ति जैसे महा विद्वान् एव प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले साधु से ही सम्पन्न हो सकते थे। इस प्रकार ये श्रद्धा, ज्ञान एव चारित्र से विभूषित उत्कृष्ट एव आकर्षक व्यक्तित्व वाले साधु थे।

मृत्यु--

एक पट्टावलि के अनुसार भट्टारक सकलकीर्ति ५६ वर्ष तक जीवित रहे। सम्वत् १४९९ में महसाना नगर मे उनका स्वर्गवास हुआ। पं० परमानन्दजी शास्त्री ने भी प्रशस्ति सग्रह मे इनको मृत्यु सम्वत् १४९९ में महसाना (गुजरात) मे होना लिखा है। डा० ज्योतिप्रसाद जैन एव डा० प्रेम-सागर भी इसी सम्वत् को सही मानते है। लेकिन डा० ज्योतिप्रसाद इनका पूरा जीवन ८१ वर्ष स्वी-कार करते है। जो अब लेखक को प्राप्त विभिन्न पट्टावलियो के अनुसार वह सही नही जान पड़ता।

---

१. तत्पट्ट पकेजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवर प्रतापी।
महाकवित्वादिकला-प्रवीण· तपोनिधिः श्री सकलादिकीर्ति ॥
हरिवश-पुराण।

१ तत्पट्टधारी जनचित्तहारी पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी।
भट्टारक. श्रीसकलादिकीर्ति प्रसिद्धनामाजनि पुण्यमूर्ति. ॥
उपदेशरत्नमाला—सकलभूषण

सकलकीर्ति रास में उनकी विस्तृत जीवन गाथा है, उसमें स्पष्ट रूप से सम्वत् १४४३ को जन्म एवं सम्वत् १४६६ में स्वर्गवास होने को स्वीकृत किया है।

तत्कालीन सामाजिक अवस्था—

भट्टारक सकलकीर्ति के समय देशकी सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज में सामाजिक एवं धार्मिक चेतना का अभाव था। शिक्षा की बहुत कमी थी। साधुओं का अभाव था। भट्टारकों के नग्न रहने की प्रथा थी। स्वय भट्टारक सकलकीर्ति भी नग्न रहते थे। लोगों में धार्मिक श्रद्धा बहुत थी। तीर्थ-यात्रा बडे बडे सघो मे होती थी। उनका नेतृत्व करने वाले साधु होते थे। तीर्थ यात्राएं बहुत लम्बी होती थी तथा वहा से सकुशल लौटने पर बड़े-बड़े उत्सव एवं समारोह किये जाते थे। भट्टारकों ने पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाओं एवं अन्य धार्मिक समारोह करने की अच्छी प्रथा डाल दी थी। इनके सघ में मुनि, आर्यिका, श्रावक आदि सभी होते थे। साधुओं मे ज्ञान-प्राप्ति की काफी अभिलाषा होती थी, तथा सघ के सभी साधुओ को पढाया जाता था। ग्रन्थ रचना करने का भी खूब प्रचार हो गया था। भट्टारक गण भी खूब ग्रन्थ रचना करते थे। वे प्राय: अपने ग्रन्थ श्रावकोंके आग्रहसे निबद्ध करते रहते थे। व्रत उपवास की समाप्तिपर श्रावको द्वारा इन ग्रन्थों की प्रतिया विभिन्न ग्रन्थ-भण्डारों को भेट स्वरूप दे दी जाती थी। भट्टारकों के साथ हस्तलिखित ग्रथों के बस्ते के बस्ते होते थे। समाज में स्त्रियो की स्थिति अच्छी नही थी और न उनके पढ़ने लिखने का साधन था। व्रतोद्यापन पर उनके आग्रह से ग्रंथों की स्वाध्यायार्थ प्रतिलिपि कराई जाती थी और उन्हे साधु सन्तों को पढने के लिये दे दिया जाता था।

साहित्य सेवा—

साहित्य सेवा में सकलकीर्ति का जबरदस्त योग रहा। कभी कभी तो ऐसा मालूम होने लगता है जैसे उन्होंने अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षणका उपयोग किया हो। संस्कृत, प्राकृत एवं राजस्थानी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। वे सहज रूप मे ही काव्य रचना करते थे, इसलिये उनके मुख से जो भी वाक्य निकलता था वही काव्य रूप में परिवर्तित हो जाता था। साहित्य रचना की परम्परा सकलकीर्ति ने ऐसी डाली कि राजस्थान के बागड़ एवं गुजरात प्रदेश में होने वाले अनेक साधु-सन्तों ने साहित्य की खूब सेवा की तथा स्वाध्याय के प्रति जन-साधारण की भावना को जागृत किया। इन्होंने अपने अन्तिम २२ वर्ष के जीवन में २७ से अधिक संस्कृत रचनाएं एवं ८ राजस्थानी रचनाएं निबद्ध की थी।

राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों की जो अभी खोज हुई है उनमें हमें अभी तक निम्न रचनाएं उपलब्ध हो सकी है।

संस्कृत की रचनाएं—

१. मूलाचार प्रदीप २. प्रश्नोत्तरोपासकाचार ३. आदिपुराण ४. उत्तरपुराण ५. शांतिनाथ चरित्र ६. वर्द्धमान चरित्र ७. मल्लिनाथ चरित्र ८. यशोधर चरित्र ९. धन्यकुमार चरित्र १०. सुकुमाल चरित्र ११ सुदर्शन चरित्र १२. सद्भाषितावलि १३ पार्श्वनाथ चरित्र १४. व्रतकथा कोष १५. नेमिजिन चरित्र १६. कर्मविपाक १७ तत्वार्थसार-दीपक १८ सिद्धान्तसार-दीपक १९ आगमसार २०. परमात्मराज-स्तोत्र २१. सारचतुर्विंशतिका २२ श्रीपाल चरित्र २३. जम्बूस्वामी चरित्र २४ द्वादशानुप्रेक्षा ।

पूजा ग्रन्थ—

२५. अष्टाह्निका पूजा २६. सोलहकारण पूजा २७ गणधरवलय पूजा ।

राजस्थानी कृतियां—

१. आराधना प्रतिबोधसार २ नेमीश्वर गीत ३ मुक्तावलि गीत ४. णमोकार फल गीत ५. सोलहकारण रास ६. सारसिखामणि रास ७. शांतिनाथ फागु ।

उक्त कृतियों के अतिरिक्त अभी और भी रचनाएं हो सकती हैं जिनकी अभी खोज होना बाकी है । भट्टारक सकलकीर्ति की संस्कृत भाषा के समान राजस्थानी भाषा मे भी कोई बडी रचना मिलनी चाहिये, क्योकि इनके प्रमुख शिष्य ब्र० जिनदास ने इन्ही की प्रेरणा एवं उपदेशसे राजस्थानी भाषा में ५० से भी अधिक रचनाएं निबद्ध की है ।

उक्त संस्कृत कृतियों के अतिरिक्त पंचपरमेष्ठि पूजा, द्वादशानुप्रेक्षा एवं सारचतुर्विंशतिका आदि और भी कृतिया है । जो राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध होती है । ये सभी कृतिया जैन समाज मे लोकप्रिय रही है तथा उनका पठन-पाठन भी खूब रहा है ।

भट्टारक सकलकीर्ति की उक्त संस्कृत रचनाओ मे कवि का पाण्डित्य स्पष्ट रूपसे झलकता है । उनके काव्यो मे उसी तरह की शैली, अलंकार, रस एवं छन्दो की परियोजना उपलब्ध होती है जो अन्य भारतीय सस्कृत काव्यों मे मिलती है । उनके चरित काव्यो को पढने से अच्छा रसास्वादन मिलता है । चरित काव्यो के नायक त्रैसठशलाका के लोकोत्तर महापुरुष है जो अतिशय पुण्यवान् हैं, जिनका सम्पूर्ण जीवन अत्यधिक पावन है । सभी काव्य शातरस पर्यवसानी हैं ।

काव्य ज्ञान के समान भट्टारक सकलकीर्ति जैन सिद्धान्त के महान् वेत्ता थे । उनका मूलाचार प्रदीप, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, सिद्धान्तसार-दीपक एवं तत्त्वार्थसार-दीपक तथा कर्मविपाक जैसी रचनाए उनके अगाध ज्ञानके परिचायक है । इसमे जैन सिद्धान्त, आचार-शास्त्र एवं तत्वचर्चा के उन गूढ रहस्यों का निचौड है जो एक महान् विद्वान् अपनी रचनाओं में भर सकता है ।

इसी तरह सद्भाषितावलि उनके सर्वांगज्ञान का प्रतीक है। जिसमें सकलकीर्ति ने जगत के प्राणियों को सुन्दर शिक्षाएं भी प्रदान की हैं, जिससे वे अपना आत्म-कल्याण करने की ओर अग्रसर हो सके। वास्तव में वे सभी विषयों के पारगामी विद्वान् थे। ऐसे सन्त विद्वान् को पाकर कौन देश गौरवान्वित नही होगा ?

राजस्थानी रचनाएं—

सकलकीर्ति ने हिन्दी में बहुत ही कम रचना निबद्ध की है। इसका प्रमुख कारण संभवतः इनका संस्कृत भाषा की ओर अत्यधिक प्रेम था। इसके अतिरिक्त जो भी इनकी हिन्दी रचनाएं मिली है वे सभी लघु रचनाएं है जो केवल अध्ययन को दृष्टि से ही उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। सकलकीर्ति का अधिकांश जीवन राजस्थान में व्यतीत हुआ था। इनकी रचनाओं में राजस्थानी भाषा की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति ने सस्कृत भाषा में ३० ग्रन्थों की रचना करके मां भारती की अपूर्व सेवा की और देश में संस्कृत के पठन-पाठन का जबरदस्त प्रचार किया।

आचार्य सकलकीर्ति विरचित संस्कृत ग्रन्थावली में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अब भी अप्रकाशित है और मूलाचार प्रदीप जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित होनेपर भी इस समय अनुपलब्ध हो रहे है। अच्छा हो शांतिवीर ग्रन्थमाला महावीरजी या अन्य कोई प्रकाशन संस्था इन सब ग्रंथों को सुसंपादित कराकर हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कराने की योजना बनावे। भाषाकी सरलता और प्रतिपाद्य विषयों की उपयोगिता को देखते हुए आशा है कि इनके ग्रंथ लोकप्रिय सिद्ध होंगे।

सिद्धांतसार-दीपक का यह सटीक संस्करण—

त्रिलोकसार की टीका करने के बाद पूज्य आर्यिका श्री १०५ विशुद्धमतिजी ने मुझसे पूछा कि अब मुझे बतलाइये किस ग्रन्थ पर काम करू ? क्योंकि टीका करने में स्वाध्याय और ध्यान दोनों की सिद्धि होती है। विचार-विमर्श के बाद स्थिर हुआ कि 'सिद्धान्तसार दीपक' की टीका की जाय। इसका विषय त्रिलोकसार से मिलता जुलता है तथा जन साधारण के स्वाध्याय के योग्य है। फलतः हस्तलिखित प्रतियां एकत्र कर उनके पाठ भेद लेना शुरू किया गया। सवाई माधवपुर के चातुर्मास मे इसके पाठभेद लेने का कार्य सम्पन्न हुआ था उसमे श्री पं० जगन्मोहनलालजी और मैंने भी सहयोग किया था। टीका के लिये जो मूल प्रति चुनी गई थी वह १७८९ विक्रम सम्वत् की लिखी हुई थी। जैसा कि उसकी अन्तिम प्रशस्ति से स्पष्ट है।

ग्रन्थ पर्यायन्त्र समेत ४५१६, सम्वत् १७८९ वर्षे आषाढ मासे कृष्णपक्षे तिथौ चतुर्दशी शनिवासरे, लिखित मानमहात्मा चाटसु मध्ये श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्विये

भट्टारकजी श्री जगत्कीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री..............द्रकीर्तिजी आचार्यजी श्री कनककीर्तिजी तत् शिष्य पं० रायमल तत् शिष्य प० ....दजी तत् शिष्य प० वृन्दावनेन सुपठनार्थं लिखापितम्। लिखितं............ ....छमे।

माताजी की अभीक्ष्ण ज्ञानाराधना और उसके फल स्वरूप प्रकट हुए क्षयोपशम के विषय मे क्या लिखू ? अल्पवय मे प्राप्त वैधव्य का अपार दुःख सहन करते हुए भी इन्होने जो वैदुष्य प्राप्त किया है वह साधारण महिला के साहस की बात नही है। वैधव्य प्राप्त होते ही तत्काल जो साधन जुटाये जा सके उनका इन्होने पूर्ण उपयोग किया। ये सागर के महिलाश्रम मे पढती थी मैं धर्म शास्त्र और संस्कृत का अध्ययन कराने प्रातःकाल ५ बजे जाता था। एक दिन गृह प्रबन्धिका ने मुझसे कहा कि रात में निश्चित समय के बाद आश्रम की ओर से मिलने वाली लाईट की सुविधा जब बन्द हो जाती है तब ये खाने के घृत का दीपक जलाकर चुपचाप पढती रहती है और भोजन घृत हीन कर लेती हैं। गृह प्रबन्धिका के मुख से इनके अध्ययन शीलता की प्रशसा सुन जहा प्रसन्नता हुई वहा अपार वेदना भी हुई। प्रस्तावना की यह पक्तिया लिखते समय वह प्रकरण स्मृति मे आ गया और नेत्र सजल हो गये। लगा, कि जिसकी इतनी अभिरुचि है अध्ययन मे, वह अवश्य ही होनहार है। आश्रममें रहकर इन्होंने शास्त्री कक्षा तक पाठचक्रम पूरा किया और हिन्दी साहित्य सम्मेलन से साहित्य रत्न की उपाधि प्राप्त की। जबलपुर से प्रशिक्षित (ट्रेण्ड) होकर महिलाश्रम में अध्यापन शुरू किया तथा साधारण अध्यापिका के बाद प्रधानाध्यापिका और तदनन्तर कार्य छोड़कर अधिष्ठात्री पद को प्राप्त किया।

सभवतः सन् १९६३ मे सागर मे आचार्य श्री धर्मसागरजी, सन्मतिसागरजी और पदमसागरजी का चातुर्मास हुआ। श्री सन्मतिसागरजी के सम्बोधन से इनका हृदय विरक्ति की ओर आकृष्ट हुआ। फलस्वरूप इन्होने सप्तम प्रतिमा धारण की और आगे चल कर पपौरा के चातुर्मास मे आचार्य शिवसागरजी के पादमूल मे आर्यिका दीक्षा ली। संघस्थ आचार्यकल्प श्रुतसागरजी ने इनका करणानुयोग मे प्रवेश कराया और श्री अजितसागरजी महाराज ने सस्कृत भाषा का परिज्ञान कराया। निर्द्वन्द्व होकर इन्होंने धवलसिद्धान्त के सब भागों का स्वाध्याय कर जब मुझे कोटा के चातुर्मास मे स्वनिर्मित अनेक सदृष्टिया और चार्ट दिखलाये तब मुझे इनके ज्ञान विकास पर बडा आश्चर्य हुआ। यही नही त्रिलोकसार की टीका लिखकर प्रस्तावना लेख के लिये जब मेरे पास मुद्रित फार्म भेजे तब मुझे लगा कि यह इनके तपश्चरण का ही प्रभाव है कि इनके ज्ञान मे आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही है। वस्तुतः परमार्थ भी यही है कि द्वादशाङ्ग का जितना विस्तार हम सुनते है वह सब गुरु मुख से नही पढा जा सकता। तपश्चर्या के प्रभाव से स्वय ही ज्ञानावरण का ऐसा विशाल क्षयोपशम हो जाता है कि जिससे अङ्ग पूर्व का भी विस्तृत ज्ञान अपने आप प्रकट हो जाता है। श्रुतकेवली बनने के लिये निर्ग्रन्थ मुद्रा के साथ विशिष्ट तपश्चरण का होना भी आवश्यक रहता है।

त्रिलोकसारादि ग्रन्थों का गणित विधिवत् सम्पन्न कराने में इनके सहायक रहे श्री ब्र० रतनचन्द्रजी मुख्त्यार सहारनपुर। ये पूर्वभव के संस्कारी जीव थे जिन्होने किसी संस्था या व्यक्ति के पास संस्कृत प्राकृत तथा हिन्दी का विशिष्ट अध्ययन किये बिना ही स्वकीय पुरुषार्थ से करणानुयोग में प्रशंसनीय प्रवेश प्राप्त किया। आचार्य शिवसागरजी तथा आचार्यकल्प श्रुतसागरजी महाराज के कितने ही चातुर्मासों में मुझे इनके साथ जाने का अवसर मिला है उस समय इनकी ज्ञानाराधना और विषय को स्पष्ट करने की रीति देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी। अब वे नही है उनकी स्मृति ही शेष है।

सिद्धान्तसार दीपक का सम्पादन—

त्रिलोकसार की तरह सिद्धान्तसार दीपक का सम्पादन भी डा० श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी प्राध्यापक, जोधपुर विश्वविद्यालय जोधपुर ने किया है। ये दिवंगत मुनि श्री १०८ समतासागरजी के सुपुत्र हैं। समता और भद्रता इन्हे पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली हुई है। सस्कृत के एम० ए० होने के साथ साथ ये जैनागम के भी पारगामी है, कटी छटी और विविध टिप्पणों से अलकृत पाण्डुलिपि को आप अपनी सम्पादन कला से व्यवस्थित करने में सिद्ध हस्त हैं। कार्य के बोझ से कभी कतराते नही है किन्तु समता भावसे उसे वहन करते है। सिद्धान्तसार दीपक के संपादन में इन्होने पर्याप्त श्रम किया है। विषय सूची आदि कष्टसाध्य परिशिष्टों से इन्होने प्रस्तुत ग्रन्थ को सुशोभित किया है। शरीर के दुबले-पतले होने पर भी आप विशिष्ट क्षमोपशम के धनी है।

जैन भूगोल—

बारहवे दृष्टिवाद अङ्ग के पाच भेदो में पूर्वगत भेदोंके अन्तर्गत एक लोकबिन्दुसार पूर्व है। उस पूर्व में तीन लोक सम्बन्धी विस्तृत वर्णन है। वह इस समय उपलब्ध नहीं है किन्तु उसके आधार पर तीन लोक का वर्णन करने वाले अनेक शास्त्र–तिलोयपण्णत्ति, जंबूदीवपण्णत्ति, त्रिलोकसार लोकविभाग, हरिवंशपुराण तथा सिद्धान्तसार दीपक आदि दिगम्बर ग्रन्थ उपलब्ध है। आजका प्रत्यक्षवादी मानव, इन ग्रन्थों में प्रतिपादित जैन भूगोल को सुनकर झट से बोल उठता है कि कहां है ये स्थान ? उपलब्ध दुनियां में जहा तक आज के मानव की गति है वहां तक इनका सद्भाव न देख वह इन्हें कल्पित मानने लगता है। मनुष्य अपनी हीन शक्ति का विचार किये बिना ही वीतराग सर्वज्ञदेव की वाणी को अपने ग्रन्थो के द्वारा प्रतिपादित करनेवाले निःस्पृह आचार्यो के वचनों को संशय की दृष्टि से देखने लगता है। मध्यलोक एक राजूप्रमाण क्षेत्र मे विस्तृत है जिसमे असंख्यात द्वीप समुद्रों का समावेश है। आजका मानव जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र के सपूर्ण आर्यखण्ड में भी नही जा सका है। फिर संपूर्ण भरत क्षेत्र और जम्बूद्वीप की तो बात ही क्या है ? लोग पूछते है कि सुमेरु पर्वत कहाँ है ? मैं कह देता हूं कि जहां सूर्योदय और सूर्यास्त होता है उस निषध पर्वत के आगे विदेह क्षेत्र में सुमेरु पर्वत है। जब सूर्य निषध पर्वत के पूर्व कोण और पश्चिम कोण पर प्रातः और सायंकाल पहुंचता है तब

उसकी किरणे संतप्त सुवर्णाभ निषध पर्वत पर पड़ने से प्रातः पूर्व में और सायं पश्चिम में लालिमा प्रकट होती है ज्यों ही सूर्य निषध पर्वत से दूर हो जाता है त्यो ही लालिमा समाप्त हो जाती है। अतः इस निषध पर्वत का अस्तित्व सिद्ध है उसके आगे जाने पर सुमेरु पर्वत के दर्शन हो सकते है। जिस मनुष्य की शक्ति कूपमण्डूक के समान अत्यन्त सीमित है वह अपनी गति से बाहर पाये जाने वाले पदार्थों के अस्तित्व के प्रति सशय का भाव रक्खे, यह आश्चर्य की बात है। मेरा तो विश्वास है कि जिस प्रकार जैन शास्त्र मे प्रतिपादित तत्त्व आज विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे है उसीप्रकार जैन भूगोल के सिद्धात भी विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरेगे। असमञ्जसता वहा हो जाती है जहा जिन्हे जैन भूगोल का ज्ञान है उन्हे विज्ञान सिद्ध आधुनिक भूगोल का ज्ञान नही है और जिन्हे आधुनिक भूगोल का ज्ञान है उन्हे जैन भूगोल का ज्ञान नही है। काश, कोई दोनो भूगोलो का ज्ञाता हो और वह पक्षपात रहित होकर अनुसन्धान करे तो यथार्थता का निर्णय हो सकता है। फिर एक बात यह भी है कि सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थो का निर्णय आगम प्रमाण से ही हो सकता है, प्रत्यक्षादि प्रमाणो से नही। जहा प्रत्यक्ष अनुमान और शाब्द प्रमाण की गति कुण्ठित हो जातो है वहा आगम प्रमाण का ही आश्रय लेना पडता है। आगम की प्रामाणिकता वक्ता की प्रामाणिकता पर निर्भर रहती है। जैन भूगोल के उपदेष्टा आचार्य विशिष्ट ज्ञानी तथा माया ममता से रहित थे अतः उनकी प्रामाणिकता मे सशय का अवकाश नही है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य मे पडकर आगम की श्रद्धा से विचलित नही होना चाहिये।

सिद्धान्तसार दीपक का प्रकाशन—

मैंने देखा है कि आचार्यकल्प श्रुतसागरजी महाराज के हृदय मे जिनवाणी प्रकाशन के प्रति अनुपम अभिरुचि है। उन्ही की प्रेरणा से सम्बोधन पाकर भक्तजन जिनवाणी के प्रकाशन के लिये विशाल अर्थ राशि प्रदान करते है। उन्ही का सम्बोधन पाकर शातिवीर नगर महावीरजी मे शिवसागर ग्रन्थमाला से प० लालारामजी कृत हिन्दी टीका सहित आदिपुराण, प० गजाधरलालजी कृत टीका सहित हरिवंशपुराण, प० दौलतरामजी कृत टोका वाला पद्मपुराण और श्री १०५ आर्यिका आदिमतीजी द्वारा रचित विस्तृत हिन्दी टीका सहित कर्मकाण्ड का प्रकाशन हुआ है। सम्प्रति, सिद्धातसार दीपक का प्रकाशन भी उन्ही का सम्बोधन प्राप्त कर श्रीमान् पूनमचन्दजी गगवाल, श्रीमान् रामचन्द्रजी कोठारी जयपुर, श्रीमान् माणिकचन्दजी कोटा आदि दाताओ के द्वारा प्रदत्त अर्थ राशि से हो रहा है। श्रुतसागरजी महाराज का कहना है कि समाज मे सब प्रकार के श्रोता है, जो जिस प्रकार का श्रोता है उसके लिये उस प्रकार का ग्रन्थ स्वाध्याय के लिये अल्प मूल्य मे मिलना चाहिए। त्रिलोकसार, सिद्धातसार दीपक और कर्मकाण्ड आदि गहन ग्रन्थ विशिष्ट श्रोताओ के लिये है तो आदिपुराण, हरिवशपुराण, पद्मपुराण तथा धन्यकुमार चरित आदि कथा ग्रन्थ साधारण श्रोताओ के लिये है।

आर्यिका विशुद्धमतीजी के ऊपर उनका उतना ही स्नेह मैने देखा है जितना कि एक पिता का पुत्री के ऊपर रहता है। जब वे उनके साथ संघ में रहती थी तब पितृ स्नेह का प्रकट रूप दिखाई देता ही था पर अब कारण वश अलग रहने पर भी उनका स्नेह ज्यो का त्यों बना हुआ है। वे विशुद्धमति जी के द्वारा लिखित शास्त्रों को प्रकाशित करा कर उन्हें बराबर प्रोत्साहित करते रहते हैं। जब भी इनके पास जाता हूं तब बातचीत के प्रसग में वे विशुद्धमतिजी की साहित्यिक आराधना की प्रशंसा करते रहते है।

ब्र० लाडमलजी बाबाजी अधिकांश आचार्यकल्प श्रुतसागरजी के साथ रहते है वे ग्रथ प्रकाशन आदि में पूर्ण सहयोग किया करते है। तात्पर्य यह है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिनका जिस प्रकार का सहयोग उपलब्ध हुआ है वे सब धन्यवाद के पात्र है। उन सबके ज्ञानावरण का क्षयोपशम वृद्धि को प्राप्त हो यह कामना है।

यह संस्करण--

सिद्धान्तसार दीपक के मुद्रण का कार्य कमल प्रिन्टर्स मदनगज (किशनगढ़) में सम्पन्न हुआ है। उसके सचालक श्रीमान् पाँचूलालजी ने छपाई सफाई का ध्यान रखते हुए इसे शुद्धता पूर्वक छापा है। चार्ट और चित्रो को यथास्थान लगाया है इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र है।

माताजी का मुझपर स्नेह है अत: वे अपनी छोटी-मोटी सभी रचनाओं पर कुछ पंक्तियां लिखने का आग्रह करती है उसी आग्रहवश इस संस्करण मे प्रस्तावना लेख के रूपमें मैंने कुछ लिखने का प्रयास किया है। इच्छा थी कि ग्रन्थ सम्बन्धी कुछ विषयों पर विशेष प्रकाश डाला जाय परन्तु माताजी के साथ रहने वाले ब्र० कजोड़ीमलजी का आग्रह रहा कि प्रस्तावना लेख शीघ्र ही लिखकर १-२ दिन में मुद्रित फार्म वापिस भेज दे। 'माताजी ने ग्रन्थ मे विशेषार्थो के माध्यम से सब विषय स्पष्ट किये ही है' इसलिये इच्छाको सीमित कर एक दिन मे ही प्रस्तावना लेख समाप्त कर वापिस भेज रहा हूं।

माताजी इसी तरह जिनवाणी की सेवा करती रहे इस भावना के साथ उनके प्रति आभार प्रकट करता हूं।

सागर
२४-३-८१

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य



विषय सूची

तृतीय अधिकार/नरक दुःख वर्णन

चतुर्थ अधिकार/मध्यलोक वर्णन

पंचम अधिकार/महानदी, गिरि वर्णन

षष्ठ अधिकार/विदेह क्षेत्र वर्णन

सप्तम अधिकार ।

देवकुरु, उत्तरकुरु, कच्छादेश तथा चक्रवर्ती की दिग्विजय एवं विभूति वर्णन

अष्टम अधिकार
(विदेह क्षेत्रस्थ देशों का वर्णन)

नवम अधिकार
(छह कालों का प्ररूपण)

दशम अधिकार
(मध्यलोक वर्णन)

एकादश अधिकार
(जीवों के भेद-प्रभेदों का वर्णन)

द्वादश अधिकार/चतुर्निकाय के देवों का वर्णन भवनवासी देव

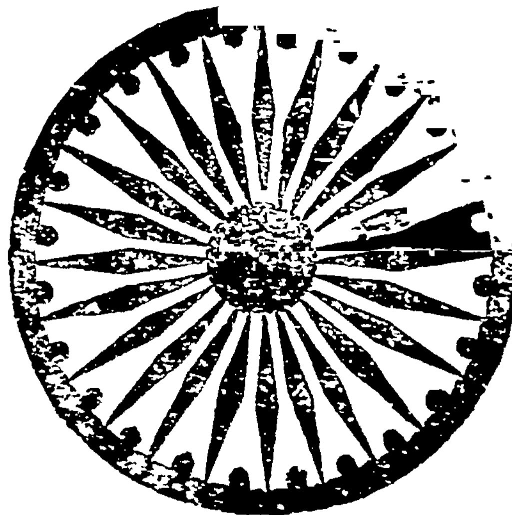
त्रयोदश अधिकार/व्यन्तरदेवों का वर्णन

चतुर्दश अधिकार/ज्योतिषी देवों का वर्णन

पञ्चदश अधिकार/ऊर्ध्वलोक वर्णन

षोडश अधिकार/पल्यादि मान वर्णन





शुद्धि-पत्र

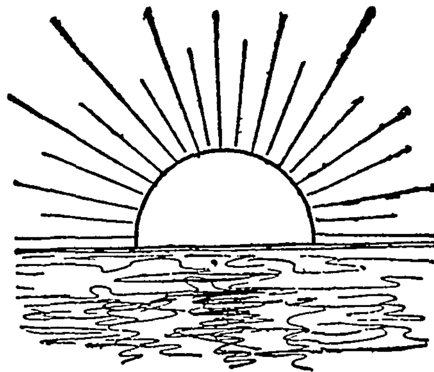


पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१६	सममघापि	सममद्यापि
१७	४	कारणो	करणो
२३	१२	(पडत) आत्मक	(पडतात्मक)
२५	१६	आकार	आकर
२६	१४	तमिश्र:	तमिस्र:
२९	१	पथ्वियो	पृथ्वियो
३५	३	क्रोशार्धर्द्धधिकं	क्रोशार्धार्धाधिक
३९	८	मघा	मेघा
३९	६,१६	व्यास क्षेत्र	व्याप्त क्षेत्र
४५	मघवी पृथ्वी	३-१८$\frac{३}{५}$	२०$\frac{३}{५}$
५३	१६	वाला	वाली
५६	७	भवप्रयय	भवप्रत्यय
५७	२४	स्तद्विहान्य	स्तद्विहान्यै
५७	२४	शिवाप्त्य	शिवाप्त्यै
६०	२६	वह्वय:	वह्वच:
६२	३	उद्धत	उद्यत
६२	१८	हाते	होते
६४	१५	भार	भाड
६९	१३	भर्त्स्ना	भर्त्सना
७२	१	स्वयमागत्यतीवोष्णा....	स्वयमागत्य तीव्रोष्णा....
७५	२१	...ऽवरात्	....ऽम्वरात्
८८	१४	ततौ	ततो
९१	तालिका/भरत	२१०५२६३$\frac{३}{१६}$	२१०५२६३$\frac{३}{१६}$
९१	१६	पूने	ने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९१	१८	और वं	और पूर्व
९७	३ उत्तरभरत	१४४७१$\frac{६}{१९}$	१४४७१$\frac{५}{१९}$
१०४	१ हिमवन्	१७$\frac{३}{४}$ यो०	१८$\frac{३}{४}$ यो०
११२	तालिका, श्रीदेवी	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{१}{२}$ कोस
१२५	६	व्यास	व्याप्त
१२६	१०	गंगानदियों	गंगादिनदियों
१४७	१२	शालाट्टलक पंक्त्य:	शालाट्टालकपंक्त्य:
१५१	२३	विषयाशक्त	विषयासक्त
१७१	२०	वादियों	वादित्रो
१७२	१	२०००	२००००
१७२	२१	आदि को	को आदि
१७७	४	सद्धहस्ता	सद्धस्ता
१७९	१७	छोटा	छोटी
१८८	९	चैत्यालयों	चैत्यालयों को
१९३	२६	कूटो का	कूट की
१९७	२०	निहार	नीहार
२००	११	बाह्य परिषद	वाह्यपारिषद
२०२	३	शोभायमान उन्नत	शोभायमान
२१३	६	चतु:षष्ठि	चतु: षष्टि
२२१	१	नाम को	नाम के
२२२	१७	प्रदेश	प्रवेश
२३१	२५	परांह्रि	पराङ्घ्रि
२३८	१३	की क्रमश:	की ऊँचाई क्रमश:
२४८	५	ततोत्पर	ततोऽपर
२५२	२३	विरहन्ति	विहरन्ति
२६३	९	विभाङ्गाख्या	विभङ्गाख्या
२६६	५	के ज्ञान	को ज्ञान
२६९	२७	वुद्धि	वृद्धि
२७५	१	सहस्रसंखयया	सहस्रसंख्यया

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८१	२८	किया गया था	किया था
२९१	१०	पद्यप्रभु	पद्मप्रभु
२९२	६	वक्तृश्रोतृयत्पाद्य	वक्तृश्रोतृयत्याद्य
३००	१७	स्याज्जरासघो	स्याज्जरासिन्धो
३०१	१६	विषयाशक्ति	विषयासक्ति
३०३	२३	अर्थः—× × ×	ऋषभनाथ के काल मे पृथ्वीपर भीम और बलि ये दो रुद्र हुए
३१७	१०	नराकाङ्क्षिनाम्	नरकाङ्क्षिनाम्
३२९	६,७	१$\overset{१}{३}$६	३$\overset{१}{३}$६
३३४	२७	भोगकुभूमिज	कुभोगभूमिज
३३७	२६	कहा गई	कहा गया
३४८	२३	दो-दो	दो
३५२	२	५२९९०९$\frac{१}{२}\frac{४}{१}\frac{९}{२}$	५२९०९९$\frac{१}{२}\frac{४}{१}\frac{९}{२}$
३६४	२८	पूर्वोक्तप्रमाण ( )	पूर्वोक्त प्रमाण (१० यो)
३७३	२०	सहेस्रे	सहस्रे
३८०	३	जिनर्चाना	जिनार्चाना
३९१	२३	घतवारिधौ	घृतवारिधौ
३९२	२४	× × ×	तथा अपने मन वचनको शुद्ध करके पढे।
४०१	१	अनिलयोनियो	अनलयोनियो
४०३	२	वल्जी	वल्ली
४१९	२३	× × ×	भवनवासियो
४२३	१९	देवगति	देवगति की
४२७	६	पर्याप्तपर्याप्ता	पर्याप्तापर्याप्त
४२७	९	पर्याप्तापर्याप्त	पर्याप्तपर्याप्ता
४२८	२५	विरच्यते	विरचिते
४३६	२९	वेतयोवृक्षोऽथप्रिसङ्गुः	वेतसोवृक्षोऽथप्रियङ्गुः
४४१	२०	आद्याश्च	आद्याश्व
४५१	१९	कहते	करते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६३	६	१२½ योजन चौडे	१२½ योजन लम्बे
४६३	१६	अष्टाह्निपा	अष्टांघ्रिपा
४६५	२४	तिस्रस्त्रिस्त्रस्तु	तिस्रस्तिस्रस्तु
५०१	१,१४	संशक्ता	संसक्ता
५०४	२१	भवातारी	भवावतारी
५१७	२५	राशि	विमानराशि
५२६	१२	योजनां	योजनानां
५३१	७	योजनां	योजनानां
५३५	५	आदिचार	आदि के चार
५५४	६	विक्रिया शक्ति में	विक्रिया शक्ति के
५६४	३	मध्येऽनोय	मध्येऽनये
५७४	१७	पूर्वोजित	पूर्वाजित
५७६	१८	विभूति अष्ट	विभूति सहित अष्ट
५८६	२२	किसो पुण्य रूप	पुण्यरूप किसी
६१३	१७	सते र्वे	ते सर्वे



मंगलाचरण



ॐ नमः सिद्धेभ्यः ! ॐ नमः सिद्धेभ्य ! ! ॐ नमः सिद्धेभ्यः ! ! !

ॐ कारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामद मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलकाः ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥

अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

श्री परमगुरवे नम., परम्पराचार्य गुरवे नम । सकलकलुषविध्वंसक, श्रेयसां परिवर्द्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिद शास्त्र "श्री सिद्धान्तसार दीपक" नामधेय, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तार श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तार श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषा वचनानुसारतामासाद्य पूज्य भट्टारक श्री सकलकीर्तिविरचितम् इद शास्त्र । वक्तारः श्रोतारश्च सावधानतया श्रृण्वन्तु ।

मङ्गल भगवान् वीरो, मङ्गल गौतमो गणी ।
मङ्गल कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम् ।
प्रधान सर्वधर्माणा, जैन जयतु शासनम् ॥





ॐ नमः सिद्धेभ्यः

भट्टारक सकलकीर्ति विरचित

सिद्धान्तसार दीपक

(अपर नाम-त्रिलोकसार दीपक)

सर्व प्रथम ग्रन्थ की आदि मे भट्टारक सकलकीर्त्याचार्य मङ्गलाचरण करते हुये कहते है कि—

श्रीमन्तं त्रिजगन्नाथं सर्वज्ञं सर्वदर्शिनम् ।
सर्वयोगीन्द्रवन्द्याङ्घ्रि वन्दे विश्वार्थदीपकम् ।।१।।

अर्थः—जो अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरङ्ग और अष्टप्रातिहार्यरूप वहिरंग लक्ष्मी से युक्त है, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है, समस्त योगिराजो के द्वारा जिनके चरण वन्दनीय है तथा जो विश्व के पदार्थो को प्रकाशित करने के लिये दीपक है ऐसे तीनलोक के नाथ जिनेन्द्रभगवान को मै नमस्कार करता हूँ ।।१।।

अब आदि जिनेन्द्र श्री ऋषभदेव का स्तवन करते है—

दिव्येन ध्वनिना येन कालादौ धर्मवृत्तये ।
लोकालोकपदार्थौघा विश्वतत्त्वादिभिः समम् ।।२।।

प्रोक्ता आर्यगणेशादीनग्रजं तं जिनेशिनाम्[1] ।
विश्वार्च्यं विश्वकर्तारं धर्मचक्राधिपं स्तुवे ।।३।।

अर्थः—जिन्होने युग के प्रारम्भ में (तृतीयकाल के अन्त में) धर्म की प्रवृत्ति चलाने के लिये दिव्यध्वनि के द्वारा आर्यगणधरादिकों को समस्त तत्वों के साथ लोक अलोक के पदार्थ समूहका

---

१ गणेशिनाम् अ०

उपदेश दिया था, जो अन्य तेईस तीर्थङ्करो के अग्रज थे, विश्व के द्वारा पूजनीय थे, कर्मभूमिकी व्यवस्था करने से विश्व के कर्ता और धर्म चक्रके अधिपति थे उन प्रथम तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेवकी स्तुति करता हूँ ।।२-३।।

आगे अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान की स्तुति करते है—

प्रीणयित्वा जगद्भव्यान् यो ज्ञानामृतवर्षणैः ।
विश्वमुद्योतयामास कृत्स्नाङ्गपूर्वभाषणैः ।।४।।

जगदानन्दकर्त्तारं धर्मामृतपयोधरम् ।
नौमि चन्द्रप्रभं तं च योगिज्योतिर्गणावृतम् ।।५।।

अर्थः—जिन्होने ज्ञानरूप अमृतकी वर्षासे जगत्के भव्यजीवोको सन्तुष्ट किया, सम्पूर्ण अङ्ग और पूर्व के व्याख्यानो द्वारा जगत् को प्रकाशित किया, जो सर्व प्रकार से जगत् मे आनन्दके कर्त्ता एव धर्मामृत को वरसाने के लिये मेघ स्वरूप है, तथा जो योगिराजरूप ज्योतिष्क देवो से सदा घिरे रहते है ऐसे उन चन्द्रप्रभ भगवान को मै नमस्कार करता हूँ ।।४-५।।

अब कामदेव-तीर्थंकर और चक्रवर्ती पद के धारक श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र की स्तुति करते है—

यो दिव्यध्वनिनोच्छिद्य मोहस्मराक्षतस्करान् ।
कषायशत्रुभिः सार्द्धं व्यधाच्छान्ति जगत्सताम् ।।६।।

त कामचक्रितीर्थेश-पदत्रितयभागिनम् ।
अनन्तर्द्धिगुणाम्भोधिं स्तौमि कर्मारिशान्तये ।।७।।

अर्थः—जिन्होने अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा जगत् के भव्यजीवोके कषायरूप शत्रुओके साथ साथ काम, मोह और इन्द्रियरूप चोरोका विनाश किया और उन्हे शान्ति प्रदान की, तथा जो कामदेव, चक्रवर्ती एवं तीर्थङ्कर इन तीन पदो के भोक्ता हुये है, जो अनन्तऋद्धियो एव गुणो के समुद्र है ऐसे उन सोलहवे तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ भगवान् को मै अपने ज्ञानावरणादि रूप कर्मशत्रुओ का विनाश करने के लिये नमस्कार करता हूँ ।।६-७।।

अब मोह तथा कामादि शत्रुओ को जीतने वाले श्री नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करते है—

मोहकामाक्षशत्रूणां भङ्क्त्वा बाल्येऽपि यो सुखम् ।
वैराग्यज्ञानमुत्पाद्य दुर्लभां संयमश्रियम् ।।८।।

गृहीत्वाहत्य कर्मारीन् शुक्लध्यानासिनाकरोत् ।
मुक्तिस्त्रीं स्ववशे नौमि नेमिनाथं तमूर्जितम् ।।६।।

अर्थ·—बाल्य अवस्था में ही जिन्होंने मोह, काम और इन्द्रिय रूप शत्रुओं का मुख तोड कर वैराग्य और ज्ञान के बल पर दुर्लभसंयमरूपी लक्ष्मीको धारण किया, शुक्लध्यानरूप तलवार से जिन्होंने कर्म शत्रुओका सर्वथा विनाश कर मुक्तिरूपी स्त्रीको अपने स्वाधीन बना लिया है उन विशिष्ट बलशाली नेमिनाथ भगवान् को मै नमस्कार करता हूँ ।।८–६।।

आगे सर्व विघ्नों को नष्ट करने वाले श्री पार्श्वजिनेन्द्र की स्तुति करते हैं—

जित्वा यो ध्यानयोगेन वैरिदेवकृतान् परान् ।
घोरोपसर्गजालांश्च महावाताम्बुवर्षणैः ।।१०।।

चकार केवलज्ञानं व्यक्तं विश्वाग्रदीपकम् ।
स विश्वविघ्नहन्ता मे पार्श्वोऽस्तु विघ्नहानये ।।११।।

अर्थ —जिन्होने अपने वेरी देव (कमठ के जीव) द्वारा प्रचण्डवायु और वर्षाजन्य किये गये भयङ्कर उपसर्गो को अपने ध्यान के प्रभाव से जीतकर तीनकालकी पर्यायों से युक्त समस्त द्रव्यों को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान को व्यक्त–प्राप्त किया है, जिनके प्रभाव से ससार के समस्त विघ्न नष्ट हो जाते है ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् मेरे विघ्नों की शान्ति करने वाले हो अर्थात् इस ग्रथके निर्माण (या टीका) करने में आने वाले मेरे सम्पूर्ण विघ्नो को नष्ट करे ।।१०–११।।

अब धर्मतीर्थ नायक श्री वर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करते है—

येनोदितो द्विधा धर्मो यतिश्रावकसज्जनैः ।
विश्वतत्त्वार्थसिद्धान्तैः सममद्यापि वर्तते ।।१२।।

स्थास्यत्यग्रे च कालान्तं स्वर्मुक्तिश्रीसुखप्रदम् ।
वर्धमानं तमीडेऽहं वर्धमानगुणार्णवम् ।।१३।।

अर्थ:—जिन वर्धमान जिनेन्द्र ने श्रावक और मुनिधर्म के भेद से दो प्रकार के धर्मों का प्रतिपादन किया था वह सात तत्त्व और नव पदार्थ रूप सिद्धान्त के साथ आज भी विद्यमान है और आगे भी इस काल के अन्त पर्यन्त विद्यमान रहेगा, ऐसे स्वर्ग और मोक्ष के सुख प्रदान करने वाले उन वर्धमान गुणशाली श्री वर्धमान प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ ।।१२–१३।।

आगे अजितनाथ आदि शेष तीर्थकरो की स्तुति करते है—

शेषा ये तीर्थकर्तारो महान्तो धर्मचक्रिणः ।
विश्वाच्र्या धर्मराजा वा त्रिजगद्धितकारिणः ।।१४।।

लोकोत्तमाः शरण्याश्च विश्वमाङ्गल्यदायिनः ।
तेषां पादाम्बुजान्[1] स्तौमि जगद्वन्द्यांस्तदृद्धये ।।१५।।

अर्थ —शेष जो और तीर्थंकर है वे भी अन्तरङ्ग वहिरङ्ग लक्ष्मी के अधिपति होने से महान् है, धर्मचक्र के प्रवर्तक है, विश्वपूज्य एव धर्म के सञ्चालक है, जो लोक मे उत्तम एव शरणभूत है, विश्व के पापहर्ता और सुख के दाता है ऐसे तीनलोको के हितकारक उन समस्त तीर्थंकरो के जगद्वन्दनीय चरणो की मैं उनकी ऋद्धि प्राप्ति के निमित्त स्तुति करता हूँ ।।१४–१५।।

अब विदेह क्षेत्र के विद्यमान सीमन्धर आदि तीर्थकरो का स्तवन करते है—

द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु ये श्रीसीमन्धरादयः[2] ।
गणैर्वृताजिनाधीशा मुक्तिमार्गं च निस्तुषम् ।।१६।।

प्रवर्तयन्ति सद्धर्मं सर्वाङ्गार्थादिभाषणैः ।
वर्तमानाः सुराच्र्यास्ते स्तुता मे सन्तु सिद्धये ।।१७।।

अर्थ —इस समय अढाई द्वीप मे गणधरादिको के द्वारा पूजनीय विद्यमान सीमन्धर आदि तीर्थंकर है जो कि निष्कलङ्क मुक्ति मार्ग का प्रवर्तन कर रहे है, सम्पूर्ण (१२) अंगो एवं सात तत्व नो पदार्थ आदि के उपदेशो द्वारा सद्धर्म का प्रचार कर रहे है तथा देव जिनकी पूजा करते रहते है, मै सिद्धि प्राप्ति की कामना से उनकी स्तुति करता हूँ ।।१६–१७।।

आगे तीन काल सम्वन्धी चौवीस तीर्थकरो की स्तुति करते है—

अन्ये तीर्थकृतो वा ये कालत्रितय सम्भवाः ।
ते मया संस्तुता वन्द्या मे प्रदद्युर्निजान् गुणान् ।।१८।।

अर्थः—इसी प्रकार त्रिकालवर्ती और भी जो तीर्थंकर हैं मैं उन सबकी वन्दना करता हूँ। स्तुति करता हूँ। वे मुझे अपने सम्यग्दर्शनादि सद्गुणो को प्रदान करे। अर्थात् जो गुण उनमे प्रगट हो चुके है वे गुण मेरे मे भी प्रगट हो जावे ऐसी भावना से मै उनकी वन्दना और स्तुति करता हूँ ।।१८।।

---

१. वन्दे अ०

२. सीमधर, युग्मधर, बाहु सुबाहु जम्बूद्वीपे । सुजात, स्वयप्रभ, वृपभानन, अनन्तवीर्य, सौरिप्रभ, सुविशाल, वज्रधर, चन्द्रानन, एव धातकी खण्डे । चन्द्रवाह, भुजगनाथ, ईश्वर., नेमिप्रभ, वीरसेन., महाभद्र, देवयशा, अतिवीर्य, पुष्करार्धद्वीपे–एव २० ।

आगे सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के स्वामी सिद्ध परमेष्ठी का स्तवन करते

अष्टकर्मारिकायादीन् ये महाध्यानयोगतः ।
त्यक्त्वानन्तसुखोपेतं त्रैलोक्यशिखरं ययुः ॥१९॥

ताननन्तान् महासिद्धां-स्त्रिजगन्नाथवन्दितान् ।
ध्येयानष्टगुणाधीशान् स्मरामि हृदि सिद्धये ॥२०॥

अर्थः—जो परमशुक्लध्यान के प्रभाव से अष्टकर्मरूपी शत्रुओं का विनाश और परमौदारिक शरीर का परित्याग कर अनन्त सुख सम्पन्न त्रैलोक्य शिखर पर जाकर विराजमान हो गये है, जिन्हे त्रिकालवर्ती समस्त तीर्थकर देव नमस्कार करते है एव जो ध्यान करने योग्य है, अष्टकर्मो के विनाशसे जिन्हे क्षायिक-सम्यक्त्वादि आठ गुण प्राप्त हो चुके है ऐसे उन अनन्त और महान् सिद्ध परमेष्ठियों का सिद्धि प्राप्ति की भावना से मै अपने हृदय मे ध्यान करता हूँ ॥१९-२०॥

अब छत्तीस गुणों के धारक आचार्य परमेष्ठी की स्तुति करते है—

पञ्चाचारान्जगत्ख्यातान् स्वमुक्तिश्रीवशीकरान् ।
स्वयं चरन्ति ये मुक्त्यै चारयन्ति च योगिनः ॥२१॥

[1]षड्त्रिंशत्सद्गुणैः पूर्णाः सूरयो विश्वबान्धवाः ।
तेषां पादाम्बुजान्नौमि शिरसाचारसिद्धये ॥२२॥

अर्थ·—मुक्ति प्राप्ति की कामना से जगत्प्रसिद्ध पाच प्रकार के (आचारों दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चरित्राचार, तप आचार, वीर्याचार) का जो स्वय पालन करते है और अन्य मुनिजनों को पालन करवाते है, जो स्वर्ग एव मोक्ष लक्ष्मी को अपने स्वाधीन करने वाले है तथा जो छत्तीस गुणों से परिपूर्ण है ऐसे विश्वबन्धु रूप उन आचार्यो के चरण कमलो की मै पाच आचारों की प्राप्ति के लिये मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥२१-२२॥

आगे अग और पूर्वो के ज्ञाता उपाध्याय परमेष्ठी की स्तुति करते है—

येऽङ्गपूर्वप्रकीर्णाब्धींस्तरन्ति शिवसिद्धये ।
स्वयं सद्बुद्धिपोतेन तारयन्ति च सन्मुनीन् ॥२३॥

रत्नत्रयतपोभूषा अज्ञानध्वान्तनाशिनः ।
तेषां [2]पाठकपूज्यानां स्तौमि क्रमाम्बुजांश्चिदे ॥२४॥

---

१. बारह तप छावासा पचाचारा तहेव दह धम्मो । गुत्तितिए संजुत्ता छत्तीस गुणा मुणेयव्वा ।
२. ग्यारह अग वियाणइ चउदह पुव्वाइ णिरवसेसाइ । पणवीस गुणजुत्ता णाणाए तस उवज्झाया .

अर्थ —मुक्ति प्राप्ति के उद्देश्य से अपनी सद्बुद्धि रूपी जहाज के द्वारा जो स्वय अंग, पूर्व और प्रकीर्णक रूप समुद्र को पार कर देते है तथा अन्य मुनिजनो को भी पार कराते है, जो रत्नत्रय से विभूषित और अज्ञानान्धकार के विनाशक है ऐसे उन पूज्य पाठको (उपाध्यायों) के चरणकमलों को मै ज्ञानप्राप्ति के निमित्त नमस्कार करता हूं—उनकी स्तुति करता हूं ।।२३–२४।।

अब आत्म साधना मे लीन साधु परमेष्ठी का स्तवन करते है—

त्रिकाले दुष्करं योगं वृष्टिशीतोष्णसंकुले ।
'साधयन्ति स्वसिद्धयै ये महान्तं भीरुभीतिदम् ।।२५।।

साधवस्ते मया वन्द्या महाघोरतपोन्विताः ।
वनादौ ध्यानसंलीना मे भवन्तु स्वशक्तये ।।२६।।

अर्थ —जो वर्षा, शीत और ग्रीष्म इन तीन ऋतुओ मे वर्षा, ठण्ड और गर्मी की बाधाओ को सहन करते हुए निर्जन वनादि मे स्थित होकर आत्मसिद्धि के उद्देश्य से दुष्कर योग की साधना करते है ऐसे उन घोर तपस्वी साधुओ को मै नमस्कार करता हूँ, वे मुझे आत्मशक्ति की प्राप्ति मे निमित्त-कारण बने ।।२५–२६।।

आगे चौबीस तीर्थंकरों के वृषभसेन आदि गणधरो की स्तुति करते है—

श्रीमद्वृषभसेनाद्या गौतमप्रमुखाश्च ये ।
समस्तर्द्धिचतुर्ज्ञान–भूषितागणनायकाः ।।२७।।

महाकविगुणैः पूर्णाः पूर्वांगरचने क्षमाः ।
मया वन्द्या स्तुता दद्युस्ते मे स्वगुणसन्मतीः ।।२८।।

अर्थ —वृषभसेन आदि और गौतम आदि समस्त गणधर जो कि सब प्रकार की ऋद्धियो एव चार ज्ञानो से विभूषित हुये है, महाकवियो के श्रेष्ठ गुण वाले एव अगो और पूर्वो–आगमो की रचना करने मे निपुण हुये है मै उनकी वन्दना एव स्तुति करता हूँ, वे मुझे आत्मगुणो की प्राप्ति मे कारणभूत सन्मति–उत्तम बुद्धि प्रदान करे ।।२७–२८।।

अब जिनमुखोद्भूत स्याद्वाद वाणी रूप सरस्वती का स्तवन करते है—

यस्याः प्रसादतो मेऽभूद् सद्बुद्धिः श्रुतभूषिता ।
रागातिगा पदार्थज्ञा सद्ग्रन्थकरणेक्षमा ।।२९।।

---

१. दह दसणस्स भेया पचेव य हुति णाणस्स । तेरह विहस्स चरण अडवीसा हुति साहूण ।।

सा मया त्रिजगद्भव्यैर्मान्या वन्द्या स्तुता सदा ।
शारदाऽर्हन्मुखोत्पन्नात्रास्तु विश्वार्थदर्शिनी ॥३०॥

अर्थ —जिसकी कृपा से मेरी बुद्धि श्रुतज्ञान से विभूषित हुई, रागद्वेष आदि से रहित हुई, पदार्थों के स्वरूप को जानने एवं समझने मे समर्थ हुई और निर्दोष ग्रन्थों की रचना करने में पटु हुई तथा जिसकी प्रतिष्ठा तीनों जगत् के भव्यजीवो ने की है ऐसी वह जिनेन्द्रमुख से निर्गत हुई भारती-शारदा मेरे द्वारा सदा वन्दनीय एवं स्तवनीय है। वह मुझे इस ग्रन्थ के निर्माण कार्य मे एव पूर्ण रूपसे अर्थ के प्रदर्शन करने में सहायक होवे ॥२९-३०॥

आगे रत्नत्रय से विभूषित कुन्दकुन्दादि आचार्यो का स्मरण करते है—

अन्ये ये गुरवो ज्येष्ठा दृक्-चिद्-वृत्तादिसद्गुणैः ।
सर्वसिद्धांतवेत्तारः कुंदकुंदादिसूरयः ॥३१॥

बाह्यान्तर्ग्रन्थनिर्मुक्ता युक्ताः सद्गुणभूतिभिः ।
कवयो वन्दनीयाश्च सतां मे सन्तु शुद्धये ॥३२॥

अर्थः—सर्व सिद्धात के ज्ञाता, बाह्य और अतरग परिग्रह से सर्वथा रहित, उत्तम-क्षमा आदि सद्गुणो से विभूषित, उत्तमोत्तम निर्दोष काव्यो की रचना करने मे समर्थ मति वाले एवं सज्जनों द्वारा वंदनीय ऐसे कुंदकुंदादि आचार्यवर्य तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आदि सद्गुणों से विभूषित अन्य गुरुजन मुझे आत्मशुद्धि मे निमित्त भूत बने ॥३१-३२॥

अब त्रिलोकवर्ती कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय तथा उनमे विद्यमान जिनप्रतिमाओ की स्तुति करते है—

त्रैलोक्यसौधमध्ये ये कृत्रिमाः श्रीजिनालयाः ।
अकृत्रिमा जिनेन्द्राणां प्रतिमाः कृत्रिमेतराः ॥३३॥

या हेम-रत्न-धात्वश्मा-दि मया यानि सन्ति च ।
पुण्यनिर्वाणक्षेत्राणि तांस्तास्तानि स्तुवेऽर्चये ॥३४॥

अर्थः—तीन लोक रूपी भवन के बीच में जो कृत्रिम अकृत्रिम श्री जिनालय है तथा उनमें जो हेम, रत्न, धातु एवं पाषाण आदि की बनी हुई कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिमाएँ है एवं जो पवित्र निर्वाण क्षेत्र है मै उन सबकी स्तुति करता हूँ और पूजा करता हूं ॥३३-३४॥

इस प्रकार मंगलाचरण कर ग्रंथकर्ता सिद्धान्तसार दीपक ग्रंथ के करने की प्रतिज्ञा करते हैं—

नत्वेति जिनतन्मूर्ति-सिद्धसिद्धान्तसद्गुरून् ।
विश्वविघ्नहरान् स्वेष्टान् जगन्मांगल्यकारिणः ॥३५॥

विघ्नहान्यै च मांगल्याप्त्यै स्वान्यहितसिद्धये ।
वक्ष्ये ग्रंथं जगन्नेत्रं सिद्धान्तसारदीपकम् ॥३६॥

अर्थ —इस ग्रथ निर्माण में आने वाले समस्त विघ्नों की शान्ति एवं जगत में मंगल प्राप्ति के उद्देश्य से मै जिनेन्द्र, जिनेन्द्रप्रतिमा सिद्ध, सिद्धान्त एव सद्गुरु इन सबको नमस्कार करके जगत् के नेत्र स्वरूप इस सिद्धातसार दीपक ग्रथ की स्वपर के उपकारार्थ रचना करूँगा ॥३५-३६॥

आगे जिनागम की महिमा प्रकट करते हैं—

श्रुतेन येन भव्यानां करस्थामलकोपमम् ।
त्रैलोक्यं निस्तुषं भाति ज्ञानं च वर्धतेतराम् ॥३७॥

संवेगादिगुणैः सार्धं रागोऽज्ञानं प्रणश्यति ।
तदागमं जगच्चक्षु-र्ज्ञेयमत्रोदितं बुधैः ॥३८॥

यतः प्रोक्तं सुसाधूनां जिनैर्विश्वार्थदर्शने ।
सदागममहाचक्षु-र्धर्मतत्त्वार्थदीपकम् ॥३९॥

तेनागमसुनेत्रेण विनान्धा इव देहिनः ।
सचक्षुषोऽपि जानन्ति न किञ्चिच्च हिताहितम् ॥४०॥

अर्थ.—इस सिद्धातसार ग्र थके सुनने-पढनेसे भव्यात्माओ को यह त्रिलोक हथेली में रखे हुये आवले की तरह प्रतीत होने लगता है और उनके तत्सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धि भी हो जाती है, तथा सवेगादिक गुणोकी प्राप्ति हो जाने से उनके अज्ञान एव रागद्वेषादिरूप विकारो का भी विनाश हो जाता है, इसी कारण बुद्धिमानो ने आगम को "जगत्चक्षु" कहा है और इसीलिये जिनेन्द्र देवने साधुओ को ऐसा उपदेश दिया है कि यदि तुम्हे सम्पूर्ण पदार्थों को जानना है तो सर्व प्रथम जीवादिक तत्त्वो, छह द्रव्यो और नौ पदार्थों को प्रकाशित करने वाले इस निर्दोष आगम रूप महाचक्षु का अवलम्बन करो, क्योकि यही एक अति उत्तम नेत्र है। जिन प्राणियो के पास यह आगम रूप चक्षु नही है वे उसके विना नेत्रो के रहते हुए भी, अन्धे के समान है, क्योकि इसके अभाव में हिताहित का थोडा सा भी ज्ञान नही हो सकता है ॥३७-४०॥

आगे ग्र थकर्ता अपनी लघुता प्रकट करते है—

यत्प्राक् पूर्वमुनीन्द्राद्यै–र्विश्वसिद्धान्तवेदिभिः ।
सद्बुद्धिभिर्जगत्सारं प्रोक्तं सिद्धान्तमञ्जसा ।।४१।।
तद्दुर्गमार्थगम्भीर–मागमं विश्वगोचरम् ।
कथं स्वल्पधिया वक्तुं मया शक्यं मनोहरम् ।।४२।।
अथवा प्राग्मुनीन्द्राणां प्रणामार्जितपुण्यतः ।
स्तोकं सार प्रवक्ष्यामि सिद्धान्तं विश्वसूचकम् ।।४३।।
निजशक्त्या मुदाभ्यस्य त्रैलोक्यसार दीपकम् ।
सुगमं बालबोधायान्यान् ग्रन्थानागमोद्भवान् ।।४४।।

अर्थः—समस्त सिद्धान्त शास्त्रो के ज्ञाता एव विशिष्ट ज्ञानी पूर्व मुनिराजों ने पहिले त्रिलोकसार नामक सिद्धान्तग्रन्थ की रचना की है सो वह ग्रन्थ अति दुर्गम अर्थवाला एवं गम्भीर है अतः मुझ अल्पज्ञ द्वारा वह जैसे का तैसा कैसे जाना जा सकता है—कहा जा सकता है ? परन्तु फिर भी पूर्व मुनिराजों को किये गये नमस्कार जन्य पुण्य के प्रभाव से (उसका) थोडा सा सार लेकर विश्वसूचक सिद्धान्त का कथन करूंगा। पहिले मै आगमों से जिनका सम्बन्ध है ऐसे उन ग्रंथो का अपनी शक्ति के अनुसार प्रफुल्लित मन से अभ्यास करूँगा बाद में जिस प्रकार बालजनों को सुगम पडे उस रूप से "त्रैलोक्यसारदीपक" का कथन करूँगा ।।४१-४४।।

अब लोक के स्वरूप को कहने की प्रतिज्ञा करते है—

तस्यादौ कीर्तयिष्यामि त्रैलोक्यस्थितिमूर्जिताम् ।
तदाकारं समासेन भव्याः ! शृणुत सिद्धये ।।४६।।

अर्थः—सर्व प्रथम अर्थात् सिद्धान्तसार दीपक की आदि में मै तीनों लोकों की वास्तविक स्थिति का और फिर संक्षेप से उनके आकारो का वर्णन करूँगा, अतः हे भव्यजनो ! सिद्धि के लिये तुम पहिले उसे सावधान होकर सुनो ।।४५।।

लोकाकाश और अलोकाकाश की स्थिति एव लक्षण कहते है :—

सर्वोऽनन्तप्रदेशोऽस्त्याकाशः सर्वज्ञगोचरः ।
नित्यस्तन्मध्यभागे स्याल्लोकाकाशस्त्रिधात्मकः ।।४६।।
[1]असंख्यातप्रदेशोऽसौ वातत्रितयवेष्टितः ।
उडुवद्भाति खे पूर्णः षड्द्रव्यैश्चेतनेतरैः ।।४७।।

---

१. 'सुहुमेव होइ कालो तत्तो सुहुमो य होइ खित्तो य ।
अगुल सेढी मित्तोउंसप्पिणी असंखिज्जा' "

अर्थ—सर्वज्ञदेव के ज्ञान का विषयभूत सम्पूर्ण आकाश अनन्तप्रदेशी और शाश्वत है। उसके मध्यभाग मे तीन प्रकार के भेदो से युक्त लोकाकाश है। जो असख्यात प्रदेशी, तीन वातवलयो से वेष्टित और चेतन अचेतन छह द्रव्यो से भरा हुआ है तथा अलोकाकाश मे नक्षत्र के समान शोभायमान होता है ॥४६-४७॥

जीवाश्च पुद्गला धर्माधर्मकालाः स्थिताः सदा ।
खे यावति विलोक्यन्ते लोकाकाशः स कथ्यते ॥४८॥
एतस्माच्च बहिर्भागे शाश्वतो द्रव्यवर्जितः ।
सर्वज्ञगोचरोऽनन्तोऽलोकाकाशो जिनैर्मतः ॥४९॥

अर्थ—आकाश के जितने भाग मे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्य शाश्वत स्थित रहते है उसे लोकाकाश कहते है, और इसके (लोकाकाश के) बाह्य भाग मे जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ पाच द्रव्यो से रहित, सर्वज्ञगोचर, शाश्वत और अनन्तविस्तार वाला अलोकाकाश है ॥४८-४९॥

लोक के विषय मे मतान्तरो का खण्डन करते है —

केनचिन्न कृतो लोको ब्रह्मादिनाथवा धृतः ।
न च विष्णवादिना जातु न हृतश्चेश्वरादिना ॥५०॥

अर्थ—यह लोक न किन्ही ब्रह्मा आदि के द्वारा बनाया हुआ है, न किन्ही विष्णु आदि के द्वारा धारण-रक्षण किया हुआ है और न किन्ही महादेव आदि के द्वारा विनाश को प्राप्त होता है ॥५०॥

विशेपार्थः—यह लोक अकृत्रिम है, अत ईश्वर आदि कोई इसके कर्ता नही है। अनादिनिधन है अत कोई सहारक नही है और स्वभाव निर्वृत्त होने से इसका कोई रक्षक भी नही है।

अब सात श्लोको द्वारा लोक का स्वरूप आदि कहते है —

किन्तु त्वचावृतो वृक्ष इव वातत्रयावृतः ।
अनादिनिधनो लोको नानाकारस्त्रिधात्मकः ॥५१॥

अर्थ—किन्तु यह लोक त्वचा (छाल) से वेष्टित वृक्ष के सदृश तीनवातवलयो से वेष्टित, अनादिनिधन अर्थात् आदि अन्त से रहित, अनेक सस्थानो (आकारो) से युक्त और ऊर्ध्व, मध्य एव अधोलोक के भेद से तीन भेद वाला है ॥५१॥

स्थापितस्याप्यधोभागे मुरजार्धस्य मस्तके ।
धृतेऽत्र मुरजे पूर्णे ह्याकारो यादृशो भवेत् ॥५२॥

तादृशाकारलोकोऽयं सार्धैकमुरजाकृतिः ।
किन्तु स्यान्मुरजो वृत्तो लोकः कोणचतुर्मयः ।।५३।।

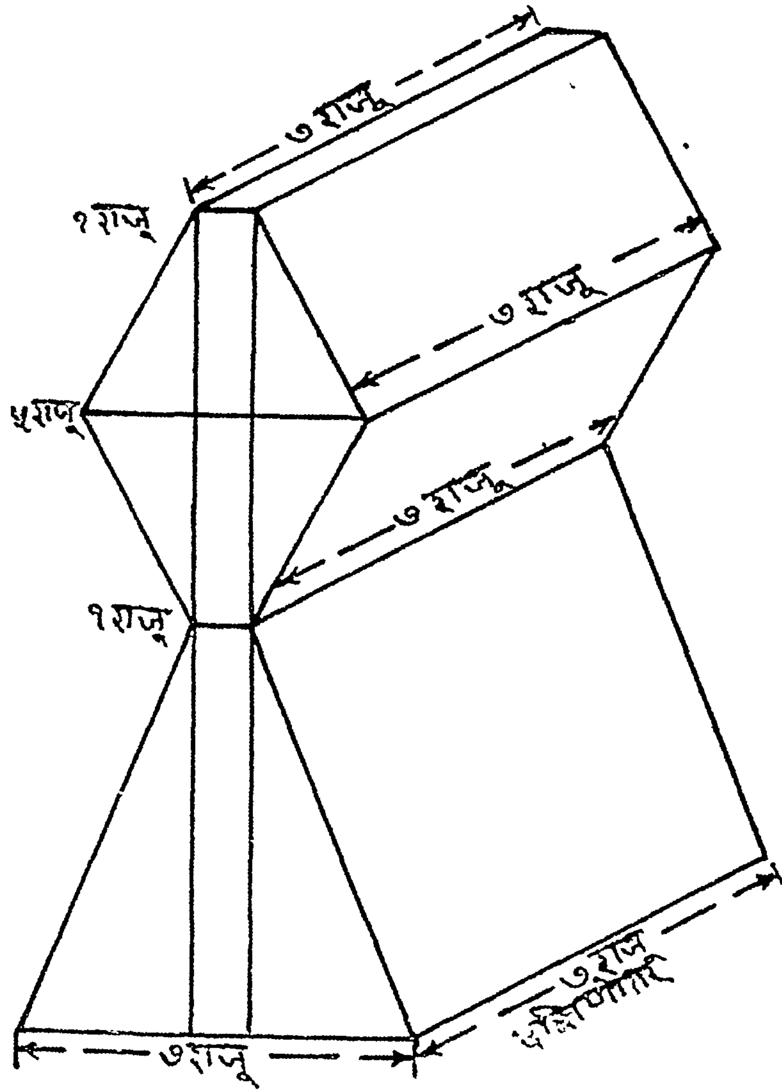
अर्थः—अर्धमुरजाकार अधोलोक के मस्तक पर पूर्ण मुरज को स्थापित करने से जैसा आकार वनता है वैसा ही अर्थात् डेढमुरज के आकार वाला यह लोक है। मुरज (मृदङ्ग) गोल होती है किन्तु लोक चार कोणों से युक्त है ।।५२-५३।।

विशेषार्थः—श्लोक में लोक का आकार डेढमृदङ्गाकार कहा है, उसका भाव यह है कि जैसे अर्धमुरज नीचे चौडी और ऊपर सकरी होती है, उसी प्रकार अधोलोक नीचे सातराजू चौड़ा और क्रम से घटता हुआ मध्य लोक में एक राजू चौड़ा रह गया है। इसके ऊपर एक मुरजाकार ऊर्ध्वलोक कहा गया है, इसका भाव भी यह है कि जैसे मुरज नीचे ऊपर सकरी और बीच में चौडी होती है उसी प्रकार ऊर्ध्वलोक भी नीचे मध्यलोक में एक राजू चौड़ा है इसके ऊपर क्रम से बढ़ता हुआ बीच में पांच राजू चौडा हो जाता है और पुनः क्रम से घटता हुआ अन्त में एक राजू चौड़ा रह जाता है।

यहां लोक को मृदङ्गाकार कहा है उसका अर्थ यह नही है कि लोक मृदङ्ग के सदृश बीच में पोला भी है, किन्तु वह तो ध्वजाओ के समूह सदृश भरा हुआ है। (त्रिलोकसार गा० ६) लोकाकाश मृदङ्ग के सदृश गोल नही है किन्तु नीचे सात राजू लम्बा और सात राजू चौड़ा है, तथा बीच में मध्यलोक पर पूर्व-पश्चिम एक राजू, उत्तर-दक्षिण सात राजू है, ऊर्ध्वलोक भी मध्य में पूर्व-पश्चिम पांच राजू, उत्तर-दक्षिण सात राजू तथा अन्त में एक राजू और सात राजू है।

मृदंगाकार कहने का यह भी भाव नही है कि लोक मृदंग के सदृश गोल है। यदि लोक को मृदंग समान गोल माना जाय तो उसकी आकृति निम्न प्रकार होगी तथा उसका सम्पूर्ण घनफल $\left(१०६\frac{२६१}{१३५६} \text{ घनराजू अधोलोक का } + ५८\frac{६७}{१३५६} \text{ घनराजू ऊर्ध्वलोक का} \right) = १६४\frac{३२८}{१३५६}$ घनराजू प्रमाण प्राप्त होगा जो ३४३ घनराजू के संख्यात भाग प्रमाण होता है। (ध.पु. ४ पृ. १२-२२)

जिनेन्द्र भगवान ने लोक का आकार चौकोर कहा है क्योंकि चौकोर लोक का घनफल ७ राजू (श्रेणी) के घनस्वरूप ३४३ घनराजू प्रमाण है। चतुरस्राकार लोक की आकृति :—



उपर्युक्त चित्रण मे अधोलोक के अन्त में चार कोण, मध्य लोक के समीप चार कोण, ब्रह्मलोक के समीप चार कोण और लोकान्त मे चार कोण बनते है।

[1]वा प्रसारितपादस्य कटीधृतकरस्य च ।
स्थितस्य पुरुषस्यैवात्राकारो यादृशो भवेत् ॥५४॥

लोकोऽयं तादृशाकारः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ।
अधोमध्योर्ध्वभेदेन त्रिविधः शाश्वतः स्थितः ॥५५॥

---

१. विगय सिरो कडिहत्थो ताडियजघोजुउं णरो उट्ठो ।
तेण बारेस ट्ठिउ त्तिविहो लोओ मुणेयव्वो ॥

अर्थः—अथवा पैर फैलाकर, कमर पर (दोनो) हाथ रखकर उत्तरमुख स्थित पुरुष का जैसा आकार बनता है वैसे ही आकार को धारण करने वाला यह लोक (षड्द्रव्यो की अपेक्षा) उत्पाद, व्यय और ध्रुव स्वभाव की त्रिविधता से युक्त, अथवा ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक के भेद की त्रिविधता से युक्त नित्य ही स्थित है ॥५४-५५॥

अधोवेत्रासनाकारो मध्येऽयं झल्लरीसमः ।
मृदङ्गसदृशश्चोर्ध्वे त्रिधेति तस्य संस्थितिः ॥५६॥

अर्थः—अधोलोक का आकार वेत्रासन सदृश, मध्यलोक का झल्लरी सदृश और ऊर्ध्वलोक का आकार मृदंग के सदृश है, इस प्रकार लोक की संस्थिति (आकार) तीन प्रकार कहा गया है ॥५६॥

आमूलादूर्ध्वपर्यन्तं लोकोऽयमुन्नतो मतः ।
विचित्राकार आप्तज्ञैः स्याच्चतुर्दशरज्जुभिः ॥५७॥

अर्थः—आप्त को जानने वालो के द्वारा नाना प्रकार के आकारो को धारण करने वाले इस लोक की नीचे से ऊर्ध्वलोक पर्यन्त की ऊँचाई चौदह राजू कही गई है ॥५७॥

अब सात श्लोको द्वारा लोक के भेद एवं उनका प्रमाण कहा जाता है :—

आमूलान्मध्यलोकान्तमाम्नाता योन्नतिर्जिनैः ।
सप्तरज्जुप्रमाणास्या धोलोकस्य जिनागमे ॥५८॥

अर्थः—जिनेन्द्र भगवानके द्वारा जिनागम मे आदि-मूल से मध्यलोक के अन्त तक की जो सात राजू प्रमाण आकाशोन्नति कही गई है वही अधोलोक की ऊँचाई है। अर्थात् अधोलोक की ऊँचाई सात राजू प्रमाण है ॥५८॥

मध्यलोकाद् बुधैर्ज्ञेया ब्रह्मकल्पान्तमुच्छ्रितिः ।
अस्योर्ध्वलोकभागस्य सार्धरज्जुत्रयप्रमा ॥५९॥

अर्थ.—विद्वानो के द्वारा मध्यलोक से ब्रह्मकल्प के अन्त तक की जो साढे तीन राजू प्रमाण ऊँचाई ज्ञात की गई है वही इस ऊर्ध्वलोक के एक भाग की ऊँचाई है। अर्थात् मध्यलोक से ब्रह्मलोक तक के ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई ३½ राजू प्रमाण है ॥५९॥

ब्रह्मलोकात्ततोऽप्यूर्ध्वं यावल्लोकाग्रमस्तकम् ।
उत्सेधोऽस्यागमे प्रोक्तः सार्धत्रिरज्जुसन्मितः ॥६०॥

अर्थ —ब्रह्मलोक से ऊपर लोक के मस्तक पर्यन्त जितना उत्सेध आगम में कहा है वह साढे तीन राजू प्रमाण है। अर्थात् ब्रह्मलोक से लोक के अन्त पर्यन्त ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई ३½ राजू प्रमाण है ॥६०॥

अस्यायामोऽस्ति सर्वत्र दक्षिणोत्तरभागयोः ।
सप्तरज्जुप्रमाणः किलामूलमस्तकान्तयोः ॥६१॥

अर्थ—इस लोक के दक्षिणोत्तर भाग का आदि से अन्त पर्यन्त अर्थात् नीचे से ऊपर तक का आयाम (दीर्घता) सर्वत्र सात राजू प्रमाण है। अर्थात् लोक दक्षिणोत्तर भाग में सर्वत्र सात राजू प्रमाण है। ६१॥

पूर्वापरेणलोकस्य ह्रासवृद्धीस्मृते बुधैः ।
मूलेऽस्य विस्तृति र्ज्ञेया सप्तरज्जुप्रमाखिला ॥६२॥

क्रमहान्या ततोऽप्यस्य मध्यलोके जिनागमे ।
रज्ज्वेको व्यास आम्नातो गणाधीशैर्गणान् प्रति ॥६३॥

ततश्च क्रमवृद्धयास्य ब्रह्मलोकेऽस्ति विस्तृतिः ।
पञ्चरज्जुप्रमामूर्ध्नि रज्ज्वेका क्रमहानितः ॥६४॥

अर्थ —ज्ञानियो के द्वारा लोक के पूर्व-पश्चिम भाग का विस्तार हानिवृद्धि रूप माना गया है। लोक के मूल मे पूर्व पश्चिम विस्तार सात राजू प्रमाण है। इसके वाद क्रम से हानि होते होते मध्यलोक पर पूर्वपश्चिम विस्तार जिनागम मे जिनेन्द्रो के द्वारा मुनिसमूह के लिए एक राजू प्रमाण कहा है। मध्यलोक के ऊपर क्रम से वृद्धि होते होते ब्रह्मलोक पर लोक का विस्तार पाच राजू और वहा से क्रमश हानि होते होते लोक के मस्तक का विस्तार एक राजू प्रमाण है ॥६२, ६३, ६४॥

अब चार श्लोको द्वारा अधोलोक का क्षेत्रफल एव घनफल कहते है :—

अधोभागेऽस्य लोकस्य व्यासेन सप्तरज्जवः ।
रज्ज्वेकामध्यभागे च तयोः पिण्डीकृते सति ॥६५॥

जायन्ते रज्जवोऽप्यष्टौ तासामर्धो कृते पुनः ।
चतस्रो रज्जवः स्युस्ता गुणिताः सप्तरज्जुभिः ॥६६॥

अष्टाविंशतिसंख्याश्चोत्पद्यन्ते रज्जवः पुनः ।
अष्टाविंशतिसंख्यास्ता वर्गिताः सप्तरज्जुभिः ॥६७॥

शतैकं षण्णवत्यग्रं भवन्ति रज्जवोऽखिलाः ।
पिण्डीकृता घनाकारेणाधोलोकस्य निश्चितम् ॥६८॥

अर्थः—इस लोक के अधोभाग मे व्यास सात राजू और मध्यभाग (मध्यलोक) पर व्यास एक राजू प्रमाण है। इन दोनो को जोड देने से (७+१) आठ राजू होता है और इसे आधा करने पर (८÷२) चार राजू प्राप्त होते है। (अधोलोक से मध्यलोक तक की ऊँचाई सात राजू है अतः) इन चार को सात से गुणित करने पर (४×७)=२८ वर्गराजू अधोलोक का क्षेत्रफल उत्पन्न हो जाता है और इस २८ वर्ग राजू क्षेत्रफल को (दक्षिणोत्तर मोटाई) सात राजू से गुणित कर देने पर सम्पूर्ण अधोलोक का घनफल (२८×७)=१९६ घनराजू प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् अधोलोक का क्षेत्रफल २८ वर्गराजू और घनफल १९६ घनराजू प्रमाण है ॥६५–६८॥

ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल एवं घनफल आठ श्लोको द्वारा कहते है :—

ब्रह्मकल्पेऽस्य विस्तारः पञ्चरज्जुप्रमाणकः ।
मध्यभागे च रज्ज्वेकस्तयोर्मेलापके कृते ॥६९॥
षड्रज्जवो भवेयुश्च तासामर्धी कृते सति ।
गृह्यन्ते रज्जवस्तिस्रः सप्तभिर्गुणिताश्च ताः ॥७०॥
एकविंशतिसंख्याता जायन्ते रज्जवः पुनः ।
ताः सर्वा वर्गिताः सार्धत्रिकैर्भवन्ति पिण्डिताः ॥७१॥
रज्जवोऽप्यूर्ध्वभागेऽस्य ब्रह्मलोकान्तमञ्जसा ।
घनाकारेण सर्वत्र सार्धत्रिसप्तति प्रमाः ॥७२॥

अर्थः—इस लोक का विस्तार ब्रह्मकल्प पर पाच राजू और मध्यलोक पर एक राजू प्रमित है। इन दोनो को जोड देने से (५+१)=६ राजू होते है और उन्हे आधा करने पर (६÷२)=३ राजू प्राप्त होते है। मध्यलोक से ब्रह्मलोक की ऊँचाई ३$\frac{१}{२}$ राजू है अत तीन को ३$\frac{१}{२}$ राजू ऊँचाई से गुणित करने पर ($\frac{७}{२}$×$\frac{३}{१}$)=$\frac{२१}{२}$ वर्गराजू-मध्यलोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त अर्थात् अर्ध ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ। इसके उत्तरदक्षिण सात राजू मोटाई से गुणित कर देने पर ब्रह्मलोक पर्यन्त ऊर्ध्वलोक का घनफल ($\frac{२१}{२}$×$\frac{७}{१}$)=$\frac{१४७}{२}$ अर्थात् ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू प्रमाण प्राप्त होता है ॥६९–७२॥

नोट—श्लोक मे तीन को पहिले सात से गुणित करके २१ प्राप्त किये गये है, फिर ३$\frac{१}{२}$ राजू ऊंचाई से गुणित किया गया है, इस प्रक्रिया से घनफल तो प्राप्त हो जाता है किन्तु क्षेत्रफल प्राप्त नही होता क्योकि क्षेत्रफल निकालने का नियम है "मुखभूमिजोगदलेपदहदे" अर्थात् मुख और भूमि के योगफल को आधा करके ऊँचाई से गुणित करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसी नियम को

दृष्टि मे रखते हुए उपर्युक्त श्लोको का अर्थ किया गया है और आगे श्लोक न० ७४, ७५ का भी अर्थ किया जायगा ।

व्यासोऽस्य ब्रह्मकल्पान्ते रज्जुपञ्चप्रमः क्रमात् ।
हीयमानश्च रज्ज्वेको मस्तकाग्रे तयोः प्रति ।।७३।।
पिण्डीकृते प्रजायन्ते षड्रज्जवोऽखिलास्ततः ।
द्विभागीसंकृते तासां तिस्रः स्यू रज्जवश्च ताः ।।७४।।
सप्तभिर्गुणिता जायन्ते ह्येकविंश रज्जवः ।
पुनस्ता वर्गिताः सार्धत्रिभिः सार्धत्रिसप्ततिः ।।७५।।
पिण्डीकृता भवन्त्यूर्ध्वलोकस्य रज्जवोऽखिलाः ।
घनाकारेण लोकाग्रपर्यन्तं ब्रह्मकल्पतः ।।७६।।

अर्थः—ब्रह्मकल्प पर लोक का व्यास पाच राजू प्रमाण है, और क्रम से हीन होते होते लोकके अग्रभाग का व्यास एक राजू प्रमित रह जाता है । इन दोनो को जोड देने से (५ + १)=६ राजू होते है । इन्हे आधा करने पर (६ ÷ २)=३ राजू प्राप्त होते है । इन तीन को ३$\frac{१}{२}$ ऊँचाई से गुणित करने पर अर्ध ऊर्ध्वलोकका क्षेत्रफल (३ × $\frac{७}{२}$)=$\frac{२१}{२}$ अर्थात् १०$\frac{१}{२}$ वर्ग राजू प्राप्त होता है । इसको सात राजू मोटाई से गुणित कर देने पर ($\frac{२१}{२}$ × $\frac{७}{१}$)=$\frac{१४७}{२}$ अर्थात् ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू प्रमाण घनफल अर्ध ऊर्ध्वलोक का अर्थात् ब्रह्मलोक से लोकाग्र पर्यन्त का जानना चाहिये । लोकके दोनो अर्ध ऊर्ध्व भागो का घनफल मिला देनेसे सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल (७३$\frac{१}{२}$+७३$\frac{१}{२}$)=१४७ घनराजू प्रमाण होता है ।।७३-७६।।

अब सम्पूर्ण लोक का घनफल कहते है —

इति लोकत्रयस्यास्य सघनाकारेण रज्जवः ।
शतत्रयत्रिचत्वारिंशदग्रप्रमिता मताः ।।७७।।

अर्थ—इस प्रकार तीनो लोको का सम्पूर्ण घनफल (अधोलोक का १९६ घनराजू और ऊर्ध्वलोक का १४७ घनराजू, १९६+१४७)=३४३ घनराजू प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् सम्पूर्ण लोकाकाश के यदि एक राजू लम्बे, एक राजू चौडे और एक राजू मोटे टुकड़े किये जायँ तो सम्पूर्ण टुकडो की सख्या ३४३ प्राप्त होगी ।।७७।।

अब दो श्लोको द्वारा लोक की परिधि का निरूपण किया जाता है :—

लोकस्य परिधिर्ज्ञेया पूर्वपश्चिमभागयोः ।
रज्जूनां साधिकैकोन चत्वारिंशत्प्रमाखिलाः ।।७८।।

अर्थः— लोक की पूर्व पश्चिम भाग की सम्पूर्ण परिधि कुछ अधिक ३९ राजू प्रमाण जानना चाहिये ॥७८॥

विशेषार्थः—लोक को पूर्व पश्चिम दिशा से देखने पर उसमे त्रस नाली के द्वारा बनाये गये दो त्रिभुज अधोलोक में और चार त्रिभुज ऊर्ध्व लोक में दिखाई देते है, जिनके कारणों की परिधि क्रमशः $१५\frac{७}{३०}$ राजू और $१६\frac{४}{३२}$ राजू है। लोक के ऊपर की चौड़ाई १ राजू और नीचे की चौडाई ७ राजू प्रमाण है, इस प्रकार पूर्व पश्चिम अपेक्षा लोक की सम्पूर्ण परिधि ($१५\frac{७}{३०}+१६\frac{४}{३२}+१+७$) = $३९\frac{४३}{१२०}$ राजू प्रमाण है। यह परिधि साधिक ३९ राजू कैसे है? इसका उत्तर ज्ञात करने के लिये त्रिलोकसार की गा० १२२ दृष्टव्य है।

ख्यातास्य परिधिर्दक्षैर्दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः ।
मूलाग्रयोश्च रज्जुद्विचत्वारिंशन्मिता स्मृता ॥७९॥

अर्थः—लोक की दक्षिणोत्तर दिशा में दोनो पार्श्वभागो की तथा मूल और अग्रभाग की सम्पूर्ण परिधि दक्ष -ज्ञानी जनो के द्वारा ४२ राजू प्रमाण कही गई है ॥७९॥

विशेषार्थ .—लोक की ऊँचाई चौदह राजू प्रमाण है और दक्षिणोत्तर लोक सर्वत्र सात राजू चौडा है, अत लोक के ऊपर की ७ राजू चौडाई, नीचे की सात राजू चौड़ाई और दोनों पार्श्व भागों की १४, १४ राजू ऊँचाई जोड देने से (७+७+१४+१४)=४२ राजू दक्षिणोत्तर लोक की परिधि होती है। इसका चित्रण त्रिलोकसार गा० १२१ मे देखना चाहिये।

लोक को परिवेष्टित करने वाले तीन वातवलयो का निरूपण ग्यारह श्लोको द्वारा करते है—

घनोदधिर्घनाख्यश्च तनुवात इमे त्रयः ।
सर्वतो लोकमावेष्ट्य नित्यास्तिष्ठन्ति वायवः ॥८०॥
आद्यो गोमूत्रवर्णोयं मुद्गवर्णो द्वितीयकः ।
पञ्चवर्णस्तृतीयः स्याद् बहिर्वलयमारुतः ॥८१॥

अर्थः—सम्पूर्ण लोक को परिवेष्टित करते हुये घनोदधि, घन और तनु ये तीन पवन नित्य ही स्थित रहते है। इनमे आद्य अर्थात् घनोदधि वातवलय का वर्ण गोमूत्र के सदृश, दूसरे घनवातवलय का वर्ण मूँग (अन्न) के सदृश और तीसरे तनुवातवलय का वर्ण पञ्चवर्णो के सदृश है।८०,८१॥

विशेषार्थः—जिस प्रकार वृक्ष छाल से वेष्टित रहता है उसी प्रकार यह लोक सर्वत्र तीन तहों या परतों के सदृश तीन पवनो से वेष्टित है। इसकी प्रथम तह लोक को स्पर्शित करने वाली एवं गोमूत्र वर्ण वाली घनोदधि नामक पवन की है। दूसरी तह मध्य मे है, जिसका नाम घनवात है और वर्ण मूँग के सदृश है। तीसरी तह बाह्य में है जो पंच वर्ण वाली है और तनुवात के नाम से विख्यात है।

लोकस्याधस्तले भागे महातमःप्रभाक्षितेः ।
पार्श्वयोरेकरज्ज्वन्तमन्तरेष्वपि सप्तसु ॥८२॥
सप्तनारक पृथ्वीनां स्थूलत्व मरुतां मतम् ।
प्रत्येकं योजनाना च सहस्रविंशतिप्रमम् ॥८३॥
दण्डाकारा[1] भवन्त्येते लोकाधोभूतलान्तरे ।
दण्डाकारा घनीभूता लोकान्ते वायवस्त्रयः ॥८४॥

अर्थ.— लोकाकाश के अधोभाग मे, सातो नरक से नीचे नीचे अर्थात् दोनो पार्श्व भागो मे नीचे से ऊपर की ओर एक राजू की ऊँचाई (निगोद स्थान) पर्यन्त लोक के अभ्यन्तर भाग में सातो नरक पृथिवियो के नीचे सातो नरको की जो सात पृथिवियां है (और आठवीं ईषत्प्राग्भार पृथ्वी के नीचे) उनमे दण्डाकार (रज्जु आकार) प्रत्येक पवन बीस बीस हजार योजन की मोटाई को लिये हुए है । इस प्रकार से तीनो पवन अधोलोक मे सातो पृथिवियो के नीचे, लोक के अन्त मे अर्थात् लोक के ऊपर प्राग्भार पृथ्वी के नीचे अर्थात् आठो पृथिवियो के नीचे सघन और दण्ड के आकार को धारण करने वाली है ॥ ८२–८४ ॥

महातमः प्रभापार्श्वे वातानां स्थौल्यमञ्जसा ।
सप्तैव पञ्चचत्वारि प्रत्येकं योजनान्यपि ॥८५॥
नृलोके क्रमहान्यात्र पञ्चचत्वारि त्रीणि च ।
स्थौल्यं वातत्रयाणां हि योजनानि पृथक् पृथक् ॥८६॥
वाहुल्यं ब्रह्मलोकान्ते वायूनां योजनानि च ।
सप्तपञ्चैव चत्वारि प्रत्येकं क्रमवृद्धितः ॥८७॥
क्रमहान्योर्ध्वलोकान्तेऽमीषां स्थूलत्वमञ्जसा ।
प्रत्येकं पञ्च चत्वारि त्रीणि सद्योजनानि च ॥८८॥

अर्थ — सप्तम नरक के दोनो पार्श्व भागो मे घनोदधिवातवलय सात योजन, घनवातवलय पाच योजन और तनुवातवलय चार योजन मोटाई वाले है । इसके ऊपर क्रम से घटते हुये मनुष्य (मध्य) लोक के समीप तीनो वातवलय क्रम से पृथक् पृथक् पाच योजन चार योजन और तीन योजन वाहुल्य वाले प्राप्त होते है, तथा यहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रमश बढते हुये सात योजन, पाच योजन और चार योजन मोटाई वाले हो जाते है और ब्रह्मलोक से क्रमानुसार हीन होते हुये तीनो पवन लोक के अन्त मे अर्थात् ऊर्ध्वलोक के निकट क्रमश पाच योजन, चार योजन और तीन योजन वाहुल्य वाले हो जाते हैं ॥ ८५–८८ ॥

---

१ एष श्लोक अ० ज० न० प्रतिषु नास्ति ।

घनोदधौ च लोकाग्रे स्थौल्यं क्रोशद्वयं मतम् ।
क्रोशैकं घनवाते च तनुवाते धनूंषि वै ॥८९॥

पञ्चसप्तति युक्तानि शतपञ्चदशेत्ययम् ।
सर्वतोप्यावृतो लोकः सर्वो वातत्रयैर्भवेत् ॥९०॥

अर्थः— लोक के अग्रभाग पर घनोदधिवातवलय की मोटाई २ कोश, घनवातवलय की एक कोश और तनुवातवलय की मोटाई १५७५ धनुष प्रमाण है। इस प्रकार यह लोक सभी ओर से तीन वातवलयों के द्वारा वेष्टित है ॥८९–९०॥

अब चार श्लोको द्वारा त्रसनाली के स्वरूप आदि का विवेचन करते हैः—

उदूखलस्य मध्याधोभागे छिद्रे कृते यथा ।
वंशादिनालिका क्षिप्ता चतुष्कोणा तथास्य च ॥९१॥

अर्थः—ऊखली के मध्य बीचों बीच अधोभाग पर्यन्त छिद्र करके उसमे वास आदि की चतुष्कोण नाली डाल देने पर जैसा आकार बनता है वैसा ही आकार लोक नाली का है ॥९१॥

लोकस्य मध्यभागेऽस्ति त्रसनाडी त्रसान्विता ।
चतुर्दशमहारज्जूत्सेधा रज्ज्वेक विस्तृता ॥९२॥

त्रसनाड्या बहिर्भागे त्रसाः सन्ति न जातुचित् ।
समुद्घातौ विना केवलिमारणान्तिकात्मनौ ॥९३॥

अर्थः—लोक के मध्यभाग में त्रस जीवों से समन्वित, चौदह राजू ऊँची और एक राजू चौड़ी त्रसनाडी (नाली) है। इस त्रस नाडी के बाह्य भाग मे केवलि समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात (और उपपाद) के बिना कभी भी अर्थात् अन्य किसी भी अवस्थाओं में त्रस जीव नही पाये जाते ॥९२,९३॥

विशेषार्थः—लोक ३४३ घनराजू प्रमाण है। उसमें त्रसनाडी का घनफल (१४ × १ × १) १४ घनराजू प्रमाण है और इतने ही क्षेत्र मे त्रसजीवोंका सद्भाव पाया जाता है, शेष (३४३–१४ घनराजू) = ३२९ घनराजू क्षेत्र त्रसनाडी से बाह्य क्षेत्र कहलाता है। इस बाह्य क्षेत्र मे मात्र स्थावर जीव ही पाये जाते है, त्रस नही। अर्थात् त्रसपर्याय समन्वित जीव नही पाये जाते किन्तु उपपाद, मारणान्तिक और केवलिसमुद्घात वाले त्रस जीवों के आत्मप्रदेशों का सत्त्व वहाँ अवश्य पाया जाता है।

जीव का अपनी पूर्व पर्याय को छोडने पर नवीन आयु के प्रथम समय को उपपाद कहते है। पर्याय के अन्त में मरण के निकट होने पर बद्धायु के अनुसार जहाँ पर उत्पन्न होना है, वहाँ के क्षेत्र

को स्पर्श करने के लिए जो आत्मप्रदेशो का शरीर से बाहर निकलना है वह मारणान्तिक समुद्घात है। १३ वे गुणस्थान के अन्त मे आयु कर्म के अतिरिक्त शेष तीन अघातिया कर्मों की स्थिति क्षय के लिए केवली के (दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण आकार से) आत्म प्रदेशो का शरीर से बाहर निकलना केवली समुद्घात है।

इति बहुविधरूपां लोकनाडीं समग्रां,
जिनगणधरदेवैः प्रोदितामङ्गपूर्वे ।
शिवगतिसुखकामाश्चावबुद्धयाश्रयध्वं,
सकलचरणयोगैर्लोकमूर्ध्वस्थमोक्षम् ।।९४।।

अर्थ —हे मोक्ष सुख के इच्छुक ! श्रेष्ठ गणधरदेवो के द्वारा अङ्गपूर्व मे कही गई अनेक स्वरूप वाली सम्पूर्ण लोकनाडी को जान कर सकल चारित्र के योग द्वारा लोक के अग्रभाग मे स्थित मोक्ष का आश्रय करो ।।९४।।

अधिकार गत अन्तिम मङ्गलाचरण —

तन्निर्वाणमनन्तसौख्यजनकं ये सिद्धनाथा श्रिता–
स्तीर्थेशाश्च तपोवरैः सुचरणैर्गन्तुं द्रुतं प्रोद्यताः ।
पञ्चाचार परायणाश्च गणिनो ये पाठकाः साधव–
स्तेषां पादसरोरुहान् स्वशिरसा तद्भूतये नौम्यहम् ।।९५।।

अर्थ —जो सिद्ध परमेष्ठी और तीर्थङ्कर देव अनन्त सुख को उत्पन्न करने वाले निर्वाण का आश्रय ले चुके है, तथा उत्कट तप और सम्यक्चारित्र के द्वारा पञ्चाचार परायण आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय एव साधुगण शीघ्र ही मोक्ष मे जाने के लिये उद्यमवान् हो रहे है ऐसे उन पञ्चपरमेष्ठियो के चरण कमलो को मै मोक्ष की विभूति के लिये शिर से नमस्कार करता हूँ ।।९५।।

इस प्रकार श्री सकलकीर्ति भट्टारक द्वारा विरचित महाग्रन्थ सिद्धान्तसारदीपक में लोकनाडी का वर्णन करने वाला प्रथम अधिकार सम्पूर्ण हुआ।



दूसरा अधिकार

अधिकार की आदि में मङ्गलाचरण करते है :—

लोकनाडिगतान् पञ्च महतः परमेष्ठिनः ।
स्वर्गमुक्तिकरान् वन्दे सतां श्वभ्रनिवारकान् ।।१।।

अर्थ —लोकनाडी में स्थित, स्वर्ग और मुक्ति सुखों को करने-देने वाले तथा सज्जन पुरुषों का नरकगति से निवारण करने वाले परमोत्कृष्ट पञ्चपरमेष्ठियों को मै नमस्कार करता हूँ ।।१।।

वक्ष्यमाण अधोलोक के वर्णन का हेतु और प्रतिज्ञा :—

अथ वैराग्यसंसिद्धयै पाप्यङ्गिभीतिहेतवे ।
अधोलोकं प्रवक्ष्येऽहं लोकस्य श्वभ्रवर्णनैः ।।२।।

अर्थ —वैराग्य की प्राप्ति के लिए और लोकके पापी जीवों को भय उत्पन्न कराने के लिए अब मै नरको के वर्णन द्वारा अधोलोक को कहूँगा । अर्थात् नरको के दुःखों को सुनकर-पढकर वैराग्य की प्राप्ति हो और पापों से भय हो इसलिये नरको के कथन द्वारा आचार्य अधोलोक का विस्तृत वर्णन करेगे ।

अधोलोक में सातो पृथिवियो की स्थिति एवं नाम तीन श्लोकों द्वारा कहते है —

महामेरोरधोभागे रज्ज्वैकैकान्तरस्थिताः ।
स्पृशन्त्यः सर्वलोकान्तं सप्तेमाः श्वभ्रभूमयः ।।३।।
आद्या रत्नप्रभाशर्कराप्रभाबालुकाप्रभा ।
पङ्कधूमप्रभाभिख्ये तमोमहातमःप्रभे ।।४।।
इतिप्रभोत्थनामानि पृथ्वीनां श्रीजिना विदुः ।
तथा पर्यायनामानीमानि ज्ञेयानि कोविदैः ।।५।।

अर्थ —सुदर्शनमेरु के अधोभाग मे सात नरक भूमियाँ लोक के अन्त को स्पर्श करती हुई एक एक राजू के अन्तराल से स्थित है। इनमे १ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ बालुका प्रभा, ४ पङ्कप्रभा ५ धूमप्रभा, ६ तम प्रभा और ७ महातम प्रभा नाम वाली पृथिवियाँ है, अपनी अपनी प्रभा से

उत्पन्न होने वाले ये पृथिवियो के नाम जिनेन्द्र भगवान ने कहे है। तथा विद्वानो के द्वारा जाने गये इन्ही पृथिवियो के पर्यायवाची नाम आगे कहे जावेगे ॥ ३-५ ॥

विशेपार्थ —अधोभाग मे स्थित सात नरक भूमियो मे से रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा ये दोनो मेरु के नीचे एक राजू मे है और शेप पाँच भूमियाँ एक एक राजू के अन्तर से है, इस प्रकार छह राजू मे सात नरक है और इनके नीचे एक राजू मे मात्र पचस्थावर स्थान है। ये रत्नप्रभा आदि सातो पृथिवियाँ सार्थक नाम वालो है क्योकि इनमे क्रम से रत्न, शक्कर, रेत, कीचड, धुँआ, अन्धकार और महा अन्धकार के सदृश प्रभा पाई जाती है।

अब सातो नरको के नाम कहते हैं —

घर्मावंशाह्वयामेघाञ्जनारिष्टाभिधाततः ।
मघवीमाघवी चैता अधोऽधः सप्तभूमयः ॥६॥

अर्थ —(१) घर्मा, (२) वशा, (३) मेघा, (४) अञ्जना, (५) अरिष्टा, (६) मघवी और (७) माघवी ये सात पृथ्वियाँ नीचे नीचे अर्थात् क्रमश एक के नीचे एक है ॥६॥

सातवे नरक के नीचे निगोद स्थान का कथन करते हैं —

सप्तानां श्वभ्रपृथ्वीनामधो भागेऽस्ति केवलम् ।
एक रज्जुप्रम क्षेत्रं पृथिवीरहितं भृतम् ॥७॥

नानाभेदैर्निकोतादिपञ्चस्थावरदेहिभिः ।
रत्नप्रभाधरायाश्च त्रयो भेदा इमे स्मृताः ॥८॥

अर्थ —सातो नरक पृथ्वियो के नीचे एक राजू प्रमाण क्षेत्र नरक पृथ्वी से रहित है, उसमे केवल पञ्चस्थावरो के शरीर को धारण करने वाले नाना प्रकार के निगोद आदि स्थावर जीव रहते है। रत्नप्रभा पृथिवी के आगे कहे जाने वाले तीन भेद जानना चाहिये ॥ ७-८ ॥

चार श्लोको द्वारा प्रथम पृथिवी के भेद प्रभेदो को कहते है —

खरभागोऽथ पङ्कांशस्ततोऽप्यब्बहुलांशकः ।
खरभागे भवन्त्यस्याः इमे षोडशभूमयः ॥६॥

चित्रावज्राथ वैडूर्या लोहिता च मसारिका ।
गोमेदा हि प्रवालाख्याः ज्योतिरसाञ्जनाह्वया ॥१०॥

अञ्जनाभाभिधा मूला स्फटिकाख्याथ चन्दना ।
सपर्वावकुलाशैला खरे पृथ्व्यो हि षोडश ।।११।।
एकैकस्याः[1] सुबाहुल्यं सहस्रगुणयोजनम् ।
भूमेश्चैव तदात्मासौ खरभागो मतो बुधैः ।।१२।।

अर्थ --प्रथम रत्नप्रभा पृथिवी खरभाग, पङ्कभाग और अब्बहुल भाग के भेद से तीन प्रकार की है, जिसमे खरभाग में नीचे कही जाने वाली सोलह भूमि पडत है। १ चित्रा, २ वज्रा, ३ वैडूर्या, ४ लोहिता, ५ मसारिका, ६ गोमेदा, ७ प्रवाला, ८ ज्योतिरसा, ९ अञ्जना, १० अञ्जनाभा, ११ मूला, १२ स्फटिका, १३ चन्दना, १४ सपर्वा, १५ वकुला और १६ शैला ये खर भाग में सोलह पृथ्वियो के पडत है। इनमे प्रत्येक पृथिवी (पडत) का बाहुल्य (मोटाई) एक एक हजार योजन प्रमाण है। इन सोलह पृथिवी पडतात्मक भूमि ही विद्वानों के द्वारा खरभाग माना गया है। अर्थात् खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है जिसमे एक एक हजार योजन मोटी सोलह पृथ्वियाँ (पडत) है अत सोलह पृथिवी (पडत) आत्मक ही खर भाग है ऐसा कहा गया है ।।९,१२।।

नोट —त्रि० सा० गा० १४८ मे ११ वी पृथिवी का नाम अङ्का और १४ वी का सर्वार्थका कहा गया है।

खर आदि भागो मे रहने वाले देवों का विवेचन दो श्लोकों द्वारा करते है —

खरभागे वसन्त्यत्र सप्तधा व्यन्तरामराः ।
राक्षसानां कुलं मुक्त्वा नवभेदाश्च भावनाः ।।१३।।
असुराणां कुलं त्यक्त्वा पङ्कभागेऽसुरव्रजाः ।
राक्षसाश्च वसन्त्येव तृतीयांशे च नारकाः ।।१४।।

अर्थ —राक्षस कुलको छोडकर शेष सात प्रकार के व्यन्तर देव और असुरकुमार देवों को छोड कर शेष नौ प्रकार के भवनवासी देव खरभाग मे व राक्षस और असुरकुमार पङ्क भाग में रहते है, तथा तृतीय अब्बहुल भाग मे नारकी जीवो का वास है ।।१३,१४।।

विशेषार्थ --व्यन्तर देवों के आठ कुल है-किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। इनमे से राक्षस कुल को छोड़कर शेष सात कुलो के व्यन्तरवासी देव खरभाग में रहते हैं। इसीप्रकार भवनवासी देवों के दश कुल है—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार। इनमें से असुरकुमार के कुलको छोड़कर शेष कुलों के भवनवासी देव भी खर भागमें रहते है, तथा राक्षस और असुरकुमार (द्वितीय) पङ्क भाग मे रहते है और तृतीय अब्बहुल भागमें प्रथम नरकके नारकी रहते हैं।

---

१ एष श्लोक अ० प्रतौ नास्ति ।

प्रथम पृथिवी के तीन भागो की मोटाई तीन श्लोको द्वारा कहते है:—

रत्नप्रभात्रिपृथिवीनामिदं स्थौल्यं त्रिधा मतम् ।
योजनानि खरांशस्य स्युः सहस्राणि षोडश ॥१५॥
योजनानां सहस्राणि ह्यशीतिश्चतुरुत्तरा ।
स्थूलत्वं पङ्कभागस्य तृतीयांशस्य निश्चितम् ॥१६॥
अशीतिसहस्राणि त्रिभूमीनां पिण्डितानि च ।
लक्षाशीतिसहस्राणि सर्वाणि योजनान्यपि ॥१७॥

अर्थ —इस (कहे जाने वाले) रत्नप्रभा पृथिवी के तीनों भेदो का बाहुल्य भी तीन प्रकार का माना गया है। यथा-प्रथम खरभाग की मोटाई १६००० योजन, द्वितीय पङ्क भागकी मोटाई ८४००० योजन और तृतीय अ०बहुल भाग की मोटाई ८०००० योजन की है। इन तीनो पृथिवयो के बाहुल्य को जोडने से (१६०००+८४०००+८००००)=१८०००० एक लाख अस्सीहजार योजन प्राप्त होते है, अत रत्नप्रभा पृथिवी की मोटाई १८०००० मानी गई है ॥१५-१७॥

अब शेष छह पृथिवियो का निरूपण चार श्लोको द्वारा किया जाता है —

शेषषट् श्वभ्रभूमीनां बाहुल्यं कथ्यतेऽधुना ।
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि स्थूलत्वं शर्कराक्षितेः ॥१८॥
अष्टाविंशतिमानानि सहस्रयोजनानि च ।
बाहुल्यं वालुका पृथ्व्याः सन्ति पङ्कप्रभावनेः ॥१९॥
योजनानां चतुर्विंशति सहस्राणि शाश्वतम् ।
स्थौल्यं धूमक्षितेर्विंशति सहस्राणि सम्मतम् ॥२०॥
तमःप्रभावनेः स्थौल्यं सहस्राणि च षोडश ।
योजनाष्टसहस्राणि महातमः प्रभाक्षितेः ॥२१॥

अर्थ —अब अवशेष छह नरक पृथिवियो का वाहुल्य (मोटाई) कहते है। शर्करा पृथिवी की मोटाई ३२००० योजन, वालुका प्रभा पृथिवी की २८००० योजन, पङ्कप्रभा की २४००० योजन, धूमप्रभा पृथिवी की २०००० योजन, तम प्रभा पृथिवी की १६००० योजन और महातम पृथिवी की मोटाई ८००० योजन है ॥१८-२१॥

दो श्लोको द्वारा उन सातो पृथ्वियो में स्थित पटलो के स्थान का निरूपण करते है —

धर्मादिषड्धराणां प्रत्येकमूर्ध्वेऽप्यधस्तले ॥
सहस्रयोजनान्मुक्त्वा भवेयुः पटलानि च ।२२॥

पटलं मध्यभागेऽस्ति महातमः प्रभाक्षितेः ।
इदानीं सप्तभूमीनां विलसंख्योच्यते क्रमात् ॥२३॥

अर्थः—प्रथम पृथिवी के अब्बहुल भाग में और वशा आदि शेष पाच अर्थात् घर्मा आदि छह पृथ्वियों में ऊपर नीचे एक एक हजार योजन की मोटाई छोड कर पटलों की स्थिति है और सातवी महातम. प्रभा पृथिवी के मध्य भाग में एक ही पटल है। अब सातो पृथ्वियों के बिलों की संख्या क्रम से कहते है ॥२२-२३॥

प्रथमादि पृथ्वियों में बिलों का निरूपण:—

आदिमे नरके त्रिंशल्लक्षाणि स्युर्बिलानि च ।
पञ्चविंशतिलक्षाणि द्वितीये दुष्कराण्यपि ॥२४॥

तृतीये नरके पञ्चदशलक्ष बिलानि च ।
चतुर्थे दशलक्षाणि लक्षत्रयाणि पञ्चमे ॥२५॥

षष्ठे बिलानि पञ्चोनैक लक्षप्रमितानि च ।
सप्तमे नरके सन्ति बिलानि पञ्च केवलम् ॥२६॥

पिण्डीकृतानि सर्वाणि बिलानि सप्तभूमिषु ।
लक्षाश्चतुरशीतिः स्युर्विश्वदुःखाकराण्यपि ॥२७॥

अर्थ—प्रथम नरक में ३०००००० (तीस लाख) बिल है। दूसरे नरक में २५००००० (पच्चीस लाख), तीसरे में १५००००० (पन्द्रह लाख), चौथे में १०००००० (दश लाख), पांचवें में ३००००० (तीन लाख), छठवें में पांच कम एक लाख (९९९९५) और सातवें नरक में मात्र ५ (पांच) बिल है। सम्पूर्ण दुःखों के आकार (खानि) स्वरूप इन सातों नरकों के सम्पूर्ण बिलों को जोड़ देने से योगफल (३० लाख+२५ लाख+१५ लाख+१० लाख+३ लाख+ ९९९९५+५)=८४००००० (चौरासी लाख) प्रमाण होता है। अर्थात् सातों नरको में ८४ लाख बिल हैं ॥२४-२७॥

अब ग्यारह श्लोकों द्वारा सातों नरक पटलों की संख्या एवं उनके नामों का दिग्दर्शन कराते हैं:—

आदिमे नरके सन्ति प्रतराणि त्रयोदश ।
एकादश द्वितीये तृतीये नव चतुर्थके ॥२८॥
सप्ताथ पञ्चमे पञ्च षष्ठे त्रीणि च सप्तमे ।
एकमेकोन पञ्चाशत्सर्वाणि प्रतराणि च ॥२९॥

आद्यः सीमन्तकाभिख्यो नारकाख्यश्च रौरवः ।
भ्रान्तोभ्रान्तौ हि सम्भ्रांतोऽथासम्भ्रान्तश्च सप्तमः ॥३०॥
विभ्रान्ताख्योऽष्टमो ज्ञेयस्त्रसस्त्रसित संज्ञकः ।
वक्रान्तः स्यादवक्रान्तो विक्रान्तः प्रथमावनौ ॥३१॥
ततकस्तवको नाम्ना वनको मनकाह्वयः ।
खटकः खटिकाभिख्यो जिह्वाख्यो जिह्विकाभिधः ॥३२॥
लोलो लोलुपसंज्ञोऽथ तनलोलुपनामकः ।
अमी एकादश प्रोक्ता वंशायां प्रतरा जिनैः ॥३३॥
तप्ताख्यस्तपिताभिख्यस्तपनस्तपनाह्वयः ।
निदाघसंज्ञकोऽथोज्वलितः प्रज्वलिताख्यकः ॥३४॥
ततः संज्वलितः संप्रज्वलितो वालुकाक्षितौ ।
आरस्ताराभिधो मारश्चञ्चाख्यस्तपनीयकः ॥३५॥
घटः संघटनामैते चतुर्थ्यां प्रतरा मताः ।
तमो भ्रमः शङ्खाख्योऽन्धस्तमिश्रः पञ्चमीक्षितौ ॥३६॥
हिमाख्यो मर्दलो लल्लकः षष्ठ्यां प्रतरास्त्रयः ।
अवधिस्थाननामैको महातमःप्रभावनौ ॥३७॥
सर्वेष्वेकोनपञ्चाशत्प्रतरेषु भवन्ति च ।
तत्समा इन्द्रकाः श्रेणीबद्धाः प्रकीर्णका बिलाः ॥३८॥

अर्थ —प्रथम नरक मे तेरह (१३) पटल है। दूसरे मे ग्यारह (११), तीसरे मे नव (९), चौथे मे सात (७), पाचवे मे पाच (५), छठवे मे तीन और सातवे नरक मे एक पटल है। इस प्रकार सातो नरको के सम्पूर्ण पटल ४९ है। पटलो के नाम—सीमन्त, २ नारक, ३ रौरव, ४ भ्रान्त, ५ उद्भ्रान्त, ६ सम्भ्रान्त, ७ असम्भ्रान्त, ८ विभ्रान्त, ९ त्रस, १० त्रसित, ११ वक्रान्त, १२ अवक्रान्त और १३ विक्रात, ये तेरह पटल प्रथम पृथिवी अर्थात् अब्बहुल भाग मे है। १ ततक, २ स्तवक, ३ वनक, ४ मनक, ५ खटक, ६ खटिका, ७ जिह्वा, ८ जिह्विका, ९ लोलो, १० लोलुप और ११ तनलोलुप नाम के ये ११ पटल द्वितीय शर्करा प्रभा पृथ्वी मे है। १ तप्त, २ तपित, ३ तपन, ४ तापन, ५ निदाघ, ६ उज्ज्वलित, ७ प्रज्वलित, ८ सञ्ज्वलित और ९ सम्प्रज्वलित नाम के ९ पटल तृतीय वालुका प्रभा पृथिवी मे है। १ आर, २ तार, ३ मार, ४ चञ्चा, ५ तपनीय, ६ घट और ७ सङ्घाटन नाम वाले ये सात पटल चतुर्थ पङ्कप्रभा पृथिवी मे है। १ तम, २ भ्रम, ३ शङ्ख, ४ अन्ध

और ५ तमिश्र नामक ये पांच पटल पञ्चम धूमप्रभा पृथिवी में हैं। (१) हिम, (२) मर्दक और (३) लल्लक ये तीन पटल तमः प्रभा पृथिवी में है तथा अवधिस्थान नाम का एक पटल सप्तम महातमः पृथिवी में है। ये सम्पूर्ण पटल ४९ है और इनसे सम्बन्धित इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिल भी होते है ॥२८–३८॥

अब सात श्लोकों द्वारा सातों नरकों के इन्द्रादिक बिलों का निरूपण करते है:—

सर्वेषां प्रतराणां स्युर्मध्यभागेषु चेन्द्रकाः ।
श्रेणीबद्धाः क्रमात् पङ्क्त्याकारेणैव दिगष्टसु ॥३९॥
श्रेणीबद्धाश्चतुर्दिक्षु प्रथमे पटले पृथक् ।
भवन्त्येकोनपञ्चाशत् प्रत्येकं चतुरस्रकाः ॥४०॥
अस्यादि पटलस्यापि चतुर्विदिक्षुसंस्थिताः ।
श्रेणीबद्धाश्च सन्त्यष्टचत्वारिंशत् पृथक् पृथक् ॥४१॥
ततः क्रमाद् द्वितीयादि पटलानां दिगष्टसु ।
अष्टावैकैक रूपेण श्रेणीबद्धाः पृथक् पृथक् ॥४२॥
हीयन्ते तावदेवान्तिमे यावत् पटले स्फुटम् ।
श्रेणीबद्धा हि चत्वारस्तिष्ठन्ति तुर्यदिग्गताः ॥४३॥
सन्ति प्रकीर्णकाः सर्वे श्रेणीबद्धान्तराष्टसु ।
इन्द्रकश्रेणिसम्बन्धहीनाः पृथक् पृथक् स्थिताः ॥४४॥
प्रकीर्णका न सप्तम्यां श्रेणीबद्धा महत्तराः ।
स्युश्चतुर्दिक्षु चत्वारो मध्ये चैकेन्द्रको भवेत् ॥४५॥

अर्थ:—सम्पूर्ण पटलों के मध्यभाग में एक एक इन्द्रक बिल होता है, और इस इन्द्रक की आठों दिशाओं में क्रम से पंक्ति के आकार श्रेणीबद्ध बिल होते है। प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल (सीमन्त नामक इन्द्रक बिल) की चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में चतुष्कोण आकार को धारण करने वाले ४९, ४९ श्रेणीबद्ध बिल है और इसी पटल के इसी इन्द्रक की चारों विदिशाओं में से प्रत्येक विदिशा में पृथक् पृथक् ४८, ४८ श्रेणीबद्ध बिल है। इसी प्रकार क्रम से द्वितीयादि पटलों की आठों दिशा विदिशाओं मे से प्रत्येक दिशा विदिशा में ये एक एक कम होते हुए एक पटल में एक साथ आठ श्रेणीबद्ध घट जाते हैं, और ये इस प्रकार तब तक घटते जाते है जब तक कि अवधिस्थान नाम के अन्तिम इन्द्रक की चारो दिशाओं में चार श्रेणीबद्ध बिल रह जाते है। [छह नरकों में] श्रेणीबद्ध बिलों के आठ अन्तरालो मे इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलो के सम्बन्ध से रहित

प्रकीर्णक बिल पृथक् पृथक् अर्थात् पुष्पो की भाँति यत्र तत्र स्थित है। सातवे नरक मे चार दिशाओ मे चार महान श्रेणीवद्ध बिल है और इनके मध्य मे एक इन्द्रक है। यहाँ प्रकीर्णक नही होते ॥३९-४५॥

अथ रत्नप्रभादिसप्तपृथ्वीनाम् विस्तारेण पृथक् पृथक् श्रेणीबद्धाना सख्या प्रोच्यते :—

रत्नप्रभाया प्रथमे पटले श्रेणीबद्धा अष्टाशीत्यधिक त्रिशतानि। द्वितीये अशीत्यधिक त्रिशतानि। तृतीये द्वासप्तत्यधिक त्रिशतानि। चतुर्थे चतु षष्टयधिक त्रिशतानि। पञ्चमे षट्पञ्चाशदधिक त्रिशतानि। षष्ठे अष्टचत्वारिशदधिक त्रिशतानि। सप्तमे चत्वारिशदधिक त्रिशतानि। अष्टमे द्वात्रिशदधिक त्रिशतानि। नवमे चतुर्विशत्यधिक त्रिशतानि। दशमे षोडशाधिक त्रिशतानि। एकादशे अष्टाधिक त्रिशतानि। द्वादशे त्रिशतानि। त्रयोदशे पटले श्रेणीबद्धा द्विनवत्यधिकशतद्वय प्रमाणा भवन्ति। शर्करा प्रभेति—शर्कराया प्रथमे पटले श्रेणीबद्धा चतुरशीत्यधिक शतद्वय। द्वितीये षट्सप्तत्यधिकशतद्वय। तृतीये अष्टषष्टयधिकशतद्वय। चतुर्थे षष्टयधिकशतद्वय। पञ्चमे द्विपञ्चाशदधिकशतद्वय। षष्ठे चतुश्चत्वारिशदधिकशतद्वय। सप्तमे षट्त्रिशदधिकशतद्वयं। अष्टमे अष्टाविशत्यधिकशतद्वय। नवमे विंशत्यधिकशतद्वयं। दशमे द्वादशाधिकशतद्वयं। एकादशे प्रतरे श्रेणीबद्धा. चतुरधिक द्विशतप्रमा भवेयु। वालुकाप्रभेति—वालुकाया आदिमे प्रतरे श्रेणीबद्धा षण्णवत्यधिकशत प्रमा। द्वितीये अष्टाशीत्यधिकशतप्रमा। तृतीये अशीत्यधिक शतप्रमा। चतुर्थे द्वासप्तत्यधिकशतप्रमा। षञ्चमे चतु षष्टयधिकशतप्रमा। षष्ठे षट्पञ्चाशदधिकशतप्रमा। सप्तमे अष्टचत्वारिशदधिक शतप्रमाः। अष्टमे चत्वारिशदधिकशतप्रमा.। नवमे प्रतरे सर्वे च श्रेणीबद्धा द्वात्रिशदधिकशतप्रमाणा विज्ञेया। पङ्कप्रभेति—पङ्कप्रभाया प्रथमे पटले श्रेणीबद्ध विलानि चतुर्विशत्यधिकशतसख्यानि। द्वितीये षोडशाधिकशतसख्यानि। तृतीये अष्टाधिकशतसख्यानि। चतुर्थे शतसख्यानि। पञ्चमे द्विनवतिसख्यानि। षष्ठे चतुरशीति सख्यानि। सप्तमे श्रेणीबद्धविलानि षट्सप्तति सख्यानि स्यु। धूमप्रभेति—धूमप्रभाया आद्ये पटले अष्टषष्टि श्रेणीबद्धाः। द्वितीये षष्टिश्च। तृतीये द्विपञ्चाशत्। चतुर्थे चतुश्चत्वारिशत्। पञ्चमे षड्त्रिशत् श्रेणीवद्धा ज्ञातव्या। तम प्रभेति—तम प्रभाया श्रेणीवद्धविलानि प्रथमे प्रतरे अष्टाविशतिः। द्वितीये विशतिः। तृतीये द्वादश। महातम.प्रभेति—महातम. प्रभाया पटले चत्वार श्रेणीवद्धा. स्यु।

अर्थ —उपर्युक्त गद्य मे सातो नरको मे स्थित ४९ पटलो मे से प्रत्येक पटल के श्रेणीवद्ध विलो की संख्या पृथक् पृथक् दर्शाई गई है, जिसका अर्थ निम्नाकित तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

रत्नादि सातों पृथ्वियों के प्रत्येक पटलों में श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या :—

रत्नप्रभा		शर्कराप्रभा		वालुकाप्रभा		पङ्कप्रभा		धूमप्रभा		तम: प्रभा		महातम: प्रभा	
पटल संख्या	श्रेणी की सख्या	पटल संख्या	श्रेणी. की सख्या	पटल संख्या	श्रेणी की सख्या	पटल सख्या	श्रेणी की संख्या	पटल सख्या	श्रेणी. की सख्या	पटल संख्या	श्रेणी. की सख्या	पटल संख्या	श्रेणी. की संख्या
१	३८८	१	२८४	१	१९६	१	१२४	१	६८	१	२८	१	४
२	३८०	२	२७६	२	१८८	२	११६	२	६०	२	२०		४
३	३७२	३	२६८	३	१८०	३	१०८	३	५२	३	१२		
४	३६४	४	२६०	४	१७२	४	१००	४	४४		६०		
५	३५६	५	२५२	५	१६४	५	९२	५	३६				
६	३४८	६	२४४	६	१५६	६	८४		२६०				
७	३४०	७	२३६	७	१४८	७	७६						
८	३३२	८	२२८	८	१४०		७००						
९	३२४	९	२२०	९	१३२								
१०	३१६	१०	२१२		१४७६								
११	३०८	११	२०४										
१२	३००		२६८४										
१३	२९२												
	४४२०												

अथ सप्तमहीनां प्रत्येक इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकानां गणना कथ्यते :—

घर्मायामिन्द्रकास्त्रयोदश, श्रेणीबद्धा विंशत्यधिक चतुश्चत्वारिंशच्छतानि, प्रकीर्णका: एकोन त्रिंशल्लक्ष–पञ्चनवतिसहस्र–पञ्चशत–सप्तषष्टिसंख्याश्च भवन्ति। वशायां एकादशेन्द्रका। चतुर शीत्यधिकषड्विंशतिशतप्रमा: श्रेणीबद्धा:। चतुर्विंशतिलक्ष–सप्तनवतिसहस्र–त्रिशतपञ्चोत्तर प्रमाणा: प्रकीर्णका:। मेघायां नवेन्द्रका:। षट्सप्तत्यधिकचतुर्दशशतसंख्या: श्रेणीबद्धा:। चतुर्दशलक्षाष्टनवति सहस्रपञ्चशतपञ्चदशप्रमा:। प्रकीर्णका। अञ्जनाया इन्द्रका: सप्त। सप्तशत श्रेणीबद्धा। नवलक्ष–

नवनवतिसहस्र–द्विशत–त्रिनवति प्रमाणा. प्रकीर्णका. । अरिष्टायां इन्द्रकाः पञ्च । श्रेणीबद्धाः षष्ट्यधिकद्विशतप्रमाः प्रकीर्णका द्विलक्ष–नवनवतिसहस्र–सप्तशत–पञ्चत्रिंशत्यसंख्या· स्युः। मघव्यां इन्द्रकाः त्रयः। श्रेणीबद्धाः षष्टिश्च । प्रकीर्णका नवनवतिसहस्रनवशतद्वात्रिंशत्प्रमाः भवन्ति । माघव्यां इन्द्रक. एकोऽस्ति ।

अर्थ.—सातों पृथिवियो में से प्रत्येक पृथ्वी के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलो की पृथक् पृथक् सख्या :—

क्रमाक	नाम पृथिवी	इन्द्रक बिल	श्रेणीवद्ध विल	प्रकीर्णक बिल
१	घर्मा	१३	४४२०	२९९५५६७
२	वशा	११	२६८४	२४९७३०५
३	मेघा	९	१४७६	१४९८५१५
४	अञ्जना	७	७००	९९९२९३
५	अरिष्टा	५	२६०	२९९७३५
६	मघवी	३	६०	९९९३२
७	माघवी	१	४	०

अब आठ श्लोकों द्वारा सम्पूर्ण विलों के व्यास का विवेचन करते है .—

बिलानि सप्तभूमीनां चतुर्भागाश्रितानि च ।
असंख्ययोजन व्यासानि प्रोक्तानि जिनागमे ।।४६।।
तेषां पञ्चमभागस्थ–बिलानि दुष्कराणि च ।
संख्ययोजनविस्ताराणि बीभत्साशुभान्यपि ।।४७।।

अर्थः—जिनागम मे सातो नरकों मे से अपने अपने नरक बिलो की संख्या का ⅘ भाग असंख्यात योजन विस्तार वाले विलो का प्रमाण कहा गया है, और उन्ही अपने सम्पूर्ण बिलों का ⅕ भाग वीभत्स, अशुभ और दु खोत्पादक संख्यात योजन विस्तार वाले विलों का प्रमाण कहा है ।।४६-४७।।

विशेपार्थ —यथा—प्रथम पृथ्वी के कुल विलो की संख्या तीस लाख है, इसका ⅘ भाग अर्थात् ३००००००×⅘=२४००००० (चौवीस लाख) विल असंख्यात योजन विस्तार वाले है और

३०००००० × $\frac{१}{५}$ = ६००००० (छह लाख) बिल संख्यात योजन व्यास वाले हैं। (२४ लाख + ६ लाख = ३० लाख)। इसी प्रकार द्वितीयादि पृथ्वियों में भी जानना चाहिए।

योजनानां च संख्यातविस्तारा इन्द्रका मताः।
श्रेणीबद्धा असंख्यातविस्तृता दुःखभाजनाः ॥४८॥
केचित् प्रकीर्णका ज्ञेयाः संख्ययोजनविस्तराः।
असंख्ययोजनव्यासाः केचित्पुष्पप्रकीर्णकाः ॥४९॥

अर्थः—दुःख के भाजनस्वरूप सम्पूर्ण इन्द्रक बिल संख्यात योजन विस्तार वाले और सम्पूर्ण श्रेणीबद्ध असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। पुष्पों के सदृश यत्र तत्र स्थित प्रकीर्णक बिलों में कुछ प्रकीर्णक बिल संख्यात योजन विस्तार वाले और कुछ असख्यात योजन विस्तार वाले जानना चाहिये ॥४८-४९॥

योजनैः पञ्चचत्वारिंशल्लक्षैर्विस्तरान्वितः।
सीमन्तकेन्द्रकश्चाद्यः प्रथमे पटलेमतः ॥५०॥
वृत्ताकारोऽन्तिमेश्वभ्रेऽवधिस्थानेन्द्रकोऽन्तिमः।
लक्षैकयोजनव्यासो निष्कृष्टो दुःखपूरितः ॥५१॥

अर्थः—प्रथम पृथिवी के प्रथम पटल में स्थित सीमन्त नामक प्रथम इन्द्रक बिल (गोलाकार) ४५००००० (४५ लाख) योजन विस्तार वाला है और अन्तिम (सप्तम) नरक का गोलाकार, निकृष्ट और जीवो को दुःखों से पूरित करने वाला अवधिस्थान नाम का अन्तिम इन्द्रक बिल १००००० योजन विस्तार वाला है ॥५०-५१॥

सहस्रैकानवत्याषट्शतैः षट्षष्टि संयुतैः।
योजनानां द्वित्रिभागाभ्यां शेषाः सर्वेन्द्रका मताः ॥५२॥
व्यासेन क्रमतो हीयमानाश्च पटलं प्रति।
जम्बूद्वीपप्रमो यावत् स्यादेकश्चरमेन्द्रकः ॥५३॥

अर्थः—$\frac{२}{३}$ भाग से सयुक्त ९१६६६ योजन व्यास प्रत्येक पटल के प्रत्येक इन्द्रक के व्यास में से तब तक हीन करते जाना चाहिये जब तक कि अन्तिम इन्द्रक का व्यास जम्बूद्वीप अर्थात् १००००० योजन का प्राप्त होता है ॥५२-५३॥

विशेषार्थः—प्रथम इन्द्रक बिल के विस्तार मे से अन्तिम इन्द्रक का विस्तार घटा कर अवशेष मे एक कम इन्द्रको के प्रमाण का भाग देने पर हानि चय का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—प्रथम

इन्द्रक का विस्तार मनुष्य क्षेत्र सदृश (४५००००० योजन) है और अन्तिम इन्द्रक का विस्तार जम्बूद्वीप सदृश (एक लाख योजन) है। इन दोनों का शोधन (घटाने) करने पर (४५०००००—१०००००)=४४००००० योजन अवशेष रहते हैं, इनको एक कम (४९—१=४८) इन्द्रकों के प्रमाण से भाजित करने पर (४४०००००—४८)=९१६६६$\frac{२}{३}$ योजन प्रत्येक इन्द्रक का हानि चय होता है। इस हानि चय को उत्तरोत्तर घटाते हुए भिन्न भिन्न इन्द्रक बिलो का विस्तार प्राप्त कर लेना चाहिए।

अथ सप्तनरकेषु सख्यातासख्यातयोजनविस्तृतबिलाना पृथग् रूपेण सख्या प्रोच्यते :—

रत्नप्रभाया बिलानि षट्लक्षाणि सख्येययोजन विस्ताराणि, चतुर्विंशतिलक्षाणि असख्येय-योजनविस्ताराणि । शर्करापृथिव्या पञ्चलक्षाणि सख्या व्यासानि, विंशतिलक्षाणि असख्यात विस्ताराणि च। बालुकाया त्रिलक्षाणि सख्ययोजन विस्ताराणि, द्वादशलक्षाणि असंख्ययोजन-विस्ताराणि। पङ्कप्रभाया द्विलक्षसख्य व्यासानि, अष्टलक्षाण्यसख्यातयोजन व्यासानि। धूमप्रभाया षष्टि सहस्राणि सख्य विस्तृतबिलानि, द्विलक्षचत्वारिंशत्सहस्राणि असख्य विस्तृतबिलानि। तमःप्रभाया एकोनविंशतिसहस्रनवशतनवनवति प्रमाणानि संख्य व्यासबिलानि, एकोनाशीतिसहस्रनवशत षण्णवति प्रमाणि असख्यव्यासबिलानि। महातमः प्रभाया एक बिलं संख्येय योजनविस्तृतं, चत्वारि बिलानि असख्ययोजन विस्तृतानि। एव सर्वाण्येकत्रीकृतानि बिलानि सप्तभूमिषु षोडशलक्षशीति सहस्राणि संख्यात विस्ताराणि भवन्ति, सप्तषष्टिलक्षविंशतिसहस्राणि—असख्यातविस्तराणि भवन्ति च।

विशेष।—उपर्युक्त गद्य भाग मे प्रत्येक नरक के सख्यात योजन विस्तार वाले और असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों की सख्या भिन्न भिन्न दर्शाई गई है, जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नाङ्कित तालिका मे निहित किया जा रहा है। इन संख्यात असख्यात योजन विस्तार वाले बिलो की सख्या प्राप्त करने का विधान इसी अध्याय के ४६-४७ श्लोक मे बतलाया गया है।

सातों नरकों के संख्यात असंख्यात योजन विस्तार वाले विलों का भिन्न भिन्न दिग्दर्शनः—

क्रमाक	पृथिवी—नाम	संख्यात यो० वि० वाले विलो की सख्या	असंख्यात यो० वि० वाले विलो की संख्या
१	रत्नप्रभा	६००००० (छह लाख)	२४००००० (२४ लाख)
२	शर्कराप्रभा	५००००० (५ लाख)	२०००००० (२० लाख)
३	वालुका	३००००० (३ लाख)	१२००००० (१२ लाख)
४	पङ्कप्रभा	२००००० (२ लाख)	८००००० (८ लाख)
५	धूमप्रभा	६०००० (६० हजार)	२४०००० (२ लाख ४० हजार)
६	तमःप्रभा	१९९९९	७९९९६
७	महातम.प्रभा	१	४
	योग	१६८०००० (१६ लाख ८० हजार)	६७२०००० (६७ लाख २० हजार)

इस प्रकार सातो नरको के एकत्र किये हुये संख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का प्रमाण सोलह लाख अस्सी हजार और असख्यात योजन विस्तार वाले बिलो का प्रमाण ६७ लाख बीस हजार है. इन दोनो को एकत्रित कर देने पर सातों नरको के सम्पूर्ण विलो का प्रमाण (१६८००००+६७२००००)=८४००००० अर्थात् चौरासी लाख होता है।

इदानी सप्तपृथ्वीषु एकोनपञ्चाशदिन्द्रकाणा पृथक् पृथक् विस्तार कथ्यते.—

घर्माया प्रथमे इन्द्रके व्यास योजनानां पञ्चचत्वारिंशल्लक्षाणि। ततः एक नवति सहस्र-षट्-शत-षट्षष्टि योजनैर्योजनस्य द्विभागाभ्यां प्रत्येकं हीयमान क्रमेण व्यासो। द्वितीये चतुश्चत्वारिंशल्ल-क्षाष्टसहस्र त्रिशतत्रयस्त्रिंशद्योजनानि योजनस्य त्रिभागानामेको भागः। तृतीये त्रिचत्वारिंशल्लक्ष षोड-शसहस्र षट्शत षट्षष्टिप्रमः द्वौ भागौ। चतुर्थे द्विचत्वारिंशल्लक्ष पञ्चविंशति सहस्राणि। पञ्चमे एक चत्वारिंशल्लक्षत्रयस्त्रिंशत् सहस्र त्रिशतत्रयस्त्रिंशच्च एको भागः। षष्ठे चत्वारिंशल्लक्षैकचत्वारिं-शत्सहस्र षट्शतषट्षष्टिश्च द्वौ भागौ। सप्तमे एकोन चत्वारिंशल्लक्षपञ्चाशत्सहस्राणि अष्टमे अष्टत्रिंश-ल्लक्षाष्ट पञ्चाशत्सहस्र त्रिशतत्रयस्त्रिंशत् एको भाग.। नवमे सप्तत्रिंशल्लक्षषट्षष्टिसहस्रषट्षष्टिश्च द्वौ भागौ। दशमे षट्त्रिंशल्लक्षपञ्चसप्ततिसहस्राणि। एकादशे पञ्चत्रिंशल्लक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशत

त्रयस्त्रिशच्चैको भाग.। द्वादशे चतुस्त्रिशल्लक्षैकानवतिसहस्रषट्शत षट्षष्टिश्च द्वौ भागौ। त्रयोदशे पटले इन्द्रकस्य विस्तारः चतुस्त्रिशल्लक्षाणि। वंशाया आद्ये इन्द्रके विस्तार. त्रयस्त्रिशल्लक्षाष्टसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशच्चैको भाग'। द्वितीये द्वात्रिशल्लक्ष षोडशसहस्र षट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। तृतीये एकत्रिशल्लक्ष पञ्चविंशतिसहस्राणि चतुर्थे त्रिशल्लक्षत्रयस्त्रिशत्सहस्र त्रिशतत्रयस्त्रिशदेको भागः। पञ्चमे एकोन त्रिशल्लक्षैकचत्वारिशन्सहस्र षट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। षष्ठे अष्टाविशतिलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि। सप्तमे सप्तविशति लक्षाष्टपञ्चाशत्सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशच्चैको भागः। अष्टमे षड्विंशतिलक्षषट्षष्टिसहस्र षट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। नवमे पञ्चविंशतिलक्षपञ्चसप्ततिसहस्राणि। दशमे चतुर्विंशतिलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशदेको भाग। एकादशे इन्द्रके विस्तार योजनाना त्रयोविंशतिलक्षैकनवति सहस्रषट्शतषट्षष्टिश्च त्रिभागीकृते योजनस्य द्वौ भागौ। मेघायामादिमे इन्द्रके व्यास. योजनाना त्रयोविशतिलक्षाणि। द्वितीये द्वाविशतिलक्षाष्टसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशदेको भाग.। तृतीये एकविंशतिलक्षषोडशसहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। चतुर्थे विशतिलक्षपञ्चविशतिसहस्राणि। पञ्चमे एकोनविशतिलक्षत्रयस्त्रिशत् सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशच्चैको भाग। षष्ठे अष्टादशलक्षैकचत्वारिशत् सहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ'। सप्तमे सप्तदशलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि। अष्टमे षोडशलक्षाष्टपञ्चाशत् सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशदेको भागः। नवमे इन्द्रके पञ्चदशलक्षषट्षष्टिसहस्रषट्शत षट्षष्टिर्योजनत्रिभागीकृतस्य द्वौ भागौ। अञ्जनाया प्रथमे इन्द्रके विस्तृति योजनाना चतुर्दशलक्ष पञ्चसप्ततिसहस्राणि। द्वितीये त्रयोदशलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशदेको भाग। तृतीये द्वादशलक्षैकनवतिसहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौभागौ। चतुर्थे द्वादशलक्षा। पञ्चमे एकादशलक्षाष्टसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशदेको भाग। षष्ठे दशलक्षषोडशसहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। सप्तमे नवलक्षपञ्चविंशति सहस्राणि। अरिष्टाया आदिमे इन्द्रके अष्टलक्ष त्रयस्त्रिशत्सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशच्चैको भाग। द्वितीये सप्तलक्षैकचत्वारिशत्सहस्रषट्शतषट्षष्टिर्द्वौ भागौ। तृतीये षट्लक्षपञ्चाशत्सहस्राणि। चतुर्थे पञ्चलक्षाष्टपञ्चाशत् सहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशदेको भाग। पञ्चमे इन्द्रके व्यासो योजनाना चतुर्लक्षषट्षष्टिसहस्रषट्शत षट्षष्टिर्द्वौ भागौ। मघव्या प्रथमे इन्द्रके विस्तृतिः योजनाना त्रिलक्षपञ्चसप्ततिसहस्राणि। द्वितीये द्विलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतत्रयस्त्रिशत् योजनस्य त्रिभागाना मध्ये चैको भाग'। तृतीये एकलक्षैकनवतिसहस्रषट्शत षट्षष्टिर्द्वौ भागौ। माघव्या इन्द्रके विस्तार. लक्षयोजन प्रमाण।

अर्थ —घर्मा पृथ्वी के प्रथम सीमन्त नामक इन्द्रक विल का व्यास ४५ लाख योजन है, इसमे से ९१६६६$\frac{2}{3}$ योजन घटाते जाने पर उसी पृथ्वी के द्वितीयादि इन्द्रको का विस्तार प्राप्त होता जाता है क्योकि हानि चय का प्रमाण सर्वत्र ९१६६६$\frac{2}{3}$ योजन ही है। इस हानि चय आदि के निकालने की विधि इसी अधिकार के न० ५२-५३ श्लोको के विशेषार्थ मे देखना चाहिये।

उपर्युक्त सम्पूर्ण गद्यभाग का अर्थ निम्नाकित तालिका मे अन्तर्निहित कर दिया गया है।

[उपर्युक्त गद्य भाग की तालिका पृष्ठ स० ३६-३७ पर देखे]

इन्द्रकादि तीनों प्रकार के बिलों का प्रमाण चार श्लोकों द्वारा कहते है —

आद्यश्वभ्रेन्द्रकाणांस्यात्स्थौल्यं क्रोशैकसम्मितम् ।
शेषश्वभ्रेन्द्रकाणां च क्रोशार्धार्धधिकं क्रमात् ।।५४।।

अर्थः—प्रथम पृथिवी के इन्द्रक बिलों का बाहुल्य एक कोश प्रमाण है और अन्य शेष पृथ्वियों के विलों का वाहुल्य क्रमशः आधा आधा कोश अधिक अधिक है। अर्थात् प्रत्येक पृथ्वियो के इन्द्रकों का बाहुल्य क्रमश. १ कोश, १$\frac{१}{२}$, २, २$\frac{१}{२}$, ३, ३$\frac{१}{२}$ और ४ कोश प्रमाण है ।।५४।।

स्थूलत्वं प्रथमे श्वभ्रे श्रेणीबद्धेषुकीर्तितम् ।
क्रोशैकं ज्ञानिभिः क्रोशतृतीयभागसंयुतम् ।।५५।।
ततः षट्श्वभ्रभूमीनां श्रेणीबद्धेषुनिश्चितम् ।
स्थौल्यं क्रोशद्विभागाभ्यां प्रत्येकमधिकं क्रमात् ।।५६।।

अर्थ —प्रथम पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिलों का बाहुल्य ज्ञानियों के द्वारा १$\frac{१}{३}$ कोश माना गया है, और शेष छह पृथ्वियो में से प्रत्येक भूमि के श्रेणीबद्धों का प्रमाण $\frac{२}{३}$ भाग अधिक अधिक माना गया है । अर्थात् प्रत्येक पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण क्रमशः १$\frac{१}{३}$ कोश, २ को०, २$\frac{२}{३}$ कोश, ३$\frac{१}{३}$ कोश, ४ कोश, ४$\frac{२}{३}$ कोश और ५$\frac{१}{३}$ कोश है ।।५५-५६।।

पिण्डितं यच्च बाहुल्यमिन्द्रकश्रेणिबद्धयोः ।
पृथक् षट्पृथिवीनां तत् प्रकीर्णकेषु सम्मतम् ।।५७।।

अर्थ —प्रथम आदि छह पृथ्वियों के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलों के बाहुल्य का जो प्रमाण है उसे पृथक् पृथक् पृथ्वी का जोडने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है वही उस पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलों के वाहुल्य का प्रमाण माना गया है। अर्थात् १ (१+१$\frac{१}{३}$)=२$\frac{१}{३}$ कोश, २ (१$\frac{१}{२}$+२)=३$\frac{१}{२}$ कोश। ३ (२+२$\frac{२}{३}$)=४$\frac{२}{३}$ कोश। ४ (२$\frac{१}{२}$+३$\frac{१}{३}$)=५$\frac{५}{६}$ कोश। ५ (३+४)=७ कोश। ६ (३$\frac{१}{२}$+४$\frac{२}{३}$)=८$\frac{१}{६}$ कोश, सातवी पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अभाव है ।।५७।।

अतोऽमीषां सुखबोधाय पृथग् व्याख्यानं क्रियतेः—

रत्नप्रभायामिन्द्रकाणा स्थूलत्व क्रोशः स्यात्। श्रेणीबद्धाना क्रोशत्रिभागीकृतस्यैकभागाधिक-क्रोश । प्रकीर्णकानां क्रोशतृतीयभागाधिकौ द्वौ क्रोशौ । शर्करायां चेन्द्रकाना स्थौल्यं सार्धक्रोशः। श्रेणीबद्धाना द्वौ क्रोशौ । प्रकीर्णकाना सार्धत्रिकोशा । बालुकाया इन्द्रकाणां बाहुल्यं द्वौ क्रोशौ । श्रेणीबद्धानां द्वौ क्रोशौ क्रोशत्रिभागानां द्वौ भागौ। प्रकीर्णकानां चत्वारः क्रोशाः क्रोश त्रिभागानां द्वौ भागौ। पङ्कप्रभायां इन्द्रकाणां सार्धद्विक्रोशौ । श्रेणीबद्धाना क्रोशास्त्रय क्रोशतृतीयभागः ।

सातों नरकों में स्थित ४९ इन्द्रक

घर्मा पृथिवी			वशा पृथिवी			मेघा पृथिवी		
क्रमांक	नाम इन्द्रक	विस्तार योजनो मे	क्रमांक	नाम इन्द्रक	विस्तार योजनो मे	क्रमांक	नाम इन्द्रक	विस्तार योजनो मे
१	सीमन्त	४५०००००	१	ततक	३३०८३३३ १/३	१	तप्त	२३०००००
२	नारक	४४०८३३३ १/३	२	स्तवक	३२१६६६६ २/३	२	तपित	२२०८३३३ १/३
३	रौरव	४३१६६६६ २/३	३	वनक	३१२५०००	३	तपन	२११६६६६ २/३
४	भ्रान्त	४२२५०००	४	मनक	३०३३३३३ १/३	४	तापन	२०२५०००
५	उद्भ्रान्त	४१३३३३३ १/३	५	खटक	२९४१६६६ २/३	५	निदाघ	१९३३३३३ १/३
६	सम्भ्रान्त	४०४१६६६ २/३	६	खटिका	२८५००००	६	उज्ज्व०	१८४१६६६ २/३
७	असम्भ्रा.	३९५००००	७	जिह्वा	२७५८३३३ १/३	७	प्रज्ज्व०	१७५००००
८	विभ्रान्त	३८५८३३३ १/३	८	जिह्विका	२६६६६६६ २/३	८	सज्ज्व०	१६५८३३३ १/३
९	त्रस	३७६६६६६ २/३	९	लोलो	२५७५०००	९	सम्प्रज्व	१५६६६६६ २/३
१०	त्रसित	३६७५०००	१०	लोलुप	२४८३३३३ १/३			
११	वक्रान्त	३५८३३३३ १/३	११	तनलोलुप	२३९१६६६ २/३			
१२	अवक्रान्त	३४९१६६६ २/३						
१३	विक्रान्त	३४०००००						

बिलों का पृथक् पृथक् विस्तार

अञ्जना पृथिवी			अरिष्टा पृथ्वी			मघवी पृथ्वी			माघवी पृथ्वी		
क्रमांक	नाम इन्द्रक	विस्तार योजनों मे	क्रमांक	नाम इन्द्रक	विस्तार योजनों मे	क्रमांक	नाम इन्द्रक	विस्तार योजनों मे	क्रमांक	नाम इन्द्रक	विस्तार योजनों मे
१	आरा	१४७५०००	१	तम	८३३३३३ १/३	१	हिम	३७५०००	१	अवधि स्थान	१०००००
२	तारा	१३८३३३३ १/३	२	भ्रम	७४१६६६ २/३	२	मर्दक	२८३३३३ १/३			
३	मारा	१२९१६६६ २/३	३	शंख	६५००००	३	लल्लक	१९१६६६ २/३			
४	चर्चा	१२०००००	४	अन्ध	५५८३३३ १/३						
५	तपनीय	११०८३३३ १/३	५	तमिश्र	४६६६६६ २/३						
६	घट	१०१६६६६ २/३									
७	घटनीय	९२५०००									

प्रकीर्णकानां स्थौल्यं क्रोशा. पञ्च, क्रोशषड्भागानां मध्ये पञ्चभागाः। धूमप्रभायां स्थूलत्वमिन्द्रकाणां त्रयः क्रोशा· । श्रेणीबद्धाना चत्वार क्रोशा । प्रकीर्णकाना च सप्तक्रोशा. । तम. प्रभायां इन्द्रकाणा बाहुल्य सार्धत्रय क्रोशा । श्रेणीबद्धाना चत्वार क्रोशा क्रोशत्रिभागानां द्वौ भागौ। प्रकीर्णकाना अष्टौक्रोशा क्रोशस्य षड्भागानामेको भाग । महातमः प्रभाया इन्द्रकस्य चत्वारः क्रोशा । श्रेणीबद्धाना पञ्चक्रोशा क्रोशस्यतृतीयो भाग. । सप्तमे प्रकीर्णका न सन्ति ।

उपर्युक्त गद्य मे सातो पृथ्वियो के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलो का पृथक् पृथक् बाहुल्य बताया गया है जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नाकित तालिका के माध्यम से दर्शाया जा रहा है।

सातो नरको के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलो की मोटाई —

क्रमांक	नाम पृथिवी	इन्द्रक बिलो का बाहुल्य	श्रेणीबद्धो का बाहुल्य	प्रकीर्णको का बाहुल्य
१	रत्नप्रभा	१ कोश बाहुल्य	$१\frac{१}{३}$ कोश बाहुल्य	$२\frac{१}{३}$ कोश बाहुल्य
२	शर्करा	$१\frac{१}{२}$,, ,,	२ ,, ,,	$३\frac{१}{२}$,, ,,
३	वालुका	२ ,, ,,	$२\frac{२}{३}$,, ,,	$४\frac{२}{३}$,, ,,
४	पङ्कप्रभा	$२\frac{१}{२}$,, ,,	$३\frac{१}{३}$,, ,,	$५\frac{५}{६}$,, ,,
५	धूमप्रभा	३ ,, ,,	४ ,, ,,	७ ,, ,,
६	तम प्रभा	$३\frac{१}{२}$,, ,,	$४\frac{२}{३}$,, ,,	$८\frac{१}{६}$,, ,,
७	महातम प्रभा	४ ,, ,,	$५\frac{१}{३}$, ,,	—

पृथ्वीनां पटलव्याप्तक्षेत्रं प्रतरसंख्यकैः ।
समभागैर्विभक्तं युक्त्योर्ध्वाधश्चान्तरं मतम् ॥५८॥

अर्थ —पृथिवी के पटल व्याप्त क्षेत्र को एक कम प्रतर सख्या से (श्लोक में समभागैः पद है इससे ज्ञात होता है कि पटलो के अन्तरालो का ग्रहण किया है क्योकि सभी नरको मे पटलो की संख्या विषम और अन्तरालो की सख्या पटल सख्या से एक कम अर्थात् सम रूप है) भाग देने पर ऊपर के पटल से उसके नीचे के पटल का अन्तर प्राप्त होता है। जैसे प्रथम पृथिवी मे पटल व्याप्त क्षेत्र ७८००० योजन है। पटल सख्या १३ है, १३ पटलों मे (१३–१) बारह अन्तराल हुए, अत. ७८०००

योजन को १२ से भाग देने पर (७८००० ÷ १२) = ६५०० योजन प्रति पटल अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार द्वितीया आदि पृथिवियों मे जानना चाहिये ।।५८।।

सातो पृथ्वियो के विल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण —

घर्माया विलव्याप्तक्षेत्रं योजनानामष्टसप्ततिसहस्राणि । वशाया च त्रिशत्सहस्राणि । मेघाया पड्विशतिसहस्राणि । अञ्जनायां द्वाविशतिसहस्राणि । अरिष्टाया अष्टादशसहस्राणि । मघव्यां चतुर्दशसहस्राणि । माघव्या विलव्याप्तक्षेत्रं पञ्चक्रोशाः क्रोशत्रिभागानामेको भागः ।

अर्थ —घर्मा पृथ्वी मे विल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण ७८००० योजन, वंशा में ३०००० योजन, मघा मे २६००० योजन, अञ्जना मे २२००० योजन, अरिष्टा में १८००० योजन, मघवी में १४००० योजन और माघवी पृथ्वी में बिल व्यास क्षेत्र का प्रमाण ५$\frac{1}{3}$ कोश (महाकोश) है।

विशेषार्थ.—रत्नप्रभा आदि छह पृथ्वियों मे नीचे ऊपर की एक एक हजार योजन भूमि छोड कर विल स्थित है अतः अपनी अपनी पृथ्वी की मोटाई मे से दो हजार कम कर देने पर बिल व्याप्त भूमि का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

जैसे:—अब्बहुल भाग ८००००० (अस्सी हजार) मोटाई वाला है उसमें से ऊपर नीचे के दो हजार घटा देने पर विल व्याप्त क्षेत्र का प्रमाण ७८हजार योजन प्राप्त हो जाता है। ऐसा ही अन्यत्र जानना । केवल ७ वी माघवी पृथ्वी के ठीक मध्य भाग में एक इन्द्रक और चार श्रेणीबद्ध विल है जिनसे व्यास क्षेत्र का प्रमाण ५$\frac{1}{3}$ कोश मात्र है।

अव विलों का तिर्यग् अन्तर चार श्लोको द्वारा निरूपित किया जाता है :—

क्रमेणैवेन्द्रकश्रेणी–बद्धप्रकीर्णकेष्वपि ।
संख्यातयोजनव्यास, बिलानामन्तरं स्मृतम् ।।५९।।
तिर्यगन्तं जघन्येन, सार्धयोजनमागमे ।
योजनत्रिकमुत्कृष्टं, मध्यमं ब्रहुधा च तत् ।।६०।।
असंख्ययोजनव्यास, बिलानां तिर्यगन्तरम् ।
जघन्यं योजनानां स्यात्, सप्तसहस्रसम्मितम् ।।६१।।
सर्वोत्कृष्टमसंख्यातयोजनान्यन्तरं स्मृतम् ।
जघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये मध्यमं बहुभेदभाक् ।।६२।।

अर्थः—जिनागम मे इन्द्रक श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक विलो मे से संख्यात योजन विस्तार वाले विलों का तिर्यग् अन्तर जघन्य १$\frac{1}{2}$ योजन, उत्कृष्ट ३ योजन और मध्यम अन्तर अनेक भेद वाला कहा

गया है, तथा असंख्यात योजन व्यास वाले बिलो का तिर्यग् अन्तर जघन्य सात हजार योजन, उत्कृष्ट असंख्यात योजन और जघन्य उत्कृष्ट के मध्य मे रहने वाले मध्यम भेदों का तिर्यग् अन्तर अनेक प्रकार का कहा गया है ।।५९–६२।।

विशेषार्थः—इन्द्रक बिल सख्यात योजन और श्रेणीबद्ध असंख्यात योजन विस्तार वाले ही होते है। प्रकीर्णक मे दोनों प्रकार के है।

अब प्रत्येक पटल की जघन्य और उत्कृष्ट आयु का दिग्दर्शन कराते है :—

प्रथमे पटले सीमन्तके चायुर्लघुस्थितिः ।
दशवर्ष सहस्राणि, प्रोत्कृष्टेनायुरूर्जितम् ।।६३।।
नवतिश्च सहस्राणि, द्वितीये स्थितिरुत्तमा ।
लक्षाश्च नवतिश्चासंख्य पूर्वकोटि सम्मिता ।।६४।।
तृतीयेऽन्येषु सर्वेषु, पटलं प्रतिवर्धते ।
समुद्रदशभागाना–मेको भागोऽप्यनुक्रमात् ।।६५।।

अर्थ – प्रथम पृथ्वी के प्रथम सीमन्त पटल के नारकी जीवो की जघन्य आयु दश हजार (१००००) वर्ष और उत्कृष्ट आयु नव्बे हजार (९००००) वर्ष है। दूसरे पटल की उत्कृष्ट आयु नव्बे लाख वर्ष, तीसरे पटल की असख्यात पूर्वकोटि और चौथे पटल की उत्कृष्ट आयु एक सागर के दशवे भाग अर्थात् $\frac{1}{10}$ सागर प्रमाण है। इसके आगे सम्पूर्ण पटलो की उत्कृष्ट आयु का वृद्धि चय $\frac{1}{10}$सागर है अर्थात् पूर्व पूर्व पटलो की उत्कृष्ट आयु मे $\frac{1}{10}$ सागर जोडने से आगे आगे के पटलो की उत्कृष्ट आयु प्राप्त होती जाती है ।।६३–६५।।

प्रथमे पटले ज्येष्ठं, यश्चायुस्तद्द्वितीयके ।
जघन्यं समयेनाधि–क सर्वत्रेति संस्थितिः ।।६६।।
अन्तिमे प्रतरेऽस्यायु-रुत्कृष्टं सागरोपमम् ।
द्वितीयादिष्विति ज्येष्ट–मायुः स्यात्पटलेऽन्तिमे ।।६७।।
सागराश्च त्रयः सप्त–दशसप्तदशक्रमात् ।
द्वाविंशतिस्त्रयस्त्रिंश–दित्युत्कृष्टायुषः स्थितिः ।।६८।।
विभक्तं समभागेना–युर्भागैः प्रतरप्रमैः ।
श्वभ्राणां पटलेषु स्यात् क्रमवृद्धया पृथक् पृथक् ।।६९।।

अर्थ —प्रथम (ऊपर के) पटल की जो उत्कृष्ट आयु है उसमे एक समय अधिक कर देने पर वही द्वितीय (नीचे के) पटल की जघन्य आयु बन जाती है यह विधि सर्वत्र जानना चाहिये ।।६६।।

प्रथम पृथिवी के अन्तिम पटल की उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है। इसी प्रकार द्वितीयादि पृथ्वियों के अन्तिम पटलों की उत्कृष्ट आयु क्रमश: ३, ७, १०, १७, २२, और ३३ सागरोपम प्रमाण है ॥६७-६८॥ प्रत्येक नरक की उत्कृष्ट आयु में से जघन्य आयु को घटाकर शेष को पटल संख्या से भाग देने पर नरको के प्रत्येक पटल की आयु वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे द्वितीय नरक की जघन्यायु एक सागर, उत्कृष्टायु तीन सागर है, अतः वृद्धि का प्रमाण (३-१) = २ सागर है, पटल संख्या ११ से दो सागर वृद्धि को भाग देने पर $\frac{२}{११}$ सागर प्रति पटल वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥

अथ सर्वनरकपटलाना प्रत्येकं जघन्योत्कृष्ट भेदाभ्यामायुरुच्यते:—

रत्नप्रभायां प्रथमे पटले जघन्यायुर्दशसहस्रवर्षाणि। उत्कृष्टायुर्नवतिसहस्रवर्षाणि। द्वितीये च जघन्यायुर्वर्षाणां नवतिसहस्राणि ज्येष्ठायुर्नवति लक्षाश्च। तृतीये निःकृष्टायुर्नवतिलक्षा। उत्कृष्टायुरसंख्यकोटि पूर्वाणि। चतुर्थे जघन्यायुरसख्यकोटि पूर्वाणि। ज्येष्ठायुरेककोटीकोटि पल्यानि। पञ्चमे जघन्यायुरेककोटीकोटि पल्यानि। उत्कृष्टायुर्द्विकोटीकोटि पल्यानि। षष्ठे निकृष्टायुर्द्विकोटीकोटि पल्याश्च। ज्येष्ठायुस्त्रि कोटीकोटिपल्यानि। सप्तमे जघन्यायु· स्थिति· त्रिकोटीकोटि पल्योपमानि। ज्येष्ठायुश्च तु. कोटीकोटि पल्यानि। अष्टमे जघन्यायुश्चतु.कोटीकोटि पल्योपमानि। उत्कृष्टायुरर्धसागरः। नवमे निःकृष्टायुरर्धसागरः। ज्येष्ठायु षट्कोटीकोटि पल्यानि। दशमे जघन्यायुःस्थितिः षट्-कोटीकोटि पल्यानि। उत्कृष्टा च सप्तकोटीकोटि पल्यानि। एकादशे निःकृष्टायुः सप्तकोटीकोटि पल्यानि ज्येष्ठायुरष्टकोटीकोटि पल्यानि। द्वादशे जघन्यायुरष्टकोटीकोटि पल्यानि। ज्येष्ठायुर्नवकोटीकोटि पल्यानि। त्रयोदशेपटले नारकाणां जघन्यायुर्नवकोटीकोटि पल्यानि। परमास्थितिः एकः सागर ॥ शर्कराप्रभाया आदिमे प्रतरे जघन्यायुरेकसागरः। उत्कृष्टायुरेकसागर सागरैकादश भागानां द्वौ भागौ। द्वितीये जघन्यायुरेकसागरः द्वौ भागौ। ज्येष्ठायुरेकोऽब्धिश्चत्वारो भागाः। तृतीये नि·कृष्टायुरेकसागर भागाश्चत्वारः। ज्येष्ठायुरेकसमुद्रः भागाः षट् च। चतुर्थे नि कृष्टास्थितिरेकोऽब्धिः षड् भागा·। उत्तमा स्थितिरेकोऽब्धिरष्टौ भागाः। पञ्चमे जघन्यायुरेकोजलधिरष्टौ भागाः। उत्कृष्टायुरेकसागरः भागादश षष्ठे नि कृष्टायुरेकोऽब्धिर्भागादश। ज्येष्ठायु द्वौ सागरौ सागरैकादशभागानां एकोभाग.। सप्तमे जघन्यास्थितिः द्वौ सागरौ एकोभागश्च। उत्तमा स्थिति· द्वौ सागरौ भागास्त्रयः। अष्टमे जघन्यायुर्द्वौ समुद्रौ भागास्त्रयः। उत्कृष्टायुर्द्वौ सागरौ भागाः पञ्च॥ नवमे नि·कृष्टायुर्द्वौ सागरौ भागाः पंच। ज्येष्ठायुर्द्वौ सागरौ भागा सप्त। दशमे जघन्यायुर्द्वौ जलधिभागा· सप्त। उत्कृष्टायुर्द्वौ समुद्रौ सागरैकादशभागाना नवभागा। एकादशे नारकाणां जघन्यायुर्द्वौ सागरौ नवभागाः। उत्कृष्टायुस्त्रयः सागरः। बालुकाया. प्रथमे प्रतरे जघन्यायुस्त्रयः सागराः। उत्कृष्टायुस्त्रयः सागरा· सागरनवभागानां चत्वारोभागाः। द्वितीये निःकृष्टायुस्त्रय समुद्रा. भागाश्चत्वारश्च। ज्येष्ठायुः सागरास्त्रय भागा अष्टौ।

तृतीये जघन्यायु समुद्रास्त्रयभागा अष्टौ । उत्कृष्टायुः सागराश्चत्वार सागरस्यनवभागाना त्रयोभागा । चतुर्थे जघन्यायु समुद्राश्चत्वारः भागास्त्रयश्च । ज्येष्ठायु सागराश्चत्वारः भागाः सप्त । पञ्चमे जघन्या स्थितिश्चत्वारोऽम्बुधय भागा सप्त । उत्तमा स्थितिः समुद्रा पञ्च भागौ द्वौ । षष्ठे जघन्यायुः सागराः पञ्च भागौ द्वौ द्वौ । उत्कृष्टायुः पञ्चाब्धयः भागाः षट् । सप्तमे निःकृष्टायु पञ्च समुद्रा. भागा षट् ज्येष्ठायु सागराः षट् भाग एकः । अष्टमे जघन्यायु समुद्रा षट् भाग एकः । उत्कृष्टायु सागरा षट् । सागरस्य नवभागाना पञ्च भागा । नवमे पटले नारकाणा जघन्यायु षट् समुद्रा भागाः पञ्च । उत्कृष्टायु सप्त सागराः ॥ पङ्कप्रभायाः आदिमे प्रतरे जघन्यायु सप्ताम्बुधयः । उत्कृष्टायुः सप्तसागराः सागरसप्तभागाना त्रयो भागा । द्वितीये निकृष्टायुः सप्ताम्बुधय त्रयोभागाः । ज्येष्ठायुः सप्तसागराः भागाः षट् । तृतीये लघुस्थितिः समुद्रा. सप्त भागा षट् । बृहत्स्थिति. अष्टौसागराः द्वौ भागौ । चतुर्थे जघन्यायुरष्टौ समुद्रा द्वौ भागौ । उत्कृष्टायुरष्टौ सागरा. पञ्चभागाश्च । पञ्चमे निकृष्टायुरष्टौ जलधयः भागाः पञ्च । ज्येष्ठायु सागरा नव एको भागः । षष्ठे जघन्यायुर्नवसागराः एको भागः । ज्येष्ठायुर्नव समुद्राश्चत्वारो भागाः । सप्तमे नारकाणा जघन्या स्थितिर्नवाम्बुधय. भागाश्चत्वारः । परमा स्थितिः सागराः दश । धूमप्रभायाः प्रथमे प्रतरे जघन्यायुर्दशसागरा. । उत्कृष्टायुरेकादश समुद्राः सागर पञ्च भागाना द्वौ भागौ । द्वितीये निकृष्टायुरेकादशाब्धय द्वौ भागौ च । ज्येष्ठायुर्द्वादशसागराभागाश्चत्वारः । तृतीये जघन्या स्थितिर्द्वादशसमुद्राश्चत्वारो भागाः । ज्येष्ठायुर्चतुर्दशसागराः एको भागः । चतुर्थे निःकृष्टायुश्चतुर्दश समुद्राः एको भाग । उत्कृष्टायु पञ्चदशाब्धयस्त्रयो भागाः । पञ्चमे जघन्या स्थितिः पञ्चदशाब्धयः त्रयो भागाः । परमायुः सप्तदशसागराः । तमःप्रभाया आदिमे पटले जघन्यायुः सप्तदशजलधयः । उत्कृष्टायुरष्टादश सागराः सागरस्य त्रिभागाना द्वौ भागौ । द्वितीये निकृष्टायुरष्टादशाब्धयः द्वौ भागौ । ज्येष्ठायुर्विंशति सागराः सागरस्य तृतीयो भागः । तृतीये जघन्यायुर्विंशति सागराः सागरस्य तृतीयो भागः । परमायुर्द्वाविंशतिसागरोपमम् । महातमः प्रभाया पटले नारकाणा जघन्यायुः सागराः द्वाविंशति. । उत्कृष्टायुस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमम् ।

विशेष —गद्य भाग मे सातो पृथ्वियो के ४९ पटलो की जघन्य उत्कृष्ट आयु का भिन्न भिन्न विवेचन किया गया है जिसका सम्पूर्ण अर्थ तालिका के माध्यम से दर्शाया गया है ।

[तालिका पृष्ठ ४४ व ४५ पर देखे]

अब प्रत्येक पटल के नारकियो के शरीर का उत्सेध कहते है :—

सप्तदण्डास्त्रयोहस्ताः षडंगुलास्तनून्नतिः ।
उत्कृष्टानारकाणां च घर्मायाः पटलेऽन्तिमे ॥७०॥
जघन्येन त्रयो हस्ताः आदिमे प्रतरे ततः ।
शेषषड्नरकेषु स्याद् द्विगुणा द्विगुणोच्छ्रितिः ॥७१॥

भागैः पटलसंख्यानैः भूमीनां पटलेषु च ।
पृथग् विभक्त उत्सेधः क्रमाद् वृद्धियुतो मतः ।।७२।।

अर्थः—घर्मा नामक प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल मे स्थित नारकियो के शरीर का उत्कृष्ट उत्सेध ७ धनुष, ३ हाथ और छह अंगुल है ।।७०।। शेष छह नरकों के अन्तिम पटलों में स्थित नारकियो के शरीर का उत्कृष्ट उत्सेध इससे दूना दूना होता गया है। प्रथम नरक के प्रथम पटल का जघन्य उत्सेध तीन हाथ प्रमाण है ।।७१।। वृद्धि के प्रमाण को पटल सख्या से विभाजित करने पर जो प्रति पटल वृद्धि का प्रमाण आवे, उसको जोड देने से प्रत्येक पटल में शरीर का उत्सेध प्राप्त होना है ।।७२।।

विशेषार्थ·—प्रथम नरक के प्रथम पटल में शरीर का उत्सेध ३ हाथ है तथा अन्तिम पटल में उत्सेध ७ धनुप, ३ हाथ ६ अंगुल है। ७ ध ३ हाथ ६ अगुल मे से ३ हाथ घटा देने पर ७ धनुष ६ अगुल शेष रहे। यह वृद्धि १२ पटलों मे हुई है, अतः सात धनुष ६ अंगुल को १२ से विभाजित करने पर दो हाथ ८$\frac{1}{2}$ अगुल प्राप्त होते है। यह प्रथम नरक के प्रत्येक पटल में वृद्धि का प्रमाण है। दूसरे नरक के अन्तिम पटल मे शरीर उत्सेध ७ ध ३ हाथ ६ अ का दूना है। अर्थात् ७ ध. ३ हाथ ६ अ० की वृद्धि हुई। पटल संख्या ११ है, अतः ७ ध० ३ हाथ ६ अ को ११ से विभक्त करने पर २ हाथ २०$\frac{2}{11}$ अगुल प्राप्त होते है। यही दूसरे नरक मे प्रति पटल वृद्धि का प्रमाण है। इसी प्रकार तीसरे नरक के अन्तिम पटल मे शरीर उत्सेध १५ ध. २ हा. १२ अं का दुगना है, अर्थात् १५ ध. २ हा. १२ अं० की वृद्धि है। पटल सख्या ९ है, अतः १५ ध. २ हा १२ अं. को ९ से भाजित करने पर एक ध. २ हा २२$\frac{2}{3}$ अ. प्राप्त होता है। यही तीसरे नरक के प्रत्येक पटल मे शरीर उत्सेधकी वृद्धि का प्रमाण है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये।

अथ विस्तरेण सर्वनरक प्रतरेपु नारकाणा देहोत्सेधः पृथक् पृथक् निगद्यते:—

घर्माया प्रथमे पटले नारकाणा कायोत्सेधस्त्रयो हस्ताः ततः क्रमाद् द्विहस्तसार्धाष्टांगुलवृद्धया। द्वितीये च धनुरेकं एको हस्तः सार्धाष्टागुलाः। तृतीये एकं धनु हस्तास्त्रय अगुलाः सप्तदश। चतुर्थे द्वे धनुशी द्वौ करौ सार्धागुल। पञ्चमे धनूंषि त्रीणि अंगुलादश। षष्ठे त्रीणि धनूंषि द्वौ करौ सार्धाष्टा दशागुला सप्तमे चत्वारि चापानि एको हस्त त्रयोंऽगुला। अष्टमे चत्वारि धनूंषि त्रयो हस्ता सार्धैका दशांगुला। नवमे पञ्च दण्डा एको हस्त विशतिरंगुलाः। दशमे षट् चापानिसार्धचत्वारोंऽगुला। एकादशे षड्धनूंषि द्वौ करौ त्रयोदशागुला। द्वादशे सप्त धनूंषि सार्धैकविंशति रगुला। त्रयोदशे पटले नारकाणा देहोत्सेधः सप्त चापानि त्रयो हस्ताः षडगुलाश्च। वंशायां आदिमे पटले नारकशरीरोच्छ्रिति अष्टौदण्डा द्वौ करौ द्वौ अगुलौ, अंगुलैकादश भागानां द्वौ भागौ। ततो द्विकरविंशत्यंगुलैरगुलैकादश भागाना द्विभागाभ्या क्रमवृद्धया।। द्वितीये नव चापानि द्वाविंशत्यं-

सातों नरकों के प्रत्येक पटल की

घर्मा पृथिवी			वंशा पृथिवी		
पटल संख्या	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल संख्या	जघन्यायु	उत्कृष्ट०
१	१०००० (दश हु०) वर्ष	९०००० (९० हजार) वर्ष	१	१ सागर	$१\frac{२}{११}$ सागर
२	९०००० (९० हु०) वर्ष	९०००००० (९० लाख) वर्ष	२	$१\frac{२}{११}$ सागर	$१\frac{४}{११}$ सागर
३	९०००००० (९० लाख) वर्ष	असंख्यात पूर्व कोटियाँ	३	$१\frac{४}{११}$ सागर	$१\frac{६}{११}$ सागर
४	असंख्यात पूर्व कोटियाँ	एक कोटाकोटी पल्य ($\frac{१}{१०}$ सागर)	४	$१\frac{६}{११}$ सागर	$१\frac{८}{११}$ सागर
५	एक कोटाकोटी पल्य	दो कोटाकोटी पल्य ($\frac{२}{१०}$ सागर)	५	$१\frac{८}{११}$ सागर	$१\frac{१०}{११}$ सागर
६	दो कोटाकोटी पल्य	तीन कोटाकोटी पल्य ($\frac{३}{१०}$ सागर)	६	$१\frac{१०}{११}$ सागर	$२\frac{१}{११}$ सागर
७	तीन कोटाकोटी पल्य	चार कोटाकोटी पल्य ($\frac{४}{१०}$ सागर)	७	$२\frac{१}{११}$ सागर	$२\frac{३}{११}$ सागर
८	चार कोटाकोटी पल्य	आधा ($\frac{१}{२}$) सागर	८	$२\frac{३}{११}$ सागर	$२\frac{५}{११}$ सागर
९	आधा सागर	छह कोटा कोटी पल्य ($\frac{३}{५}$ सा०)	९	$२\frac{५}{११}$ सागर	$२\frac{७}{११}$ सागर
१०	छह कोटाकोटी पल्य	सात कोटाकोटी पल्य ($\frac{७}{१०}$सा०)	१०	$२\frac{७}{११}$ सागर	$२\frac{९}{११}$ सागर
११	सात कोटाकोटी पल्य	आठ कोटाकोटी पल्य ($\frac{४}{५}$ सा०)	११	$२\frac{९}{११}$ सागर	३ सागर
१२	आठ कोटाकोटी पल्य	नौ कोटाकोटी पल्य ($\frac{९}{१०}$ सा०)			
१३	नौ कोटाकोटी पल्य	एक सागरोपम			

जघन्य उत्कृष्ट आयु का विवरण

मेघा पृथिवी			अञ्जना पृथिवी			अरिष्टा पृथ्वी			मघवी पृथ्वी			माघवी पृथ्वी		
पटल संख्या	जघन्यायु	उत्कृष्टायु	पटल सं०	जघन्यायु	उत्कृष्टायु	पटल सं०	जघन्यायु	उत्कृष्टायु	पटल सं०	जघन्यायु	उत्कृष्टायु	पटल सं०	जघन्यायु	उत्कृष्टायु
१	३ सागर	$३\frac{४}{९}$ सागर	१	७ सागर	$७\frac{३}{७}$ साग	१	१० सागर	$११\frac{२}{५}$ साग	१	१७ सागर	$१८\frac{२}{३}$ साग	१	२२ सा	३३ सा
२	$३\frac{४}{९}$ सा	$३\frac{८}{९}$,,	२	$७\frac{३}{७}$,,	$७\frac{६}{७}$,,	२	$११\frac{२}{५}$,,	$१२\frac{४}{५}$,,	२	$१८\frac{२}{३}$,,	$२०\frac{१}{३}$,,			
३	$३\frac{८}{९}$,,	$४\frac{३}{९}$,,	३	$७\frac{६}{७}$,,	$८\frac{२}{७}$,,	३	$१२\frac{४}{५}$,,	$१४\frac{१}{५}$,,	३	$१८\frac{१}{३}$,,	२२ सागर			
४	$४\frac{३}{९}$,,	$४\frac{७}{९}$,,	४	$८\frac{२}{७}$,,	$८\frac{५}{७}$,,	४	$१४\frac{१}{५}$,,	$१५\frac{३}{५}$,,						
५	$४\frac{७}{९}$,,	$५\frac{२}{९}$,,	५	$८\frac{५}{७}$,,	$९\frac{१}{७}$,,	५	$१५\frac{३}{५}$,,	१७ सागर						
६	$५\frac{२}{९}$,,	$५\frac{६}{९}$,,	६	$९\frac{१}{७}$,,	$९\frac{४}{७}$,,									
७	$५\frac{६}{९}$,,	$६\frac{१}{९}$,,	७	$९\frac{४}{७}$,,	१० सागर									
८	$६\frac{१}{९}$,,	$६\frac{५}{९}$,,												
९	$६\frac{५}{९}$,,	७ सागर												

नोट —यह जघन्य उत्कृष्ट आयु का प्रमाण सातो पृथ्वियो के इन्द्रक बिलो का कहा गया है, यही प्रमाण प्रत्येक पृथ्वियो के श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलो मे रहने वाले नारकियो का जानना चाहिये ।

(ति० प० २ / २१५)

गुलाश्चत्वारो भागाः । तृतीये नवधनूंषि त्रयो हस्ता अष्टादशागुला' षड्भागाः । चतुर्थे दशचापानि द्वौ हस्तौ चतुर्दशागुला भागा अष्टौ । पञ्चमे एकादश दण्डा एकोहस्त दशागुला दशभागा । षष्ठे द्वादश चापानि अगुला सप्त भाग एक । सप्तमे द्वादश धनूंषि त्रयः करा त्रयोऽगुलास्त्रयोभागा । अष्टमे त्रयोदश चापानि एक कर त्रयोविशतिरंगुलाः भागाः पञ्च । नवमे चतुर्दशदण्डा. एकोनविशतिरगुला सप्तभागा । दशमे चतुर्दश चापानि त्रयोहस्ताः पञ्चदशागुला भागा नव । एकादशे प्रतरे नारककायोन्नतिः पञ्चदश दण्डाः द्वौ करौ द्वादशागुला ॥ मेघायाः प्रथमे पटले नारकाणा देहोत्सेध सप्तदश धनूषि एको हस्त. दशागुलाः अगुलःत्रिभागाना द्वौ भागौ। तत एक धनु द्विकर द्वाविशत्यगुलैश्चागुलत्रिभागाना, द्विभागाभ्या क्रमवृद्धचा । द्वितीये पटले एकोनविंशति धनूंषि नवागुलाः अगुलतृतीयभाग । तृतीये विंशति चापानि त्रयो हस्ताः अष्टागुलाः । चतुर्थे द्वाविशति दण्डा द्वौ करौ षडगुला द्वौ भागौ। पञ्चमे चतुर्विशति चापानि एक कर पञ्चागुला अगुलतृतीयभाग । षष्ठे षड्विशति धनूंषि चत्वारोऽगुला । सप्तमे सप्तविशति चापानि त्रयो हस्ता द्वात्रगुलौ अगुलस्य द्वौ भागौ। अष्टमे एकोनत्रिशद्धनूषि द्वौ करौ एकागुल अगुलतृतीय भाग । नवमे एकत्रिशद्धनूंषि एको हस्त । अञ्जनाया आदिमे प्रतरे नारकाङ्गोत्सेध' पञ्चत्रिंशच्चापानि द्वौ करौ विशतिरगुला अगुलसप्तभागाना चत्वारो भागा । ततश्चतुर्द्धनुरेक हस्तविशत्यगुलैश्चागुलसप्तभागाना चतुर्भागै क्रमवृद्धित । द्वितीये चत्वारिशद्धनूंषि सप्तदशागुला एको भाग । तृतीये चतुश्चत्वारिशद्धनूषि द्वौ करौ त्रयोदशागुला अगुलसप्तभागा पञ्चगृह्यन्ते । चतुर्थे एकोनपञ्चाशद्दण्डाः दशागुला: द्वौ भागौ। पञ्चमे त्रिपञ्चाशच्चापानि द्वौ हस्तौ षडगुलाः भागाः षट् । षष्ठे अष्टपञ्चाशच्चापानि त्रयोऽगुलाः अगुलसप्तभागाना त्रयोभागा । सप्तमे द्विषष्टि चापानि द्वौ करौ। अरिष्टाया प्रथमे पटले नारकागोच्छ्रिति पञ्चसप्तति धनूषि तत द्वादशधनूर्द्वि करै क्रमवृद्धचा। द्वितीये च सप्ताशीति चापानि द्वौ करौ। तृतीये शतधनूषि। चतुर्थे द्वादशाधिकशतदण्डा द्वौ हस्तौ। पञ्चमे पञ्चविशत्यधिकशतधनूंषि । मघव्या आदिमे प्रतरे नारकदेहोत्सेध षष्टचाधिकशत चापानि द्वौ हस्तौ षोडशागुला । तत एकचत्वारिशद्धनु द्विकर षोडशागुलै क्रमवृद्धचा। द्वितीये अष्टाधिकद्विशत चापानि एक हस्तः अष्टागुलाः । तृतीये सार्धद्विशतचापानि । माघव्या प्रतरे नारकाणा देहोत्सेध पञ्चशतचापानि ।

अब विस्तार से सातो नरको के सम्पूर्ण पटलो मे स्थित नारकी जीवो के शरीरका उत्सेध पृथक् पृथक् कहते है :—

घर्मा पृथ्वी के प्रथम पटल मे स्थित नारकी जीवोकेशरीरका उत्सेध ३ हस्त प्रमाण है और इस पृथ्वी के वृद्धि का प्रमाण २ हाथ, ८½ अगुल है । अर्थात् प्रथम पटल के उत्सेध मे इस वृद्धि चयको जोड देने से आगे आगे के पटलो के नारकियो के शरीरो का उत्सेध प्राप्त होता जाता है । जैसे:— ३ ह० + २ ह० ८½ अ० = १ धनुप १ हाथ ८½ अ० दूसरे पटल का उत्सेध होता है। इसी प्रकार (३) १ ध० ३ ह० १७

अं० । (४) २ ध० २ ह० १$\frac{१}{२}$ अं० । (५) ३ ध० १० अं० । (६) ३ ध० २ ह० १८$\frac{१}{२}$ अं० । (७) ४ ध० १ ह० ३ अं० । (८) ४ ध० ३ ह० ११$\frac{१}{२}$ अं० (९) ५ ध० १ ह० २० अ० । (१०) ६ ध० ४$\frac{१}{२}$ अ० । (११) ६ ध० २ ह० १३ अं० । (१२) ७ ध० २१$\frac{१}{२}$ अ. और (१३) पटल में नारकियों के शरीर का उत्सेध ७ ध० ३ ह० ६ अं होता है।

वशा पृथ्वी के प्रथम पटल मे नारकी जीवो के शरीर का उत्सेध ८ ध० २ ह० २$\frac{२}{११}$ अं० है। यहाँ क्रम वृद्धि का प्रमाण २ ह० २०$\frac{२}{११}$ अं० है। उत्तरोत्तर इसी को जोडते हुये (२) ९ ध० २२$\frac{४}{११}$अ. (३) ९ ध० ३ ह० १८$\frac{६}{११}$ अ० । (४) १० ध० २ ह० १४$\frac{८}{११}$ अ० (५) ११ ध० १ ह० १०$\frac{१०}{११}$ अ० (६) १२ ध. ७$\frac{१}{११}$ अ० (७) १२ ध. ३ ह० २$\frac{३}{११}$अ. । (८) १३ ध १ ह० २३$\frac{५}{११}$ अ० । (९) १४ ध १९$\frac{७}{११}$ अ (१०) १४ ध. ३ ह० १५$\frac{९}{११}$अ० और (११) १५ ध० २ ह० १२ अ. प्रमाण उत्सेध है। मेघापृथ्वी के प्रथम पटल में नारकियो के शरीर का उत्सेध १७ ध १ ह० १०$\frac{२}{३}$ अ० है। और यहाँ क्रम वृद्धि का प्रमाण १ ध. २ ह० २२$\frac{२}{३}$ अ० है। उत्तरोत्तर इसी चय को जोडते जाने से शरीर उत्सेध (२) १९ ध. ९$\frac{१}{३}$ अ (३) २० ध. ३ ह० ८ अ० । (४) २२ ध. २ ह० ६$\frac{२}{३}$ अ । (५) २४ ध. १ ह० ५$\frac{१}{३}$ अ. । (६) २६ध. ४ अ० । (७) २७ ध. ३ ह० २$\frac{२}{३}$ अ । (८) २९ ध २ ह० १$\frac{१}{३}$ अ० प्रमाण है। (९) ३१ ध. १ हाथ अजना पृथ्वी के प्रथम पटल मे नारकियो के शरीर का उत्सेध ३५ ध. २ ह २०$\frac{४}{७}$ अ प्रमाण है और वहा के क्रम वृद्धि चय का प्रमाण ४ ध १ ह. २०$\frac{४}{७}$ अगुल है। (२) ४० ध. १७$\frac{१}{७}$ अ. । (३) ४४ ध २ ह. १३$\frac{५}{७}$ अ । (४) ४९ ध. १०$\frac{२}{७}$ अं. । (५) ५३ ध २ ह. ६$\frac{६}{७}$ अ (६) ५८ ध. ३$\frac{३}{७}$ अ और (७ ६२ ध २ हस्त प्रमाण उत्सेध है।

अरिष्टा पृथ्वी के प्रथम पटल मे नारकियो के शरीर की ऊँचाई ७५ ध० है और यहां क्रमशः वृद्धि चय का प्रमाण १२ ध० २ हस्त है, अत (२) ८७ ध० २ ह. (३) १०० ध. (४) ११२ ध० २ ह० और (५) १२५ धनुष प्रमाण उत्सेध होगा। मघवी पृथ्वी के प्रथम पटल मे नारकी जीवों के शरीर का उत्सेध १६६ ध० २ ह० १६ अ० है और यहा क्रमशः वृद्धि चय का प्रमाण ४१ ध० २ ह० १६ अगुल है, अत· (२) २०८ ध० १ ह० ८ अं और (३) २५० धनुष प्रमाण उत्सेध है माघवी पृथ्वी के अवधि स्थान नामक अन्तिम पटल मे नारकी जीवों के शरीर का उत्सेध ५०० धनुष प्रमाण है।

अब ६ श्लोको द्वारा नारकियो के उपपाद स्थानो के आकार, व्यास एवं दीर्घता का निरूपण करते है :—

खरशूकरमार्जार-कपिश्वानादि गोमुखाः ।
मधुकृतजालसादृश्या घण्टाधोमुखसन्निभाः ।।७३।।
वृत्तास्त्र्यस्राश्चतुःकोणा-दुःस्पर्शा दुःखखानयः ।
वज्राभा अति बीभत्सा दुर्गन्धाश्च घृणास्पदाः ।।७४।।

तमश्चयावृता निन्द्याः समस्त श्वभ्रभूमिषु ।
इन्द्रकाद्येषु कृत्स्नेषु योनयः सन्ति दुष्कराः ।।७५।।
क्रोशैको द्वौ त्रयः क्रोशाः योजनैकं द्वयं त्रयम् ।
योजनानां शतं चेति व्यासः प्रोक्तोऽप्यनुक्रमात् ।।७६।।
सप्तानां श्वभ्रयोनीनां क्रोशाः पञ्चततो दश—
तथा पञ्चदश क्रोशाः पञ्चैव योजनानि च ।।७७।।
दश पञ्चदशां ते योजनानां शतपञ्चकम् ।
इति दैर्घ्यं क्रमात्प्रोक्तं सर्वासु श्वभ्रयोनिषु ।।७८।।

अर्थः—सातों नरक भूमियों मे इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलो से सम्बन्धित योनियाँ-जन्म भूमियाँ गधा, सूकर, बिल्ली, बन्दर, कुत्ता और गाय आदि के मुख सदृश (ऊपर सकरी भीतर चौडी), मधुकृत जाल सदृश, घण्टाकार और अधोमुख है, उनके आकार गोल, त्रिकोण और चतुष्कोण है, तथा वे जन्मभूमियाँ दु स्पर्श अर्थात् तीक्ष्ण, रूक्ष एव घन स्पर्श से सहित, दु खो को खान (आकर), वज्राभा अर्थात् वज्र सदृश कठोर तलभाग एव दीवालो से युक्त, अत्यन्त ग्लानि एव दुर्गन्ध उत्पादक, घृणास्पद, अन्धकार से व्याप्त, निन्द्यनीय और दुष्कर अर्थात् भयङ्कर हैं। उन सातो नरक भूमियो से सम्बधित सम्पूर्ण जन्म योनियों का व्यास क्रमश १ कोश, २ कोश, ३ कोश, १ योजन, २ योजन, ३ योजन, और १०० योजन प्रमाण कहा गया है। इसी प्रकार उनकी दीर्घता भी क्रमश ५ कोश, १० कोश, १५ कोश, ५ योजन, १० योजन, १५ योजन और ५०० योजन प्रमाण कही गई है ।।७३-७८।।

अब नरक प्राप्ति के कारणभूत परिणामो एव आचरणो का दिग्दर्शन ९ श्लोको द्वारा किया जा रहा है —

ये सप्तव्यसनासक्ता बह्वारम्भकृतोद्यमाः ।
अत्यसन्तोषिणो नीच—सङ्गश्रीसंग्रहोद्यताः ।।७९।।
अतृप्ताः कामसेवाद्यै विषयामिषलम्पटाः।
अखाद्यखादका निन्द्या अपेयपानपायिनः ।।८०।।
अत्यन्तनिर्दयाः क्रूराः क्रूरकर्मविधायिनः ।
रौद्रध्यानरता रौद्राः कृष्णलेश्या मदोद्धताः ।।८१।।
जिनमार्ग बहिर्भूतास्तीव्रमिथ्यात्व वासिताः ।
कुशास्त्राध्ययनोद्युक्ता मिथ्यैकान्तमताश्रिताः ।।८२।।

पापकर्मरतानित्यं धर्मकर्मातिगाः शठाः ।
पात्रदानजिनेन्द्रार्चा व्रतशीलादिदूरगाः ।।८३।।
हिंसादिपञ्चपापाढ्या नास्तिका धर्मदूषकाः ।
धर्मविघ्नकरा मिथ्या पापमार्गप्रवर्तकाः ।।८४।।
जिनशासनजैनानां श्रावकाणां च धर्मिणाम् ।
मुनीनां तीर्थकर्तॄणां शास्त्राणां निन्दकाः खलाः ।।८५।।
इत्यादि निन्द्यदुष्कर्म कारिणः पापपण्डिताः ।
नरा याश्चस्त्रियो दुष्टा–स्तिर्यञ्चो रौद्रमानसाः ।।८६।।
रौद्रध्यानेन मृत्वान्ते ते ता यान्ति च पापिनः ।
पापोदयेन तद्योग्याः सप्तेमाः श्वभ्रदुर्गतीः ।।८७।।

अर्थः—दुष्ट चित्त वाले जो स्त्री और पुरुष निरन्तर सप्तव्यसनों में आसक्त, बहु आरम्भ परिग्रह में उद्यमशील, अत्यन्त असन्तोषी, नीच लक्ष्मी के संग्रह मे सदा प्रयत्नशील, अतृप्त, कामसेवन आदि विषयों के और मास भक्षण के लम्पटी, अभक्षभक्षण में रत, निन्द्य कार्य करने वाले, अपेय अर्थात् शराब आदि का सेवन करने वाले, अत्यन्त निर्दय, क्रूर परिणामी, क्रूरकर्म करने में संलग्न, रौद्रध्यान रत, रौद्रता एव कृष्णलेश्या से अनुरञ्जित, मद से उद्धत, जिनमार्ग से बहिर्भूत, तीव्र मिथ्यात्व से युक्त-कुशास्त्रों के अध्ययन मे उद्यत, एकान्त आदि मिथ्यात्व को आश्रयदाता, पापकर्म रत, धर्म कर्म से निरन्तर दूर रहने वाले, शठ, पात्रदान जिनेन्द्र पूजन और व्रतशील आदि सत्कर्मो से अति दूर, हिंसादि पांच पापों से युक्त, नास्तिक, समीचीन धर्म को दूषण लगाने वाले, धार्मिक कार्यो में विघ्न डालने वाले-मिथ्या और पापमार्ग के प्रवर्तक, जिनशासन, जैनधर्मानुयायी, श्रावक श्राविकाओं, धर्मात्माओं मुनिराजों, तीर्थंकरों और शास्त्रों की निन्दा करने वाले, दुष्ट स्वभावी निन्द्य और दुष्कर्म करने वाले तथा जो पाप के पण्डित है वे मनुष्य एव स्त्री तथा रौद्र परिणाम वाले दुष्ट पशु (तिर्यञ्च) अपनी आयु के अन्त में रौद्रध्यान से मरकर वे पापी पापोदय से अपने अपने परिणामों की योग्यतानुसार रत्नप्रभा आदि सातो नरक भूमियों मे दुर्गति को प्राप्त होते है ।।७९–८७।।

चार श्लोकों द्वारा वहा उत्पन्न होने वाले नारकियो की स्थिति एवं उनके निपतन और उत्पतन का निर्देश करते है :—

अन्तर्मुहूर्त कालेन ते तासु श्वभ्रयोनिषु ।
षट् पर्याप्तीरघात्प्राप्य स्वोर्ध्वपादाह्यधोमुखाः ।।८८।।

परं रावं प्रकुर्वाणाः पतन्त्यधोमहीतले ।
वज्रकण्टकशस्त्राग्रे ततोऽतिदु खविह्वलाः ।।८६।।
इव सूत्रावृताः पिण्डाः स्वयमेवोत्पतन्ति च ।
क्रोशत्रयं चतुर्भागाधिकं योजनसप्तकम् ।।६०।।
घर्मायां शेष पृथ्वीषु द्विगुणं द्विगुणं ततः ।
क्रमादुत्पतनं ज्ञेयं नारकाणां सुदुष्करम् ।।६१।।

अर्थः—उन नारक भूमियो मे अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा छह पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ऊपर पैर और नीचे है मुख जिनके तथा जो भयङ्कर शब्द कर रहे है ऐसे वे नारकी नीचे भूमितल पर गिरते है, और वज्र एव कण्टक के सदृश कठोर तथा शस्त्रो के अग्रभाग के सदृश तीक्ष्ण भूमिके स्पर्श जन्य अत्यन्त दुःख से विह्वल होते हुये गेद के समान स्वय ऊपर उछलते है। उन नारकी जीवो का अत्यन्त दुष्कर उत्पतन घर्मापृथ्वी मे सात योजन, तीन कोश और एक कोश का चतुर्थ भाग (५०० धनुष) (३/४ कोस अधिक ३ कोस) प्रमाण और अन्य शेष छह पृथ्वियो मे इससे दूना दूना जानना चाहिये ।।८८–६१।। (सातवी पृथ्वी मे ५०० योजन प्रमाण ऊपर उछलते है)

अथामीषामुत्पतन प्रत्येक सप्तनरकेषु प्रोच्यते :—

घर्माया नारका. धराया निपत्य तत्क्षण ततः सपादत्रिक्रोशाधिक सप्तयोजनानि उत्पतन्ति। वशाया सार्धद्विक्रोशाधिक पञ्चदश योजनानि। मेघाया क्रोशाधिकैक त्रिशद्योजनानि। अञ्जनायां सार्धद्विषष्टि योजनानि च। अरिष्टाया पञ्चविशत्यधिक शत योजनानि। मघव्या सार्धद्विशतयोजनानि। माघव्या नारका भूमेः पंचशतयोजनानि चोत्पतन्ति।

अब प्रत्येक नरको मे नारकियो का उत्पतन कहते है :—

अर्थः—धर्मा पृथ्वी के नारकी भूमिपर गिरने के तत्क्षण ही पृथ्वी से सात योजन ३¼ कोश ऊपर उछलते है। वशा पृथ्वी के १५ योजन २½ कोश, मेघा पृथ्वी के ३१ योजन एक कोश, अञ्जना पृथ्वी के ६२ योजन २ कोश, अरिष्टा पृथ्वी के १२५ योजन, मघवी पृथ्वी के २५० योजन और माघवी पृथ्वी के नारकी जीव ५०० योजन ऊपर उछलते है।

अब चार श्लोको द्वारा नारक पृथ्वियो मे सम्भव लेश्या का निरूपण करते है :—

घर्मायां स्याज्जघन्या दु–र्लेश्या कापोतसंज्ञिका ।
वंशायां मध्यमा कापो–ताख्या नारकजन्मिनाम् ।।९२।।

मेघायां सा खिलोत्कृष्टा, जघन्या नीलनामिका ।
अञ्जनायां च लेश्यास्ति, नीलाख्यामध्यमाशुभा ॥९३॥
अरिष्टायां भवेन्नीलोत्कृष्टा कृष्णा जघन्यका ।
मघव्यां मध्यमा कृष्णा, लेश्या स्यात्सुष्ठु निन्दिता ॥९४॥
माघव्यां सकलोत्कृष्टा, कृष्णलेश्याऽशुभाकरा ।
इमास्त्रिस्त्रोऽशुभालेश्या दुःखाद्याक्लेशमातरः ॥९५॥

अर्थः—जो दुःखो को देने वाली है और क्लेश की माता है नरकों में ऐसी तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। उनमें से घर्मा पृथ्वी में स्थित नारकी जीवों के परिणाम जघन्य कापोत लेश्या से युक्त, वंशा मे मध्यम कापोत, मेघा में उत्कृष्ट कापोत और जघन्य नील, अञ्जना में मध्यम नील, अरिष्टा में उत्कृष्ट नील और जघन्य कृष्ण, मघवी में मध्यम कृष्ण और माघवी पृथ्वी मे उत्पन्न नारकी जीवों के परिणाम निन्दनीय उत्कृष्ट कृष्णलेश्या से अनुरञ्जित होते है ॥९२–९५॥

कितने सहननो से युक्त जीव किस पृथ्वी तक उत्पन्न होता है इसका निर्देश :—

आद्यान् श्वभ्रत्रयान् यान्ति, षट्संहनन संयुताः ।
पञ्चमश्वभ्रपर्यन्तं, पञ्चसंहननान्विताः ॥९६॥
षट् पृथ्व्यन्तं च गच्छन्ति, चतुः संहननाङ्किताः ।
पापिनः सप्तपृथ्व्यन्तमादि संहननाङ्गिनः ॥९७॥

अर्थः—आदि के तीन नरको तक छह सहननों से युक्त जीव जन्म लेते है, पाचवें नरक पर्यन्त सृपाटिका को छोड कर शेष पाच संहनन वाले, छठवे नरक पर्यन्त सृपाटिका और कीलक को छोडकर शेष चार सहनन वाले तथा सातवे नरक में (७ वे नरक पर्यन्त) एक वज्रवृषभनाराचसहनन से यक्त पापी जीव ही जन्म लेते है ॥९६–९७॥

कौन जीव किस किस पृथ्वी तक जन्म ले सकते है ? इसका निदर्शन करते है :—

असंज्ञिनोऽति पापेन व्रजन्ति प्रथमां क्षितिम् ।
सरीसर्पा द्वितीयान्तं यान्त्युत्कृष्टकुपापतः ॥९८॥
मांसाशिपक्षिणः क्रूरास्तृतीयान्तं व्रजन्ति च ।
भुजङ्गमाश्चतुर्थ्यन्तमत्यन्तक्रूरकर्मभिः ॥९९॥
दंष्ट्रिणः सिंहव्याघ्राद्याः पञ्चम्यन्तं प्रयान्ति च ।
निःशीला अतिपापाढ्याः षष्ट्यन्तं योषिताः[1] क्रमात् ॥१००॥

१. योषितोऽशुभात् अ० ।

सप्तमीक्षितिपर्यन्तं महामत्स्याश्चिरायुषः ।
महापापभराक्रान्ता नराश्च यान्ति दुर्धियः ॥१०१॥

अर्थः—अत्यन्त पाप के कारण असञ्ज्ञी जीव प्रथम पृथ्वी तक ही जाते हैं। उत्कृष्ट पाप प्रवृत्ति से सरिसर्प दूसरी पृथ्वी (१ ली+२ री) पर्यन्त जाते है। मासभक्षी पक्षी क्रूर परिणामों के कारण तीसरी पृथ्वी पर्यन्त (१ ली से ३ री तक) जन्म लेते है।

अत्यन्त क्रूर कर्म रत होने से सर्प चौथी पृथ्वी (१ ली से ४ थी) पर्यन्त जन्म लेते है। दाढ वाले सिंह व्याघ्र आदि पाँचवी पृथ्वी पर्यन्त ही जाते है। शील रहित एव बहुत पाप से युक्त स्त्री छठवी पृथ्वी पर्यन्त तथा दीर्घ आयु को धारण करने वाले महामत्स्य और महापाप के भार से आक्रान्त और खोटी बुद्धि को धारण करने वाले मनुष्य सातवी पृथ्वी (१ ली से ७ वी) पर्यन्त जाते हैं ॥९८–१०१॥

विशेष —कर्मभूमि के मनुष्य एव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ही नरको मे उत्पन्न होते है।

कौन जीव किस नरक मे कितनी बार उत्पन्न हो सकता है, इसका विवेचन तीन श्लोको द्वारा करते है .—

उत्कृष्टेन स्वसन्तत्या सोऽसंज्ञी प्रथमावनौ ।
अष्टवारान् क्रमाद् गच्छेत् सरिसर्पोऽति पापतः ॥१०२॥
सप्तवारान् द्वितीयायां तृतीयायां खगो व्रजेत् ।
षड् वारांश्च चतुर्थ्यां हि पञ्चवारान् भुजङ्गमाः ॥१०३॥
पञ्चम्यां च चतुर्वारान् याति सिंहो निरन्तरम् ।
षष्ठ्यां योषित् त्रिवारां सप्तम्यां वारद्वय पुमान् ॥१०४॥

अर्थ —पाप के कारण यदि कोई असञ्ज्ञी जीव उत्कृष्ट रूप से प्रथम पृथ्वी में उत्पन्न हो तो आठ बार, सरीसर्प यदि वशा मे निरन्तर उत्पन्न हो तो सात बार, पक्षी यदि मेघा में निरन्तर उत्पन्न हो तो छह बार, सर्प यदि अञ्जना मे निरन्तर उत्पन्न हो तो पाच बार, सिंह यदि अरिष्टा मे निरन्तर हो तो चार बार, स्त्री यदि मघवी पृथ्वी मे निरन्तर उत्पन्न हो तो तीन बार और यदि कोई मत्स्य एव मनुष्य माघवी पृथ्वी मे उत्पन्न हो तो दो बार उत्पन्न हो सकते है ॥१०२–१०४॥

विशेष —नरक से निकला हुआ कोई भी जीव असञ्ज्ञी और सम्मूर्च्छन जन्म वाला नही होता तथा सातवे नरक से निकला हुआ कोई भी जीव मनुष्य नही होता । वहां से निकले हुये जीव को असञ्ज्ञी, मत्स्य और मानव पर्याय के पूर्व एक बार बीच मे क्रमशः सञ्ज्ञी तथा गर्भज तिर्यञ्च पर्याय धारण करनी ही पडती है। इसी कारण इन जीवो के बीच मे एक एक पर्याय का अन्तर होता है,

किन्तु सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिंह और स्त्री के लिये ऐसा नियम नही है, वे बीच में अन्य किसी पर्याय का अन्तर डाले बिना ही उत्पन्न हो सकते है।

नरक से निकलने वाले जीवों की उत्पत्ति का नियम कहते है :—

श्वभ्रेभ्यो निर्गता ये ते तिर्यग् नरगतिद्वये ।
कर्मभूमिषु जायन्ते गर्भजाः संज्ञिनः स्फुटम् ॥१०५॥
अवश्यं नारकाः क्रूरा निर्गताः सप्तमोक्षितेः ।
क्रूरजातिषु तिर्यक्त्वं लभन्ते श्वभ्रसाधकम् ॥१०६॥
निर्गत्य नरकाज्जीवाश्चक्रिशबलकेशवाः ।
तच्छत्रवो न जायन्ते चायान्त्येते च्युता दिवः ॥१०७॥
चतुर्थनरकादेत्य न स्युस्तीर्थकरा भुवि ।
निर्गत्य पञ्चमश्वभ्राच्चरमाङ्गा भवन्ति न ॥१०८॥
जीवाः षष्ठात् किलागत्य जायन्ते यतयो न च ।
सप्तमश्वभ्रतः सासादना मिश्राद्दगङ्किताः ॥१०९॥

अर्थः—प्रथम पृथ्वी से षष्ठ पृथ्वी तक के नारकी जीव नरक से निकलकर मनुष्य और तिर्यञ्च इन दो गतियो में कर्मभूमिज, गर्भज (पर्याप्तक) और संज्ञी होते है, तथा सातवी पृथ्वी से निकले हुये क्रूर स्वभावी नारकी जीव पुनः नरक के साधन भूत क्रूर स्वभाव वाला जाति मे तिर्यञ्चपने को प्राप्त करते है अर्थात् सातवी पृथ्वी से निकले हुये नारकी जीव नियम से कर्मभूमिज, गर्भज, पर्याप्तक और सज्ञी तिर्यञ्च होते हैं ॥१०५-१०६॥

विशेष —नरको से निकले हुये जीव देव, नारकी, भोगभूमिज, असंज्ञी, लब्ध्यपर्याप्तक और सम्मूर्च्छन नही होते।

नरक से निकले हुये जीव चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण नहीं होते। ये उपर्युक्त पदवीधारी जीव तो स्वर्ग से च्युत होकर ही आते है। चतुर्थ नरक से निकला हुआ जीव तीर्थङ्कर नहीं होता। पञ्चम नरक से निकले हुये चरमशरीरी नही होते। षष्ठ पृथ्वी से निकले हुये सकलसंयमी नही होते और सप्तम पृथ्वी से निकले हुये नारकी जीव सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नहीं होते ॥१०७-१०९॥

नरकस्थ दुर्गन्धित मिट्टी की भीषणता का विवेचन करते है:—

प्रथमे पटले निन्द्य पूतिगन्धोऽति दुस्सहः ।
मृत्तिकाया भ्रमेद् व्यापन् क्रोशार्धं घ्राणदुःखदः ॥११०॥

ततोऽधोधः समस्तान्य पटलेष्वप्यनुक्रमात् ।
अन्तिमं पटलं यावत् क्रोशार्धं स प्रवर्धते ।।१११।।

अर्थ —प्रथम पटल मे निन्दनीय, खोटी दुर्गन्ध युक्त, अति दुस्सह और घ्राण इन्द्रिय को दुःख देने वाली मिट्टी अर्ध कोश पर्यन्त फैलती है, और उससे नीचे नीचे के सम्पूर्ण अन्य पटलो मे अनुक्रम से अर्ध अर्ध कोश वृद्धिङ्गत होते हुये अन्तिम पटल मे उसका फैलाव २४½ कोस हो जाता है ।।११०-१११।।

अस्यैव विस्तर ब्रुवे —

घर्माया प्रथमे प्रतरे मृत्तिकादुर्गन्ध क्रोशार्ध प्रसरति । द्वितीये क्रोश च । तृतीये सार्धक्रोश । चतुर्थे द्वौ क्रोशौ । पञ्चमे सार्धक्रोशद्वयं । षष्ठे क्रोशत्रय । सप्तमे सार्ध क्रोशत्रय । अष्टमे चतु क्रोशाश्च। नवमे सार्ध चतुःक्रोशान् । दशमे पञ्च क्रोशान् । एकादशे सार्ध पञ्च क्रोशान् । द्वादशे षट् क्रोशान् । त्रयोदशे मृत्तिका दुर्गन्धः सार्धषट्क्रोशान् व्याप्नोति ।। वशाया आदिमे प्रतरे मृत्तिका दुर्गन्ध सप्त क्रोशान् प्रसरेत् । द्वितीये सार्धसप्तक्रोशाश्च । तृतीये अष्टक्रोशाश्च । चतुर्थे सार्धाष्टक्रोशान् । पञ्चमे नवक्रोशान् । षष्ठे सार्ध नवक्रोशान् । सप्तमे दशक्रोशान् । अष्टमे सार्धदशक्रोशान् । नवमे एकादशक्रोशान् । दशमे सार्धैकादशक्रोशान् । एकादशे द्वादश क्रोशान् मृतिकादुर्गन्धो भ्रमेत् । मेघाया. प्रथमे पटले मृत्तिकादुर्गन्धः सार्धद्वादशक्रोशान् व्रजति । द्वितीये त्रयोदशक्रोशाश्च । तृतीये सार्धत्रयोदशक्रोशान् । चतुर्थे चतुर्दशक्रोशान् । पञ्चमे सार्धचतुर्दशक्रोशान् । षष्ठे पञ्चदशक्रोशान् । सप्तमे सार्धपञ्चदशक्रोशान् । अष्टमे षोडशक्रोशान् । नवमे सार्धषोडशक्रोशाश्च । अञ्जनाया आदिमे प्रतरे मृत्तिकादुर्गन्ध सप्तदशक्रोशान् गच्छेत् । द्वितीये सार्धसप्तदशक्रोशान् । तृतीये अष्टादशक्रोशान् । चतुर्थे सार्धाष्टादशक्रोशान् ।

पञ्चमे एकोनविंशति क्रोशान् । षष्ठे सार्द्धैकोन विंशतिक्रोशान् । सप्तमे विंशति क्रोशाश्च । अरिष्टाया प्रथमे पटले मृत्तिकादुर्गन्ध सार्धविंशतिक्रोशान् भ्रमति । द्वितीये एकविंशतिक्रोशाश्च । तृतीये सार्धैकविंशतिक्रोशान् । चतुर्थे द्वाविंशतिक्रोशान् पञ्चमे सार्धद्वाविंशतिक्रोशाश्च । मघव्या आदिमे प्रतरे मृत्तिकादुर्गन्ध त्रयोविंशतिक्रोशान् गच्छेत् । द्वितीये सार्धत्रयोविंशति क्रोशान् । तृतीये चतुर्विंशति क्रोशाश्च । माघव्या पटले मृत्तिकादुर्गन्धः सार्धचतुर्विंशति क्रोशान् प्रसरति ।

नारकी जीव मिट्टी का आहार करते है । प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल के आहार-की वह मिट्टी यदि मनुष्य लोक मे आ जावे तो वह अपनी दुर्गन्ध के द्वारा अर्ध कोस के भीतर स्थित प्राणियो का सहार कर सकती है । आगे वह पटल क्रम से उत्तरोत्तर अर्ध अर्ध कोस अधिक क्षेत्र मे स्थित जीवो का विघात कर सकती है । उपर्युक्त गद्य मे उस मिट्टी की दुर्गन्ध के इसी प्रसार क्रम का वर्णन किया है जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नाकित तालिका मे निहित है ।

प्रत्येक पटल गत मिट्टी की दुर्गन्धता के प्रसार का प्रमाण

घर्मा		वशा		मेघा		अञ्जना		अरिष्टा		मघवी		माघवी	
पटल संख्या	प्रसार का प्रमाण	पटल संख्या	प्रमाण	पटल संख्या	प्रमाण	पटल सं०	प्रमाण	पटल सं०	प्रमाण	पटल सं०	प्रमाण	पटल सं०	प्रमाण
१	१/२ कोस	१	७ कोस	१	१२ १/२ ,,	१	१७ कोस	१	२० १/२ कोस	१	२३ कोस	१	२४ १/२ कोस
२	१ ,,	२	७ १/२ ,,	२	१३ ,,	२	१७ १/२ ,,	२	२१ ,,	२	२३ १/२ ,,		
३	१ १/२ ,,	३	८ ,,	३	१३ १/२ ,,	३	१८ ,,	३	२१ १/२ ,,	३	२४ ,,		
४	२ ,,	४	८ १/२ ,,	४	१४ ,,	४	१८ १/२ ,,	४	२२ ,,				
५	२ १/२ ,,	५	९ ,,	५	१४ १/२ ,,	५	१९ ,,	५	२२ १/२ ,,				
६	३ ,,	६	९ १/२ ,,	६	१५ ,,	६	१९ १/२ ,,						
७	३ १/२ ,,	७	१० ,,	७	१५ १/२ ,,	७	२० ,,						
८	४ ,,	८	१० १/२ ,,	८	१६ ,,								
९	४ १/२ ,,	९	११ ,,	९	१६ १/२ ,,								
१०	५ ,,	१०	११ १/२ ,,										
११	५ १/२ ,,	११	१२ ,,										
१२	६ ,,												
१३	६ १/२ ,,												

नारकियों के अवधि क्षेत्र का प्रमाण कहते है :—

एक योजनपर्यन्तं घर्मायामवधिर्मतः ।
सार्धक्रोशत्रयं स्याच्च वंशायां नारकांगिनां ॥११२॥
मेघायां च त्रिगव्यूतिरञ्जनायां भवोद्भवः ।
सार्धक्रोशद्वयान्तं चारिष्टायां क्रोशयुग्मकम् ॥११३॥
मघव्यां सार्धगव्यूतिरवधिर्वैर सूचकः ।
भवप्रयय एवाहो माघव्यां क्रोशसम्मितः ॥११४॥

अर्थ —घर्मा पृथ्वी के नारकी जीव वैर भाव का सूचक अपने भवप्रत्यय अवधिज्ञान से एक योजन पर्यन्त, वशा पृथ्वी के नारकी जीव ३½ कोश, मेघा के ३ कोश, अञ्जना के २½ कोस, अरिष्टा के २ कोस, मघवी के १½ कोस और माघवी पृथ्वी के नारकी जीव मात्र १ कोस पर्यन्त जान सकते है, (इसके आगे नही) ॥११२–११४॥

प्रथमादि पृथ्वियो मे उत्कृष्ट रूप से जन्म मरण का अन्तर कहते हैं —

प्रथमे नरके ज्येष्ठ–मुत्पत्तौ मरणेऽन्तरम् ।
चतुर्विंशतिसंख्याता मुहूर्ता द्वितीयेंगिनाम् ॥११५॥
दिनानि सप्त च श्वभ्रे, तृतीये पक्ष संख्यकम् ।
चतुर्थे चैक मासो हि पञ्चमे मास युग्मकम् ॥११६॥
षष्ठे मास चतुष्कं च सप्तमे नरकात्मनाम् ।
षण्मासा अन्तरं निःस–रण प्रवेशयोर्महत् ॥११७॥

अर्थ —यदि कोई भी जीव प्रथम पृथ्वी मे जन्म या मरण न करे तो अधिक से अधिक २४ मुहूर्त तक, द्वितीय मे ७ दिन तक, तृतीय मे १ पक्ष तक, चतुर्थ मे १ माह तक, पञ्चम मे २ माह तक, षष्ठ मे ४ माह तक और सप्तम पृथ्वी मे उत्कृष्टत ६ माह तक न करे ॥११५–११७॥

अब नारक पृथ्वियो मे अति उष्ण और अति शीत का विभाग करते है :—

पृथिवीषु चतुराद्यासु तीव्रमुष्णं च केवलं ।
पञ्चम्यां हि चतुर्भागानां त्रिभागेषु दुस्सहम् ॥११८॥
पञ्चम्याश्च चतुर्थे हि, भागे षष्ठ्यां दुराश्रयम् ।
सप्तम्यां शैत्यमत्यन्तं, सर्वांगदाहकं महत् ॥११९॥

द्व्यशीतिलक्ष्यसंख्यानि, बिलान्युष्णानि केवलम् ।
पञ्चविंशसहस्राधिकानि दुःखाकराणि च ॥१२०॥
लक्षैकाणि भवेयुः सह–स्राणि पञ्चसप्ततिः ।
विश्वदुःख निधानानि, ह्यतिशैत्यविलानि च ॥१२१॥

अर्थः—रत्नप्रभा आदि चार पृथ्वियो में और पञ्चम पृथ्वी के ३/४ भाग पर्यन्त स्थित बिलों में अत्यन्त उष्ण वेदना है, तथा पञ्चम पृथ्वी के अवशेष १/४ भाग से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त स्थित बिलों में सम्पूर्ण अङ्गों को दाह करने वाली अत्यन्त शीत वेदना है। इस प्रकार ३००००००+२५००००० +१५०००००+१००००००+(३०००००/४ × ३) २२५०००=८२२५००० (ब्यासी लाख पच्चीसहजार) विलों में भयङ्कर दुःख उत्पन्न करने वाली मात्र उष्ण वेदना है और (३०००००×१/४) =७५०००+ ९९९९९+५=१७५००० (एक लाख पचहत्तर हजार) विलों में सम्पूर्ण दुःखों के स्थान स्वरूप शीत वेदना है ॥११८–१२१॥

नरक वेदना का वेदन करने वाले भावी तीर्थङ्कर जीवों की विशेष व्यवस्था का वर्णन करते हैः—

आगामितीर्थकर्तॄणां नारकासातभागिनाम् ।
शेषोद्धरित षण्मासि[1] चापि दुःकर्मभोगिनाम् ॥१२२॥
यदा तदासुरा एत्य नरकत्रयभूमिषु ।
निवारयन्ति तद् भक्त्योपसर्गांश्च कदर्थनाम् ॥१२३॥

अर्थः—जो भविष्य में तीर्थङ्कर होने वाले है, नरक जन्य असाता और दुःखों का वेदन कर रहे है ऐसे रत्नप्रभा से तृतीय पृथ्वी पर्यन्त स्थित तीर्थङ्कर प्रकृति के बन्ध व सत्त्व वाले नारकी जीवों की आयु में जब ६ माह अवशेष रहते है तव असुर कुमार जाति के देव (भावी तीर्थंकर की) भक्ति से प्रेरित होकर उनके उपसर्ग एवं पीड़ाओं का निवारण कर देते हैं ॥१२२–१२३॥

रत्नत्रय धर्म के आचरण करने की प्रेरणा —

इति बहुविधरूपाऽ-धःस्थ लोकं विदित्वा,
जिनवरगणिनोक्तं विश्वदुःखैकवार्द्धिम् ।
दृगवगमचरित्रै-स्तद्विहान्यै शिवाप्त्यै,
चरत कुनरकघ्नं दुःखभीताः सुधर्म्मम् ॥१२४॥

अर्थः—इस प्रकार जिनेन्द्र एवं गणधर देवों द्वारा नाना प्रकार से कथित, सम्पूर्ण दुःखों का समुद्र ऐसे अधोलोक का स्वरूप जानकर सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के द्वारा उन

१ षण्मासायुषि अ० ज० न०

दु खो के निवारण (विनाश) हेतु और मोक्ष सुख की प्राप्ति हेतु दु खो से भयभीत भव्यजन कुगति को नाश करने वाले रत्नत्रय स्वरूप धर्म का आचरण करे ॥१२४॥

अधिकारान्त मङ्गल ।—

धर्मः स्वर्गगृहाङ्गणः सुखनिधि–[1]र्धर्मोथकर्मौघहा,
धर्मः श्वभ्र निवारकोऽसुखहरो, धर्मोगुणैकार्णवः ।
धर्मोमुक्ति निबन्धनो निरुपमः, सर्वार्थसिद्धिप्रदो,
यः सोऽत्राचरितो मया सुचरणै-र्मेऽस्तु स्तुतः सिद्धये ॥१२५॥

इति श्री सिद्धान्तसारदीपके महाग्रन्थे भट्टारक श्री सकलकीर्ति विरचिते अधोलोके श्वभ्रस्वरूप वर्णनोनाम द्वितीयोधिकारः ॥२॥

अर्थः—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है लक्षण जिसका ऐसा धर्म स्वर्गरूप गृह का आगन है, सुख का खजाना है, कर्म समूह को नाश करने वाला है, नरको का निवारक है। ऐसा धर्म ही गुणो का अद्वितीय समुद्र है, मुक्ति का निबन्धक है, उपमातीत है, सर्व अर्थो (प्रयोजनो) की सिद्धि करने वाला है, तथा जो चारित्रवानो के द्वारा आचरित और मेरे द्वारा स्तुत्य है ऐसा वह रत्नत्रय धर्म मेरी सिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिये हो ॥१२५॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा रचित सिद्धान्तसार दीपक नाम महाग्रन्थ के अन्तर्गत अधोलोक मे श्वभ्रस्वरूप का वर्णन करने वाला दूसरा अधिकार समाप्त हुआ।



---

१ अ ब स प्रतौ धर्मोघहन्तामहान् ।

तृतीयोधिकारः

मङ्गलाचरण :—

अधोगत्येनसां हंतॄीन् स्वर्भुक्तिमुक्तिकारकान् ।
जगद्धितान् जिनान् वन्दे तद्गत्यै धर्मचक्रिणः ॥१॥

अर्थः—अधोगति के जनक पापाचरणों को नाश करने वाले, स्वर्ग एवं मोक्ष सम्पदा प्राप्त कराने वाले, जगत् हितकारक, धर्मचक्रवर्ती जिनेन्द्र भगवान् को मै उनकी गति –मोक्ष की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अधिकार लिखने की प्रतिज्ञा एवं उसका कारण :—

अथ वक्ष्ये स्वरूपादीन् दुःखौघान्यशुभानि च ।
श्वभ्रेषु नारकाणां कुपापिनां भीतिहेतवे ॥२॥

अर्थः—अब मै पापी जीवों को भय उत्पत्ति के हेतु नरक बिलों में रहने वाले नारकी जीवों का दु.खसमूह से युक्त और महा अशुभ स्वरूप आदि कहूँगा ॥२॥

वहाँ के बिलों का स्वरूप :—

घनवज्राऽशुभा भित्तिभागा व्रणसमानकाः ।
वृत्तत्रिचतुरस्रादिनानाकाराः शुभाऽतिगाः ॥३॥
बन्दीगेहाधिकातीवबीभत्सास्तासु भूमिषु ।
विश्वदुःखाकरीभूता बिलौघाः सन्ति भीतिदाः ॥४॥

अर्थः—शरीर में उत्पन्न हुये व्रण (घाव या फोड़े) के सदृश (मुख सकरा भीतर चौड़ा) वहां के बिलों की भूमियां एवं दीवाले वज्र के समान कठोर और अशुभ हैं, जो गोल त्रिकोण एवं चतुष्कोण आदि नाना प्रकार के आकार वाली है । तथा वहां के विल यहां के कारागृहों से भी अति अधिक ग्लानि युक्त सम्पूर्ण दु.खो के स्थान और भय उत्पन्न कराने वाले है ॥३–४॥

नरक भूमियो का स्पर्श एवं दुर्गन्ध का कथन :—

सहस्रवृश्चिकेभ्योऽपि दष्टेभ्योधिक वेदना ।
वज्रकण्टकसङ्कीर्ण श्वभ्रभूस्पर्शनाद् भवेद् ।।५।।
मार्जारश्वानगोमायु दंष्ट्रि खगादिदेहिनाम् ।
तत्रात्यऽशुभदुर्गन्धाः स्युः कलेवरराशयः ।।६।।

अर्थ.—एक साथ हजारों बिच्छुओ के काटने पर जो वेदना होती है उससे भी अधिक वेदना वज्रमय काटो से व्याप्त नरक भूमि के स्पर्श मात्र से होती है।

बिल्ली, कुत्ता, शृगाल, व्याघ्र, हाथी और पक्षियो के मृतक शरीरों की राशि समूह से जो दुर्गन्ध निकलती है उससे भी अति अशुभ और भयङ्कर दुर्गन्ध वहां निरन्तर व्याप्त रहती है ।।५-६।।

नरक स्थित नदी, वन, वृक्ष एव पवन का विवेचन :—

क्षारश्रोणितदुर्गन्धवारि वीचिचयाकुलाः ।
वहन्ति वैतरण्याख्या नद्योऽत्र मांसकर्दमाः ।।७।।
असिपत्रनिभैः पत्रैराकीर्णानि ह्यनेकशः ।
दुराश्रयाणि सन्त्यासु चासिपत्रवनानि वै ।।८।।
अधोमध्याग्रभागेषु सर्वत्र तीक्ष्णकण्टकैः ।
चिताः शाल्मलिवृक्षौघाः भवन्ति ते दुःखस्पृशाः ।।९।।
किरन्तोऽग्निकणाभानि रजांसि वायवोऽशुभाः ।
तेषु वान्त्यऽतिदुःस्पर्शाः सर्वाङ्गदुःखहेतवः ।।१०।।

अर्थः—उन नरक भूमियों मे मासरूप कीचड और क्षार एवं दुर्गन्धित रक्त रूप जल की कल्लोलो से व्याप्त वैतरणी नाम की नदियाँ वहती है । उन नरको मे असिपत्र के सदृश है पत्ते जिनमें ऐसे वृक्षो से युक्त अनेक असिपत्र नाम के वन है जो नारकी जीवों को दुःखसमूह की उत्पत्ति के कारणभूत है जिनका स्पर्श अति दुखद है और जो जड़ भाग से मस्तक पयन्त तीक्ष्ण काटो से युक्त है ऐसे शालमलि नाम के वृक्ष समूहो से वे नरकभूमियाँ व्याप्त है। जिसका स्पर्श सम्पूर्ण शरीर को भयङ्कर दुःख का कारण है, जो असुहावनी है और जिसमे खिरने वाले अग्नि कणो के सदृश रज का मिश्रण है ऐसी वायु वहाँ नित्य हो वहती रहती है ।।७-१०।।

विक्रियाजन्य पशुपक्षियो का स्वरूप :—

भीमा गिरिगुहा बह्वयः सिंहव्याघ्रादिभिर्भृताः ।
क्रूरैर्मासाशिभिर्नागैर्भवन्ति नरकेषु च ।।११।।

वज्रचञ्चुपुटाः क्रूराः पक्षिणोऽतिभयङ्कराः ।
उत्पतन्ति वनेष्वत्र नारकाङ्गादिभक्षकाः ।।१२।।

अर्थ.—नरकों में पर्वतों की भयङ्कर गुफाएँ हैं, जो सदा नागों, सिंहों और व्याघ्र आदि मांसभक्षी एवं क्रूर परिणामी पशुओं से व्याप्त रहतीं है, तथा वहाँ के वनों में वज्र के सदृश कठोर चोंच वाले दुष्ट और भयङ्कर पक्षी उड़ते रहते है जो नारकियों के शरीर का भक्षण करके उन्हें दुःख पहुँचाते है ।।११-१२।।

विशेषः—नारकी जीवों के वैक्रियक शरीर होता है जो सप्तधातुओं से रहित होता है और अपृथक् विक्रिया के प्रभाव से नारकी जीव स्वय पशु पक्षियों का रूप धारण कर लेते है अतः वहाँ मांस भक्षण आदि की मात्र क्रिया ही होती है अर्थात् उस प्रकार की क्रियाओं के द्वारा वे एक दूसरों को दु.ख देते है । यथार्थ में मांस भक्षण आदि नही करते ।

संवेग उत्पादक अन्य भयङ्कर स्वरूप का वर्णन .—

करपत्रसमातीव कर्कशाङ्गाः कुरूपिणः ।
कुत्सिता हुण्डसंस्थाना रक्तनेत्र भयानकाः ।।१३।।
रौद्ररूपाश्च दुःप्रेक्षा दुःखदानैक पण्डिताः ।
विकरालमुखाः क्रूरा रौद्रध्यानपरायणाः ।।१४।।
प्रचण्डा कालरूपाढ्या–स्तीव्ररोषाः कषायिणः ।
निर्दया नारका निन्द्या निन्द्यकर्मकराः खलाः ।।१५।।
संख्यातिगा वसन्त्येषु, नपुंसकाः कलिप्रियाः ।
विश्वदुःखाब्धि मध्यस्था–निःकारणरणोद्धता ।।१६।।
व्याघ्रसिंहादिरूपाद्यै-र्नाना प्रहरणादिभिः ।
स्वेच्छया विक्रियन्ते ते, रणायविक्रियांगताः ।।१७।।
विभङ्गावधि कुज्ञानं, प्राग्वैरभवसूचकम् ।
सहजं नारकाणां स्या–त्स्वान्येषां दुःखकारणम् ।।१८।।

अर्थः—नरक भूमियों में जो नारकी जीव रहते हैं, उनके शरीर असिपत्र के सदृश अत्यन्त कठोर और तीक्ष्ण होते है । उनका रूप ग्लानि उत्पादक, रौद्र, कुत्सित और दुष्प्रेक्ष्य (अदर्शनीय) होता है । भयानक और लाल लाल नेत्रों वाले उन जीवों का संस्थान हुण्डक, मुख विकराल और परिणाम अति रौद्र एवं क्रूर होता है । वे एक दूसरे को दुःख देने में अत्यन्त चतुर होते हैं । प्रचण्ड काल

के सदृश वर्ण वाले, तीव्र क्रोध के साथ साथ सम्पूर्ण कषायो के वशीभूत, निर्दय निन्द्य तथा निरन्तर निन्द्य कार्यो मे ही रत, दुष्ट स्वभावी, कलह प्रिय, नपुंसक वेद से युक्त और सम्पूर्ण दु खों के समुद्र वे नारकी जीव निष्कारण युद्ध करने के लिये उद्धत रहते है। युद्ध के लिये भयकर सिंह व्याघ्र आदि के रूप एवं नाना प्रकार के शस्त्र आदि वना लेने मे वे स्वच्छन्दता पूर्वक विक्रिया करते रहते है उन नारकी जीवो को पूर्व भव के बैर की सूचना आदि देने की शक्ति से समर्थ विभङ्गावधि खोटा ज्ञान सहज हो होता है जिससे वे परस्पर मे एक दूसरे को दुःख देते हुये स्वय भी दुःखी होते है ।।१३–१८।।

नरको मे रोग जन्य वेदना का कथन :—

कुष्ठोदरव्यथाशूलादयो ये दुस्सहा भुवि ।
रोगास्ते नारकाङ्गेषु सर्वे सन्ति निसर्गतः ।।१९।।

अर्थः—भुवि–मध्यलोक मे कुष्ट एवं उदरशूल आदि जितने भी दुस्सह दुःख देने वाले रोग है वे सम्पूर्ण रोग स्वभाव से ही नारकियो के शरीर मे एक साथ होते है ।।१९।।

विशेषार्थ —नरको मे होने वाली रोग जनित पीडा का दिग्दर्शन मध्यलोक के कुष्टादि रोगो से कराया गया है। मूलप्रति के टिप्पण में मध्यलोक के ३½ हाथ की ऊँचाई वाले शरीर के रोगो का प्रमाण निकाल कर उसे सप्तम नरक के रोगो का प्रमाण बनाया है और शेष नरको में उसका अर्ध अर्ध प्रमाण ग्रहण किया है।

यथा·—शरीर के उत्सेध का प्रमाण ३ हाथ १२ अगुल है। इसके सम्पूर्ण अंगुल { (३×२४) +१२ } =८४ होते है। इन ८४ अगुलो के (८४×८४×८४) =५९२७०४ घनागुल हुये। जबकि एक (१×१×१) घनागुल मे ९६ रोग हाते है तब ५९२७०४ घनागुलो मे कितने रोग होगे ? ऐसा त्रैराशिक करने पर सम्पूर्ण रोगो की सख्या का प्रमाण (५९२७०४×९६) =५६८९९५८४ प्राप्त होती है और टिप्पणकार के द्वारा सप्तम नरक के रोगो का यही प्रमाण माना गया है। इसका अर्धभाग अर्थात् ($\frac{५६८९९५८४}{२}$) =२८४४९७९२ छठवे नरक के रोगों का प्रमाण है। इसका अर्धभाग अर्थात् $\frac{२८४४९७९२}{२}$ =१४२२४८९६ पाँचवे नरक के, ७११२४४८ चौथे नरक के, ३५५६२२४ तीसरे नरक के, १७७८११२ दूसरे नरक के और ८८९०५६ प्रथम नरक के रोगो का प्रमाण है। इन सवका योग करने पर ५६८९९५८४+२८४४९७९२+१४२२४८९६+७११२४४८+३५५६२२४+१७७८११२+८८९५०५६ =११२९१०११२ अर्थात् ११ करोड २९ लाख १० हजार एक सौ वारह प्रकार के रोग (नरको मे) प्राप्त होते है।

नरको की क्षुधातृपाजन्य वेदना का वर्णन —

कृत्स्नान्न भक्षणासाध्या, सर्वाङ्गोद्वेगकारिणी ।
नारकाणां क्षुधातीव्रा, जायतेऽन्तःप्रदाहिनी ॥२०॥
तया बाह्यान्तरङ्गेषु, तरां सन्तापिताश्च ते ।
अशितुं तिलतुल्यान्नं, लभन्ते जातु नाशुभात् ॥२१॥
समुद्रनीरपानाद्यै–रशाम्या तृट् कुवेदना ।
विश्वाङ्गशोषिका तीव्रो–त्पद्यते श्वभ्रजन्मिनाम् ॥२२॥
तयातिदग्धकायास्ते, नारका दुःखविह्वलाः ।
बिन्दुमात्रं जलं पातुं, प्राप्नुवन्ति न पापतः ॥२३॥

अर्थ :—नारकी जीवों के हृदय को दग्ध कर देने वाली, सम्पूर्ण अङ्गों में उद्वेग उत्पन्न करने वाली तथा (तीन लोक के) सम्पूर्ण अन्न का भक्षण करने पर भी जो शमन को प्राप्त न हो ऐसी तीव्र क्षुधा वेदना उत्पन्न होती है। उससे बाह्य और अतरंग में अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न होता है किन्तु अशुभ कर्म के योग से उन्हें तिल के बराबर भी अन्न कभी खाने को नहीं मिलता ॥२०–२१॥

समुद्र के सम्पूर्ण जलपान द्वारा भी जो शमन को प्राप्त न हो ऐसी सर्वाङ्गों को शोषित करने वाली तीव्र तृषा वेदना उन नारकी जीवों के उत्पन्न होती है, जिससे शरीर अति दग्ध हो जाता है और वे नारकी जीव निरन्तर अति विह्वल होते रहते हैं, फिर भी पाप कर्म के उदय से उन्हें कभी विन्दु मात्र भी जल पीने को प्राप्त नही होता ॥२२–२३॥

नरक गत शीत उष्ण वेदना का कथन :—

ज्वलन्ति नारकावासाः सदान्तर्दुस्सहोष्मभिः ।
अन्धकाराकुला निन्द्याः पूर्णा नारकपापिभिः ॥२४॥
लक्षयोजनमानोऽयः पिण्ड क्षिप्तोत्र तत्क्षणम् ।
बहूष्मानलतापाद्यैः शतखण्डं प्रयाति भोः ॥२५॥
शीतश्वभ्रेषु निक्षिप्तोऽयः पिण्डो मेरुमानकः ।
सद्यो विलीयते तीव्रतुषाराद्यैर्न संशयः ॥२६॥

अर्थः—निरन्तर दुस्सह अन्तर्दाह में जलने वाले पापी जीवों से जो परिपूर्ण हैं, अन्धकार से व्याप्त हैं और निन्द्यनीय है, ऐसे नारकावास सतत् उष्ण रहते है। भो भव्यजनो ! ऐसे उन गरम नारकावासों में यदि एक लाख योजन का (सुमेरु सदृश) गोला भी डाल दिया जाय तो वह भी वहाँ की भयङ्कर अग्नितापके द्वारा सैकड़ों खण्डों को प्राप्त हो जाता है। शीत बिलों में यदि मेरुपर्वत के

समान लोह का पिण्ड डाल दिया जाय तो वह तीव्र तुषार के कारण शीघ्र ही विलीन हो जाता है इसमें सशय नही है ॥२४-२६॥

विभिन्न प्रकार के दु खो का विवेचन:—

यत् किञ्चिद् दुःखदं द्रव्यं पञ्चाक्षाङ्गमनोऽप्रियम् ।
तत् सर्व तेषु तेषां स्यात् पिण्डितं पापकर्मभिः ॥२७॥

अर्थ —पञ्चेन्द्रियो के विषय सम्बन्धी जितने भी दु ख उत्पादक, अप्रिय एव अभोग्य पदार्थ है, वे सब पापकर्म के उदय से नरकों मे उन नारकी जीवो के लिये एकत्रित है ॥२७॥

इत्यशर्मनिधानेषु पापिनः पापपाकतः ।
अधोमुखाः पतन्त्येषु पापिनामुन्नतिः कुतः ॥२८॥

अर्थ —इस प्रकार दु खों के निदान स्वरूप इन नरको मे पापी जीव पापोदय से अधोमुख गिरते है, क्योकि पापियो की ऊर्ध्वगति कहाँ ? अर्थात् पाप के भारसे युक्त जीव ऊपर कैसे जा सकते हैं ॥२८॥

तत्रात्युष्णाग्निसन्तप्ता वराकाः पतिताश्च ते ।
निपतन्त्युत्पतन्त्याशु तप्तभ्राष्ट्रतिला इव ॥२९॥

अर्थः—जिस प्रकार तप्त भार मे डाले गये तिल (या चना आदि अन्य धान्य) तुरन्त ही ऊपर उचट कर फिर नोचे गिरते है, उसी प्रकार वे बेचारे दीन नारकी जीव अग्नि से सन्तप्त अति उष्ण भूमि मे पडने के वाद शीघ्र ही (अनेको बार) ऊपर उछल उछल कर नीचे गिरते है ॥२९॥

ततोऽति वेदनाक्रान्तास्ते तत्क्षेत्रं भयानकम् ।
प्रचण्डान्नारकान् वीक्ष्येतिचित्ते चिन्तयन्ति च ॥३०॥
अहो ! निन्द्यमिद क्षेत्रं किमापदां किलाकरम् ।
केऽमी च नारका रौद्रा मारणैकपरायणाः ॥३१॥
नचात्र स्वजनः स्वामी भृत्यो वा जातु दृश्यते ।
निमेषार्धं सुखं सारं सुखकृद् वस्तु नो परम् ॥३२॥

अर्थः—इस प्रकार उस क्षेत्र सम्बन्धी भयङ्कर वेदना से आक्रान्त जब वे नारकी जीव अन्य भयावह नारकियो को देखते है, तब विचार करते है कि हाय ! आपदाओ की खान स्वरूप यह निन्द्य क्षेत्र कौन है ? मारकाट मे परायण ये दुष्ट नारकी कौन है ? यहाँ कही भी मेरे कोई कुटुम्बी

जन, स्वामी और नौकर आदि दिखाई नहीं देते, तथा न अर्धनिमेष मात्र सुख और न सुख उत्पन्न करने वाली अन्य कोई वस्तुएँ ही दिखाई देती है ॥३०-३२॥

वयं केन त्विहानीता रौद्रस्थाने कुकर्मणा ।
कृत्स्न दुःखाकरीभूते पापारिकवलीकृताः ॥३३॥

अर्थः—खोटे कर्मो में रत और पापी शत्रुओं द्वारा भक्षण किये जाने वाले हम सब इस सम्पूर्ण दु खों के खान स्वरूप रौद्र स्थान में किस पापकर्म के द्वारा लाये गये है ॥३३॥

पूर्व जन्म में किये हुये पापों का चिन्तन एवं पश्चाताप:—

इत्यादि चिन्तनात्तेषां प्रादुर्भवति दुःखदः ।
विभङ्गावधिरेव स्व प्राग्जन्म वैरसूचकः ॥३४॥
तेन विज्ञायते सर्वं[1] भवानाचारमञ्जसा ।
पश्चात्तापाग्नि सन्तप्ताः शोचन्तीति स्वदुर्विधीन् ॥३५॥
अहो ! दुष्कर्मकोटीभिरस्माभिः स्वात्मनाशकम् ।
यन्निन्द्यमर्जितं पापं महत् पञ्चाक्षवञ्चितैः ॥३६॥
तेनास्माकं निरौपम्या दुःखक्लेशादि कोटयः ।
प्रादुरासन् जगन्निन्द्या अस्मिन् क्षेत्रे सुखातिगे ॥३७॥

अर्थः—इस प्रकार के चिन्तन मात्र से उन नारकी जोवों को अपने पूर्व जन्म के वैर का सूचक और दु.ख उत्पत्ति का कारण कुअवधिज्ञान (जातिस्मरणज्ञान) स्वयं प्रगट हो जाता है । जिसके द्वारा वे अपने पूर्व भव के अनाचारों को और अपनो सम्पूर्ण दुष्ट क्रियाओं को शीघ्र ही जान लेते हैं, अत. पश्चाताप की अग्नि से सन्तप्त होते हुये इस प्रकार विचार करते है कि अहो ! पञ्चेन्द्रियों के विषयों से ठगे हुये एवं करोडों दुष्कर्मो के द्वारा हमने अपनी आत्मा के नाशक अत्यन्त निन्द्य जो महान पाप अर्जित किये हैं, उनके द्वारा ही इस दु.खदाई क्षेत्र में निन्दनोय और उपमा रहित करोडों दुःख एवं क्लेश प्रगट हो रहे है ॥३४-३७॥

हा ! सर्षपाक्षसौख्यार्थं लम्पटैस्तदघं कृतम् ।
अस्माभिः प्राग् भवे येनाभूद् दुःखं मेरुसम्मितम् ॥३८॥

अर्थ.—हा ! पूर्व जन्म में इन्द्रिय लम्पट होकर मैंने सरसों बरावर इन्द्रिय सुखों के लिये जो पाप किये थे उनसे ये मेरु सदृश दुःख मुझे प्राप्त हो रहे है ॥३८॥

---

१ पूर्व अ०

अभक्ष भक्षण और पाच पापों का चिन्तन —

यतोऽति विषयासक्त्या, खादितानि बहूनि च ।
अखाद्यान्यशुभापेया–नि पीतानि स्वशर्मणे ।।३९।।
अस्माभिर्निर्दयैः पूर्वं, जीवराशिर्हतो बलात् ।
असत्यकटुकादीनि, दुर्वचांस्युदितानि च ।।४०।।
हृतानि परवस्तूनि, मायाकौटिल्यकोटिभिः ।
सेविताः पररामाद्या दौष्ट्याद् रागान्धमानसैः ।।४१।।
भूयान् परिग्रहो लोभान्, मेलितः स्वाक्षशर्मणे ।
बह्वारम्भः कृतो नित्यम् श्रीस्त्रीकुटुम्बहेतवे ।।४२।।

अर्थ —अपने इन्द्रिय सुख के लिये विषयासक्त मेरे द्वारा वहुत से अखाद्य (मास, अण्डा, आलू मूली आदि कन्दमूल एव अभक्ष) पदार्थ खाये गये है और अपेय (शराव एव वाजार की चाय दूध आदि) पदार्थ पिये गये है ।।३९।।

पूर्व भव मे मुझ निर्दयी ने जबरदस्ती (सकल्प पूर्वक) अनन्त जीव राशि मारी है । असत्य, कटुक एव निन्दा आदि के दुर्वचन कहे है । करोडो प्रकार की वञ्चना एव कुटिलता द्वारा पर वस्तुओ का हरण किया है । राग से अन्धे होते हुये मैने दुष्टता पूर्वक परस्त्री का सेवन किया है । अपने इन्द्रिय सुखो के लिये लोभ से ग्रसित होकर मैंने महान् परिग्रह एकत्रित किया है, और लक्ष्मी (धन सचय), स्त्री एव कुटुम्ब आदि के लिये नित्य ही बहुत भारी आरम्भ किया है ।।४०–४२।।

धर्माचरण रहित एवं कुधर्म सेवन पूर्वक पूर्वभव व्यतीत करने का पश्चात्तापः—

निःशीलैर्विषयान्धैश्च, पञ्चाक्षाणि निरन्तरम् ।
सेवितानि पुरास्माभिः सौख्याय नष्टबुद्धिभिः ।।४३।।
श्रेयसेऽनुष्ठितं मौढ्यान् मिथ्यात्वं केवल महत् ।
कुदेव[1]कुगुरुशास्त्र–कुत्सिताचार कोटिभिः ।।४४।।
अतीवव्यसनासक्तैः पालितं न मनाग्व्रतम् ।
शीलं वा न कृतं पुण्यं दानपूजार्चनादिभिः ।।४५।।
धर्मिणो धर्ममत्यर्थं, दिशंतोपि पुरा मुहुः ।
श्वभ्रगामिभिरस्माभिः कटुवाक्यैरमानिताः ।।४६।।

---

1 कुदेवकुगुरुकुज्ञान ज. न

इत्याद्यन्यैर्दुराचारै-र्दुष्कर्माण्यर्जितानि च ।
तानि पूर्वमिहापन्नायैर्नो दुःखादिराशयः ॥४७॥

अर्थः—नष्ट बुद्धि, विषयान्ध और व्रतशील आदि से रहित मैने पूर्व भव में अल्प सुख के लिये निरन्तर पचेन्द्रियों के विषयों का सेवन किया है ॥४३॥

मैने अज्ञानता से पुण्यार्जन के लिये करोड़ों खोटे आचरणों (३ मूढता, ६ अनायतनों के द्वारा एवं बलि आदि के) द्वारा महान् मिथ्यात्व और मिथ्या देव, शास्त्र, गुरुओं का सेवन किया है ॥४४॥

सप्त व्यसनों में अत्यन्त आसक्ति होने के कारण मैने किञ्चित् भी व्रतों का पालन नही किया, और न शील, दान, पूजा एवं अर्चना आदि के द्वारा किञ्चित् भी पुण्य उपार्जन किया । पूर्व भव में धर्मात्मा पुरुषों ने धर्म धारण करने के लिये मुझे बार बार उपदेश दिया किन्तु कठोर और कटु वचन बोलने वाले मुझ नरक गामी ने उनके उपदेश नही माने । इस प्रकार के तथा और भी अन्य प्रकार के दुराचारों द्वारा जो दुष्कर्म उत्पन्न किये थे वही पाप यहाँ पर दुःख की राशि रूप से उपस्थित हुये है ॥४५–४७॥

पश्चात्ताप रूप भीषण सन्ताप का विवेचन :—

कैश्चित्पुण्यजनैः शक्त्या, नृभवे साधितो महान् ।
स्वर्गो मोक्षोविचारज्ञैः सत्तपश्चरणादिभिः ॥४८॥

दुर्लभे नृभवे प्राप्ते, धर्मस्वर्मुक्तिसाधके ।
अस्माभिरर्जितं श्वभ्रं, दुराचारैः स्वघातकम् ॥४९॥

अर्थः—मनुष्य भव में समीचीन तपश्चरण आदि को धारण करने वाले विचारवान् पुण्य पुरुषों के द्वारा अपनी शक्ति के अनुरूप स्वर्ग मोक्ष का महान साधन किया जाता है, किन्तु स्वर्गमुक्ति का साधक दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त होने पर भी मैमे धर्म पालन तो नही किया परन्तु दुराचारों के सेवन द्वारा स्व आत्मा का घात करने वाले नरक का अर्जन किया है, अर्थात् इतना घोर पाप उपार्जन किया जिससे नरक आना पड़ा ॥४८–४९॥

येषां स्त्रीपुत्रबन्धूनां भूत्यर्थं पापमञ्जसा ।
कृतं ते तत्फलं भोक्तुं नात्रामास्मोभिरागताः ॥५०॥

पोषिता येऽङ्गपञ्चाक्षा नानाभोगैः पुराः खलाः ।
तेऽत्रस्मान्[1] पातयित्वात्र श्वभ्रे गता इवारयः ॥५१॥

---

१. तेऽप्यस्मात् ज० न० ।

अतो मन्यामहेऽत्रैवं स्वजनाः पापहेतवः ।
शत्रवः स्युश्च पञ्चाक्षाः काला नागा न चापरे ॥५२॥

अर्थः—जिन स्त्री, पुत्र, बन्धु बान्धवो के वैभव या उन्नति के लिये यथार्थ मे मैंने वहुत पाप किये थे वे कुटुम्बी जन उस पाप का फल भोगने के लिये मेरे साथ अभी यहाँ नही आये । पूर्व भव मे नाना प्रकार के भोग्य पदार्थों द्वारा मैंने जिनके शरीर और पञ्चेन्द्रियों का पोषण किया था, ये दुष्ट शत्रु सदृश बन्धुजन मुझको यहाँ नरक मे पटककर चले गये, इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि पाप के कारणभूत स्वजन तो शत्रु है और पञ्चेन्द्रियो के विषय काले नाग हैं, इसमे अधिक कुछ नही ॥५०-५२॥

यदुक्तं सूरिभिः पूर्वं, सहगामि शुभाशुभम् ।
प्रत्यक्षतामगान्नोऽद्य, तदत्र पाकसूचकम् ॥५३॥
पुराकृतानि पापानि मनसापि स्मृतानि च ।
अन्तर्मर्माणि कृतन्त्यधुना नः क्रकचानि वा ॥५४॥

अर्थः—पूर्व मे आचार्यों के द्वारा जो कुछ कहा गया था वह पापोदय का सूचक सहगामी शुभाशुभ आज यहाँ मेरी प्रत्यक्षता को प्राप्त हो रहा है ॥५३॥

पूर्व जन्म मे किये गये पाप आज मन से स्मृति करने पर मेरे अन्त स्थल के मर्म को करोत के समान छेद रहे है ॥५४॥

अत्र प्राक्कृत पापोत्थ–दुःखौघग्रसिता वयम् ।
क्व यामः कं च पृच्छामः, किं कुर्मो ब्रूम एव किम् ॥५५॥
व्रजामः शरणं कस्या–त्रास्माद्दुःखौघ सन्ततेः ।
सोढव्याः कथमस्माभि-र्महत्यः श्वभ्रवेदनाः ॥५६॥
पूर्वदुष्कर्मपाकोत्थ–मिमं दु खार्णवं परम् ।
दुस्तरं चोत्तरिष्यामः, कथमायुः क्षयं विना ॥५७॥
यतोऽत्र मरणं न स्यान् नारकाणां कदाचन ।
सत्यायुषिनिजेऽल्पेऽपि, तिलतुल्याङ्ग खण्डनैः ॥५८॥
इति प्राक्कृतदुष्कर्मज पश्चात्तापवह्निभिः ।
दह्यमानान्तरङ्गाणां, नारकाणां दुरात्मनाम् ॥५९॥

अर्थः—पूर्व जन्म में किये हुये पापों से उत्पन्न होने वाला यह दु खों का समूह यहाँ हमें खा रहा है। अब हम कहाँ जाएँ ? किससे पूछे ? क्या करे ? और क्या कहें ? किसकी शरण जाएँ ? यहाँ दुःख समूह से निरन्तर होने वाली यह महान् नरक वेदना सहन करने में;हम कैसे समर्थ होवें ॥५५–५६॥

पूर्व दुष्कर्मों के पाक से उत्पन्न होने वाला यह दुस्तर महान् दुःखरूपी समुद्र आयु क्षय विना कैसे पार करे, क्योंकि अपनी भुज्यमान आयु के पूर्ण हुये विना शरीर के तिल बराबर खण्ड खण्ड कर देने पर भी यहा नारकी जीवो का असमय मे मरण नही होता ॥५७–५८॥

इस प्रकार दुरात्मा नारकी जीवों के अन्त करण पूर्व जन्म में किये गये पापों से उत्पन्न होने वाली पश्चाताप रूपी अग्नि से निरन्तर जलते रहते है ॥५९॥

अन्य नारकी जीवों द्वारा दिये हुये भयङ्कर दु खों का दिग्दर्शन—

शतचूर्णी प्रकुर्वन्ति, सर्वगात्राणि नारकाः ।
मुद्गरादिप्रहारौघै र्निभर्त्स्य कटुकाक्षरैः ॥६०॥

अर्थः—नारकी जीव भर्त्सना पूर्वक कटुक वचनों द्वारा एवं मुद्गर आदि प्रहार समूहों द्वारा सम्पूर्ण शरीर के सैकड़ो टुकडे कर देते है ॥६०॥

जीवों के नेत्र फोडने का और अङ्गोपाङ्ग छेदन का फलः—

उत्पाटयन्ति नेत्राणि चक्षुर्विकारजाशुभैः ।
अङ्गोपाङ्गानिकृन्तन्ति चाङ्गोपाङ्गकृताघतः ॥६१॥

अर्थ —पूर्व जन्म में अन्य जीवों के नेत्र फोड़ देने से एवं अङ्गोंपाङ्गों का छेदन भेदन आदि कर देने से जो पाप एवं अशुभ कर्म सचय हुआ है उसीके कारण नारकी नेत्र उखाड़ लेते है, और अङ्गोपाङ्ग काट लेते है ॥६१॥

दूसरो के प्रति चित्त मे उत्पन्न होने वाले पाप का फलः—

चित्तोत्थपापपाकेन विदार्य जठरं बलात् ।
केचित् क्रुद्धाश्च केषाञ्चित् त्रोटयन्त्यन्त्रमालिकाम् ॥६२॥

अर्थः—अन्य जीवों के बुरे चिन्तन आदि से चित्त में जो विकार उत्पन्न होता है उस पापोदय के फल स्वरूप कोई नारकी क्रोधित होते हुये बल पूर्वक पेट विदीर्ण कर देते है और कोई यन्त्रादिकों में पीस देते है ॥६२॥

मद्य आदि अपेय पदार्थ पीने का फलः—

मुखं विदार्य संदंशैर्ज्वलत्ताम्ररसं बलात् ।
क्षिप्यते नारकैस्तेषां मद्यपानोत्थ पापतः ॥६३॥

अर्थ —मद्य आदि अनेक प्रकार के अपेय पदार्थ पीने से जो पाप सचय हुआ था उससे ये नारकी जीव सण्डासी से मुख फाड कर वलपूर्वक उसमे जलता हुआ ताम्ररस डाल रहे है ॥६३॥

परस्त्री सेवन का फलः—

दृढमालिङ्गनं केचित् कारयन्ति बलाद् गले ।
तप्तलोहांगनाभिश्च परस्त्रीसंगजाघतः ॥६४॥

अर्थ.—परस्त्री सेवन से उत्पन्न पाप के फल स्वरूप वे नारकी जीव वल पूर्वक गले में तप्त लोहे की स्त्री से दृढ आलिङ्गन करा रहे है ॥६४॥

जीवो को छेदन भेदन आदि के दु ख देने का फलः—

विधाय नारकांगानां, सूक्ष्मखण्डानि कर्त्तनैः ।
निःपीडयन्ति यन्त्रेषु, दलन्त्यश्मपुटादिभि ॥६५॥
क्वाथयन्ति च कुम्भीषु, निर्दयाः नारकाः परे ।
चूर्णयन्त्यस्थिजालं च, ताडयन्तिपरस्परम् ॥६६॥
गृध्रास्ताम्रमयास्तत्र, लोहतुण्डाश्च वायसाः ।
मर्माणि दारयन्त्येषां, चञ्चुभिर्नखरैः खरैः ॥६७॥
छिन्नभिन्नानि गात्राणि, सम्बन्धं यान्ति तत्क्षणम् ।
दण्डाहतानि वारीणी–व तेषां दुर्विधेर्वशात् ॥६८॥

अर्थ —[मनुष्य पर्याय मे जो धनान्ध तेल आदि के मील खोल कर और बडी बडी चक्कियां लगा कर बिना शोधन किये अनाज आदि पिसवा कर महान पाप सचय करते है] उन नारकी जीवो के शरीरो के कैंची द्वारा छोटे छोटे टुकडे करके यन्त्रों मे (घानी मे) पेलते है और पत्थर की चक्कियो द्वारा उन्हे पीसते है ॥६५॥

वे दुष्ट और निर्दयी नारकी दूसरो को हाण्डियो मे पकाते है, हड्डियों का चूर्ण कर देते है और आपस मे एक दूसरे को मारते है ॥६६॥

वहाँ (नरकों में) ताम्रमय गृद्धपक्षी और लोहे के मुख वाले कौए अपनी तीक्ष्ण चोंचों एवं नखों से (मनुष्य पर्याय में जो पशुओं के मर्म स्थानों का छेदन भेदन करते हैं तथा उनके शरीर में हो जाने वाले घावों की पक्षियों से रक्षा नही करते) उन नारकियों के मर्म स्थानो का छेदन करते है ॥६७॥

खोटे कर्मोदय के वशसे उन नारकी जीवों के छिन्न भिन्न किये हुये शरीर डण्डे से ताडित जल के समान तत्क्षण सम्बन्ध को प्राप्त हो जाते है ॥६८॥

मांस भक्षण का फल :—

खादन्ति नारकास्तेषां मांस भक्षणपापतः ।
शूलपक्वानि मांसानि पुरा ये मांसभक्षिणः ॥६९॥

अर्थः—जिन्होने पहिले मांस भक्षण किया था, पाप से उन मास भक्षी जीवों के मांस को अन्य नारकी शूलसे (मास पकाने का काटा) पका कर खाते है ॥६९॥

भिन्न भिन्न प्रकार के दुःखो का कथन :—

कांश्चिल्लोहाङ्गनालिङ्गनाच्च मूर्च्छामुपागतान् ।
लोहारदण्डकैरन्यैः खलास्तुदन्ति मर्मसु ॥७०॥

अर्थ —लोहे की (तप्त) स्त्री के आलिङ्गन से मूर्च्छा को प्राप्त होने वाले नारको के मर्म स्थानों पर अन्य दुष्ट नारकी लोह दण्ड के द्वारा चोटें मारते है ॥७०॥

सर्वाङ्गकण्टकाकीर्णेषु शाल्मलिद्रुमेषु च ।
भस्त्राग्निदीपितेष्वन्यानारोपयन्ति नारकाः ॥७१॥

अर्थ —सर्वाङ्ग में तीक्ष्ण काटों से व्याप्त शाल्मलि वृक्षों पर और अग्नि से दैदीप्यमान भट्टों पर उन नारकी जीवो को चढाते है ॥७१॥

निघर्षन्त्यपरे तेषु सर्वाङ्गेषु द्रुमेषु तान् ।
गृहीत्वान्ये च पादेषु घ्नन्त्याहत्य धरातले ॥७२॥

अर्थ —अन्य कोई नारकी उन कण्टकाकीर्ण सम्पूर्ण वृक्षों पर उन्हें घसीटते हैं, और अन्य कोई उन बेचारों को जमीन पर पटककर तथा पैरों में फंसा कर मारते है ॥७२॥

नित्यस्नानोत्थ पापेन, वैतरण्यम्बु वीचिषु ।
यान्त्यत्यन्ताकुलीभावं, केचित्कैश्चित्प्रमज्जिताः ॥७३॥

केचिच्च स्वयमागत्यतीवोष्णाग्निकरालिताः ।
क्षारपूतिजलेतस्या, मज्जन्ति तापशान्तये ।।७४।।
तेन दुःस्पर्शनीरेण, नितरां ते कर्दथिताः ।
असिपत्रवनान्याशु, विश्रामाय श्रयन्ति भोः ।।७५।।
तेषु तीव्रो मरुद्वाति, विस्फुलिङ्गकणान् किरन् ।
तेन पत्राणि पात्यन्ते, खड्गधारासमानि च ।।७६।।
तेषां गात्राणि छिद्यन्ते, भिद्यन्ते चाखिलानि तैः ।
ततस्ते वेदनाक्रान्ताः, पूत्कुर्वन्ति वराककाः ।।७७।।
तस्मात्ते च गलद्रक्त–धारातीव कुरूपिणः ।
प्रविशन्ति स्वयं स्थित्यै, गत्वाश्रु पर्वतान्तरम् ।।७८।।
तत्रापि नारका एतान् खादन्ति दारयन्ति च ।
व्याघ्रसिंहाहि पक्ष्यादिरूपैः स्वविक्रियोद्भवैः ।।७९।।
केचित्तान् नारकान् दीनान् धृत्वा पादेष्वधो मुखान् ।
पर्वताग्रादधो भागं पातयन्ति महीतलम् ।।८०।।
तद् घातात् खण्डखण्डाङ्ग–भूतांस्तान् शरणार्थिनः ।
वज्रमुष्टिप्रहाराद्यै र्घ्नन्त्यन्ये रौद्ररूपिणः ।।८१।।
व्रणजर्जरितान् कांश्चिदतीववेदनाकुलान् ।
भद्रं कुर्वेवमित्युक्त्वा सिंचन्ति क्षारवारिभिः ।।८२।।

अर्थः—नित्य ही अगालित एव अप्रमाण जल से स्नान करने के कारण जो पाप उत्पन्न हुये थे उन्हीके फल स्वरूप कोई जीव वैतरणी नदी की कल्लोल मालाओं के बीच आकुलीभाव को प्राप्त होते है, कोई जीव अन्य नारकियो द्वारा उसमे डुवोये जाते है और कोई असह्य तीव्र उष्ण अग्नि की ताप के कारण आक्रन्दन करते हुये उस नदी पर आकर ताप शान्ति के लिये नदी के क्षार एवं दुर्गन्धित जल में स्वय डूब जाते है । किन्तु भो भव्य जनो ! उस जल के दु स्पर्श से अत्यन्त पीडित होते हुये वे नारकी विश्रान्ति के लिये शीघ्र ही असिपत्र वनो का आश्रय लेते है । जिनमे (अग्नि के) विस्फुलिंग कणो को फैलाती हुई वायु वहती है जिससे असिधारा के समान पत्ते नीचे गिरते है, जो उन नारकियों के सम्पूर्ण शरीर को छेद देते है और भेद देते है, इसलिये वे बेचारे असहाय वेदना से आक्रान्त होते हुये चीत्कार (हा हा कार) करते है । शरीर भेदन के कारण बहती हुई रक्त धारा से जो अत्यन्त कुरूप हो रहे है ऐसे वे नारकी सुख से स्थित होने के लिये शीघ्र ही पर्वत के ऊपर जाकर स्वय ही

उनकी गुफाओं में प्रवेश करते है, किन्तु वहाँ भी अपनी विक्रिया (अपृथक् विक्रिया) से उत्पन्न हुये व्याघ्र, सिंह, सर्प आदि हिंसक पशु अपने शरीरों के द्वारा उन नारकियों को विदारण कर देते हैं और खालेते है ॥७३-७९॥

कोई दुष्ट नारकी अधोमुख उन बेचारे दीन नारकियों को अपने पैरों पर रख कर पर्वत के ऊपर से नीचे पृथ्वी पर पटक देते हैं, जिसके घात से खण्ड खण्ड हो गये हैं शरीर जिनके ऐसे शरण के इच्छुक उन नारकियों को अन्य कोई दुष्ट नारकी वज्रमुष्टियों के प्रहारों से मारते हैं। तुम्हारे इन गहरे घावों से होने वाली तीव्र वेदना को मै शीघ्र ही ठीक करता हूँ ऐसा कहकर अन्य कोई नारकी उन घावों को क्षार जल से सीचते हैं ॥८०-८२॥

गर्व करने का फल :—

पुरार्जितानि पापानि गर्वाद्यैरुद्धतैश्चयैः ।
तप्तलोहासनेष्वत्र तानासयन्ति नारकाः ॥८३॥

अर्थः—पूर्व जन्म में नाना प्रकार के बढते हुये मद समूह से सञ्चित पाप के फल स्वरूप उन नारकी जीवों को अन्य नारकी तप्तायमान लोहे के आसनों पर बैठाते है ॥८३॥

अयोग्य स्थान में शयन करने का फलः—

परस्त्रीनिकटातीवमृदुशय्योत्थपापतः ।
शाययन्ति परे कांश्चिच्छितायःकण्टकान्तरे ॥८४॥

अर्थः—पूर्व भव में परस्त्री के साथ अति मृदुल शैय्या पर सोने से जो पाप बंध किया था उससे अन्य कोई नारकी उन्हे लोहे के तीक्ष्ण काँटो के ऊपर सुलाते हैं ॥८४॥

सप्त व्यसन सेवन का फलः—

सप्तव्यसन सेवोत्था-घोदयादिह नारकान् ।
केचित् निशात शूलाग्रे-ष्वारोपयन्त्यशर्मणे ॥८५॥
बद्ध्वा शृङ्खलया स्तम्भे, कांश्चिच्च क्रकचैः खलाः ।
दारयन्त्यखिलांगेषु, स्वाक्रन्दं कुर्वतो बलात् ॥८६॥

अर्थः—पूर्व भव में सप्त व्यसनों का सेवन करके जो पाप उपार्जन किया, उसके उदय से नरक में उन नारकी जीवों को कोई नारकी भयङ्कर दुःख देने के लिये तीक्ष्ण शूल के अग्रभाग पर चढ़ा देते हैं और कोई दुष्ट आक्रन्दन करते (दुःख से चिल्लाते) हुये उन जीवों के सम्पूर्ण शरीर को जबरदस्ती सांकल द्वारा खम्भे पर बाधकर करोंत से चीरते है ॥८५-८६॥

वैरविरोध रखने का फलः—

केचित् प्राग्जन्मवैरादीन्, स्मारयित्वा निरूप्य च ।
मुहुर्निभर्त्स्य दुर्वाक्यैः, स्थित्वारणांगणे क्रुधा ।।८७।।
स्वविक्रियांग सञ्जातै-र्नानाशितायुधव्रजैः ।
छेदयन्त्यखिलांगानि, घ्नन्ति क्रुद्धाः परस्परम् ।।८८।।

अर्थः—कोई कोई नारकी जीव पूर्व भव के वैर का स्मरण करके और बार बार भर्त्सना युक्त खोटे वाक्यो द्वारा उस वैर भाव को कह कर क्रोधित होते हुये रणाङ्गण में स्थित होकर अपने शरीर की अपृथक् विक्रिया से उत्पन्न हुये नाना प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र समूह के द्वारा उनके सम्पूर्ण शरीर को छेद देते है तथा क्रोधित होते हुये परस्पर मे एक दूसरे को मारते है ।।८७-८८।।

असुरकुमारो द्वारा दिये जाने वाले दुःखो का कथन —

उद्विग्नांस्तान् क्वचिद्दीनान् युद्धादेर्नारकान् स्थितान् ।
रौद्राशयाः सुरा एत्य स्मारयित्वा पुरातनम् ।।८९।।
आगतं वैरमन्योन्यं योधयन्ति रणांगणे ।
स्थित्वा स्वशर्मणे हिंसानन्दं कुर्वन्त उल्वणम् ।।९०।।
विस्फुलिंगमयीं शय्यां ज्वलन्तीं शायिताः परे ।
शेरते शुष्कसर्वांगा दीर्घनिद्रासुखाप्तये ।।९१।।

अर्थ —युद्ध आदि से हतोत्साह होकर खडे हुये किन्ही दीन नारकियो को दुष्ट अभिप्राय वाले असुरकुमार देव आकर पूर्व भव को याद दिलाते हुये उसी पूर्व वैर के कारण आपस में एक दूसरे नारकियो को युद्ध मे लडाते है और स्वय की सुख प्राप्ति के लिये महा हिंसानन्दी रौद्रध्यान करते हैं । अन्य कोई अग्निकणिकामय जलती हुई शय्या पर उन्हें सुला देते है, तथा शुष्क हो गया है शरीर जिनका ऐसे कोई नारकी मृत्यु द्वारा सुख प्राप्त करने की इच्छा से उस पर स्वय सो जाते हैं ।।८९-९१।।

दुःखो के प्रकार एवं उनकी अवधि का वर्णन—

शारीरं मानसं क्षेत्रोद्भवं परस्परप्रजम् ।
असुरोदीरितं पञ्चप्रकारमिति दुस्सहम् ।।९२।।
क्षणक्षणभवं तीव्रं, कविवाचामगोचरम् ।
सहन्ते नारकानित्यं, महद्दुःखं च्युतोपमम् ।।९३।।

चतुर्थश्वभ्रतः पूर्व, ह्यसुरोदीरितासुखम् ।
भवेच्छेषचतुःश्वभ्रे-षु च दुःखं प्रवर्द्धितम् ।।९४।।

एषां दुःखाब्धिमग्नानां, पापारिग्रसितात्मनाम् ।
चक्षुरुन्मेषमात्रं न, सुखं श्वभ्रेषु जातुचित् ।।९५।।

इत्यसह्य तरां तीव्रां, वेदनां प्राप्य नारकीम् ।
उद्विग्नानां मनस्येषां चिन्तेषा जायते तराम् ।।९६।।

अर्थः—नरकों में शारीरिक, मानसिक, क्षेत्र जन्य, परस्पर–एक दूसरे के द्वारा उत्पन्न और असुर कुमारों द्वारा दिया हुआ–ये पांच प्रकार के दुस्सह दुःख होते हैं ।।९२।।

क्षणक्षण में उत्पन्न होने वाले, तीव्र–असाता के तीव्र अनुभाग से युक्त, कवियों के वचन अगोचर अर्थात् कवि जिसका वर्णन करने में असमर्थ, उपमारहित महान दुःखों को नारकी जीव नित्य ही सहन करते है ।।९३।।

चतुर्थ पृथिवी से पूर्व अर्थात् तृतीय मेघा पृथिवी पर्यन्त ही असुर कुमारों द्वारा दिया हुआ दुःख है। शेष चार नरक भूमियों में शेष चार प्रकार के ही दुःख होते है। पाप रूपी शत्रुओं से ग्रसित है आत्मा जिनकी ऐसे दुःखरूपी समुद्र में डूबे हुये नारकियो को नरकों में कदाचित् भी नेत्रके उन्मेष मात्र सुख नहीं है। इस प्रकार असह्य तीव्र वेदना को प्राप्त कर उद्विग्न मन वाले इन नारकियों के हृदय में यह बहुत भारी चिन्ता उत्पन्न हो रही है ।।९४–९६।।

नारकियों द्वारा चिन्तित विषयो का वर्णन :—

अहो ! दुराश्रया भूमिः प्रज्वलन्ती–यमस्पृशा ।
दुःस्पर्शा मरुतो वान्ति स्फुलिङ्गकणवाहिनः ।।९७।।

एता दीप्ता दिशोऽप्रेक्ष्या एतत् क्षेत्रं भयास्पदम् ।
सन्तप्तपांशु दुर्वृष्टिं वर्षन्त्यम्बुमुचोऽबरात् ।।९८।।

विषारण्यमिदं विष्वग् विषवल्लीद्रुमैश्चितम् ।
असिपत्रवनं चैतदसिपत्रैर्भयङ्करम् ।।९९।।

उद्दीपयन्ति कामाग्निं वृथेमा लोहपुत्रिकाः ।
योधयन्ति बलादस्मान् केचित्क्रूराः इमे खलाः ।।१००।।

खरोष्ट्रमनलोद्गारि ज्वलज्वालाकरालितम् ।
खरा–रटितमुत्प्रोथं गिलितुं नोऽभिधावति ।।१०१।।

नारका भीषणा एते कृपाणकृतपाणयः ।
निष्ठुरास्तर्जयन्त्यस्मान् निष्कारणरणोद्दहाः ॥१०२॥
पक्षिणः परुषापाता इते नोऽभिद्रवन्त्यलम् ।
सारमेयाश्च खादन्तो भीषयन्तोऽप्यमीतराम् ॥१०३॥
इतः स्फूरन्ति दुर्ध्यानान् नारकाणां प्रधावताम् ।
इतश्च करुणाक्रन्दस्वराः कर्दथितात्मनाम् ॥१०४॥
अन्धकूपसमा एते प्रज्वलन्त्यन्तरूष्मणा ।
दुर्गन्धा नारकावासा विश्वक्क्लेशाशुभाकराः ॥१०५॥
दुस्सहा वेदनाह्येषा दुर्निवाराश्च नारकाः ।
अकाले दुस्त्यजाः प्राणाः कृत्स्नमत्रासुखावहम् ॥१०६॥
अतः प्रार्गाजता श्रेयसा वयं कवलीकृताः ।
क्व यामः क्व च तिष्ठामः कोऽपि त्राता न जातु नः ॥१०७॥
तरिष्यामः कदात्रेमम-पारं दुःखवारिधिम् ।
नो यास्यति कथं कालो बहुसागर-जीवितम् ॥१०८॥
इत्थं चिन्तयतां तेषां शोकिनां क्लेश भोगिनाम् ।
अन्तर्बाह्याङ्गदाहिन्यो जायन्ते व्याधयस्त्रयः ॥१०९॥
महत्यः शोकसन्तापदुःखक्लेशादिखानयः ।
ताः को वर्णयितुं शक्तो विद्वांस्तेषां च्युतोपमाः ॥११०॥

अर्थ—अहो ! मृत्यु से स्पर्शित दुःखो के आश्रयभूत यह भूमि जल रही है । दुखद है स्पर्श जिसका ऐसी अग्नि कणो को फैलाने वाली वायु बह रही है । दिशाओ का आभोग दीप्त हो रहा है, यह क्षेत्र अति भयास्पद है और यहाँ मेघो से नित्य ही सन्तप्त रेत की दुर्वृष्टि हो रही है ॥९७-९८॥

ये विष वन चारो ओर विष लताओ से युक्त वृक्षो द्वारा व्याप्त है । ये भयङ्कर असिपत्र वन असिपत्रो द्वारा व्याप्त है ॥९९॥

ये लोहमय स्त्रियाँ वृथा ही कामाग्नि को बढा रही है । ये क्रूर और दुष्ट असुर कुमार देव हम लोगो को जबरदस्ती लडा रहे है ॥१००॥

ऊपर उठाये है थुथने (मुख का अग्रभाग) जिनने और जो जलती हुई ज्वाला से युक्त आग उगल रहे है ऐसे ये गधे और ऊँट हमे निगलने के लिये पीछे पीछे दौड रहे हैं । हाथ मे है तलवार

जिनके ऐसे ये निष्कारण युद्ध करने वाले निर्दय और भयङ्कर नारकी हम लोगों को ताड़ना दे रहे हैं ।।१०१-१०२।।

पक्षियों के कठोर आक्रमण से हम लोग अत्यन्त दुखी किये जा रहे हैं, और कुत्ते हम लोगों को खा रहे हैं तथा भय उत्पन्न करा रहे है ।।१०३।।

आर्त्तरौद्र आदि दुर्ध्यान से युक्त यहाँ वहाँ दौड़ने वाले दुखी नारकियों के करुणा उत्पादक स्वर व्याप्त रहे है। अन्धकूप के समान दुर्गन्धित, सम्पूर्ण क्लेशों और अशुभ सामग्रियों की खान तथा अन्तःस्थल में अति उष्ण ये नरक के आवास जला रहे है ।। १०४-१०५ ।।

यह दुस्सह वेदना, ये दुर्निवार नारकी और अकाल में प्राणों का नही छूटना इस प्रकार यहाँ दुःख देने वाले सम्पूर्ण साधन है। ये पूर्व जन्म में उपार्जित पाप ही हमें खा रहे हैं। हम कहां जायँ ? कहाँ बैठें ? यहा कोई भी हमारा रक्षक नही है। हम यहाँ यह दुःख रूपी समुद्र कैसे पार करें तथा बहुत सागर जीवित रहने का यह काल कैसे पूरा करे ।।१०६-१०८।।

इस प्रकार की चिन्ता करने वाले शोकाकुल और क्लेश भोगी उन नारकी जीवों के अन्तरङ्ग और बाह्य अङ्गों में मानसिक, बाचनिक और कायिक ये तीन पीड़ाएँ दाह उत्पन्न करती है। उपमा रहित, महान शोक, सन्ताप, दुःख एवं क्लेश आदि के खान स्वरूप उन नारकी जीवों का वर्णन करने के लिये कौन विद्वान समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नही ।।१०९-११०।।

नारकी शरीरों के रस, गन्ध और स्पर्श आदि का वर्णन :—

कटुकालाबुकाञ्जीराणां यादृशो रसः कटुः ।
अनिष्टश्चाधिकस्तस्मात् तद्गात्रेषु रसोऽशुभः ।।१११।।
श्वमार्जारखरोष्ट्रादि कुणपेभ्योऽतिदुःसहः ।
नारकाङ्गेषु दुर्गन्धः सविशेषो घृणाकरः ।।११२।।
यादृशः करपत्रेषु गोक्षुरेषु च दुःस्पृशः ।
तादृशः कर्कशस्पर्शस्तेषां गात्रेषु विद्यते ।।११३।।

अर्थः—उन नारकी जीवो के शरीरों में कडवी तूमडी और काञ्जीर (   ) से भी अधिक कटु, अशुभ और अनिष्ट कारक रस होता है ।।१११।।

कुत्ता, बिल्ली, गधा, ऊँट और सर्प आदि जानवरो के मरे हुये शरीरो में जो दुर्गन्ध आती है, उससे भी कही अधिक, दुःसह और घृणास्पद दुर्गन्ध उन नारकी जीवो के शरीरों में आती है ।।११२।।

करोत और गोखुरू आदि पदार्थों में जैसा दु.स्पर्श होता है, वैसा ही स्पर्श उन नारकी जीवों के शरीरो में होता है ।।११३।।

अपृथक् विक्रिया का कथन :—

अपृथग्विक्रियास्त्येषां परपीड़ाविधायिनी ।
निन्द्याशुभतराङ्गेभ्यः क्ववधिर्दुरितोदयात् ।।११४।।

अर्थ —उन नारकी जीवो के पाप कर्म के उदय से अपृथक् विक्रिया होती है और पर पीडा का सम्पादन करने वाला, निन्द्य कुअवधिज्ञान अशुभतर अङ्गों से उत्पन्न होता है ।।११४।।

उपसहार :—

इत्याद्यन्यजगन्निद्य-मनिष्ट दुःखकारणम् ।
यद्द्रव्यं तत्समस्तं स्यात्, नारकाङ्गेषु पिण्डितम् ।।११५।।
किमत्र बहुनोक्तेन, विविधा दुःखसन्ततीः ।
अधोधः सप्तपृथ्वीष्व-संख्यातगुण वर्धिता ।।११६।।
महतीश्च निरौपम्या मुक्त्वा केवलिनं जिनम् ।
नान्यो वर्णयितुं शक्तो, मन्येऽहमिति निश्चितम् ।।११७।।

अर्थ —इस प्रकार और भी जो अन्य द्रव्य जगत् निन्द्य, अनिष्ट और दु ख कारक है, वे सब नारकियो के शरीरो मे एकत्रित होते है । यहा अधिक कहने से क्या ? नाना प्रकार के दुःखोकी परम्परा नीचे नीचे सातो नरको मे असख्यात गुण, असख्यात गुण वृद्धि को लिये हुये है । निश्चय से मैं ऐसा मानता हूँ कि केवली और जिन के द्वारा कही हुई उस महान् और उपमा रहित वेदना का वर्णन करने के लिये अन्य कोई समर्थ नही है ।। ११५–११७ ।।

पापाचारी जीवों को शिक्षा :—

एतन्नरकदुःखादि भीरूणां सुखकांक्षिणाम् ।
पापारिं सर्वथा हत्वा कार्यो धर्मः प्रयत्नतः ।।११८।।

अर्थः—इस प्रकार उन नरको के दु खों से भयभीत और सुख की इच्छा करने वाले जीवों का कर्त्तव्य है कि वे पाप रूप शत्रु को सर्वथा नष्ट करके प्रयत्न पूर्वक धर्म कार्य करें ॥११८॥

धर्म की महिमा :—

यतो नरक पातालाद् धर्म उद्धर्तु मङ्गिनः ।
क्षमः स्थापयितुं मोक्षे कल्पे वानुत्तरादिषु ॥११९॥
धर्माद्र्ध्वगतीः साराः पापान्निन्द्या अधोगतीः ।
लभन्ते प्राणिनो लोके द्वयाश्च मध्यमा गतीः ॥१२०॥
पापं शत्रुरिहामुत्र धर्मो बन्धुर्न चापरः ।
सहगामी जिनेन्द्रोक्तो मुक्तिमार्गप्रसाधकः ॥१२१॥

अर्थ—जीवों को नरक रूप गड्ढे से निकालने में और मोक्ष, कल्पवासी एवं अनुत्तर आदि उत्तम स्थानोमें पहुँचाने के लिये एक धर्म ही समर्थ है ।

इस लोक मे जीव धर्म से सारभूत ऊर्ध्व गति, पाप से निन्द्यनीय अधोगति और पाप पुण्य दोनो से मध्यम गति (मनुष्य, तिर्यञ्च गति) प्राप्त करते है । इस लोक और पर लोक में जीवों को जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहे हुये मोक्षमार्ग का साधनभूत धर्म के समान अन्य कोई बन्धु नही है और पाप के समान कोई शत्रु नही है ॥११९-१२१॥

चारित्र धारण करने की प्रेरणा :—

मत्वेति भो ! बुधजनाः सकलं निहत्य,
पापारिमाशु नरकादिकुदुःखमूलम् ।
स्वमुक्तिशर्मजनकं परमार्थभूतम्
धर्मं कुरुध्वमनिशं व्रतसंयमाद्यैः ॥१२२॥

अर्थः—ऐसा मानकर हे भव्यजनो ! नरकादि गतियों में होने वाले भयङ्कर दुःखों का जो मूल है ऐसे पाप रूप शत्रु को शीघ्र ही नष्ट करके व्रत, संयम आदि चारित्र के द्वारा स्वर्ग और मोक्ष सुख का जनक परमार्थभूत धर्म करो ॥१२२॥

अन्तिम मङ्गलाचरण :—

धर्मः श्वभ्रगृहार्गलोऽसुखहरो, धर्मः शिवश्रीप्रदो,
धर्मो नाकनरामरेन्द्रपददो धर्मो गुणानां निधिः ।

धर्मस्तीर्थंकृतादि वैभवपिता सर्वार्थसिद्धि करो,
धर्मो मेऽस्तु शिवाय संस्तुत इहालंसेवितस्तद्गुणैः ।।१२३।।

इति श्री सिद्धान्तसार दीपक महाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति
विरचिते नरक दु ख वर्णनो नाम तृतीयोऽधिकार. ।।३।।

अर्थ :—धर्म ही नरकरूपगृह का आगल है, सुख देने वाला है, धर्म ही मोक्ष लक्ष्मी का प्रदाता है, धर्म ही इन्द्र, धरणेन्द्र एव चक्रवर्ती आदि पदो पर प्रतिष्ठित करने वाला है, धर्म ही गुणो का खजाना है, धर्म ही तीर्थंकर आदि वैभवो को उत्पन्न करने वाला पिता है और धर्म ही सर्व प्रयोजनो को सिद्धि करने वाला है, अत. यह तद् तद् गुणो के द्वारा पूर्णरूप से सेवन किया गया तथा स्तवन किया धर्म मुझे मोक्ष के लिये हो।

इस प्रकार भट्टारकसकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक
नाम के महाग्रन्थ मे नरकों के दुःखो का वर्णन करने
वाला तीसरा अधिकार समाप्त ।।



चतुर्थोधिकारः

मङ्गलाचरण:—

नमामि मध्यलोकस्थान् सर्वाश्च परमेष्ठिनः ।
जिनालयान् जिनार्चादीन् मोक्षाय कृत्रिमेतरान् ॥१॥

अर्थ:—मध्यलोक में स्थित सम्पूर्ण पञ्चपरमेष्ठियों को, कृत्रिम अकृत्रिम जिनमन्दिरों को और कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं को मैं मोक्ष की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ॥१॥

विशेषार्थ:—मध्यलोक में स्थित अकृत्रिम जिन चैत्यालय ४५८ है। जिनका विवरण:—नन्दीश्वर द्वीप के ५२ चैत्यालय, कुण्डल गिरि के ४, रुचकगिरि के ४ इस प्रकार (५२+४+४)=६० चैत्यालय तिर्यग्लोक में है, और पाँच मेरु के ८०, बीस गजदन्तों के २०, अस्सी वक्षार पर्वतों के ८०, तीस कुलाचलों के ३०, चार इष्वाकार पर्वतों के ४, एक मानुषोत्तर पर्वत के ४, एक सौ सत्तर विजयार्धो के १७०, और दश जम्बू शाल्मलि वृक्षों के १० अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इस प्रकार मनुष्य लोक मे कुल (८०+२०+८०+३०+४+४+१७०+१०)=३९८ अकृत्रिम जिनमन्दिर है। तिर्यग्लोक के ६० और मनुष्य लोक के ३९८ इन दोनों को जोड देने से मध्यलोक में कुल अकृत्रिम चैत्यालय (३९८+६०)=४५८ होते है। इन एक एक चैत्यालय में एक सौ आठ, एक सौ आठ प्रतिमाएँ है अत। ४५८ को १०८ से गुणित कर देने पर (४५८×१०८)=४९४६४ मध्यलोक के अकृत्रिम जिन प्रतिमाओ का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। अर्थात् मङ्गलाचरण में ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय और ४९४६४ अकृत्रिम प्रतिमाओं को नमस्कार किया है। टिप्पण कर्ता ने इसका गुणा निम्न प्रकार से किया है:—

गुणन प्रक्रिया–जितने अकों में गुणा करना हो चौडाई (आडे) में उतने खण्ड बनाना और जितने अकों का गुणा करना हो लम्बाई (खड़े) में उतने खण्ड बना कर दहाई और इकाई के अंक रखने के लिये प्रत्येक खण्ड के दो दो खण्ड करना चाहिये। यहाँ तीन अंको (४५८) में तीन ही अकों (१०८) का गुणा करना है अत. लम्बाई और चौड़ाई में तीन तीन खण्ड करके पीछे दहाई और इकाई के लिये प्रत्येक खण्ड के दो दो भाग किये। सर्व प्रथम ४५८ को १ से गुणा करने पर दहाई में ० और इकाई स्थान मे ४, ५, और आठ ही लिखे जावेगे। ४५८ को ० से गुणा करने पर दहाई और इकाई दोनों स्थानों पर शून्य शून्य ही आवेगे, इसी प्रकार ४५८ के आठ के अंको को १०८ के आठ से गुणा

करने पर ६४ प्राप्त हुए जो दहाई मे ६ और इकाई में ४ रखे गये आगे ४० और ३२ को भी इसी प्रकार रख कर चक्र के दाहिने भाग मे नीचे से जोडना—जैसे प्रथम पक्ति मे मात्र ४ है अत सर्व प्रथम ४ का अक रखना, दूसरी पक्ति मे शून्य, छह और शून्य है अत ६ का अंक रखना, तीसरी पंक्ति मे २, ४, ०, ० और ८ है इनका योग १४ होता है अत तृतीय स्थान मे ४ लिखना और दहाई का एक अक अगली (चौथी) पक्ति मे जोडना, इस प्रकार अगली (चौथी) पक्ति मे (१), ३, ०, ०, ५ और ० हुए, इनका योग ९ आया जो चतुर्थ स्थान मे रखना। पञ्चम पक्ति मे ०, ४ और ० है, इनका योग ४ हुआ अतः अन्तिम स्थान मे ४ रख देना। छठवी पक्ति मे मात्र ० है, अतः कुछ नही रखा जायगा। इस प्रकार योग की कुल सख्याएँ ४९ हजार ४ सौ ६४ प्राप्त हुई जो ४५८ × १०८ के गुणन फल स्वरूप है।

मध्यलोक के वर्णन करने की प्रतिज्ञा एव उसका प्रमाण —

अथ वक्ष्ये समासेन मध्यलोकं जिनागमात् ।
एकरज्जुप्रमव्यासासंख्यद्वीपाब्धिपूरितम् ।।२।।
लक्षैकयोजनोत्सेधो मध्यलोकोऽभिधीयते ।
चित्राभूमितलान्मेरुशिरःपर्यन्त ऊर्जितः ।।३।।

अर्थ —अब मै जिनागम से अर्थात् जिनागम के अनुसार सक्षेप से मध्यलोक का वर्णन करूँगा। इस मध्यलोक का व्यास एक राजू प्रमाण है, जो असख्यात द्वीप समुद्रों से व्याप्त है। चित्रा पृथ्वी के तलभाग से लेकर सुमेरुपर्वत के शिखर पर्यन्त अर्थात् एक लाख योजन इस लोक की ऊँचाई है ।।२-३।।

विशेषार्थ —मध्यलोक का व्यास एक राजू और ऊँचाई एक लाख योजन अर्थात् ४०००००००० चालीस करोड मील है।

शका—राजू किसे कहते है ?

समाधान—जगच्छ्रेणी के सातवे भाग को राजू कहते है। जैसे जगच्छ्रेणी का प्रमाण बादाल से गुणित एकट्ठी ($६५५३६^४ \times ६५५३६^२$) है। इसमे सात का भाग $\left(\frac{६५५३६^४ \times ६५५३६^२}{७}\right)$ देने पर जो एक भाग प्राप्त हो वही राजू का प्रमाण है।

आदि के सोलह द्वीपो के नाम —

आद्यो द्वीपोऽत्र जम्ब्वाख्यो धातकीखण्डसंज्ञकः ।
पुष्करादिवरश्चान्यस्तृतीयो वारुणीवरः ।।४।।

ततः क्षीरवरो द्वीपो नाम्ना घृतवरो परः ।
द्वीपः क्षौद्रवरो नन्दीश्वरोऽष्टमोऽरुणाभिधः ।।५।।

द्वीपोऽथारुणभासाख्यः कुण्डलादिवरस्ततः ।
द्वीपः शङ्खवराभिख्यो रुचकादिवराह्वयः ।।६।।

भुजगादिवरो द्वीपस्तथा कुशवराख्यकः ।
द्वीपः क्रौञ्चवरो नामेत्याद्यन्यैर्नामभिर्युताः ।।७।।

अर्थः—मध्यलोक मे सर्व प्रथम द्वीप का नाम जम्बूद्वीप (२) धातकी खण्ड (३) पुष्करवर (४) वारुणीवर (५) क्षीरवर (६) घृतवर (७) क्षौद्रवर (८) नन्दीश्वर (९) अरुणवर (१०) अरुणाभासवर (११) कुण्डलवर (१२) शङ्खवर (१३) रुचकवर (१४) भुजगवर (१५) कुशवर और (१६) क्रौञ्चवर है ये आदि के १६ द्वीप है। इसके बाद असख्यात द्वीप समुद्रों को छोडकर अन्त के १६ द्वीपों के नाम भी है ।।५-७।।

विशेषार्थः—ऊपर तीन श्लोकों में मध्यलोक के अभ्यन्तर १६ द्वीपों के नाम कहे है, इनके आगे असंख्यात द्वीप समुद्रों को छोड़कर अन्त के सोलह द्वीपो के नाम निम्नप्रकार हैं:—(१) मनःशिला द्वीप (२) हरितालवर (३) सिन्दूरवर (४) श्यामवर (५) अञ्जनवर (६) हिंगुलवर (७) रूप्यवर (८) सुवर्णवर (९) वज्रवर (१०) वैडूर्यवर (११) नागवर (१२) भूतवर (१३) यक्षवर (१४) देववर (१५) अहीन्द्रवर और (१६) स्वयम्भूरमण द्वीप है। इस प्रकार ये आदि अन्त के ३२ द्वीप और ३२ ही समुद्र है, इनके बीच असंख्यात द्वीप समुद्र है। ये सब एक राजू के मध्य में ही स्थित है।

नोटः—यह विशेषार्थ टिप्पण के आधार पर लिखा है।

द्वीप समुद्रों की स्थिति एवं आकृति —

शुभैः संख्यातिगा द्वीपसमुद्राः परिवेष्ट्य च ।
परस्परं हि तिष्ठन्ति बलयाकृतिधारिणः ।।८।।

अर्थः—शुभ नाम वाले असख्यात द्वीप समुद्र बलयाकृति और परस्पर में एक दूसरे को परिवेष्टित करते हुये (घेरे हुये) स्थित है ।।८।।

समुद्रों की स्थिति एवं नामों का कथन करते है:—

जम्बूद्वीपे समुद्रः स्यात्, लवणाभिध आदिमः ।
द्वीपे च धातकीखण्डे, कालोदधिसमाह्वयः ॥९॥
शेषासंख्यसमुद्राणां, नामानि विविधानि च ।
स्वस्वद्वीपसमानानि, ज्ञातव्यानि शुभान्यपि ॥१०॥

अर्थ —जम्बूद्वीप में अर्थात् जम्बूद्वीप को वेष्टित किये हुये लवणसमुद्र नाम का प्रथम समुद्र है, और धातकी खण्ड सम्बन्धी कालोदधि नाम वाला दूसरा समुद्र है। इसके बाद अपने अपने द्वीप के समान अनेको शुभ नामो को धारण करने वाले असख्यात समुद्र जानना चाहिये । ये सब भी बलयाकृति और अपने अपने द्वीपो को वेष्टित किये हुये है ॥९-१०॥

द्वीपसमुद्रो की सख्या का प्रमाणः—

अर्धाधिकद्वयोधाराब्धीनां रोमाणि सन्ति वै ।
यावन्ति तत्प्रमा ज्ञेया, असंख्यद्वीप वार्द्धयः ॥११॥

अर्थ —अढाई आधार-उद्धार सागर के रोमो का जितना प्रमाण होता है, उतना ही प्रमाण असख्यात द्वीप समुद्रो का जानना चाहिये ॥११॥

विशेषार्थ —व्यवहार पल्य के रोमो का जो प्रमाण है उनमे से प्रत्येक रोम के उतने खण्ड करना चाहिये जितने कि असख्यात वर्षो के समयो का प्रमाण है। इन समस्त रोमखण्डो को एकत्रित करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो वही एक उद्धार पल्य के समयो का प्रमाण है, और इसी प्रमाण वाले पच्चीस कोडाकोडी उद्धार पल्यो के समयो का जितना प्रमाण है उतना ही प्रमाण सम्पूर्ण द्वीप समुद्रो का है। २५ कोटाकोटि उद्धार पल्यो का ढाई उद्धार सागर होता है।

अत्र द्वीप समुद्रो का व्यास (विस्तार) कहते है —

अमीषां मध्यभागेऽस्ति, जम्बूद्वीपोऽखिलादिमः ।
लक्षयोजनविस्तीर्णो, वृत्तो जम्बूद्रुमाङ्कितः ॥१२॥
ततो द्विगुणविस्तारो, लवणार्णवशाश्वतः ।
अस्माच्च द्विगुणव्यासो, धातकीखण्डइत्यपि ॥१३॥
द्विगुणद्विगुणव्यासाः, सर्वे ते द्वीपसागराः ।
स्वयम्भूरमणाब्ध्यन्ता, अकृत्रिमाः क्षयोज्झिताः ॥१४॥

अर्थः—सम्पूर्ण द्वीप समुद्रो के मध्यभाग में जम्बूद्वीप नाम का प्रथम द्वीप है, जो गोल है, एक लाख योजन व्यास वाला और जम्बू वृक्ष से अलंकृत है। जम्बूद्वीप से दूने विस्तार वाला लवण समुद्र है, जो शाश्वत है और लवण समुद्र से भी दूने विस्तार वाला धातकी खण्ड है। इसो प्रकार अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त सर्व द्वीप समुद्र दूने दूने विस्तार वाले, अकृत्रिम और क्षय से रहित हैं ॥१२-१४॥

अव सूची व्यास का लक्षण कहते हैं:—

द्वीपाब्धीनां हि संलग्ना गणनायोजनैश्च या ।
ऋज्वीतटद्वयान्ता सा सूची बुधैर्निगद्यते ॥१५॥

अर्थः—योजनों द्वारा द्वीप या समुद्र के मध्य के माप का अथवा द्वीप या समुद्र के एक तट से दूसरे तट पर्यन्त तक के सीधे माप का जो प्रमाण है वह विद्वानों के द्वारा सूची नाम से कहा गया है ॥१५॥

विशेषार्थ.—सीधी रेखा द्वारा द्वीप समुद्र या समुद्र के एक तट से दूसरे तट पर्यन्त तक जो माप किया जाता है, उसे सूची कहते है।

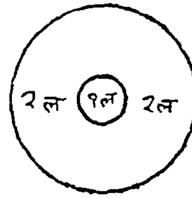
अढाई द्वीप पर्यन्त के द्वीप समुद्रों की सूची का प्रमाण कहते है:—

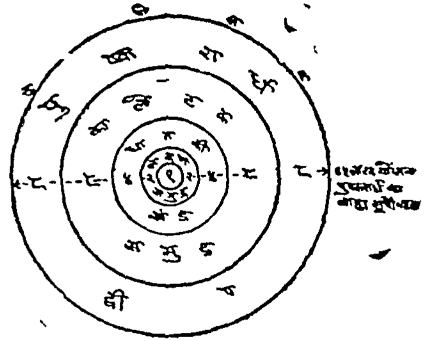
योजनानां च लक्षैकं, सूचीद्वीपादिमस्य वै ।
लवणाब्धेर्भवेत्पञ्च, लक्षयोजनसम्मिता ॥१६॥
सूची च धातकीखण्ड-स्य लक्षाणित्रयोदश ।
योजनानां तथैकोनत्रिंशत्कालोदधेस्ततः ॥१७॥
सूची स्यात्पञ्चचत्वारिं-शल्लक्षयोजनप्रमा ।
पुष्करार्धस्यसाज्ञेया-न्येषामेवं श्रुते बुधैः ॥१८॥

अर्थ—आगम मे जम्बूद्वीप के सूची व्यास का प्रमाण एकलाख योजन, लवण समुद्र के सूची व्यास का प्रमाण पांच लाख योजन, धातकी खण्ड के तेरह लाख योजन, कालोदधि समुद्र के उन्तीस लाख योजन और पुष्करार्ध द्वीप के सूची व्यास का प्रमाण गणधरादि ज्ञानियों के द्वारा ४५ लाख योजन कहा गया है ॥१६-१८॥

विशेषार्थः—अभ्यन्तर सूची, मध्य सूची और वाह्य सूची के भेद से सूची व्यास तीन प्रकार का होता है, किन्तु यहाँ केवल वाहय सूची व्यास का ही प्रमाण दर्शाया गया है।

यथाः—

लवण समुद्र का वाह्य सूची व्यास  ५ लाख योजन और

पुष्करार्ध द्वीप का बाह्य सूची व्यास  ४५ लाख योजन प्रमाण है।

अब स्थूल और सूक्ष्म परिधि का विवेचन करते हैः—

व्यासात्त्रिगुणः स्थूलः परिधिः प्रोच्यते जिनैः ।
दशघ्नव्यासवर्गस्य मूलं सूक्ष्मश्च वर्ण्यते ॥१६॥

अर्थः—बादर परिधि, व्यास की तिगुनी होती है, और व्यास का वर्ग कर दश से गुणित करना, तथा गुणनफल का वर्गमूल निकालना जो लब्ध प्राप्त हो वही सूक्ष्म परिधि का प्रमाण होता है। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ॥१६॥

अस्य विस्तरः कथ्यतेः—जम्बूद्वीपस्य स्थूलपरिधि त्रिलक्षयोजनानि। सूक्ष्मपरिधि' त्रिलक्षषोडशसहस्रद्विशतसप्तविंशतियोजनानि, त्रिगव्यूतानि, अष्टाविंशत्यधिकशतधनूषि त्रयोदशागुला साधिकार्धागुलः। लवणाब्धे स्थूलपरिधि योजनाना पञ्चदशलक्षाणि । धातकीखण्डस्य चैकोनश्चत्वारिंशल्लक्षाणि। कालोदधेः सप्ताशीतिलक्षाणि। पुष्करार्धस्य द्वीपस्य स्थूलपरिधि. एकाकोटीपञ्चत्रिंशल्लक्षाणि।

अब इसी का सविस्तर कथन करते हैः—

जम्वूद्वीप की स्थूल परिधि का प्रमाण ३ लाख योजन और सूक्ष्मपरिधि का प्रमाण ३१६२२७ योजन, ३ कोस १२८ धनुष और साधिक १३½ अगुल है। लवणसमुद्र की स्थूल परिधि का प्रमाण १५ लाख योजन है (और सूक्ष्मपरिधि का प्रमाण १५८११३८ योजन, ३ कोश, ६४०

धनुष, २ हाथ और १९$\frac{1}{2}$ अंगुल है)। धातकी खण्ड की स्थूल परिधि ३९ लाख योजन (और सूक्ष्म परिधि का प्रमाण ४११०९६० योजन, ३ कोस, १६६५ धनुष, ३ हाथ, ७$\frac{1}{2}$ अंगुल) है। कालोदधि समुद्र की स्थूल परिधि का प्रमाण ८७ लाख योजन और पुष्करार्धद्वीप की स्थूल परिधि का प्रमाण १३५००००० एक करोड ३५ लाख योजन है।

जम्बूद्वीप का बादर सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिये नियम निर्धारित करते हैं:—

परिवेषहताद् व्यासाच्चतुर्भि—र्भाजितात्फलम् ।
स्थूलं सूक्ष्मं तदेवोक्तं वृत्तक्षेत्रफलं स्फुटम् ॥२०॥

अर्थ:—स्थूलपरिधि को व्यास से गुणित कर चार से भाजित करने पर गोलक्षेत्र का स्थूलक्षेत्रफल प्राप्त होता है और सूक्ष्म परिधि को व्यास से गुणित कर ४ से भाजित करने पर सूक्ष्मक्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥२०॥

विशेषार्थ.—जम्बू द्वीप थाली के सदृश गोल है, इसका व्यास एक लाख योजन और स्थूल परिधि ३ लाख योजन है, अतः इसका स्थूल क्षेत्र फल $\frac{\text{स्थूल प० × व्यास}}{४}$ और सूक्ष्म क्षेत्रफल $\frac{\text{सूक्ष्मपरिधि × व्यास}}{४}$ के नियमानुसार निकलेगा।

वलयाकार क्षेत्र का स्थूल सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने का नियम:—

सूच्योर्योगस्य विस्तारदलघ्नस्य कृतिर्द्विधा ।
त्रिघ्नदशघ्नयोर्मूले स्थूलान्ये वलये फले ॥२१॥

अर्थ:—अन्तसूची और आदि सूची को जोड कर अर्ध विस्तार (अर्धरुन्द्रव्यास) से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दो जगह स्थापित कर एक स्थान के प्रमाण को तिगुना करने से बादरक्षेत्रफल और दूसरे स्थान के प्रमाण का वर्ग कर जो लब्ध प्राप्त हो उसको दश से गुणित कर गुणनफल का वर्गमूल निकालने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वह वलयाकार क्षेत्र के सूक्ष्मक्षेत्रफल का प्रमाण होता है।२१॥

विशेषार्थ:—लवणसमुद्र चूडी के सदृश वलयाकार है। इसका अन्त अर्थात् बाह्यसूची व्यास ५ लाख योजन और आदि अर्थात् अभ्यन्तर सूची व्यास एक लाख योजन है। इन दोनों का योग (५+१) =६ लाख योजन हुआ। लवण समुद्र का अर्धविस्तार १ लाख योजन है अतः ६ ला × १ ला = ६ लाख × लाख प्राप्त हुये। इसे ६ ला × ला, ६ ला × ला इस प्रकार दो जगह स्थापित कर एक जगह के प्रमाण को तिगुना करने से (६ ला × ला × ३) = १८ ला ला अर्थात् १८

हजार करोड योजन लवण समुद्र का बादर क्षेत्रफल हुआ, और दूसरी जगह स्थापित ६ ला ला का वर्ग करने पर ६ ला ला × ६ ला ला हुये। इनको दश से गुणित करने पर ६ ला ला × ६ ला ला × १० अर्थात् ३६ कोडाकोडी करोड योजन प्राप्त हुये। इनका वर्गमूल निकालने पर १८९७३६६५९६१० योजन अर्थात् अठारह हजार नौ सौ तिहत्तर करोड छयासठ लाख, उनसठ हजार छह सौ दश योजन लवणसमुद्रके सूक्ष्मक्षेत्रफल का प्रमाण प्राप्त होता है।

अस्यार्थ प्रोच्यते—जम्बूद्वीपस्य स्थूल वृत्तक्षेत्रफल सप्तशतपञ्चाशत् कोटि योजनानि। सूक्ष्मं च सप्तशतनवतिकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षचतुर्नवतिसहस्रैकशतपञ्चाशद्योजनानि। पादाधिकक्रोशश्च।

इसी अर्थ को कहते है—जम्बूद्वीप के स्थूलक्षेत्रफल का प्रमाण $\frac{३ ला० \times १ ला}{४}$ = सात सौ पचास करोड अर्थात् सात अरब पचास करोड वर्ग योजन है, और सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण $\frac{सूक्ष्मपरिधि \times १ ला०}{४}$ =७९०५६९४१५० योजन, १ कोस, १५१५ धनुष, २ हाथ और १२ अंगुल है।

जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्र एवं कुलाचलो के नाम:—

अथ जम्बूमति द्वीपे महामेरो सुदर्शनात्।
दक्षिणं भागमारभ्येमानि क्षेत्राणि सप्तवै ॥२२॥

आदिमं भारतं क्षेत्रं ततौ हैमवताह्वयम्।
हरिसंज्ञ विदेहाख्यं जम्बूद्वीपे च रम्यकम् ॥२३॥

हैरण्यवतनामाथै-रावतं क्षेत्रमन्तिमम्।
सप्तैतानि सुवर्षाण्यन्तरितानि कुलाचलैः ॥२४॥

प्रथमो हिमवच्छैलस्ततोमहाहिमाचलः।
निषधः पर्वतो नीलो रुक्मी च शिखरीति षट् ॥२५॥

अर्थ—जम्बूद्वीप के मध्य भागमे सुदर्शन नाम का महामेरु है, इस सुदर्शन मेरु के दक्षिणभाग से प्रारम्भ कर सात क्षेत्र है॥ सर्व प्रथम भरत क्षेत्र, (२) हैमवत, (३) हरिक्षेत्र, (४) विदेह, (५) रम्यकक्षेत्र, (६) हैरण्यवत क्षेत्र और अन्तिम (७) ऐरावत नाम का क्षेत्र है। इन सातो क्षेत्रो को अन्तरित करने वाले छह कुलाचल पर्वत है, जिसमे प्रथमादि कुलाचलो के नाम हिमवन्, (२) महाहिमवन्, (३) निषध, (४) नील पर्वत, (५) रुक्मी और (६) शिखरिन् है॥२२-२५॥

अब कुलाचलो का वर्ण कहते है:—

कनकार्जुनहेमाभास्त्रयो दक्षिणभूधराः ।
वैडूर्यरजतस्वर्ण–मयाः कुलाद्रयस्त्रयः ॥२६॥

अर्थ —दक्षिण दिशा के तीन कुलाचलों का वर्ण क्रमश· कनक, अर्जुन और हेम के सदृश है तथा उत्तर दिशा के तीन कुलाचलों का वर्ण क्रमश. वैडूर्य, रजत और स्वर्णमय है ॥२६॥

विशेषार्थः—हिमवन् पर्वत का वर्ण स्वर्ण सदृश, महाहिमवन् का अर्जुन अर्थात् चाँदी सदृश, निषधपर्वत का हेम अर्थात् तपाये हुये स्वर्ण सदृश, नील पर्वत का वैडूर्य (पन्ना) अर्थात् मयूर खण्ड सदृश, रुक्मी पर्वत का रजत अर्थात् चाँदी सदृश और शिखरिन् पर्वत का स्वर्ण सदृश वर्ण है।

भरतक्षेत्र के व्यास का प्रमाण कहते हैं:—

नवत्यग्रशतैर्भागे–र्जम्बूद्वीपस्य विस्तरः ।
विभक्तो भरतस्यैको भागो व्यासोमतोजिनैः ॥२७॥

अर्थः—जम्बूद्वीप के विस्तार (१ लाख यो०) को १९० भागों से भाजित करने पर जो एक भाग प्राप्त होता है वही भरत क्षेत्र का व्यास जिनेन्द्र भगवान् द्वारा माना गया है ॥२७॥

विशेषार्थः—जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। इसको १९० से भाजित करने पर ($\frac{१०००००}{१९०}$) =५२६$\frac{६}{१९}$ योजन प्राप्त होता है यही एक भाग भरतक्षेत्र का विस्तार माना गया है। ७ क्षेत्र और ६ पर्वतो की १९० शलाका होती है, अतः १९० से भाजित किया है। शलाका का प्रमाण १+२+४+८+१६+३२+६४+३२+१६+८+४+२+१=१९० है।

अस्यव्याख्यानमिदम्:—जम्बूद्वीपस्य नवत्यधिकशतभागकृतानामेको भागो भरतस्य विष्कम्भ·। हिमवतो द्वौभागौ च। हैमवतस्य चत्वारो भागाः। महाहिमवतोऽष्टौ भागा। हरिक्षेत्रस्य षोडशभागाः। निषधाद्रे द्वात्रिंशत्भागाः ॥ विदेहस्य चतुःषष्टिभागा। नीलस्य द्वात्रिंशत् भागाः। रम्यकस्य षोडश-भागाः। रुक्मिणोऽष्टौ भागाः। हैरण्यवतस्य चत्वारो भागाः। शिखरिणो द्वौ भागौ। ऐरावतस्यैको भागः। इत्यमी सर्वे पिण्डीकृताः कृत्स्नक्षेत्राद्रीणा नवतिशतभागा. भवन्ति।

इसीका विशेष विवेचन करते है:—जम्बूद्वीप के (१००००० योजन विस्तार के) १९० भाग करने पर १ भाग प्रमाण भरत का विस्तार, २ भाग हिमवन्, ४ भाग हैमवत, ८ भाग महाहिमवन्, १६ भाग हरिक्षेत्र, ३२ भाग निषधपर्वत, ६४ भाग विदेह, ३२ भाग नील पर्वत, १६ भाग रम्यक क्षेत्र, ८ भाग रुक्मी पर्वत, ४ भाग हैरण्यवत क्षेत्र, २ भाग शिखरिन् पर्वत और १ भाग प्रमाण ऐरावत क्षेत्र

का विस्तार है। इन सबको जोड लेने पर सम्पूर्ण क्षेत्र और सम्पूर्ण कुलाचलो की सम्पूर्ण शलाकाओ का प्रमाण (१+२+४+८+१६+३२+६४+३२+१६+८+४+२+१) =१९० होता है।

अब क्षेत्र एव कुलाचलो का विस्तार कहते है —

योजनानां च षड्विंशत्यग्रपञ्चशतान्यपि ।
एकोनविंशभागानां कृतानां योजनस्य वै ॥२८॥
षट्भागा इति विष्कम्भो भरतस्य भवेत्ततः ।
द्विगुणः पर्वतस्येति द्विगुणो द्विगुणोऽपरः ॥२९॥
व्यासो विदेहपर्यन्तं ततो नीलादिषु क्रमात् ।
पूर्वोक्त विधि हान्यैरावतान्तं विस्तरो मतः ॥३०॥
क्षेत्राच्चतुर्गुणं क्षेत्रमद्रेरद्रिश्चतुर्गुणम् ।
भरतादि विदेहान्तं नीलादौ चतुराहृतम् ॥३१॥

अर्थः—भरतक्षेत्र का विष्कम्भ ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन प्रमाण है। हिमवन् पर्वत का इससे दुगुणा है, इस प्रकार विदेह क्षेत्र पर्यन्त प्रत्येक क्षेत्र एव पर्वत का विष्कम्भ क्रमशः दुगुणा दुगुणा होता गया है, और नील पर्वत से ऐराबत क्षेत्र पर्यन्त इसी क्रम से हानि होती गई है। भरतक्षेत्र से विदेह क्षेत्र पर्यन्त प्रत्येक क्षेत्र से क्षेत्र का विष्कम्भ चौगुना है और प्रत्येक पर्वत से पर्वत का चौगुना है। इसके आगे नीलादि पर्वतो एव रम्यक आदि क्षेत्रों का पूर्वोक्त क्रम से ही चौगुना चौगुना हीन होता गया है ॥२८-३१॥

अस्यविशेषव्याख्यानमुच्यते·—भरतस्य विष्कम्भ योजनाना षड्विंशत्यग्रपञ्चशतानि योजनस्यैकोनविंशतिभागीकृतस्य कला षट्। हिमवतश्च द्विपञ्चाशदधिकदशशतानि कला द्वादश। हैमवतस्य पञ्चाधिकैकविंशतिशतानि कला पञ्च। महाहिमवत दशाधिकद्विचत्वारिंशच्छतानि कला दश। हरिवर्षस्याष्टसहस्रचतुःशतैकविंशतिरेका कला। निषधस्य षोडशसहस्राष्टशतद्विचत्वारिंशद् द्वे कले। विदेहस्य व्यासः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रषट्शतचतुरशीति योजनानि चतस्रः कला.। नीलस्य षोडशसहस्राष्टशतद्विचत्वारिंशत् द्वे कले। रम्यकस्याष्टसहस्रचतु शतैकविंशतिरेका कला। रुक्मिणः चतु सहस्रद्विशतदशयोजनानि कला दश। हैरण्यवतस्य पञ्चाग्रैकविंशतिशतानि कलाः पञ्च। शिखरिण. द्विपञ्चाशदधिकदशशतानि कला द्वादश। ऐरावतस्य विस्तार· षड्विंशत्यधिकपञ्चशतयोजनानि, योजनैकोनविंशतिभागाना षट्कलाश्च। एवमेकत्रीकृते जम्बूद्वीपस्य व्यासः योजनाना लक्षैकं स्यात्।

उपर्युक्त गद्यभाग का सम्पूर्ण अर्थ निम्नाङ्कित तालिका मे निहित है।

समस्त क्षेत्र एवं कुलाचलों के विस्तार का प्रमाण :—

क्रमांक	नाम	क्षेत्रो का विस्तार		क्रमांक	नाम	कुलाचलो का विस्तार	
		योजनो मे	मीलो मे			योजनो मे	मीलो मे
१	भरत	५२६ ६/१९	२१०५२६३ ३/१९	१	हिमवन्	१०५२ १२/१९	४२१०५२६ ६/१९
२	हैमवत	२१०५ ५/१९	८४२१०५२ १२/१९	२	महाहिमवन	४२१० १०/१९	१६८४२१०५ ५/१९
३	हरि	८४२१ १/१९	३३६८४२१० १०/१९	३	निषध	१६८४२ २/१९	६७३६८४२१ १/१९
४	विदेह	३३६८४ ४/१९	१३४७३६८४२ २/१९	४	नील	१६८४२ २/१९	६७३६८४२१ १/१९
५	रम्यक	८४२१ १/१९	३३६८४२१० १०/१९	५	रुक्मी	४२१० १०/१९	१६८४२१०५ ५/१९
६	हैरण्यवत	२१०५ ५/१९	८४२१०५२ १२/१९	६	शिखरी	१०५२ १२/१९	४२१०५२६ ६/१९
७	ऐरावत	५२६ ६/१९	२१०५२६३ ३/१९				

कुलाचलों के व्यास आदि का वर्णन:—

एते कुलाद्रयो रम्याः क्षेत्रैरन्तरिता हि षट् ।
पूर्वापराब्धिसंलग्ना वनवेद्याद्यलंकृताः ॥३२॥
मूलोपरिसमव्यासाः शाश्वतास्तुङ्गमूर्तयः ।
नानामणिविचित्रोभयपार्श्वाः श्रीजिनैर्मताः ॥३३॥

अर्थः—क्षेत्रो के द्वारा अन्तरित ये रमणीक छह कुलाचल पर्वत पूर्व पश्चिम समुद्र को स्पर्श करने वाले, वनवेदी आदि से अलंकृत, मूल से अग्रभाग पर्यन्त समव्यास वाले, शाश्वत, दीवाल के सदृश ऊँचे और नाना प्रकार की मणियों से खचित दोनो पार्श्व भागो से युक्त है ऐसा श्री जिनेन्द्र देव पूने कहा है ॥३२–३३॥

विशेषार्थः—इन कुलाचलो के दोनों पार्श्वभाग नाना प्रकार की मणियो से खचित है और वं पश्चिम समुद्रों को स्पर्श करने वाले है। इनमें जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलो के दोनो पार्श्वभाग लवण समुद्र को स्पर्श करते है। धातकीखण्डस्थ कुलाचल लवणोदधि और कालोदधि को स्पर्श करते हैं, तथा पुष्करार्धद्वीपस्थ कुलाचल कालोदधि और मानुषोत्तर पर्वत को स्पर्श करते है।

कुलाचलो की ऊँचाई का वर्णनः—

शतैक योजनोत्तुङ्गो हिमवान् द्विशतप्रमः ।
महादिहिमवांस्तुङ्गो योजनैश्चचतुःशतैः ।।३४।।
निषधस्तत्समो नीलो रुक्मी शतद्वयोन्नतः ।
योजनानां शतोच्छ्रायः शिखरीति जिनोदितः ।।३५।।

अर्थः—हिमवान् पर्वत की ऊँचाई १०० योजन (४००००० मील), महाहिमवान् की २०० योजन (८००००० मील), निषध पर्वत की ४०० योजन (१६००००० मील) नील पर्वत की ४०० योजन, रुक्मी की २०० योजन और शिखरिन् पर्वत की ऊँचाई १०० योजन प्रमाण है ।।३४–३५।।

अब जीवा, धनुपृष्ठ, चूलिका और पार्श्वभुजा के लक्षण कहते हैः—

नवत्यग्रशतांशेन वृत्तद्वीपस्य विस्तृतिः ।
वाणस्तद् द्विगुणाः शेषास्तेषां जीवा धनुः प्रथम् ।।३६।।
पूर्वापराब्धिपर्यन्तं दक्षिणोत्तरभागयोः ।
क्षेत्राद्रीणां य आयामः सा जीवा कथ्यते बुधैः ।।३७।।
यच्चापाकारवर्षाद्रीणां पृष्ठभागमञ्जसा ।
पृष्ठं शरासनस्येव तद् धनुः पृष्ठमुच्यते ।३८।।
लघ्व्या गुर्व्याश्च जीवा या आयामस्य यदन्तरम् ।
वर्षाद्रीणां च तस्यार्धं यत् सोक्ता चूलिकागमे ।।३९।।
लघुज्येष्ठधनुः पृष्ठयोर्दीर्घस्य यदन्तरम् ।
क्षेत्राद्रीणां च तस्यार्धं यत् सा पार्श्वभुजा मता ।।४०।।

अर्थ.—गोलाकार जम्बूद्वीप के विस्तार (१ ला० योजन) का एक सौ नब्बे वाँ भाग भरतक्षेत्र का वाण है । उससे आगे के पर्वतो तथा क्षेत्रो का वाण उससे दुगुणा दुगुणा होता गया है । उनके जीवा एवं धनुपृष्ठ पृथक् पृथक् है ।।३६।। क्षेत्र या पर्वत के दक्षिण की ओर या उत्तर की ओर जो समुद्र पर्यन्त क्षेत्र या पर्वत की पूर्व–पश्चिम लम्बाई है, वह दक्षिण जीवा व उत्तर जीवा है, ऐसा ज्ञानियो ने कहा है ।।३७।। क्षेत्र या पर्वत का जो चाप के आकार पृष्ठभाग है, तथा जो पृष्ठ तीर के आसन के समान है, वह धनु पृष्ठ कहलाता है ।।३८।। क्षेत्र व पर्वतों की लघु जीवा की लम्बाई और गुरु (बडी) जीवा की लम्बाई का जो अन्तर है, उसका आधा चूलिका है ।।३९।। क्षेत्र एवं पर्वतो के

छोटे धनुपृष्ठ व बडे धनुपृष्ठ का जो अन्तर है, उसका अर्धप्रमाण पार्श्व भुजा कहलाती है, ऐसा जानना चाहिए ॥४०॥

अमीषां विस्तरव्याख्यानमुच्यते:—विजयार्धस्याभ्यन्तरबाणः योजनानां अष्टत्रिंशदधिकशतद्वयं तिस्रः कलाः। विजयार्धस्य बाह्यबाणः अष्टाशीत्यधिकशतद्वयं कलास्तिस्रश्च । समस्तभरतस्य बाणः षड्विंशत्यधिकपञ्चशतानिषट्कलाश्च । हिमवतोबाणः योजनानां अष्टसप्तत्यधिकपञ्चदशशतानि कला अष्टादश । हैमवतक्षेत्रस्य बाणः त्रिसहस्रषट्शतचतुरशीति योजनानि कलाश्चतस्रः। महाहिमवतोबाणः सप्तसहस्राष्टशत-चतुर्नवति योजनानि कलाश्चतुर्दश । हरिवर्षस्य बाणः षोडश सहस्रत्रिशतपञ्चदश योजनानि कलाः पञ्चदश । निषधपर्वतस्य बाणः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रैकशत-सप्तपञ्चाशद्योजनानि कलाः सप्तदश । विदेहस्य मध्यस्थबाणः योजनानां पञ्चाशत्सहस्राणि ।

इति यथा दक्षिणदिग्भागे क्षेत्रकुलाद्रोणा बाणो व्याख्यातः, तथोत्तरदिग्भागेऽपि ज्ञातव्यः।

बाण, जीवा, धनुः और चूलिका आदि का सविस्तार वर्णन करते हुये सर्व प्रथम बाण का प्रमाण कहते है —

विजयार्ध पर्वत के	अभ्यन्तर	बाण	का	प्रमाण	२३८ ३/१९	योजन	है ।
,, ,, ,,	बाह्य	,,	,,	,,	२८८ ३/१९	,,	है ।
सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के		,,	का	,,	५२६ ६/१९	,,	,, ।
हिमवन् पर्वत	,,	,,	,,	,,	१५७८ १८/१९	,,	,, ।
हैमवत क्षेत्र	,,	,,	,,	,,	३६८४ ४/१९	,,	,, ।
महाहिमवन् पर्वत	,,	,,	,,	,,	७८९४ १४/१९	,,	,, ।
हरिवर्ष क्षेत्र	,,	,,	,,	,,	१६३१५ १५/१९	,,	,, ।
निषध पर्वत	,,	,,	,,	,,	३३१५७ १७/१९	,,	,, ।
विदेहक्षेत्र के मध्य	,,	,,	,,	,,	५००००	योजन	है ।

जैसे जम्बूद्वीप के दक्षिणभागस्थ क्षेत्र और कुलाचलो के बाण का प्रमाण कहा है, उसी प्रकार उत्तर भाग में स्थित ऐरावत आदि क्षेत्र एवं नील आदि पर्वतों के बाण का प्रमाण भी जानना चाहिये ।

भरतैरावतविजयार्धयोरभ्यन्तरजीवा नवसहस्र-सप्तशताष्टचत्वारिंशद्योजनानि, सविशेषा द्वादशकलाः। बाह्यजीवादशसहस्र-सप्तशत विंशति योजनानि किञ्चिदूनाद्वादशकलाः । चूलिका षडशीत्यधिक चतु शतयोजनानि ।

लघुधनुः पृष्ठ नवसहस्र–सप्तशत–षट्षष्टियोजनानि साधिक कलैका । वृहद्धनुःपृष्ठ दशसहस्र–सप्तशत–त्रिचत्वारिंशद्योजनानि । योजनैकोनविंशतिकृतभागाना साधिकाः पञ्चदशभागाः । पार्श्व–भुजा चतु शताष्टाशीतियोजनानि सार्धषोडशकलाश्च । हिमवतो दक्षिणदिशिलघुजीवाचतुर्दशसहस्र–चतु शतैकसप्ततियोजनानि कला पञ्च । उत्तरभागे वृहज्जीवा चतुर्विंशतिसहस्र–नवशत–द्वात्रिंशद्योज-नानि । चूलिका च पञ्चसहस्र–द्विशतत्रिंशद्योजनानि कलाः सप्त । कनिष्ठधनुः पृष्ठ चतुर्दश सहस्रपञ्च–शताष्टाविंशति योजनानि, कला एकादश । ज्येष्ठधनु पृष्ठ पञ्चविंशतिसहस्रद्विशत–त्रिंशत्योजनानि चतस्रः कलाः । पार्श्वभुजा पञ्चसहस्र–त्रिशतपञ्चाशद्योजनानि सार्ध पञ्चदशकलाः । हिमवतो दक्षिणभागे यौ जीवाधनु· पृष्ठौ व्याख्यातौ तावेवोत्तरे भरतक्षेत्रस्य विज्ञेयौ । यथा भरतहिमवतो र्जीवाधनु पृष्ठ–चूलिकापार्श्वभुजा निर्दिष्टा तथाऽन्यस्मिन् भागे ऐरावतशिखरिणोर्ज्ञातव्या ।

महाहिमवत. कनिष्ठपार्श्वे पूर्वापरायामः सप्तत्रिंशत्सहस्र–षट्शत- चतु सप्तति योजनानि कला षोडश । ज्येष्ठपार्श्वेचायाम त्रिपञ्चाशत्सहस्रनवशतैकत्रिंशद्योजनानि कला षट् । चूलिका अष्टसहस्रै–कशताष्टाविंशतियोजनानि भागाः सार्धचत्वारः । महाहिमवतो लघुधनु पृष्ठ योजनानामष्टत्रिंशत्सहस्र–सप्तशतचत्वारिंशत् कला दश । बृहद्धनुः पृष्ठ सप्त।ञ्चाशत्सहस्र–द्विशत–त्रिनवति योजनानि कला दश । पार्श्वभुजा नवसहस्र–द्विशत–षट्सप्ततियोजनानि कलाः सार्धं नव । महाहिमवतो लघुजीवाधनु· पृष्ठौ यौ प्रोक्तौ तावेव हैमवतस्य ज्येष्ठौ मन्तव्यौ यथा हैमवतक्षेत्रमहाहिमवतोः जीवाचूलिकाधनुः पृष्ठपार्श्वभुजा उक्ताः तथा हैरण्यवतरुक्मिणोरपि विज्ञेया ।

निषधपर्वतस्य जघन्यायामो योजनाना त्रिसप्तसहस्र–नवशतैकोत्तराणि योजनस्यैकोनविंशति–भागाना सप्तदश भागा । उत्कृष्टायामः चतुर्नवतिसहस्रैकशतषट्पञ्चाशद्योजनानि द्वे कले । चूलिका च दशसहस्रैकशतसप्तविंशति योजनानि भागौ द्वौ । कनिष्ठधनु पृष्ठ योजनानि षोडशाधिकचतुरशीति-सहस्राणिकलाश्चतस्र । ज्येष्ठधनु·पृष्ठ एकलक्ष–चतुर्विंशतिसहस्र–त्रिशत-षट्चत्वारिंशत् नवकलाः । पार्श्वभुजा विंशतिसहस्रैकशत–पञ्चषष्टिः सार्धे द्वे कले च । निषधाद्रे–र्योजघन्यायाम धनुः पृष्ठौ कथितौ तावेव हरिवर्षस्योत्कृष्टौ भवत । हरिनिषधयोरायाम चूलिकाधनुः पृष्ठपार्श्वभुजा ये वर्णिता ते सर्वेरम्यकनीलयार्भवन्ति । विदेहस्य मध्यजीवा योजनाना लक्षैक स्यात् धनु पृष्ठ एकलक्षाष्टपञ्चा–शत्सहस्रैकशतत्रयोदशयोजनानि कलाः षोडश । ❀ विदेहस्य[१] अर्धचूलिका एकोनत्रिंशत्शतानि एकविंशत्यधिकानि अष्टादश कलाः । पार्श्वभुजा षोडशसहस्रअष्टशतत्र्यशीति कला, अष्टाविंशति कला इति हरिवंशोक्तिः । ❀

१ ❀ तारका मध्यगता पङ्क्तय अ प्रतौ न सन्ति ।

सम्पूर्ण क्षेत्र एवं कुलाचलों की जीवा, चूलिका, धनुष और पार्श्वभुजा का वर्णनः—

भरतक्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र के दो विजयार्धों की अभ्यन्तर जीवा का प्रमाण ९७४८$\frac{१२}{१९}$ योजन (१२ कला से कुछ अधिक) है । बाह्य जीवा अर्थात् विजयार्ध की बाह्य जीवा का प्रमाण १०७२०$\frac{११}{१९}$ योजन (१२ कला में कुछ कम) है । इसो विजयार्ध को चूलिका ४८६ योजन है । इसी का लघुधनुपृष्ठ ९७६६$\frac{१}{१९}$ योजन है । विजयार्ध का वृहद् धनु पृष्ठ १०७४३$\frac{१५}{१९}$ योजन और पार्श्वभुजा ४८८$\frac{१६\frac{१}{२}}{१९}$ योजन है । हिमवन् पर्वत की दक्षिण दिशा वाली लघुजीवा अर्थात् भरत की उत्तर जीवा का प्रमाण १४४७१$\frac{५}{१९}$ योजन है । इसी हिमवन् के उत्तर भाग में वृहद जीवा अर्थात् हैमवत क्षेत्र की दक्षिण जीवा का प्रमाण २४९३२ योजन है । हिमवन् पर्वत की चूलिका ५२३०$\frac{७}{१९}$ योजन प्रमाण है । इसी पर्वत का लघुधनु पृष्ठ अर्थात् भारत का उत्तर धनुपृष्ठ १४५२८$\frac{११}{१९}$ योजन और ज्येष्ठ धनु.पृष्ठ अर्थात् हैमवत क्षेत्र का लघुधनुः पृष्ठ २५२३०$\frac{४}{१९}$ योजन है । हिमवन् पर्वत की पार्श्व भुजा ५३५०$\frac{१५\frac{१}{२}}{१९}$ योजन प्रमाण है ।

हिमवन् पर्वत के दक्षिण भागमे जो जीवा और धनुपृष्ठ का प्रमाण कहा है वही प्रमाण भरत क्षेत्र के उत्तर का जानना चाहिये ।

जिस प्रकार भरत क्षेत्र और हिमवान् पर्वत की जीवा, धनुपृष्ठ, चूलिका और पार्श्व भुजा के प्रमाण का व्याख्यान किया है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप के उत्तर भाग में ऐरावत क्षेत्र और शिखरिन् पर्वत का जानना चाहिये ।

महाहिमवन् पर्वत से कनिष्ठ (छोटे) पार्श्व भाग का पूर्व पश्चिम आयाम अर्थात् हैमवत क्षेत्र की उत्तरी जीवा का प्रमाण ३७६७४$\frac{१६}{१९}$ योजन है, और ज्येष्ठ (बडे) पार्श्व भाग का आयाम अर्थात् महाहिमवन् पर्वत की ज्येष्ठ जीवा अर्थात् हरिक्षेत्र की दक्षिण जीवा का प्रमाण ५३९३१$\frac{६}{१९}$ योजन है । इसकी चूलिका का प्रमाण ८१२८$\frac{४\frac{१}{२}}{१९}$ योजन है । महाहिमवन् के लघुधनु पृष्ठ अर्थात् हैमवतक्षेत्र के ज्येष्ठ धनुप का प्रमाण ३८७४०$\frac{१०}{१९}$ योजन, इसके वृहद् धनुपृष्ठ अर्थात् महाहिमवन् पर्वत के वृहद् धनुप का अर्थात् हरिक्षेत्र के लघु धनुपृष्ठ का प्रमाण ५७२९३$\frac{१०}{१९}$ योजन और इसी पर्वत की पार्श्व भुजा का प्रमाण ९२७६$\frac{१}{२}$ योजन है ।

महाहिमवन् पर्वत की लघु जीवा और लघुधनुः पृष्ठ का जो प्रमाण कहा गया है वही प्रमाण हैमवत क्षेत्र की उत्तरी जीवा एवं धनुप का जानना चाहिये । [हैमवत क्षेत्र की चूलिका ६३७१$\frac{८}{१९}$ योजन तथा पार्श्व भुजा का प्रमाण ६७५५$\frac{३}{१९}$ योजन है]

जिस प्रकार हैमवत क्षेत्र और महाहिमवन् पर्वत की जीवा, चूलिका धनुष और पार्श्वभुजा के प्रमाण का कथन किया है हैरण्यवत क्षेत्र और रुक्मी पर्वत के जीवा धनुष आदि का प्रमाण भी उसी प्रकार जानना चाहिये।

निषधपर्वत का जघन्य आयाम अर्थात् हरिक्षेत्र की उत्तरी जीवा का प्रमाण ७३९०१$\frac{१७}{१९}$ योजन है। इसी पर्वत का उत्कृष्ट आयाम अर्थात् जीवा का अथवा विदेह क्षेत्र की दक्षिण जीवा का प्रमाण ९४१५६$\frac{२}{१९}$ योजन और चूलिका का प्रमाण १०१२७$\frac{२}{१९}$ योजन है। निषध के कनिष्ठ धनुः पृष्ठ अर्थात् हरिक्षेत्र के ज्येष्ठ धनुष का प्रमाण ८४०१६$\frac{४}{१९}$ योजन और ज्येष्ठ धनु. पृष्ठ अर्थात् निषधके धनुष का प्रमाण १२४३४६$\frac{९}{१९}$ योजन है, तथा निषध की पार्श्वभुजा का प्रमाण २०१६५$\frac{५}{३८}$ योजन है।

निषध पर्वत का जो जघन्य आयाम एवं लघुधनु पृष्ठ के प्रमाण का कथन किया है वही हरि क्षेत्र की उत्तरी जीवा एवं ज्येष्ठ धनुष का प्रमाण होता है।

हरिक्षेत्र और निषध पर्वत के आयाम, चूलिका, धनुष और पार्श्वभाग आदि के प्रमाण का जो निदर्शन किया है वही प्रमाण रम्यकक्षेत्र और नील पर्वत की जीवा आदि का जानना चाहिये।

विदेह की मध्य जीवा का प्रमाण एक लाख योजन, धनु पृष्ठ का प्रमाण १५८११३$\frac{११}{१९}$ योजन है। विदेह की अर्धचूलिका का प्रमाण २९२१$\frac{१}{१९}$ योजन और पार्श्वभुजा का प्रमाण १६८८३$\frac{२७}{३८}$ योजन है। (यह सब वर्णन हरिवंश पुराण के अनुसार किया है)

दक्षिण भरत से उत्तर ऐरावत क्षेत्र पर्यन्त सम्पूर्ण क्षेत्र एवं कुलाचलों का
ब्यास, बाण, जीवा, चूलिका, धनुष और पार्श्वभुजा का एकत्रित
प्रमाण (योजनों में) निम्नप्रकार है:—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

क्रमांक	नाम	व्यास	बाण	जीवा	चूलिका	धनुष	पार्श्वभुजा
१	दक्षिण भरत	२३८ ३/१९	२३८ ३/१९	९७४८ १२/१९	×	९७६६ १/१९	×
२	विजयार्ध	५० योजन	२८८ ३/१९	१०७२० ११/१९	४८५ ३७/३८	१०७४३ १५/१९	४८८ ३३/३८
३	उत्तर भरत	२३८ ३/१९	५२६ ६/१९	१४४७१ ६/१९	१८७५ १३/३८	१४५२८ ११/१९	१८९२ १५/३८
४	हिमवान् पर्वत	१०५२ १२/१९	१५७८ १८/१९	२४९३२ १/१९	५२३० १५/३८	२५२३० ४/१९	५३५० ३१/३८
५	हैमवत	२१०५ ५/१९	३६८४ ४/१९	३७६७४ १६/१९	६३७१ १५/३८	३८७४० १०/१९	६७५५ ३/१९
६	महा हि०	४२१० १०/१९	७८९४ १४/१९	५३९३१ ६/१९	८१२८ ९/३८	५७२९३ १०/१९	९२७६ १/२
७	हरिक्षेत्र	८४२१ १/१९	१६३१५ १५/१९	७३९०१ १७/१९	९९८५ ११/३८	८४०१६ ४/१९	१३३६१ १३/३८
८	निषध	१६८४२ २/१९	३३१५७ १७/१९	९४१५६ २/१९	१०१२७ २/१९	१२४३४६ १/१९	२०१६५ ५/३८
९	दक्षिण विदेह	१६८४२ २/१९	५००००	१०००००	२९२१ १८/१९	१५८११४	१६८८३ २७/३८
१०	उत्तर वि०	१६८४२ २/१९	५००००	१०००००	२९२१ १८/१९	१५८११४	१६८८३ २७/३८
११	नील	१६८४२ २/१९	३३१५७ १७/१९	९४१५६ २/१९	१०१२७ २/१९	१२४३४६ ९/१९	२०१६५ ५/३८
१२	रम्यक	८४२१ १/१९	१६३१५ १५/१९	७३९०१ १७/१९	९९८५ ११/३८	८४०१६ ४/१९	१३३६१ १३/३८
१३	रुक्मी	४२१० १०/१९	७८९४ १४/१९	५३९३१ ६/१९	८१२८ ९/३८	५७२९३ १०/१९	९२७६ १/२
१४	हैरण्यवत	२१०५ ५/१९	३६८४ ४/१९	३७६७४ १६/१९	६३७१ १५/३८	३८७४० १०/१९	६७५५ ३/१९
१५	शिखरिन्	१०५२ १२/१९	१५७८ १८/१९	२४९३२ १/१९	५२३० १५/३८	२५२३० ४/१९	५३५० ३१/३८
१६	द० ऐरावत	२३८ ३/१९	५२६ ६/१९	१४४७१ ५/१९	१८७५ १३/३८	१४५२८ ११/१९	१८९२ १५/३८
१७	विजयार्ध	५० यो०	२८८ ३/१९	१०७२० ११/१९	४८५ ३७/३८	१०७४३ १५/१९	४८८ ३३/३८
१८	उ० ऐरावत	२३८ ३/१९	२३८ ३/१९	९७४८ १२/१९	×	९७६६ १/१९	×

कुलाचलो के गाध (नीव) का एव उनके ऊपर स्थितकूटो का प्रमाण:—

एकादशमहाकूटैः शिखरेऽलंकृतो महान् ।
हिमवान् राजतेऽगाधः पञ्चविंशतियोजनैः ।।४१।।
अष्टकूटैर्युतो मूर्ध्नि पञ्चाशद्योजनैर्वर॰ ।
भूमध्ये भाति तेजोभिर्महादि हिमवान् गिरि. ।।४२।।
नवकूटाङ्कितो मूर्ध्नि शतयोजनकन्दयुक् ।
निषधश्च तथा नीलः कन्दकूटैर्हि तत्समः ।।४३।।
पञ्चाशद्योजनागाधो रुक्मी कूटाष्टभूषितः ।
शिखरोकन्दकूटाभ्यां भवेद् हिमवता समः ।।४४।।

अर्थः—हिमवान् पर्वत की गाध (नीव) २५ योजन प्रमाण है, और इसका शिखर ग्यारह महाकूटो द्वारा अलकृत है। महाहिमवान् पर्वत की नीव ५० योजन प्रमाण है और इसका ऊर्ध्वभाग (शिखर) दैदोप्यमान आठ कूटो से शोभायमान है। निषध और नील पर्वतो की नीव समान अर्थात् सौ सौ (१००) योजन प्रमाण है, और इनके अग्रभाग भी ९–९ महाकूटो से अलंकृत है। रुक्मी कुलाचल की नीव ५० योजन है, और उसका शिखर आठ कूटो से सुशोभित है। इसी प्रकार शिखरिन् कुलाचल की नीव २५ योजन प्रमाण है, और उसका ऊर्ध्वभाग ११ महाकूटों से अलकृत है ।।४१–४४।।

छह कुलाचलस्थ ५६ महाकूटो के नाम और स्वामी —

सिद्धायतननामाढ्यं हिमवत्कूटमूर्जितम् ।
अपरं भरताभिख्यमिलाकूटं चतुर्थकम् ।।४५।।
गङ्गाकूटं श्रियःकूटं रोहितासिन्धुसंज्ञके ।
सुराहैमवते कूटे कूटं वैश्रवणान्तिमम् ।।४६।।
इत्येकादशकूटानि मूर्ध्नि स्यु र्हिमवद्गिरेः ।
सिद्धायतन कूटाख्यं महाहिमवताह्वयम् ।।४७।।
कूटं हैमवतं रोहित्कूटंह्रीकूटनामकं ।
कूटं च हरिकान्ताख्य हरिवर्षाभिधं ततः ।।४८।।
वैडूर्यमष्टकूटानीति स्युर्महाहिमाचले ।
सिद्धाख्यं निषधाभिख्यं हरिकूटं विदेहकम् ।।४९।।

ह्रीकूटं धृतिकूटाख्यं सीतोदाकूटसंज्ञकं ।
विदेहं भुजगाख्यं स्युः कूटानि निषधे नव ॥५०॥
सिद्धं नीलाह्वयं कूटं विदेह कूटनामकं ।
सीताख्यं कीर्तिकूटं च नरकान्तासमाह्वयम् ॥५१॥
ततोऽपरविदेहाख्यं कूटरम्यक संज्ञकं ।
आदर्शकमिमानि स्यु र्नीले कूटानि वै नव ॥५२॥
सिद्धाख्यं रुक्मि कूटं च कूटं रम्यकनामकं ।
नारीकूटं हि वुध्याख्यं रूप्यकूलाभिधं ततः ॥५३॥
हैरण्यवतकूटाख्यं माणिभद्रसमाह्वयं ।
स्युरेतान्यष्टकूटानि रुक्मिणः शिखरे वरे ॥५४॥
सिद्धं शिखरि कूटाख्यं हैरण्यवतसंज्ञकं ।
सुरदेवाख्यकं कूटं ततो रक्ताभिधानकम् ॥५५॥
लक्ष्मीकूटं सुवर्णाख्यं रक्तवत्याख्यकं ततः ।
कूटं गन्धवती संज्ञं कूटमैरावताभिधम् ॥५६॥
मणिकाञ्चनकूटं स्युरिमान्येकादश स्फुटं ।
कूटानिशिखरे रम्याण्यद्रेः शिखरिणः क्रमात् ॥५७॥
सिद्धायतनकूटेषु सर्वेषु श्री जिनालयाः[1] ।
खगेशदेववन्द्याचर्या राजन्ते रत्नरश्मिभिः ॥५८॥

अर्थः—१ सिद्धायतन, २ हिमवन् कूट, ३ भरत, ४ इला, ५ गङ्गाकूट, ६ श्रीकूट, ७ रोहितास्या, ८ सिन्धु, ६ सुराकूट, १० हैमवत, और ११ वैश्रवण ये ११ कूट हिमवान् कुलाचल के शिखर पर क्रम से स्थित है।

१ सिद्धायतन कूट, २ महाहिमवन्, ३ हैमवत, ४ रोहिता, ५ ह्री कूट, ६ हरिकान्ता, ७ हरिवर्ष और ८ वैडूर्य नाम के ये ८ कूट महाहिमवन् पर्वत के शिखर पर हैं। १ सिद्ध कूट, २ निषध,

---

१. अत्र विशेषाः ये शाश्वता जिनालया वर्तन्ते । अथवा विमानेषु ये देवप्रासादा वर्तन्ते ते सर्वेपि यद्यपि अकृत्रिमाः वर्तन्ते तथापि तेषां मानं मानवयोजन क्रोशादि कृत ज्ञातव्य । अन्यानि शाश्वतानि प्रमाणयोजनादिभिर्ज्ञातव्यानि इति ।

३ हरि (वर्ष) कूट, ४ (पूर्व) विदेह कूट, ५ ह्री (हरि) कूट, ६ धृति कूट, ७ सीतोदा, ८ (अपर) विदेह कूट, और ९ भुजग नामक कूट है। ये ९ ही कूट क्रमशः निषध कुलाचल के ऊपर है ।।४५–५०।।

१ सिद्धकूट, २ नील कूट, ३ (पूर्व) विदेह, ४ सीता कूट, ५ कीर्ति कूट, ६ नरकान्ता, ७ (अपर) विदेह, ८ रम्यक और ९ आदर्शक नाम के ये ९ कूट नील कुलाचल के अग्रभाग पर स्थित है ।।५१–५२।।

१ सिद्ध कूट, २ रुक्मी, ३ रम्यक, ४ नारी कूट, ५ बुद्धि कूट, ६ रूप्यकूला, ७ हैरण्यवत और ८ माणिभद्र नाम के ये ८ कूट रुक्मी कुलाचल पर स्थित है ।। ५३–५४ ।।

१ सिद्ध कूट, २ शिखरी, ३ हैरण्यवत, ४ सुरदेव, ५ रक्ता, ६ लक्ष्मी कूट, ७ सुवर्ण, ८ रक्तवती, ९ गन्धवती, १० ऐरावत, और ११ मणिकाञ्चन नाम के ११ रमणीक कूट क्रमशः शिखरिन् पर्वत के ऊपर स्थित है ।।५५–५७।।

सम्पूर्ण सिद्धायतन कूटो के ऊपर खगेन्द्र और देवसमूह से अर्चनीय श्री जिनमन्दिर विद्यमान है, जो रत्न किरणो से सुशोभित होते है ।। ५८ ।।

नोटः— इन उपर्युक्त ५६ कूटो का पारम्परिक अन्तर, प्रत्येक कूट के उत्सेध एवं विस्तार आदि का वर्णन आगे ७३ आदि श्लोको मे किया जायगा ।

अब कूटो के ऊपर स्थित जिनालय आदि का विस्तारादि कहते है :—

योजनानां च सार्धद्विक्रोशपञ्चदशप्रमैः ।
समानायामविस्तारा रत्नस्वर्णमया गृहाः ।।५९।।
तुङ्गाः क्रोशाधिकैक त्रिंशद्योजनैर्मनोहराः ।
कूटानां शिखरेषु स्युः क्रोशागाधाः स्फुरद्रुचः ।।६०।।

अर्थः—कुलाचलस्थ कूटो के शिखरो पर पन्द्रह योजन अढाई कोस लम्बे, १५ योजन २½ कोस चौडे इकतीस (३१) योजन एक कोस ऊँचे और एक कोस गाध (नीव) से युक्त, फैल रही है किरणे जिनमे से ऐसे रत्न और स्वर्ण मय मनोहर गृह (भवन) बने है ।।५९–६०।।

विशेषार्थ —टिप्पणकार ने यहाँ एक विशेष बात दर्शाई है कि कूटोके ऊपर स्थित ये जिनालय एव देवप्रासाद यद्यपि अकृत्रिम है तथापि इनका माप मानव योजन (लघु योजन, और क्रोश आदि से ही किया गया है, ऐसा जानना चाहिये । अन्य और जो शाश्वत वस्तुएँ है उनका माप अलौकिक प्रमाण से है ।

अब भवनस्थ तोरणद्वारो का विस्तार आदि कहते है :—

योजनाष्टसमुत्तुङ्गाश्चतुर्योजन विस्तृताः ।
गृहेषु तोरणद्वारा राजन्ते मणितेजसा ।।६१।।

अर्थः—उन भवनो में मणियो की दीप्ति से शोभायमान आठ योजन ऊँचे और चार योजन विस्तार वाले तोरणद्वार है ।।६१।।

कूटस्थ भवनों मे निवास करने वालों का दिग्दर्शन कराते हैं :—

शैलेषु यानि कूटानि नदीनामयुतान्यपि
देव्यो गङ्गादयस्तेषां वसन्ति मणिसद्मसु ।।६२।।

शेषकूटेषु रम्येषु यानि नामानि धामसु ।
तैर्नामभिर्युताः पुण्याद् वसन्ति व्यन्तरामराः ।।६३।।

अर्थः—६ कुलाचलो पर जैसे ये ५६ कूट है वैसे नदियो (की वेदियों) पर भी कूट है । इन कूटों में से [स्त्री लिंग (इला, गंगा, रोहितास्या सुरा आदि) नामधारी] कुछ कूटों पर स्थित मणिमय गृहो में व्यन्तर देवाङ्गनाएँ निवास करती है । अवशेष कूटस्थ रमणीक भवनों में पूर्व पुण्य वशात् अपने अपने कूटनामधारी व्यन्तरदेव निवास करते है ।।६२–६३।।

कुलाचलो के पार्श्वभागो में वनखण्डो की स्थिति एव प्रमाण :—

अद्रयायामसमायामे क्रोशद्वयसुविस्तृते ।
भवतो द्वे वने रम्ये शैलानामुभयोर्दिशोः ।।६४।।

अर्थः—कुलाचलो के दोनों पार्श्वभागो में पर्वतों की लम्बाई बराबर लम्बे और दो कोस चौड़े अत्यन्त रमणीक दो दो वन हैं ।।६४।।

वन वेदियों की स्थिति एव उनके प्रमाण आदि का कथन करते है :—

वनपर्यन्त भागेषु सर्वतो वनवेदिका ।
हेमरत्नमया रम्याकृत्रिमास्ति मनोहरा ।।६५।।

क्रोशद्वयसमुत्सेधा क्रोशस्य पादविस्तृता ।
चतुर्दिक्षु महादीप्ता द्वारतोरणभूषिता ।।६६।।

अर्थ.—वनको सब ओर से वेष्टित किये हुये, स्वर्ण एवं रत्नमय, अत्यन्त रमणीक, मनको हरण करने वाली और अकृत्रिम वेदियाँ है । जो दो कोस ऊँची, पाव कोस चौड़ी और चारों दिशाओं में महादैदीप्यमान तोरण द्वारो से विभूषित है ।।६५–६६।।

पद्मवेदिका एव देवो के प्रासादो का वर्णन करते है :—

पर्वतोपरि सर्वत्र विज्ञेया पद्मवेदिका ।
नानारत्नमया दिव्या चतुर्गोपुर शोभिता ।।६७।।

सप्ताष्टदशभूम्याद्यनेक भूमण्डितोन्नतैः ।
नानारत्नमयैर्दिव्यैः सहस्रस्तम्भ शोभितै. ।।६८।।

चतुरस्राद्यनेकाकार संस्थानैर्मनोहरैः ।
प्रासादै भूँषितान्युच्चैर्जिनसिद्धालयोर्जितैः ।।६९।।

वनोपवनवापीभिः प्राकारगोपुरादिभिः ।
अलङ्कृतानि देवानां पुराणि सन्त्यनेकशः ।।७०।।

गिरिकूटेषु सर्वेषु तथाद्रि शिखरेषु च ।
शैलपार्श्व वनेषूच्चै र्भासमानानि सर्वदा ।।७१।।

अर्थः—पर्वतो के ऊपर अनेक प्रकार के रत्नमय, दिव्य और चार गोपुर द्वारों से युक्त, पद्म वेदिकाएँ स्थित है ।।६७।।

श्लोक ७० मे कहे गये वे नगर नाना प्रकार के रत्नमय, दिव्य, हजार खम्भो से सुशोभित, कोई सात, कोई आठ, कोई दश और कोई अनेक भूमियो अर्थात् तल या खण्डो से भूषित, उन्नत, मनोहर, जिन भवनो एव सिद्धभवनो के समूह से युक्त, चतुष्कोण और कोई अनेक आकारो से परिणत ऐसे अनुपम प्रासादो अर्थात् भवनवासी देवो के भवनो से अत्यन्त शोभायमान है ।।६८–६९।।

सम्पूर्ण पर्वतो के कूटो पर, पर्वत शिखरो पर तथा पर्वतो के पार्श्वभागो में स्थित वनो मे भी देवो के वनो, उपवनो, वापियो, प्राकारो (कोट) एव गोपुर द्वारो से अलकृत अत्यन्त प्रकाशमान अनेक नगर है ।। ७०–७१ ।।

अब कूटो का पारस्परिक अन्तर कहते है —

कूटव्यासोनितं दैर्घ्यं निजाद्रेः कूटसंख्यया ।
विभक्तमन्तरं ज्ञेयं कूटानां श्रीजिनागमे ।।७२।।

अर्थ :—अपनी अपनी लम्बाई मे से कूटो के व्यासो को घटाकर शेष को कूट संख्या से विभाजित करने पर कूटो का अन्तर प्राप्त होता है, ऐसा जिनागम में कहा गया है ।।७२।।

अब कूटों के विस्तार आदि का वर्णन करते हैं :—

पर्वतस्य चतुर्थांशः कूटानामुदयो भवेत् ।
तत्समो विस्तरो मूले मूलार्धं शिखरे तथा ।।७३।।

मूलमस्तकयोर्व्यासयोरेकत्रो कृतस्य च ।
अर्धं मध्येऽस्ति विष्कम्भोऽत्रास्यैव विस्तरं शृणु ।।७४।।

अर्थः—सर्व कूटों की ऊँचाई अपने अपने पर्वतो की ऊँचाई का चतुर्थ भाग है। मूल में अर्थात् भू व्यास का प्रमाण भी ऊँचाई के प्रमाण सदृश ही है। शिखर पर अर्थात् मुखव्यास, भूव्यास के अर्ध भाग प्रमाण है और मूल एव मस्तक (भूव्यास+मुखव्यास) के विस्तार को जोड कर आधा करने पर कूट के मध्यभाग के विस्तार का प्रमाण प्राप्त होता है । इसीको विस्तार पूर्वक कहते है, सुनो । ।।७३–७४।।

हिमवच्छिखरिणोः कूटानामुत्सेध. पञ्चविशतियोजनानि । मूले विस्तार पञ्चविशतियोजनानि मध्ये च त्रिक्रोशाधिकाष्टादशयोजनानि शिखरे च सार्धद्वादशयोजनानि ।

महाहिमवद्रुक्मिणोः कूटानामुदयो योजनानि पञ्चाशत् । मूले व्यासश्च पञ्चाशत् । मध्ये सार्धसप्तत्रिंशद्योजनानि । मस्तके पञ्चविशतिश्च । निषधनीलयोः कूटानामुन्नतिर्योजनानां शतं स्यात् । मूले विस्तृतिश्च शत भवेत् । मध्ये च पञ्चसप्ततिः शिखरे पञ्चाशदेव ।

अर्थः—हिमवन् और शिखरिन् कुलाचलों पर स्थित कूटों की ऊँचाई २५ योजन मूल का विस्तार २५ योजन, मध्यविस्तार १८$\frac{3}{4}$ योजन और शिखर पर अर्थात् मुखव्यास १२$\frac{1}{2}$ योजन प्रमाण है। महाहिमवन् और रुक्मी पर्वतस्थ कूटों की ऊँचाई ५० योजन, मूल में विस्तार ५० योजन, मध्य-विस्तार ३७$\frac{1}{2}$ योजन और शिखर पर २५ योजन विस्तार है। इसी प्रकार निषध और नील पर्वतस्थ कूटो की ऊँचाई १०० योजन, मूल में विस्तार १०० योजन, मध्यविस्तार ७५ योजन और शिखर का विस्तार ५० योजन प्रमाण है।

विशेषार्थ:—(श्लोक ७३–७४ से सम्बन्धित) कूटों की ऊँचाई अपने अपने पर्वतो का चतुर्थांश कहा है। जैसे हिमवन् पर्वत १०० योजन ऊँचा है अतः इसके ऊपर स्थित कूटों की ऊँचाई ($\frac{100}{4}$) =२५ योजन होगी। जमीन पर चौडाई २५ योजन, ऊपर की चौडाई भूव्यास का अर्धभाग ($\frac{25}{2}$)= १२$\frac{1}{2}$ योजन होगी और मध्य विस्तार, मूलमस्तक की चौडाई के योग का अर्धभाग अर्थात् २५+१२$\frac{1}{2}$ =३७$\frac{1}{2}$÷२ =१८$\frac{3}{4}$ योजन होगा। इसी प्रकार अन्यत्र जानना। यथा:—

क्रमांक	कुलाचल	मुख व्यास	मध्य व्यास	भू व्यास	ऊंचाई
१	हिमवन्	१२$\frac{१}{२}$ यो०	१७$\frac{३}{४}$ यो०	२५ यो०	२५ यो०
२	महाहिमवन	२५ यो०	३७$\frac{१}{२}$ यो०	५० यो०	५० यो०
३	निषध	५० यो०	७५ यो०	१०० यो०	१०० यो०
४	नील	५० यो०	७५ यो०	१०० यो०	१०० यो०
५	रुक्मी	२५ यो०	३७$\frac{१}{२}$ यो०	५० यो०	५० यो०
६	शिखरिन्	१२$\frac{१}{२}$ यो०	१८$\frac{३}{४}$ यो०	२५ यो०	२५ यो०

अब कुलाचलस्थ सरोवरो के नाम एव उनका विस्तार आदि कहते है —

आद्यः पद्मो महापद्मस्तिगिञ्छः केसरी ततः ।
महादिपुण्डरीकः पुण्डरीकः षडिमे ह्रदाः ॥७५॥
सहस्रयोजनायामौ तदर्धविस्तरान्वितौ ।
स्तः पद्मपुण्डरीकौ द्वौ ह्यगाधौ दशयोजनै ॥७६॥
योजनद्विसहस्रायामौ सहस्रैक विस्तृतौ ।
योजनानां च विंशत्यागाधौ स्यातां ह्रदौ समौ ॥७७॥
महापद्म महापुण्डरीकाख्यकौ ततो परौ ।
आयामौ योजनै र्ज्ञेयौ चतुःसहस्रसम्मितौ ॥७८॥
द्विसहस्रप्रमै र्व्यासौ चत्वारिंशत्प्रमाणकैः ।
अवगाहौ तिगिञ्छाभिधकेसरिसमाह्वयौ ॥७९॥
एते नित्या ह्रदा षट्स्युः पूर्वापरसमायताः ।
शैलानां मध्यभागेषु तोयास्वादु जलैर्भृताः ॥८०॥

अर्थः—पूर्व कहे हुये छह कुलाचलो के ऊपर, मध्य भाग मे क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के छह सरोवर हैं। इनमे से पद्म और पुण्डरीक ये दो

सरोवर १००० योजन लम्बे, ५०० योजन चौडे और १० योजन गहरे हैं। महापद्म और महापुण्डरीक नाम के सरोवर २००० योजन लम्बे, १००० योजन चौड़े और २० योजन गहरे हैं तथा तिगिञ्छ और केसरी नाम के दो सरोवर ४००० योजन लम्बे, २००० योजन चौडे और ४० योजन प्रमाण गहरे है। इस प्रकार ये छह सरोवर पूर्व-पश्चिम लम्बे, जल के स्वाद के सदृश जल से भरे हुये और शाश्वत हैं ॥७५-८०॥

विशेषार्थः—कुलाचलों का उदय एवं सरोवरों के व्यास आदि का प्रमाणः—

क्रमांक	कुलाचल	ऊंचाई		सरोवर	लम्बाई		चौड़ाई		गहराई	
		योजन	मीलों मे		यो०मे	मीलो मे	योजनोमे	मीलो मे	योजनोमे	मीलो मे
१	हिम०	१००	४००००	पद्म	१०००	४०००००	५००	२०००००	१०	४००००
२	महा०	२००	८००००	महापद्म	२०००	८०००००	१०००	४०००००	२०	८००००
३	निषध	४००	१६००००	तिगिञ्छ	४०००	१६०००००	२०००	८०००००	४०	१६००००
४	नील	४००	१६००००	केशरी	४०००	१६०००००	२०००	८०००००	४०	१६००००
५	रुक्मी	२००	८००००	महा-पुण्डरीक	२०००	८०००००	१०००	४०००००	२०	८००००
६	शिखरिन्	१००	४००००	पुण्डरीक	१०००	४०००००	५००	२०००००	१०	४००००

सरोवरों में स्थित कमलो के विस्तार आदि का प्रमाण कहते हैः—

पद्मह्लदान्तरे नित्योऽम्बुजो योजनविस्तृतः ।
क्रोशैककर्णिकायुक्तः प्रफुल्लं स्यात् सुगन्धवान् ॥८१॥
सार्धक्रोशायतान्याद्ये पद्मे पत्राणि सर्वतः ।
एकादशसहस्राणि शाश्वतानि भवन्ति च ॥८२॥
सर्वत्र क्रोशबाहुल्यं जलात् क्रोशद्वयोच्छ्रितम् ।
अम्बुजेऽम्बुजं नालं स्यात् वैडूर्यरत्नतन्मयम् ॥८३॥

ततः पद्मादिविस्तारो द्विगुणद्विगुणो मतः ।
वृद्धो ह्रदद्वये ह्रासः क्रमाच्चान्यह्रदत्रिषु ।।८४।।

अर्थ.—पद्म सरोवर के मध्य मे एक योजन विस्तार (चौडा) वाला, एक कोस की कर्णिका से युक्त, नवविकसित सुगन्धवान् और शाश्वत कमल है। इस कमल के एक पत्ते की लम्बाई १½ कोस है ऐसे इसमे ११००० पत्ते शाश्वत होते है। कमल मे कमल की नाल नीचे से ऊपर तक एक कोस मोटी है, और जल से दो कोस (½ योजन) ऊपर रहती है तथा वैडूर्य मणियो से निर्मित है। पद्म आदि सरोवरो का विस्तार पूर्व की अपेक्षा दूना दूना है, अत. कमल आदि का विस्तार आदि भी तोन सरोवरो तक जिस क्रम से वृद्धिङ्गत होगा आगे के तीन सरोवरो मे उसी क्रम से दुगुण हानि को प्राप्त होगा ।।८१–८४।।

विशेष—(१) पद्मद्रह की गहराई १० योजन (४० कोस) कही है, और यहाँ कमल नाल जल से २ कोस ऊपर है ऐसा कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि कमल नाल की कुल लम्बाई ४२ कोस (१०½ योजन) है।

(२) कमल एव कमलनाल आदि यद्यपि अकृत्रिम है और शाश्वत है किन्तु इनका माप मानवयोजन (लघु योजन) से ही जानना चाहिये और अन्य शाश्वत पदार्थो का माप प्रमाण (वडे) योजन से जानना चाहिये।

तदेवाहः—पद्मह्रदे कमलस्य व्यास एकयोजन, कर्णिका व्यासः एक क्रोशः पत्रदीर्घता सार्धक्रोश.। महापद्मे कमलस्य विस्तृतिर्द्वे योजने कर्णिका विस्तारः द्वौ क्रोशौ पत्रायामस्त्रय क्रोशा । तिगिञ्छे केसरिणि च पद्मस्य व्यास चत्वारियोजनानि कर्णिका व्यास योजनैक स्यात् । पत्रायामः सार्द्धं योजन च। महापुण्डरीकेऽम्बुजस्य विस्तार द्वे योजने कर्णिकाविस्तार द्वौ क्रोशौ पत्रायामस्त्रय क्रोशाः। पुण्डरीके पद्मस्य विष्कम्भः योजनैक ~~स्यात्। कर्णिकाविष्कम्भः~~ एकक्रोशः पत्रायामः सार्धक्रोशः।

विशेषार्थः—श्लोक न. ८१ से ८४ तक का विशेषार्थ और उपर्युक्त गद्यभाग का सर्व अर्थ निम्नाङ्कित तालिका मे गर्भित है।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

कमल, कमल नाल, कमल कर्णिका का उत्सेधादि एवं कमल पत्र की लम्बाई —

क्रमांक	सरोवरो के कमल	कमलो का		नाल		कर्णिका का		कमल पत्र की लम्बाई
		उत्सेध	व्यास	जलमग्न	जल के ऊपर	उत्सेध	व्यास	
१	पद्म द्रह का कमल	१ योजन	१ यो०	१० यो०	½ यो०	१ कोश	१ कोश	१½ कोश
२	महा पद्म द्रह का ,,	२ ,,	२ ,,	२० ,,	१ ,,	२ ,,	२ ,,	३ ,,
३	तिगिञ्छ ,, ,, ,,	४ ,,	४ ,,	४० ,,	२ ,,	४ ,,	४ ,,	६ ,,
४	केसरी ,, ,, ,,	४ ,,	४ ,,	४० ,,	२ ,,	४ ,,	४ ,,	६ ,,
५	महापुण्डरीक,, ,, ,,	२ ,,	२ ,,	२० ,,	१ ,,	२ कोश	२ ,,	३ ,,
६	पुण्डरीक ,, ,, ,,	१ ,,	१ ,,	१० ,,	½ ,,	१ ,,	१ ,,	१½ ,,

श्री आदि देवियों के भवनों का प्रमाण कहते हैं।—

आद्याब्जकर्णिकायां स्याद् वैडूर्य रत्नभास्वरम् ।
श्रीगृहं सन्मणिद्वारतोरणादिविभूषितम् ।।८५।।

मुक्तालम्बूषभूषाढ्यं क्रोशायाममनोहरं ।
क्रोशार्धविस्तरं पादोनं क्रोशैकोन्नतं शुभम् ।।८६।।

ततोऽम्बुजद्वये सन्ति द्विगुणद्विगुणाः क्रमात् ।
गेहव्यासादयोऽन्येषु त्रिषु पद्मेषु हानितः ।।८७।।

अर्थः—प्रथम सरोवर की पद्मकर्णिका पर वैडूर्य मणियो की दीप्ति से दीप्रमान्, उत्तम मणियों के तोरणद्वार आदि से विभूषित, लटकती हुई मुक्ता मालाओं (मोतियो के फानूसों) से अलंकृत और मन को हरण करने वाला एक कोश लम्बा, आधा कोस चौड़ा एवं पौन कोस ऊँचा श्री देवी का भवन है। इसके आगे दो कमलों पर क्रम से दूने दूने विस्तार वाले और उससे आगे तीन कमलों पर क्रम से दुगनी हानि को लिये हुये व्यास आदि से युक्त भवन है।।८५-८७।।

अस्य व्याख्यान —श्रीलक्ष्मीगृहयोरायामः क्रोशैकोऽस्ति, व्यासः अर्धक्रोशाश्च, उत्सेधः पादोन-क्रोश स्यात् । ह्री बुद्धि प्रासादयोर्दैर्घ्यं द्वौ क्रोशौ, विस्तृतिरेकक्रोश, उन्नतिः सार्धक्रोशः । धृतिकीर्ति सौधयोर्दीर्घता चत्वारः क्रोशा , विस्तार द्वौ क्रोशौ, उच्छ्राय त्रय क्रोशा. ।

इसी का विशेष व्याख्यान करते है —श्री और लक्ष्मी के भवनो की लम्वाई एककोस, चौडाई आधा कोस और ऊँचाई पौन कोस है । ह्री और बुद्धि के भवनो की लम्वाई दो कोस, चौडाई एक कोस और ऊँचाई डेढ कोस है । तथा धृति और कीर्ति के भवनो की लम्बाई चार कोस, चौडाई दो कोस और ऊँचाई तीन कोस प्रमाण है ।

नोट — यहाँ एक कोस २००० धनुष प्रमाण है ।

अब श्री आदि देवियो के निवास, आयु और स्वामी का विवेचन करते हैं.—

श्रीर्ह्रीर्धृतिश्च कीर्तिश्च बुद्धिर्लक्ष्मीरिमा हि षट् ।
वसन्ति क्रमतो देव्यः आसु षट्द्रह पंक्तिषु ॥८८॥
स्यादासां सर्वदेवीनामायुः पल्यैकसम्मितम् ।
परिवारामराः सन्ति नानापरिषदादयः ॥८९॥
श्री ह्री धृत्याख्यदेवीनां स्वामीसौधर्मनायकः ।
ऐशानश्चोत्तरस्त्रीणां सर्वत्रैव व्यवस्थितिः ॥९०॥

अर्थः—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छह देवियाँ क्रम से पक्तिबद्ध छह सरोवरो मे रहती है। इन सर्व देवियों की आयु एक पल्य की होती है, तथा इनके पारिषद् आदि नाना प्रकार के परिवार देव १४०११५ है । श्री, ह्री और धृति देवियो का नायक (स्वामी) सौधर्मेन्द्र है, और कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये तीन देवियाँ ऐशानेन्द्र के आधीन हैं । सर्वत्र अर्थात् अन्य सरोवरो मे स्थित देवियो की भी ऐसी ही व्यवस्था है ॥८८-९०॥

अव श्री देवी के परिवार कमलों का अवस्थान एव प्रमाण कहते हैं—

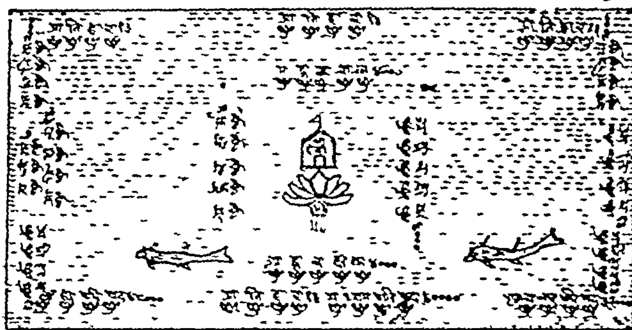
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राण्यन्तः परिषत्सुधाभुजाम् ।
श्री गेहादब्जगेहानि ह्याग्नेयदिशि निश्चितम् ॥९१॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि दक्षिणाख्यदिशिस्फुटम् ।
स्युर्मध्य परिषद्देवानां पद्मस्थ गृहाणि च ॥९२॥

भवेयुरष्टचत्वारिंशत्सहस्राब्जसद्गृहाः ।
नैऋत्यदिग्विभागे बाह्यपरिषत्सुधाशिनाम् ॥६३॥
आद्यायाः पतिरेव स्यात्सूर्यः परिषदोऽमरः ।
चन्द्रमा मध्यमायास्तु बाह्याया यदुपो महान् ॥६४॥
चतुःसहस्रपद्मा वायुकोणेशान कोणयोः ।
सामान्यकाख्य देवानां सन्तिपद्मालयाः शुभाः ॥६५॥
सप्तानीकामराणां स्युः पश्चिमायांदिशि स्थिताः ।
प्रत्येकं सप्तभेदानां सप्ताम्भोजगृहाः शुभाः ॥६६॥
कमलान्यङ्गरक्षाणां सहस्राणि तु षोडश ।
श्रियोऽम्भोजसमीयानि पूर्वादिदिक्चतुष्टये ॥९७॥
श्रीपद्मंपरितोऽष्टासु दिग्विदिक्ष्वम्बुजालयाः ।
प्रतीहारोत्तमानां स्युरष्टोत्तरशतप्रमाः ॥ ६८॥

अर्थः—श्री देवी के मूल कमल की आग्नेय दिशा में आभ्यन्तर परिषद् देवों के ३२००० भवन ३२००० कमलों पर स्थित है इनके प्रमुख देव (स्वामी) का नाम सूर्य है इसी प्रकार चन्द्र नाम का देव है स्वामी जिनका ऐसे मध्यपरिषद् के ४०००० कमलस्थ भवन (मूल कमल की) दक्षिण दिशा में स्थित है, तथा यदुप नाम का देव है स्वामी जिनका ऐसे बाह्य परिषद् देवोंके ४८००० भवन ४८००० कमलों पर (श्री देवी के मूल कमल की) नैऋत्य दिशा में स्थित हैं। श्री देवी के मूल कमल की ऐशान और वायव्य दिशामें ४००० भवन ४००० कमलों पर स्थित है।

मूल कमल की पश्चिम दिशा में सात प्रकार के अनीक देवों के सात भवन सात कमलों पर स्थित है। ये प्रत्येक अनीक सात सात कक्षाओ से युक्त है श्री देवी के मूल कमल की चारों दिशाओं मे चार चार हजार अर्थात् १६००० तनुरक्षक देवों के कमलस्थ भवन है। इसी प्रकार श्री देवी के मूल कमल के चारों ओर अर्थात् चार दिशाओ मे (१४, १४) और चारो विदिशाओं में (१३–१३) प्रतिहार महत्तरो के कमलस्थ भवन १०८ है ॥६१-६८॥

विशेषार्थः श्री देवी के और उनके परिवार कमलों के अवस्थान का चित्रण निम्न–प्रकार है :—



अब श्री देवी के सम्पूर्ण परिवार कमलो का प्रमाण कहते है :—

लक्षैकाग्रसहस्राणि चत्वारिंशत्तथाशतम् ।
एकं पञ्चदशैत्येषां सर्वाब्जगणना मताः ॥६६॥

अर्थः—श्री देवी के सम्पूर्ण परिवार कमलों का प्रमाण एक लाख चालीस हजार एक सौ पन्द्रह है ॥६६॥

विशेषार्थः—श्री देवी के सम्पूर्ण परिवार कमलो का प्रमाण निम्न प्रकार है—अङ्गरक्षक १६०००+ सामानिक४०००+अभ्यन्तर पारिषद् ३२०००+मध्यम पारिषद् ४००००+बाह्य पारिषद् ४८०००+ प्रातिहार १०८ और+७अनीक=१४०११५ परिवार कमल है ।

हिमवान् से लेकर निषध पर्वत पर्यन्त कमलो का विष्कम्भ और उत्सेध आदि दूने दूने प्रमाण वाला है । परिवार कमलों का प्रमाण भी दूना दूना है । इसके आगे क्रमश: हीन हीन है ।

देवकुमारियो के भवनो का व्यास आदि एव परिवार कमलो का प्रमाण :—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

क्रमांक	देवकुमारियां	भवनो की			ईशान वायव्य कोण मे सामानिक देव	चतुर्दिश तनु रक्षक	तीनो पारिषद् देव			पश्चिम मे अनीक देव	आठो दिशाओ मे प्रतिहार	कुल योग
		लम्बाई	चौडाई	ऊंचाई			आग्नेय मे अभ्यन्तर पारिषद	दक्षिण मे मध्य पारिषद	नैऋत्य मे बाह्य पारिषद			
१	श्री	१ को	½ को	¾ को.	४०००	१६०००	३२०००	४००००	४८०००	७	१०८	१४०११५
२	ह्री	२ को	१ को	१½को.	८०००	३२०००	६४०००	८००००	९६०००	१४	२१६	२८०२३०
३	धृति	४ को.	२ को	३ को	१६०००	६४०००	१२८०००	१६००००	१९२०००	२८	४३२	५६०४६०
४	कीर्ति	४	२	३	१६०००	६४०००	१२८०००	१६००००	१९२०००	२८	४३२	५६०४६०
५	बुद्धि	२	१	१½	८०००	३२०००	६४०००	८००००	९६०००	१४	२१६	२८०२३०
६	लक्ष्मी	१	½	¾	४०००	१६०००	३२०००	४००००	४८०००	७	१०८	१४०११५

अब परिवार कमलों का और उनके भवनो का व्यास आदि कहते है :—

जलान्ते समनालानि नानामणिमयानि च ।
परिवारामराब्जानि श्र्यादिषट्देव योषिताम् ।।१००।।
कमलेभ्योऽर्धमानानि व्यासायामादिभिस्तथा ।
गृहेभ्यः परिवाराणां गृहाण्यर्धमितानि च ।।१०१।।

अर्थः—श्री आदि छह देवकुमारियों के परिवार कमल जल के मध्यमें नाना प्रकार की मणियों से रचित और समान ऊँचाई पर (अर्थात् जल के बाहर जिनकी नाल समान निकली हुई है) स्थित है । श्री आदि देवी के मूल कमलों से परिवार कमलो का व्यास आदि अर्ध प्रमाण है, इसीप्रकार उनके मूल भवन से परिवार देवो के भवनों का व्यास आदि भी अर्ध प्रमाण है ।।१००-१०१।।

अमीषा पद्मगेहाना प्रत्येक व्यासादीन्युच्यन्ते :—श्रीलक्ष्मी परिवार देव कमलानां व्यासः द्वौ क्रोशौ । कर्णिका व्यासः अर्धक्रोश स्यात् । पत्रायामः पादोनक्रोशश्च । ह्रीबुद्धिपरिवारामर पद्मानां विष्कम्भ. योजनैकं भवेत् । कर्णिका विष्कम्भ एकक्रोशः पत्रदीर्घतासार्धक्रोशश्च । धृतिकीर्तिपरिवारदेवाम्भोजाना विस्तारो द्वे योजने । कर्णिकाविस्तार. द्वौ क्रोशौ । पत्रायामस्त्रयः क्रोशाः । श्री-

लक्ष्मोपरिवारसुराब्दमस्थगृहाणां आयामोऽर्वक्रोशोऽस्ति। व्यामः क्रोशचतुर्थांशः। उत्सेधः क्रोशाष्ट भागाना त्रयोभागा। ह्री बुद्धि परिवारदेवाब्जस्थगृहाणा दीर्घता एकक्रोश। विष्कम्भोऽर्धक्रोशश्च। उन्नतिः पादोनक्रोश स्यात्। धृतिकीर्तिपरिवारामराम्बुजस्थसौधानामायाम द्वौ क्रोशौ, विस्तारः एकः क्रोशः, उत्सेध सार्धक्रोशश्च ॥

विशेषार्थः—उपर्युक्त गद्यभाग मे श्री आदि छह देवकुमारियो के परिवार देवों के कमल, कर्णिका और कमल पत्रों का तथा उन कमलों पर स्थित उनके भवनो के व्यास आदि का प्रमाण दर्शाया गया है, जिसके सम्पूर्ण अर्थ का समावेश निम्नाकित तालिका मे है :—

परिवार कमल आदि के एव भवनो के व्यास आदि का प्रमाण :—

क्रमांक	देव कुमारियो के नाम	कमल का व्यास	कर्णिका का व्यास	कमल पत्र का आयाम	परिवार भवनो की		
					लम्बाई	चौडाई	ऊंचाई
१	श्री देवी	दो कोस	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{३}{४}$ कोस	$\frac{१}{२}$ कोस	$\frac{१}{४}$ कोस	$\frac{३}{८}$ कोस
२	ह्री देवी	१ योजन	१ ,,	१$\frac{१}{२}$,,	१ ,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{३}{४}$,,
३	धृति देवी	२ योजन	२ ,,	३ ,,	२ ,,	१ ,,	१$\frac{१}{२}$,,
४	कीर्ति देवी	२ ,,	२ ,,	३ ,,	२ ,,	१ ,,	१$\frac{१}{२}$,,
५	बुद्धि देवी	१ ,,	१ ,,	१$\frac{१}{२}$,,	१ ,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{३}{४}$,,
६	लक्ष्मी देवी	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{२}$,,	पौन ,,	$\frac{१}{२}$,,	$\frac{१}{४}$,,	$\frac{३}{८}$,,

दीर्घ एव लघु भवनो की मुखदिशा का वर्णन —

एते महागृहारम्या उक्तसख्या बुधैः स्मृताः ।
एतेभ्यो बहवोऽन्येऽत्र ज्ञातव्याः क्षुल्लकालयाः ॥१०२॥
सर्वे स्युरुत्तमा गेहाः पूर्वाभिमुख शाश्वताः ।
तेषामभिमुखा अन्ये सन्ति जघन्य सद्गृहाः ॥१०३॥

अर्थः—इस प्रकार विद्वानों के द्वारा श्री देवी के परिवार महागृहों की संख्या १४०११५ कही गई है। इन महागृहो से भिन्न और लघुगृह भी अनेक है, ऐसा जानना चाहिये। ये सर्व महागृह शाश्वत

और पूर्वाभिमुख हैं अर्थात् सम्पूर्ण महागृहों का मुख पूर्व दिशा की ओर है, तथा अन्य सभी लघु गृहों के मुख महागृहों की ओर है। अर्थात् पश्चिम दिशा की ओर है ॥१०२-१०३॥

सम्पूर्ण पद्मगृहों मे जिनालयों का व्याख्यान करते है —

विश्वेषु पद्मगेहेषु शाश्वताः श्रीजिनालयाः ।
अब्जालय प्रमा ज्ञेया देवदेवीगणार्चिताः ॥१०४॥
दिव्याष्ट मङ्गलद्रव्यैः प्रातिहार्याष्टभूतिभिः ।
भासमानाः स्वतेजोभिर्रत्नार्हत्प्रतिमाभृताः ॥१०५॥

अर्थः—सम्पूर्ण पद्म भवनों में देव देवियों के समूह से अर्चित, दिव्य अष्टमङ्गलद्रव्यों (भृङ्गार, ताल, कलश, ध्वज, सुप्रतीक, श्वेतातपत्र, दर्पण और चामर) और अष्टप्रातिहार्यों से युक्त एवं अपने तेज से दैदीप्यमान ऐसे रत्नमय अर्हन्त प्रतिमाओं से समन्वित शाश्वत श्री जिन मन्दिर हैं। इनका प्रमाण पद्मालयों के प्रमाण बराबर ही है। अर्थात् कमलों की जितनी संख्या है, उतने ही (कमलों के ऊपर) भवन है और प्रत्येक भवन में एक एक अकृत्रिम श्रीजिनालय है अतः कमलभवनों के प्रमाण ही जिनमन्दिरों का प्रमाण है ॥१०४-१०५॥

अब उन्ही कमल भवनों का विशेष व्याख्यान करते हैः—

उपपादगृहा रम्या अभिषेकगृहाः शुभाः ।
मण्डनाख्यगृहा दीप्ताः सभास्थानगृहा वराः ॥१०६॥
रम्याः क्रीडनसद्गेहा विचित्रा नाटकालयाः ।
रतिगेहाः परेदोलागृहाः सङ्गीतसद्गृहाः ॥१०७॥
विस्फुरन्तो भवन्त्यत्र विचित्रमणिदीप्तिभिः ।
मृदङ्गतूर्यनादाद्यै धूपामोदैश्च वासिताः ॥१०८॥
न वनस्पतयोनैते निर्मिता व्यन्तरामरैः ।
पृथ्वी सारमयाः किन्तु नित्याः पद्मादयोऽखिलाः ॥१०९॥
सर्वेषां कमलानां चोपरिज्येष्टालयोन्नताः ।
स्फुरन्मणिमया भान्ति प्राकारद्वारतोरणैः ॥११०॥

अर्थः—उन उपर्युक्त पद्मभवनो में नाना मणियों के प्रकाशमान किरणों से युक्त दोलागृह, मृदङ्ग एवं तूर्य के शब्दो से गम्भीर उत्तम सङ्गीतगृह, धूप की सुगन्ध से वासित सम्भोगगृह, रमणीक

उपपाद (जन्म) गृह, शुभ अभिषेक गृह प्रकाशमान मण्डनगृह, उत्कृष्ट सभास्थान, शोभनीक क्रीडागृह और नाना प्रकार के नाटकगृह आदि होते है ॥१०६-१०८॥

ये पद्म, पद्मभवन एव जिनमन्दिर आदि न तो वनस्पतिकाय है और न किन्हीं व्यन्तर देवों के द्वारा रचित है, किन्तु ये सभी पृथिवी के विकार स्वरूप है । अर्थात् पृथ्वीकाय और अकृत्रिम है ॥१०९॥

इस प्रकार सम्पूर्ण कमलो के ऊपर नाना प्रकार के तोरण द्वारों आदि से युक्त, मणिमय और उन्नत उत्तम गृह है ॥११०॥

अब सात प्रकारकी अनीको के नाम कहते है.—

गजा अश्वारथास्तुंगा वृषागन्धर्व निर्जराः ।
नर्त्तक्यो भृत्यपादातयोऽमूनिप्रस्फुरन्ति च ॥१११॥
सप्तानीकानि युक्तानि कक्षाभिः सप्तसप्तभिः ।
प्रत्येकं श्रीगृहद्वारे भूत्यैवं श्र्यादियोषिताम् ॥११२॥

अर्थ —श्रीदेवी के गृह द्वार पर गज, अश्व, ऊँचे ऊँचे रथ, बैल, गन्धर्वदेव, नृत्यकी और दास अर्थात् पदाति ये सात-सात कक्षाओ से युक्त सप्त सेनाएँ शोभायमान होती है, इसी प्रकार ह्री आदि प्रत्येक देवकुमारियो के भी जानना चाहिये ॥१११-११२॥

अब प्रत्येक कक्षा की संख्या का अवधारण करते है.—

प्रथमे या गजानीके गजसंख्या च सा ततः ।
द्वितीये द्विगुणात्रैव सप्तसु द्विगुणोत्तराः ॥११३॥
तथान्याश्वाद्यनीकानां गणनाश्वादिसंख्यया ।
प्रत्येकं सप्तकक्षासु द्विगुणा द्विगुणा मता ॥११४॥

अर्थ —गज अनीक की प्रथम कक्षा मे गजों की जो सख्या है द्वितीय कक्षा में वह संख्या दुगुणी है। इस प्रकार गज अनीक की सातो कक्षाओ में क्रम से दुगुणी दुगुणी सख्या है । इसी प्रकार अश्व आदि सातो अनीको की प्रथम कक्षा की अश्व आदि को सख्या से द्वितीय कक्षा की अश्व आदि की सख्या उत्तरोत्तर दुगुणी मानी गई है ॥११३-११४॥

विशेषार्थः—गज, अश्व आदि सात अनीके (सेनाएँ) हैं। प्रत्येक सेना मे सात सात कक्ष है । प्रथम कक्ष के हाथी, घोडे, रथ आदि की सख्या (त्रिलोकसार गा० ५७४ की टीकानुसार) सामानिक देवो की सख्या के प्रमाण (४०००) मानी गई है, आगे आगे की कक्षाओ मे यह सख्या

उत्तरोत्तर दूनी दूनी होती गई है। इस प्रकार ह्री देवी की प्रथम अनीक की प्रथम कक्षा की संख्या ८००० से प्रारम्भ होकर दुगुणी होगी और धृति देवी की १६००० से प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर सातों कक्षाओं में दूनी दूनी होगी।

श्री देवी की ७ अनीकों की सात कक्षो का सम्पूर्ण प्रमाण

कक्ष	गजानीक	अश्वानीक	रथाऽनीक	वृषभानीक	गन्धर्वानीक	नृत्यानीक	पदाति
१ला कक्ष	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००
२रा कक्ष	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००
३रा कक्ष	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००
४था कक्ष	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००
५वाँ कक्ष	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००
६वाँ कक्ष	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००
७वाँ कक्ष	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००
योग	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००
सम्पूर्ण योग							=३५५६०००

उत्तम चारित्र के द्वारा पुण्यार्जन करने की प्रेरणाः—

एता दिव्यविभूतयः सुखकराः, सत्सौधसैन्यादिकाः।
प्राप्ताः श्र्यादि सुदेवताभिरखिला, मान्यप्रभुत्वादयः।
अन्ये चावधि विक्रियर्धि सुगुणाः, प्रागर्जितश्रेयसा।
मत्वेतीह जनाः कुरुध्वमनिशं, श्रेयोऽर्जनं सद्व्रतैः ॥११५॥

अर्थः—इस प्रकार श्री ह्री आदि देव कुमारियों को जो दिव्य विभूतियाँ, सुखों का समूह, उत्तम भवन, उत्तम सैन्य आदि का वैभव तथा प्रभुत्व आदि का ऐश्वर्य एवं और भी जो अवधिज्ञान,

विक्रिया आदि ऋद्धियाँ एवं अन्य उत्तमगुण प्राप्त हुये हैं, वे सब पूर्व उपार्जित पुण्य कर्म से ही प्राप्त हुये हैं ऐसा मान कर हे भव्यजनो ! इस लोकमे अर्थात् मनुष्यपर्याय में उत्तम चारित्र के द्वारा निरन्तर पुण्य उपार्जन करो ॥११५॥

अधिकार के अन्त मे आचार्यवर्य रत्नत्रय धारण करने का प्रोत्साहन देते हैं.—

श्रेयः[1] श्रेयनिबन्धनोऽसुखहरः श्रेयं श्रयन्त्युत्तमाः
श्रेयेनात्र च लभ्यतेऽखिलसुखं श्रेयाय शुद्धा क्रियाः ।
श्रेयाच्छ्रैयकरोऽपरो न च महान् श्रेयस्य मूलं सुदृक्
श्रेये यत्नमनारतं बुधजनाः कुर्वन्तु दृक्चिद्व्रतैः ॥११६॥

इति श्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते
कुलाचल, ह्रद श्र्यादिदेवी विभूति वर्णनो नाम
चतुर्थोधिकारः ॥४॥

अर्थ —पुण्य कल्याण का निबन्धक अर्थात् कल्याण प्राप्त कराने वाला और दुःखों का हरण करने वाला है, इसलिये सज्जन पुरुष पुण्य का आश्रय लेते हैं अर्थात् पुण्य अर्जन करते हैं। पुण्य से ही सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति होती है, अतः पुण्य अर्जन के लिये शुद्ध क्रियाएँ (कुल एवं पद के योग्य क्रियाएँ) करना चाहिये। पुण्य से अधिक कल्याणकारी और कोई महान् नहीं है। पुण्य की जड़ सम्यग्दर्शन है इसलिये बुद्धिमानों को रत्नत्रय धर्म के द्वारा पुण्य में अर्थात् पुण्यार्जन के लिये अनवरत प्रयत्न करना चाहिये ॥११६॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम के महाग्रन्थ में छह
कुलाचल, छह सरोवर एवं श्री आदि देवकुमारियों की विभूति का वर्णन
करने वाला चतुर्थ अधिकार समाप्त।



१ अपितु योग्य श्रेय सेवनीय धर्म इत्यर्थ । नायं श्रेयस् शब्द.।

पञ्चमोऽधिकारः

मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञा :—

अथ नत्वा जिनेन्द्रादींस्तदर्चाश्च जिनालयान् ।
नदीर्गङ्गादिका वक्ष्ये निर्गमस्थानविस्तरैः ॥१॥

अर्थः—अब मै जिनेन्द्र आदि पञ्च परमेष्ठियो को, जिन प्रतिमाओं को और जिनालयों को नमस्कार करके गङ्गा आदि नदियों के निर्गम स्थान आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा ॥१॥

चतुर्दश महा नदियों के नाम :—

गङ्गासिन्धुनदीरोहिद्रोहितास्या हरित्सरित् ।
हरिकान्ता च सीताख्या सीतोदावाहिनी ततः ॥२॥
नारी च नरकान्ता सुवर्णकूलाह्वया नदी ।
रूप्यकूलाभिधा रक्ता रक्तोदैताश्चतुर्दश ॥३॥

अर्थः—गङ्गा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह नदियाँ है ॥२-३॥

इन नदियों के गिरने का स्थान कहते है :—

पूर्वोक्ताः सप्तगङ्गाद्या नद्यः पूर्वाब्धिगा मताः ।
शेषाः सिन्ध्वादयः सप्त चापराम्बुधि मध्यगाः ॥४॥

अर्थ —उपर्युक्त १४ नदियों मे से पूर्व कथित गङ्गा आदि सात नदियां पूर्व समुद्र में और शेष सिन्धु आदि सात नदियाँ पश्चिम समुद्र में गिरती है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ.—उपर्युक्त १४ महा नदियाँ लवण समुद्र में गिरती है। इनमें से गङ्गा, रोहित, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदिया पूर्व लवण समुद्र मे और सिन्धु, रोहितास्या,

हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये सात नदिया पश्चिम लवण समुद्र में गिरती हैं।

अब द्रहो की वेदिकाओ का प्रमाण कहते हैं :—

तेषां च षड्द्रहाणां स्यात् सर्वत्र रत्नवेदिका ।
तटे क्रोशद्वयोत्तुङ्गा क्रोशैकपादविस्तृता ॥५॥

अर्थः—उन पद्म आदि छह द्रहों के तट पर चारों ओर रत्नवेदिका है, जो दो कोस ऊँची और सवा कोस चौडी है ॥५॥

अब गङ्गा आदि के निर्गमद्वारों का सविशेष वर्णन करते हैं :—

पद्मद्रहस्य पूर्वस्मिन् दिग्भागे तोरणान्वितम् ।
वज्रद्वारं भवेत्क्रोशाग्रषड्योजनविस्तृतम् ॥६॥
उन्नतं सार्धगव्यूति संयुक्तनव योजनैः ।
द्वारस्य तोरणं ज्ञेयं जिनबिम्बाद्यऽलङ्कृतम् ॥७॥
पूर्ववत्पश्चिमद्वारं ह्रदस्यास्य समानकम् ।
शेषद्विद्विनदीनां सीतोदान्तानां भवन्ति च ॥८॥
ह्रदस्थनिर्गमद्वार व्यासाद्यै द्विगुणोत्तराः ।
नार्यादिवाहिनीनां स्युः क्रमह्रासास्ततोऽखिलाः ॥९॥

अर्थ:—पद्मसरोवर की पूर्व दिशा मे गङ्गा नदी को निकलने के लिये तोरण से सयुक्त एक वज्रमय द्वार है, जो ६ योजन एक कोश अर्थात् सवा छह (६¼) योजन चौडा और ९ योजन १½ कोस ऊँचा है। इस द्वार का तोरण जिनबिम्ब और दिक्कन्याओ के आवासो से अलंकृत है ॥६-७॥

पद्मसरोवर की पूर्व दिशा के समान पश्चिम दिशा मे भी एक निर्गमद्वार है जिससे सिन्धु नदी निकलती है। इसप्रकार अन्य सरोवरो मे भी सीतोदा नदी पर्यन्त दो दो निर्गम द्वार है, जिनका व्यास आदि उत्तरोत्तर दूना दूना होता गया है। इसके आगे अवशेष तीन सरोवरो से निकलने वाली नारी नरकान्ता आदि नदियो के निर्गम द्वारों का व्यास आदि क्रम से दुगुण हीन होता गया है ॥८-९॥

विशेषार्थ —छह सरोवरो से १४ महानदियां निकली है—पद्मद्रह से गङ्गा, सिन्धु और रोहितास्या, महापद्म से रोहित् और हरिकान्ता, तिगिञ्छ सरोवर से हरित् और सीतोदा केसरी ह्रद से सीता और नरकान्ता, महापुण्डरीक से नारी और रूप्यकूला तथा पुण्डरीक सरोवर से सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा नदिया निकली है।

गङ्गा नदी की उत्पत्ति और उसके गमन का प्रकार ४ श्लोकों द्वारा कहते है :—

तस्मात्पद्मद्रहद्वाराद्गङ्गा निर्गत्य विस्तृता ।
क्रोशाग्रयोजनैः षड्भिर्हिमवद्गिरि मस्तके ॥१०॥

अर्धक्रोशावगाहाढ्या याता पञ्च शतानि च ।
योजनानि चलद्वेगा गङ्गाकूटस्य सन्मुखा ॥११॥

गङ्गाकूटं ततस्त्यक्त्वा योजनार्धेन दूरतः ।
दक्षिणाभिमुखीभूय शतपञ्चक योजनान् ॥१२॥

संयुतान् साधिकार्धक्रोश त्रयोविंशयोजनैः ।
सा गिरेस्तटमायाता तत्रास्ति गोमुखाकृतिः ॥१३॥

अर्थः—$६\frac{१}{४}$ योजन चौडी और $\frac{१}{२}$ कोस गहरी गङ्गा नदी पद्मसरोवर की पूर्व दिशा में स्थित वज्रद्वार से निकलकर हिमवान् पर्वत के ऊपर ५०० योजन (हिमवान् पर्वत पर स्थित) गङ्गाकूट के सम्मुख अर्थात् पूर्व दिशा की ओर जाकर गङ्गाकूट को अर्धयोजन दूर से ही छोड़ती हुई दक्षिण दिशा मे मुड जाती है, तथा उसी दक्षिण दिशा की ओर साधिक अर्धकोस से अधिक ५२३ योजन आगे जाकर वह गङ्गा हिमवान् पर्वत के तटभाग पर स्थित गोमुखाकृति प्रणालिका (नाली) को प्राप्त हो जाती है ॥१०-१३॥

विशेषार्थ :— हिमवान् पर्वत के ऊपर गङ्गा नदी का दक्षिण दिशा में साधिक अर्धकोस से अधिक ५२३ योजन जाने का कारण यह है कि गङ्गा नदी हिमवान् पर्वत के ठीक मध्य में से बहती है क्योकि पर्वत के ठीक मध्य मे पद्म सरोवर है और सरोवर के ठीक मध्य से $६\frac{१}{४}$ योजन की चौड़ाई को लिये हुये गगा निकली है, अत पर्वत के व्यास ($१०५२\frac{१२}{१९}$ मे से नदी का व्यास ($६\frac{१}{४}$ योजन) घटाकर $१०५२\frac{१२}{१९}-६\frac{१}{४}=१०४६\frac{२९}{७६}$) अवशेष भाग का आधा ($१०४६\frac{२९}{७६}\div२$) करने पर आधा भाग उत्तर में और आधा ($५२३\frac{२९}{१५२}$ योजन) दक्षिण में रहा, अतः दक्षिण के उस अर्धभाग को पार करने के बाद ही गगा को हिमवान् पर्वत का तट प्राप्त हो जाता है।

अब प्रणालिका की आकृति और उसके प्रमाण आदि का निर्धारण तीन श्लोको द्वारा करते है.—

द्विक्रोशदीर्घता युक्ता द्वि क्रोशस्थूलता युता ।
प्रणालीयोजनैः षड्भि क्रोशाग्रं विस्तरान्विता ।।१४।।
नित्यायत जलाभेद्या सिंहवच्छ्रु ति जिह्विका ।
ज्ञेयास्या दीर्घ विस्तारैः समासिन्धुप्रणालिका ।।१५।।
शेषाः प्रणालिका व्यासाद्यं विदेहान्त मञ्जसा ।
द्विगुणाद्विगुणाः स्युश्च तथालध्वास्ततोऽपराः ।।१६।।

अर्थः—[हिमवान् पर्वत के तट पर स्थित वह] जिह्विका नाम की प्रणालिका (नाली) दो कोस लम्बी, दो कोस मोटो और ६ योजन एक कोश अर्थात् ६¼ योजन चौडी है। यह प्रणालिका शाश्वत और जल से अभेद्य अर्थात् नष्ट भ्रष्ट होने के स्वभाव से रहित है। इसकी मुखाकृति गाय के सदृश है। किन्तु इसके कान सिह के कान सदृश हैं। [गगा नदी इसी नाली में जाकर हिमवान् पर्वत से नीचे गिरती है।] सिन्धु नदी की प्रणालिका की लम्बाई चौडाई भी इसी के समान है। इसके बाद विदेह पर्यन्त की शेष प्रणालिकाओ का व्यास आदि उत्तरोत्तर दूना दूना और उसके आगे क्रमशः हीन हीन होता गया है ।।१४-१६।।

गिरती हुई गगा नदी के विस्तार आदि का वर्णन :—

काहलाकारमाश्रित्य पतिता भरतावनौ ।
दशयोजनविस्तीर्णा धारा तस्या अखण्डिता ।।१७।।
धारापर्वतयोर्मध्ये ह्यन्तरं पञ्चविंशतिः ।
योजनानि ततोऽन्येषां द्विगुणदिगुणं क्रमात् ।।१८।।
धाराया उन्नतिश्चात्र शतैकयोजनप्रमा ।
द्विगुणा द्विगुणान्याद्विद्वयेऽर्धाऽर्धाऽचलत्रये ।।१९।।

अर्थ —(हिमवान् पर्वत को छोडकर) काहला (एक प्रकार के बाजा) के आकार को धारण करने वाली, दश योजन विस्तार वाली तथा अखण्ड धारा से युक्त गंगा नदी भरत भूमि पर गिरती है। जहाँ धारा गिरती है उस स्थान के और पर्वत के मध्य मे पच्चीस योजनो का अन्तराल है। अर्थात् गगा नदी हिमवान् पर्वत से पच्चीस योजन दूरी पर गिरती है। विदेह पर्यन्त यह अन्तर क्रमशः दूना और उससे आगे क्रमशः हीन होता गया है। इस स्थान पर गगा की धारा की ऊँचाई सौ योजन प्रमाण है। विदेह पर्यन्त धारा की ऊँचाई क्रम से दूनी दूनी प्राप्त होती है और उसके आगे तीन कुलाचलो पर यह ऊँचाई क्रमश अर्ध अर्ध प्राप्त होती है ।।१७-१९।।

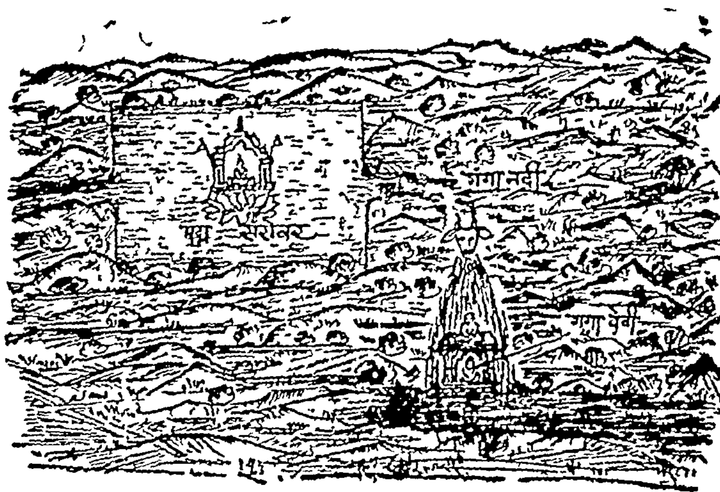
अब गिरी हुई नदी और उसके गिरने का स्वरूप ११ श्लोकों द्वारा कहते हैं :—

तत्राद्रि पार्श्वभूभागे कुण्डवज्रमयं भवेत् ।
वृत्तं नित्यं सुविस्तीर्णं सार्ध द्विषष्टियोजनैः ॥२०॥
वेष्टितं रत्नवेद्या चावगाहं दशयोजनैः ।
तस्य मध्य प्रदेशेऽस्ति सद्वीपः सलदाह्वयः ॥२१॥
अष्ट योजन विस्तीर्णो जलात् क्रोशद्वयोच्छ्रितः ।
तन्मध्ये स्याद्गिरिर्वज्रमयस्तुङ्गश्चयोजनैः ॥२२॥
दशभिर्विस्तृतो मूले चतुर्भिर्मध्य विस्तरः ।
द्वाभ्यां च योजनाभ्यां मूर्ध्न्येक योजन विस्तृतः ॥२३॥
तस्याद्रेः श्रीगृहं मूर्ध्नि दिव्यं क्रोश समुन्नतम् ।
भूतले सार्धगव्यूति दीर्घमायाम संयुतम् ॥२४॥
क्रोशेनैकेन मध्येग्रे क्रोशार्ध दीर्घताश्रितम् ।
स्फुरद्रत्नमयं सार्ध शतद्विचाप विस्तृतम् ॥२५॥
चतुर्गोपुरयुक्तस्य वेदिका वेष्टितस्य च ।
गङ्गा कूटाभिधस्यास्य द्वारं मणिमयं भवेत् ॥२६॥
चत्वारिंशद्धनुर्व्यासं चापाशीत्युच्छ्रितं शुभं ॥
गंगादेवीवसेदत्र प्रासादे वनभूषिते ॥२७॥
प्रासादमस्तकेऽत्रास्ति शाश्वतं कमलोर्जितं ।
तत्कर्णिकोपरिस्फीतं रत्नसिंहासनोन्नतम् ॥२८॥
तस्योपरिस्फुरद्रत्नमयी नित्या मनोहरा ।
जिनेन्द्र प्रतिमा तुङ्गा तेजो मूर्ति रिवास्ति च ॥२९॥
तस्याः शिरसि सर्वाङ्गे पतन्त्यचलमस्तकात् ।
महाभिषेक धारेवगङ्गासरिद्रवाकुला ॥३०॥

अर्थः—हिमवान् पर्वत के पार्श्व भाग (मूल) में पृथ्वी पर एक वज्रमय अकृत्रिम गोल कुण्ड है, जो ६२½ योजन व्यास अर्थात् चौड़ा और १० योजन गहरा तथा रत्नों की वेदी से वेष्टित है। इस कुण्ड के मध्य में सलद (जलद) नाम का एक उत्तम द्वीप (टापू) है, जो आठ योजन विस्तृत और जल से दो कोस (½ योजन) ऊँचा है। उस द्वीप के मध्य मे वज्रमय दशयोजन ऊँचा एक पर्वत है। उस

पर्वत का व्यास मूल मे चार योजन, मध्य मे दो योजन और शिखर पर एक योजन प्रमाण है। उस पर्वत के शिखर पर शोभायुक्त गृह है जो एक कोस ऊँचा, रत्नमय दिव्य भवन है, जो भूतल पर १½ कोस (३००० धनुष) लम्बा (व्यास) मध्यमे एक कोस (२००० धनुप) तथा अग्रभाग मे ½ कोस (१००० धनुष) लम्बा (व्यास) है। इस गृह (गगा कूट) का अभ्यन्तर व्यास २५० धनुष है। गगा कूट है नाम जिसका ऐसा यह गगा देवी का गृह चार गोपुरो से युक्त और वेदिका से वेष्ठित है। इसके द्वार अर्थात् दोनो किवाड अत्यन्त शुभ और रत्नमय है, जिनकी चौडाई ४० धनुष और ऊँचाई ८० धनुप है। वन से विभूपित इस महल मे गगा नाम की देवी रहती है इस महलके मस्तक–अग्रभाग पर एक शाश्वत और उन्नत कमल है, जिसकी कर्णिका के ऊपर दैदीप्यमान रत्नमय उन्नत–विशाल सिंहासन है। उस सिंहासन पर तेजकी मूर्ति ही हो मानो इस प्रकार की अत्यन्त भास्वर, मनोहर और अकृत्रिम, रत्नमय उत्तुग जिनेन्द्र प्रतिमा अवस्थित है नदी के कल कल शब्दो से युक्त, महा अभिपेक की धारा के समान गगा नदी हिमवान् पर्वत के मस्तक से उन प्रतिमा के सिर पर से सम्पूर्ण शरीर पर गिरती है ॥२०–३०॥

गगा गिरने का सामान्य चित्रण निम्नप्रकार है :—



कुण्ड से निकल कर जाती हुई गगा का एव उसके स्थान का स्वरूप चार श्लोको द्वारा निरूपित करते है —

तत् कुण्ड देहली द्वारान्निर्गत्य सा सतोरणात् ।
ततः खण्डप्रपाताख्या गुहासन्मुखमागता ॥३१॥
रूप्याचल तले तस्या गुहाया योजनानि च ।
द्वादशव्यामआयामः पञ्चाशद्योजनान्यपि ॥३२॥

उन्नतिर्योजनान्यष्टौ द्वौ स्तो वज्रकपाटकौ ।
षट्षड्योजनविस्तारौ ह्यष्टाष्टयोजनोन्नतौ ॥३३॥
देहल्या विजयार्धस्य प्रविष्टैषाप्यधस्तले ।
अष्टयोजनविस्तीर्णा सर्वत्रात्र गुहान्तरे ॥३४॥

अर्थः—गंगा नदी उस कुण्ड के तोरण सहित दक्षिण द्वार से निकलकर [दक्षिण की ओर बहती हुई विजयार्धपर्वत की] खण्डप्रपात नाम की गुफा की ओर जाती है और गुफा के तोरण सहित (दक्षिण) द्वार की देहली के नीचे से निकलकर [गुफा की ५० योजन लम्बाई को पार करती हुई] आठ योजन विस्तार वाली गंगा उसी गुफा के उत्तर द्वार की देहली के नीचे से निकल जाती है विजयार्धपर्वत के नीचे स्थित गुफा और गुफा द्वार दोनों बारह बारह योजन चौड़े और आठ आठ योजन ऊँचे है । गुफा की लम्बाई ५० योजन है (क्योकि विजयार्ध ५० यो० ही चौड़ा है) । गुफा के (दक्षिण उत्तर) दोनों द्वारों पर प्रत्येक छह छह योजन चौड़े और आठ आठ योजन ऊँचे वज्रमय कपाट लगे है ॥३१-३४॥

विशेषार्थः—एक कपाट की चौड़ाई ६ योजन है, अतः दोनों कपाट १२ योजन चौड़े हुये क्योंकि गुफा का द्वार भी १२ योजन चौड़ा है । जब कपाटों की चौड़ाई १२ योजन है तब देहली की लम्बाई भी १२ योजन होगी, अतः उसके नीचे से आठ योजन चौड़ी गङ्गा का निकल जाना स्वाभाविक ही है ।

उन्मगा और निम्नगा नदियों का वर्णनः—

उन्मगानिम्नगा संज्ञे द्विद्वियोजन विस्तृते ।
द्विद्वियोजन दीर्घे द्वे नद्यौ विनिर्गते घने ॥३५॥
पूर्वापरगुहाभित्ति भूकुण्डाभ्यां क्षयोज्झिते ।
गुहामध्ये प्रविष्टे स्तः प्रवाहेऽस्याद्विपार्श्वयोः ॥३६॥

अर्थः—[विजयार्ध की खण्डप्रपात गुफा ५० योजन लम्बी है । २५ योजन पर अर्थात्] गुफा के ठीक मध्य में पूर्व पश्चिम दोनों दीवालों के निकट भूमि पर दो कुण्ड है इन कुण्डों से दो दो योजन चौड़ी और दो दो योजन लम्बी उन्मगा और निम्नगा नाम की दो नदियाँ निकलतीं है, तथा विनाश रहित और मेघसदृश ये दोनों नदियाँ दोनों पार्श्वभागों से गङ्गा के प्रवाह में प्रविष्ट हो जातीं है ॥३५-३६॥

विशेषार्थः—खण्डप्रपात गुफा की चौड़ाई १२ योजन प्रमाण है । इस गुफा के ठीक मध्य में से ८ योजन चौड़ी गङ्गा वहती है, अत. दोनों पार्श्वभागों में गुफा की भित्ति से गङ्गा नदी तक मात्र

दो दो योजन ही अवशेष रहते है, इसीलिये उम्नगा और निम्नगा नदियो की लम्बाई दो दो योजन कही गई है ।

गङ्गा के पतन का और पतन समय उसके व्यास आदि का वर्णन —

ततस्त्यक्त्वाद्रिमागत्य दक्षिणाभिमुखा सरित् ।
दक्षिणभरतस्यार्ध भूतलं प्राग्मुखी ततः ।।३७।।

वलित्वा विस्तृता सार्धद्विषष्टियोजनैःपरा ।
पञ्चक्रोशावगाहा सा प्रविष्टा पूर्वसागरम् ।।३८।।

अर्थ —इस प्रकार विजयार्ध पर्वत को छोड कर दक्षिणाभिमुख बहती हुई गगा दक्षिणभारत के अर्धभाग (११९$\frac{३}{३८}$ योजन) पर्यन्त सीधी आती है । पश्चात् पूर्व दिशा के सम्मुख मुडती हुई, ६२$\frac{१}{२}$ योजन चौडी और ५ कोस गहरी वह गगा महानदी अन्ततः (मागध द्वार से) पूर्व समुद्र मे प्रवेश कर जाती है ।।३७-३८।।

विशेषार्थ - ११९$\frac{३}{३८}$ योजन अर्थात् अर्धदक्षिण भारत को पार करती हुई गगा जब पूर्वाभि-मुख-होती है तब वह ढाई म्लेच्छ खण्डो को प्राप्त करती है और वहाँ से १४००० प्रमाण परिवार नदियो को लेकर लवण समुद्र मे प्रवेश कर जाती है । इससे यह सिद्ध होता है कि अकृत्रिम वस्तुओ की अवस्थिति म्लेच्छ खण्ड पर्यन्त ही प्राप्त हो सकती है आर्य खण्ड मे नही क्योकि आर्यखण्डो मे प्रलय पडता है ।

अब मागधद्वार के व्यास आदि का वर्णन करते है —

तन्मागधामरद्वारं गङ्गाप्रवेश कारणम् ।
क्रोशद्वयावगाहं द्विक्रोशबाहुल्य संयुतम् ।।३९।।
गङ्गाव्याससमव्यासं रत्नतोरण भूषितम् ।
योजनत्रिनवत्यामा त्रिक्रोशेनोच्छ्रितं भवेत् ।।४०।।

अर्थः—पूर्व लवण समुद्र मे गङ्गा के प्रवेश का कारणभूत मागध नामका द्वार है । अर्थात् मागधद्वार से भीतर जाकर गगा समुद्रमे प्रवेश करती है । इस द्वार के रक्षक देव का नाम मागध है । यह द्वार रत्नो के तोरण से विभूषित है द्वार की नीव दो कोस, मोटाई दो कोस, ऊँचाई तीन कोस अधिक ९३ योजन और चौडाई गङ्गा के व्यास सदृश अर्थात् ६२$\frac{१}{२}$ योजन प्रमाण है ।।३९-४०।।

मागध द्वार के ऊपर स्थित तोरण द्वार का वर्णन करते है :—

स्युस्तत्रतोरणाद्वारे जिनबिम्बान्यनेकशः ।
मङ्गलद्रव्यभूषाणि दीप्तरत्नमयानि च ॥४१॥
तोरणोपरिचोत्तुङ्गा मणिप्रासादपंक्तयः ।
दिक्कुमारीव्रजापूर्णा नित्याः सन्ति मनोहराः ॥४२॥

अर्थः—मागधद्वार के ऊपर जो तोरणद्वार है, उसके ऊपर दिक्कुमारियो के समूह से व्याप्त, मन को हरण करने वाले, अनादिनिधन, उत्तुङ्ग और पक्तिबद्ध मणिमय भवन है। और इन भवनो के ऊपर मङ्गल द्रव्यों से विभूपित, ईदीप्यमान रत्नमय अनेक जिनबिम्ब अवस्थित है ॥४१–४२॥

निर्गमद्वार आदि के व्यास का कथन :—

ह्लदस्य निर्गमद्वारं कुण्डस्य च महाम्बुधेः ।
प्रवेशद्वारमस्त्येव व्यासेन समविस्तृतम् ॥४३॥

अर्थः— पद्मसरोवर गङ्गा के निर्गम द्वार की चौडाई गङ्गा के निर्गम व्यास के सदृश अर्थात् ६$\frac{1}{4}$ योजन है। कुण्ड का व्यास और लवण समुद्र के गङ्गा प्रवेश द्वार का व्यास गङ्गा के प्रवेश व्यास के सदृश अर्थात् ६२$\frac{1}{2}$ योजन प्रमाण है॥४३॥

गङ्गाया द्वारविस्तारात्सर्वे ते द्वारतोरणाः ।
अर्धाधिकेन तद्व्यासेनोन्नता निखिला मताः ॥४४॥
ह्लदकुण्डसमुद्राणां निर्गमद्वारपंक्तिषु ।
प्रवेशद्वारसर्वेषु गंगादिसरितां भवेत् ॥४५॥

अर्थ—गगा के समस्त तोरणद्वारों का जितना जितना विस्तार है, अपने अपने उन व्यासों (विस्तारो) का डेढ़ गुणा उन तोरण द्वारो की ऊँचाई है ॥४४॥ गंगा आदि सभी नदियों के तालाब, कुण्ड और समुद्र सम्बन्धी निर्गम द्वार व प्रवेश द्वार होते हैं॥४५॥

तोरणद्वारों का विशेष वर्णन :—

क्रोशद्वयावगाहत्वं तोरणानि महान्ति च ।
तोरणेषु जिनेन्द्राणां प्रतिमा दिव्यमूर्तयः ॥४६॥
तोरणोपरिभागेषु दिक्कन्यावास पंक्तयः ।
भवन्ति शाश्वता रम्या विश्वेषु मणितेजसः ॥४७॥

अर्थ —दो कोस है नीव जिनकी ऐसे महान तोरण द्वारो के उपरिम भाग में दिक्कन्याओ के अकृत्रिम, रमणीक और पंक्तिबद्ध आवास भवन है, और उन समस्त तोरणभवनों पर जिनेन्द्र भगवान् की दैदीप्यमान् मणिमय दिव्य प्रतिमाएँ है ॥४६-४७॥

जम्बूद्वीपस्थ समस्त कुण्ड आदि के व्यास आदि का वर्णन :—

कुण्डतद्द्वीपशैलानां तद्गृहाणां च वारिधेः ।
गंगादिक प्रवेशद्वाराणां व्यासादयोऽखिलाः ॥४८॥
द्विगुण द्विगुणा ज्ञेयाः सीतोदान्तास्ततोऽपरे ।
अर्धार्धाश्च भवेयुस्त्रि क्षेत्रेषु रम्यकादिषु ॥४९॥

अर्थ —सीतोदा नदी अर्थात् विदेह पर्यन्त स्थित नदी पतन के कुण्ड, कुण्ड सम्बन्धी उपद्वीप (टापू), इनके ऊपर स्थित पर्वत और पर्वतो के ऊपर स्थित गृह तथा समुद्र में गंगानदियों के प्रवेश द्वारों की चौड़ाई एव ऊँचाई का प्रमाण उत्तरोत्तर दूना दूना और इसके आगे रम्यक आदि तीन क्षेत्र सम्बन्धी नारी नरकान्ता आदि नदियो के पतन सम्बन्धी कुण्ड आदि का प्रमाण क्रमशः अर्ध अर्ध हीन जानना चाहिये ॥४८-४९॥

अब पद्म आदि सरोवरो से निकलने वाली नदियो के प्रवेश व्यास आदि को प्राप्त करने के लिये नियम निर्धारित करते है —

गंगादिसरितामादौ स्वह्रदान्निर्गमे च यः ।
स्वव्यासो योऽवगाहः स भवेद् दशगुणो हि सः ॥५०॥

अर्थ.—अपने अपने सरोवरो से निकलने वाली गगा आदि नदियो के अपने अपने निर्गम व्यास और अवगाह से अपना अपना प्रवेश व्यास और अवगाह दश गुणित होता है ॥५०॥

विशेपार्थः—जैसे पद्म सरोवर से निकलने वाली गंगा सिन्धु का निर्गम व्यास ६$\frac{1}{4}$ योजन (२५ कोस), और निर्गम गहराई $\frac{1}{2}$ कोस है, अतः इन नदियो का समुद्र में प्रवेश करते समय व्यास (६$\frac{1}{4}$ × १०) = ६२$\frac{1}{2}$ योजन और अवगाह ($\frac{1}{2}$ कोस × १०) = ५ कोस प्रमाण होगा। यही नियम सर्वत्र जानना चाहिये।

गगा के सदृश सिन्धु का कथनः—

अब्धेः प्रवेशसद्द्वारेषु गंगायाः समानका ।
ऋजुव्यासावगाहाद्यैः सिन्धुर्गतापरार्णवम् ॥५१॥

अर्थ:—पश्चिम समुद्र मे जाने वाली सिन्धु नदी के समुद्र प्रवेश द्वार आदि मे व्यास, अवगाह एवं सीधे प्रवाह आदि का प्रमाण गंगा के सदृश है ॥५१॥

अब अवशेष नदियो के निर्गम आदि का सक्षिप्त कथन करते हैः—

रोहिन्महादिपद्मस्य दक्षिणद्वार निर्गता ।
क्षेत्रं हैमवतं प्राप्य गता पूर्वाख्यसागरम् ॥५२॥
पद्मस्यास्योत्तरद्वाराद्रोहिताख्या विनिर्गता ।
जघन्यभोगभूमध्येन पश्चिमाम्बुधिं गता ॥५३॥
इत्येवं सरितस्तिस्रः पद्मद्रहाद् विनिर्गताः ।
पुण्डरीकह्रदात्तिस्रो नद्यः शेषेभ्य एव च ॥५४॥
ह्रदेभ्यो निर्गते द्वे द्वे नद्यौ ह्यन्योन्य मिश्रिते ।
विस्तरं सुखबोधाय संवक्ष्येऽतः पृथक् पृथक् ॥५५॥

अर्थः—रोहित् नदी महापद्म सरोवर के दक्षिणद्वार से निकलकर हैमवत क्षेत्र अर्थात् जघन्य भोगभूमि को प्राप्त करती हुई पूर्व समुद्र में गिरी है। रोहितास्या नदी पद्मसरोवर के उत्तर द्वार से निकलकर जघन्य भोगभूमि अर्थात् हैमवत क्षेत्र के मध्य मे से बहती हुई पश्चिम समुद्र को प्राप्त हुई है। इसप्रकार पद्मद्रह से गगा, सिन्धु और रोहितास्या ये तीन नदियाँ निकली है, और पुण्डरोक सरोवर से सुवर्ण कूला, रक्ता और रक्तोदा ये तीन नदियाँ निकली है शेष सरोवरो से एक दूसरे से मिश्रित होती हुई दो दो नदिया निकली है। अर्थात् महापद्म से रोहित् और हरिकान्ता, तिगिञ्छ से हरित् और सीतोदा, केसरी से सीता और नरकान्ता तथा महापुण्डरीक से नारी और रूप्यकूला ये दो दो नदिया निकली है। (महापद्म से रोहित् और हरिकान्ता तथा तिगिञ्छ से हरित् और सीतोदा आदि का निकलना ही अन्योन्य मिश्रण है)। सरलता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कराने के अभिप्राय से अब इन नदियो का पृथक् पृथक् वर्णन किया जा रहा है ॥५२-५५॥

अथ पद्मद्रहस्य पश्चिमदिग्भागे द्वि क्रोशावगाह क्रोशाधिक षट्योजन विस्तृतं सार्धक्रोशाधिक नवयोजनोन्नत जिनेन्द्रबिम्बदिक्कन्यावासाद्यऽलकृतं तोरणद्वारमस्ति। तस्मात्तोरणद्वारात् सिन्धुनदी अर्धक्रोशावगाहा, क्रोशाग्रषड्योजनव्यासा निर्गत्य पर्वतस्योपरि ऋज्वी पश्चिमदिशि पञ्चशतयोजनानि गत्वा गव्यूतिद्वयेन सिन्धुकूट विहाय दक्षिणाभिमुखी भूय किञ्चिदधिकार्धक्रोशाग्रपञ्चशतत्रयोविशतियोजनान्येत्यक्रोशाधिकषड्योजनव्यासया द्वि क्रोशाय तया द्वि क्रोशस्थूलया वज्रप्रणाल्या गिरेस्तटाद्भूमौ पतति।

तत्र सार्धद्विषष्टियोजनविस्तीर्णं, दशयोजनावगाह, रत्नवेदीद्वारतोरणाद्यलंकृत, शाश्वत कुण्ड विद्यते। कुण्डमध्ये जलाद् द्विक्रोशोच्छ्रितोष्टयोजनविस्तीर्णः सलदाख्यो द्वीपोऽस्ति। द्वीपो मध्ये दशयोजनोन्नगः मूले चतुर्योजन विस्तृतो, मध्ये द्वियोजनन्यास. शिखरे योजनैकविस्तारः वज्रमयो गिरिरस्ति। तन्याद्रेर्मूर्ध्नि क्रोशैकोन्नत भूतले, सार्धक्रोशदीर्घं मध्ये, क्रोशैकायतम् शिखरे अर्धक्रोशायामं सार्धद्विशतधनुर्व्यास। पद्मकर्णिका सिंहासनस्थ जिनविम्वालकृत। चत्वारिंशद्धनुर्व्यासाशीति, चापोन्नतद्वाराङ्कित, चतुर्गोपुरवेदिका वनखण्डादिवेष्टित दिव्य गृहमस्ति। दशयोजनविस्तीर्णा सा सिन्धुधारा शतयोजनोत्सेधा। पञ्चविंशतियोजनान्यचल मुक्त्वा स्नानधारेवतदग्रस्थश्रीजिनविम्वाग्रे वहति। ततः कुण्डस्यदक्षिणद्वारेण निर्गत्य विजयार्धस्य तिमिश्रगुहाद्वारे देहलीतल प्रविश्याष्टयोजनविस्तीर्णा दक्षिणभरतार्ध भूतलमागत्य पश्चिमाभिमुखीभूय सार्धद्विषष्टि योजन विस्तृत त्रिकोशाधिक त्रिनवतियोजनोत्तुङ्ग तोरणस्थश्रीजिनविम्ब, दिक्कन्यावासाद्यलंकृत प्रभासामरद्वारेण सार्द्ध द्विषष्टि योजनविस्तारा पञ्चक्रोशावगाहा सिन्धुनदी पश्चिमाम्बुधि प्रविष्टा। महापद्मद्रहस्य दक्षिणदिग्भागे सार्धद्वादशयोजनविस्तार, त्रिक्रोशाधिकाष्टादशयोजनोच्छ्रित। द्विक्रोशावगाह जिनविम्बदिक्कन्याप्रासादादिभूषित सतोरणं वज्रद्वार स्यात्। तद् द्वारात्सार्धद्वादशयोजनविस्तीर्णा क्रोशैकावगाहा–रोहिन्नदी निर्गत्य दक्षिणदिशिद्रहव्यासोनाचलव्यासार्ध भूतलमागत्य गिरेस्तटात्सार्ध द्वादशयोजनविस्तृता योजनैकस्थूला योजनैकदीर्घा गोमुखाकृतिवज्रप्रणाल्याधो भूतले पतति। तत्रपञ्चविंशत्यग्रशतयोजन विस्तृतं विंशतियोजनावगाहं मणिवेदिका द्वारतोरणादि मण्डित कुण्ड स्यात्। तन्मध्ये जलाद्वियति षोडश योजन विस्तीर्णो द्वीपोस्ति। तस्य मध्ये विंशतियोजनोत्तुंगो मूलेऽष्टयोजन व्यासो, मध्ये चतुर्योजनविस्तारो, मस्तके द्वियोजन विस्तृतो वज्रमयोऽचलोऽस्ति। तस्य मूर्ध्नि द्विक्रोशोच्छ्रितं, भूतले त्रिकोशायाम, मध्ये द्विक्रोशायत, शिखरे क्रोशैकदीर्घ पञ्चशतचापव्यास कमलकर्णिकासिंहासनस्थ जिन प्रतिमाद्यलकृत। अशीतिचापविस्तृत षष्ट्यधिकशतशरासनोन्मेधद्वारान्वित चतुर्गोपुरवन–वेदिकादि भूषित दिव्य प्रासादं भवति। विंशतियोजनविस्तृता द्विशतयोजनदीर्घा पञ्चशद् योजनान्यद्रि विहाय जिनमभिपेक्तु कामेव गृहाग्रस्थ जिनप्रतिमाग्रे वहति सा रोहित् नदी। ततः कुण्डस्य दक्षिणद्वारान्निर्गत्य हैमवतक्षेत्रमध्ये समागत्य तत्रस्थ नाभिगिरि योजनार्धेनास्पर्शन्ती तस्यैवार्ध प्रदक्षिणा कृत्वा पञ्चत्रिंशतियुतशतयोजनविस्तारासार्धद्वियोजनावगाहा पञ्चविंशत्यग्रशतयोजन विस्तृता—

सार्धसप्ताशीतियुतशतयोजनोत्तुंग द्विक्रोशावगाहार्धयोजन वाहुल्य तोरणस्यार्हत्प्रतिमादिक्कन्यावासाद्यलंकृत रोहित्प्रवेशद्वारेणरोहित्सरित् पूर्वसमुद्र प्रविष्टा। हिमवत्पर्वते पद्मह्लदस्य व्यासोत्सेधाद्यै महापद्मद्रहस्य दक्षिणद्वार सममुत्तरदिशि द्वारमस्ति। तद्द्वाराद् विस्तारावगाहादिभिः रोहित्सदृशी रोहितास्या निर्गत्योत्तराभिमुखा द्रह व्यासोनार्धाचलतटमागत्य प्रागुक्त व्यासादि सम प्रणालिकया विंशतियोजन व्यासा शतयोजन दीर्घा आगमोक्त योजनैरद्रि मुक्त्वाधो भूतलं पतति। ता

व्यासाद्यैः रोहित्समाः कुण्डद्वीपाचलगृहादयो विज्ञेयाः। तत. कुण्डस्थोत्तर द्वारेण निर्गत्य हैमवत् क्षेत्रमध्यस्य नाभिगिरि योजनार्धेन विहाय तस्यार्धे प्रदक्षिणां कृत्वा व्यासाद्यैः रोहितसमानारोहितास्या प्रागुक्त विस्तारादिभिः पूर्वद्वारसमापरद्वारेण पश्चिमार्णवं प्रविष्टा। निषधपर्वतस्थ तिगिञ्छाख्य ह्रदस्य दक्षिणदिग्भागे पञ्चविंशति योजन विस्तृतं सार्धसप्तत्रिंशद्योजनोन्नतं द्वि क्रोशावगाहं तोरणार्हत्प्रतिमा दिक्कन्यावासाद्यलंकृत वज्रद्वारमस्ति। तद्द्वारात्पञ्चविंशति योजन विस्तारा द्वि क्रोशावगाहा हरिन्नदी निर्गत्य द्रहव्यासोनाद्रि व्यासार्धमागत्य शैलस्य तटात् पञ्चविंशति योजन व्यास द्वि योजन बाहुल्य द्वि योजनायत गोमुखप्रणालिकया चत्वारिंशद्योजन विस्तीर्णा चतु.शतयोजन दीर्घा, शतयोजनान्यद्रि मुक्त्वाधो भू भागे पतति स्म। तत्रसार्ध द्विशतयोजन विस्तीर्ण चत्वारिंशद्योजनावगाहं रत्नवेदीद्वारतोरणाद्यलकृतं कुण्डं विद्यते। तन्मध्ये जलादाकाशे द्वात्रिंशद्योजनव्यासो द्वीपः स्यात्। द्वीपमध्ये चत्वारिंशद्योजनोन्नतः, मूले षोडशयोजनविष्कम्भ, मध्येऽष्टयोजन विस्नारोऽग्रे चतुर्योजनव्यासोऽचलोऽस्ति तस्य शिरसि योजनोच्छ्रित, भूतले सार्धयोजनदीर्घ मध्ये योजनायतं, मूर्ध्नि द्वि क्रोशायामं, अर्धक्रोश व्यास—

षष्ट्यग्रशतधनुः विस्तीर्ण विंशत्यधिक त्रिशतचापोच्च द्वाराङ्कित, चतुर्गोपुर वनवेदिकादि शोभितं, पद्मकर्णिका सिह विष्टरार्हद् बिम्बाद्यलकृत, दिव्य भवनं स्यात्। तज्जिनबिम्बाङ्गे प्रवहन्ती सा हरित्कुण्डस्थ दक्षिणद्वारेण निर्गत्य हरिक्षेत्र मध्य भूभागमागत्य तत्रस्थ नाभिगिरि योजनार्धेन मुक्त्वा तस्यार्धे प्रदक्षिणा कृत्वा सार्ध द्विशत योजन व्यासा पञ्चयोजनावगाहा स्वप्रवेशद्वारेण पूर्वाब्धि गता। सार्धद्विशतयोजन विस्तीर्ण पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशतयोजनोत्तुङ्ग द्विक्रोशावगाह. अर्धयोजनस्थूलं, तोरणार्हन्मूर्ति दिक्कन्यावासादि भूषितं तद्धरित् नदी प्रवेशद्वार ज्ञातव्यं।

महाहिमवत्पर्वतस्थ महापद्मद्रहस्योत्तरदिशि व्यासाद्यैः प्रागुक्त तिगिञ्छदक्षिणद्वारप्रमं द्वारमस्ति। तदुत्तरद्वारान्निर्गत्य हरित्समव्यासावगाहा हरिकान्ता सरित् ह्रदविस्तारोनाचलव्यासार्धमेत्य व्यासाद्यैर्हरित्प्रणालीसमप्रणालिकया चत्वारिंशद्योजनविस्तीर्णा द्विशतयोजनोत्सेधा श्रुतोक्तयोजनैरचलान्तर कृत्वाद्रेर्मस्तकाद्भूतल पतति। तत्र विस्ताराद्यैः प्रागुक्तहरित्पात समानाः कुण्ड द्वीपाद्रिगृहादय सन्ति। ततः कुण्डोत्तर द्वारान्निर्गत्य हरिक्षेत्रमध्यभाग गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरि योजनार्धेन विमुच्य तस्यार्धप्रदक्षिणा कृत्वा हरित्सम विस्तारावगाहा हरिकान्ता नदी व्यासादिभिः प्रागुक्तपूर्वाब्धिद्वारप्रम स्वप्रवेशद्वारेण पश्चिम समुद्र प्रविष्टा।

अथ नीलपर्वतस्थितकेसरिद्रहस्य दक्षिणदिग्भागे पञ्चाशद्योजन विस्तीर्ण पञ्चसप्तति योजनोत्सेधं द्विक्रोशावगाह तोरणार्हद्बिम्ब दिक्कन्यावासादि मण्डित वज्रद्वार स्यात्। तद् द्वारात्पञ्चाशद्योजनव्यासा योजनावगाहा सीतानदी निर्गत्य गिरिशिरसि द्रहव्यासोनाचलव्यासार्ध शैलतटं चागता तस्मिन्नद्रौ पञ्चाशद्योजन विस्तारा चतुर्योजनायता चतुर्योजनस्थूला गोमुखाकारा प्रणाली भवति। अचलाधो भूतले

पञ्चशतयोजन विस्तीर्णं अशीतियोजनावगाह् रत्नवेदीद्वारतोरणादि मण्डित कुण्ड स्यात् । तन्मध्ये तोयात् से चतु षष्टियोजन विष्कम्भो द्वीपोऽस्ति। तन्मध्यभागे अशीति योजनोच्छ्रित , मूले द्वात्रिंशद्योजन विस्तार., मध्ये षोडशयोजनविष्कम्भ , शिखरे अष्टयोजनव्यास गिरिरस्ति। तस्य मूर्ध्नि द्वियोजनोन्नत, महीतले त्रियोजन दीर्घ मध्ये द्वियोजनायाम, मस्तके योजनायत, क्रोशव्यासं, विंशत्यधिक त्रिशतविस्तृत, चत्वारिंशदधिक षट्शतचापोत्तुङ्ग द्वारान्वित, चतुर्गोपुर वेदी वनाद्यलकृत दिव्य गृह स्यात् । तन्मूर्ध्नि पद्मकर्णिकान्तः सिहासनस्य शाश्वत जिनबिम्ब विद्यते । सा सीता जिनबिम्बमस्तके प्रवहन्ती अशीति योजन विस्तीर्णा, चतु शतयोजनोत्सेधा, द्विशतयोजनैरद्रिमस्पर्शन्ती कुण्डद्वारेण निर्गत्योत्तरकुरुनाम्नोत्कृष्ट भोग भूमध्येन गत्वा मेरुसमीपे माल्यवन्त गजदन्तपर्वत भित्त्वा प्रदक्षिणेन योजनार्धेन महामेरु विहाय पूर्वभद्रशालवनपूर्वविदेहक्षेत्रमध्येन, पञ्चशतयोजनविष्कम्भा, दशयोजनावगाहा स्वप्रवेश द्वारेण पूर्वाब्धि प्रविष्टा । पञ्चशतयोजन व्यास सार्धसप्तशतयोजनोन्नत द्वि क्रोशावगाह् अर्धयोजनस्थूल तोरणार्हद्बिम्बदिक्कन्यावासादि सयुत तत्प्रवेशद्वार विज्ञेय ।

निषधाद्रिस्थ तिगिञ्छद्रहस्य व्यासादिभि सीतानिर्गम द्वारसमोत्तरद्वारेण सीतातुल्यव्यासावगाहा सीतोदा निर्गत्याचलतटमागत्य विस्ताराद्यैर्नीलगिरिप्रणालीसमप्रणालिकयाधो भूभागे पतति । तत्र विष्कम्भाद्यै सीतापातसमाना: कुण्डद्वीपाद्रिगेहादय स्यु । अशीतियोजनविस्तारा, चतुः शतयोजन दीर्घा, द्विशतयोजनै शैल मुक्त्वा जिनार्चाग्रे प्रवहन्ती सीतोदा नदी कुण्डस्योत्तर द्वारेण निर्गत्य देवकुरुनामोत्तमभोगभूमिक्षेत्रमध्येन गत्वा मेरुसमीपे गजदन्ताचल भित्त्वा प्रदक्षिणेन क्रोशद्वयेन मेरुं विमुच्य पश्चिम भद्रशाल वनस्य मध्येनापरविदेहान्तर्भागेनैत्य सीतानिभ, व्यासावगाहा, व्यासाद्यै. सीताप्रवेशपूर्वाब्धिद्वारसमपश्चिमद्वारेणापराम्बुधि गता ।

रुक्मिपर्वतस्थमहापुण्डरीकद्रहस्य दक्षिणद्वारेण निर्गत्य नारी सरित् शैलतटप्रणाल्या द्विशतयोजनोत्सेधाधोभूमस्थ कुण्डमध्ये पतित्वा तद्दक्षिण द्वारेण निर्गत्य रम्यकक्षेत्रमध्ये गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरि क्रोशद्वयेन विहाय तस्यैवार्धप्रदक्षिणा कृत्वा पूर्वसमुद्र प्रविष्टा ।

नीलपर्वतस्थकेसरीह्रदस्योत्तरद्वारेण नरकान्तानदी निर्गत्याद्रि तटमागत्य तत्प्रणालिकया चतु शतयोजनोच्छ्रिताधोधरातले पतित्वा तत् कुण्डद्वारेण चलित्वा रम्यकक्षेत्रमध्य भूतलमभ्येत्य तत्रस्थ नाभिगिरि योजनार्धेन त्यक्त्वा तस्यार्ध प्रदक्षिणा विधाय पश्चिमार्णवं गता अस्मिन् रम्यकाख्य मध्यमभोगभूमिक्षेत्रे ह्रदद्वयनिर्गमद्वार व्यासोन्नति नार्यादि द्वि नदी व्यासावगाहप्रणालीद्वयविस्तारादिपातनकुण्डमध्यागविस्तार कुण्डद्वीपाचलगृहादिपूर्वापराब्धिद्वारव्यासोच्छ्रित्यादि सरिदन्तविष्कम्भादयोऽखिला. योजनाद्यै हरिक्षेत्र समाना मन्तव्या. ।

सिंहशिखरिस्थपुण्डरीकद्रहस्यदक्षिणद्वारेण निर्गत्य स्वर्णकूलाख्यानदी पर्वतान्त प्रणालिकया

शतयोजनदीर्घधारा कुण्डे निपत्य तद्दक्षिणद्वारेण चलित्वा हैरण्यवतक्षेत्र मध्ये गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरि गव्यूतिद्वयेन मुक्त्वा तस्यार्ध प्रदक्षिणां कृत्वा पूर्वसमुद्रं गता ।

रुक्मिशैलस्थित महापुण्डरीक ह्रदस्योत्तर द्वारेण निर्गत्य रूप्यकूलाह्वया सरित् द्विशतयोजनो-त्सेधा गिरिः प्रणाल्या कुण्डेऽवतीर्य-तदुत्तर द्वारेण निर्गत्य हैरण्यवताख्यजघन्यभोगभूमिक्षेत्रमध्ये गत्वा तत्रस्थ नाभिगिरि योजनार्धेन विहाय तस्यार्धप्रदक्षिणा विधाय पश्चिमाब्धिं प्रविष्टा । अस्मिन् हैरण्यवतक्षेत्रे प्रागुक्ता द्रहनदीनिर्गमद्वाराद्याः सरित्प्रवेशाब्धिद्वारान्ताः सर्वे व्यासादिभिः हैमवतक्षेत्र-सादृश्या ज्ञातव्याः ।

शिखरिशैलस्थपुण्डरीकह्रदस्य पूर्वद्वारेण निर्गत्य पञ्चशतयोजनानि गत्वा योजनार्धेन रक्ताकूट विहायदक्षिणाभिमुखीभूय किञ्चिदधिकार्धक्रोशाग्रपञ्चशतयोजनानि गत्वाऽचल प्रणालिकया कुण्ड मध्ये पतित्वा तदुत्तर द्वारेण निर्गत्य विजयार्ध गुहा देहली तले प्रविश्योत्तरैरावत क्षेत्रार्धभूभाग गत्वा प्राग्मुखीभूय रक्तानदी स्वप्रवेशद्वारेण पूर्व समुद्र गता ।

तस्यैव पुण्डरीकद्रहस्य पश्चिमद्वारेण निर्गत्य रक्तोदा सरित् पञ्चशतयोजनानि गत्वा क्रोश द्वयेन रक्तोदा कूट त्यक्त्वा गिरेस्तटमागत्य तन्प्रणाल्याधोभूस्थकुण्डे निपत्य तदुत्तरद्वारेण चलित्वा विजयार्ध गुहाद्वार देहलीतले प्रविश्योत्तरैरावतार्धभूतल गत्वा पश्चिमाभिमुखी भूयापर सागर प्रविष्टा । अनयोर्नद्योर्ह्रद निर्गमद्वारव्यासादिप्रणालोविस्तरादिनदीपर्वतान्तरधारोच्छ्रितिविस्तृतिकुण्ड द्वीपाद्रि गृहादिसमुद्र प्रवेशद्वार विष्कम्भादयः समस्ताः गङ्गासिन्धुनदी समानाः ज्ञातव्या ।

सिन्धु नदी का सविस्तार वर्णनः—

पद्मसरोवर की पश्चिम दिशा मे दो कोस नीव वाला, ६$\frac{1}{4}$ योजन चौडा और ९ योजन १$\frac{1}{2}$ कोस ऊँचा जिनबिम्ब एव दिक्कन्याओ के आवासो (भवनों) से अलकृत एक तोरणद्वार है । अर्ध कोस गहरी और ६$\frac{1}{4}$ योजन चौडी सिन्धुनदी उस तोरण द्वार से निकल कर हिमवान् पर्वत के ऊपर पश्चिम दिशा मे अर्थात् सिन्धु कूट के सम्मुख सीधी ५०० योजन जाकर सिन्धु कूट को दो कोस ($\frac{1}{2}$ यो०) दूर से ही छोडती हुई दक्षिणाभिमुख होती है, और साधिक अर्ध कोस से अधिक ५२३ योजन आगे जाकर हिमवान् पर्वत के तट पर स्थित ६$\frac{1}{4}$ योजन चौड़ो, दो कोस लम्बी और दो कोस मोटी वज्रमय प्रणाली से (पर्वत के तट से) भरत भूमि पर गिरती है। वहाँ ६२$\frac{1}{2}$ योजन चौड़ा और दश योजन गहरा, रत्नवेदी से वेष्टित तथा तोरणद्वार आदि से अलंकृत एक शाश्वत कुण्ड है । उस कुण्ड के मध्य मे जल से दो कोस ऊँचा और आठ योजन चौडा एक सलद नाम का द्वीप (टापू) है । उस द्वीप के मध्य में दश योजन ऊँचा, मूल में चार योजन चौड़ा, मध्य मे दो योजन और शिखर पर

एक योजन चौडा वज्रमय एक पर्वत है। उस पर्वत के शिखर पर एक कोस ऊँचा, भूतलपर १$\frac{१}{२}$ कोस लम्बा, मध्य मे एक कोस लम्बा और शिखर पर अर्धकोस लम्वा गृह है। इस गृह (सिन्धुकूट) का अभ्यन्तर व्यास २५० धनुष है। इसके द्वार अर्थात् दोनों किवाड ४० धनुष चौड़े और ८० धनुष ऊँचे है। यह सिन्धु देवी का गृह चार गोपुर द्वारों से युक्त और वेदिका एव वनखण्ड आदि से वेष्टित है। इस महल के अग्रभाग पर पद्मकर्णिकास्थ सिहासन जिनविम्ब से अलंकृत है। दश योजन चौडी और (१००) सौ योजन ऊँची सिन्धुनदी की यह जलधारा हिमवान् पर्वत को छोड कर अभिषेक की धारा के समान हिमवान् पर्वत से पच्चीस योजन दूरी पर भवन के अग्र भाग पर स्थित जिनदेव के शरीर पर गिरती है। इसके वाद उस कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर [दक्षिण की ओर वहती हुई] विजयार्ध की तिमिश्रगुफा के द्वार की देहली के नीचे प्रवेश करती हुई आठ योजन विस्तृत (सिन्धुनदी) अर्धदक्षिणभरतक्षेत्र की भूमि पर आकर पश्चिमाभिमुख होती हुई ६२$\frac{१}{२}$ योजन चौडी और पांच कोस गहरी वह सिन्धुनदी ६२$\frac{१}{२}$ योजन चौडे, ९३ योजन ३ कोस ऊँचे तोरणस्थ जिनविम्ब और दिक्कुमारियो के भवनो से अलकृत, तथा प्रभास देव है अधिपति जिसका ऐसे प्रभास द्वार से पश्चिम समद्र मे प्रविष्ट हो जाती है।

रोहित् नदी का विवेचनः—

महापद्म सरोवर की दक्षिण दिशा मे १२$\frac{१}{२}$ योजन चौडा, १८ योजन ३ कोश ऊँचा, दो कोस नीव वाला, जिनविम्व एव दिक्कन्याओ के भवनो से विभूषित तथा तोरण सहित वज्रमय एक द्वार है। १२$\frac{१}{२}$ योजन चौडी और एक कोश गहरी रोहित् नदी उस द्वार से निकल कर द्रह व्यास से कम कुलाचल के अर्ध व्यास प्रमाण अर्थात् (४२१०$\frac{१०}{१९}$—१०००= ३२१०$\frac{१०}{१९}$—२) =१६०५$\frac{५}{१९}$ योजन भूतलपर (महाहिमवान् पर्वत पर) आगे आकर कुलाचल के तट से १२$\frac{१}{२}$ योजन चौडी, एक योजन मोटी और एक योजन लम्वी गोमुखाकृति वज्रमय प्रणाली से नीचे भूतल पर (हैमवत क्षेत्र मे) गिरती है। जहाँ यह रोहित् नदी गिरती है वहा १२५ योजन चौडा और २० योजन गहरा, मणिमय वेदिका, द्वार एव तोरणादि से मण्डित एक कुण्ड है। उस कुण्ड के मध्य मे जलसे आकाश मे [एक योजन ऊंचा और] सोलह योजन चौडा द्वीप है। उस द्वीप के मध्य मे वीस योजन ऊँचा मूलमे आठ योजन चौडा, मध्य मे चार योजन और शिखर पर दो योजन चौडा वज्रमय एक पर्वत है। उस पर्वत के शिखर पर दो कोस ऊँचा, भूतल पर तीन कोस लम्बा, मध्य मे दो कोस लम्वा और मस्तक पर एक कोस लम्वा, ५०० धनुष चौडा, कमलकर्णिका के ऊपर स्थित सिहासनस्थ जिन प्रतिमा आदि से अलकृत, ८० धनुष चौडे और १६० धनुष ऊँचे द्वार से युक्त, चार गोपुर, वन एव वेदिका आदि से विभूषित एक दिव्य महल (रोहित् कूट) है। वीस योजन चौडी वह रोहित् नदी २०० योजन उँची जलधारा के साथ महाहिमवान् पर्वत को छोड कर ५० योजन दूरी पर जिनेन्द्र

भगवान् का अभिषेक करने की इच्छा से ही मानो भवन के अग्र भाग पर स्थित जिनेन्द्र प्रतिमा के शरीर पर गिरती है। इसके बाद उस कुण्ड के दक्षिणद्वार से निकलकर हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) को प्राप्तकर वहाँ स्थित (श्रद्धावान्) नाभिगिरि को अर्धयोजन दूर से ही छोड़ती हुई तथा उसी नाभिगिरि की अर्धप्रदक्षिणा करती हुई अर्थात् पूर्वाभिमुख होकर पश्चात् फिर दक्षिणाभिमुख होती हुई १२५ योजन चौड़ी और २$\frac{१}{२}$ योजन गहरी वह रोहित् नदी १२५ योजन चौड़े, १८७$\frac{१}{२}$ योजन ऊँचे, $\frac{१}{२}$ (अर्ध) योजन मोटे, दो कोस अवगाह (नीव) वाले, तोरणस्थ अर्हन्त प्रतिमाओं एवं दिक्कन्याओं के आवासों से अलंकृत रोहित् देव है अधिपति जहां का ऐसे रोहित् द्वार से पूर्व समुद्र में प्रविष्ट करती है।

रोहितास्या नदी का वर्णनः—

हिमवान्पर्वतस्थ पद्मसरोवर की उत्तर दिशा में एक द्वार है, जिसके व्यास आदि का प्रमाण महापद्मसरोवर की दक्षिणदिशा में स्थित द्वार के समान है। रोहित् नदी के व्यास और अवगाह के समान जिसका व्यास और अवगाह है ऐसी रोहितास्या नदी उस पद्मसरोवर के उत्तर द्वार से निकल कर उत्तराभिमुख होती हुई द्रह के व्यास से हीन हिमवान् पर्वत के अर्धव्यास प्रमाण अर्थात् (१०५२$\frac{१२}{१९}$—५००=५५२$\frac{१२}{१९}$÷२) =२७६$\frac{६}{१९}$ योजन आगे तट पर आकर पहिले कही हुई रोहित् की प्रणालिका के व्यासादि के सदृश प्रणालिका से बीस योजन चौडी और १०० योजन ऊँची रोहितास्या नदी आगमोक्त योजनों द्वारा पर्वत को छोडती हुई हैमवत क्षेत्र के भूतल पर गिरती है। जहा यह नदी गिरती है वहां स्थित कुण्ड, द्वीप, पर्वत और गृह आदि के व्यास आदि का प्रमाण रोहित् नदी सम्बन्धी कुण्ड आदि के व्यासादि के समान जानना चाहिये। उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर हैमवत क्षेत्र के मध्य मे स्थित (श्रद्धावान्) नाभिगिरि को अर्धयोजन दूर से छोड़कर उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई अर्थात् पश्चिम दिशा में जाकर पश्चात् उत्तराभिमुख होती हुई रोहित् नदी के समान व्यास और अवगाह से युक्त रोहितास्या नदी पूर्वोक्त पूर्वद्वार के व्यासादि के सदृश व्यास वाले पश्चिमद्वार से पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट होती है।

हरित् नदी का सविस्तार वर्णनः—

निषध पर्वत के ऊपर स्थित तिगिञ्छ नाम के सरोवर की दक्षिण दिशा में २५ योजन चौडा, ३७$\frac{१}{२}$ योजन ऊँचा, दो कोस गहरा (नीव), तोरणस्थ जिनप्रतिमा और दिक्कन्याओं के आवास (भवनो) आदि से मण्डित एक वज्रमय द्वार है। २५ योजन चौडी और दो कोस गहरी हरित् नदी उस द्वार से निकल कर सरोवर के व्यास से हीन पर्वत के अर्धव्यास प्रमाण अर्थात् (१६८४२$\frac{२}{१९}$—२०००=१४८४२$\frac{२}{१९}$÷२) =७४२१$\frac{१}{१९}$ योजन आगे जाकर निषधकुलाचल के तट से २५ योजन चौडी, दो योजन मोटी और दो योजन लम्बी गोमुखप्रणालिका द्वारा ४० योजन चौड़ी और ४००

योजन ऊँची धारा वाली वह हरित् नदी निषध कुलाचल को छोड़कर १०० योजन दूरी पर (हरिक्षेत्र–मध्यभोगभूमि) की पृथ्वी पर गिरती है। जहां यह नदी गिरती है वहां २५० योजन चौडा और ४० योजन गहरा, रत्नो की वेदी, रत्नो का द्वार और रत्नमय तोरण आदि से अलकृत एक कुण्ड है। उस कुण्ड के मध्य मे जलसे आकाश मे [दो योजन ऊँचा और] ३२ योजन चौडा एक द्वीप (टापू) है। उस द्वीप के मध्य मे ४० योजन ऊँचा, मूल मे १६ योजन चौडा, मध्य मे आठ योजन चौडा और शिखर पर ४ योजन चौडा एक पर्वत है। उस पर्वत के शिखर पर एक योजन ऊँचा, भूतलपर १$\frac{1}{2}$ योजन लम्बा, मध्य मे एक योजन और अग्रभाग पर अर्ध योजन लम्बा, अर्ध कोस अभ्यन्तर व्यास, १६० धनुष चौडे और ३२० धनुष ऊचे द्वार से युक्त, चार गोपुर, वन एव वेदिका से सुशोभित तथा पद्मकर्णिका पर स्थित सिहासनस्थ अर्हन्त प्रतिमाओं एव दिक्कन्याओं के भवनों आदि से अलकृत एक दिव्य भवन है। उस भवन के अग्रभाग पर स्थित जिनबिम्ब के शरीर पर से बहती हुई वह हरित् नदी कुण्ड के दक्षिणद्वार से निकल कर तथा हरिक्षेत्र (मध्यम भोगभूमि) के मध्य भूभाग में आकर वहा स्थित (विजयवान्) नाभिगिरि को अर्धयोजन दूर से ही छोडकर उसकी अर्धप्रदक्षिणा करती हुई अर्थात् पूर्वाभिमुख जाकर पश्चात् दक्षिणाभिमुख होती हुई २५० योजन चौडी और पाच योजन गहरी वह नदी अपने प्रवेशद्वारसे पूर्वसमुद्र मे प्रविष्ट करती है। उस हरित् नदी का समुद्र प्रवेश द्वार २५० योजन चौडा, ३७५ योजन ऊचा, दो कोस गहरा (नीव), अर्ध योजन (दो कोस) मोटा तथा अर्हन्त प्रतिमाओ एव दिक्कन्याओ के भवनो आदि से अलकृत तोरणो से युक्त जानना चाहिये।

हरिकान्ता नदी का वर्णन:—

महाहिमवान्पर्वतस्थ महापद्म सरोवर की उत्तर दिशा मे पूर्व कहे हुये तिगिञ्छ सरोवर के दक्षिणद्वार के व्यास आदि के समान प्रमाण वाला एक द्वार है। हरित् नदी समान व्यास और अवगाह से युक्त हरिकान्ता नदी उस उत्तर द्वार से निकल कर सरोवर के विस्तार से हीन पर्वत के अर्ध व्यास प्रमाण अर्थात् (१०५२$\frac{१२}{१९}$—५००=५५२$\frac{१२}{१९}$÷२) =२७६$\frac{६}{१९}$ योजन प्रमाण — हिमवान् पर्वत के तट पर्यन्त उत्तर दिशा मे जाकर हरित् नदी की प्रणालिका के व्यास आदि के प्रमाण समान प्रणालिका से ४० योजन चौडी और २०० योजन ऊची हरिकान्ता नदी श्रुत (शास्त्र) मे कहे हुये योजनो प्रमाण अर्थात् १०० योजनो के द्वारा पर्वत को अन्तरित करती हुई पर्वत के मस्तक से हरिक्षेत्र के भूतल पर गिरती है। जहा यह नदी गिरती है वहा हरित् नदी के पतन योग्य कुण्ड आदि के विस्तार आदि के समान कुण्ड, द्वीप, पर्वत और गृह आदि है। इस प्रकार उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर हरिक्षेत्र-मध्यम भोगभूमि के मध्यभाग पर्यन्त जाकर वहा स्थित (विजटा(विजय) वान्) नाभिगिरि को अर्धयोजन दूर से छोडती हुई उसकी अर्धप्रदक्षिणा करके अर्थात् पश्चिमाभिमुख होकर पश्चात् उत्तर दिशा में जाती हुई हरित् नदी के समान विस्तार और अवगाह के प्रमाण वाली

हरिकान्ता नदी पूर्व कहे हुये पूर्व समुद्र के द्वार के व्यासादिक के प्रमाण के समान प्रमाण वाले अपने प्रवेश द्वार से पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट कर जाती है।

सीता नदी का वर्णन:—

नीलपर्वत पर स्थित केसरी सरोवर की दक्षिण दिशा में ५० योजन चौड़ा और ७५ योजन ऊँचा तथा तोरणस्थ अर्हन्त प्रतिमा और दिक् कन्याओ के भवनों से मण्डित एक वज्रमय द्वार है। ५० योजन चौडी और एक योजन गहरो सीता नदो उस द्वार से निकलकर पर्वत के शिखर पर द्रह व्यास से हीन पर्वत के अर्ध व्यास प्रमाण अर्थात् ($१६८४२\frac{२}{१९}$ —२००० = $१४८४२\frac{२}{१९}$ ÷ २) = $७४२१\frac{१}{१९}$ योजन आगे कुलाचल के तट पर्यन्त आती है। उस पर्वत पर ५० योजन चौडी, चार योजन लम्बी और चार योजन मोटी एक गोमुखाकार प्रणाली स्थित है। पर्वत के नीचे जमीन पर ५० योजन चौडा, ८० योजन गहरा तथा रत्नवेदी, रत्नद्वार एव रत्नो के तोरणो आदि से मण्डित एक कुण्ड है। उस कुण्ड के मध्य में जल से [चार योजन ऊचा और] ६४ योजन चौडा द्वीप है। उस द्वीप के मध्य-भाग मे ८० योजन ऊचा, मूल मे ३२ योजन चौडा, मध्य में १६ योजन और शिखर पर आठ योजन चौडा एक पर्वत है। उस पर्वत के अग्र भागपर दो योजन ऊचा, पृथ्वीतल पर तीन योजन लम्बा, मध्य में दो योजन लम्बा और शिखर पर एक योजन लम्बा तथा एक कोस चौडे अभ्यन्तर व्यास वाला एक दिव्य गृह है। जिसका द्वार ३२० योजन चौडा और ६४० योजन ऊंचा है, तथा जो चार गोपुर, वेदी एव वन आदि से अल कृत है। उस गृह के ऊर्ध्वभाग मे पद्मकर्णिका पर सिहासन स्थित है जिसमें शाश्वत जिनप्रतिना विद्यमान रहती है। ८० योजन चौडो और ४०० योजन ऊची वह सीता नदी जिनबिम्ब के मस्तक पर से बहती हुई २०० योजनों द्वारा पर्वत को अन्तरित करती है। अर्थात् पर्वत के तट पर स्थित उपर्युक्त प्रणालिका द्वारा नील पर्वत से २०० योजन दूरी पर नीचे गिरती है। इसके वाद सीता कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकल कर दक्षिणाभिमुख होती हुई उत्तरकुरु है नाम जिसका ऐसी उत्तमभोगभूमि के मध्य से आकर मेरु पर्वत के समोप माल्यवान गजदन्त पर्वत को भेद कर अर्थात् माल्यवान् गजदन्त पर्वत की दक्षिण दिशा सम्बन्धी गुफा मे प्रवेश कर प्रदक्षिणा रूप से सुमेरु पर्वत को अर्ध योजन दूर से ही छोडकर पूर्वभद्रशालवन एवं पूर्व विदेह क्षेत्र के मध्य से बहती हुई ५०० योजन चौडी और १० योजन गहरो सीता नदी अपने प्रवेश द्वार से पूर्व समुद्र में प्रविष्ट होती है। वह समुद्र प्रवेश द्वार ५०० योजन चौडा, ७५० योजन ऊंचा, दो कोस गहरा (नीव) और अर्ध-योजन मोटा तथा तोरणस्थ अर्हन्त बिम्ब एवं दिक्कन्याओं के आवासों से मण्डित जानना चाहिये।

सीतोदा नदी का विवेचन:—

निषधपर्वतस्थ तिगिञ्छ सरोवर के उत्तरद्वार का व्यास आदि सीता निर्गम द्वार के व्यासादि के समान है। सोता सदृश व्यास और अवगाह वाली सीतोदा नदी तिगिञ्छ सरोवर के उस उत्तर द्वार

से निकल कर तथा पर्वत के तट पर पहुँच कर नील पर्वतस्थ प्रणाली के व्यास आदि के समान प्रमाणवाली प्रणालिका द्वारा नीचे पृथ्वी तल पर (विदेह क्षेत्रस्थ सीतोदा कुण्ड में) गिरती है। जहाँ सीतोदा गिरती है वहाँ सीतापतन कुण्ड के व्यासादि के सदृश व्यास आदि से युक्त कुण्ड, द्वीप, पर्वत, और गृह आदि है। ८० योजन चौड़ी और ४०० योजन ऊँची धारा वाली सीतोदा नदी २०० योजनो द्वारा पर्वत को अन्तरित करती हुई जिनेन्द्र भगवान के शरीर पर से बहती है। पश्चात् सीतोदा कुण्ड के उत्तर द्वार मे निकल कर देवकुरु नाम वाली उत्तम भोगभूमिक्षेत्र के मध्य से जाकर मेरु पर्वत के समीप (विद्युतप्रभ) गजदन्त पर्वत को भेदकर अर्थात् विद्युतप्रभ गजदन्त पर्वत की उत्तर दिशा सम्बन्धी गुफा मे प्रवेश कर प्रदक्षिणा रूप से सुमेरु पर्वत को दो कोस (अर्ध यो०) दूर से ही छोड़ कर पश्चिमभद्रशाल वन एवं पश्चिम विदेह क्षेत्र के मध्य से बहती हुई सीता के समान व्यास और अवगाह से युक्त सीतोदा नदी अपने पश्चिम प्रवेश द्वार से पश्चिम समुद्र मे प्रवेश करती है। इसके समुद्र द्वार के व्यास आदि का प्रमाण पूर्व समुद्र के सीता प्रवेशद्वार के व्यास आदि के सदृश ही है।

नारी नदी का वर्णन:—

नारी नदी रुक्मी पर्वतस्थ महापुण्डरीक सरोवर के दक्षिणद्वार से निकल कर १६०५$\frac{५}{१९}$ योजन आगे बहती हुई रुक्मी पर्वत के तट भाग पर स्थित प्रणालिका द्वारा २०० योजन ऊपर से नीचे (भूमि पर) स्थित नारी कुण्ड में गिरती है। पश्चात् कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकल कर रम्यक क्षेत्र के मध्यभाग तक बहती हुई वहाँ स्थित (पद्मवान्) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोडकर उसी नाभिगिरि की अर्धप्रदक्षिणा करती हुई पूर्व समुद्र मे प्रविष्ट हो जाती है।

नरकान्ता नदी का विवेचन:—

नरकान्ता नदी नीलपर्वतस्थ केसरी सरोवर के उत्तर द्वार से निकल कर नील पर्वत के तट पर्यन्त आकर उसकी प्रणालिका द्वारा ४०० योजन ऊंचे से रम्यकक्षेत्र मे स्थित नरकान्त कुण्ड मे गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकल कर रम्यकक्षेत्र के मध्यभाग तक आकर वहाँ स्थित (पद्मवान्) नाभिगिरि को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करती हुई पश्चिम समुद्र को प्राप्त हो जाती है।

इस रम्यक क्षेत्र नाम वाली मध्यमभोगभूमि क्षेत्र सम्बन्धी सरोवर के दोनो निर्गम द्वारो का व्यास एव उदय, नारी–नरकान्ता दोनों नदियों का निर्गम व्यास एवं अवगाहना, दोनो प्रणालियो का व्यास आदि, पर्वत और नदी पतन का अन्तर, धारा का विस्तार. कुण्ड, द्वीप, पर्वत और गृह आदि तथा पूर्वसमुद्र और पश्चिम समुद्र के प्रवेश द्वारो के व्यास एवं उदय आदि तथा समुद्र प्रवेश के समय नदियो के व्यास आदि का समस्त प्रमाण हरिक्षेत्र के समान जानना चाहिये।

सुवर्णकूला नदी का वर्णन :–

सुवर्णकूला नाम की नदी शिखिरिन् पर्वतस्थ पुण्डरीक सरोवर के दक्षिण द्वार से निकल कर पर्वत के तट पर स्थित प्रणालिका द्वारा १०० योजन मोटी धारा से सुवर्णकुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के दक्षिणद्वार से निकल कर हैरण्यवत् क्षेत्र के मध्य मे जाकर वहाँ स्थित (गन्धवान्) नाभिगिरि को अर्धयोजन दूर से ही छोड़ती हुई उसकी अर्ध प्रदक्षिणा करके पूर्वसमुद्र में प्रविष्ट हो जाती है।

रूप्यकूला नदी :–

रूप्यकूला नाम की नदी रुक्मि पर्वतस्थ महापुण्डरीक सरोवर के उत्तरद्वार से निकलकर २०० योजन ऊँची पर्वत के तट पर स्थित प्रणालिका द्वारा रूप्य कुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकल कर हैरण्यवत नाम की जघन्य भोगभूमि क्षेत्र के मध्य में जाकर वहां स्थित (विजयार्ध) नाभिगिरि को अर्धयोजन दूर से ही छोड़कर उसकी अर्धप्रदक्षिणा करती हुई पश्चिम समुद्र मे प्रवेश करती है। इस हैरण्यवत् क्षेत्र में पूर्व में कहे हुये सरोवर के नदी निर्गमद्वार को आदि लेकर समुद्र के नदी प्रवेशद्वार पर्यन्त समस्त व्यास आदि हैमवत् क्षेत्र के समान जानना चाहिये।

रक्ता नदी :–

शिखरिन् पर्वतस्थ पुण्डरीक सरोवर क पूर्वद्वार से निकल कर शिखरी पर्वत पर पूर्वाभिमुख ५०० योजन जाकर रक्ता कूट को अर्ध योजन दूर से ही छोड़कर दक्षिण दिशा में उसी पर्वत पर अर्धकोस अधिक ५०० योजन आगे जाकर पर्वत के तट पर स्थित प्रणालिका द्वारा रक्ता कुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकल कर विजयार्ध के गुफा द्वार के देहली के नीचे प्रवेश करती हुई दक्षिण ऐरावत क्षत्र के अर्धभाग पर्यन्त दक्षिण में हो जाती है, पश्चात् पूर्व की ओर मुड कर अपने प्रवेश द्वार से पूर्व समुद्र मे प्रवेश कर जाती है।

रक्तोदा नदी :–

रक्तोदा नदी उसी शिखरिन् पर्वतस्थ पुण्डरीक सरोवर के पश्चिम द्वार से निकल कर उसी पर्वत पर पश्चिमाभिमुख ५०० योजन जाकर रक्तोदा कूट को अर्ध योजन दूर से ही छोड़ती हुई तट के ऊपर स्थित प्रणाली द्वारा भूमि पर स्थित रक्तोदा नामक कुण्ड में गिरती है। पश्चात् उस कुण्ड के उत्तर द्वार से निकल कर विजयार्ध के गुफा द्वार की देहली के नीचे प्रवेश करती हुई उत्तर ऐरावत क्षेत्र के मध्यभाग पर्यन्त उत्तराभिमुख ही जाती हुई पुनः पश्चिमाभिमुख होकर अपने प्रवेश द्वार से पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर जाती है।

इन दोनों (रक्ता-रक्तोदा) नदियों के सरोवर के निर्गमद्वार का व्यास आदि, प्रणालियो का विस्तार आदि, नदी पतन कुण्ड से पर्वत तट का अन्तर, धारा की चौडाई एव ऊँचाई, कुण्ड द्वीप, पर्वत और गृह आदि का तथा समुद्र प्रवेश द्वार आदि के विष्कम्भ आदि का समस्त प्रमाण पूर्वोक्त गङ्गा सिन्धु के सदृश ही जानना चाहिये।

उपर्युक्त चौदह महानदियो के निर्गमद्वार के व्यासादि से लेकर उनके समुद्र प्रवेशद्वार के व्यास आदि पर्यन्त समस्त प्रमाण निम्नाङ्कित तालिका द्वारा दर्शाया जा रहा है।

नदियों के निर्गम–प्रवेश आदि से सम्बन्धित

क्रमांक	नदियो के नाम	नदी निर्गम द्वारो की (योजनो मे)			निर्गम स्थान पर नदियो की (योजनो मे)		पर्वतस्थ प्रणालिकाओ की (योजनो मे)			पर्वतों के मूल मे स्थित कुण्डो की (योजनो मे)		कुण्डो के मध्य द्वीपों की (योजनो मे)		पर्वतो के ऊपर स्थित गगा आदि देवियो के गृहो की योजनो मे				
															व्यास			
		गहराई	चौडाई	ऊँचाई	गहराई	चौडाई	मोटाई	लम्बाई	चौडाई	गहराई	चौडाई	ऊँचाई	चौडाई	ऊँचाई	नीचे	मध्य	ऊपर	अभ्यन्तर
१	गङ्गा-सिन्धु	१	६ १/४	९ ३/८	१/२	६ १/४	१/२	१/२	६ १/४	१०	६२ १/२	१/२	८	१	१ १/२	१	१/२	३/८ (७५० ध०)
२	रोहित्-रोहितास्या	१	१२ १/२	१८ ३/४	१	१२ १/२	१	१	१२ १/२	२०	१२५	१	१६	२	३	२	१	३/४
३	हरित्-हरिकान्ता	२	२५	३७ १/२	२	२५	२	२	२५	४०	२५०	२	३२	४	६	४	२	१ १/२
४	सीता-सीतोदा	४	५०	७५	४	५०	४	४	५०	८०	५००	४	६४	८	१२	८	४	३
५	नारी-नरकान्ता	२	२५	३७ १/२	२	२५	२	२	२५	४०	२५०	२	३२	४	६	४	२	१ १/२
६	सुवर्ण० रूप्यकूला	१	१२ १/२	१८ ३/४	१	१२ १/२	१	१	१२ १/२	२०	१२५	१	१६	२	३	२	१	३/४
७	रक्ता-रक्तोदा	१/२	६ १/४	९ ३/८	१/२	६ १/४	१/२	१/२	६ १/४	१०	६२ १/२	१/२	८	१	१ १/२	१	१/२	३/८

११ स्थानों के व्यास आदि की एकत्रित तालिका

गृह द्वारों की धनुषो मे		पर्वतो से नीचे गिरते समय की धारा योजनो मे		पर्वतो के तटो से भूस्थित कुण्डो का अन्तर	समुद्र प्रवेश समय नदियो की योजनो मे		समुद्र मे नदियो के प्रवेश द्वार की योजनो मे			
ऊँचाई	चौडाई	चौडाई	ऊँचाई	योजनो मे	चौडाई	गहराई	ऊँचाई	चौडाई	मोटाई	नींव
८०	४०	१०	१००	२५	६२½	१¼	९३¾	६२½	½	½
१६०	८०	२०	२००	५०	१२५	२½	१८७½	१२५	½	½
३२०	१६०	४०	४००	१००	२५०	५	३७५	२५०	½	½
६४०	३२०	८०	८००	२००	५००	१०	७५०	५००	½	½
३२०	१६०	४०	४००	१००	२५०	५	३७५	२५०	½	½
१६०	८०	२०	२००	५०	१२५	२½	१८७½	१२५	½	½
८०	४०	१०	१००	२५	६२½	१¼	९३¾	६२½	½	½

अथ महानदीनां परिवारनदीसंख्या प्रोच्यते :—

गङ्गासिन्ध्वो प्रत्येक परिवार नद्यश्च चतुर्दशसहस्राणि भवन्ति। रोहित् रोहितास्ययोरष्टा-विशतिसहस्राणि च। हरिद्धरिकान्तयो। पृथक् पृथक् परिवारनद्यः षट् पञ्चाशत्सहस्राणि भवेयुः।

सीताया परिवारनद्यश्चतुरशीतिसहस्राणि, तथासीतोदायाश्च। नारीनरकान्तयो· प्रत्येकं परिवारनद्य षट्पञ्चाशत्सहस्राणि। स्वर्णरूप्यकूलयोरष्टाविशति सहस्राणि। रक्ताया परिवारनद्यः चतुर्दशसहस्राणि, रक्तोदायाश्च। पूर्वापर विदेहस्थ द्वादश विभङ्गानदी रहित चतुःषष्टि मूलनदीना प्रत्येक प्रत्येक चतुर्दश चतुर्दश सहस्र परिवारनद्यो भवन्ति। सर्वा मेलिता परिवार नद्योऽष्टलक्षषण्णवति-सहस्राणि भवन्ति। द्वादशविभङ्गानाम् एका एका नदी प्रति अष्टाविंशति-अष्टाविंशति सहस्राणि परिवारनद्यो भवन्ति। सर्वाः परिवारनद्यः पिण्डीकृताः त्रिलक्ष षट् त्रिंश-सहस्रा। समस्त विदेहस्थ सीतादि सर्वनदीना परिवारनद्य· चतुर्दशलक्षाणि। गङ्गादि षण्णा नदीना एकत्रीकृता सर्वा परिवार-नद्यः एकलक्षषण्णवति सहस्राणि। नार्यादिशेषनदीना चेकलक्ष षण्णवति सहस्राणि भवन्ति। चतुर्दश-गङ्गादय, द्वादशविभङ्गानद्यः, चतु षष्टि विदेहजा गङ्गादयः समस्तक्षेत्राणा नवतिर्मूलनद्य। एता एकत्रपिण्डीकृता समस्तानद्य जम्बूद्वीपे सप्तदशलक्ष-द्विनवतिसहस्रनवति प्रमाः ज्ञातव्या। एतत्पञ्च-भिर्गुणिताः नरलोके सर्वा नद्यः ८६६०४५० भवन्ति ॥

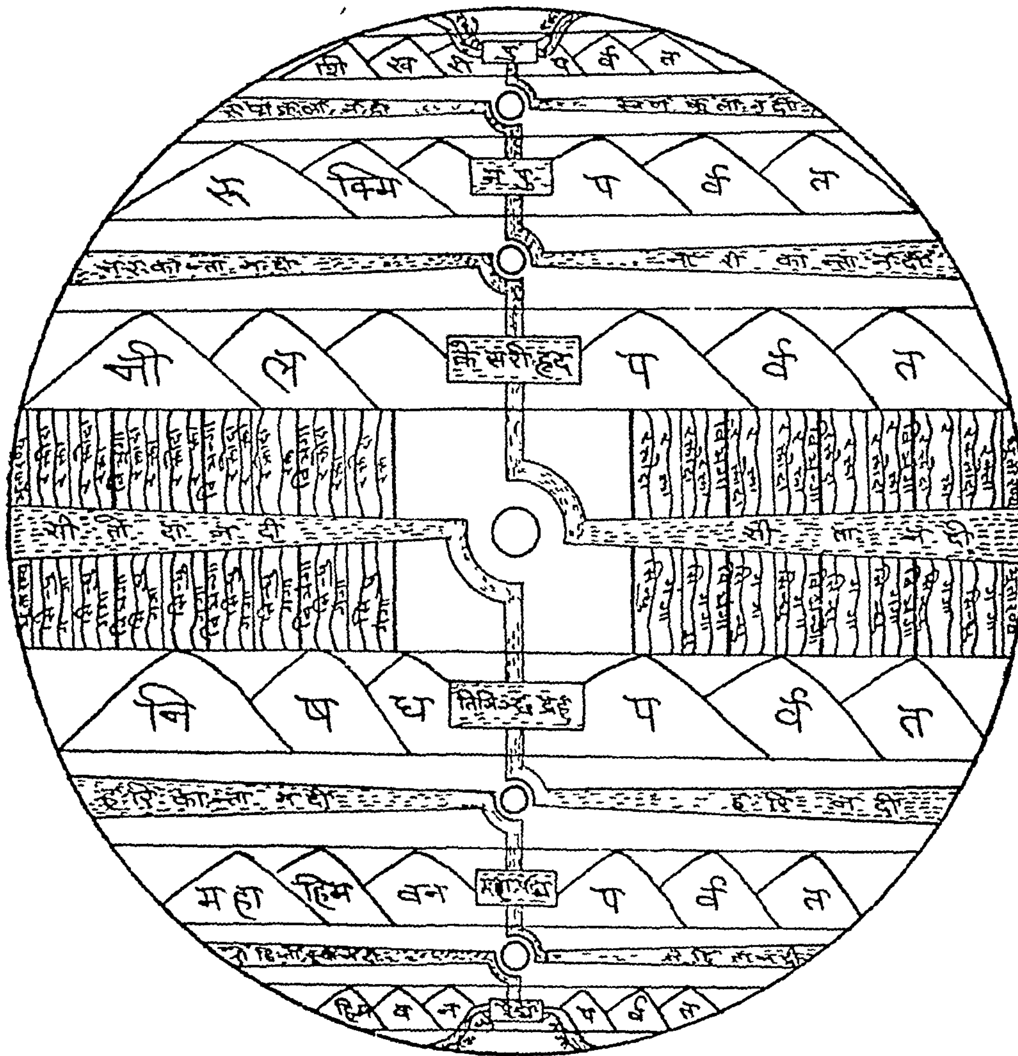
अब महानदियों के परिवार नदियों की संख्या कहते हैं :—

गङ्गा नदी की (पूर्व दिशा सम्बन्धी ढाई म्लेच्छ खण्डो से ग्रहण की हुई) १४००० परिवार नदिया और सिन्धुनदी की (पश्चिम ढाई म्लेच्छ खण्डो की) १४००० परिवार नदिया है। रोहित् नदी की (पूर्व जघन्यभोगभूमि सम्बन्धी) २८००० और रोहितास्या की (पश्चिम जघन्यभोगभूमि सम्बन्धी) २८००० परिवार नदियां है। हरित् नदी की (पूर्व मध्यम भोग भूमि सम्बन्धी) ५६००० परिवार नदिया और हरिकान्ता नदी की (पश्चिम मध्यम भोग भूमि सम्बन्धी) ५६००० परिवार नदिया हैं। सीता महानदी की (उत्तर कुरु अर्थात् पूर्व उत्तम भोग भूमि सम्बन्धी ८४००० और सीतोदा महानदी की (देवकुरु अर्थात् पश्चिम उत्तम भोग भूमि सम्बन्धी) ८४००० परिवार नदिया हैं। नारी नदी की ५६००० और नरकान्ता की ५६००० परिवार नदिया है। सुवर्णकूला की २८००० और रूप्यकूला की २८००० परिवार नदिया है। इसी प्रकार रक्ता नदी की १४००० हजार और रक्तोदा नदी की भी १४००० परिवार नदिया है।

पूर्व पश्चिम विदेह मे १२ विभङ्गा नदिया और (३२ क्षेत्र सम्बन्धी) ६४ गङ्गा-सिन्धु नदिया हैं। इनमे से १२ विभङ्गा को छोडकर ६४ गङ्गा-सिन्धु नदियो मे प्रत्येक की परिवार नदियाँ चौदह-चौदह हजार है, तथा इन सब का एकत्रित योग कर लेने पर ६४ मूल नदियो की परिवार सख्या (१४००० × ६४)=८९६००० अर्थात् आठ लाख ९६ हजार होती है। १२ विभङ्गा नदियो मे से

प्रत्येक की अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार परिवार नदियां हैं। इन सब को एकत्रित योग करने पर (२८००० × १२) = ३३६००० अर्थात् तीन लाख ३६ हजार होता है। इस प्रकार पूर्वा पर विदेहस्थ सीता-सीतोदा की समस्त परिवार नदियां (८४००० + ८४००० + ८९६००० + ३३६०००) = १४००००० प्रमाण होती है। अर्थात् सीता नदी की उत्तर कुरु की ८४००० + (६ विभङ्गा की १६८००० + (पूर्व विदेह सम्बन्धी ३२ गंगासिन्धु की) ४४८००० + ६ विभङ्गा + ३२ गगा + सिन्ध = ७०००३८ परिवार नदिया सीता नदी की है और इसी प्रकार की ७०००३८ सहायक सीतोदा की है।

जम्बूद्वीपस्थ ९० प्रमुख नदियो का चित्रण निम्नप्रकार है—



इनमें से (३८ + ३८) = ७६ तो मूल नदियां हैं और १४००००० सहायक हैं। गंगा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या, हरित् और हरिकान्ता इन ६ मूल नदियों की परिवार नदियों का एकत्रित योग (१४००० + १४००० + २८००० + २८००० + ५६००० + ५६०००) = १९६००० अर्थात् एक लाख ९६ हजार होता है। इसी प्रकार नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा इन ६ मूल नदियों के परिवार का योग भी एक लाख ९६ हजार होता है। जम्बूद्वीप के समस्त क्षेत्रों

की मूल नदियां ९० है। यथा—गगादि महानदिया १४+विभंगा नदिया १२+ विदेहजगंगादि ६४=९०।

जम्बूद्वीपस्थ उपर्युक्त समस्त मूल और परिवार नदियो का एकत्रित योग करने पर १७९२०९० प्राप्त होता है। इसका विवरण निम्न प्रकार है—

जम्बूद्वीपस्थ भरत, हैमवत और हरि क्षेत्र सम्बन्धी गगादि ६ नदियो का परिवार १९६००० है। विदेहज सीता-सीतोदा का परिवार १६८०००, १२ विभगा का ३३६०००, विदेह के ३२ क्षेत्र सम्बन्धी ३२ गगासिन्धु और ३२ रक्ता रक्तोदा इस प्रकार ६४ की ८९६००० परिवार नदिया तथा रम्यक, हैरण्यवत् और ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी नारी नरकान्ता आदि ६ की परिवार नदियाँ १९६००० है। इन सब का और मूल नदियो का समस्त योग (१९६०००+१६८०००+३३६०००+८९६०००+१९६०००+९०)=१७९२०९० होता है। अढाई द्वीप मे पाच मेरु पर्वत है, इसलिये इस योग को ५ से गुणित करने पर ढाई द्वीपस्थ समस्त नदियो का (१७९२०९०×५)=८९६०४५० प्रमाण प्राप्त होता है।

समस्त नदियो की वेदिका आदि का वर्णन :—

सर्वासां सरितां सन्ति रत्नसोपानपंक्तयः।
उभयो पार्श्वयोर्नानाद्रुमवल्लीवनानि च ।।५६।।
जिनेन्द्रप्रतिमारत्नद्वारतोरण भूषिताः।
द्विक्रोशप्रोन्नता दिव्या क्रोशांह्रि व्यास वेदिका ।।५७।।

अर्थ :—समस्त नदियो में पंक्तिवद्ध रत्नो की सीढियां है तथा सरिताओं के दोनो पार्श्वभागो मे नाना प्रकार के वृक्षो एव वल्लियो से युक्त वन है। इनके तोरणद्वार रत्नमय प्रतिमाओ से विभूषित है, और इनके दोनो पार्श्वभागो मे दो कोस ऊंची और सवा कोस चौडी वेदिकाएँ है ।।५६—५७।।

अब विजयार्ध पर्वत की स्थिति और उसके व्यास आदि का निर्धारण सात श्लोको द्वारा करते हैं :—

अथास्ति विजयार्धाद्रिर्मध्येऽस्य भरतस्य च।
श्वेतरत्नमयस्तुङ्गः पञ्चविंशतियोजनैः ।।५८।।
पञ्चाशद्योजनैरेष विस्तृतो भूतले ततः।
उभयोः पार्श्वयोर्मुक्त्वा दशास्य योजनानि च ।।५९।।

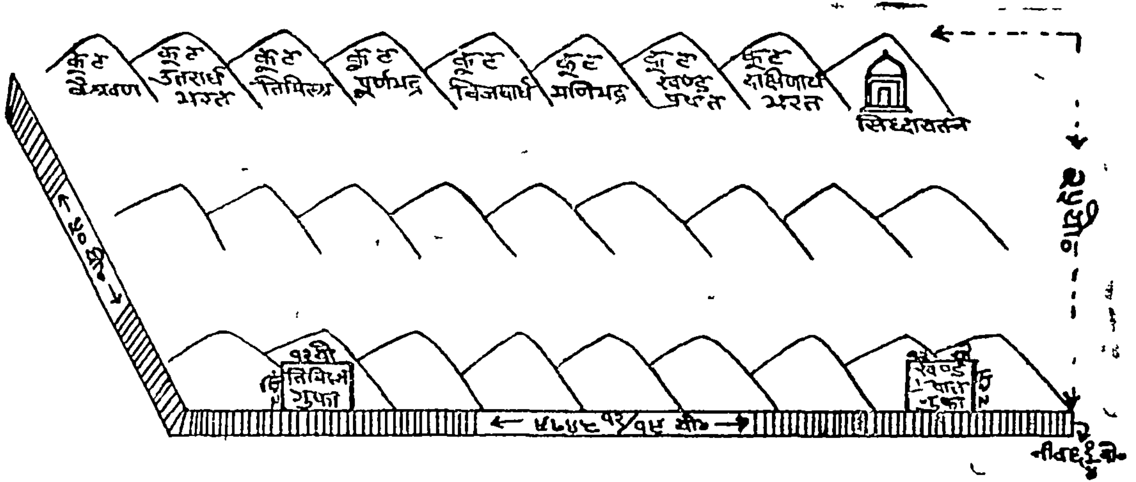
दशयोजन विस्तीर्णे दक्षिणोत्तरसंज्ञिके ।
पूर्वापराब्धि संलग्ने द्वे श्रेण्यौ भवतः शुभे ।।६०।।
पूर्वापराब्धिदीर्घोऽयं विद्येशपुर सौधभृत् ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णो ह्यत्र स्यात् सुन्दराकृतिः ।।६१।।
दशयोजन संख्यं खं त्यक्त्वा तोऽस्यद्वि पार्श्वयोः ।
प्रागुक्तायाम विस्तारे श्रेण्यौद्वेस्तोऽपरे शुभे ।।६२।।
दशयोजन विस्तीर्णोऽत्रैषोऽमर पुराङ्कितः ।
नवकूटाङ्कितोमूर्ध्नि त्यक्त्वानुपञ्चयोजनात् ।।६३।।
निजोदय चतुर्थांशावगाहो राजतेऽचलः ।
खगेशचारणैः श्वेतमणिभिः शुक्लपुञ्जवत् ।।६४।।

अर्थ :—भरत क्षेत्र के ठीक मध्य मे विजयार्ध नाम का एक श्वेतरत्नमय पर्वत है। जो पच्चीस योजन ऊँचा और भूतल पर ५० योजन चौडा है। यह ५० योजन की चौड़ाई १० योजन की ऊँचाई तक जाती है। इसके ऊपर (दक्षिणोत्तर) दोनों पार्श्वभागों में दश दश योजन (की कटनी) छोड़ कर १० योजन की ऊँचाई पर्यन्त ३० योजन चौडा है। इसी प्रथम कटनी पर १० योजन चौडी, पूर्व-पश्चिम समुद्र को स्पर्श करने वाली और दक्षिण-उत्तर नाम वाली दो शुभ श्रेणिया हैं। इन पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त लम्बी उत्तर-दक्षिण दोनों श्रेणियों पर विद्याधरों के सुन्दर आकृति को धारण करने वाले महलों से युक्त नगर है। ३० योजन चौडाई में भी दोनों पार्श्वभागो में १०-१० योजन (की कटनी) छोडकर पाँच योजन की ऊँचाई पर्यन्त केवल १० योजन चौडा जाता है। इस दूसरी कटनी पर पूर्वोक्त आयाम और विस्तार (१० योजन चौडी और पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक लम्बी) वाली अन्य दो श्रेणियां है, जो व्यन्तर देवो के नगरो से अलकृत है। इन श्रेणियों से पाच योजन ऊपर अर्थात् विजयार्ध का अग्रभाग नवकूटों से सयुक्त है। इस विजयार्ध पर्वत की नींव अपनी ऊँचाई (२५ योजन) का चतुर्थभाग अर्थात् ६¼ योजन प्रमाण है। श्वेत मणियों के साथ साथ चारण ऋद्धि धारी मुनीश्वरों और विद्याधरों से व्याप्त यह विजयार्ध ऐसा शोभायमान होता है मानो शुक्लता का पुञ्ज ही हो ।।५८—६४।।

विशेषार्थ :—

विजयार्ध की दक्षिणोत्तर दोनों तटों की प्रथम श्रेणी पर विद्याधर और द्वितीय श्रेणी पर व्यन्तर जाति के देव निवास करते है, तथा शिखर पर नवकूट हैं, जिसका चित्रण निम्न प्रकार है :—

विजयार्ध पर्वत



अब दक्षिणोत्तर दोनो श्रेणियो पर स्थित विद्याधरो के नगरो की संख्या और उनके नाम कहते है —

संत्यस्य दक्षिणश्रेण्यां पञ्चाशन्नगराणि च ।
षष्टिरेवोत्तरश्रेण्यां रम्याणि व्योमगामिनाम् ।।६५।।
किन्नामनगरं किन्नरगीतं नरगीतकम् ।
बहुकेतपुरं पुण्डरीकं सिंहध्वजाह्वयम् ।।६६।।
पुरं श्वेतध्वजाभिख्यं गरुडध्वज सञ्ज्ञकम् ।
श्रीप्रभं श्रीधराख्यं च लोहार्गलमरिञ्जयम् ।।६७।।
वैरार्गलं हि वैराख्यं विगतोर्ज्जपुरं जयम् ।
शकटाख्यं चतुर्वक्रं पुरं बहुमुखाभिधम् ।।६८।।
अरजं विरजाभिख्यं रथनूपुरनामकम् ।
मेखलाग्रपुरं क्षेमवर्यं ततोऽपराजितम् ।।६९।।
पुरं कामपुराभिख्यं वियच्चर समाह्वयम् ।
विजयादि चराख्य च शक्ताभिधानकं पुरम् ।।७०।।
सञ्जयन्तं जयन्ताख्यं विजयं वैजयन्तकम् ।
क्षेमाकरं सुचन्द्राभं सूर्यभासं पुरोत्तमम् ।।७१।।

चित्रकूटं महाकूटं हैमकूटं त्रिकूटकम् ।
मेघकूटं विचित्रादिकूटं वैश्रवणाभिधम् ॥७२॥
सूर्यप्रभाह्वयं चन्द्रप्रभाभिधानकं पुरम् ।
नित्य[1]प्रद्योतसंज्ञं च नित्याभाख्यं पुरं ततः ॥७३॥
विमुखाख्य पुरं नित्यवाहिसंज्ञमिमान्यपि ।
स्युः श्रेण्यां दक्षिणाख्यायां पञ्चाशत्सत् पुराणि च ॥७४॥
पुरं[2]बसुपुराभिख्यमर्जुनं चारुणाभिधम् ।
कैलासं वारुणं विद्युत्प्रभं किलिकिलित्पुरम् ॥७५॥
चूडामणिपुरं नामशशिप्रभपुरं ततः ।
विशाल पुष्पचूलाख्यं हंसगर्भं बलाहकम् ॥७६॥
शिवंकरं च श्री सौधं चमरं शिवमन्दिरम् ।
वसुमत्तापुरी नाम्नी ततो वसुमतीपुरी ॥७७॥
सिद्धार्थनगरी शत्रुञ्जयाभिधानिकापुरी ।
केतुमालेन्द्रकान्ता गगनानन्दिन्यशोकिका ॥७८॥
विशोकावीतशोकाख्या चालका तिलकापुरी ।
अपूर्वतिलका नाम्नी पुरी[3]मन्दिरसंज्ञिका ॥७९॥
कुमुदाख्यंपुरं कुन्दपुरं गगनवल्लभम् ।
दिव्यादि तिलकं पृथ्वी तिलकाख्यं पुरं ततः ॥८०॥
गन्धर्वाख्यं पुरंमुक्ताहारं च नैमिषाह्वयम् ।
अग्निजालं महाजालं श्रीनिकेतं जयाह्वयम् ॥८१॥
श्रीगृहं मणिवज्राख्यं भद्राश्वं च धनञ्जयम् ।
गोक्षीरफेनमक्षोभं शैलशेखरसंज्ञकम् ॥८२॥
पृथ्वीधरं पुरं दुर्गं दुर्धराख्यं सुदर्शनम् ।
पुरं महेन्द्रसंज्ञं विजयं सुगन्धिनामकम् ॥८३॥

---

१. प्रद्योति अ. ज २. वसुमुखाभिख्य अ ज. ३. मन्दर अ. ज.

पुरं वैरार्धनामाथरत्नाकराह्वयम् पुरम् ।
ततो रत्नपुरम् चेमानि पुराणि खगामिनाम् ॥८४॥
षष्टिः स्युरुत्तरश्रेण्यां शाश्वतानि शुभानि च ।
पश्चिमां दिशमारभ्य स्वःपुरा भान्यनुक्रमात् ॥८५॥
पुराणिदक्षिणश्रेण्यां प्रागुक्तानि भवन्ति वै ।
पञ्चाशत् पूर्वदिग्भागमादिं कृत्वा क्रमेण च ॥८६॥

अर्थ—(भरतैरावत सम्बन्धी विजयार्धो की पूर्व पश्चिम लम्बाई मे) दक्षिण श्रेणी पर विद्याधरो के रमणीक ५० नगर और उत्तर श्रेणी पर ६० नगर है। पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर दक्षिण श्रेणीगत ५० नगरो के नाम क्रमश इसप्रकार हैं:—१ किन्नाम, २ किन्नरगति, ३ नरगीत, ४ बहुकेतपुर, ५ पुण्डरीक, ६ सिंहध्वज, ७ श्वेतध्वज, ८ गरुडध्वज, ९ श्रीप्रभ, १० श्रीधर, ११ लोहार्गल, १२ अरिञ्जय, १३ वैरार्गल, १४ वैराख्य, १५ विगतोज्जपुर, १६ जय, १७ शकट, १८ चतुर्वक्र, १९ बहुमुख, २० अरजा, २१ विरजा, २२ रथनूपुर, २३ मेखलाग्रपुर, २४ क्षेमवर्य, २५ अपराजित, २६ कामपुर, २७ वियच्चर (गगनचर), २८ विजयचर, २९ शक्तपुर, ३० सञ्जयन्त, ३१ जयन्तपुर, ३२ विजय, ३३ वैजयन्त, ३४ क्षेमङ्कर, ३५ चन्द्राभ ३६ सूर्याभा, ३७ पुरोत्तम, ३८ चित्रकूट, ३९ महाकूट, ४० हैमकूट, ४१ त्रिकूट, ४२ मेघकूट, ४३ विचित्रकूट, ४४ वैश्रवणकूट, ४५ सूर्यप्रभ, ४६ चन्द्रप्रभ, ४७ नित्यप्रद्योत, ४८ नित्याभा, ४९ विमुख और अन्तिम ५० नित्यवाहनी नाम वाले ५० नगर दक्षिण श्रेणी पर है।

उत्तर दिशा मे पश्चिम श्रेणी से प्रारम्भ कर क्रमशः १ वसुपुर, २ अर्जुन, ३ अरुण, ४ कैलाश, ५ वारुणपुर, ६ विद्युत्प्रभ, ७ किलिकिलितपुर, ८ चूडामणि, ९ शशिप्रभ, १० विशालपुर, ११ पुष्पचूल, १२ हसगर्भपुर, १३ बलाहकपुर, १४ शिवङ्कर, १५ श्री सौधपुर, १६ चमरपुर, १७ शिव मन्दिर, १८ वसुमत्ता, १९ वसुमति, २० सिद्धार्थनगरी, २१ शत्रुञ्जयपुरी, २२ केतुमाल, २३ इन्द्रकान्तपुर, २४ गगननन्दिनी, २५ अशोकापुर, २६ विशोकापुर, २७ वीतशोकापुरी, २८ अलकापुरी, २९ तिलकापुरी, ३० अपूर्वतिलकापुरी, ३१ मन्दरपुरी, ३२ कुमुदपुर, ३३ कुन्दपुर, ३४ गगनवल्लभ, ३५ दिव्यतिलक, ३६ पृथ्वीतिलक, ३७ गन्धर्वपुर, ३८ मुक्ताहारपुर, ३९ नैमिषपुर, ४० अग्निजालपुर, ४१ महाजालपुर, ४२ श्रीनिकेतनपुर, ४३ जयावहपुर, ४४ श्रीवासपुर, ४५ मणिवज्रपुर, ४६ भद्राश्वपुर, ४७ धनञ्जयपुर, ४८ गोक्षीरफेनपुर, ४९ अक्षोभपुर, ५० शैलशेखरपुर, ५१ पृथ्वीधरपुर, ५२ दुर्गपुर, ५३ दुर्धरनगर, ५४ सुदर्शननगर, ५५ महेन्द्रपुर, ५६ विजयपुर, ५७ सुगन्धिनीनगर, ५८ वैरार्ध-

४ शाश्वतानि अ ज

पुर, ५९ रत्नाकरपुर और अन्तिम ६० रत्नाकर नाम वाले ६० नगर हैं। ये विद्याधरों के समस्त नगर रत्नमय हैं। पश्चिम दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः श्रेणीबद्ध उत्तर श्रेणी के ये ६० नगर शाश्वत, शुभ नाम वाले और स्वर्गपुरी की शोभा को धारण करने वाले है, इसी प्रकार पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूर्व कहे हुये दक्षिण श्रेणी के ५० नगर है ।।६५–८६।।

अब विद्याधरो के नगरों का सविस्तार वर्णन करते हैं:—

दण्डैकैकान्तरास्तिस्रो जलान्ताः खातिकाः शुभाः ।
प्रत्येकं नगराणां स्युर्मणिस्वर्णेष्टकाचिताः ।।८७।।
स्याच्चतुरस्रखातानां तासामन्तर्महीतले ।
चतुर्दण्डान्तरो रम्यो हेमरत्नेष्टकामयः ।।८८।।
मुरजैः कपिशीर्षैश्च रचिताग्रः पुराणि च ।
परितः शाश्वतस्तुङ्गः प्राकारो हि पृथक् पृथक् ।।८९।।
विष्कम्भचतुरस्राः स्युः शालाट्टलक पंक्तयः ।
त्रिंशच्चापान्तरास्तुङ्गा नानारत्नादि चित्रिताः ।।९०।।
उत्सेधसदृशारोहसोपानाश्चारुमूर्तयः ।
द्वयोरट्टालयोर्मध्ये रत्नतोरणभूषितम् ।।९१।।
पञ्चाशद्धनुरुत्सेधं गोपुरं विस्तृतं महत् ।
पञ्चविंशति दण्डैश्च कपाटयुगलाङ्कितम् ।।९२।।
इत्यादि रचनाढ्यानि पूर्वमुखस्थितानि च ।
दक्षिणोत्तर दीर्घाणि योजनैर्द्वादश प्रमैः ।।९३।।
पूर्वापरेण विस्तारान्वितानि नवयोजनैः ।
स्वः पुराणीव राजन्तेऽत्राखिलानि पुराण्यपि ।।९४।।
सहस्रगोपुरैः मार्गैः सहस्रद्वादशप्रमैः ।
शतपञ्चलघुद्वारैः सहस्रैकचतुःपथैः ।।९५।।
कोटिग्रामाभवन्त्यत्रनगरं प्रतिशाश्वताः ।
बहुखेटमटंबाद्या निवेशाश्च मनोहराः ।।९६।।
नगरादिषु सर्वेषु जिनसिद्धालयाः शुभाः ।
वनोपवन वाप्याद्याः स्युस्तुङ्गसौधपंक्तयः ।।९७।।

प्रागर्जितमहापुण्याविद्येशाश्चारुलक्षणाः ।
धर्मार्थादि विधातारो वसन्ति रत्नधामसु ।।९८।।

अर्थ —[विजयार्ध पर्वत की प्रथम श्रेणी विद्याधरो के (६०+५०)=११० नगरो से व्याप्त है] प्रत्येक नगर के चारो ओर मणियो से खचित स्वर्ण की ईटो से बनी हुई तथा जल से भरी हुई, एक एक धनुष के अन्तराल से तीन शुभ परिखाएँ (खाई) है। उन चारो परिखाओ के अन्दर भूमितल पर चार धनुष के अन्तर से जिनके शीर्ष पर बुरज व कगूरे है ऐसे स्वर्ण व रत्नमयी ईटो से बने हुए पुर है। जिनके चारो ओर शाश्वत उत्तुङ्ग, मेडियो की पक्तियो सहित चार धनुष चौडे पृथक् पृथक् प्राकार है। तीस धनुष अन्तराल से उत्तुङ्ग, नाना रत्नो से खचित उत्सेध के सदृश चढनेके लिए सुन्दर आकार वाली (सोपान) सीढियाँ है। दो दो छज्जो के बीच मे रत्न के तोरणो से विभूषित, कपाट युगलो से अलकृत, ५० धनुष ऊँचे और २५ धनुष विस्तृत गोपुरद्वार है। इन सब को आदि लेकर और अनेक प्रकार की रचनाओ से युक्त तथा पूर्व दिशा की ओर है मुख जिनके ऐसे दक्षिणोत्तर बारह योजन लम्बे और पूर्व पश्चिम ९ योजन चौडे समस्त नगर स्वर्गपुरी के सदृश शोभायमान होते है ।।८७-९४।। यहाँ के प्रत्येक नगर एक हजार गोपुर द्वारो से, पाच सौ लघुद्वारो से, एक हजार चतुःपथो, बारह हजार मार्गो, करोडो ग्राम, बहुखेट एव मटब आदि की रचनाओ से मनोहर है ।।९५-९६।। यहाँ के समस्त नगरो मे जिनेन्द्र भगवान् एव सिद्ध भगवान् के शुभ मन्दिर है तथा वन, उपवन, वापी आदि एव ऊँचे ऊँचे महलो की पक्तियाँ है। पूर्वोपार्जित महान् पुण्योदय से सुन्दर लक्षणो से युक्त विद्याधर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थो को करते हुये यहाँ रत्नो के महलो मे रहते है ।।९७-९८।।

विजयार्ध की द्वितीय श्रेणी का वर्णनः—

द्वितीयमेखलायां चाचलस्योभयपार्श्वयोः ।
प्रतोली[1]वेदिकाढ्यानि जिनालयान्वितानि च ।।९९।।
कल्पद्रुमादियुक्तानि पुराणि सन्त्यनेकशः ।
सौधर्मैशानयोराभियोगिकानां सुधाभुजाम् ।।१००।।

अर्थ —विजयार्ध पर्वत की द्वितीय श्रेणी के दोनो पार्श्व भागो मे प्रतोली और वेदिका आदि से सहित, जिनालयो से समन्वित तथा कल्पवृक्षो से युक्त अनेक नगर है। जिनमे सौधर्म ऐशान इन्द्रो के आभियोग (वाहन) जाति के देव निवास करते है ।।९९-१००।।

अब विजयार्ध के शिखर पर स्थित नव कूटो के नाम एव उनके विस्तार आदि का प्रमाण कहते हैः—

---

१ प्रतोल्या ज

शिखरेऽस्यातिरम्याणि नवकूटान्यमून्यपि ।
सिद्धायतन कूटं च दक्षिणार्धक नामकम् ॥१०१॥
कूटं खण्डप्रपाताख्यं पूर्णभद्रसमाह्वयं ।
विजयार्धाभिधं माणिभद्रं तिमिस्रसंज्ञकम् ॥१०२॥
उत्तरार्धख्यकं वैश्रवणं कूटान्यमून्यपि ।
नवोन्नतानि सक्रोशयोजनैः षट्प्रमाणकैः ॥१०३॥
मूलेऽमीषां च गव्यूत्यग्रषड्योजन सम्मिताः ।
मध्येसार्धद्वि गव्यूत्यग्रचतुर्योजनप्रमः ॥१०४॥
व्यासोस्ति नवकूटानांमूर्ध्नित्रियोजनप्रमः ।
आदौ च परिधिर्विंशतियोजनैश्चसम्मिता ॥१०५॥
मध्येतुल्या च किञ्चिन्न्यूनपञ्चदशयोजनैः ।
मस्तके योजनानां सविशेषा नवसंख्यकाः ॥१०६॥

अर्थः—विजयार्ध पर्वत के शिखर पर अत्यन्त रमणीक नौ कूट है। उनमे सब कूटों के (पूर्व-दिशा की ओर से) प्रथम सिद्धायतन कूट, २ दक्षिणार्ध (भरत) कूट, ३ खण्डप्रपात, ४ पूर्णभद्र, ५ विजयार्धकूट ६ माणिभद्र, ७ तिमिश्र, ८ उत्तरार्ध (भरत) कूट और (पश्चिम दिशा के अन्त में ६ वैश्रवण नाम का कूट है। ये सभी कूट ६¼ योजन ऊँचे, मूल मे ६¼ योजन, मध्य में अढाई कोस सहित ४ योजन और शिखर पर तीन योजन प्रमाण चौडे (एवं लम्बे) है। इन नव कूटो की प्रथम परिधि (कुछ कम) बीस योजन प्रमाण, मध्यम परिधि कुछ कम पन्द्रह योजन प्रमाण और मस्तक पर कुछ अधिक नौ योजन प्रमाण मानी गई है ॥१०१–१०६॥

सिद्धायतन कूट का वर्णन —

क्रोशायामो जिनेन्द्राणां क्रोशार्धविस्तरान्वितः ।
चैत्यालयश्चपादोनक्रोशोत्तुङ्गः स्फुरत्प्रभः ॥१०७॥
मणिस्वर्णमयैर्बिम्बैर्दिव्योपकरणैः परैः ।
प्राकारतोरणैर्नाना मण्डपाद्यैरलंकृतः ॥१०८॥
सङ्गीतनाटयशालाभिषेकक्रीडनसद्गृहैः ।
मणिमुक्ताफलस्वर्णमालाजालैश्चशोभितः ॥१०६॥

वनोपवनकेत्वाद्यैर्मङ्गलद्रव्यभूतिभिः ।
भासमानोऽस्ति सिद्धायतन'कूटोमनोहरः ॥११०॥

अर्थ:—विजयार्ध पर्वत के अग्रभाग पर पूर्व दिशा की ओर जिनेन्द्र भगवान का सिद्धायतन नाम का एक चैत्यालय है । जो देदीप्यमान प्रभा से युक्त, एककोस लम्बा, अर्धकोस चौडा और ¾ (पौन) कोस ऊँचा है । वह मन को मोहित करने वाला सिद्धायतन कूट मणि एवं स्वर्ण बिम्बो से समन्वित, कोट, नाना प्रकार के तोरण द्वार तथा मण्डप आदि से अलंकृत, सङ्गीतशाला, नाटयशाला, अभिषेक गृह एव उत्तम क्रीडागृह आदि से व्याप्त, मणियो, मुक्ताफलो और स्वर्ण मालाओ के समूहो से सुशोभित वन, उपवन आदि से वेष्टित और ध्वजा आदि मङ्गलद्रव्य रूपी विभूति से भासमान है ॥१०७-११०॥

अवशेष कूटो के स्वामीः—

शेष कूटस्थसौधेषु वसन्ति व्यन्तरामराः ।
स्व-स्वकूटोत्थ नामाढचा विश्वेषु दीप्तिशालिषु ॥१११॥

अर्थ—अवशेष समस्त कूटो पर स्थित अपनी दीप्ति से मनोहर भवनो में अपने अपने कूटो के सदृश नाम वाले व्यन्तर देव रहते है ॥१११॥

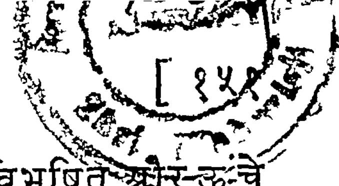
विजयार्ध सम्बन्धी वनो का विवेचन चार श्लोको द्वारा करते हैं—

वनं द्विक्रोशविस्तीर्णं नानाद्रुमाङ्कितं महत् ।
पूर्वापराब्धिपर्यन्तं स्यादस्योभयपार्श्वयोः ॥११२॥
द्विकक्रोशोन्नतापञ्चशतचापसुविस्तृता ।
बहुतोरणयुक्तात्र'दीप्तास्तिवनवेदिका ॥११३॥
वनमध्येपुराणिस्युर्व्यन्तराणां महान्ति च ।
सप्तभूमियुतोत्तुङ्ग रत्नधामाङ्कितान्यपि ॥११४॥
चैत्यालययुतान्युच्चैः शालाद्यलंकृतानि वै ।
इत्येषा वर्णनात्रैरावतरूप्याचले भवेत् ॥११५॥

अर्थ—विजयार्ध पर्वत के दोनो पार्श्व भागो मे पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त अर्थात् पर्वतों के बराबर ही लम्बे, दो कोस चौडे और नाना प्रकार के वृक्षो से सयुक्त महान् वन है । ये दोनो वन दो कोस ऊँची, ५०० धनुष चौड़ी, नाना तोरणो से युक्त और प्रकाशमान वनवेदिका से विभूषित है।

---

१. कूटे अ ज न   २ दीप्रा अ



उन वनों के मध्य में सात तलों वाले, उत्तुङ्ग, रत्नमयगृहों से व्याप्त, चैत्यालयों से विभूषित और ऊंचे ऊंचे कोटों आदि से अलंकृत व्यन्तर देवों के श्रेष्ठ नगर है। जैसा वर्णन भरतक्षेत्र स्थित विजयार्ध का किया गया है वैसा ही ऐरावत क्षेत्र में स्थित विजयार्ध पर्वत का जानना चाहिये ॥११२-११५॥

भरत क्षेत्र के छह खण्ड और आर्यों के स्वरूप का अवधारण करते हैं:—

अखिलं भारतं क्षेत्रं षट्खण्डीकृतमादिमम् ।
गङ्गासिन्धुनदीभ्यांस्याद्विजयार्धाचलेन च ॥११६॥
रूप्याद्रेर्दक्षिणे भागेह्युत्तरे लवणाम्बुधेः ।
गङ्गासिन्धुद्वयोर्मध्येऽस्त्यार्य खण्डं शुभाकरम् ॥११७॥
यत्रार्याः स्वर्गमोक्षादीन् साधयन्तितपोबलात् ।
स्वर्मुक्तिश्रीसुखाधारमार्यखण्डं तदुत्तमम् ॥११८॥

अर्थः—विजयार्ध पर्वत और गङ्गा सिन्धु इन दो नदियों के द्वारा समस्त भरतक्षेत्र के छह खण्ड होते है। इनमे विजयार्ध के दक्षिण में, लवण समुद्र के उत्तर में और गङ्गा सिन्धु इन दोनों नदियों के मध्य मे शुभक्रियाओ का आकर आर्यखण्ड है। स्वर्ग लक्ष्मी और मुक्ति लक्ष्मी के सुख का आधार यह उत्तम आर्य खण्ड ही है, अतः यहां आर्य जन अपने तपोबल से स्वर्ग और मोक्ष का साधन करते है ॥११६-११८॥

म्लेच्छखण्डो को अवस्थिति एव म्लेच्छो का स्वरूप कहते है —

तस्यपूर्वे परे भागे भरतार्धेऽचलोत्तरे ।
स्युः पञ्चम्लेच्छखण्डानि धर्माचारातिगानि च ॥११९॥
धर्मकर्मबहिर्भूता म्लेच्छानीचकुलान्विताः ।
वसन्तिविषयासक्तास्तेषुदुर्गतिगामिनः ॥१२०॥

अर्थः—आर्य खण्ड के पूर्व-पश्चिम भाग मे, अर्ध भरत क्षेत्र में विजयार्ध की उत्तर दिशा में धर्म आचरण से रहित पाँच म्लेच्छखण्ड है। जिनमे धर्म कर्म से बहिर्भूत, नीचकुल से समन्वित, विषयाशक्त और दुर्गति जाने वाले म्लेच्छ जीव रहते है ॥११९-१२०॥

आर्यखण्ड मे अयोध्यानगरी की अवस्थिति कहते है —

आर्यखण्डस्य मध्ये स्याद्गङ्गासिन्ध्वोस्तदन्तरे ।
अयोध्यानगरी चक्रवर्ति भोग्या परा भवेत् ॥१२१॥

अयोध्यालवणाम्बुध्योर्मध्येऽर्धचन्द्रसन्निभः ।
नानाजलचराकीर्णोपसमुद्रोस्तिचोर्मिभाक् ॥१२२॥

अर्थः—गङ्गा-सिन्धु नदियो के अन्तराल मे आर्यखण्ड है और आर्यखण्ड के मध्य में चक्रवर्ती राजाओ के द्वारा भोग्य श्रेष्ठ अयोध्या नगरी है, तथा अयोध्या और लवणसमुद्र के मध्य में नाना प्रकार के जलचर जीवो से आकीर्ण और कल्लोल मालाओ से व्याप्त अर्धचन्द्र के सदृश एक उपसमुद्र है ॥१२१-१२२॥

म्लेच्छखण्ड के मध्य मे स्थित वृषभाचल के स्वरूप का निरूपण करते हैः—

उत्तरे भारते क्षेत्रे म्लेच्छखण्डे च मध्यमे ।
योजनानां शतोत्सेधो मूलेशतैकविस्तृतः ॥१२३॥
विस्तीर्णो मध्यभागे स्यात् पञ्चसप्ततियोजनैः ।
पञ्चाशद्योजनव्यासो मस्तके शाश्वतो महान् ॥१२४॥
गतचक्रेशनामौघैश्चितो जिनालयाङ्कितः ।
वनतोरणसद्वेदी नानाभवन भूषितः ॥१२५॥
वृत्ताकारो हि चक्रेशगर्वहृद् वृषभाचलः ।
ऐरावतेऽप्ययं ज्ञेय ईदृशोऽद्रिः स्फुरत्प्रभः ॥१२६॥

अर्थः—उत्तरभरतक्षेत्रस्थ मध्यम म्लेच्छखण्ड के मध्य में चक्रवर्तियों के मान को मर्दन करने वाला वृत्ताकार एक वृषभाचल पर्वत है। जो १०० योजन ऊँचा, मूलमें १०० योजन विस्तृत, मध्य में ७५ योजन विस्तृत और शिखर पर ५० योजन विस्तृत, तथा भूतकालीन चक्रवर्तियो के नाम समूह से व्याप्त, जिनालय से अलकृत, वन, तोरणद्वार, उत्तमवेदी एवं अनेक भवनों से विभूषित, अकृत्रिम और महान है ॥१२३-१२६॥

जघन्य भोगभूमि का स्वरूप —

हिमवन्तमथोल्लङ्घ्य क्षेत्रं हैमवताह्वयम् ।
दशधाकल्पवृक्षाढ्यं जघन्यं भोगभूतलम् ॥१२७॥
मद्यवाद्यान्नदीपांगा वस्त्रभाजनदामदाः ।
ज्योतिर्भूषागृहांगाश्चदशधाकल्पशाखिनः ॥१२८॥
पात्रदानफलेनैते तत्रोत्पन्नार्यदेहिनाम् ।
ददतेदशधाभोगान् सारान्सङ्कल्पितान्परान् ॥१२९॥

अर्थः—हिमवान् पर्वत का उल्लङ्घन करने पर हैमवत नाम का क्षेत्र प्राप्त होता है, जिसमें शाश्वत जघन्य भोगभूमि है। जिसका भूमितल निरन्तर दशप्रकार के कल्पवृक्षों से व्याप्त रहता है। पात्र दान के फल से जो जीव यहाँ उत्पन्न होते है, उन आर्यो को १ मद्य (पानाङ्ग), २ वाद्य (तूर्याङ्ग), ३ अन्न (आहाराङ्ग), ४ दीपाङ्ग, ५ वस्त्राङ्ग, ६ भाजन (पात्राङ्ग), ७ दाम (पुष्पाङ्ग), ८ ज्योतिरङ्ग, ९ भूषणाङ्ग और १० गृहाङ्ग ये दस प्रकार के कल्पवृक्ष संकल्प मात्र से दस प्रकार के उत्तम भोग देते है॥ .२७-१२९॥

नाभिपर्वतों के नाम, प्रमाण, स्थान एवं स्वामी आदि का वर्णन करते है—

शब्दवान् प्रथमो नाभिगिरिर्विकृतिवांस्ततः।
गन्धवान् माल्यवानेते चत्वारो नाभिपर्वताः ॥१३०॥
सहस्रयोजनोत्सेधावृत्ताः सर्वत्र सन्निभाः।
सहस्रयोजनव्यासावनवेद्यादिभूषिताः ॥१३१॥
प्रत्येकं मूर्ध्निचैतेषांजिनेन्द्रभवनाङ्कितम्।
सप्तभूम्युन्नतैः सौधैर्वनवेदीसुतोरणैः ॥१३२॥
युतं स्यान्नगरं रम्यं व्यन्तराणां च शाश्वतम्।
क्षेत्रे हैमवते शब्दवानाद्यो नाभिपर्वतः ॥१३३॥
शब्दवान्नाभिशैलाग्र पुरे राजामरार्चितः।
स्वातिनामाऽमरोमान्यः पल्यैकायुष्कऊर्जितः ॥१३४॥
स्याद्धरिक्षेत्रमध्येविकृतिवान्नाभिसद्गिरिः।
तदद्रिस्थपुरेराजारुणप्रभामरोमहान् ॥१३५॥
रम्यकक्षेत्रमध्येस्याद्गन्धवान्नाभिपर्वतः।
तन्मूर्धस्थपुरेभूपः पद्मप्रभाह्वयः सुरः ॥१३६॥
स्याद्धैरण्यवतेवर्षेशैलो नाम्ना हि माल्यवान्।
तदग्रस्थपुरे स्वामी प्रभासाख्योऽमरोऽद्भुतः ॥१३७॥
ततोमहाहिमाद्रिं चोल्लङ्घ्यकल्पद्रुमाश्रितम्।
तृतीयं हरिसत्क्षेत्रं मध्यमं भोग-भूतलम् ॥१३८॥

अर्थ :—(शरीर के मध्य नाभि के सदृश जो पर्वत क्षेत्र के ठीक मध्य में स्थित रहते हैं उन्हें नाभिगिरि कहते है)। शब्दवान्, विकृतिवान्, गन्धवान् और माल्यवान् ये चार नाभि पर्वत है। वन एव वेदी आदि से विभूषित ये वृताकार (गोल) पर्वत १००० योजन ऊँचे और १००० योजन चौड़े

हैं। प्रत्येक नाभि पर्वतो के शिखर पर व्यन्तरदेवो के वन वेदी से वेष्टित, उत्तम तोरणो से युक्त, अत्यन्त रमणीक एव शाश्वत नगर हैं, जो जिन चैत्यालयो से अलकृत और सात तल ऊँचे श्रेष्ठ भवनों से युक्त है। हैमवत् क्षेत्र के मध्य मे प्रथम शब्दवान् नाम का नाभिपर्वत स्थित है। उस शब्दवान् नाभिपर्वत के शिखर पर स्थित नगर का राजा (हजारो) देवो से पूजित और एक पल्य की उत्कृष्ट आयु वाला स्वाति नाम का देव है ।।१३०–१३४।। हरिक्षेत्र के मध्य मे विकृति (विजटा) वान् नाभिगिरि अवस्थित है, जिसके शिखर पर स्थित नगर का राजा अरुणप्रभ नाम का श्रेष्ठ देव है। रम्यक क्षेत्र के मध्य मे गन्धवान् नाम का नाभिगिरि पर्वत है, जिसके शिखर पर स्थित नगर का राजा पद्मप्रभ नाम का देव है। इसीप्रकार हैरण्यवत् क्षेत्र के मध्य मे स्थित माल्यवान् नाभिगिरि है जिसके शिखर पर स्थित नगर का स्वामी प्रभास नाम का अद्भुत बलशाली देव है ।।१३५–१३७।।

महाहिमवान् पर्वत के बाद जो हरि नाम का तृतीय क्षेत्र है, उसमे शाश्वत मध्यम भोग भूमि है और उसकी भूमि निरन्तर कल्पवृक्षों को आश्रय देती है। अर्थात् कल्पवृक्षो से व्याप्त रहती है ।।१३८।।

विशेषार्थः—जम्बूद्वीप मे भरत, हैमवत्, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नाम के सात क्षेत्र है, जिनमे भरतैरावत क्षेत्रो के मध्य मे विजयार्ध (नाभिगिरि) पर्वत स्थित है और इन दोनो क्षेत्रो के आर्यखण्डो मे काल परिवर्तन के निमित्त से अस्थिर भोगभूमियों की और कर्म भूमि की रचना होती रहती है। म्लेच्छखण्ड शाश्वत रहते है। हैमवत और हैरण्यवत इन दो क्षेत्रो के मध्य में क्रमश शब्दवान् और माल्यवान् नाभिगिरि अवस्थित है, तथा इन क्षेत्रो मे शाश्वत जघन्य भोगभूमि की रचना है। हरि और रम्यक इन दो क्षेत्रो के मध्य मे क्रम से विकृतिवान् और गन्धवान् नाभिगिरि अवस्थित है, तथा इनमे शाश्वत मध्यम भोगभूमि की रचना है। विदेह क्षेत्र के मध्य मे सुदर्शन मेरु नाभिगिरि अवस्थित है। इस क्षेत्र मे देवकुरु, उत्तरकुरु, नाम की शाश्वत उत्तम भोगभूमियो के साथ साथ अन्य ३२ विदेह शाश्वत कर्मभूमि की रचना से युक्त है। विदेह क्षेत्र का सम्पूर्ण वर्णन आगे छठवे अधिकार मे किया जा रहा है।

अब इस अधिकार का सकोच करते है :—

एते सद्भरतादयोत्र विधिना वर्षास्त्रयो वर्णिताः,
व्यासाद्यैश्च यथा तथा बुधजनै रैरावताद्यास्त्रयः।
ज्ञेया. कर्मसुभोगभूमिकलिता आर्येतराद्यैश्रिताः,
पुण्यापुण्यफलप्रदाबहुविधाः सर्वज्ञदृग् गोचराः ।।१३९।।

अर्थ —इसप्रकार सर्वज्ञप्रभु के ज्ञानगोचर होने वाले भरत आदि तीन क्षेत्रो के व्यास आदि का उपर्युक्त विधि के अनुसार जैसा वर्णन किया है वैसा ही ज्ञानीजनो के द्वारा ऐरावत आदि तीन क्षेत्रो का भी जान लेना चाहिये। अनेक प्रकार के पुण्य और पाप के फल को प्रदान करने वाली ये कर्मभूमियाँ एव भोगभूमियाँ आर्य जनो से एवं अन्य जनो से निरन्तर व्याप्त रहती है ।।१३९।।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण —

सर्वज्ञान् श्रीगणेशान् श्रुतसकलकृतः संयतान्विश्ववन्द्यान्,
पञ्चाचारादि भूषांस्त्रिभुवनमहितान् पाठकान् ज्ञातविश्वान् ।
प्राप्तान्सर्वागपारं त्रिकसमयसुयोगोग्रदीप्तादि सर्वैः,
सारैर्युक्तांस्तपोभिस्तदसमगुणसिद्धयै च साधून् नमामि ।।१४०।।

इति सिद्धान्तसारदीपक महाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते चतुर्दश-महानदी, विजयार्ध, वृषभाद्रि नाभिगिरि वर्णनोनाम पञ्चमोऽधिकारः ।।५।।

अर्थः—विश्ववन्दनीय सर्व अरहन्तों को, द्वादशाग की रचना करने वाले गणधरदेवों को, सयम एव पञ्चाचार से विभूषित जगत् पूज्य आचार्यो को, द्वादशांग के पार पहुँच कर प्राप्त किया है समस्त तत्त्वो का ज्ञान जिन्होने ऐसे उपाध्यायों को तथा तीनों समयों (ऋतुओं) में उत्तम आतापन आदि योगों एवं उग्र और दीप्त आदि सारभूत सर्व तपों को धारण करने वाले साधु परमेष्ठियों को मैं उन अनुपम गुणो की सिद्धि के लिये नमस्कार करता हूँ ।।१४०।।

इसप्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम महाग्रन्थ में
चौदह महानदियों, विजयार्धो, वृषभाचलों और नाभिगिरि
पर्वतों का वर्णन करने वाला पाचवा
।। अधिकार समाप्त ।।



षष्ठोऽधिकारः

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञाः—

विदेहस्थान् जिनेन्द्रादीन् प्रणम्य परमेष्ठिनः ।
तन्मूर्त्यादींश्च वक्ष्येऽहं विदेहक्षेत्रमुत्तमम् ॥१॥

अर्थः—विदेह क्षेत्रो मे स्थित विद्यमान तीर्थङ्करो को, उन [अर्हन्तों] की प्रतिमाओ को तथा पञ्चपरमेष्ठियो को नमस्कार करके मैं उत्तम विदेह क्षेत्र को कहूँगा । अर्थात् विदेह क्षेत्र का विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा ॥१॥

विदेहक्षेत्रस्थ सुदर्शनमेरु का सविस्तार वर्णन —

तस्यमध्ये महामेरुः सुदर्शनाह्वयोमहान् [1] ।
नवाधिकनवत्या चोच्छ्रितःसहस्रयोजनैः ॥२॥
योजनानां सहस्रैककन्दस्त्रिक्षण ऊर्जितः ।
विचित्राकारसंस्थानोनाभिवद्भाति सुन्दरम् ॥३॥
सहस्रयोजनैर्वज्रमयश्चित्राधरान्तगः ।
नानारत्नमयो मध्ये स्यादेकषष्टिसम्मितैः ॥४॥
सहस्रयोजनैश्चाग्रेशातकुम्भमयोगिरिः ।
नित्यो [2] दीप्तोयमत्राष्टत्रिंशत्सहस्रयोजनैः ॥५॥

अर्थ —विदेह क्षेत्र के मध्य मे सुदर्शन नाम का एक श्रेष्ठ महामेरु है, जो ९९००० योजन ऊँचा, १००० योजन की जड वाला, अनादिनिधन, श्रेष्ठ, सुन्दर और नानाप्रकार के आकारो से युक्त तथा जम्बूद्वीप की नाभि के सदृश शोभायमान होता है । यह सुमेरु पर्वत चित्रा पृथ्वी के अन्त पर्यन्त अर्थात् मूल मे एक हजार योजन प्रमाण वज्रमय, मध्य मे इकसठ हजार योजन पर्यन्त अनेकों रत्नमय और अग्रभाग मे ३८००० योजन पर्यन्त देदोप्यमान स्वर्णमय एवं अकृत्रिम है ॥२-५॥

---

१ त्रिकाले २ दीप्तो अ ज न

अस्य विस्तर व्याख्यानं बालावबोधाय संस्कृतभाषया वक्ष्येः—

चित्राऽवनि भित्वा स्थितस्य मेरोः कन्दतले व्यासः नवत्यधिकदशसहस्रयोजनानि योजनैकादशभागीकृतानां दशभागाः, परिधिश्चैकत्रिंशत्सहस्रनवशतदशोत्तरयोजनानि योजनैकदशभागानां साधिकौ द्वौ भागौ। ततः क्रमह्रासेन पृथ्वीतलेऽस्य विस्तारः दशसहस्रयोजनानि, परिधिश्चैक त्रिंशत्सहस्रषट्शतकिञ्चिदूनत्रयोविंशतियोजनानि। ततः क्रमहान्या[1] तस्य पार्श्वे पञ्चशतयोजनान्यूर्ध्वं गत्वा पञ्चशतयोजन विस्तृतं नानापादपाद्याकीर्णं सुन्दरं नन्दनाख्यं वनं विद्यते। तत्र नन्दनवनसहित मेरोर्बाह्ये विष्कम्भः नवसहस्रनवशतचतुःपञ्चाशद्योजनानि, योजनैकादशभागाना षड्भागाः, परिधिश्चैक त्रिंशत्सहस्रचतुं शतैकोनाशीतियोजनानि। नन्दनवनादृते मेरोरभ्यन्तरे व्यास अष्टसहस्रनवशतचतुःपंचाशद्योजनानि योजनैकादशभागाना षड्भागाः, परिधिश्चाष्टाविंशतिसहस्रत्रिशतषोडशयोजनानि, योजनैकादशभागानां षड्भागा.[2], ततोस्य सार्धद्विषष्टि सहस्रयोजनान्यूर्ध्वं भागं मुक्त्वा तृतीय सौमनसाख्य वनं स्यात्। तेषा सार्धद्विषष्टिसहस्रयोजनाना मध्येऽयं मेरुः एकादशसहस्रयोजन पर्यन्त समपार्श्वो ऋजुर्भवति। ततः क्रमहान्या सार्धैक पञ्चाशत्सहस्रयोजनपर्यन्तमेप ह्रस्वोऽस्ति। तत्र पञ्चशतयोजनविस्तृतं तद्वनं मुक्त्वाऽस्याभ्यन्तरे विष्कम्भः द्विसप्तत्यधिकद्वात्रिंशच्छतयोजनानि, योजनैकादशभागानामष्टौ भागाः, परिधिश्च नवसहस्रनवशतचतुर्णवतियोजनानि, योजनैकादशभागानां षट्भागा। ततोऽस्य षट्त्रिंशत्सहस्रयोजनान्यूर्ध्वमतिक्रम्य चतुर्णवत्यग्रचतुःशतयोजनविस्तारं चतुर्थ पाण्डुकवन स्यात्।

तेषां षड्त्रिंशत्सहस्रयोजनानां मध्येऽयं एकादशसहस्रयोजनपर्यन्त हानिवृद्धिरहितः सर्वत्र सदृशोऽस्ति। तत. क्रमहान्या पञ्चविंशतिसहस्रयोजनान्त ह्रस्वो भवति। तत्रास्य मस्तके वनाङ्किते विस्तृतिः सहस्रयोजनानि परिधिश्च किञ्चिदग्र द्वि षष्ट्यधिकैक त्रिंशच्छतयोजनानि। तस्य शिरोमध्यभागे चत्वारिंशद्योजनोन्नता, मूले द्वादशयोजनव्यासा, मध्येऽष्ट योजनविस्तीर्णा मूर्ध्नि चतुर्योजनविस्तृता वैडूर्यरत्नमयी उत्तरकुरुभोगभूमिजार्य बालान्तरेण सौधर्म स्वर्गस्याद्यपटलस्थ[3]। मृजुविमानमस्पृशन्ती चूलिकास्ति।

मेरोः पूर्वापर दिग् भागयोः प्रत्येक द्वाविंशतिसहस्रयोजनायामं, दक्षिणोत्तरे सार्धद्विशतयोजनविस्तृतं नानापादपाकीर्णं रम्यं भूतले भद्रशालाख्य वन स्यात्। तत्रास्य चतुर्दिक्षु नानाविभूतिकलिताश्चत्वारः श्रीजिनालयाः सन्ति। तथा नन्दनसौमनसपाण्डुकवनानाम् प्रत्येक चत्वारश्चैत्यालयाभवन्ति। अमीषा चैत्यालयानां व्यासेनाग्रे व्याख्यान करिष्यामि।

नन्दनवनेऽस्यैशान्या दिशिशतयोजनोच्छ्रित, मूलेशतयोजनविस्तृत, मस्तके पञ्चाशद्योजनविष्कम्भं नानारत्नमयं वलभद्रनामकूटस्यात्। तस्योपरि विचित्रप्राकारगोपुरवनादि भूषितानि पुराणि सन्ति। तेषु प्रभुर्व्यन्तरामरो वलभद्राख्यो वसति। तस्मिन्नन्दनेवने मणिसंज्ञचारणाह्वयगन्धर्वाख्य चित्रनामानि, पञ्चाशद्योजनोत्सेधानि, त्रिंशद्योजनायामविष्कम्भानि, नानामणिविचित्रितानि मेरोश्चतुर्दिक्षु चत्वारि भवनानि सन्ति। तेषु प्रत्येक रूपलावण्यादिभूषिताः सार्धत्रिकोटिप्रमा दिक्कन्यावसन्ति।

---

१ क्रमहान्यैतस्य अ. ज. न.। २. अष्टौ भागा अ. ज. न.। ३. मुड्ड विमान अ. ज. न.

तेषा गृहाणा पतय रक्तकृष्णस्वर्णाभश्वेतवस्त्राद्यलकृता देववृन्दान्विता. सोम-यम-वरुण-कुबेराह्वयाः लोकपाला भवेयु ।

वज्राख्यवज्रप्रभसुवर्णसुवर्णप्रभनामानि पञ्चविंशति योजनोत्सेधानिपञ्चदशयोजनायाम विस्तराणि चत्वारिगृहाणि सौमनस वने मेरोश्चतुर्दिक्षु भवन्ति ।

लोहिताञ्जनहारितपाण्डुराह्वयानि सार्धद्वादशयोजनोन्नतानि सार्धसप्तयोजनदीर्घविस्तृतानि वरसिंहासनपल्यङ्कादि सहितानि, पञ्चवर्णरत्नमयानि चत्वारि भवनानि पाण्डुकवनेऽस्य पूर्वादिदिक्-चतुष्टये सन्ति । एतेषु अष्टभवनेषु प्रत्येक सार्धत्रिकोटि दिक्कुमार्यो वसन्ति । अमीषामष्टगृहाणा स्वामिनोजिनबिम्बाङ्कितशेखरा देववृन्दावृताः, रक्तकृष्णस्वर्णाभश्वेतवस्त्रनेपथ्याद्यलकृता , स्वयंप्रभारिष्टजलप्रभवर्गप्रभविमानवासिन सोमयमवरुणकुबेराख्याः सौधर्मेशान सम्बन्धिनो विख्याता लोकपाला-भवन्ति । सोमवरुणयोरायु सार्द्धपल्यद्वयं स्यात् । यमकुबेरयोरायु पादोनपल्यत्रय च ।

तत्रैव नन्दनवने पूर्वदिक् चैत्यालयस्य पार्श्वयोर्द्वयो नन्दनमन्दराख्ये द्वे कूटे भवत. । दक्षिणदिग्-भागस्थजिनालयस्य द्वि पार्श्वयोः निषधहिमवत्सञ्ज्ञे कूटे द्वे स्त । पश्चिमदिग् चैत्यालयस्योभयपार्श्वयोः रजतरुचकाह्वये द्वे कूटे स्याता । उत्तरदिग्जिनालयस्य द्वयोः पार्श्वयोः सागरवज्राभिधे कूटे भवतः । अमीषामष्टकूटाना उदयः पञ्चशतयोजनानि, भूव्यासः पञ्चशतयोजनानि, मध्यविस्तारः पञ्चसप्तत्य-धिकत्रिशतयोजनानि, मुखविष्कम्भ सार्धद्विशतयोजनानि । शिखरे च क्रोशायामा , अर्धक्रोशविस्तृता पादोनक्रोशोन्नता नानारत्नमयाः दिग्वधूना प्रासादा भवन्ति । तेषु प्रासादेषु मेघङ्करा-मेघवती-सुमेघा-मेघमालिनी-तोयन्धराविचित्रा-पुष्पमालिन्यनन्दिताख्या , दिक्कुमार्यो वसन्ति । एव सर्वकूटदिग्वधूप्रासा-दानन्दनवनवत्सौमनसवने भवन्ति ।

मेरोराग्नेयदिग्भागे उत्पला-कुमुदा-नलिन्यु-त्पलोज्ज्वलाऽह्वयाश्चतस्रो वापिका भवेयु । नैर्ऋत्यदिशि भृङ्गा-भृङ्गनिभा-कज्जला-कज्जलप्रभाख्याश्चतस्रो वाप्य. सन्ति । वायुदिग्भागे श्रीभद्रा[1]श्रीकान्ताश्रीमहिताश्रीनिलयाभिधावापिकाः स्यु । ऐशानीदिशि नलिनी-नलिन्यूर्मि-कुमुदा-कुमुदप्रभासञ्ज्ञा-श्चतस्रो वाप्यो भवन्ति ।

एतामणितोरणवेदिकादि मण्डिता, विचित्ररत्नसोपाना , पञ्चाशद्योजनायामाः, पञ्चविंशतियोजन विस्तृता , दशयोजनावगाहाः, चतुष्कोणा षोडश वाप्यो हस-सारस-चक्रवाकादि ध्वानैस्तरा विभान्तिम्म । तासा सर्वासा वापीना मध्यभागे सार्धद्विषष्टियोजनोत्सेधाः, क्रोशाधिकैकत्रिंशद्योजनायाम-विस्ताराः, सिंहासनसभास्थानाद्यलकृताः, द्विक्रोशावगाहा, रत्नमयाः प्रासादा सन्ति । तेषु आग्नेय-

१. श्रीप्रभा न

नैऋत्यदिक्स्थित प्रासादेषु सौधर्मेन्द्रः स्वामी लोकपालादि देव शचीभिः समं विविधां क्रीडां करोति। वायव्यैशान दिग्भागस्थ गेहेष्वैशानेन्द्रः पतिः देव्यादिभिश्चमुदा क्रीडति। यथात्रनन्दनवनेवापीप्रासादाः सौधर्मैशानेन्द्रयोर्वर्णिता. तथोक्तक्रमेणवापीप्रासादा सर्वे सौमनसवनेऽपि भवन्ति नात्रकश्चिद्विशेषः।

पाण्डुकवने चूलिकायाः प्रदक्षिण ऐशानादि विदिक्षुशतयोजनायामा पञ्चाशद्योजनविस्तीर्णाः अष्टयोजनोन्नताः अर्धचन्द्रोपमा रत्नतोरणवेदिकाद्यलङ्कृताः स्वस्वक्षेत्रसन्मुखाः स्फुरत्तेजोमयाः पाण्डुकशिलाद्याश्चतस्रोदिव्याः शिलाः सन्ति। तासामाद्या स्वर्णवर्णा पूर्वापरदीर्घा भरतक्षेत्रोत्पन्नतीर्थंकराणां जन्मस्नान पीठिका पाण्डुकशिला भवति। द्वितीया अर्जुनच्छाया दक्षिणोत्तरदीर्घा अपरविदेहजजिनेंद्राणां जन्माभिषेक पीठिका पाण्डुकम्बलाख्या आग्नेयदिशि शिलाऽस्ति। तृतीया तपनीयनिभापूर्वापरदीर्घा, ऐरावतवर्षज तीर्थंकृज्जन्माभिषेकनिबद्धा रक्ताह्वया नैऋत्यदिग्भागे शिला स्यात्। चतुर्थीपद्मवर्णा दक्षिणोत्तरदीर्घा पूर्वविदेहजातश्रीजिनानां जन्मस्नानहेतुभूतावायुदिग्भागे रक्तकम्बलाख्याशिलाविद्यते। आसा चतुः शिलानामुपरिप्रत्येकं स्फुरद्रत्नमयानि त्रीणि सिंहासनानि भवन्ति। तेषा सिंहासनाना मध्यस्थ सिंहासनं पञ्चशतधनुस्तुंगं, पञ्चशतचापभूविस्तृत सार्धं द्विशतदण्डाग्रव्यास तीर्थकृता जन्माभिषेकस्थित्यै स्यात्। दक्षिणदिग्भागस्थित सिंहासनं जिनाभिषेक समये सौधर्मेन्द्रस्योपवेशनाय भवति। उत्तरदिशास्थहरिविष्टरं तीर्थकृज्जन्माभिषेचनसमये ऐशानेन्द्रस्य संस्थितयेऽस्ति।

घण्टासिंहनाद शङ्खस्वरभेरीध्वानासन कम्पनादि चिन्हैर्जिनोत्पत्ति विज्ञायकल्पवासिज्योतिष्कभवनवासिव्यन्तरवासवाः, परया भूत्या छत्र ध्वजविमानाद्यैर्नभोगणमाच्छादयन्त, नाना पटहादिध्वानैर्बधिरीकृत दिग्मुखा, तोर्थकृज्जन्माभिषेकोत्सवाय सानन्दा., धर्मरागरसोत्कटा मेरुं प्रति स्वस्थानादागच्छन्ति। तस्मिन् जन्माभिषेक समये इन्द्राणा मुख्यः सामरः ऐरावतगजेन्द्रारूढः त्रिभिः [तिसृभि.] परिषद्भिः सप्तानीकैश्चालङ्कृत सौधर्मेंद्रः स्वर्गादत्रायाति। अस्येन्द्रस्य प्रथमायामभ्यन्तरायां परिषदि दिव्यरूपाननाः प्रहरणाभरणाद्यलङ्कृताः, द्वादशलक्षदेवा भवन्ति। मध्यमपरिषदिचतुर्दशलक्षा सुराः, बाह्यपरिषदि षोडशलक्षनिर्जराः भवेयु। अन्तर्मध्यबाह्यपरिषदां क्रमेण रवि-शशि-यदुपामहत्तरमराः सन्ति। वृषभरथतुरगगजनृत्यानीकगन्धर्वभृत्यनामानि प्रत्येक सप्तसप्तकक्षायुतानि, सप्तानीकानि प्रथमदेवराजस्य पुरो महताडम्बरेण जन्माभिषेक समये व्रजन्ति। आद्य कक्षायां शख कुन्देन्दु धवलाश्चतुरशीतिलक्षाः वृषभाः गच्छन्ति। अष्टषष्टिलक्षैककोटि वृषभाः जपापुष्पाभाश्चद्वितीय कक्षाया यान्तिस्म। तृतीयानीके नीलोत्पल सन्निभा षट्त्रिंशल्लक्षत्रिकोटि वृषभाश्च। चतुर्थानीके द्विसप्ततिलक्षषट्कोटिवृषभाः मरकतमणिवर्णाश्च। पञ्चम्या कक्षाया कनकनिभाश्चत्वारिंशल्लक्षत्रयोदशकोटिवृषभाश्च। षष्ठ्या अञ्जनाभाः अष्टाशीतिलक्षषड्विंशतिकोटिवृषभाश्च। सप्तमानीके किंशुककुसुमप्रभा. षट्सप्ततिलक्षत्रिपञ्चाशत्कोटिवृषभाव्रजन्ति। ध्वनन्नानापटहादि तूर्यान्तरिताः घण्टाकिंकिणीवरचामरमणिकुसुममालाद्यलंकृताः, रत्नमयमृद्वासनाः, देवकुमारैर्वाहिता षडधिकशतकोट्यष्टषष्टिलक्षप्रमाः, दिव्यरूपाः सप्तकक्षान्विताः सर्वेवृषभास्तस्मिन्महोत्सवे व्रजन्ति।

यथैता द्विगुणद्विगुणसंख्या' सप्तवृषभानीकाना वर्णिताः तथाशेषरथादिषडनीकानां समान-संख्याः ज्ञातव्या ।

आद्ये अनीके शशितुषाराभा धवलातपत्रालकृता धवलरथा गच्छन्ति । द्वितीये वैडूर्यमणि-विनिर्मितचतुश्चक्रविराजमाना मन्दारकुसुमनिभा महारथाश्च । तृतीये कनकातपत्रचमरध्वजाङ्किताः, निष्टप्तकाञ्चननिर्मितारथाश्च । चतुर्थेमरकतमणिमय बहुचक्रोत्पन्नशब्दगम्भीरा , दूर्वावर्णारथाश्च । पञ्चमे कर्के[1]तमणिजातबहुचक्रोत्पन्न सत् स्वरा , नीलोत्पलदलाभारथाश्च । षष्ठे पद्मरागमणिघटित चारुचक्रधरा कमलवर्णा रथाश्च । सप्तमे अनीके शिखिकण्ठवर्णमणिगणोत्थकिरणपिञ्जरिताः इन्द्रनीलमणिप्रभाः महारथा गच्छन्ति । एते सप्त सेनान्विता', बहुदेवदेवीपूर्णा , वरचमरछत्रकेतुकुसुम-मालादिभासमाना , कक्षान्तरान्तर ध्वनन्नानादेवानका नभस्तलमाच्छादयन्त उत्तुङ्गाः पृथुरथा जिन-जन्माभिषेकोत्सवे शक्रस्य महतापुण्येन पुरः व्रजन्ति ।

प्रथमाया अश्वसेनाया क्षीराब्धितरङ्गनिभाः, सितचामरालकृता धवलाश्वा गच्छन्ति । द्विती-याया उदयभानुसन्निभाश्चलद्वरचामरास्तुरङ्गाश्च । तृतीयाया निष्टप्तकनकसमखुरोत्थरेणु पिञ्जरिता गोरोचनवर्णा अश्वाश्च । चतुर्थ्या मरकतमणिवर्णाः शीघ्रगामिनोऽश्वा गच्छन्ति । पचम्यां रत्नाभरण-भूषिता, नीलोत्पलपत्राभाहयाश्च । षष्ठ्या जपापुष्पवर्णा अश्वाश्च । सप्तम्या सेनाया इन्द्रनीलप्रभाघोटका यान्ति । एते सप्तसेनान्विता', नानाभरणभूषिता , स्वस्वसेनाऽग्रोत्थवाद्यरवान्तरिता, वररत्नासना, देव-कुमारैर्वाहिता, दिव्योन्नतकाया', अश्वास्तज्जन्माभिषेकोत्सवे गच्छन्ति ।

चतुरशीतिलक्षप्रमा गोक्षीरवर्णा आदिमे गजसैन्येपर्वतसमोन्नत पृथुदेहा गजा व्रजन्ति । द्वितीये भानुतेजसस्तद्द्विगुणा दन्तिनश्च । तृतीये तेभ्यो द्विगुणा निष्टप्तकनकाभागजाश्च । चतुर्थे सर्षप-कुसुमवर्णास्तद्द्विगुणा वारणाश्च ।

पचमेतेभ्यो द्विगुणा नीलोत्पलाभा-गजाश्च । षष्ठे तद् द्विगुणा जपापुष्पप्रभा दन्तिनश्च सप्तमे सैन्ये षट्सप्ततिलक्षत्रिपचाशत्कोटिगणना, अजनाद्रिसमतेजसो हस्तिनोव्रजन्ति । एते सर्वे एकत्रीकृताः षडग्रशतकोटयष्टपष्टि लक्षसंख्याना- सप्तसेनान्विता उत्तुङ्गदन्तमुसला, गुडुगुडुगर्जन्तो गलन्मदलिप्तागा , प्रलम्बित-रत्नघण्टाकिंकिणीकुसुमदामशोभिता, नानापताकाछत्रचमरमणिकनकरज्ज्वाद्यलकृताः अत-रान्तरध्वनद्देवानका, वरदेवदेव्यारोहिताश्चलद्गिरिसमोन्नतमहादिव्यदेहा गजेन्द्रास्तस्मिन् जिन-जन्मोत्सवे सौधर्मेंद्रस्य प्रवर पुण्यफलं लोकाना दर्शयन्त इव स्वर्गान्मेरु प्रत्यागच्छन्ति ।

प्रथमे नर्तकानीके विद्याधर कामदेव राजाधिराजाना चरित्रेणनटन्तोऽमरा गच्छन्ति । द्वितीये सकलार्ध महामण्डलीकाना वरचरित्रेण नर्तन कुर्वन्त सुराश्च । तृतीये बलभद्रवासुदेवप्रतिवासुदेवाना

---

१. कर्केतन अ न

वीर्यादिगुणनिबद्धचरित्रेण नृत्यन्तो देवा गच्छन्ति। चतुर्थे चक्रवर्तिनां विभूति वीर्यादिगुणनिबद्ध-चरित्रेण महानर्तन भजन्तोऽमराश्च। पञ्चमे चरमागर्यतिलोकपाल सुरेन्द्राणा गुण-रचितचरित्रेण नटन्तो निर्जराश्च। षष्ठे गणधरदेवाना ऋद्धिज्ञानदि गुणोत्पन्नवरचरित्रेण तद्गुण-रागरसोत्कटाः परं नृत्य कुर्वाणाः सुराः यान्ति। सप्तमे नर्त्तकानीके तीर्थकराणा चतुस्त्रिंशदतिशयाष्ट-प्रातिहार्यानन्तज्ञानादिगुणरचितचरित्रेण तद्गुणरागरसोत्कटा नाकिनः प्रवर नर्त्तन प्रकुर्वन्तो गच्छन्ति। अमी सप्तानीकाश्रिता महानृत्यविशारदा., सानन्दा, दिव्यवस्त्राभरणभूषिता, महारूपा नटन्तो नर्त्तका-मराः मेरुं प्रत्युत्पतन्ति।

अमोभिः सप्तस्वरै र्जिनेन्द्रगणधरादि गुणनिवद्धानि नानामनोहरगीतानि गायन्तो दिव्यकण्ठा वस्त्राभरणमण्डिता गन्धर्वामरास्तस्मिन् जिनजन्ममहोत्सवे सप्तानीकान्विता गच्छन्ति। आद्ये अनीके षड्ज स्वरेण जिनेन्द्रगुणान् गायन्त, द्वितीये ऋषभस्वरेण च गानं कुर्वन्तस्तृतीये गान्धारनादेन गायन्तो गन्धर्वा गच्छन्ति। चतुर्थे मध्यमध्वनिना जन्माभिषेकसम्बन्धिगीतान् गायन्तः। पञ्चमे पञ्चमस्वरेण गानं कुर्वाणाः। षष्ठे धैवतध्वानेन च गायन्त., सप्तमे निषादघोषेणकल गीतगान कुर्वन्तो गन्धर्वा व्रजन्ति। एते स्वस्वदेवीयुताः सप्तानीकाश्रिताः किन्नरै किन्नरीभिश्च सार्धं वीणामृदङ्गझल्लरीतालादिभिर्जिन-जन्माभिषेकोत्सवेगुणगणैः रचितानि, बहुमधुरशुभमनोहरगीतानि गायन्तो धर्मरागरसोत्कटा गन्धर्व-सुरास्तन्महोत्सवे व्रजन्ति।

तत सप्तसेनान्विता दिव्याभरणालकृता अनेकवर्णध्वजछत्रारोपितकरा देवभृत्या गच्छन्ति। प्रथमायां सेनायां अञ्जनप्रभा ध्वजकराङ्किता भृत्यामरा यान्ति। द्वितीयाया मणिकाञ्चनदण्डशिखर-स्थचलच्चमरान्वितनीलध्वजारोपितपाणयो भृत्याश्च। तृतीयाया वैडूर्यदण्डाग्रस्थधवलकेतुकृतकरा देवाश्च। चतुर्थ्यां करिसिंहवृषभदर्पण शिखिसारस गरुडचक्रविरूपाकार कनकध्वजाश्रितमरकतमणि-दण्डगृहीतहस्ताः भृत्यसुरा व्रजन्ति। पञ्चम्यां विकसित कमलाभपद्मध्वजारोपितविद्रुममणिमयतुंग-दण्डाङ्कितकराश्च। षष्ठ्यांगोक्षीरवर्णश्वेतपताकाश्रितकनकदण्डयुक्तकराश्च, स्फुरन्मणिगणनिबद्धदण्डा-ग्रस्थैर्मुक्तादामालंकृतछत्रनिवहैर्धवलवर्णैर्युतपाणयो भृत्यामराः सप्तम्या सेनायां गच्छन्ति। एते सप्तानो-काङ्किता, जिनभक्तिपरायणा भृत्यामरा सोद्यमास्तन्महोत्सवे प्रयान्ति। अमी षट्सैन्यानां पिण्डीकृताः सर्वे द्विनवति लक्षद्विपञ्चाशत्कोटिप्रमाणास्तस्मिन् महोत्सवे गच्छन्तो मरुद्वशात् (द्) दिव्याध्वजा-स्तरांराजन्ते। पट्सप्ततिलक्षत्रिपचाशत् कोटिप्रमाः श्वेतछत्राश्च। एते सर्वे वृषभादिभृत्यदेवाता एकोन-पचाशदनीकानामेकत्रीकृता सप्तगतषट् चत्वारिंशत्कोटिपट्सप्ततिलक्षा भवन्ति।

यथैता सप्तविधाः सेनाः सौधर्मेन्द्रस्यात्र जिनजन्ममहोत्सवे आगच्छन्ति। तथा सर्वेन्द्राणां प्रत्येकं सप्तसेना स्वस्व सामानिकाद्द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति च आयान्ति। इत्युक्त सेनात्रिपरिषदावृतः सौधर्मेन्द्र ऐरावत गजेन्द्रं शच्यासममारुह्य महामहोत्सवेन स्वर्गान् जिनजन्मकल्याणनिष्पत्त्यै निर्गच्छति। अंगरक्षाः नानायुधालंकृताः सुरेश परितः निर्यान्ति। प्रतीन्द्रसामानिक त्रायस्त्रिंशल्लोकपालाद्याः शेषा-मरा इन्द्रेण सह दिवो मेरुं प्रत्यागच्छन्ति।

अब मन्दबुद्धिजनों को समझाने के लिये इस सुमेरु पर्वत का निरूपण विस्तार पूर्वक किया जा रहा है:—

सुदर्शन मेरु की जड चित्रा पृथ्वी को भेद कर एक हजार योजन नीचे तक गई है। जड-नीव के नोचे मेरु का व्यास १००९०$\frac{१०}{११}$ योजन और इसकी परिधि का प्रमाण ३१९१०$\frac{२}{११}$ योजन (कुछ अधिक) है। इसके बाद क्रम से हीन होता हुआ (एक हजार की ऊँचाई पर) पृथ्वीतल पर मेरु की चौडाई १०००० योजन और परिधि का प्रमाण कुछ कम ३१६२३ योजन है। इसके वाद क्रमश. हानि होते हुये मेरु के दोनो पार्श्वभागो मे ५०० योजन ऊपर जाकर ५०० योजन विस्तार वाला नानाप्रकार के वृक्षो से व्याप्त एक सुन्दर नन्दन नाम का वन विद्यमान है। वहाँ नन्दनवन सहित मेरु का बाह्य-विष्कम्भ ९९५४$\frac{६}{११}$ योजन है। जिसकी परिधि ३१४७९ योजन प्रमाण है। नन्दनवन के विना मेरु-पर्वत का अभ्यन्तर व्यास ८९५४$\frac{६}{११}$ योजन और परिधि २८३१६$\frac{६}{११}$ योजन है। इसके बाद मेरु पर्वत पर ६२५०० योजन ऊपर जाकर तृतीय सौमनस नाम का सुन्दर वन है। उन ६२५०० योजन के मध्य अर्थात् नन्दनवन के मध्य से मेरु की चौडाई ११००० योजन ऊपर तक दोनो पार्श्वभागो मे समान रूप से जाती है। इसके वाद ५१५०० योजन की ऊँचाई पर्यन्त मेरु की चौडाई मे क्रमश हानि होती जाती है। इसके बाद वहाँ मेरु की चौडाई को युगपत ५०० योजन अर्थात् दोनो पार्श्वभागो मे १००० योजन कम हो जाने से वहाँ मेरु के अभ्यन्तर विष्कम्भ का प्रमाण ३२७२$\frac{८}{११}$ योजन और वही की परिधि का प्रमाण ९९९४$\frac{६}{११}$ योजन प्रमाण है। इस सौमनस वन से ३६००० योजन ऊपर जाकर ४९४ योजन व्यास वाले चतुर्थ पाण्डुकवन की प्राप्ति होती है। उन ३६००० योजनो के मध्य अर्थात् सौमनस वन के मध्य से ११००० योजन की ऊँचाई पर्यन्त मेरु का व्यास हानिवृद्धि से रहित सर्वत्र सदृश ही है। इसके वाद अर्थात् समरुन्द्र (समान चौडाई) के ऊपरी भाग से २५००० योजन की ऊँचाई पर्यन्त क्रमिक हानि द्वारा ह्रस्व होता जाता है। वहाँ पर अर्थात् (सौमनसवन से ३६००० योजन ऊपर) मेरु के मस्तक पर पाण्डुकवन सहित मेरु का विस्तार १००० योजन और उसकी परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन प्रमाण प्राप्त होती है। मेरु के इस १००० योजन विस्तार वाले पाण्डुक वन के अर्थात् मेरु के शिखर के मध्य भाग मे ४० योजन ऊँची, मूल मे १२ योजन चौडी, मध्य मे ८ योजन चौडी और शिखर पर ४ योजन चौडी, वैडूर्यरत्नमयी तथा उत्तरकुरु भोगभूमिज आर्य के एक बाल के अत-राल से स्थित सौधर्म स्वर्ग के प्रथम पटलस्थ ऋजुविमान को स्पर्श नही करने वाली चूलिका है।

सुमेरु पर्वत की मूल पृथ्वी (भूमि) पर भद्रशाल नाम का एक अत्यन्त रमणीय वन है। जो अनेक प्रकार के वृक्षो से व्याप्त है, तथा जिसकी पूर्व दिशा गत चौडाई २२००० योजन, पश्चिम दिशा-गत चौडाई २२००० योजन, उत्तर दिशागत चौडाई २५० योजन और दक्षिण दिशागत चौडाई भी २५० योजन प्रमाण है। (इन वन का आयाम विदेह क्षेत्र के विस्तार बराबर है। ज० द्वी० प० ४/४३)

वहाँ भद्रशालवन की चारों दिशाओं में अनेक प्रकार की विभूतियों से युक्त चार जिनालय हैं। इसी प्रकार नन्दन, सौमनस और पाण्डुक इन प्रत्येक वनों में भी चार-चार चैत्यालय है। इन चैत्यालयों के व्यास आदि का विवेचन मै (आचार्य) आगे करूँगा।

नन्दनवन की ऐशान दिशा में सौ योजन ऊँचा, मूल मे सौ योजन चौडा, और शिखर पर ५० योजन चौडा अनेक रत्नमय बलभद्र नामका एक कूट है। उस कूट के ऊपर अनेक प्रकार के कोट, प्रतोलिका, गोपुरद्वार एवं वन आदि से वेष्टित नगर है। जिनका अधिपति बलभद्र नाम का व्यन्तरदेव है, जो वहीं रहता है। नन्दन वन में मेरु की पूर्वादि चारों दिशाओं में मानी, चारण, गन्धर्व और चित्र नाम के भवन हैं। जो ५० योजन ऊँचे और ३० योजन चौड़े तथा नाना प्रकार की मणियों से खचित है। इन भवनों के स्वामी क्रमश. रक्त, कृष्ण, स्वर्ण और श्वेत वर्ण के आभूषणों से अलंकृत तथा देव समूह से समन्वित सोम, यम, वरुण और कुवेर है। इन प्रत्येक लोकपालों की रूप लावण्य आदि से विभूषित साढ़े तीन करोड़ व्यन्तर जाति की दिक्कन्याएँ है।

विशेषार्थः—नन्दनवन मे मेरु की पूर्व दिशा में मानी नामका भवन है, जिसमें रक्तवर्ण के अलङ्कारों से अलंकृत सोम लोकपाल साढे तीन करोड दिक्कुमारियों के साथ रहता है। दक्षिण के चारण भवन में कृष्णवर्ण के अलङ्कारो से सुशोभित यम लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड दिक्कुमारियों के साथ रहता है। पश्चिम दिशा सम्बन्धी गन्धर्व नामक भवन में स्वर्णाभा सदृश आभूषणों से विभूषित वरुण लोकपाल अपनी साढ़े तीन करोड़ दिक्कुमारियों के साथ और उत्तर दिशा सम्वन्धी चित्र नामक भवन में श्वेतवर्ण के आभूपणो से युक्त कुवेर नाम का लोकपाल अपनी साढे तीन करोड़ दिक्कन्याओं के साथ निवास करता है।

सौमनसवन में मेरु की चारों दिशाओं में क्रमशः वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्ण और सुवर्णप्रभ नाम के चार भवन है। जो पच्चीस योजन ऊँचे और पन्द्रह योजन चौडे है।

पाण्डुकवन में मेरु की चारों दिशाओं में उत्कृष्ट सिहासन एवं पल्यङ्क आदि से सहित पंचवर्ण के रत्नमय क्रमशः लोहित, अंजन, हारित और पाण्डु नाम के चार भवन है। जो १२½ योजन ऊँचे और ७½ योजन चौडे है। इन उपर्युक्त आठों भवनों में से प्रत्येक में साढे तीन करोड दिक्कुमारियाँ निवास करती है। इन आठो गृहो के स्वामो जिनविम्ब के चिह्न से चिह्नित मुकुट वाले, देव समूह से वेष्टित तथा क्रमशः रक्त, कृष्ण, स्वर्ण और श्वेत वस्त्र एवं अलङ्कारों से अलकृत, क्रमानुसार स्वयंप्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ और वर्गप्रभ (कल्प) विमानो में निवास करने वाले तथा सौधर्मैशान इन्द्रों के सम्वन्ध को प्राप्त सोम, यम, वरुण और कुवेर नाम के लोक प्रसिद्ध चार लोकपाल हैं। इनमें सोम और यम लोकपालों की आयु २½ पल्य तथा वरुण और कुवेर की आयु पौने तीन (२¾) पल्य प्रमाण है।

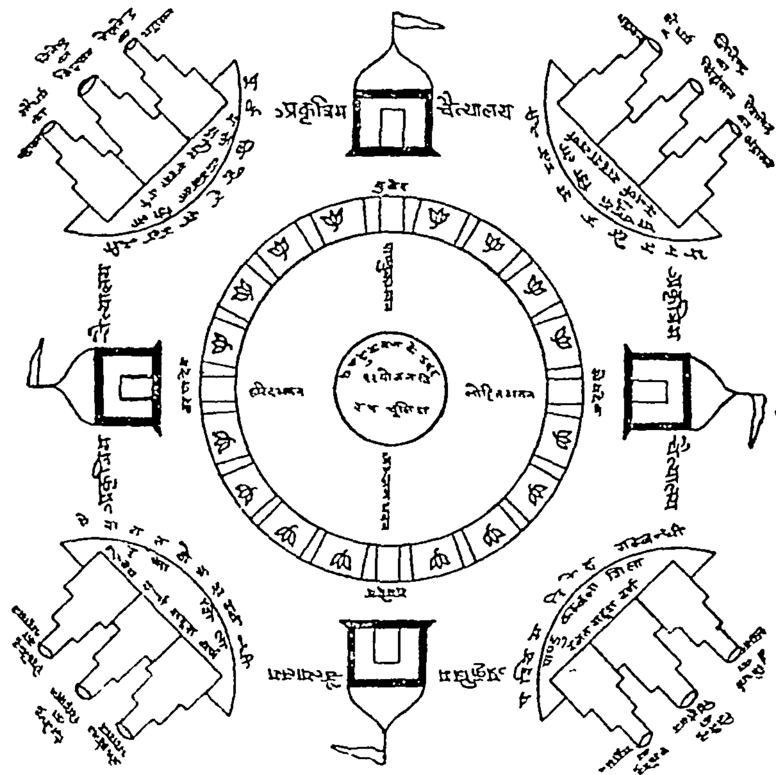
वहाँ नन्दनवन मे पूर्वदिशा स्थित चैत्यालय के दोनो पार्श्व भागो मे नन्दन और मन्दर नाम के दो कूट है। दक्षिण दिशा स्थित चैत्यालय के दोनो पार्श्व भागो में निषध और हिमवत् नाम के दो कूट है। पश्चिम दिशा सम्बन्धी चैत्यालय के दोनो पार्श्व भागो मे रजत और रुचक नाम के दो कूट है तथा उत्तर दिशा सम्बन्धी जिनालय के दोनो पार्श्व भागो मे सागर और वज्र नाम के दो कूट है। इन आठो कूटो की ऊँचाई ५०० योजन, भूव्यास ५०० योजन, मध्य व्यास ३७५ योजन और मुख व्यास २५० योजन प्रमाण है। इन कूटो के शिखरो पर दिक्कुमारियो के एक कोस लम्बे, अर्धकोस चौडे और पौन कोस ऊँचे तथा नानाप्रकार के रत्नमय भवन बने है। इन आठो भवनो मे क्रमशः मेघङ्करा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयन्धरा, विचित्रा, पुष्पमालिनी और अनन्दिता नाम की दिक्कुमारियाँ निवास करती है। इसप्रकार नन्दन वन के समान सर्वकूट, दिक्कुमारियो के भवन आदि सौमनस वन मे भी है।

(नन्दनवन मे) मेरुपर्वत की आग्नेय दिशा मे उत्पला, कुमुदा, नलिनी और उत्पलोज्ज्वला नाम की चार वापिकाएँ है। नैऋत्य दिशा मे भृङ्गा, भृङ्गनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा नाम की चार वापिकाएँ है। वायव्य दिशा मे श्रीभद्रा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता और श्रीनिलया नाम की चार वापिकाएँ है तथा ऐशान दिशा मे नलिनी, नलिनीऊर्मि, कुमुद और कुमुदप्रभा नाम की चार वापिकाएँ है। ये सोलह वापिकाएँ मणियो के तोरणो एव वेदिका आदि से मण्डित, नानाप्रकार के रत्नो की सीढियो से युक्त, पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौडी और दस योजन गहरी है। ये सभी वापिकाएँ चतुष्कोण है, तथा हस, सारस और चक्रवाक आदि पक्षियो के शब्दो से अत्यन्त शोभायमान है। इन सभी वापियो के मध्य भाग मे ६२½ योजन ऊँचे, ३१¼ योजन चौडे, अर्ध (½) योजन गहरी नीव से सयुक्त, सिहासन एव सभास्थान आदि से अलकृत रत्नमय भवन है। इन आग्नेय और नैऋत्य दिशा सम्बन्धी वापिकाओ मे स्थित भवनो मे सौधर्म इन्द्र अपने लोकपाल आदि देव और शचि आदि देवाङ्गनाओ के साथ नाना प्रकार की क्रीडा करता है, तथा वायव्य और ईशान दिशा स्थित वापिकाओ के भवनो में ऐशान इन्द्र अपने परिवार देवो एव देवाङ्गनाओ के साथ प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करता है। जिस प्रकार नन्दनवन मे सौधर्मेशान सम्बन्धी वापी एव प्रासाद आदि का वर्णन किया है, उसी-प्रकार क्रमसे वापी प्रासाद आदि का सभी वर्णन सौमनसवन मे जानना चाहिये, क्योकि नन्दनवन से यहा कोई विशेषता नही है।

मेरु पर्वत के ऊपर पाण्डुकवन मे चूलिका की प्रदक्षिणा रूप मे ऐशान आदि विदिशाओ मे सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौडी और आठ योजन ऊँची, अर्धचन्द्र की उपमा को धारण करने वाली, रत्नमय तोरण एव वेदिका आदि से अलकृत, अपने अपने क्षेत्रो के सम्मुख, स्फुरायमान तेजमय पाण्डुक आदि चार दिव्य शिलाएँ है। इन चारो शिलाओ मे प्रथम पाण्डुक नाम की शिला ऐशान दिशा मे है। जो स्वर्ण सदृश वर्ण से युक्त पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा भरतक्षेत्र मे उत्पन्न

होने वाले तीर्थंकरों के जन्म स्नान की पीठिका सदृश है। द्वितीय पाण्डुकम्बला नाम की शिला आग्नेय दिशा मे है, जो अर्जुन (चाँदी) सदृश वर्ण से युक्त, दक्षिणोत्तर लम्बी और पश्चिम विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले जिनेन्द्रो के जन्माभिषेक की पीठिका सदृश है। तृतीय रक्ता नाम की शिला, नैऋत्य दिशा में है, जो तपाये हुये स्वर्ण के सदृश वर्ण से युक्त, ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थङ्करो के जन्माभिषेक से निबद्ध तथा पूर्व-पश्चिम लम्बी है। इसी प्रकार रक्तकम्बला नाम की चतुर्थ शिला वायव्य-दिशा मे, दक्षिण-उत्तर लम्बी, आरक्त वर्ण से युक्त और पूर्व विदेह में उत्पन्न होने वाले तीर्थङ्कर देवो के जन्माभिषेक से सम्बद्ध है। इन चारो शिलाओ मे से प्रत्येक शिला के ऊपर दैदीप्यमान रत्नमय तीन तीन सिहासन है। उन सिहासनों मे से बीच का सिहासन पाँच सौ धनुष ऊँचा, भूमि पर पाँच सौ धनुष चौडा, अग्रभाग पर दो सौ पचास धनुष चौडा तथा जिनेन्द्रदेव सम्बन्धी अर्थात् तीर्थङ्करो के जन्माभिषेक की स्थिति के लिये है। दक्षिण दिशा मे स्थित सिहासन जिनेन्द्र भगवान के जन्माभिषेक के समय सौधर्म इन्द्र के बैठने के लिये होते है, और उत्तर दिशा स्थित सिहासन तीर्थङ्करो के जन्माभिषेक के समय ऐशानेन्द्र की सस्थिति अर्थात् बैठने के लिये है।

पाण्डुक आदि चारों शिलाओं एवं सिंहासन आदि का चित्रण निम्न प्रकार है:—



कल्पवासी, ज्योतिष्क, भवनवासी और व्यन्तरवासी देवों के इन्द्र क्रमश. घण्टा, सिंहनाद, शङ्ख एवं उत्तम भेरी के शब्दो तथा आसन आदि कम्पित होने रूप चिह्नो द्वारा जिनेन्द्र भगवान् की उत्पत्ति को जानकर परम विभूति एवं छत्र ध्वजा आदि से युक्त विमानो द्वारा आकाश रूपी प्रागण को आच्छा-

दित करते हुये तथा अनेक प्रकार के पटह आदि के शब्दों द्वारा दसो दिशाओ को बहरी करते हुये जिनेन्द्र भगवान् के जन्माभिषेक का उत्सव मनाने के लिये अपूर्व आनन्द एवं धर्मरागरूपीरस से उत्कट अपने-अपने स्थानो से सुमेरु पर्वत की ओर आते है। इस जन्माभिषेक के समय इन्द्रो का प्रमुख देव सौधर्मेन्द्र ऐरावत हाथी पर चढकर अपनी तीन परिषदों एव सात अनीको से अलकृत होता हुआ स्वर्ग से मध्य लोक मे आता है। इस सौधर्मेंद्र की प्रथम अभ्यन्तर परिषद् में दिव्यरूप और दिव्य मुखवाले, आयुध एवं अलकारो से अलकृत बारह लाख देव होते है। मध्यम परिषद् मे चौदह लाख देव और बाह्यपरिषद् में सोलह लाख देव होते है। आभ्यन्तर, मध्य और बाह्य परिषदों के क्रम से रवि, शशि और यदुप नाम के महत्तर (प्रधान) देव है। वृषभ, रथ, तुरग, गज, नर्तक, गन्धर्व और भृत्य हैं नाम जिनके ऐसे सात-सात कक्षाओ से युक्त सात अनीकें सेनाएँ सौधर्मेन्द्र के आगे जन्माभिषेक के समय मे महान् आडम्बर से युक्त होती हुई चलती है।

प्रथम कक्षा मे शख एव कुन्द पुष्प के सदृश धवल चौरासी लाख वृषभ चलते हैं। द्वितीय कक्षा मे जपा पुष्प के सदृश वर्ण वाले एक करोड अडसठ लाख वृषभ चलते है। तृतीय कक्षा में नील कमल के सदृश वर्ण वाले तीन करोड छत्तीसलाख वृषभ हैं। चतुर्थ कक्षा मे मरकत (नील) मणि की कान्ति सदृश वर्ण वाले छह करोड बहत्तर लाख वृषभ है। पंचम कक्षा मे स्वर्ण सदृश वर्ण वाले तेरह करोड चवालोस लाख वृषभ है। षष्ठ कक्षा मे अञ्जन सदृश वर्ण वाले छब्बीस करोड अठासी लाख वृषभ है, और सप्तम अनीक मे किंशुक (केसु) पुष्प की प्रभा सदृश वर्ण वाले त्रेपन करोड छचत्तर लाख वृषभ आगे आगे चलते हैं। शब्द करते हुये नाना प्रकार के पटह आदि एव तूर्य आदि से अन्तरित अर्थात् इन सेनाओ के मध्य मध्य में इन बाजो से युक्त, घण्टा, किंकणी, उत्तम चँवर एव मणिमय कुसुममालाओ से अलकृत, रत्नमय कोमल आसन (पलान) से युक्त, देवकुमारो द्वारा चलाये जाने वाले और दिव्य रूप को धारण करने वाले सप्तकक्षाओ से समन्वित समस्त वृषभ अनीको की सख्या एक सौ छह करोड अडसठ लाख है जो इस जन्माभिषेक महोत्सव मे जाती है। जिस प्रकार इन सात वृषभ अनीको की दूनी दूनी सख्या का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शेष रथ आदि छह अनीको की सख्या जानना चाहिये।

प्रथम कक्षा मे हिम की आभा के सदृश धवल छत्रो से विभूषित धवल रथ चलते है। द्वितीय कक्षा मे वैडूर्यमणि से निर्मित, चार चाको से विराजमान और मन्दार पुष्पो के सदृश वर्ण वाले महारथ गमन करते है। तृतीय कक्षा में स्वर्णमयछत्र, चामर और ध्वज समूहो से समन्वित तथा तपाये हुये स्वर्ण से निर्मित रथ जाते है। चतुर्थ कक्षा मे मरकत मणियो से निर्मित बहुत चाको से उत्पन्न हुये शब्दों से गम्भीर और दूर्वांकुर वर्ण सदृश रथ होते है। पञ्चम कक्षा मे कर्केतन मणियों से निर्मित बहुत चाको से उत्पन्न शब्दो से युक्त तथा नीलोत्पलपत्रो के सदृश रथ है। षष्ठम कक्षामे पद्मराग

मणियों से निर्मित, सुन्दर चाकों को धारण करने वाले तथा कमल के सदृश वर्ण वाले रथ हैं, और सप्तम कक्षा मे मयूर कण्ठ सदृश वर्ण वाले मणियों के समूह से उत्पन्न किरणो से देदीप्यमान इन्द्र नीलमणि की प्रभा के सदृश वर्ण वाले महारथ जाते है। इन सप्त सेनाओं से समन्वित, वहुत से देव देवियो से परिपूर्ण, उत्तम चमर, छत्र, ध्वजाएँ एवं पुष्पों की मालाओं से प्रकाशमान, सब रथ कक्षाओं के मध्य मे शब्द करते हुये देव वादित्रों से युक्त और आकाश को आच्छादित करते हुये ऊँचे एवं विस्तृत रथ जिनेन्द्र भगवान के जन्माभिषेक महोत्सव मे इन्द्र के महान् पुण्योदय से आगे आगे जाते है।

अश्वों की प्रथम कक्षा मे क्षीरसमुद्र की तरङ्गों के सदृग तथा श्वेत चामरों से अलकृत धवल अश्व जाते है। द्वितोय कक्षा में उदित होते हुये सूर्य के वर्ण सदृश एवं चलते हुये उत्तम चामरो से युक्त (रक्त वर्ण के) तुरङ्ग होते है। तृतीय कक्षा में तपाये हुये स्वर्ण के सदृश खुरों से उत्पन्न धूलि से पिञ्जरित अश्व गोरोचन (पीत) वर्ण वाले होते है। चतुर्थ कक्षा में मरकत मणि के सदृश वर्ण वाले एवं शीघ्रगामी अश्व चलते है। पञ्चम कक्षा मे रत्नों के आभूपणों से विभूपित तथा नीलोत्पल पत्र सदृश वर्ण वाले घोडे चलते है। षष्ठम कक्षा में जपा पुष्प सदृश (रक्त) वर्ण वाले और सप्तम कक्षा में इन्द्रनील मणि की प्रभा वाले घोडे होते है। इसप्रकार ये सात कक्षाओं से युक्त, अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित, अपनी अपनी सेनाओ के आगे उत्पन्न होने वाले वादित्रों के शब्दो से अन्तरित, उत्तम रत्नों के आसनो (पलानो) से युक्त, देवकुमारो द्वारा चलाये जाने वाले दिव्य और उत्तुङ्ग काय घोड़े भगवान् के जन्माभिषेक के महोत्सव मे जाते है।

प्रथम कक्षा की गज सेना में गोक्षीर (धवल) वर्ण सदृश और पर्वत के समान उन्नत एवं विस्तृत देह वाले चौरासी लाख हाथी होते है। द्वितीय कक्षा में सूर्य (वाल सूर्य) के तेज सदृश कान्ति वाले हाथो दुगुने (एक करोड अडसठ लाख) होते है। तृतोय कक्षा में दूसरी कक्षा से दुगुने और तपाये हुये स्वर्णाभा सदृश हाथी जाते है। चतुर्थ कक्षा में इससे भी दुगुने और तपाये हुये स्वर्ण की कान्ति सदृश हाथी होते है। पञ्चम कक्षा मे चतुर्थ कक्षा से दुगुने और नीलोत्पल आभा युक्त हाथी षष्ठम कक्षा में पञ्चम कक्षा से दुगुने तथा जपा पुष्प सदृश हाथी और सप्तम कक्षा में अञ्जनगिरि के सदृश कान्ति वाले त्रेपन करोड छयत्तर लाख हाथी जाते है। इन सातों कक्षाओं के हाथियो की सख्या का योग एक सौ छह करोड़ अडसठ लाख है। इन सात सेनाओ से युक्त, उन्नत दाँत रूपी मूसलों से सहित, गुड-गुड गरजने वाले, गलते हुये मद से है लिप्त अङ्ग जिनके, लटकते हुये रत्नमय घण्टा, किंकिणी एवं पुष्प मालाओ से सुशोभित, अनेक प्रकार की ध्वजाओ, छत्र, चमर एव मणि और स्वर्ण की रस्सियों से अलंकृत, प्रत्येक कक्षा के अन्तरालो में वजने वाले वादित्रों के शब्दो से युक्त, उत्तम देव देवियो की सवारियों से सहित, चलते फिरते पर्वत के समान उन्नत एवं महादिव्य देह को धारण करने वाले हाथी, इन जिनेन्द्र भगवान के जन्म महोत्सव मे सौधर्म इन्द्र के श्रेष्ठ पुण्य क फल को लोगों को दिखाते हुये ही मानो स्वर्ग से मेरु पर्वत की ओर आते है।

नर्तक अनीक देव प्रथम कक्षा मे विद्याधर, कामदेव, राजा और अधिराजाओं के चरित्रो द्वारा अभिनय करते हुये नर्तकी देव जाते है। द्वितीय कक्षा के नर्तक देव समस्त अर्धमण्डलीक एव महामडलीको के उत्तम चारित्र का अभिनय करते है। तृतीय कक्षा के नर्तक देव बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासु देवो (प्रतिनारायणो) के वीर्यादि गुणो से सम्बद्ध चारित्र द्वारा महानर्तन करते हुये जाते है। चतुर्थ कक्ष के नतक देव चक्रवर्तियो की विभूति एव वीर्यादि गुणो से निबद्ध चारित्र के द्वारा महा-अभिनय करते हुये जाते है। पञ्चम कक्षा के नर्तक देव चरमशरीरी यतिगण, लोकपाल और इन्द्रो के गुणो से रचित उनके चरित्र द्वारा अभिनय करते है। षष्ठम कक्ष के नर्तक देव विशुद्ध ऋद्धियो एव ज्ञान आदि गुणो मे उत्पन्न उत्तम चारित्र द्वारा उनके गुणरूपी रागरस से उत्कट होने हुये श्रेष्ठ नृत्य करते हुये जाते है, और सप्तम कक्ष के नर्तक देव चौतीस अतिशय, अष्ट प्रातिहार्य और अनन्तज्ञान आदि गुणो से सम्बद्ध चारित्र द्वारा उनके गुणरूपी रागरस मे डूबे हुये तथा सर्वोत्कृष्ट नर्तन करते हुये जाते है। ये सात अनीको के आश्रित, उत्तम नृत्य करने मे चतुर, आनन्द से युक्त, दिव्य वस्त्र और दिव्य अलङ्कारो से विभूषित तथा महा विक्रिया रूप नृत्य करते हुये मेरु पर्वत की ओर जाते है।

सगीत के सात स्वरो द्वारा जिनेन्द्र भगवान के और गणधरादि देवो के गुणो से सम्बद्ध अनेक प्रकार के मनोहर गीत गाते हुये, दिव्य कण्ठ, दिव्य वस्त्र एव दिव्य आभरणो से मण्डित गन्धर्व देव जिनेन्द्र के जन्माभिषेक महोत्सव मे सात अनीकों से समन्वित होते हुये जाते है। प्रथम कक्ष मे षड्ज स्वरो से जिनेन्द्र के गुण गाते है। द्वितीय कक्ष मे ऋषभ स्वर से गुणगान करते हैं। तृतीय कक्ष मे गान्धार स्वर से गाते हुये जाते है। चतुर्थ कक्ष मे मध्यम स्वर से जिनाभिषेक सम्बन्धी गीतो को गाते है। पञ्चम कक्ष मे पञ्चम स्वर से गान करते हैं। षष्ठम कक्ष मे धैवत स्वर से गाते है, और सप्तम कक्ष मे निपात स्वर से युक्त गान करते हुये गन्धर्व देव जाते है। इसप्रकार अपनी अपनी देवियो से सयुक्त, सप्त अनीको के आश्रित, किन्नर और किन्नरियो के साथ वीणा, मृदङ्ग, झल्लरी और ताल आदि के द्वारा जिनाभिषेक महोत्सव के गुण समूह मे रचित, बहुत मधुर, शुभ और मन को हरण करने वाले गीत गाते हुये, धर्मराग रूपी रस से उद्धत होते हुये गन्धर्व देव उस महामहोत्सव मे जाते है।

सात प्रकार की सेनाओ से युक्त, दिव्य आभूषणो से अलकृत, अनेक वर्णो की ध्वजाएँ एव छत्रो से सहित है हाथ जिनके ऐसे भृत्यदेव जाते है। प्रथम कक्ष मे अञ्जन सदृश प्रभा वाली ध्वजाएँ हाथ मे लेकर भृत्यदेव जाते है। द्वितीय कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथो मे मणि एव स्वर्णदण्ड के शिखर पर स्थित चलते (ढुलते) हुये चामरो से सयुक्त नीलो ध्वजाएँ लेकर चलते है। तृतीय कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथो मे वैडूर्य मणिमय दण्डो के अग्रभाग पर स्थित धवल ध्वजाएँ लेकर चलते है। चतुर्थ कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथो मे हाथी, सिंह, वृषभ, दर्पण, मयूर, सारस, गरुड, चक्र, रवि एव चन्द्राकार कनक (पीली) ध्वजाओ के आश्रय भूत मरकत मणिमय दण्ड लेकर चलते है। पञ्चम कक्षा के

भृत्यदेव अपने हाथों में विकसित कमल की कान्ति वाली पद्मध्वजाओं से आरोपित विद्रुममणि (मूँगे) के ऊँचे ऊँचे दण्ड लेकर चलते है। षष्ठम कक्ष के भृत्यदेव अपने हाथो में गोक्षीर वर्ण सदृश धवल ध्वजाओं से युक्त स्वर्णदण्ड लेकर तथा सप्तम कक्षा के भृत्यदेव अपने हाथो में दैदीप्यमान मणि समूह से रचित दण्ड के अग्रभाग पर स्थित, मोतियो की मालाओं से अलंकृत धवल छत्रो को लेकर जाते है। इसप्रकार सात अनीको से युक्त, जिनभक्ति मे तत्पर भृत्यदेव उत्साह और अपूर्व उद्यम पूर्वक उस महोत्सव मे जाते है। इन भृत्यदेवों की सात अनीक कक्षाओ मे से छह कक्षा के भृत्यदेव मात्र ध्वजाएँ लेकर चलते है जिनका सर्वयोग बावन करोड़ बान्नवे लाख (५२९२०००००) प्रमाण है, जो इस जन्ममहोत्सव मे चलती हुई पवन के वश से हिलने वाली दिव्य ध्वजाओं से अत्यन्त शोभायमान होते है सप्तम कक्षा के भृत्य श्वेत छत्र लेकर चलते है, जिनका प्रमाण त्रेपन करोड छयत्तर लाख ५३७६००००० है। इसप्रकार वृषभ से भृत्यदेव पर्यन्त (४९) उनचास अनीक कक्षाओं का एकत्र योग करने पर सात सौ छचालीस करोड छयत्तर लाख प्रमाण है। यथाः—

सात अनीक सम्बन्धी ४९ कक्षाओं का एकत्रित प्रमाण

कक्षा	वृषभ	रथ	घोडे	हाथी	नर्तक	गन्धर्व	भृत्यवर्ग
१	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००	८४०००००
२	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००	१६८०००००
३	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००	३३६०००००
४	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००	६७२०००००
५	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००	१३४४०००००
६	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००	२६८८०००००
७	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००	५३७६०००००
योग	१०६६८००००० +	१०६६८००००० +	१०६६८००००० +	१०६६८००००० +	१०६६८ ००००० +	१०६६८ ००००० +	१०६६८ ००००० +

=७४६७६००००० कुल प्रमाण हुआ

सौधर्मेन्द्र जिस प्रकार सात अनीकों के ७४६ करोड ७६ लाख सेना के साथ यहाँ जिनेन्द्र के जन्म महोत्सव में आता है, उसीप्रकार समस्त इन्द्रो मे से प्रत्येक इन्द्र की सेना का प्रमाण अपने अपने सामानिक देवो को सेना से दूना दूना होता है, जिसे लेकर वे सब आते है। इसतरह उपर्युक्त समस्त सेना और तीनो पारिपद देवो से वेष्टित सौधर्म इन्द्र शचि के साथ ऐरावत हाथी पर चढकर महामहोत्सव के साथ स्वर्ग से जिनेन्द्र के जन्म कल्याणक की निष्पत्ति के समय निकलता है। अनेक आयुधो से अलकृत अङ्गरक्षक देव इन्द्र को वेष्टित किये हुये निकलते है। प्रतीन्द्र, सामानिक देव, त्रायस्त्रिश देव एव लोकपाल आदि अवशेष देव इन्द्र के साथ स्वर्ग से मेरु पर्वत की ओर आते है।

अथेन्द्रस्यैरावतदन्तिनः किञ्चिद् वर्णनं करोमिः—

जम्बूद्वीपप्रमाणाङ्ग, वृत्ताकार शखेन्दु कुन्दधवल नानाभरणघण्टाकिकिणी तारिकाहेमकक्षादि भूषित कामग कामरूपधारिण महोन्नत ऐरावतगजेन्द्र नागदत्ताख्याभियोग्येशो वाहनामरो विकरोति। तस्यदन्तिन बहुवर्णा, विचित्रतानि रम्याणि द्वात्रिंशद्वदनानि [1]एकैकस्मिन् वदने मृदुस्थूलायता अष्टौ-दन्ता स्युः। एकैकस्मिन् दन्ते एकैक चलत्कल्लोलरम्य सरोवर स्यात्। एकैकस्मिन्सरसि एकैका कमलिनी भवति। एकैकस्या कमलिन्या एकैकस्मिन् दिग्भागे मणिवेदिकाङ्कित एकैक तोरण भवेत्। प्रफुल्लद्वात्रिंशत्कमलानि च सन्ति। एकैकस्मिन् कमले एकैकयोजन सुगन्धायतानि द्वात्रिंशन्मनोहर पत्राणि स्युः। एकैकस्मिन् पत्रे दिव्यरूपा सरसा द्वात्रिंशन्नटिका स्युः। एकस्मिन्नेकस्मिन् प्रत्येक नाटके दिव्यरूपा द्वात्रिंशत्सुरनर्त्तक्यो नानारूपाणि विकृत्य मृदङ्गादि तूर्यैर्नानाचरणविन्यासैः करपल्लवैः कटीतटादिलयैः सानन्दा नृत्यन्ति। सर्वा सप्तविशति कोटिप्रमाः अप्सरसोऽष्टौमहादेव्यो लक्षबल्लभिकाश्च तद् गजेन्द्र पृष्ठमारुह्य तस्मिन् जन्मोत्सवे गच्छन्ति।

ऐरावतो हि शक्रस्य कीदृशो भवति प्रभो।
लक्षयोजनप्रोत्तुङ्गो विस्तरोपि तथा भवेत् ॥१॥
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य दन्ता अष्टौ मुखं प्रति।
दन्तं प्रतिसरश्चैकं नलिन्येकासरंप्रति ॥२॥
द्वात्रिंशत्कमलान्येव चैकैकां पद्मिनी प्रति।
द्वात्रिंशदस्य पत्राणि प्रतिपद्मं विराजते ॥३॥
प्रतिपत्रं च द्वात्रिंशन्नृत्यंत्यप्सरसो वराः।
केषाञ्चित्संयतानां तु श्रूयतां भो! मतान्तरं ॥४॥
चतुर्मुखो गजो ज्ञेयो दन्तयुग्मं मुखं प्रति।
सरसीनां शतं ज्ञेय प्रतिदन्तं जलैर्भृतम् ॥५॥

---

१ सउवयणअट्ठदन्ता दन्तेसरसदनालिनी पणवीसा। पणवीसा स उ कमलाकमले अट्ठुत्तरसयपत्त।

सरः प्रतिनलिनीनां पञ्च विंशतिकं ततः ।
नलिनीं प्रतिपद्मानां पञ्चविंशत्यधिकं शतं ॥६॥
नर्तकीनां प्रतिपद्ममष्टोत्तरशतं परं ।
एवं वैभवसंयुक्तं गजं शक्रः स्थितोमुदा ॥७॥

अब इन्द्र के ऐरावत हाथी का संक्षिप्त वर्णन करते हैं:—

आभियोग्य देवो का अधिपति नागदत्त नामक वाहन जाति का देव जम्बूद्वीप प्रमाण अर्थात् एक लाख योजन प्रमाण गोल देह की विक्रिया करके इन्द्र का ऐरावत हाथी वनता है। जो शङ्ख, चन्द्र और कुन्द पुष्प के समान धवल अलङ्कारों, घण्टा, किंकणी, तारिकाओं (धवल विन्दुओ) एवं स्वर्ण कक्षा अर्थात् हाथी के पेट पर वाधने की रस्सी आदि से विभूषित, अत्यन्त सुन्दर, विक्रियारूप को धारण करने वाला तथा महा उन्नत होता है। उस हाथी के अनेक वर्णों से युक्त रमणीक वत्तीस मुख होते है। एक एक मुख मे कोमल, मोटे और लम्वे आठ आठ दाँत होते हैं। (३२ मुख × ८ = २५६ दाँत हुये)। एक एक दाँत पर उठती हुई कल्लोलों से रमणीक एक-एक सरोवर होता है। (२५६ सरोवर हुये)। एक एक सरोवर मे एक एक कमलिनी होती है। एक एक कमलिनी पर एक एक दिशा मे मणियो की वेदिकाओ से अलकृत एक एक तोरण होता है, प्रत्येक कमलिनी के साथ प्रफुल्लित रहने वाले वत्तीस वत्तीस कमल होते हैं (२५६ × ३२ = ८१९२ कमल होंगे)। एक एक कमल मे एक एक योजन पर्यन्त सुगन्ध फैलाने वाले वत्तीस वत्तीस पत्र होते हैं—(८१९२ कमल × ३२ = २६२१४४ पत्र हुये)। एक एक पत्र पर दिव्य रूप को धारण करने वाले अतिमनोज्ञ वत्तीस नाटक (नाटचशाला) होते है (२६२१४४ × ३२ = ८३८८६०८) और एक एक नाटचशालाओ मे दिव्यरूप को धारण करने वाली वत्तीस वत्तीस अप्सराएँ नृत्य करती है (८३८८६०८ × ३२ = २६८४३५४५६ अप्सराएं)। जो अनेक प्रकार की विक्रिया धारण करके मृदङ्ग आदि वादियो द्वारा, नाना प्रकार के चरण विन्यास द्वारा, हाथ रूपी पल्लवो द्वारा और कटितट आदि की लय के द्वारा आनन्द पूर्वक नृत्य करती हैं। ये समस्त सत्ताईस करोड अप्सराएँ, आठ महादेवियाँ और एक लाख वल्लभिकाएँ उस ऐरावत हाथी की पीठ पर चढ कर उस जन्म महोत्सव मे जाते है।

विशेषार्थ.—विक्रिया धारण करने वाले ऐरावत हाथी के ३२ मुख और प्रत्येक मुख में आठ आठ दाँत इत्यादि उपर्युक्त क्रम से मानने पर अप्सराओं की कुल संख्या छब्बीस करोड चौरासी लाख पैंतीस हजार चार सौ छप्पन (२६८४३५४५६) होती है, किन्तु आचार्य उनकी संख्या सत्ताईस करोड लिख रहे है, तथा अन्य आचार्यों के मतानुसार भी अप्सराओं की संख्या २७ करोड़ ही है। यथा—

इस ऐरावत हाथी के सौ मुख होते हैं। प्रत्येक मुख मे आठ-आठ दाँत (१०० × ८ = ८००) होते है। प्रत्येक दाँत पर जल से भरे हुये सरोवर (८००) होते हैं। प्रत्येक सरोवरों में पच्चीस-पच्



नलिनी (८०० × २५ = २०००) होती है प्रत्येक नलिनी पर एक सौ पच्चीस कमल (२०००० × १२५ = २५०००००) होते है। प्रत्येक कमल मे एक सौ आठ, एक सौ आठ पत्र (२५००००० × १०८ = २७०००००००) होते है, और प्रत्येक पत्र पर एक-एक अप्सरा नृत्य करती है, अतः कुल अप्सराओ की सख्या सत्ताईस करोड है।

नोट-पृष्ठ २१५ श्लोक ५-७ के अनुसारः—४ मुख × २ दन्त = ८ दन्त, प्रत्येक दात पर १०० सरोवर, ८ × १०० = ८०० सरोवर, प्रत्येक सरोवर मे २५ नलिनी, ८०० × २५ = २०००० नलिनी, प्रत्येक नलिनी पर १२५ कमल, २०००० × १२५ = २५००००० कमल, प्रत्येक कमल पर १०८ पत्र २५००००० × १०८ = २७०००००००० पत्र, प्रत्येक पत्र पर एक एक अप्सरा अर्थात् कुल अप्सराएँ २७ करोड है।

अब ऐशान आदि अन्य इन्द्रों और अहमिन्द्रों आदि की स्थिति कहते हैं:—

यादृशी दक्षिणेन्द्रस्य सप्तानीकाना सख्यावर्णिता तादृशी सख्योत्तरेन्द्रस्य स्यात्। ईशानेन्द्रोऽपि दिव्य तुरङ्गमारुह्यस्वपरिवारालकृतो महाविभूत्यात्रागच्छति। शेषा सनत्कुमारेन्द्राद्या अच्युतेन्द्रपर्यन्ता देवेन्द्राः सप्तानीकत्रिपरिषद्वेष्टिता' स्वस्ववाहनविभूत्याश्रिता सामराः सकलत्रास्तदायान्ति। भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष्क देवेशाः सप्तानीक त्रिपरिषदावृता स्वस्ववाहन विमानाद्यारूढा महाविभूत्या स्वदेवदेवीभि सहात्रागच्छन्ति सर्वे अहमिन्द्रा आसनकम्पेन तज्जन्मोत्सव विज्ञाय सप्तपदान् गत्वा भक्त्या मूर्ध्ना स्थानस्था एव जिनेन्द्र प्रणमन्ति। इत्यादि परया विभूत्या चतुर्णिकायसुरेन्द्रा, सामरा' सकलत्रा नानादेवानकध्वानैर्बधिरीकृतदिग्मुखाः, ध्वजछत्रचामर विमानादिभिर्नभोङ्गणं छादयन्तः स्वर्गात्तीर्थेशोत्पत्तिपुरमागच्छन्ति।

अर्थः—जिस प्रकार दक्षिणेन्द्र के सात अनीको की सख्या का वर्णन किया है। उसी प्रकार की सख्या आदि उत्तरेन्द्र के भी होती है। ऐशान इन्द्र भी दिव्य अश्वो पर चढकर अपने परिवार से अलकृत होता हुआ, महाविभूति के साथ जन्माभिषेक मे आता है। शेष सनत्कुमार इन्द्र आदि को लेकर अच्युत इन्द्र पर्यन्त के सभी देवेन्द्र सात अनीको एव तीन पारिषदो से वेष्टित, अपने अपने वाहन रूपी विभूति का आश्रय लेकर समस्त देवो के साथ यहाँ आते है। भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिष्क देवो के इन्द्र भी सात अनीको एव तीन पारिषदो से वेष्टित होते हुये, अपने-अपने वाहन एव विमान आदि पर चढकर महाविभूति से युक्त होते हुये अपनी-अपनी देवियो के साथ यहाँ आते है। समस्त अहमिन्द्र आसन कम्पायमान होने से जिनेन्द्र के जन्म उत्सव को जानकर और सात पैर आगे जाकर मस्तक से अपने स्थान पर स्थित होकर ही जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार करते है। इसप्रकार परम विभूति से युक्त होते हुये चतुर्निकाय के इन्द्र अपने समस्त देवो के साथ नाना प्रकार के देववादित्रो के शब्दो द्वारा

दिशाओ को बहरी करते हुये तथा ध्वजा, छत्र, चामर और विमान आदि के साथ आकाशतल को व्याप्त करते हुये स्वर्ग से उस नगर में आते है, जहाँ तीर्थङ्कर की उत्पत्ति होती है।

अब बालतीर्थङ्कर के जन्माभिषेक आदि की समस्त प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन करते है:—

तत्रेन्द्राणी प्रसवागारं प्रविश्य मातुरन्ते परं मायाशिशुं निधाय तीर्थेशं प्रणम्यादाय गूढवृत्त्यानीय सौधर्मेन्द्रस्य करे ददाति। सोऽपितं तीर्थङ्करं मुदाप्रणम्यस्तुत्वामहोत्सवेन मेरुमानीयपरीत्य पाण्डुकशिलास्थ मध्यसिंहासने धत्ते। ततः क्षीराब्धेः क्षीराम्बुभृतैः अष्टयोजनगम्भीरैर्योजनैकमुखविस्तृतैर्मुक्तादामाम्भोजचन्दना[1]द्यलङ्कृतैरष्टोत्तरसहस्रैः. कनत्काञ्चनकलशैर्गीतनृत्यभ्रूपोत्क्षेपादि [भ्रूत्क्षेपादि] महोत्सवशतैः, परया भक्त्या विभूत्या च नाकेन्द्रा सम्भूय जिनेन्द्र स्नपयन्ति। यदि चेत्ता महत्योजलधारा यस्याद्रेरुपरि पतन्ति सोऽद्रिस्तत्क्षणं शतखण्डतां याति। अप्रमाणमहावीर्यं परमेश्वरस्तद्धारापतन जलविन्दुवन्मन्यते। इतिध्वनद्वाद्यशतैर्जयजयादि निर्घोषै शुद्धाम्बुस्नपन सम्पूर्णं विधायान्ते सुगन्धिद्रव्यमिश्रितैः गन्धोदक कुम्भैर्गन्धोदकस्नपनं शक्रा अस्य कुर्वन्ति। ततस्तद्गन्धोदकमभिवन्द्य दिव्यगन्धादिभि. स्वर्गोपनीतैर्महापूजाद्रव्यैर्जिन प्रपूज्योत्तमांगेनदेवेन्द्रा इन्द्राणीदेवादिभिः सहोच्चैः प्रणमन्ति। पुनः शची नानासुगन्धद्रव्यदिव्यांशुक शाश्वत मणिनेपथ्यैस्तोर्थेशस्य महत्मण्डन करोति, तदा सौधर्मेन्द्रो जगद्गुरोर्महारूप सम्पदोवीक्ष्य तृप्तिमप्राप्य पुनर्वीक्षितुं सहस्रनयनानि विदधाति। ततः परमानन्देन परमेश्वर स्तुतिशतै. स्तुत्वा तत्पुर नीत्वा पित्रोः समर्प्य तत्रानन्दनाटक कृत्वा परं पुण्यमुपार्ज्य चतुर्णिकाय देवेशा स्वस्वस्थान गच्छन्ति।

अर्थः—प्रभु के जन्म नगर मे आकर इन्द्राणी प्रसूतिगृह मे प्रवेश करके माता के समीप जाकर सर्व प्रथम बाल तीर्थङ्कर को प्रणाम करती है, और उसी समय माता के समीप मायामयी बालक रख कर भगवान को उठाकर तथा गूढवृत्ति से लाकर सौधर्म इन्द्र के हाथों में दे देती है। वह इन्द्र भी उन तीर्थङ्कर प्रभु को प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करके एव स्तुति करके महामहोत्सव के साथ मेरु पर्वत पर लाकर और मेरु की तीन प्रदक्षिणा देकर पाण्डुकशिला पर स्थित मध्य के सिंहासन पर प्रभु को विराजमान कर देता है। इसके बाद क्षीरसागर के क्षीर सदृश जल से भरे हुये आठ योजन (६४ मील) गहरे, एक योजन (८ मील) मुख विस्तार वाले, मोतियों की माला, कमल एवं चन्दन आदि से अलंकृत, अत्यन्त शोभायमान स्वर्ण के एक हजार आठ कलशों के द्वारा, गीत, नृत्य एव भ्रू उपक्षेपण [भ्रू उत्क्षेपण] आदि सैकडो महा उत्सवो के साथ, उत्कृष्ट भक्ति एव परम विभूति से सभी इन्द्र एकत्रित होकर जिनेन्द्र भगवान् को स्नान कराते है। भगवान् के ऊपर गिरने वाली वह महान् जल की धारा यदि

१ चन्दनाद्यैरलकृतै अ ज.

कही उस पर्वत के ऊपर गिर जाय तो उस पर्वत के उसी क्षण सौ खण्ड हो जाँय, किन्तु अपरिमित महावीर्य को धारण करने वाले बाल जिनेन्द्र उन धाराओ के पतन को जलविन्दु के समान मानते है। इस प्रकार शब्द करते हुये सैकडो वादित्रो और जय जय आदि शब्दो के द्वारा शुद्ध जल का अभिषेक समाप्त करके अन्त मे इन्द्र सुगन्धित द्रव्यो से मिश्रित, सुगन्धित जल से भरे हुये घडो के द्वारा सुगन्धित जल से अभिषेक करता है। पश्चात् उस गन्धोदक की अभिवन्दना करके महापूजा के लिये स्वर्ग से लाये हुये दिव्य गन्ध आदि द्रव्यो के द्वारा वाल जिनेन्द्र की पूजा करके इन्द्र अपनी इन्द्राणी एव अन्य देवो के साथ उत्साह पूर्वक प्रणाम करते है। इसके वाद शची अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यो से, दिव्य वस्त्रो से और मणियो के आभूषणो से तीर्थेश का महान शृङ्गार करती है। उस समय सौधर्म इन्द्र जगद्गुरु की महारूप स्वरूप सम्पदा को देखकर तृप्त नही होता और पुन: पुन देखने के लिये एक हजार नेत्र बनाता है। तत उत्कृष्ट आनन्द से युक्त होता हुआ भगवान् की सैकडो स्तुतियाँ करता है। अर्थात् सहस्रो प्रकार से भगवान् की स्तुति करता है। इसके वाद नगर मे लाकर पिता को सौप देता है, पश्चात् पितृगृह के प्राङ्गण मे आनन्द नाम का नाटक करके, तथा उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन करके इन्द्र एव चतुर्निकाय के देव अपने-अपने स्थानो को वापिस चले जाते हैं।

अब भद्रशाल वन मे स्थित जिनालयों के प्रमाण का वर्णन करते है:—

अथ मेरोश्चतुर्दिक्षु भद्रशालवनस्थितान्।
वर्णयामि मुदोत्कृष्टांश्चतुरः श्रीजिनालयान्।
अद्रेः पूर्वदिशाभागे योजनैकशतायतः।
पञ्चाशद् विस्तृतस्तुङ्गः पञ्चसप्ततियोजनैः॥७॥
क्रोशद्वयावगाहश्च विचित्रमणिचित्रितः।
अद्भुतः स्याज्जिनागारस्त्रैलोक्यतिलकाह्वयः॥८॥

अर्थ —सुमेरुपर्वत की चारो दिशाओ मे भद्रशाल वन है जिसमे उत्कृष्ट चार जिनालय हैं, अब मै (आचार्य) उन जिनालयो का प्रसन्नता पूर्वक वर्णन करता हूँ।।६॥

सुदर्शन मेरु की पूर्व दिशा (भद्रशाल वन) मे नाना प्रकार की मणियो से रचित त्रैलोक्य-तिलक नाम का एक अद्भुत जिनालय है, जो सौ योजन लम्बा, पचास योजन चौडा, पचहत्तर योजन ऊँचा और अर्ध योजन अवगाह (नीव) वाला है॥७–८॥

त्रैलोक्यतिलक जिनालय के दरवाजों का वर्णन:—

अस्य पूर्वप्रदेशेऽस्ति चोत्तरे दक्षिणे महत्।
एकैकमूर्जितं द्वारं रत्नहेममयं परम्॥९॥

राजते नितरां द्वारं तयो पूर्वस्थमादिमम् ।
अष्टयोजनविस्तीर्णं तुङ्गं षोडशयोजनैः ॥१०॥
दक्षिणोत्तरदिग्भागस्थे द्वे द्वारे परे शुभे ।
भातोऽष्टयोजनोत्तुङ्गे चतुर्योजन विस्तरे ॥११॥

अर्थ —इस त्रैलोक्य तिलक जिनभवन के पूर्व, उत्तर और दक्षिण में रत्न एवं स्वर्णमय एक एक उत्कृष्ट द्वार है। उत्तर-दक्षिण दोनों द्वारों के मध्य पूर्व दिशा मे स्थित प्रथम द्वार अत्यन्त शोभायमान है, जिसकी ऊँचाई सोलह योजन और चौडाई आठ योजन प्रमाण है। जिनालय की दक्षिणोत्तर दिशा मे जो एक एक द्वार सुशोभित है, उनकी ऊँचाई आठ योजन और चौडाई चार योजन प्रमाण है ॥९-११॥

अब जिनालय के अभ्यन्तर एवं बाह्यभागों में स्थित मालाओं, धूपघटों एवं स्वर्ण घटों का प्रमाण आदि कहते हैं:—

भवनस्यास्य चाभ्यन्तरे पूर्वे विस्फुरन्त्यलम् ।
विचित्रामणिमालाश्चाष्टसहस्राणिलम्बिताः ॥१२॥
तासामन्तरभागेषु चतुर्विंशतिसम्मिताः ।
सहस्राणां विराजन्ते माला रत्नांशुसञ्चयैः ॥१३ ।
चतुर्विंशसहस्राणि दिव्या धूपघटाः शुभाः ।
सुगन्धि द्रव्य धूपैः स्युः सुगन्धीकृतदिग्मुखाः ॥१४॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि कलशा भानुतेजसः ।
सुगन्धिदामराशीनां सन्मुखा मणिहेमजाः ॥१५॥
तद्बहिर्भागदेशेषु मणिमालाः प्रलम्बिताः ।
चत्वारि च सहस्राणि सन्ति दीप्ता मनोहराः ॥१६॥
द्वादशैवसहस्राणि स्युः काञ्चनस्रजोऽमलाः ।
तस्मिन्नेव बहिर्भागे दिव्याधूपघटाः स्मृताः ॥१७॥
द्विषट्सहस्रसंख्याताः सहस्रषोडशप्रमाः ।
दीप्ताः[1]काञ्चनकुम्भाश्च स्फुरन्तिस्वाङ्गरश्मिभिः ॥१८॥

१. दीप्रा. अ. ज. न.

अर्थ —उस जिनालय के अभ्यन्तर भाग में स्थित पूर्व दिशा के द्वार पर अत्यन्त दैदीप्यमान नाना प्रकार की मणियो की आठ हजार मालाएँ लटकती है, और इनके मध्य मे रत्नकिरणो से उपचित चौवीस हजार मालाएँ विराजमान होती है। सुगन्धित द्रव्य एव धूप के द्वारा दिशाओ को सुगंधित करने वाले चौवीस हजार धूपघट स्थित है। सुगन्धित माला समूहो के अभिमुख, सूर्य सदृश तेजपुञ्ज से सयुक्त वत्तीस हजार मणि एवं स्वर्णमय कलश स्थित है। मुख्यद्वार के बाह्यभाग मे जो द्वार है, उन पर अति मनोहर और दीप्तवान् चार हजार मणिमय मालाएँ, और बारह हजार स्वर्णमय मालाएँ है। इनके भी बाह्य भाग मे बारह हजार प्रमाण दिव्य धूपघट और स्फुरायमान होने वाली अपनी किरणो से दीप्त सोलह हजार स्वर्ण कलश स्थित है।।१२-१८।।

अब पीठ, सोपान एवं पीठवेदियों के व्यास आदि का और जिन प्रतिमाओं का वर्णन चौदह श्लोकों द्वारा करते हैः——

जिनागारेऽत्र सन्त्येवदीर्घाणिषोडशप्रमैः ।
साधिकैर्योजनैर्विस्तृतान्यष्टाधिकयोजनैः ।।१६।।
द्वियोजनोच्छ्रितानि श्रीमत्पीठानिशुभानि च ।
वज्रेन्द्रनीलरत्नादिमयानि परमान्यपि ।।२०।।
मणिसोपान पंक्ति. स्यात्तत्रदीर्घा च योजनैः ।
द्वचष्टभिरष्टभिर्व्यासाषड्योजनोन्नता शुभा ।।२१।।
क्रोशद्वयावगाहास्यादष्टोत्तर शतान्यपि ।
सोपानानि भवन्त्येवप्रोन्नतानि चतुःशतैः ।।२२।।
किञ्चिदूनैश्चचापैः पञ्चचत्वारिंशदग्रगैः ।
पीठपर्यन्तभागेऽस्ति दिव्याःसद्रत्नवेदिकाः ।।२३।।
क्रोशद्वयोन्नताः पञ्चशतचापप्रविस्तृताः ।
तेषु पीठेषु दिव्याङ्गा अष्टोत्तरशतप्रमाः ।।२४।।
स्फुरन्नानामणिस्वर्णमय्योऽविनश्वराः शुभाः ।
धनुः पंचशतोतुङ्गामनोज्ञावीक्षणप्रियाः ।।२५।।
निराभरणदीप्ताश्च[1] निरम्बरमनोहराः ।
कोटचर्कभानुतेजोऽधिक सुतेजो विराजिताः ।।२६।।

---

१. दीप्राश्च अ ज न

लक्षणैर्व्यंजनैर्युक्ताः पल्यङ्कासनसंस्थिताः ।
पूर्णसोममुखाः सौम्याः समस्तविक्रियातिगाः ॥२७॥
दिव्यभामण्डलान्तर्बाह्योच्छेदिततमश्चयाः ।
प्रफुल्लपद्मसद्धहस्ता आरक्तचरणाम्बुजाः ॥२८॥
अञ्जनाभमहाकेशा अताम्रनयनोत्पलाः ।
विद्रुमाभाधराः छत्रत्रयशोभितमस्तकाः ॥२९॥
दिव्यसिंहासनारूढा भामण्डलात्तविग्रहाः ।
महार्चनार्चितायक्षैर्वीज्यमानाः प्रकीर्णकैः ॥३०॥
निरौपम्या जगन्नेत्रप्रियाः पुण्याकरा इव ।
हसन्त्यो वा वदन्त्यो वा मुखचन्द्रेण संततम् ॥३१॥
त्रिजगन्नृसुराराध्यावन्द्याः स्तुत्यामया सदा ।
राजन्ते श्रीजिनेन्द्राणां प्रतिमादिव्य मूर्तयः ॥३२॥

अर्थः—त्रैलोक्यतिलक जिनभवन में वज्र एवं इन्द्रनीलमणिमय एक पीठ है जो कुछ अधिक सोलह योजन लम्बा, आठ योजन चौड़ा, दो योजन ऊँचा, अत्यन्त शुभ और परमोत्कृष्ट है ॥१९-२०॥ वहाँ पर सोलह योजन लम्बी, आठ योजन चौडी, छह योजन ऊँची और अर्ध योजन नीव से युक्त मणिमय सोपान पक्ति है, तथा उस सोपान पंक्ति में एक सौ आठ सोपान है, जिनमें से प्रत्येक सोपान कुछ कम चार सौ पेतालीस धनुष ऊँचे है। पीठ पर दिव्य और उत्तम रत्न वेदियाँ है, जो अर्ध धनुष ऊँची और पाँच सौ धनुष चौडी है। उन वेदिकाओं पर श्री जिनेन्द्र भगवान् की ऐसी एक सौ आठ प्रतिमाएँ सुशोभित है, जो अत्यन्त विभावान् मणि एवं स्वर्णमय है। अविनश्वर अर्थात् अकृत्रिम हैं। अत्यन्त शुभ, मनोज्ञ, देखने मे अति प्रिय और दिव्य अङ्ग वालीं है। पाँच सौ धनुष ऊँची हैं, वस्त्राभूषणों से रहित अर्थात् दिगम्बर मुद्रा युक्त है, और करोडों सूर्यो के तेज से भी अधिक कान्तिवान् हैं ॥२१-२६॥

वे जिन प्रतिमाएँ (१०८) लक्षणों एव (९००) व्यञ्जनों से युक्त तथा पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख वाली हैं। उनकी शरीराकृति अत्यन्त सौम्य और सर्व विकारों से रहित है, वे सभी पद्मासन से स्थित है। उनका भामण्डल अन्तर-बाह्य अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाला है। उनके करकमल एवं चरणकमल खिले हुए कमल सदृश अर्थात् कुछ कुछ लाल है, केश अञ्जन सदृश काले, नेत्र कमल लालिमा से रहित, ओंठ विद्रुम की आभा सदृश लाल और मस्तक तीन छत्रों से सुशोभित है। दिव्य सिंहासन पर विराजमान उनका शरीर अत्यन्त कान्तिवान् है। वे महापूजा से पूज्य, यक्षों द्वारा वीज्यमान चामरों से युक्त, उपमा रहित, तीन लोक के नेत्रों को अत्यन्त प्रिय और पुण्य की खान के समान

है। वे जिन प्रतिमाएँ शोभायमान मुख चन्द्र से मानो निरन्तर हँस रही है, और बोल रही है तथा तीन लोक के मनुष्यो एवं देवो से पूज्य और मेरे द्वारा सदा वन्दनीय एवं स्तुत्य हैं ॥२७-३२॥

धर्मोपकरणों (मङ्गलद्रव्यों) का वर्णनः—

अकृत्रिमा महाभूत्या धर्मोपकरणैः परैः ।
प्रत्येकं भिन्नभिन्नैर्मुदाष्टोत्तरशतप्रमैः ॥३३॥
अशोकवृक्षशोभाढ्यादेवदुन्दुभिभूषिताः ।
सुरैः कृतमहापुष्पवृष्ट्याच्छादितमूर्तयः ॥३४॥

अर्थः—अकृत्रिम और महाविभूति स्वरूप भिन्न-भिन्न मङ्गल द्रव्यों (झारी, कलश, दर्पण, पखा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोनो) की सख्या एक सौ आठ-एक सौ आठ है। वे प्रतिमाएँ (छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डल और) अशोक वृक्ष की शोभा से युक्त, देवदुन्दुभि से विभूषित और देवो द्वारा की हुई महापुष्पवृष्टि से आच्छादित (व्याप्त) होती हैं ॥३३-३४॥

गर्भगृह का वर्णनः—

शुद्धस्फटिकभित्त्याढ्यं वैडूर्यस्तम्भशोभितम् ।
नानारत्नप्रभाकीर्णं दिव्यामोदात्तदिग्मुखम् ॥३५॥
जिनेन्द्रप्रतिमानां तद्देवच्छन्दान्यनामधृत् ।
गर्भगृहं जगत्सारं राजते नितरांश्रिया ॥३६॥

अर्थः—शुद्ध-निर्विकार स्फटिक मणिमय दीवालो से युक्त, वैडूर्यमणिमय खम्भो से सुशोभित, अनेक प्रकार के रत्नो की प्रभा से व्याप्त, दिव्य आमोद से ग्रहण-सुगन्धित किया है दिशाओ को जिसने ऐसा जगत के सार स्वरूप जिनेन्द्र प्रतिमाओ सम्बन्धी देवच्छन्द नाम का गर्भगृह अत्यन्त शोभा से सुशोभित होता है ॥३५-३६॥

ध्वजाओं, मुखमण्डपों और प्राकारों का निर्धारण करते हैः—

सद्रत्नवेदिकाग्रेषु सुपीठ शिखरेषु च ।
मणिस्तम्भेषु राजन्ते महान्तोऽत्र ध्वजोत्कराः ॥३७॥
सिंहहस्तिध्वजा हंसवृषभाब्ज शिखिध्वजा ।
मकरध्वजचक्रातपत्राख्याःगरुडध्वजाः ॥३८॥
एते महाध्वजा रम्या दशभेद युता शुभाः ।
प्रत्येकं च पृथग्रूपा अष्टोत्तरशतप्रमाः ॥३९॥

एकैक सद्ध्वजानां सम्बन्धिनः क्षुल्लकध्वजाः ।
अष्टाग्रशतसंख्याताः सन्ति मुक्तास्रगङ्किताः ॥४०॥
एते सर्वे ध्वजव्राता गोपुरेभ्यः समुन्नताः ।
मुखमण्डपसंज्ञानां त्रयाणां स्युर्बहिर्दिशि ॥४१॥
सुवर्णमणिसद्रूप्यमयाश्च योजनोच्छ्रिताः ।
स्युः प्राकारास्त्रयस्तत्र महान्तो रचनाङ्किताः ॥४२॥
प्राकारंप्रति चत्वारि सद्रत्नगोपुराण्यपि ।
सन्त्युत्तुङ्गानि दीप्तानि योजनैः षोडशप्रमैः ॥४३॥
शतैकयोजनायामाः पञ्चाशद्विस्तरान्विताः ।
क्रोशद्वयावगाहाः प्रोन्नताः षोडशयोजनैः ॥४४॥
संतप्तहेमदीप्ताङ्गा विचित्ररत्नचित्रिताः ।
नित्योत्सवयुतारम्या विज्ञेया मुखमण्डपाः ॥४५॥

अर्थः—श्रेष्ठ रत्न वेदिकाओं के अग्रभाग पर, पीठ के शिखर पर और मणिमय खम्भों के ऊपर महान ध्वजाओं के समूह शोभायमान होते हैं। वे अत्यन्त रमणीय महा ध्वजा समूह सिंह, हाथी, हंस, वृषभ, कमल, मयूर, मकरध्वज, चक्र, आतपत्र और गरुड के भेद से दश प्रकार के है। इन प्रत्येक भेदों की भिन्न भिन्न एक सौ आठ, एक सौ आठ (१०८ × १० = १०८०) ध्वजाएँ होतीं है और उन १०८ ध्वजाओं के भी पृथक्-पृथक् एक सौ आठ, एक सौ आठ छोटा ध्वजाएँ (१०८० × १०८ = ११६६४०) मुक्ता की मालाओं से सुशोभित होती है ॥३७-४०॥

ये समस्त ध्वजाओ के समूह गोपुरो से ऊँचे हैं। तीनों मुखमण्डपों के बाहर तीन कोट हैं। ये तीनो कोट, स्वर्ण, मणि एव रजतमय है, एक योजन ऊँचे तथा महान रचना से सहित है। प्रत्येक कोट में उत्तम रत्नों से भास्वर एव उत्तुङ्ग चार चार गोपुरद्वार (प्रतोली) है, जो सोलह योजन ऊँचे है ॥४१-४३॥

तपाये हुये स्वर्ण के सदृश देदीप्यमान, नानाप्रकार के रत्नों से खचित, सदैव होने वाले महा महोत्सवों से युक्त और अत्यन्त रमणीय मुखमण्डप भी सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े, सोलह योजन ऊँचे और अर्ध योजन नीव वाले जानना चाहिये ॥४४-४५॥

अब प्रेक्षागृह एवं सभागृहों का वर्णन करते हैः—

तदग्रेयोजनानां च शतैकायामविस्तराः ।
भवन्त्यर्धावगाहाः प्रोत्तुङ्गाः षोडशयोजनैः ॥४६॥

नानारत्नमया रम्याः प्रेक्षागृहा मनोहराः ।
त्रेषां च पुरतः सन्तितुङ्गाः षोडशयोजनैः ।।४७।।
योजनानां चतुःषष्टिदीर्घव्यासान्विताः पराः ।
हेमरत्नमयास्तेजोजालावृताः सभागृहाः ।।४८।।
तेषां सभागृहाणां कांचन पीठानिसन्ति च ।
अशीतियोजनायामविस्तृतानि शुभान्यपि ।।४९।।
द्वियोजनोच्छ्रितान्युच्चैः पद्मवेदीयुतानि वै ।
मनोहराणि रम्याणि प्रदीप्तैर्मणि तोरणैः ।।५०।।

अर्थ—उन मुखमण्डपो के आगे सौ योजन लम्बे, सौ योजन चौडे, सोलह योजन ऊँचे, अर्ध योजन नीव से युक्त अनेक रत्नो से व्याप्त, अत्यन्त रमणीक और मन को हरण करने वाले प्रेक्षागृह है । उन प्रेक्षागृहो के आगे सोलह योजन ऊँचे, चौसठ योजन लम्वे, चौसठ योजन चौडे, दीप्ति समूह से आवृत्त स्वर्ण एव रत्नमय उत्तम सभागृह है ।।४६–४८।। उन सभागृहो के पीठ स्वर्णमय है, तथा अस्सी योजन लम्बे, अस्सी योजन चौडे और अत्यन्त सुन्दर है । वे पीठ देदीप्यमान मणियो के दो योजन ऊँचे तोरणो से सयुक्त, अत्यन्त रमणीक और मनोहर पद्मवेदी से रम्य है ।।४९–५०।।

अब नवस्तूप और मानस्तम्भ का वर्णन करते है:—

तेषां सभालयानां पुरतः स्तूपा नवोर्जिताः ।
योजनानां चतुःषष्ट्यायामव्यासोन्नताः शुभाः ।।५१।।
जिनेन्द्रप्रतिमापूर्णा मेखलात्रयसयुताः ।
चतुर्विंशतिसद्धेमवेदीभिर्वेष्टिताः पराः ।।५२।।
रत्नपीठेषु चत्वारिंशद्योजनोच्छ्रितेषु च ।
स्फुरद्रत्नमयाः सन्ति स्थितादेवखगार्चिताः ।।५३।।
गोपुराणां बहिर्भागे वीथीनां मध्यभूमिषु ।
मानस्तम्भा भवन्त्युच्चै दीप्ता घण्टाद्यलकृताः ।।५४।।

अर्थ—उन सभागृहो के आगे चालीस योजन ऊँचे रत्नमय पीठो पर देव और विद्याधरो से पूजित देदीप्यमान रत्नमय जिनेद्र प्रतिमाओ से सयुक्त, तीन मेखलाओ से वेष्टित चौसठ योजन लम्बे, चौसठ योजन चौड़े और चौसठ योजन ऊँचे, श्रेष्ठ स्वर्णमय चौवीस वेदियो से परिवेष्टित, अति उत्तम और अत्यन्त सुन्दर नव स्तूप हैं ।।५१–५३।। गोपुरो के वाह्यभाग मे तथा वीथियो (गलियो) की मध्यभूमि मे अतिशय प्रभावान् और घण्टा आदि से अलकृत मानस्तम्भ है ।।५४।।

अब चैत्यवृक्ष का वर्णन सात श्लोकों द्वारा करते हैं:—

स्तूपानां पुरतोगत्वा हेमपीठं भवेन्महत् ।
सहस्रयोजनायाम विस्तारंमणिभास्वरम् ॥५५॥
युतं द्वादशवेदीभिर्वरंतोरणमण्डितम् ।
पीठस्योपरिसन्ति प्रोन्नताः षोडशयोजनैः ॥५६॥
अष्टयोजनविस्तीर्णाश्चैत्यवृक्षाः शुभप्रदाः ।
रम्याः सिद्धार्थनामानो महान्तः सुरपूजिताः ॥५७॥
एकं लक्षं च चत्वारिंशत्सहस्रं तथा शतम् ।
विंशत्यग्रमिमासंख्याविज्ञेया चैत्यशाखिनाम् ॥५८॥
द्रुमाणां भूतलाद्गत्वा चत्वारियोजनानि च ।
चतुर्दिक्षुचतस्रः स्युर्द्विषट्कयोजनायताः ॥५९॥
योजनैकसुविस्तीर्णा महाशाखाः क्षयातिगाः ।
मूलेषु चैत्यवृक्षाणां चतुर्दिक्षु मनोहराः ॥६०॥
जिनेन्द्रप्रतिमाः शाश्वताः पल्यङ्कासन स्थिताः ।
भवेयुर्मणिदीप्ताङ्गा प्रातिहार्यश्रियार्चिताः ॥६१॥

अर्थः—स्तूपो के आगे (पूर्व दिशा की ओर) जाकर एक हजार योजन लम्बा और एक हजार योजन चौडा, मणियो की प्रभा से दीप्तवान्, बारह वेदियों से वेष्टित तथा उत्तम तोरणों से मण्डित एक स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के ऊपर सोलह योजन ऊँचा और आठ योजन चौडा अति शोभायुक्त, रमणीक और देवो से पूजित एक सिद्धार्थ नाम का महान चैत्यवृक्ष है ॥५५–५७॥ उस चैत्यवृक्ष के परिवार वृक्षो की संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस जानना चाहिये ॥५८॥

चैत्यवृक्ष के भूमितल भाग से चार योजन ऊपर जाकर बारह योजन लम्बी और एक योजन चौडी प्रमाण वाली तथा विनाश से रहित चार महाशाखाएँ चारो दिशाओ में फैली है। चैत्यवृक्षों के मूलभाग को चारो दिशाओ मे पल्यङ्कासन (पद्मासन) से स्थित एक एक जिनेन्द्र प्रतिमाएँ है। जो अपनी सुन्दरता से मन को हरण करने वाली, उत्पत्ति विनाश से रहित, मणियो की दीप्ति से भास्वर शरीर वाली तथा अष्टप्रातिहार्य आदि लक्ष्मी से सेव्यमान है ॥५९–६१॥

अब ध्वजापीठ, स्तम्भ, ध्वजासमूह और वापियों का वर्णन पाँच श्लोकों के माध्यम से करते हैं:—

ततश्चैत्यद्रुमेभ्योऽनुगत्वा प्राग्दिग्महीतले ।
महत्पीठं ध्वजौघानां स्याद्वेदीद्वादशाङ्कितम् ॥६२॥

पीठस्योपरिचोत्तुङ्गाः सन्ति षोडशयोजनैः ।
क्रोशव्यासामहास्तम्भाः सद्वैडूर्यमयाः शुभाः ।।६३।।
स्तम्भानां शिखरेषुस्युर्नानावर्णान्विता ध्वजाः ।
छत्रत्रयांकिता मूर्ध्निदिव्यरूपाश्च्युतोपमाः ।।६४।।
ध्वजानांपुरतो वाप्यो दीर्घाः शतैकयोजनैः ।
पञ्चाशद्विस्तृताः स्युश्चावगाहा दशयोजनैः ।।६५।।
युताः काञ्चनवेदीभिर्मणि तोरणभूषिताः ।
निर्जन्तुजलसम्पूर्णाः शाश्वताः कमलाश्रिताः ।।६६।।

अर्थ —उस चैत्यवृक्ष से पुनः पूर्व दिशा मे जाकर पृथ्वीपर बारह वेदियो से सयुक्त ध्वजासमूहो का एक विशाल पीठ है ।।६२।। उस पीठ के शिखर पर सोलह योजन ऊँचे और एक कोस विस्तार से युक्त वैडूर्यमणिमय अति शोभायुक्त महास्तम्भ (खम्भे) हैं ।।६३।। इन खम्भो के शिखरो पर विविध वर्णो से समन्वित, शिखर पर तीन छत्रो से सुशोभित, दिव्य रूप से सम्पन्न और अनुपम ध्वजाएँ हैं ।।६४।। उन ध्वजाओं के आगे सौ योजन लम्बो, पचास योजन चौडो और दश योजन गहरी, स्वर्ण वेदियो से वेष्टित, मणिमय तोरणो से विभूषित, निर्जन्तु अर्थात् स्वच्छ जल से परिपूर्ण और कमलो से व्याप्त, शाश्वत विद्यमान रहने वाली वापियाँ हैं ।।६५–६६।।

अब क्रीड़ा प्रासादों का और तोरणों के विस्तार आदि का वर्णन करते हैः—

वापीनां प्राक्तने भागे ह्यु त्तरे दक्षिणे शुभाः ।
स्वर्णरत्नमयाः सन्ति प्रासादाः कृत्रिमातिगाः ।।६७।।
पञ्चाशद्योजनोत्सेधाः पञ्चविंशति योजनैः ।
आयामव्याससंयुक्ता रत्नवेद्याद्यलंकृताः ।।६८।।
एषु क्रीडागृहेषूच्चैः देवाः क्रीडां प्रकुर्वते ।
तेभ्यः पूर्वदिशंगत्वा विचित्रं रत्नतोरणम् ।।६९।।
स्याद्योजनशतार्धोच्चं पञ्चविंशति विस्तरम् ।
मुक्तादामांकितं रम्यं वरघण्टाचयान्वितम् ।।७०।।

अर्थः—उन वापियो के पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों मे अत्यन्त शुभ, स्वर्ण एवं रत्नमय तथा अकृत्रिम क्रीड़ा प्रासाद हैं । वे क्रीड़ागृह पचास योजन ऊँचे, पच्चीस योजन लम्बे एवं चौड़े और रत्नो की वेदी आदि से अलंकृत है । उन क्रीड़ागृहो मे देवगण नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते है । उन

क्रीड़ागृहों से आगे पूर्व दिशा में जाकर रत्नों से व्याप्त विचित्र तोरण है, जो पचास योजन ऊँचा, इससे आधा अर्थात् पच्चीस योजन चौडा, मुक्ता माला से संयुक्त, रमणीय एवं उत्तम घण्टा समूह से समन्वित है ।।६७-७०।।

अब प्रासादों, ध्वजाओं और वनखण्डों का निर्देश करते हैं:—

ततोऽस्यतोरणस्यैव पार्श्वयोः स्तो द्वयोः परौ ।
द्वौ द्वौ सद्रत्नगेहौ च शतैकयोजनोन्नतौ ।।७१।।
ततः परं विचित्राः स्युर्ध्वजव्राताः समुन्नताः ।
नानावर्णमहान्तोऽशीतिसहस्रप्रमाणकाः ।।७२।।
शततोरण संयुक्ता वनवेदी प्रवेष्टिताः ।
ततः परे महीभागे वनखण्डं स्फुरत्प्रभम् ।।७३।।
वनवेदीयुतं रत्नतोरणाढ्यं मनोहरम् ।
विचित्रमणिपीठाग्रस्थितद्रुमौघशोभितम् ।।७४।।
विद्रुमोत्थमहाशाखंहेमपुष्पौघशोभितम् ।
वैडूर्यफलपूर्णमरकताश्मसुपत्रकम् ।।७५।।
चम्पकाशोकवृक्षाम्रसप्तपर्णद्रुमैश्चितम् ।
कल्पपादपसंकीर्णंशाश्वतं स्यात् खशर्मदम् ।।७६।।

अर्थः—इसके आगे तोरण के दोनों पार्श्वभागों में सौ सौ योजन ऊँचे और उत्तम रत्नों के दो दो भवन है ।।७१।। इसके आगे विविध वर्ण के, समुन्नत और महान् एक हजार अस्सी (१०८×१० =१०८०) सख्या प्रमाण विचित्र ध्वजाओ के समूह है, जो सौ तोरणों से सयुक्त और उत्तम वनवेदी से परिवेष्टित है । इसके आगे पृथ्वीतल पर देदीप्यमान प्रभा से भासुर वनखण्ड है, जो वनवेदी से युत; रत्नतोरणो से सयुक्त, मन को हरण करनेवाले, नाना प्रकार की मणि पीठों के अग्रभाग पर स्थित वृक्षसमूहो से सुशोभित, विद्रुम अर्थात् प्रवालमय शाखाओं की शोभा से युक्त, स्वर्ण के पुष्प समूह से समृद्ध, वैडूर्यमय फलो से व्याप्त, मरकत मणि के पत्थरमय उत्तम पत्रों से सकीर्ण, चम्पक, अशोकवृक्ष, आम्र एव सप्तपर्ण के वृक्षों द्वारा गहन, अन्य कल्पवृक्षों से परिपूर्ण, अनाद्यनिधन और इन्द्रियों को सुख देने वाले है ।।७२-७६।।

अब मेरु के जिन भवनों की अवस्थिति और अन्य वनों आदि में स्थित जिनालयों के विस्तार आदि का वर्णन पाँच श्लोकों द्वारा करते हैं:—

तेषां कल्पद्रुमाणांसन्मूले स्युर्जिनमूर्तयः ।
चतुर्दिक्षुमहादीप्ताः प्रातिहार्याद्यलंकृताः ।।७७।।

इत्यादि रचनाभिश्च यथा यं श्रीजिनालयः ।
वर्णितः पूर्वदिग्भागे मेरोराद्यवनेऽखिलः ॥७८॥
तथापरे जिनेन्द्राणां मेरोर्दिक्‌त्रिषु संस्थिताः ।
समानवर्णनोपेताज्ञेयाश्चैत्यालयास्त्रयः ॥७९॥
इत्येवं वर्णनैः सर्वे जिनालया अकृत्रिमाः ।
समानाः सदृशाज्ञेयाः स्थितालोकत्रयेपरे ॥८०॥
किन्त्वन्येषां जिनेन्द्रालयानां स्याद्वर्णनापृथक् ।
मध्यमानां जघन्यानामायामोत्सेधविस्तरैः ॥८१॥

अर्थ —उन कल्पवृक्षो के मूलभाग की चारो दिशाओं मे महादीप्तवान् एवं प्रातिहार्य आदि से अलकृत जिनेन्द्रो की प्रतिमाएँ है ॥७७॥ जिस प्रकार सुदर्शन मेरु के प्रथम–भद्रशाल वन के पूर्व भाग मे स्थित श्री जिनमन्दिर का अनेक प्रकार की रचना आदि के द्वारा सम्पूर्ण वर्णन किया है, उसी प्रकार सुदर्शन मेरु सम्बन्धी भद्रशाल वन मे तीनो दिशाओ मे स्थित तोन चैत्यालयों का वर्णन जानना चाहिये ॥७८–७९॥ इस प्रकार तीन लोक मे स्थित अन्य समस्त अकृत्रिम जिनालयो की रचना आदि का समस्त वर्णन उपर्युक्त वर्णन के सदृश ही जानना चाहिये, परन्तु अन्य जिनालयो अर्थात् मध्यम जिनालयो और जघन्य जिनालयो के आयाम, उत्सेध और विस्तार आदि का वर्णन पृथक् पृथक् है ॥८० ८१॥

अब देवों, विद्याधरों एवं अन्य भव्यों द्वारा की जाने वाली भक्ति विशेष का निदर्शन करते है:—

एषु श्रीजिनगेहेषु कुर्वन्त्युच्चैर्महामहम् ।
जिनेन्द्र दिव्यमूर्तीनामागत्य भक्तिनिर्भराः ॥८२॥
चतुर्णिकायदेवेशा देवदेव्यादिभिः समम् ।
प्रत्यहं स्वर्गलोकोत्थैर्महार्चा द्रव्य भूरिभिः ॥८३॥
खगेशाः खचरीभिश्च सहाभ्येत्यात्र पूजनम् ।
अर्हतां विविधं कुर्यु र्भक्त्या दिव्याष्टधार्चनैः ॥८४॥
चारणा ऋषयो नित्यं जिनेन्द्रगुणरञ्जिताः ।
अत्रैत्य जिनचैत्यादीन् प्रणमन्ति स्तुवन्ति च ॥८५॥
अन्येऽपि बहवो भव्या प्राप्तविद्या वृषोत्सुकाः ।
जिनार्चा अर्चयन्त्यत्र भक्त्या नरोत्तमाः सदा ॥८६॥

एषु चाप्सरसो नित्यं कुर्वन्ति नृत्यमूर्जितम् ।
जिनेशगणभृद्दिव्य चरित्रैरीक्षणप्रियम् ।।८७।।
दिव्यकण्ठाश्च किन्नर्यो गन्धर्वा वीणया समम् ।
गायन्ति सारगीतानि तीर्थेश गुणजान्यपि ।।८८।।
इत्युत्सवशतैः पूर्णा विश्व चैत्यालया इमे ।
संक्षेपेण मया प्रोक्ता महापुण्य निबन्धनाः ।।८९।।
यतोऽमीषां पराः शोभा महतीरचनाभुवि ।
मुक्त्वा गणाग्रिमं कोऽत्र बुधो वर्णयितुं क्षमः ।।९०।।

अर्थः—अपूर्व भक्तिरस से भरे हुये चारों निकाय के इन्द्र उत्कृष्ट विभूति, देव देवियों एवं स्वर्ग लोक मे उत्पन्न हुई महापूजा के योग्य अपरिमित द्रव्य सामग्री के साथ आकर उपर्युक्त वर्णित श्री जिनालयो में स्थित जिनेन्द्रदेव की दिव्य मूर्तियों की प्रतिदिन महामह पूजन करते है ।।८२-८३।। विद्याधरों के अधिपति भी अन्य विद्याधर एवं विद्याधरियों के साथ यहाँ (अकृत्रिम जिन चैत्यालयों मे) आकर भक्ति पूर्वक अष्ट प्रकार की दिव्य सामग्री के द्वारा अर्हन्त भगवान की नाना प्रकार से पूजन करते है ।।८४।। जिनेन्द्र के गुणों में अनुरञ्जित है मन जिनका ऐसे चारणऋद्धि धारी मुनिराज नित्य ही मेरु आदि पर आकर जिनेन्द्र प्रतिमाओ को प्रणाम करते है और स्तुति करते है ।।८५।। अन्य भी और बहुत से विद्या प्राप्त, धर्म उत्सुक एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ भव्य जीव भक्ति से प्रेरित होकर यहाँ नित्य ही जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करते है ।।८६।। और वहाँ पर अप्सराएँ नित्य ही जिनेन्द्र भगवान् एवं गणधर देवों के सर्वोत्तम चारित्र के अभिनय द्वारा, देखने में अत्यन्त प्रिय और श्रेष्ठ नृत्य करती है। दिव्य कण्ठ वाली किन्नरियाँ और गन्धर्व वीणा द्वारा जिनेश तीर्थङ्करों के गुणो से उत्पन्न हुये गीत तथा और भी सारगर्भित उत्तम गीत गाते है। इस प्रकार ये समस्त अकृत्रिम चैत्यालय सहस्रों महोत्सवों से व्याप्त रहते है। महा पुण्य बन्ध के हेतुभूत इन चैत्यालयों का वर्णन मेरे (आचार्य) द्वारा संक्षिप्त रूप से किया गया है, क्योकि लोक मे उत्कृष्ट शोभा और महान रचनाओं से व्याप्त इन अकृत्रिम चैत्यालयो का सम्पूर्ण वर्णन करने के लिये तीर्थङ्कर को छोड कर अन्य कौन विद्वान समर्थ है ? अर्थात् कोई नही है ।।८७-९०।।

अब मध्यम जिनालयों एवं उनके द्वारों का प्रमाण कहते हैः—

पञ्चाशद्योजनायामाः पञ्चविंशति विस्तृताः ।
सार्धसप्ताधिकैस्त्रिंशद्योजनैः प्रोन्नताः शुभाः ।।९१।।
द्विगव्यूत्यवगाहाः स्युर्मध्यमाः श्रीजिनालया ।
अमीषां मुख्य मुद्वारमुत्तुङ्गमष्टयोजनैः ।।९२।।

चतुर्योजनविस्तीर्णं चान्यद् द्वारद्वयं भवेत् ।
चतुर्भियोजनैस्तुङ्गं योजनद्वय विस्तरम् ॥९३॥

अर्थ —मध्यम अकृत्रिम जिनालय पचास योजन लम्बे, पच्चीस योजन चौडे, साढे सैंतीस (३७½) योजन ऊँचे और अर्ध योजन नीव से युक्त होते है। इनके उत्तम प्रधान द्वार की ऊँचाई आठ योजन और चौडाई चार योजन प्रमाण है, तथा अन्य दो द्वारो की ऊँचाई चार योजन और चौडाई दो योजन प्रमाण होती है ॥९१-९३॥

अब जघन्य जिनालयों एवं उनके द्वारों का प्रमाण बतलाते हैः—

पञ्चविंशति संख्यानैर्योजनैरायता: परे ।
क्रोशद्वयाधिकद्वादश योजन सुविस्तृता: ॥९४॥
त्रिकक्रोशाधिकाष्टादशयोजन समुन्नता: ।
द्वयक्रोशावगाहा: स्युर्जघन्या: श्रीजिनालया: ॥९५॥
एतेषामग्रिमं द्वारं स्याच्चतुर्योजनोन्नतम् ।
योजनद्वय विस्तीर्णं लघुद्वारद्वयं परम् ॥९६॥
द्वियोजनोच्छ्रितं च स्यादेकयोजन विस्तृतम् ।
अपरा वर्णना प्रोक्ता समाना श्रीजिनागमे ॥९७॥

अर्थ —जघन्य अकृत्रिम जिनालय पच्चीस योजन लम्बे, साढे बारह (१२½) योजन चौडे, १८¾ योजन ऊँचे और अर्ध योजन नीव से युक्त होते है। इन चैत्यालयो के प्रधान द्वार चार योजन ऊँचे और दो योजन चौडे होते है, तथा दोनो लघुद्वार दो योजन ऊँचे और एक योजन चौडे होते है। जिनागम मे इन तीनो प्रकार के अकृत्रिम जिनालयो का अवशेष वर्णन समान ही कहा गया है ॥९४-९७॥

अब तीनों प्रकार के जिनालयों की अवस्थिति का निर्धारण करते हैः—

भद्रशालेषु सर्वेषु मेरूणां नन्दनेषु च ।
वनेषु स्वर्विमानेषु नन्दीश्वरेषु सन्ति ये ॥९८॥
उत्कृष्टायामविस्तारोत्सेधैर्युक्ता जिनालया: ।
उत्कृष्टास्ते जिनैः प्रोक्ता सर्वे पूज्या नरामरैः ॥९९॥
मेरुसौमनसोद्यानेषु विश्वेषु कुलाद्रिषु ।
वक्षारगजदन्तेषु चेष्वाकारनगेष्वपि ॥१००॥

कुण्डले रुचकेशैले मानुषोत्तरनामनि ।
ये स्युश्चैत्यालयास्तेऽत्र दीर्घाद्यैर्मध्यमा मताः ॥१०१॥

ये पाण्डुकवने ते स्युर्जघन्याः श्रीजिनालयाः ।
सर्वेषां विजयार्धानां जम्बूशालमलिशाखिनाम् ॥१०२॥

क्रोशायामाः परे क्रोशार्धव्यासाः प्रोन्नताः शुभाः ।
क्रोशपादत्रयैर्ज्ञेया विश्वे श्रीजिनमन्दिराः ॥१०३॥

अर्थः—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुये और मनुष्यों एवं देवों द्वारा पूज्य उत्कृष्ट जिनालय पञ्चमेरु सम्बन्धी भद्रशाल वनो और नन्दन वनो में तथा नन्दीश्वर द्वीप और वैमानिक देवों के विमानों में है। इनका आयाम, विस्तार एवं ऊँचाई उत्कृष्ट ही कही गई है ॥९८–९९॥ पञ्चमेरु सम्बन्धी सौमनस वनों में समस्त कुलाचलों पर, वक्षार पर्वतों पर, गजदन्त पर्वतो पर, इष्वाकार पर्वतों पर, कुण्डलगिरि, रुचकगिरि और मानुषोत्तर पवतो पर जो जिनालय है, उनकी दीर्घता आदि का प्रमाण मध्यम माना गया है ॥१००–१०१॥ पञ्चमेरु सम्बन्धी पाण्डुकवनो में जो जिनालय अवस्थित है, उनका व्यासादिक जघन्य प्रमाण वाला है। समस्त विजयार्धो, जम्बूवृक्षो एवं शाल्मलि वृक्षो पर स्थित जिनालय एक कोस लम्बे, अर्धकोस चौड़े और पौन कोस ऊँचे है, ऐसा जानना चाहिये ॥१०२–१०३॥

अब भवनत्रिक सम्बन्धी एवं अन्य जिनालयों के साथ अष्टप्रातिहार्यो का कथन करते हैं:—

भावनव्यन्तरज्योतिष्क विमानेषु सन्ति ये ।
चैत्यालयाश्च ते जम्बूवृक्ष चैत्यालयैः समाः ॥१०४॥

अन्येषु वन सौधाद्रिपुरादिषु सुधाभुजाम् ।
भवन्ति ये जिनागारा बह्वो विविधाश्च ते ॥१०५॥

आयामविस्तरोत्सेधैर्बुधैर्ज्ञेया वरागमे ।
यतोऽत्र सन्ति सर्वत्र जिनागाराजगत्त्रये ॥१०६॥

भृङ्गारकलशादर्श व्यञ्जनध्वजचामराः ।
सुप्रतिष्ठातपत्राश्च मङ्गलद्रव्यसम्पदा ॥१०७॥

प्रत्येकं हि पृथग्भूता अष्टोत्तरशतप्रमाः ।
एता भवन्ति सर्वेषु जिनचैत्यालयेष्वपि ॥१०८॥

अर्थ —भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिष्क देवो के विमानो अर्थात् भवनों मे जो चैत्यालय है, उनका प्रमाण जम्बूवृक्ष स्थित चैत्यालयो के प्रमाण सदृश ही है ।।१०४।। अन्य वन, प्रासाद और नगर आदि मे स्थित देवो के आवास सम्बन्धी जिनालय बहुत और नाना प्रकार के है। इनका आयाम, विस्तार एव उत्सेध आदि भी जिनागम मे अनेक प्रकार का कहा है, जो विद्वानों के द्वारा जानने योग्य है। तीन लोक मे सर्वत्र जितने भी अकृत्रिम जिन मन्दिर है ।।१०५-१०६।। उन समस्त जिनालयो मे भृङ्गार, कलश, दर्पण, वीजना, ध्वजा, चामर, ठोना और छत्र ये अष्ट द्रव्य रूप सम्पदा पृथक्-पृथक् एक सौ आठ-एक सौ आठ प्रमाण होते है। अर्थात् एक एक जाति के उपकरण एक सौ आठ-एक सौ आठ (१०८×८=८६४) होते है।।१०७-१०८।।

अब लोकस्थ समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों (आचार्य) नमस्कार करते है:—

ये त्रैलोक्ये स्थिताः श्रीजिनवरनिलया मेरुनन्दीश्वरेषु,
चेष्वाकारेभदन्तेषु वरकुलनगेष्वेवरूप्याचलेषु ।
मान्वादौषोत्तरे कुण्डलगिरिरुचकेजम्बुवृक्षेतरेषु,
वक्षारेष्वेव सर्वेष्वपि शिवगतये स्तौमि तांस्तज्जिनार्चाः ।।१०९।।

अर्थः—जो तीन लोक मे स्थित अर्थात् विमानवासी, भवनवासी, व्यन्तरवासी एवं ज्योतिष्क देवो के स्थानो पर स्थित तथा पञ्चमेरु सम्बन्धी—भद्रशाल आदि वनो के ८०, चार इष्वाकारों के ४, वीस गजदन्तो के २०, तीस कुलाचल पर्वतो के ३०, एक सौ सत्तर विजयार्ध पर्वतो के १७०, एक मानुषोत्तर के ४, दश जम्बू एवं शाल्मलि वृक्षो के दश तथा अस्सी वक्षार पर्वतो के ८०, नरलोक सम्बन्धी और नन्दीश्वर द्वीप के ५२, कुण्डलगिरि के ४ और रुचकगिरि के ४, इसप्रकार मध्यलोक सम्बन्धी ४५८ जिनालय एवं उनमे स्थित जिन प्रतिमाएँ है उन सबकी मै मोक्ष प्राप्ति के लिये स्तुति करता हूँ ।।१०९।।

अधिकारान्त मङ्गलाचरणः—

त्रिभुवनपतिपूज्यांस्तीर्थनाथांश्च सिद्धान्,
त्रिभुवनशिखरस्थान् पञ्चधाचारदक्षान् ।
मुनिगणपतिसूरीन् पाठकान् विश्वसाधून्,
ह्यसमगुणसमुद्रान्नौम्यहं तद्गुणाप्त्यै ।।११०।।

इतिश्री सिद्धान्तसारदीपकम् ग्रन्थे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते सुदर्शनमेरु भद्रशालवनजिनचैत्यालयवर्णनोनाम षष्ठोऽधिकारः ।।

अर्थः—त्रिभुवनपति अर्थात् शतेन्द्र पूज्य अर्हन्त परमेष्ठियों को, त्रैलोक्य शिखर पर स्थित सिद्धपरमेष्ठियो को, पञ्चाचार पालन में दक्ष ऐसे मुनिसमूह के अधिपति आचार्य परमेष्ठियों को और अनुपम गुणो के समुद्र समस्त उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठियो को मै उनके गुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।११०।।

इसप्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक
नाम महाग्रन्थ में सुदर्शनमेरु, भद्रशाल वन एवं
जिनचैत्यालयो का वर्णन करने वाला
छठवाँ अधिकार ।। समाप्त ।।



सप्तमोऽधिकारः



मङ्गलाचरण:--

जिनालयान् जिनार्चाश्च जिनेन्द्रान् जिनलिङ्गिनः ।
जिननिर्वाणभूम्यादीन् वन्दे जिनागमध्वनीन् ।।१।।

अर्थ.—जिनमन्दिरो, जिनप्रतिमाओ, जिनेन्द्रदेवो, जिनसाधुओ, जिन निर्वाणभूमि आदिको को तथा जिनागम को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१।।

अब गजदन्तों का अवस्थान एवं वर्ण कहते हैं:--

आग्नेयदिशिमेरोः स्यान्महान्सौमनसाह्वयः ।
गजदन्तश्च रूपाभः सप्तकूटाग्र मण्डितः ।।२।।

नैऋत्यादिशि तस्यैव विद्युत्प्रभाभिधो भवेत् ।
गजदन्तः सुवर्णाभो नवकूटाङ्कितोऽद्भुतः ।।३।।

ऐशान्यां दिशिसन्मेरोर्गजदन्तोऽस्ति माल्यवान् ।
वैडूर्यरत्नदीप्ताङ्गो नवकूटान्वितः शुभः ।।४।।

वायव्यां दिशि रम्यः स्याद्गन्धमादन संज्ञकः ।
सप्तकूटाङ्कितो मूर्ध्नि शातकुम्भप्रभोऽचलः ।।५।।

अर्थ —सुदर्शन मेरु की आग्नेय दिशा में सात कूटो से मण्डित रजतमय महासौमनस नाम का गजदन्त है। नैऋत्य दिशा मे नवकूटो से अलकृत अद्भुत शोभा युक्त स्वर्णमय विद्युत्प्रभ नाम का गजदन्त है। ईशान दिशा मे नवकूटो से समन्वित, वैडूर्यरत्नो की दीप्ति से युक्त उत्तम माल्यवान् गजदन्त है, तथा वायव्य दिशा मे शिखर पर सात कूटो से सयुक्त, स्वर्णमय एव रमणीक गन्धमादन नाम का गजदन्त पर्वत है ।।२–५।।

अब गजदन्तों के विस्तार आदि का निर्धारण करते हैं:--

तेषां त्रिंशत्सहस्राणि नवाधिकशतद्वयम् ।
योजनानां कलाषट्प्रमाणंक योजनस्य च ।।६।।

भागानां सकलैकोन विंशति प्रमितात्मनाम् ।
आयामो गजदन्तानां व्यासः पञ्चशतानि च ।।७।।
नीलस्य निषधस्यान्तेऽमीषां चतुः शतान्यपि ।
योजनानां समुच्छ्रायो गजदन्तमहीभृताम् ।।८।।
क्रमवृद्धया समीपे[1] ते मेरोः पञ्चशतानि च ।
निजोन्नतेश्चतुर्थांशः सर्वत्रास्त्यवगाहता ।।९।।

अर्थः—इन चारों ही गजदन्तों की लम्बाई तीस हजार दो सौ नव योजन और एक योजन के उन्नीस भागो मे से छह भाग (३०२०९$\frac{६}{१९}$ योजन) प्रमाण है, तथा इनका व्यास पाँच सौ योजन प्रमाण है ।।६–७।। इन गजदन्त पर्वतों की ऊँचाई नील और निषध पर्वतो के समीप चार सौ योजन प्रमाण है । आगे वह क्रम से वृद्धिङ्गत होती हुई मेरु के समीप मे पाँच सौ योजन प्रमाण हो जाती है । इन पर्वतो का अवगाह (नीव) सर्वत्र अपनी ऊँचाई का चतुर्थांश अर्थात् नील–निषध के पास सौ योजन और मेरु के समीप सवा सौ योजन प्रमाण है ।।८–९।।

अब गजदन्तों पर स्थित कूटों के नाम कहते हैः—

सिद्धि सौमनस देवकुरुकूटं च मङ्गलम् ।
विमलं काञ्चनं कूटं विशिष्टाख्य मिमानि च ।।१०।।
स्युरत्रसप्तकूटानि सौमनसस्य मस्तके ।
सिद्धं विद्युत्प्रभाभिख्यं स्याद्देवकुरु संज्ञकम् ।।११।।
पद्माख्यं स्वस्तिकं कूटं तपनं च शितोज्वलम् ।
सीतोदानामकं कूट हरिकूटमिमान्यपि ।।१२।।
विद्युत्प्रभगिरेः सन्ति नवकूटानि मूर्धनि ।
सिद्धाख्यं माल्यवत्कूटं तथोत्तरकुरूक्तिकम् ।।१३।।
कच्छाख्यं सागराभिख्यं रजतं पूर्णभद्रकम् ।
सीताख्यं हरिकूटं नवेमानि माल्यवद्गिरौ ।।१४।।
सिद्धायतननामाढ्यं गन्धमादन संज्ञकम् ।
तथोत्तरकुरुप्राख्यं गन्धमालिनिकाभिधम् ।।१५।।
स्फाटिकं लोहितं कूटमानन्दाख्यमम्न्यपि ।
भवन्ति रत्नदीप्तानि गन्धमादन मस्तके ।।१६।।

---

१. समीपान्ते अ. ज. न.

अर्थ —सिद्ध, सौमनस, देवकुरु, मङ्गल, विमल, काञ्चन और विशिष्ट नाम के ये सात कूट महासौमनस के शिखर पर अवस्थित है। सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्म, स्वस्तिक, तपन, शितोज्वल सीतोदा और हरि नाम वाले ये नव कूट विद्युत्प्रभ के ऊपर स्थित है। सिद्ध, माल्यवान्, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, पूर्णभद्र, सीता और हरि नाम के नवकूट माल्यवान् पर्वत के ऊपर है, तथा सिद्धायतन, गन्धमादन, उत्तरकुरु, गन्धमालिनी, स्फटिक, लोहित और आनन्दकूट नाम के ये रत्नो की दीप्ति से भास्वर सात कूट गन्धवान् गजदन्त के मस्तक पर अवस्थित है ॥१०–१६॥

अब कूटों के स्वामी एवं उदय कहते है :—

सिद्धकूटोऽस्ति सर्वत्र प्रोन्नते मेरु सन्निधौ ।
प्रागुक्तवर्णनोपेतो जिनचैत्यालयो महान् ॥१७॥

कुलाचलसमीपस्थ कूटयोश्च द्वयोर्द्वयोः ।
वसतो दिग्वधूसञ्ज्ञे द्वे द्वे देव्याविमे शुभे ॥१८॥

चतुर्णां गजदन्तानां रत्नसौधे निजे निजे ।
मित्रादेवी सुमित्राख्या वारिषेणाचलाह्वयाः ॥१६॥

भोगाभोगवतीदेवो सुभोगाभोगमालिनी ।
इमान्यष्टसु नामान्यष्टदिग्वधूषु योषिताम् ॥२०॥

शेष मध्यस्थकूटानां वेश्मसु व्यन्तरामराः ।
स्वस्वकूटसमैः स्युर्नामभिर्युक्ताः प्रियान्विताः ।२१॥

स्वस्वाद्रीणां चतुर्थांशः कूटानामुदयः स्मृतः ।
आद्यन्तानां तु शेषाणां ह्रासो वृद्धिः पृथक् पृथक् ॥२२॥

अर्थ—चारो गजदन्तो पर मेरु के समीप जिनेन्द्र देव सम्बन्धी सिद्धातयन कूट है, जो एक सौ पच्चीस योजन ऊँचे है। इन चैत्यालयो का समस्त वर्णन पूर्वोक्त जिन चैत्यालय के वर्णन सदृश ही है ॥१७॥ चारो गजदन्तो पर कुलाचलो के समीप जो दो दो कूट है, उनमे दिग्वधू नाम की उत्तम दो-दो देवियाँ निवास करती है ॥१८॥ चारो गजदन्तो के अपने-अपने रत्नमय महलो मे अर्थात् महासौमनस गजदन्त के विमल और काञ्चन कूटो मे मित्रा और सुमित्रा देवी, विद्युत्प्रभ गजदन्त के स्वस्तिक और तपन कूटो पर क्रमशः वारिषेणा और अचला, माल्यवान् के सागर एव रजतकूटो पर क्रमशः भोगा और भोगवती तथा गन्धवान् गजदन्त के स्फटिक और लोहित कूटो पर क्रमश सुभोगा और भोगमालिनी नाम को (ये आठ) व्य तर देवियाँ निवास करती है ॥१६–२०॥

मध्य में स्थित अवशेष कूटों के गृहो में अपने-अपने कूटो के नामधारी और अपनी-अपनी देवांगनाओं से युक्त व्यन्तर देव रहते है ।।२१।। कूटो की ऊँचाई अपने-अपने गजदन्तो की ऊँचाई का चतुर्थ-भाग माना गया है। आदि और अन्तिम कूट को छोड़ कर शेष कूटों के ह्रास एवं वृद्धि का प्रमाण पृथक् पृथक् है ।।२२।।

विशेषार्थ —महासौमनस और माल्यवान् गजदन्तों पर नौ-नौ तथा विद्युत्प्रभ और गन्धवान् गजदन्तो पर सात-सात कूट अवस्थित है। मेरु के समीपस्थ कूटों की ऊँचाई १२५ योजन और कुलाचलो के समीपस्थ कूटो की ऊँचाई १०० योजन है। मध्य के कूटों की ऊँचाई का प्रमाण निकालने के लिए हानि चय का प्रमाण निकालना चाहिए। यथा–अतिम कूट की ऊँचाई के प्रमाण में से प्रथम कूट की ऊँचाई घटा कर अवशेष को एक कम पद से भाजित करने पर हानिचय का प्रमाण प्राप्त होता है और इसको एक कम इष्ट गच्छ से गुणित कर मुख मे जोडने से इष्ट कूटों की ऊँचाई प्राप्त हो जाती है। (त्रि० सा० गा० ७४६) जैसे:—१२५—१००=२५÷(एक कम पद अर्थात् ९—१=) ८=३$\frac{१}{८}$ योजन महासौमनस और माल्यवान् गजदन्तों पर स्थित कूटों का हानि–वृद्धिचय है और १२५—१०० =२५÷(७—१)=६=४$\frac{१}{६}$ विद्युत्प्रभ और गन्धवान् के कूटों का हानि—वृद्धि चय है। चय को इष्ट गच्छ से गुणित कर मुख मे जोडते जाने से प्रत्येक कूटो की ऊँचाई प्राप्त हो जातो है।

अथ कूटानां प्रत्येकमुत्सेधो व्याख्यायते:—

सौमनसस्य गन्धमादनस्य च गिरे कुल पर्वतपार्श्वे प्रथमे लघुकूटे उन्नतिर्योजनानां शतं स्यात्। द्वितीये च चतुरुत्तर शत योजनस्य षड्भागानामेको भागः। तृतीये अष्टोत्तरशतं योजनस्यतृतीयोभागः। चतुर्थे द्वादशोत्तर शत द्वौ क्रोशौ च। पचमे षोडशाग्रशतयोजन त्रिभागाना द्वौ भागौ। षष्ठे विशत्यधिकशतं योजनषड्भागाना पञ्चभागा.। सप्तमे सर्वज्येष्ठकूटे मेरु समीपे उत्सेधः योजनानां पञ्चविंशत्यग्रशत स्यात्। विद्युत्प्रभगिरेर्माल्यवतश्च कुलाचल निकटे आदिमे लघुकूटे उन्नतिर्योजनानां शत भवेत्। द्वितीये कूटे च अर्धक्रोशाग्रत्रयोत्तरशत। तृतीये क्रोशधिकषडुत्तरशतं। चतुर्थे सार्धक्रोशाग्रनवोत्तरशतं। पञ्चमे सार्धद्वादशोत्तरशत। पष्ठे सार्धद्विक्रोशपञ्चदशाधिकशत। सप्तमे त्रिकोशाग्राष्टादशाधिकशतं। अष्टमेसार्धत्रिकोशाग्रैकविंशत्यधिकशत। नवमे सर्वबृहत्कूटे मेरुसन्निधौ योजनानामुत्सेधः पञ्चविंशत्यग्रशत स्यात्।

उपर्युक्त गद्यांश का समस्त अर्थ निम्नाङ्कित तालिका में निहित किया गया है:—

[प्रत्येक कूटो का पृथक् पृथक् उत्सेध तालिका अगले पृष्ठ पर देखे।]

प्रत्येक कूटों का पृथक् पृथक् उत्सेध

महासौमनस ग० के कूटो की			विद्युत्प्रभ ग० के कूटो की			माल्यवान् ग० के कूटो की			गन्धवान् ग० के कूटो की		
क्रम	नाम	ऊँचाई (यो० मे)	क्रम	नाम	ऊँचाई (यो० मे)	क्रम	नाम	ऊँचाई (यो० मे)	क्रम	नाम	ऊँचाई (यो० मे)
१	विशिष्ट	१०० योजन	१	हरि	१०० योजन	१	सिद्ध	१२५ योजन	१	सिद्ध	१२५ योजन
२	काचन	१०४ १/६ ,,	२	सीतोदा	१०३ १/८ ,,	२	माल्यवान्	१२१ ७/८ ,,	२	गन्धमादन	१२० ५/६ ,,
३	विमल	१०८ १/३ ,,	३	शीतोज्वल	१०६ १/४ ,,	३	उत्तरकुरु	११८ ३/४ ,,	३	उत्तरकुरु	११६ २/३ ,,
४	मगल	११२ १/२ ,,	४	तपन	१०९ ३/८ ,,	४	कच्छ	११५ ५/८ ,,	४	गधमालिनी	११२ १/२ ,,
५	देवकुरु	११६ २/३ ,,	५	स्वस्तिक	११२ ४/८ ,,	५	सागर	११२ १/२ ,,	५	स्फटिक	१०८ १/३ ,,
६	सौमनस	१२० ५/६ ,,	६	पद्म	११५ ५/८ ,,	६	रजत	१०९ ३/८ ,,	६	लोहित	१०४ १/६ ,,
७	सिद्ध	१२५ ,,	७	देवकुरु	११८ ३/४ ,,	७	पूर्णभद्र	१०६ १/४ ,,	७	आनन्द	१०० ,,
			८	विद्युत्प्रभ	१२१ ७/८ ,,	८	सीता	१०३ १/८ ,,			
			९	सिद्ध	१२५ ,,	९	हरि	१०० ,,			

अब पूर्व-अपर भद्रशालवनों की स्थिति, भद्रशालवनों की वेदियों से गजदन्तों का अन्तर एव उत्तम भोगभूमियों की अवस्थिति का वर्णन करते हैं:—

मूर्ध्निवै गजदन्तानामुभयोः पार्श्वयोर्भु वि ।
वेदिकातोरणैर्यु क्तं रम्यं च शाश्वतं वनम् ।।२३।।

स्यात् पूर्वभद्रशालाख्यापराभद्रादिशालयोः ।
अन्तरं वेदिकायाश्च गजदन्तमहीभृताम् ।।२४।।

शतपञ्चप्रमाणानि योजनानि पृथक् पृथक् ।
निषधस्योत्तरे भागे गजदन्तद्वयावृतम् ।।२५।।

यच्चापाकारसत्क्षेत्रमुत्कृष्टभोगभूतलम् ।
तद्दे वकुरुनाम स्याद् विश्वकल्पद्रुमैश्चितम् ।।२६।।

नीलस्य दक्षिणे पार्श्वे गजदन्तद्विवेष्टितम् ।
तादृशं भोगभूभागमन्योत्तर कुरूक्तिकम् ।।२७।।

अर्थः—गजदन्तो के दोनो पार्श्वभागो की उपरिम भूमि पर वेदिका और तोरणों से संयुक्त पूर्वभद्रशाल एव पश्चिम भद्रशाल नाम के रमणीक और शाश्वत वन है । इन पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल वनो की (चारो) वेदिकाओं से (चारो) गजदन्तो के (अन्तरग भाग का) पृथक् पृथक् अंतर पाँच सौ, पाँच सौ योजन प्रमाण है । (क्योंकि गजदन्तो का व्यास ५०० योजन है) निषध पर्वत की उत्तर दिशा मे विद्युत्प्रभ और महासौमनस इन दो गजदन्तो से वेष्टित धनुषाकार शुभ क्षेत्र है वही समस्त प्रकार के कल्पवृक्षों से युक्त देवकुरु नाम की उत्कृष्ट भोगभूमि है। इसी प्रकार नीलपर्वत की दक्षिण दिशा मे गन्धमादन और माल्यवान् इन दो गजदन्तों से वेष्टित उत्तरकुरुनाम की उत्कृष्ट भोग-भूमि है ।।२३-२७।।

अब उत्कृष्ट भोगभूमियों के धनुःपृष्ठ का प्रमाण कहते हैं:—

य एकत्रीकृतायामोऽनयोर्द्विगजदन्तयोः ।
तद्धि देवकुरोश्चोत्तरकुरोर्धनुरुच्यते ।।२८।।

अर्थः—विद्युत्प्रभ और सौमनस गजदन्तों की लम्बाई जोड़ने से देवकुरु के और गन्धमादन एव माल्यवान् गजदन्तो की लम्बाई जोड देने से उत्तर कुरु के धनुःपृष्ठ का प्रमाण प्राप्त होता है ।।२८।।

देवकुरूत्तरकुरुभोगभूम्योः प्रत्येक धनु पृष्ठं षष्टिसहस्र चतुःशताष्टादशयोजनानि योजनैकोनविंशतिभागाना द्वादशभागा. ।

अर्थः—देवकुरु उत्तमभोगभूमि के धनु पृष्ठ का प्रमाण ६०४१८$\frac{१२}{१९}$ योजन और उत्तरकुरु भोगभूमि के धनु पृष्ठ का प्रमाण ६०४१८$\frac{१२}{१९}$ योजन है।

अब देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमि की जीवा का प्रमाण कहते हैं :—

भद्रशालवनं द्विघ्नं मेरुव्यासेन योजितम् ।
सहस्रोनं भवेज्जीवामध्ये वेदिकयोर्द्वयोः ॥२९॥

अर्थ—भद्रशाल वन के प्रमाण को दूना करके उसमे मेरु का व्यास जोडना चाहिये। जो प्रमाण प्राप्त हो उसमे से दोनो वेदिकाओ और गजदन्तो के मध्य का अन्तर अर्थात् गजदन्तो की मोटाई (५००+५००) = एक हजार योजन घटा देने पर भोगभूमियो की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२९॥

विशेपार्थ-भद्रशालवन का प्रमाण २२००० यो है, इसे दुगुना करने पर (२२०००×२)=४४००० योजन हुये। इसमे मेरु व्यास १०००० योजन जोड देने से (४४०००+१००००)=५४००० योजन हुये। इसमे से भद्रशाल वन की दो वेदियो और गजदन्तो के बीच का अन्तर अर्थात् गजदन्तो की चौडाई (५००+५००)=१००० योजन है, अतः इसे घटा देने से देवकुरु, उत्तर कुरु की जोवा का प्रमाण ५४०००—१०००=५३००० योजन प्राप्त हो जाता है॥

देवोत्तरकुरुभोगभूम्यो प्रत्येक कुलाद्रिपार्श्वे जीवा त्रिपञ्चाशत्सहस्र योजनानि।

अर्थः—निषध और नील कुलाचल के समीप मे देवकुरु और उत्तरकुरु अर्थात् प्रत्येक उत्कृष्ट भोगभूमि की जीवा का प्रमाण ५३००० योजन है।

अब देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमियों के वाण का प्रमाण कहते है :—

विदेहक्षेत्रविस्तारोऽखिलो यो मेरुवर्जितः ।
तस्यार्धं यत् पृथक् क्षेत्रं सा वाणदीर्घतोच्यते ॥३०॥

अर्थ—विदेहक्षेत्र के विस्तार मे से मेरुगिरि का भूव्यास घटा कर आधा करने पर कुरु क्षेत्र के विष्कम्भ का प्रमाण होता है, और यही कुरु क्षेत्र के वाण की दीर्घता का प्रमाण है ॥३०॥

विशेषार्थ—विदेह क्षेत्र के व्यास का प्रमाण ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन है, इसमे से मेरुगिरि का भूव्यास १०००० योजन घटाकर आधा करने पर (३३६८४$\frac{४}{१९}$—१००००=२३६८४$\frac{४}{१९}$ – २) = ११८४२$\frac{२}{१९}$ योजन देवकुरु और उत्तरकुरु के व्यास का प्रमाण है और यही दोनो क्षेत्रो के (पृथक्-पृथक्) वाण का प्रमाण है।

देवकुरूत्तरक्षेत्रयो प्रत्येक वाण एकादशसहस्राष्टशतद्विचत्वारिंशद्योजनानि योजनैकोनविंशति भागाना द्वौ भागौ।

अर्थः—देवकुरु और उत्तरकुरु इन दोनों क्षेत्रो का और इन क्षेत्रो मे से प्रत्येक के वाण का प्रमाण ११८४२$\frac{3}{१९}$ योजन है।

अब भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले जीवों की गति आगति का एवं और भी अन्य विशेषताओं का वर्णन करते हैं:—

भद्रा निर्दर्शनाजीवास्त्रिधा सत्पात्रदानतः ।
जायन्ते भोगिनश्चार्याः क्रमाद् भोगमहीत्रिषु ॥३१॥
न रोगो न भयो ग्लानिर्नाल्पमृत्युर्न दीनता ।
न वृद्धत्वं न नीहारो नाहो ! षड्ऋतु संक्रमः ॥३२॥
नानिष्टसङ्गमो नेष्टवियोगो नापमानता ।
नान्यद् दुःखादिकं किञ्चित् क्षेत्रसद्भावतो नृणाम् ॥३३॥
केवलं मृत्युपर्यन्तं पात्रदानज-पुण्यतः ।
दशधाकल्पवृक्षोत्थान् भोगान् भुञ्जति तेऽनिशम् ॥३४॥
उत्पादोमृतिरार्याणां युग्मरूपेण जायते ।
क्षुतात् मृत्युर्नराणां स्यान् स्त्रीणां जृम्भिकयात्र च ॥३५॥
ततस्ते स्वार्यभावेनार्या यान्ति देवसद्गतिम् ।
सत्पात्रदानपुण्येनामीषां नास्त्यपरा-गतिः ॥३६॥

अर्थ.—भद्रमिथ्यादृष्टि जीव उत्तम, मध्यम और जघन्य सत्पात्रों के दान के फल से क्रमशः उत्तम, मध्यम और जघन्य इन तीन भोगभूमियो मे आर्य और आर्या रूप से उत्पन्न होते है। उत्तम क्षेत्र के सद्भाव से वहाँ के जीवो के रोग नही होते, न वहाँ भय है, न ग्लानि है, न अल्पकाल में मृत्यु होती है, न दीनता है, न जीवो को वृद्धता आती है, न निहार होता है, अहो ! और न छह ऋतुओं का सञ्चार होता है, न अनिष्ट का सयोग होता है, न इष्ट का वियोग होता है, न अपमान आदि का दु.ख है, और न अन्य ही किञ्चित् दु ख वहाँ प्राप्त होते है, किन्तु वे पात्रदान से उत्पन्न होने वाले पुण्य के फल से मरणपर्यन्त दशप्रकार के कल्पवृक्षो से उत्पन्न होने वाले भोगों को निरन्तर भोगते है। वहाँ पर स्त्री पुरुष युगल रूप से एक साथ उत्पन्न होते है और एक ही साथ मरते है। पुरुषों की मृत्यु छीक से और स्त्रियो की मृत्यु जम्भाई से होती है। भोगभूमि के जीव अपने आर्य एवं आर्याभाव से अर्थात् सरल परिणामी होने से मरण के बाद देवगति को ही प्राप्त करते है, सत्पात्रों को दिये हुये दान के फल से उन जीवो को नरक, तिर्यञ्च एवं मनुष्य गति की प्राप्ति नही होती ॥३१–३६॥

अब जम्बूवृक्ष का स्थानादिक परिकर ग्यारह श्लोकों द्वारा कहते है :—

मेरोरीशानदिक्कोणे सीतायाः प्राक्तटस्थले ।
कुरुभूकोणसंस्थाने नीलाद्रेः सन्निधौ भवेत् ॥३७॥
जम्बूवृक्षो महान् जम्बूवृक्षाकारश्च शाश्वतः ।
पृथिवीकायसद्रत्नमयो मणिद्रुमावृतः ॥३८॥
अस्यादौ पीठिकावृत्ता वेदिका तोरणाङ्किताः ।
दिव्या स्वर्णमया पञ्चशत्योजनविस्तृता ॥३९॥
मध्येऽष्टयोजनोत्तुङ्गास्त्यन्तेऽर्धयोजनोच्छ्रिता ।
तन्मध्ये पीठिकाहैमी योजनाष्टोन्नता परा ॥४०॥
मूले च द्वादशव्यासा मध्यव्यासाष्टयोजनैः ।
अग्रे स्याद् विस्तृता रम्या चतुर्भियोजनैः परा ॥४१॥
तस्या मध्यप्रदेशेऽस्ति मूर्ध्नि छत्रत्रयाङ्कितः ।
वज्रस्कन्धः सुवैडूर्यरत्नपत्रफलावृतः ॥४२॥
जम्बूवृक्षो महादीप्तोऽनेकपादपमध्यगः ।
तस्य जम्बूद्रुमस्यास्ति स्कन्धो द्वियोजनोन्नतः ॥४३॥
योजनार्धावगाहो द्विक्रोशविस्तारसंयुतः ।
तदर्धे प्रवराः शाखाश्चतस्रः सन्ति शाश्वताः ॥४४॥
गव्यूतिद्वयविस्तीर्णा योजनाष्टसमायताः ।
दिव्यगेहयुता दीप्ता रम्या मरकताश्मजाः ॥४५॥
तासामुत्तरशाखायां जिनचैत्यालयोऽव्ययः ।
अनावृतादि यक्षौघैः पूज्यो वन्द्यस्तुतोऽन्वहम् ॥४६॥
शेषशाखात्रयस्थोच्चसौधेष्वनावृतामरः ।
यक्षान्वयी वसेद् भूत्या जम्बूद्वीपस्य रक्षकः ॥४७॥

अर्थ—नील कुलाचल के समीप, सीतामहानदी के पूर्व तट पर, मेरु पर्वत की ईशान दिशा मे, उत्तरकुरु क्षेत्र के कोने मे, जामुनवृक्ष के आकार सदृश, शाश्वत्, पृथ्वीकाय, उत्तम रत्नमय तथा मणिमय अनेक वृक्षो से समन्वित एक महान् जम्बूवृक्ष स्थित है ॥३७–३८॥ इस जम्बूवृक्ष की प्रथम पीठिका (स्थली) गोल, वेदिकाओ एव तोरणो से अलंकृत, दिव्य, स्वर्णमय तथा पाँच सौ योजन

विस्तृत, मध्य में आठ योजन ऊँची और अन्त में अर्ध योजन ऊँची है। इस स्थली के मध्य में आठ योजन ऊँची एक अन्य रमणीक और स्वर्णमय पीठिका है, जिसका मूल व्यास बारह योजन, मध्य व्यास आठ योजन और अग्रभाग का व्यास चार योजन प्रमाण है ॥३९-४१॥

इस पीठ के मध्यभाग में ऊपर तीन छत्रों से अञ्चित, वज्रमयस्कन्ध, उत्तम वैडूर्यरत्नों के पत्र एवं फलों से संकुलित, अनेक लघु जम्बूवृक्षो के मध्य में महादेदीप्यमान जम्बूवृक्ष है। उस जम्बूवृक्ष का स्कन्ध (पीठ से) दो योजन ऊँचा, दो कोस चौडा और अर्ध योजन अवगाह (नींव) से युक्त है। उस वृक्ष के अर्ध भाग से शाश्वत और उत्तम चार शाखाएँ निकलती है जो दो कोस चौड़ी, आठ योजन लम्बी, दिव्य प्रासादों से युक्त, ज्योतिर्मान, सुन्दर और मरकतमणिमय है ॥४२-४५॥ इन में से उत्तर दिशा की शाखा पर अनावृत आदि यक्ष समूह से निरन्तर पूज्य, वन्दनीय एवं स्तुत्य शाश्वत अर्थात् अकृत्रिम जिन चैत्यालय है। शेष तीन शाखाओं पर स्थित उन्नत प्रासादों मे जम्बूद्वीप का रक्षक और यक्षकुलोत्पन्न अनावृत नाम का देव अपनी परम विभूति के साथ निवास करता है ॥४६-४७॥

अब परिवार वृक्षों की संख्या, प्रमाण एवं स्वामियों का निदर्शन करते हैं:—

यावन्तः स्युः श्रियो देव्या परिवाराब्जसद्गृहाः ।
परिषत् त्र्यादिदेवानां संख्ययाखिलदिक्स्थिताः ॥४७॥
तावन्तोऽत्रास्य देवस्य परिवारसुधाभुजाम् ।
सर्वे जम्बूद्रुमा ज्ञेयाः शाखाग्रसौधसंयुताः ॥४८॥
व्यासायामोन्नता जम्बूवृक्षस्यार्धोच्छ्रिताादिभिः ।
एकैक श्रीजिनागारालंकृताः क्षयदूरगाः ॥४९॥
विशेषोऽयं भवेदत्र चतुर्दिक्षु गृहद्रुमाः ।
चत्वारोऽस्याग्रदेवीनां स्युः पद्मरागतन्मयाः ॥५०॥

अर्थ —[पद्मद्रह मे स्थित] श्री देवी की चारो दिशाओ में स्थित तीन परिषद् आदि के समस्त परिवार देवों के कमल स्थित प्रासादों की जितनी संख्या है, उतनी ही संख्या इस अनावृत देव के परिवार देवों की है। ये समस्त परिवार जम्बूवृक्षशाखा के अग्रभाग पर प्रासादों से संयुक्त है ऐसा जानना चाहिये ॥४७-४८॥ इन परिवार जम्बूवृक्षों की चौड़ाई, लम्बाई एवं ऊँचाई मूल जम्बूवृक्ष के अर्ध प्रमाण है, और प्रत्येक परिवार जम्बूवृक्ष एक एक अकृत्रिम जिन चैत्यालय से अलंकृत है। अर्थात् जितने (१४०१२०) जम्बूवृक्ष है, उतने ही अकृत्रिम जिन चैत्यालय है। श्रीदेवी के परिवार कमलों से यहाँ इतना विशेष है कि प्रधान जम्बूवृक्ष की चारों दिशाओ में अनावृत देव की चार पट्टदेवाङ्गनाओं के पद्मरागमणिमय चार गृहद्रुम अधिक हैं ॥४९-५०॥

अस्य व्यासेन परिवारवर्णनोच्यते :—

जम्बूवृक्षस्यास्याग्नेयदिग्भागे अन्तः परिषद्देवाना द्वात्रिंशत्सहस्र गेहाधारपादपाः स्यु । दक्षिणाशायां मध्यपरिषत् सुराणां चत्वारिंशत्सहस्रालयवृक्षाश्च । नैऋत्यकोणे बाह्यपरिषद्गीर्वाणानां अष्टचत्वारिंशत्सहस्रगृहजम्बूद्रुमा सन्ति । वायुदिगीशानदिशोः सामान्यकामराणां चतु सहस्रगृहशाखिनो भवन्ति । पश्चिमदिशि सप्तानीक सुराणां सप्तगृहद्रुमाश्च । चतुर्दिक्षु अङ्गरक्षाणां षोडशसहस्रसौधपादपाश्च । अष्टदिक्षु प्रतीहारोत्तमानामष्टोत्तरशतगेहाधारवृक्षा. सन्ति । चतुर्दिक्षु अनावृतदेवस्य चतुरग्रदेवीना चत्वार. सौधान्वितपादपा भवेयुः । एते सर्वे पिण्डीकृताः प्रासादाङ्कितजम्बूवृक्षाः मूलजम्बूवृक्षेण समं एकलक्षचत्वारिंशत्सहस्रैकशतविंशतिप्रमाणा भवन्ति ।

अर्थ :—प्रधान जम्बूवृक्ष की आग्नेय दिशा मे अन्त पारिषद देवो के बत्तीस हजार गृहो के आधार भूत जम्बूवृक्ष है। दक्षिण दिशा मे मध्यपारिषद देवो के चालीस हजार गृह जम्बूवृक्ष हैं। नैऋत्य दिशा मे बाह्यपरिषद देवो के अडतालीस हजार प्रासादजम्बूवृक्ष हैं। वायव्य और ईशानदिशा मे सामानिक देवो के चार हजार गृहवृक्ष है। पश्चिम दिशा मे सात अनीक देवो के सात गृहद्रुम हैं। चारो दिशाओ मे अङ्गरक्षक देवो के सोलह हजार सौधवृक्ष है। चारो दिशाओं और चारो विदिशाओ मे प्रतीहार देवो के उत्तम एक सौ आठ गृहो के आधार भूत वृक्ष है। चारों दिशाओ में अनावृत देव की चार पट्टदेवाङ्गनाओं के भवनो से समन्वित चार वृक्ष है। प्रधान जम्बूवृक्ष के साथ इन सब प्रासाद युक्त जम्बूवृक्षो को एकत्रित करने पर —(१ + ३२००० + ४०००० + ४८००० + ४००० + ७ + १६००० + १०८ + ४) = १४०१२० अर्थात् एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस प्रमाण होते हैं।

अब शाल्मलिवृक्ष का वर्णन चार श्लोकों द्वारा करते हैः—

मेरोर्नैऋत्यदिग्भागे सीतोदापश्चिमे तटे ।
निषधाद्रिसमीपेऽस्ति देवादिकुरुभूतले ।।५१।।

उत्सेधायामविस्तारैर्जम्बूवृक्षसमो महान् ।
परिवारद्रुमैः सर्वैः शाल्मली वृक्ष ऊर्जितः ।।५२।।

तस्य दक्षिणशाखायां रत्नशाली जिनालयः ।
वेणुदेवादिभिः पूज्यो जिनबिम्बभृतो भवेत् ।।५३।।

शेषशाखात्रयाग्रस्थप्रासादेषु वसेत् सुरः ।
गरुडान्वयजो वेणुदेवो देवैः समं महान् ।।५४।।

अर्थः—सुदर्शन मेरु की नैऋत्य दिशा में, सीतोदा नदी के पश्चिम तट पर, निषधकुलाचल के समीप देवकुरुक्षेत्र में जम्बूवृक्ष के सदृश उत्सेध, आयाम एवं विस्तार से युक्त तथा समस्त (१४०१२०) परिवार वृक्षों से समन्वित एक अति शोभा सम्पन्न शालमली वृक्ष है। इसकी दक्षिण शाखा पर वेणु-धारी आदि देवों द्वारा पूज्य और अनेक जिनबिम्बों से संकुलित रत्नमय जिनालय है। शेष तीन शाखाओं पर स्थित प्रासादों मे अनेक परिवार देवों के साथ गरुडकुलोत्पन्न वेणु नाम का महान् देव निवास करता है ॥५१-५४॥

अब यमकगिरि का स्वरूप कहते हैं:—

नीलाद्रेर्दक्षिणे गत्वा सहस्रयोजनानि च ।
भवेतां यमकाद्रीद्वौ सीतायाः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥५५॥

सहस्रयोजनोच्चौ यमकूटकाञ्चनाह्वयौ ।
सहस्रयोजनव्यासौ मूले मध्ये च योजनैः ॥५६॥

सार्धसप्तशतैर्विस्तृतौ मूर्ध्निशतपञ्चकैः ।
परस्परान्तरौ दीप्राङ्गौ पञ्चशतयोजनैः ॥५७॥

मूले भूमितले मूर्ध्नि वनवेदीयुतौ शुभौ ।
जिनालयान्यसौधोच्चतोरणाद्यग्रभूषितौ ॥५८॥

तयोश्च शिखरे रत्नप्रासादेषून्नतेषु च ।
सार्धद्विषष्टिसंख्यानै र्योजनैर्मणिशालिषु ॥५९॥

योजनैरेकगव्यूत्यग्रै कत्रिशत्प्रमाणकैः ।
व्यासायामेषु देवौ यमदेवकाञ्चनाभिधौ ॥६०॥

वसतः परिवाराढ्यौ पल्योपमैकजीवितौ ।
तथान्येऽचलयोर्मूर्ध्नि सन्ति प्रासादपङ्क्तयः ॥६१॥

सप्तानीकसुसामान्यकाङ्गरक्षसुधाभुजाम् ।
चतुरग्रसुदेवीनां परिषत्त्रिसुधाशिनाम् ॥६२॥

अर्थ.—नील कुलाचल से दक्षिण में एक हजार योजन आगे जाकर सीता नदी के दोनों तटों पर यमककूट और काञ्चनगिरि नाम के दो यमकगिरि पर्वत है। ये दोनों यमकगिरि एक हजार योजन ऊँचे, मूल में एक हजार योजन चौड़े, मध्य में साढ़े सात सौ योजन और शिखर तल पर पाँच सौ योजन चौडे है। इन दोनों देदीप्यमान शैलों का परस्पर का अन्तर भी पाँच सौ योजन प्रमाण है ॥५५-५७॥

इन दोनो पर्वतो के मूल मे अर्थात् पृथ्वीतल पर और शिखरतल पर रमणीय वनवेदी से युक्त जिनालय है तथा जिनालयो के अग्रभाग तोरणो से सुशोभित है। दोनो पर्वतो के शिखरो पर स्थित मणियो से शोभायमान उन्नत रत्नमय उन्नत प्रासादो मे एक पल्योपम प्रमाण आयु वाले यमक और काञ्चन नाम के देव अपने परिवार सहित निवास करते है। इनके ये प्रासाद साढे बासठ योजन ऊँचे और सवा इकतीस योजन प्रमाण लम्बे एवं चौडे है। इन्ही दोनो पर्वतों के शिखरो पर सात अनीको के, सामानिक देवो के, अङ्गरक्षको के, चार पट्ट देवाङ्गनाओ के और तीनो परिषदों के देवो के भवन पक्तिबद्ध स्थित है।

अब विचित्र-चित्र नामक यमक पर्वतों का विवेचन करते हैं :—

निषधस्योत्तरे गत्वा सहस्रयोजनान्यपि ।
स्तौ द्वौ यमकशैलौ सीतोदायास्तटयोर्द्वयोः ॥६३॥
[1]विचित्रचित्रकूटाख्यौ पूर्वोक्त यमकप्रमौ ।
चैत्यालयगृहारामव्यासोत्सेधादिवर्णनैः ॥६४॥
अनयो मूर्ध्नि सौधेषु प्रागुक्तोच्चादि शालिषु ।
चित्रविचित्रनामानौ गीर्वाणौ वसतोऽद्भुतौ ॥६५॥
पूर्वोदिताङ्गरक्षादि सर्वदेवाग्रयोषिताम् ।
एतयोः शिखरे सन्ति प्रासादतोरणादयः ॥६६॥

अर्थ —निषधकुलाचल से उत्तर मे एक हजार योजन आगे जाकर सीतोदा नदी के दोनो तटो पर विचित्र और चित्र कूट नाम के दो यमकगिरि है। इन पर्वतो पर स्थित जिन चैत्यालयो, प्रासादो एवं वनो के व्यास एवं उत्सेध आदि का समस्त वर्णन पूर्व कथित दोनो यमक शैलो के सदृश हैं। ॥६३–६४॥ इन दोनो शैलो के शिखर पर स्थित पूर्वोक्त ऊँचाई आदि से युक्त शोभायमान प्रासादो मे चित्र विचित्र नाम के अद्भुत पुण्यशाली देव निवास करते है। इन पर्वतो के शिखरो पर पूर्व कथित अङ्गरक्षक आदि सर्व देवो के और दोनो देवो की चार-चार प्रमुख देवाङ्गनाओ के तोरण आदि से युक्त प्रासाद हैं ॥६५–६६॥

अब सीता नदी स्थित पञ्चद्रहों का वर्णन करते है :—

यमकाद्री परित्यज्य यावत् पञ्चशतान्तरम् ।
योजनानां सरित्सीताया उत्तरकुरुक्षितेः ॥६७॥

---

१ चित्रविचित्रकूटाख्यौ अ. ज. न

मध्ये पञ्चद्रहाः सन्ति श्रीपद्मह्लद सन्निभाः ।
शतपंचप्रमैर्योजनैरन्तरान्तरस्थिताः ॥६८॥

ह्लदोनीलाह्वयोऽप्राद्यस्तथोत्तरकुरुर्द्रहः ।
चन्द्रऐरावतो माल्यवानेतन्नामसंयुताः ॥६९॥

सीतामध्यस्थिता एते ज्ञेयाः पंचद्रहाः शुभाः ।
देवी नीलकुमारी चोत्तराद्यन्तकुमारिका ॥७०॥

चन्द्रकुमारिकाथैरावत कुमारिका तथा ।
माल्यवतीति नामाढ्या पंच नागकुमारिका ॥७१॥

पुण्यलक्षणभूषाढ्या वसन्ति पुण्यपाकतः ।
द्रहस्थपद्मगेहेषु स्वपरिवारवेष्टिताः ॥७२॥

अर्थः—यमकगिरि से पाँच सौ योजन जाकर उत्तरकुरु भोगभूमि स्थित सीता सरित् के मध्य में पद्मह्लद के सदृश पाँच द्रह है। ये पाँचों द्रह पाँच पाँच सौ योजन के अन्तराल से स्थित है, तथा नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्रद्रह, ऐरावतद्रह और माल्यवान् नाम से संयुक्त हैं। ये शुभ पाँचद्रह सीता नदी के मध्य मे स्थित हैं, ऐसा जानना चाहिये। इन पाँचों द्रहों में स्थित कमलों पर निर्मित प्रासादों में अपने अपने परिवारों से वेष्टित और पूर्वोपार्जित पुण्य के फल से शुभ लक्षण और शुभ वस्त्राभूषणों से अलंकृत नीलकुमारी, उत्तर (कुरु) कुमारी, चन्द्रकुमारी, ऐरावत कुमारी और माल्यवती नाम की पाँच नाग-कुमारियाँ क्रमशः निवास करती है ॥६७–७२॥

अब सीतोदा नदी स्थित पाँच द्रहों का वर्णन करते हैं :—

त्यक्त्वान्यौ यमकाद्री योजनपंचशतान्तरम् ।
स्युर्द्रहाः पंचसीतोदामध्ये देवकुरुक्षितौ ॥७३॥

प्रथमो निषधाभिख्यो ततो देवकुरुर्द्रहः ।
सूर्याख्यः सुलसो विद्युत्प्रभ इत्याढ्यनामकाः ॥७४॥

ज्ञेयाः पंचद्रहा रम्याः समाः श्रीह्लदवर्णनैः ।
निषधादिकुमारीदेवादिकुरुकुमारिकाः ॥७५॥

देवी सूर्यकुमारी सुलसा विद्युत्प्रभाह्वया ।
वसन्तिद्रहगेहेषु पंचेमा नागकन्यकाः ॥७६॥

अर्थ —अन्य दो (विचित्र और चित्र) यमकगिरि पर्वतो से पाँच सौ योजन जाकर देवकुरु भोगभूमि मे स्थित सीतोदा नदी के मध्य मे पाँचद्रह है। इन पाँचो द्रहो का नाम निषध द्रह, देवकुरु-द्रह, सूर्यद्रह, सुलसद्रह और विद्यु त्प्रभद्रह है। इन रमणीक पाँचो द्रहो का समस्त वर्णन श्रीदेवी के पद्मद्रह के सदृश है। द्रह स्थित कमलो पर निर्मित प्रासादो मे क्रमश निषधकुमारी, देव (कुरु) कुमारी सूर्य कुमारी, सुलसा कुमारी और विद्यु त्प्रभा नाम की पाँच नागकुमारियाँ निवास करती हैं ।।७३–७६।।

अब अन्य दश द्रहों की अवस्थिति एवं समस्त द्रहों के आयाम आदि का कथन करते है :—

पुनः पंच द्रहाः पूर्वभद्रशालवने परे ।
मध्ये सीतामहानद्याः स्युः प्राग्नामादि सयुताः ।।७७।।

पश्चिमे भद्रशालेऽन्ये सन्ति पच द्रहा युताः ।
निषधाद्याख्यदेवीभिः सीतोदाभ्यन्तरे क्रमात् ।।७८।।

एते पिण्डीकृताः सर्वे द्रहाः विशतिरूर्जिताः ।
वज्रमूलाः सपद्मा योजनपंचशतान्तराः ।।७९।।

सहस्रयोजनायामा दक्षिणोत्तरपार्श्वयो ।
पूर्वापर सुविस्तीर्णाः शतपंचसुयोजनैः ।।८०।।

जलान्तसमवैडूर्यनालक्रोशद्वयोच्छ्रिताः ।
जलाद्दशावगाहाः स्युर्वेदिकास्तोरणाङ्किताः ।।८१।।

अर्थ —इसके पश्चात् पूर्वभद्रशाल वन मे स्थित सीता महानदी के मध्य में पूर्व कथित नीलवान् उत्तरकुरु आदि नामो से युक्त अन्य पाँच द्रह है। जिनमे नीलवान् आदि देवियाँ–निवास करती है। पश्चिम भद्रशाल वन मे स्थित सीतोदा नदी के मध्य मे निषधवान् आदि पूर्वोक्त नाम वाले अन्य पाच द्रह है, जिनमे निषध आदि नाम वाली पाँच नागकुमारियाँ क्रमशः निवास करती है। ये सभी द्रह एक-त्रित जोडने से बीस होते है। अर्थात् ५ द्रह उत्तरकुरु सम्बन्धी और ५ पूर्वभद्रशाल सम्बन्धी सीता नदी के मध्य मे है, तथा ५ देवकुरु और ५ पश्चिमभद्रशाल सम्बन्धी सीतोदा के मध्य मे है। वज्रमय है मूल जिनका ऐसे कमलो से युक्त इन पांचो द्रहो का पारस्परिक अन्तर पाच सौ योजन प्रमाण है। ये पाँचो द्रह दक्षिणोत्तर दिशा मे एक हजार योजन लम्बे और पूर्व–पश्चिम पाच सौ योजन चौडे है। एक एक द्रह दश योजन गहरे, रत्नमयवेदिकाओ से युक्त और मणिमय तोरणो से मण्डित है। प्रत्येक द्रहों मे स्थित कमल समूहो को नाल वैडूर्यमय है और जल से दो कोस ऊँची है। अर्थात् पद्मनाल की कुल

लम्वाई साढे दश योजन प्रमाण है, इसीलिये दश योजन गहरे सरोवर को व्याप्त करती हुई जल से अर्ध योजन (दो कोस) प्रमाण ऊँची है ॥७७-८१॥

अमीषां व्यासेन वर्णनं क्रियते :—

द्रहाणा मध्ये प्रत्येकं जलाद् द्विक्रोशोच्छ्रितं योजनविस्तीर्ण सार्धक्रोशायतैकादशसहस्रपद्मपत्राङ्कितं क्रोशव्यासकर्णिकान्वितम् एकैकं शाश्वत कमलं स्यात्। कमलं कमलं प्रति कर्णिकायाम् नानामणिमयं क्रोशैकदीर्घ अर्धक्रोशव्यासं पादोनक्रोशोच्च रत्नवेदिकातोरणाद्यलङ्कृतं एकैक भवनं भवेत्। तेषु सर्वभवनेषु स्वस्व परिवारदेवावृता प्रागुक्तनामाङ्किताः दिव्यरूपाः नागकुमार्यो वसन्ति। मुख्यकमलगेहादाग्नेयदिशिदेव्याः द्वात्रिंशत्सहस्राणि अन्तः परिषद् वाना पद्मालयाः सन्ति। दक्षिणदिग्भागे मध्यपरिषत्सुराणा चत्वारिंशत्सहस्राम्बुजाढचगृहाश्च। नैऋत्यदिशि बाह्य परिषद् गीर्वाणाना अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि अब्जसौधाः सन्ति। वायुकोणैशानदिशो सामान्यकामराणा चतुःसहस्राम्भोज प्रासादाश्च। पश्चिमाशाया सप्त सप्त सैन्याङ्कित सप्तानीकाना सप्तपद्मगेहाः स्युः। पूर्वादि चतुर्दिक्षु अङ्गरक्षाणा षोडशसहस्रपद्माङ्कितप्रासादा सन्ति। देव्यः पद्म परितः अष्टदिग्विदिक्षु प्रतोहारोत्तमानामष्टोत्तरशतकमलगेहाश्च। इत्युक्ताः सर्वे एकत्रीकृता एकलक्षचत्वारिंशत्सहस्रैकशतषोडशप्रमाणाः मुख्यपद्मालयादर्धायाम व्यासोत्सेधा. एकैक जिनालयवेदिकातोरणाद्यलङ्कृताः सुगन्धिपद्माश्रितरत्नगृहा विज्ञेया.। सर्वे विंशतिद्रहाणां पिण्डीकृता देवीपद्मैः समं शाश्वता मणिपद्मा. अष्टाविंशति लक्षद्विसहस्रत्रिशतविंशतिप्रमाणाः भवेयु. तावन्तः पद्मस्था आलयाश्च।

अब कमलों का तथा कमल स्थित भवनों के व्यास आदि का एवं उनमें निवास करने वाली नागकुमारियों के परिवार आदि का वर्णन करते हैं:—

अर्थ :—प्रत्येक सरोवरो के मध्य मे एक एक अकृत्रिम कमल है। जो एक योजन चौड़े और और जल से दो क्रोस प्रमाण ऊँचे हैं, तथा डेढ कोस लम्बाई वाले ग्यारह हजार पत्रों से युक्त और एक कोस विस्तार वाली कर्णिका से समन्वित है। प्रत्येक कमल की कर्णिका पर अनेक मणियो से निर्मित, रत्नमय वेदिका एव तोरण आदि से अलंकृत, एक कोस लम्बे, अर्ध कोस चौडे और पौन कोस ऊँचे एक एक भवन है। इन समस्त (२०) भवनो में अपने अपने परिवार देवों से आवृत, पूर्वोक्त नाम वालीं दिव्यरूप धारणी नागकुमारिया निवास करती है। इन देवियों के प्रधान कमल स्थित भवनों से आग्नेय दिशा मे अभ्यन्तर परिषद् देवों के ३२००० पद्मालय है।

दक्षिण दिशा में मध्य पारिषद् देवो के ४०००० कमलयुक्त भवन है। नैऋत्य दिशा में बाह्य पारिषद् देवो के ४८००० पद्मालय है। वायव्य और ईशान दिशा में सामानिक देवों के ४००० अम्भोज प्रासाद है। पश्चिम दिशा में सात सात सेनाओ से मण्डित सात अनीको के सात (७) पद्म-

गृह हैं। पूर्व आदि चारो दिशाओ मे अङ्गरक्षक देवो के १६००० पद्माकित भवन है। देवियो के प्रधान कमलो के चारो ओर अर्थात् आठो दिशाओ मे प्रतीहार देवो के १०८ कमलगृह है (प्रत्येक दिशा मे चौदह, चौदह और विदिशाओ मे तेरह-तेरह इस प्रकार एक सौ आठ हैं) इसप्रकार उपर्युक्त सर्व पद्म-गृहो का एकत्रित योग (३२०००+४००००+४८०००+१६०००+४०००+१०८+७+१) = १४०११६ प्रमाण होता है। इन परिवार कमलालयो का आयाम, व्यास एवं उत्सेध प्रधान पद्मालय के आयाम आदि से अर्ध अर्ध प्रमाण है। ये सभी सुगन्धित पद्माश्रित रत्नप्रासाद एक एक जिनालय, रत्नमय वेदिका एव तोरण आदि से अलकृत जानना चाहिये। नागकुमारियों के प्रधान कमलो के साथ साथ वीसो सरोवरो के समस्त कमलो का प्रमाण (१४०११६×२०) = २८०२३२० अर्थात् अट्ठाईस लाख दो हजार तीन सौ बीस है। जितने ये कमल है, इन पर स्थित उतने ही प्रासाद है (और उतने ही अकृत्रिम जिन चैत्यालय है)॥

अब काञ्चन पर्वतों का सविस्तार वर्णन करते हैः—

एषां सर्वद्रहाणां च पूर्वपश्चिमभागयोः ।
प्रत्येकं पञ्च पञ्चैव पर्वताः काञ्चनाह्वयाः ॥८२॥

शतैकयोजनोत्सेधा मूले शतैकविस्तृताः ।
पञ्चसप्ततिविस्तारा मध्येऽग्रे व्याससंयुताः ॥८३॥

पंचाशद्योजनैः स्वोच्चचतुर्थांशधरान्तगाः ।
मूलाग्रेऽलंकृताः सन्ति वनवेदीसुतोरणैः ॥८४॥

एषां द्विशतसंख्यानां शिखरेषु महोन्नतैः ।
जिनचैत्यालयै रत्नमयैः प्रासादपंक्तिभिः ॥८५॥

वेदिकातोरणाद्यैश्च भूषितानि पुराणि वै ।
कल्पद्रुमादि युक्तानि भवन्ति शाश्वतानि भोः ॥८६॥

पुरेषुतेषु राजानः कांचनाख्याः सुरोत्तमाः ।
दशचापोच्चदिव्याङ्गा वसन्ति पल्यजीविनः ॥८७॥

अर्थ.—इन उपर्युक्त बीस द्रहो मे से प्रत्येक द्रह के पूर्व पश्चिम (दोनो) तटो पर पाँच पाँच (पूर्व तट पर २०×५=१०० और पश्चिम तट पर १००) काञ्चन नाम के पर्वत है। जो सौ योजन ऊँचे, मूल मे–पृथ्वीतल पर सौ योजन चौडे, मध्य मे पचहत्तर योजन और शिखर पर पचास योजन चौड़े है। जमीन मे इनका अवगाह (नीव) अपनी ऊँचाई का चतुर्थ भाग अर्थात् ($\frac{१००}{४}$)=२५ योजन

प्रमाण है। ये पर्वत मूल और अग्र भाग में वन, वेदी एवं उत्तम तोरणों से युक्त है। उन दो सौ कांचन शैलो के शिखरों पर महा उन्नत रत्नमय जिन चैत्यालयो, प्रासाद पंक्तियों, वेदिकाओं एवं तोरणों आदि से विभूषित तथा शाश्वत कल्पवृक्षों से युक्त नगर है। उन काञ्चनगिरि के नगरों में दश धनुष उन्नत, उत्तम देह से संयुक्त और पल्योपम प्रमाण आयु के धारक काञ्चन नाम के उत्तम देव अधिपति स्वरूप से निवास करते है ॥८२-८७॥

अब द्रहों और भद्रशाल की वेदियों के अन्तराल का दिग्दर्शन कराते हैं:—

योजनानां सहस्रे द्वे द्वयाग्रा नवतिः कले ।
द्वे, ह्रदोभयवेद्योः सर्वेषां प्रत्येकमन्तरम् ॥८८॥

अर्थः—सीता-सीतोदा के मध्य स्थित अन्तिम ह्रद और उत्तर-दक्षिण भद्रशाल की वेदी इस सब में से प्रत्येक के बीच के अन्तर का प्रमाण २०९२$\frac{२}{१९}$ योजन है। अर्थात् अन्तिम द्रह से २०९२$\frac{२}{१९}$ योजन आगे जाकर भद्रशाल की वेदी अवस्थित है ॥८८॥

विशेषार्थ :—विशेष के लिए देखिये त्रिलोकसार गाथा ६६० (टीका सहित)।

अब दिग्गज पर्वतों का स्वरूप छह श्लोकों द्वारा कहा जाता है:—

कुरुभूम्योर्द्वयोः पूर्वापरादि भद्रशालयोः ।
मध्ये च द्वि महानद्योः पार्श्वयोर्दिक्षुपर्वतौ ॥८९॥
द्वौ द्वौ दिग्गजनामानौ शतैकयोजनोन्नतौ ।
शतयोजनविस्तारौ मूलेऽग्रे विस्तरान्वितौ ॥९०॥
पंचाशद्योजनै रत्नप्रासादतोरणाङ्कितौ ।
वनवेदीजिनागारालंकृतौ भवतोऽद्भुतौ ॥९१॥
पद्मनीलाह्वयौ शैलौ स्वौवस्ति-कांजनाह्वयौ ।
कुमुदाद्रिपलाशाख्यावववतं शाद्रिरोचनौ ॥९२॥
इति नामाश्रिता अष्टौ पूर्वादिदिक्षु दिग्गजाः ।
ज्ञेया एषां च मूर्धस्थमणिवेश्मसु पुण्यतः ॥९३॥
स्वस्वाद्रिनामसंयुक्ता अष्टौ व्यन्तरनिर्जराः ।
देवदेवीपरिवारयुक्ता वसन्ति शर्मणा ॥९४॥

अर्थ—देवकुरु, उत्तरकुरु इन दो भोगभूमियों में तथा पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल वनों के मध्य में महानदी सीता और सीतोदा के दोनो तटों पर दो दो दिग्गज पर्वत अवस्थित हैं।

इन (आठो) दिग्गज पर्वतो की ऊँचाई सौ योजन, भूविस्तार सौ योजन और शिखर तल का विस्तार पचास योजन प्रमाण है। इन पर्वतो के शिखर तोरण आदि से युक्त रत्नमय प्रासादो, बनों, वेदियों एव अद्भुत वैभवशाली जिन चैत्यालयो से अलकृत है ॥८९–९१॥

पूर्वादि दिशाओ मे पद्म, नील, स्वस्तिक, अञ्जन, कुमुद, पलाश, अवतश और रोचन नाम के आठ दिग्गज पर्वत है। अर्थात् सुदर्शनमेरु के पूर्व दिशा गत भद्रशालवन के मध्य से बहने वाली सीता के उत्तर तट पर पद्मोत्तर और दक्षिण तट पर नीलवान् नाम के दिग्गज है। इसी मेरु की दक्षिण दिशा गत देवकुरु भोगभूमि के मध्य सीतोदा महानदी के पूर्व तट पर स्वस्तिक और पश्चिम तट पर अञ्जन नाम के दिग्गज है। सुमेरु की पश्चिम दिशागत भद्रशाल वन के मध्य सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर कुमुद और उत्तर तट पर पलाश नाम के दिग्गज है, तथा मेरु की उत्तर दिशागत उत्तरकुरु भोगभूमि के मध्य सीता के पश्चिम तट पर अवतश और पूर्व तट पर रोचन नाम के दिग्गज पर्वत हैं। (श्लोकार्थ) इन दिग्गजों के शिखरो पर स्थित मणिमय भवनो मे पूर्व पुण्य के उदय से अपने अपने पर्वतो सदृश नामो से युक्त आठ व्यन्तर देव अपने अपने देव देवियो के परिवार से युक्त होते हुये सुख पूर्वक निवास करते हैं ॥९२-९४॥

अब विदेह नाम की सार्थकता एवं उसके भेद प्रभेद कहते हैं:—

विदेहा मुनयो यत्र भवन्त्यनेकशोऽनिशम् ।
रत्नत्रयतपोयोगैः ससार्थनामभृन्महान् ॥९५॥
विदेहो राजते वेदिवक्षाराद्यन्तराश्रितः ।
विभङ्गाभिर्युतः पूर्वापरद्व्यनेकभेदभाक् ॥९६॥
विभक्तः सीतया पूर्वविदेहोऽसौ द्विधा भवेत् ।
उत्तराख्योऽपरो दक्षिणश्चेति स द्विनामभृत् ॥९७॥
सीतोदया कृतो द्वेधा परदिग्भागसंस्थितः ।
दक्षिणोत्तरभेदाभ्यां स्याद्विदेहोऽपराभिधः ॥९८॥
सीताया उत्तरे भागे नीलाद्रेर्दक्षिणेऽस्ति च ।
उत्तरप्राग्विदेह पूर्वे ह्युत्तरकुरुक्षितेः ॥९९॥

अर्थ.—रत्नत्रय और तप के योग से यहाँ पर अनेक मुनिराज निरन्तर देह से रहित अर्थात् सिद्ध होते हैं, इसलिये वह "विदेह" इस महान सार्थक नाम को धारण किये हुये है। वेदियो और वक्षार पर्वतो से अन्तरित, विभङ्गानदियो से युक्त तथा दो और अनेक भेदों को धारण करता हुआ विदेह क्षेत्र शोभायमान है ॥९५–९६॥ (सुदर्शनमेरु से अन्तरित होता हुआ) पूर्वविदेह सीता महानदी के द्वारा उत्तर विदेह और दक्षिण विदेह के नाम से दो प्रकार का है। इसी प्रकार सीतोदा महानदी

द्वारा विभाजित किया गया पश्चिम विदेह दक्षिण विदेह और उत्तर विदेह के भेद से दो प्रकार का है ॥९७-९८॥ सीतानदी के उत्तर में, नीलकुलाचल के दक्षिण मे और उत्तर कुरु भोगभूमि के पूर्व में उत्तर-पूर्व विदेह क्षेत्र है ॥९९॥

अब भद्रशाल आदि की वेदियों का प्रमाण कहते है :—

अस्यादौ भद्रशालस्य रत्नवेदी क्षयातिगा ।
शतपंचधनुर्व्यासाद्विक्रोशप्रोन्नता भवेत् ॥१००॥
योजनानां सहस्राणि शतपंचाग्रषोडश ।
तथा द्विनवतिर्भागौ द्वौ कृतैकोनविंशतेः ॥१०१॥
इत्यायामोऽस्ति वेद्याश्च तथान्या वनवेदिकाः ।
सप्तैवास्याः समाना विज्ञेयादीर्घोच्चविस्तरैः ॥१०२॥

अर्थः—इस उत्तर-पूर्व विदेह क्षेत्र के प्रारम्भ में भद्रशाल वन की क्षय से रहित रत्नमय वेदी है । यह वन वेदी दो कोस ऊँचो, पाँच सौ धनुष चौडी और १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन लम्बी है । इसी प्रकार अन्य सात (३ वेदिकाएँ भद्रशाल की, २ देवारण्य और २ भूतारण्य की =७) वन वेदिकाओं की दीर्घता एवं विस्तार आदि का प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् आठो वन वेदिकाएँ दो कोस ऊँची, ५०० धनुष चौडी और १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन लम्बी है ॥१००-१०२॥

अब विदेहस्थ कच्छा देश की अवस्थिति एवं उसका प्रमाण कहते हैं :—

ततोऽस्याः पूर्वदिग्भागे दक्षिणे नीलशैलतः ।
सीताया उत्तरे कच्छाख्यः स्याद् विषय ऊर्जितः ॥१०३॥
योजनानां सहस्रे द्वे द्वादशाग्रशतद्वयम् ।
सार्धक्रोशत्रयं चेति व्यासोऽस्य पूर्वपश्चिमे ॥१०४॥
आयामो वेदिकातुल्यो दक्षिणोत्तरभागयोः ।
विदेहविस्तृतेः सीताव्यासोनस्यार्धसम्मितः ॥१०५॥

अर्थः—इस भद्रशालवन वेदी के पूर्व मे, नीलकुलाचल के दक्षिण में और सीता सरित् के उत्तर में कच्छा नाम का एक महान देश है । इस देश की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई दो हजार दो सौ बारह योजन (२२१२ योजन) और ३$\frac{१}{२}$ कोश है, तथा दक्षिणोत्तर लम्बाई वेदिका की लम्बाई प्रमाण अर्थात् १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन है । विदेह के विस्तार में सीतानदी का व्यास घटा कर आधा करने पर कच्छा देश के आयाम का प्रमाण प्राप्त हो जाता है । यथाः—विदह का विस्तार ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन और सीता

का विस्तार ५०० योजन प्रमाण है, अतः ३३६८४$\frac{४}{१९}$—५०० ÷ २=१६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन कच्छा देश के आयाम का प्रमाण प्राप्त होता है ॥१०३–१०५॥

अब कच्छ देश स्थित विजयार्ध पर्वत का वर्णन करते है :—

अस्य देशस्य मध्येऽर्द्धं विजयार्धाचलो महान् ।
शुक्लवर्णः समुत्तुङ्गः पंचविंशतियोजनैः ॥१०६॥
पंचाशद्योजनव्यासो भूम्यवगाहसंयुतः ।
क्रोशाग्रयोजनैः षड्भिः स्याद्विद्येशामराश्रितः ॥१०७॥
विजयव्यासमानेन पूर्वापरायतः समः ।
मूर्ध्नि स्वोच्चचतुर्थांशतुङ्गकूटनवाङ्कितः ॥१०८॥
दशयोजनमभ्येत्यभूमेरस्य द्वयो र्दिशोः ।
श्रेण्यौ द्वे भवतो रम्ये दक्षिणोत्तरसंज्ञिके ॥१०९॥
अद्रिदीर्घसमायामे दशयोजनविस्तृते ।
तन्मध्येऽस्त्यद्रिविस्तीर्णस्त्रिशत्प्रमाणयोजनैः ॥११०॥
तयोः श्रेण्योर्द्वयोः सन्ति नगराणि खगामिनाम् ।
महान्ति पंचपंचाशत्प्रत्येक भूषितानि च ॥१११॥
जिनागारैर्महासौधैः शालगोपुरसद्वनैः ।
प्रागुक्तनामदीर्घादिवर्णनान्तर्युतान्यपि ॥११२॥
पुनर्द्वयोर्दिशोर्गत्वा दशास्य योजनानि च ।
प्रागुक्तायामविस्तारे श्रेण्यौ द्वे स्तो मनोहरे ॥११३॥
सन्त्येतयोर्द्वयोः श्रेण्योर्बहुदिव्यपुराणि च ।
सौधर्मैशानकल्पस्थाभियोगिक सुधाशिनाम् ॥११४॥
ततोऽप्यूर्ध्व महाद्रेश्च गत्वा सत्पञ्च योजनान् ।
दशयोजनविस्तीर्णं मस्तकं स्यान्मनोहरम् ॥११५॥

अर्थ—इस कच्छ देश के मध्य मे विजय-देश को आधा करने वाला शुक्ल वर्ण का एक महान् विजयार्ध नाम का पर्वत है। जिसकी ऊँचाई पच्चीस योजन, भूव्यास पचास योजन, अवगाह (नीव) सवा छह योजन तथा पूर्व पश्चिम लम्बाई कच्छ देश के व्यास सदृश अर्थात् २२१२ योजन ३$\frac{१}{२}$ कोश है। इस पर्वत पर विद्याधर और देवगण निरन्तर निवास करते है। इसके शिखर तल पर पर्वत की ऊँचाई के चतुर्थभाग प्रमाण ऊँचाई वाले नौ कूट अवस्थित है॥ १०६–१०८ ॥

पर्वत की उत्तर-दक्षिण दोनों दिशाओं मे भूमि से दश योजन ऊपर दक्षिण-उत्तर नाम वाली दो रमणीक श्रेणियाँ है, जिनका विस्तार दश योजन और पूर्व-पश्चिम आयाम पर्वत के आयाम सदृश अर्थात् २२१२ योजन ३$\frac{३}{४}$ कोश प्रमाण है। दश-दश योजन को दोनों श्रेणियाँ निकल जाने के बाद पर्वत के मध्य में विजयार्ध का विस्तार तीस योजन प्रमाण रहता है ॥१०९-११०॥ उन उत्तर-दक्षिण दोनों श्रेणियों में से प्रत्येक श्रेणी पर विद्याधरो की पचपन-पचपन नगरियाँ है, जो जिनचैत्यालयो, उन्नत प्रासादों, प्राकारों, गोपुरों एव उत्तम वनो से विभूषित है। इन नगरों के नाम एवं दीर्घता आदि के प्रमाण का वर्णन पूर्वोक्त प्रकार ही है ॥१११-११२॥ इसके बाद पुनः पर्वत की ऊँचाई मे दश-योजन ऊपर जाकर उत्तर-दक्षिण दोनो दिशाओ मे पूर्वोक्त आयाम (२२१२ योजन ३$\frac{३}{४}$ कोश) और विस्तार (१० योजन) से युक्त दो मनोहर श्रेणियाँ है। इन दोनो श्रेणियों पर सौधर्मैशान कल्पवासो देव सम्बन्धी आभियोग्य देवो के अनेक दिव्य नगर है। पर्वत को ऊँचाई में इससे भी पाँच योजन ऊपर जाकर अत्यन्त मनोहर और दश योजन चौडा शिखर तल प्राप्त होता है ॥११३-११५॥

अब विजयार्धस्थ कूटों के नाम, स्वामी, प्रमाण एवं परिधि आदि का सविस्तार वर्णन करते हैं :—

सिद्धाख्यं दक्षिणार्धं च खण्डप्रपातसंज्ञकम् ।
पूर्णभद्राह्वयं कूटं विजयार्धाभिधं ततः ॥११६॥
माणिभद्रं तमिश्राख्यमुत्तरार्धाभिधानकम् ।
कूटं वैश्रवणं तत्र नवकूटान्यमून्यपि ॥११७॥
सिद्धकूटे जिनागारः प्राग्वर्णनायुतो भवेत् ।
खण्डप्रपातकूटाग्रे नट्टमाली सुरो वसेत् ॥११८॥
तमिश्रे कृतिमाली च षट्कूटाग्रस्थवेश्मसु ।
स्वकूटसमनामानो वसन्ति व्यन्तरामराः ॥११९॥
व्यासो मूले च कूटानां क्रोशाग्रयोजनानि षट् ।
मध्ये सार्धद्विगव्यूत्यग्रयोजनचतुष्टयम् ॥१२०॥
योजनत्रितयं मूर्ध्नि ह्यादौ परिधिरुत्तमा ।
विस्तृता योजनैर्विंश प्रमैर्मध्ये च मध्यमा ॥१२१॥
परिधिः स्याद्धि किञ्चिन्न्यूनपञ्चदशयोजनैः ।
शिखरे योजनानां सविशेषा नवसंख्यया ॥१२२॥

अर्थः—विजयार्ध पर्वत के दश योजन विस्तीर्ण शिखर तल पर सिद्ध, दक्षिणार्ध, खण्डप्रपात, पूर्णभद्र, विजयार्ध, माणिभद्र, तमिस्रगुह, उत्तरार्ध और वैश्रवण नाम के नौ कूट हैं। इनमें से प्रथम सिद्धकूट पर पूर्व वर्णन के अनुसार ही जिनचैत्यालय है। खण्डप्रपातकूट पर नदृमाली (नृत्यमाल) और तमिस्रगुह कूट पर कृतमाली तथा अवशेष छह कूटस्थ प्रासादों में अपने-अपने कूट नामधारी व्यंतर देव रहते हैं ॥११६-११६॥ कूटों की चौडाई मूल में सवा छह (६¼) योजन, मध्य में चार योजन ढाई कोस (४ योजन २½ कोस) और शिखर पर तीन (३) योजन प्रमाण है। कूट के मूलभाग की अर्थात् आदि की उत्तम परिधि का प्रमाण बीस योजन, कूट के मध्य भाग की मध्यम परिधि का प्रमाण कुछ कम पन्द्रह योजन और शिखर पर कूटों की परिधि का प्रमाण कुछ अधिक नौ योजन प्रमाण है ॥११६ १२२॥

अब विजयार्धस्थ तमिस्र एवं प्रपात गुफा का सविस्तार वर्णन करते हैं :—

पञ्चाशद्योजनायामे योजनाष्टसमुन्नते ।
गुहे तमिश्रकाण्डप्रपाताख्ये स्तोऽत्र पर्वते ॥१२३॥
योजनद्वादशव्यासे तिमिरोष्माभिपूरिते ।
महावज्रकपाटद्वयाङ्किते शाश्वते शुभे ॥१२४॥
अस्योभयोर्दिशोर्नित्यं वनं द्विक्रोशविस्तृतम् ।
वेदिकातोरणैर्युक्तं जिनालयपुरादिभिः ॥१२५॥
इत्येषा वर्णना सर्वा विदेहे द्विविधेऽखिले ।
द्वात्रिंशद्विजयार्धानां समानास्त्युन्नतादिभिः ॥१२६॥

अर्थ :—इस विजयार्ध पर्वत में तमिस्र और प्रपात नाम की दो गुफाएँ हैं, जो पचास योजन लम्बी, आठ योजन ऊँची बारह योजन चौडी, अन्धकार और उष्णता से भरी हुई, दो महावज्र कपाटों से युक्त, शाश्वत और शुभ हैं ॥१२३-१२४॥ पर्वत की दोनों दिशाओं में जिन चैत्यालयों, नगरों, वेदिकाओं एवं तोरणों से युक्त दो कोस चौडे शाश्वत वन हैं। इसी प्रकार का यह समस्त वर्णन पूर्व विदेह, अपर विदेह में अथवा बत्तीस विदेहों में और बत्तीस विजयार्धों की ऊँचाई आदि में समान रूप से है ॥१२५-१२६॥

अब चौसठ कुण्डों का वर्णन करते हैं :—

नीलाद्र्यधःस्थ भूभागे सार्धद्विषष्टियोजनैः ।
विस्तृते चावगाहाढ्ये दशयोजनसंख्यया ॥१२७॥

वेदिकातोरणद्वारोपेते स्वच्छाम्बुभिर्भृते ।
द्वे कुण्डे स्तः पृथग् रक्तारक्तोदोत्पत्तिकारणे ।।१२८।।
इत्युक्तविस्तृताद्यैः सर्वाणि कुण्डानि धीधनैः ।
सदृशानि चतुःषष्टिर्ज्ञेयानि शाश्वतानि च ।।१२९।।
नीलाद्रिनिषधाधःस्थभूमिष्वति शुभान्यपि ।
चतुःषष्ठिनदीनां स्वोत्पत्तिभूतानि नान्यथा ।।१३०।।

अर्थ :—नीलपर्वत के अधोभाग में भूमि पर साढे बासठ योजन चौडे, दश योजन गहरे, वेदिका और तोरणों से सकुलित तथा स्वच्छ जल से भरे हुये रक्ता-रक्तोदा महानदियो की उत्पत्ति के कारण भूत पृथक् पृथक् दो कुण्ड है ।।१२७-१२८।। इस प्रकार विद्वानो के द्वारा समस्त चौसठ (६४) ही शाश्वत कुण्ड पूर्वोक्त कुण्डों के विस्तार आदि के सदृश ही कहे गये है, ऐसा जानना चाहिये । नील और निषध कुलाचलो के अधोभाग मे पृथ्वी पर (विदेहस्थ गङ्गा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन) चौसठ नदियों के (पतन और) उत्पत्ति के कारणभूत अत्यन्त शुभ चौसठ कुण्ड है, इसमें सशय नही है ।।१२९-१३०।।

अब विदेहस्थ रक्ता रक्तोदा का स्वरूप कहते है :—

कुण्डयोर्दक्षिणद्वाराभ्यां निर्गत्योर्म्मिसंकुले ।
क्रोशाग्रयोजनैः षड्भिरादौ विस्तारसंयुते ।।१३१।।
अर्धक्रोशावगाहे द्वे रक्ता रक्तोदसंज्ञिके ।
नद्यौगुहास्थदेहल्या-अधोभागे विनिर्गते ।।१३२।।
अद्रेर्गुहान्तरे ज्ञेयो विस्तारः खण्डवर्जितः ।
अष्टयोजनसंख्यो द्विनद्योः सर्वत्र सन्निभः ।।१३३।।
ततोऽभ्येत्य क्रमान्नद्यौ सार्धद्विषष्टियोजनैः ।
विस्ताराद्यवगाहे द्वे पञ्चक्रोशैर्मनोहरे ।।१३४।।
सीतायास्तोरणद्वाराभ्यां प्रविष्टे क्षयोज्झिते ।
द्विपार्श्वस्थमहावेदीवनतोरणभूषिते ।।१३५।।
चतुर्दशसहस्राणि वनवेद्याद्यलंकृताः ।
प्रत्येकमनयोः सन्ति परिवाराख्यनिम्नगाः ।।१३६।।

अर्थः—कल्लोलावलियो से व्याप्त, सवा छह योजन चौडी और अर्ध कोस गहरी रक्ता-रक्तोदा नाम की दोनो नदियाँ निषध कुलाचल के मूल मे स्थित कुण्डों के दक्षिण द्वारों से निकलकर विजयार्ध

स्थित गुफा की देहली के नीचे से जाती हुई गुफा मे प्रवेश करती है। गुफा के भीतर इन सरिताओ का विस्तार हानि-वृद्धि से रहित सर्वत्र समान रूप से आठ योजन प्रमाण जानना चाहिये। इसके बाद मन को हरण करने वाली ये दोनो नदियाँ क्रमशः साढे बासठ योजन विस्तार और पाँच कोस के अवगाह को प्राप्त होती हुई, दोनो पार्श्वभागो मे महान् वेदियो, वनो एव तोरणो से विभूषित और अनाद्यनिधन सीता-सीतोदा की वेदियो के तोरण द्वारो से होती हुई सीता-सीतोदा मे प्रवेश करती है। इन दोनो मे से प्रत्येक की वन वेदी आदि से अलकृत चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ है ॥१३१-१३६॥

अब सीता सीतोदा के तोरणों एवं गोपुरों के आयाम आदि का वर्णन करते हैं:—

सीतायास्तोरणद्वारयोरायामः प्रथग्विधः।
सार्धद्विषष्टिसख्यानि योजनानि तथोन्नतिः ॥१३७॥
योजनानां च पादोनचतुर्नवतिसम्मिता।
अर्धयोजनविस्तारो बह्वचो, जिनेन्द्रमूर्तयः ॥१३८॥
तयोर्गोपुरयोर्मूर्ध्नि स्युः पुराणि सुधाभुजाम्।
युक्तानि वनवेद्याद्यैस्तुङ्गधामजिनालयैः ॥१३९॥
इत्येषा वर्णना सर्वा ज्ञातव्या सदृशी बुधैः।
चतुःषष्टिनदीनां चावगाहाविस्तरादिभिः ॥१४०॥
सीतासीतोदयोर्नद्योर्द्वाराणां तटयोर्द्वयोः।
चतुःषष्टिप्रमाणानां सरित्प्रवेशदायिनाम् ॥१४१॥

अर्थ —सीता और सीतोदा के तोरण द्वारो का पृथक्-पृथक् आयाम साढे बासठ योजन, ऊँचाई एक पाद से कम चौरान्नवे (९३¾) योजन और नीव अर्ध योजन प्रमाण है। इन दोनों नदियो के गोपुरो के ऊपर अत्यधिक जिनेन्द्र मूर्तियाँ और देवो के नगर है, वे नगर उत्तम जिनालयो, उन्नत प्रासादो, वनो एव वेदियो आदि से सयुक्त है ॥१३७-१३९॥ सीता-सीतोदा नदियो के दोनो तटो पर स्थित नदियो को प्रवेश देने वाले चौसठ (प्र०ोग) द्वारो का तथा गंगा-सिन्धु (३२) और रक्ता-रक्तोदा (३२) इन ६४ नदियो के विस्तार एव अवगाह आदि के प्रमाण का समस्त वर्णन विद्वानो के द्वारा उनके सदृश ही जानने योग्य है ॥१४०-१४१॥

अब कच्छादेश का छह खण्डों में विभाजन, आर्य खण्ड की अवस्थिति और म्लेच्छ खण्डों का स्वरूप कहते हैं:—

विजयार्धाद्रिणा रक्तारक्तोदाभ्यां बभूव च।
कच्छादेशः सषट्खण्ड आर्यैकम्लेच्छपञ्चभृत् ॥१४२॥

सीताया उत्तरे भागे विजयार्धस्य दक्षिणे ।
रक्तारक्तोदयोर्मध्येऽस्त्यार्यखण्डं शुभाकरम् ॥१४३॥
अन्यानि म्लेच्छखण्डानि धर्मदूराणि पञ्च हि ।
धर्मकर्मबहिर्भूतैः म्लेच्छैर्भृतानि दुःकुलैः ॥१४४॥

अर्थ :—विजयार्ध पर्वत और रक्ता-रक्तोदा इन दो नदियों से कच्छा देश के छह खण्ड होते हैं, उनमें से एक आर्य और पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं। सीतानदो के उत्तर में, विजयार्ध के दक्षिण में और रक्ता-रक्तोदा के मध्य में अत्यन्त शुभ चेष्टाओं से युक्त आर्य खण्ड है। शेष पाँच म्लेच्छ खण्ड धर्म रहित है, और धर्म कर्म से बहिर्भूत तथा खोटे कुलोत्पन्न म्लेच्छों से भरे है ॥१४२-१४४॥

अब पृथक् पृथक् तीन खण्डों का, छह खण्डों का और विजयार्ध के समीप रक्ता-रक्तोदा का विस्तार कहते है :—

नीलाचलसमीपे त्रिखण्डानां विस्तरः पृथक् ।
योजनानां त्रयस्त्रिंशदग्रसप्तशतानि च ॥१४५॥
क्रोशैकस्य षडंशेनोनद्विक्रोशयुतान्यपि ।
षट्खण्डानां तथायामोऽष्टौ सहस्राणि द्वे शते ॥१४६॥
एकसप्ततिसंयुक्ते योजनानां पृथक् पृथक् ।
एकोनविंश भागानां भागैको योजनस्य च ॥१४७॥
मूले रजतशैलस्य विस्तारः सरितो द्वयोः ।
योजनानि चतुस्त्रिंशत् सार्धक्रोशयुतान्यपि ॥१४८॥
विजयार्धसमीपे हि त्रिखण्डानां सुविस्तृतिः ।
योजनानां द्विसप्ताधिकानि सप्तशतानि च ॥१४९॥
तथा पञ्चसहस्राणि धनुषां षट्शतानि च ।
षट्षष्टिरेव हस्तौ द्वावंगुलान्यपि षोडश ॥१५०॥

अर्थः—नील कुलाचल के समीप मे कच्छ देश के तीन खण्डों का पृथक्-पृथक् विस्तार सात सौ तेतीस योजन छह भागों से हीन दो कोस (७३३$\frac{११}{२४}$ योजन) प्रमाण है, तथा छह खण्डों का पृथक् पृथक् आयाम आठ हजार दो सौ इकहत्तर योजन और एक कला (८२७१$\frac{१}{१९}$ योजन) प्रमाण है। विजयार्ध पर्वत के मूल में रक्ता-रक्तोदा नदियो में से प्रत्येक का विस्तार चौतीस योजन और डेढ कोस से कुछ अधिक है। अर्थात् ३४$\frac{३}{८}$ योजन प्रमाण है ॥१४५-१४८॥ विजयार्ध पर्वत के समीप मे तीनों

खण्डो में से प्रत्येक खण्ड का विस्तार ७१४ योजन पाच हजार छह सौ छयासठ धनुप, दो हाथ और सोलह अंगुल प्रमाण है ॥१४९-१५०॥

अब इस उपर्युक्त प्रमाण को लाने का विधान कहते है :—

रक्तारक्तोदाव्यासोनकच्छादेशत्रिभागीकृतः विजयार्ध पार्श्वे आर्य म्लेच्छखण्डाना प्रत्येकं विष्कम्भ' चतुर्दशाग्रसप्तशतयोजनानि पचसहस्रषट्शतषट्षष्टिधनू षि च द्वौ करौ षोडशागुलानि।

अर्थ —रक्ता-रक्तोदा के व्यास से हीन कच्छा देश के व्यास को तीन से भाजित करने पर विजयार्ध के समीप आर्यादि छह खण्डो मे से प्रत्येक खण्ड का विस्तार प्राप्त होता है। यथा—कच्छा देश के विष्कम्भ का प्रमाण २२१२$\frac{७}{८}$—(३४$\frac{३}{८}$ × २ रक्ता-रक्तोदा का वि०) ÷ ३ = ७१४ योजन, ५६६६ धनुष, २ हाथ और १६ अगुल प्रत्येक खण्ड का विस्तार है ॥

अब सीता के तट पर स्थित तीन खण्डों का विस्तार, क्षेमपुरी की अवस्थिति, प्रमाण एवं अन्य अन्य विशेषताओं का वर्णन करते है :—

सीतातटे त्रिखण्डानां विष्कम्भः षट्शतानि च।
षण्णवत्यधिकान्येव योजनानां पृथक् पृथक् ॥१५१॥
गव्यूत्येकषडशेनोनानि क्षेमाह्वया पुरी।
आर्यखण्डस्य मध्येऽस्ति महती धर्ममातृका ॥१५२॥
योजनद्वादशायामा नवयोजनविस्तृता।
सहस्रगोपुरद्वारैः क्षुल्लकद्वारपंक्तिभिः ॥१५३॥
शतपञ्चप्रमै रत्नमयैः खातिकयावृता।
चतुःपथसहस्रैः सहस्रद्वादशवीथिभिः ॥१५४॥
तुङ्गसौधजिनागारै-र्जैनसंघैर्जिनादिभिः।
धर्मोत्सवशतैर्नित्य भाति धर्मखनीव सा ॥१५५॥
मिथ्यात्वमठदुःशास्त्रकुदेवलिङ्गिवर्जिता।
मिथ्यामतकुपाखण्डिदूरा वर्णत्रयान्विता ॥१५६॥
अत्रसप्तमहामेघा भ्रमराञ्जनसन्निभाः।
वर्षाकाले च वर्षन्ति सप्तसप्तदिनान्यपि ॥१५७॥
कुन्देन्दु सदृशा द्रोणमेघा द्वादशसंख्यकाः।
महासलिलसम्पूर्णा योग्यं कुर्वन्ति वर्षणम् ॥१५८॥

एकैकस्य सुमेघस्य सन्ति श्रीपतनाः शुभाः ।
स्थूला नीरौघसंयुक्ता विंशत्यग्रशतत्रयम् ॥१५९॥
ततोऽतिवृष्टयनावृष्टिदुर्भिक्षाद्याः किलेतयः ।
जायन्तेऽत्र न चा निष्टा अन्ये प्रजाऽसुखप्रदाः ॥१६०॥
उत्पद्यन्तेऽत्र तीर्थेशास्त्रिजगन्नाथसेविताः ।
गणेशा गणनातीताश्चरमाङ्गाश्च योगिनः ॥१६१॥
चक्रिणो वासुदेवाश्च बलदेवास्तयोर्द्विषः ।
नारदाः कामदेवाद्या जायन्ते नृसुरार्चिताः ॥१६२॥
राजा तथाधिराजश्च महाराजोऽर्धमण्डली ।
मण्डलीको महामण्डलीकस्त्रिखण्डभूपतिः ॥१६३॥

अर्थः—सीता महानदी के तीर पर तीनों खण्डों का पृथक् पृथक् विस्तार छठे भाग से हीन छह सौ छयानवै योजन (६९५$\frac{३}{६}$ यो०) प्रमाण है। आर्य खण्ड के मध्य में श्रेष्ठ धर्ममाता के सदृश क्षेमा नाम की नगरी है ॥१५१-१५२॥ इस नगरी का आयाम बारह योजन और विस्तार नौ योजन प्रमाण है, तथा यह नगरी एक हजार गोपुर द्वारों एवं पाँच सौ क्षुल्लक (लघु) द्वारों से युक्त तथा रत्नमय खाई से वेष्टित है। धर्म की खान (आकर) के समान यह क्षेमा नगरी एक हजार चतुष्पथों, बारह हजार वीथियो, उन्नत प्रासादो, जिन चैत्यालयो, जिनसघों, जिन प्रतिमाओं एव नित्य प्रति होने वाले सहस्रों धर्म महोत्सवों के द्वारा शोभायमान रहती है ॥१५३-१५५॥ मिथ्या मठों अर्थात् मिथ्यात्व के पोषक मिथ्या आयतनो, कुशास्त्रों, कुदेवो एवं कुलिङ्गियो से रहित, मिथ्यामत और पाखण्डियों से विहीन यह नगरी तीन वर्णों के मनुष्यो से सदा समन्वित रहती है ॥१५६॥ यहाँ पर वर्षा काल में भ्रमर एवं अञ्जन के सदृश सात प्रकार के महामेघ सात सात दिन तक वर्षा करते है। कुन्द पुष्प और चन्द्र के सदृश प्रभावाले तथा प्रचुर जल से परिपूर्ण बारह द्रोणमेघ भी योग्य वर्षा करते है ॥ इनमें से एक एक के स्थूल जल के समूह से युक्त अत्यन्त शुभ तीन सौ वीस श्रीपतन (सरित्प्रपात) होते हैं ॥ १५७-१५९॥ इस नगरी मे कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदि तथा और भी अन्य ईतियाँ (अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसक, सलभ, शुक्र, स्वचक्र और परचक्र ये सात ईतियाँ है) नही होती। प्रजा को दुख देने वाले अन्य भी कोई अनिष्ट वहाँ नही होते ॥ १६० ॥ वहाँ पर तीन लोक के इन्द्रो (१००इंद्रों) से सेवित तीर्थङ्कर देव, गणनातीत गणधर एवं चरमशरीरी मुनिराज उत्पन्न होते है। मनुष्यो और देवों से पूजित चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, बलदेव, नारद और कामदेव आदि भी उत्पन्न होते है, तथा राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्धमण्डल, मण्डलीक, महामण्डलीक और त्रिखण्ड-पति भी उत्पन्न होते है ॥१६१-१६३॥

अब राजाधिराजा आदि के लक्षण कहते हैं :—

चक्रीषट्खण्डभूनाथः शतपञ्चमहीभृताम् ।
पतिः स्यादधिराजश्च सहस्रभूभुजां पतिः ॥१६४॥
महाराजो महीपानां द्विसहस्रप्रमाजुषाम् ।
स्वाम्यर्धमण्डलीक. स्याच्चतुः सहस्रभूभृताम् ॥१६५॥
नायको मण्डलीकश्चाष्टसहस्रमहीभुजाम् ।
पतिर्भवेन्महामण्डलीको भूपशिरोमणिः ॥१६६॥
सहस्रषोडशानां सम्राज्ञां मुकुटशालिनाम् ।
पतिः स्यादर्धचक्री च नृविद्येशसुरार्चितः ॥१६७॥
द्विषोडशसहस्राणां राज्ञां शेखरशालिनाम् ।
स्वामी षट्खण्डभूनाथश्चक्रीरत्ननिधीश्वरः ॥१६८॥

[1]अत्रोपयोगिनश्लोका :—

अष्टादशसंख्यानां श्रेणीनामधिपतिर्विनम्राणाम् ।
राजास्यान्मुकुटधरः कल्पतरुं सेव्यमाना ॥१॥
पञ्चशतनरपतीनामधिराजोधीश्वरो भवतिलोके ।
राजसहस्राधिपतिः प्रतीयतेऽसौ महाराजः ॥२॥
द्विसहस्रराजनाथो मनीषिभिर्भण्यतेर्धमण्डलिकः ।
मण्डलिकश्चतथास्याच्चतुः सहस्रावनीशपतिः ॥३॥
अष्टसहस्रमहीपतिनायक माहु बुधामहामण्डलिकम् ।
षोडशराजसहस्रैर्विनम्यमानं त्रिखण्डधरणीशम् ॥४॥
षट्खण्डभरतनाथं द्वात्रिंशद्धरणिपतिं सहस्राणाम् ।
दिव्यमानुष्य भोगागारं विदुरिह धरम् ॥५॥

अर्थ —(अठारह श्रेणियो के स्वामी को अथवा एक करोड ग्रामो के अधिपति को राजा कहते हैं) । ५०० राजाओ का अधिपति अधिराजा, एक हजार राजाओ का स्वामी महाराजा, दो हजार राजाओ का स्वामी अर्धमण्डलीक, चार हजार राजाओ का स्वामी मण्डलीक, आठ हजार राजाओ

---

१ एते श्लोका अ. ज. प्रत्यो न सन्ति । टिप्पण्यामेव प्रदर्शिता व. न. प्रत्यो मूले सम वेशिता ।

का स्वामी महामण्डलीक, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं का अधिपति अर्धचक्री (त्रिखण्डाधिपति) और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी छहखण्डों का अधिपति, चौदह रत्न एवं नौ निधियों का अधीश्वर चक्रवर्ती होता है ।। १६४ — १६८ ।।

उपयोगी (क्षेपण) श्लोकों का अर्थ:—

अठारह श्रेणियों (१ सेनापति, २ गणपति, ३ वणिक्पति, ४ दण्डपति, ५ मन्त्री, ६ महत्तर, ७ तलवर, ८ चतुर्वर्ण ११ चतुरङ्ग, १५ पुरोहित, १६ अमात्य, १७ महामात्य और १८ प्रधान) के अधिपति से जो कल्पवृक्ष के सदृश सेव्यमान है उसे मुकुट बद्ध राजा कहते हैं। ५०० राजाओं से सेव्यमान को अधिराजा, १००० राजाओं के स्वामी को महाराजा, २००० राजाओं से सेव्यमान को अर्धमण्डलीक, ४००० राजाओं से सेव्यमान को मण्डलीक, ८००० राजाओं के स्वामी को महामण्डलीक, १६००० राजाओं से सेवित को अर्धचक्री अर्थात् त्रिखण्डाधिपति कहते है, और ३२००० राजाओं के अधिपति को जो कि छह खण्ड का अधिपति है, दिव्य मनुष्य शरीर से युक्त और भोगों की खान है उसे चक्रवर्ती कहते है ।।१–५।।

क्षेमापुरी के वनों की संख्या कहते हैं :—

क्षेमापुर्याश्चतुर्दिक्षु प्रत्येकं सद्वनानि च ।
षष्ट्यग्रत्रिशतानि स्युः फलपुष्पयुतान्यपि ।।१६९।।

अर्थ :—क्षेमापुरी की चारो दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में फलों एवं पुष्पों से युक्त तीन सौ साठ, तीन सौ साठ उत्तम वन है।। १६९ ।।

अब चक्रवर्ती की दिग्विजय का विस्तृत व्याख्यान करते हुये सर्व प्रथम दक्षिण दिग्विजय का वर्णन करते है :—

तत्रोत्पन्नो हि चक्रेशः प्राप्य रत्नचतुर्दश ।
निधीन्नवषडङ्गाढ्यो निर्याति दिग्जयाप्तये ।।१७०।।

क्रमात् स साधयन् भूपान् दक्षिणाभिमुखेन च ।
गत्वा सीतासरिद्द्वारे स्वसैन्येन वसेत्सुधीः ।।१७१।।

तत्र सेनापतिं चक्री नियोज्य बलरक्षणे ।
दिव्यं रथंमुदारुह्य सरिद् द्वारं प्रविश्य च ।।१७२।।

गत्वा नद्यन्तरे द्वादशयोजनानि सद्धनुः ।
आदाय तन्निनादेन कम्पयन् नृखगाऽमरान् ।।१७३।।

अमोघाख्यं स्फुरद्दीप्रं शरं मुञ्चति पाणिना ।
मागधावासमुद्दिश्य मागधद्वीपसंस्थितम् ।।१७४।।
चक्रिनामाङ्कितो बाणः कुर्वन् स्वध्वनिना द्रुतम् ।
भयं तद्वासिदेवानां पतेद्देवसभाक्षितौ ।।१७५।।
मागधाख्योऽमराधीशः चक्रिनामाङ्कितं शरम् ।
तं वीक्ष्य सहसादाय ज्ञात्वा चक्र्यागमं ध्रुवम् ।।१७६।।
अभ्येत्य शिरसा नत्वा चक्रेशं पूजयेन्मुदा ।
दिव्याभरणरत्नाद्यैस्तदाज्ञां प्रोद्वहन्स्वयम् ।।१७७।।
अनेन विधिनाऽसौ वरतनुं व्यन्तराधिपम् ।
शक्त्या वरतनु द्वीपाधीशं प्रभासनिर्जरम् ।।१७८।।
सीतान्तःस्थं प्रभासाख्यं द्वीपनाथं प्रसाध्य च ।
ताभ्यां नेपथ्य रत्नादीन् बहून् गृह्णाति लीलया ।।१७९।।
इति दक्षिणदिग्भागे वासिनोऽमरभूपतीन् ।
जित्वोत्तरदिशां जेतुमायाति स जयन् नृपान् ।।१८०।।

अर्थः—उस क्षेमापुरी नगरी मे उत्पन्न होने वाले चक्रवर्ती चौदहरत्न, नौ निधियो को प्राप्त कर सेना से युक्त होते हुये दिग्विजय की प्राप्ति के लिये निकलते है ।।१७०।। क्षेमापुरी से निकलकर सर्व प्रथम दक्षिणाभिमुख जाते है, वहाँ के सर्व नरेन्द्रो को क्रम से जीतते हुये उत्तम बुद्धि का धारक वह चक्रवर्ती सीतानदी के द्वार पर जाकर अपनी सेना के साथ ठहर जाते हैं। वहाँ सेना की रक्षा मे सेनापति को नियुक्त कर आप स्वय दिव्य रथ पर चढकर सीता नदी के द्वार मे प्रवेश करते हुये नदी के भीतर बारह योजन पर्यन्त जाकर उत्तम धनुष बाण ग्रहण करते हैं, जिसकी टङ्कार से मनुष्यो विद्याधरो एवं देवो को कम्पायमान करते हुये मागधद्वीप मे स्थित मागध देव के निवास स्थान का उद्देश्य कर अमोघ नाम के देदीप्यमान बाण को अपने हाथो से छोडते है ।।१७१-१७४।। चक्रवर्ती के नाम से अङ्कित वह बाण अपनी ध्वनि से वहाँ के निवासी देवो को भय उत्पन्न कराता हुआ देव सभा के मध्य मे गिरता है ।।१७५।। देवो का अधीश्वर मागध नाम देव, चक्रवर्ती के नाम से अकित उस बाण को देख कर तथा उसे ग्रहण करके और निश्चय से चक्रवर्ती का आगमन जानकर शीघ्र ही वहाँ आकर उन्हे शिर से नमस्कार करता है, तथा दिव्यवस्त्राभूषणो एवं रत्नसमूहो से प्रसन्नता पूर्वक चक्रवर्ती की पूजा करता हुआ उनकी आज्ञा को स्वय अपने शिर पर धारण करता है ।।१७६-१७७।। इसी प्रकार वह चक्री अपनी शक्ति विशेष से वरतनुद्वीप के अधीश्वर

वरतनु नाम को व्यन्तराधिप को और सीता के तट पर स्थित प्रभास द्वीप के स्वामी प्रभास देव को अपने आधीन करके उनके बहुत से वस्त्राभरण और रत्न आदि क्रीडा मात्र मे ग्रहण कर लेता है ॥१७८-१७९॥ इसी प्रकार दक्षिण दिशा में निवास करने वाले देवों एवं राजाओं को जीत कर वह चक्री उत्तर दिशा गत राजाओं को जीतने की इच्छा से उत्तर में आता है ॥१८०॥

अब उत्तर दिग्विजय में विजयार्ध की गुफा से निस्तीर्ण होने का विधान बतलाते हैः--

क्रमेण विजयार्धाद्रि समीपेऽसौ बलावृतः ।
रूप्याद्रि म्लेच्छखण्डादि साधनाय चिरं वसेत् ॥१८१॥
चक्र्यादेशेन सेनानीरश्वरत्नं खगामिनम् ।
आरुह्याभ्येत्य रूप्याद्रेर्गुहाद्वारं सुदुर्गमम् ॥१८२॥
तमिश्राख्यं स्फुरद्दण्डरत्नेन घातयेत्तराम् ।
तत् क्षणं स खमुत्पत्य म्लेच्छखण्डं व्रजेन्सुधीः ॥१८३॥
दण्डघातेन तद् द्वारकपाटोद्घाटनं भवेत् ।
तन्मध्यादूष्मदाहौघो निर्याति दुस्सहस्तदा ॥१८४॥
षण्मासैर्यावदूष्मौघः शान्तः स्याच्छीतला गुहा ।
तावत्सेनापतिर्म्लेच्छखण्डमेकं च साधयेत् ॥१८५॥
ततश्चक्रिमहासेना ह्यागत्याद्रिगुहामुखम् ।
प्रविश्य यत्नतो गच्छेन्नद्या उभयपार्श्वयोः ॥१८६॥
क्रमेणास्य गुहामध्यभागे गत्वा नदीद्वयात् ।
अग्रे गन्तुमशक्तं तत्सैन्यं चिन्तापरं वसेत् ॥१८७॥
गिरिद्विपार्श्वभित्तिस्थभूकुण्डाभ्यां विनिर्गते ।
द्वे चोन्मग्नजलासंज्ञिका निमग्नजलाह्वये ॥१८८॥
नद्यौ द्वियोजनायामे महोर्मिचयसंकुले ।
रक्तामध्ये प्रविष्टे प्रवहतस्तत्र दुर्गमे ॥१८९॥
तदा चक्रधरादेशात् स्थपत्याख्यो नृरत्नवाक् ।
दिव्यशक्त्यानयोर्नद्योः सेतुबन्धं प्रबन्धयेत् ॥१९०॥
तेनोत्तीर्य शनैर्नद्यौ पुण्येन सैन्य मूर्जितम् ।
गुहाया उत्तरद्वारेण निर्गच्छति शर्मणा ॥१९१॥

अर्थ.—चक्रवर्ती म्लेच्छ आदि खण्डो को जीतने के लिये उत्तर दिशा में क्रम से जाते हुये अपनी महान सेना सहित विजयार्ध के समीप बहुत काल तक रहता है। चक्रवर्ती के आदेश से सेनापति आकाशगामी घोडे (अश्वरत्न) पर चढकर विजयार्ध पर्वत को तमिश्र नाम की गुफा द्वार को देदीप्यमान दण्डरत्न से अत्यन्त जोर से घात करता (ठोकर मारता) है और वह उत्तम बुद्धि का धारी सेनापति तत्क्षण आकाश मे उडता हुआ म्लेच्छ खण्ड को जाता है।।१८१–१८३।। दण्डघात के द्वारा उस गुफा के दोनो द्वार खुल जाते है और उसके भीतर से अत्यन्त दुस्सह उष्मा (उष्णता) का समूह निकलता है। छह मास के बाद वह उष्णता का समूह शान्त होता है और गुफा शीतल होती है तब तक सेनापति एक म्लेच्छ खण्ड को साध (जीत) लेता है।। इसके बाद चक्रवर्ती की महान सेना विजयार्ध गुफा द्वार के मुख मे प्रवेश करके नदी के दोनो पार्श्वभागो मे यत्नपूर्वक चलती हुई क्रम से गुफा के मध्य भाग मे पहुँचकर उन्मग्नजला और निमग्नजला इन दोनो नदियों को पार करने में असमर्थ होती हुई चिन्तातुर होकर ठहर गई।।१८४–१८७।। विजयार्ध पर्वत के दोनों पार्श्व भागो की भित्ति (मूल मे) स्थित दो कुण्डो से निकलने वाली उन्मग्नजला और निमग्नजला नाम की दोनों नदियाँ दो योजन लम्बी और महान् कल्लोलो के समूह से सकुलित होकर बहती हुई अति दुर्गम रक्ता महानदी के मध्य मे प्रविष्ट होती है। तब चक्रवर्ती के आदेश से स्थपति नाम का (बढई) मनुष्य रत्न दिव्य शक्ति के द्वारा दोनो नदियो पर सेतुबन्ध का प्रबन्ध करता है। पुण्ययोग से समस्त सेना उन दोनो नदियो को शनैः शनैः उत्तीर्ण कर गुफा के उत्तर द्वार से सुख पूर्वक निकल जाती है।।१८८–१९१।।

अब मध्यम म्लेच्छ खण्ड में चक्रवर्ती के प्रदेश एवं उनके ऊपर आये हुये उपसर्ग का वर्णन करते है :—

मध्यस्थम्लेच्छखण्डस्य धरामाक्रम्य चक्रभृत्।
तिष्ठेत् षडङ्गसंयुक्तो जेतुं म्लेच्छनृपान् बहून्।।१९२।।
चक्रद्यागमं तदालोक्य म्लेच्छभूपा भयातुराः।
विज्ञापयन्ति चाभ्येत्याराध्य स्वकुलनिर्जरान्।।१९३।।
तच्छ्रुत्वा ते क्रुधागत्यामरा मेघमुखाह्वयाः।
तत्सैन्यसुभटादीनां कुर्वन्त्युपद्रवं महत्।।१९४।।
व्याघ्राद्यैर्भीषणैरूपैर्विविधैश्चक्रिपुण्यतः।
मनाक् क्षोभं न गच्छन्ति सैन्यकास्तैरुपद्रवैः।।१९५।।
पुनस्ते मेघधाराद्यैः स्थूलैः स्वविक्रियाकृतै.।
कुर्वते महतीं वृष्टिं विद्युत्पातादि गर्जनैः।।१९६।।

उपर्यस्य सुसेनायाः सप्ताहोरात्र मञ्जसा ।
तदात्रैकार्णवः स्याच्च मज्जयन् वनपादपान् ।।१९७।।
तदम्बुजलधौ चर्मरत्नं विस्तरति स्फुटम् ।
द्विषड्योजनपर्यन्तं जलाभेद्यं हि वज्रवत् ।।१९८।।
तस्योपरि महत्सैन्यं तिष्ठेत्तस्मिन्नुपद्रवे ।
तच्चर्मोपरि सेनाया मेघवाधादिहानये ।।१९९।।
छत्ररत्नं जलाभेद्यं चर्मरत्नान्तमञ्जसा ।
प्रसरेदिति तद्रत्नद्वयं स्यादण्डकोपमम् ।।२००।।
चतुर्द्वाराङ्कितस्यास्य मध्ये चक्रेशपुण्यतः ।
निराबाधतया कृत्स्नं सैन्यं तिष्ठेत्स्वशर्मणा ।।२०१।।
ततश्चक्रधरो ज्ञात्वा तद्देवोत्थमुपद्रवम् ।
देवानुद्दिश्य दिव्याङ्गं तथा वाणं विमुञ्चति ।।२०२।।
तथा ते निर्जरादुष्टा जायन्ते निःप्रभास्ततः ।
ते निर्जिता विलोक्योच्चैश्चक्रिमाहात्म्यमूर्जितम् ।।२०३।।
देवा म्लेच्छनृपाश्चैत्य सेवां कुर्वन्ति चक्रिणः ।
हस्त्यश्वरत्नकन्यादिदानैः प्रणाम भक्तिभिः ।।२०४।।

अर्थः—चक्रवर्ती विजयार्ध गुफा के उत्तर द्वार से निकल कर मध्य में स्थित मध्यम म्लेच्छ खण्ड की भूमि को प्राप्त कर अनेक म्लेच्छ राजाओं को जीतने के लिये षड् (छह) अंगों की सेना सहित ठहर गया ।।१९२।। तब चक्रवर्ती के आगमन को देखकर भय से आकुलित म्लेच्छ राजा अपने कुल देवताओं के पास आकर और उनकी आराधना करके अपने भय का कारण कहने लगे। उसे सुनकर वे देवगण क्रोधित हो उठे और मेघमुख नाम के देव ने आकर चक्रवर्ती की सेना के सुभटों पर घोर उपद्रव किया। अनेक प्रकार के व्याघ्र आदि भीषण रूपों के द्वारा किये हुये अनेक उपद्रव चक्रवर्ती के पुण्य से सेना को किञ्चित मात्र भी क्षोभ नहीं पहुँचा सके। तब वे देव अपनी विक्रिया के द्वारा जल की मोटी मोटी धारा के द्वारा जल की महान् वृष्टि, विद्युत्पात एवं मेघगर्जन आदि करने लगे। सेना के ऊपर यह उपर्युक्त वर्षा सात दिन रात पर्यन्त होती रही जिससे वहाँ वन के वृक्ष आदिकों को डुबाने वाला एक समुद्र हो गया ।।१९३–१९७।। उस जल समुद्र के ऊपर बारह योजन पर्यन्त जल के द्वारा अभेद्य और वज्र के समान एक चर्मरत्न फैला दिया गया। उसके ऊपर वह महान सेना उस उपद्रव के समय में ठहर गई। सेना की मेघ आदि की बाधा को दूर करने के लिये उस चर्मरत्न के ऊपर जल

के द्वारा अभेद्य और चर्मरत्न के बराबर एक छत्ररत्न फैला दिया गया। ये दोनो रत्न मिलकर (एक ऊपर एक नीचे) अण्डा की आकृति के सदृश हो गये। चक्रवर्ती के पुण्य से चार द्वारो से युक्त इन दोनो रत्नो के बीच मे समस्त सेना निराबाध और सुख पूर्वक ठहरी रही ॥१९८-२०१॥ इसके बाद "यह उपद्रव देवो द्वारा उत्पन्न किया गया है "यह जानकर चक्रवर्ती उन देवो का चिन्तन (लक्ष्य) करके ही एक दिव्य बाण छोडता है। उस एक ही बाण से वे दुष्ट देव कान्ति हीन हो गये, तथा म्लेच्छ राजाओ के साथ साथ वे सब देव चक्रवर्ती के महान् माहात्म्य को देखकर उनके पास आये और हाथी, अश्व, रत्न एव कन्या आदि दान के द्वारा भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करने लगे ॥२०२-२०४॥

अब चक्रवर्ती के मद एव निर्मद होने का कारण दर्शाते है :—

ततो म्लेच्छाधिपांश्चक्री साधयन् याति पुण्यतः ।
मध्यमम्लेच्छखण्डस्थ वृषभाचलसन्निधिम् ॥२०५॥
तदा चक्राधिपो देवखगभूपजयोद्भवम् ।
उद्वहन् परमं गर्वं वाञ्छन् स्वनामलेखनैः ॥२०६॥
स्वकीर्तिं निश्चलां कर्त्तुमभ्येत्याद्रिं निरीक्ष्य तम् ।
निर्मदो जायतेऽनेक चक्रेशनामवीक्षणात् ॥२०७॥

अर्थ:—म्लेच्छ खण्ड के राजाओं को जीतता हुआ चक्रवर्ती पुण्य के प्रभाव से मध्यम म्लेच्छ खण्ड मे स्थित वृषभाचल के समीप पहुँचता है। देव एव विद्याधर आदि राजाओं को जीत लेने से उत्पन्न होने वाले महान गर्व को धारण करता हुआ वह अपने नाम लेखन के द्वारा अपनी कीर्ति निश्चल करने की इच्छा से वृषभाचल को प्राप्त करता हुआ उसे दखता है, तथा अनेक चक्रवर्तियो के नाम देख कर तत्क्षण निर्मद हो जाता है ॥२०५-२०७॥

अब वृषभाचल पर्वत के प्रमाण आदि का एवं उस पर चक्रवर्ती के प्रशस्ति लेखन का वर्णन करते है :—

शतयोजनविस्तीर्णो मूले मध्ये च योजनैः ।
पंचसप्ततिसंख्यानैर्विस्तृतो मस्तके महान् ॥२०८॥
पंचाशत्सख्यकैर्भाति स योजनशतोन्नतः ।
वनतोरणवेद्याद्यैर्मानह्रद् वृषभाचलः ॥२०९॥
अनेन वर्णनेनात्र विदेहवृषभाद्रयः ।
द्वात्रिंशन्निखिला ज्ञेयाः समाना उन्नतादिभिः ॥२१०॥

तत्राचले निरस्याशु कस्यचिन्नाम चक्रभृत् ।
लिखेत्स्वकुलनामाद्यैः प्रशस्ति कीर्तये भुवि ।।२११।।

अर्थः—चक्रवर्तियो के मान को हरण करने वाला यह वृषभाचल पर्वत सौ योजन ऊँचा, मूल में सौ योजन चौड़ा, मध्य में पचहत्तर योजन चौडा और शिखर पर पचास योजन चौड़ा है, तथा वन, तोरण एवं वेदी आदि से सहित है ।।२०८–२०९।। विदेह स्थित बत्तीस वृषभाचलों की ऊँचाई आदि का समस्त वर्णन इसी वृषभाचल के सदृश जानना चाहिये ।।२१०।। इस वृषभाचल पर्वत पर चक्रवर्ती पृथिवी पर अपनी कीर्ति स्थाई करने के लिये अन्य किसी चक्रवर्ती का नाम मिटाकर अपने कुल नामादि से युक्त प्रशस्ति लिखता है ।।२११।।

अब चक्रवर्ती के नगर प्रवेश का क्रम आदि कहते हैं :—

ततः खण्डत्रयोत्पन्नान् जित्वा खगनृपामरान् ।
तत्सारवस्तु कन्यादीन् गृहीत्वा याति पुण्यतः ।।२१२।।
रूप्याद्र्यपरभागस्थ गुहाद्वारेण चक्रभृत् ।
प्राग्वच्चोद्घाटितेनैव तच्चमूपतिना स्वयम् ।।२१३।।
इति षट्खण्डभूवासिसुरभूपखगाधिपान् ।
साधयित्वा क्रमात्तेभ्यः कन्यारत्नान्यनेकशः ।।२१४।।
वस्तुवाहनकोटींश्चादाय पुण्यात् स्वलीलया ।
वज्रीव स्वपुरीं चक्री प्रविशेच्च षडङ्गभृत् ।।२१५।।
तत्रातिपुण्यपाकेन भुंक्ते भोगांच्युतोपमान् ।
चक्रीदशविधान् कुर्वन् जिनधर्ममनारतम् ।।२१६।।

अर्थः-इसके बाद तीन खण्ड में उत्पन्न विद्याधरों, राजाओं और देवों को जीतकर पुण्य प्रताप से वहाँ की कन्या आदि सार वस्तुओं को लेकर चक्रवर्ती वापिस आता है । जब चक्रवर्ती विजयार्ध पर्वत के पश्चिमस्थ गुफा द्वार पर आता है तब सेनापति स्वयं पूर्व के समान उस गुफा द्वार को खोलता है ।।२१२-२१३।। इस प्रकार छह खडवासी देवों, नरेंद्रों और विद्याधरों को क्रमशः जीतकर तथा अतिशय पुण्य से करोडों वस्तु, वाहन आदिकों को क्रीडा मात्र में ग्रहण करके चक्रवर्ती छह अङ्गों की सेना सहित इन्द्र पुरी के समान अपनी नगरी में प्रवेश करता है और वहाँ अत्यन्त पुण्योदय से उपमा रहित भोगों को भोगता हुआ जिन धर्म में है रत मन जिसका ऐसा चक्रवर्ती दश प्रकार के धर्मों का पालन करता है ।।२१२-२१६।।

अब चक्रवर्ती के ग्राम, पुर और मटम्बों आदि का वर्णन करते हैं :—

भवन्ति विषये चक्रिणो ये ग्रामपुरादयः ।
भोग्याः सम्पद्बलाद्यास्तान् समासेनदिशाम्यहम् ॥२१७॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि देशास्तस्य च शाश्वताः ।
नृपा मुकुटबद्धास्तावन्तो नमन्ति तत्क्रमौ ॥२१८॥
वृत्यावृता महा ग्रामाः कोटीषण्णवतिप्रमाः ।
चतुर्गोपुरशालाद्यैर्वेष्टितानि पुराणि च ॥२१९॥
षड्विंशति सहस्राणि ग्रामैः पञ्चशतैर्युताः ।
प्रत्येकं च मटम्बाः स्युश्चतुःसहस्रसम्मिताः ॥२२०॥
सरित्पर्वतयोर्मध्ये सहस्राण्येव षोडश ।
खेटानि स्युर्भृतान्युच्चैर्जिनालयसुधार्मिकैः ॥२२१॥
चतुर्विंशसहस्राणि कर्वटान्यावृतानि च ।
पर्वतेन जिनागारश्रावकादियुतान्यपि ॥२२२॥
पत्तनान्यष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि सन्ति च ।
रत्नोत्पत्त्यादिहेतूनि युक्तानि धनिधर्मिभिः ॥२२३॥
सहस्राणि नवाग्रा नवतिर्द्रोणामुखानि च ।
सीतानदीजलोत्पन्नोपसमुद्रतटेष्वपि ॥२२४॥
चतुर्दशसहस्राणि संवाहनानि सन्ति वै ।
पर्वताग्रेषु युक्तानि रत्नसौधजिनालयैः ॥२२५॥
अष्टाविंशसहस्राणि स्युर्दुर्गाणि महान्ति च ।
अगम्यान्यस्य शत्रूणां धनिधर्मिभृतानि च ॥२२६॥
अन्तर्द्वीपा भवेयुः षट्पञ्चाशद्रत्नराशिभिः ।
भृता उपसमुद्रस्य मध्ये सीतोत्तरे तटे ॥२२७॥
षड्विंशतिसहस्राणि रत्नाकरा महोन्नतैः ।
सौधचैत्यालयैः पूर्णा रत्नभूसार वस्तुभिः ॥२२८॥
रत्नकुक्षिनिवासाः स्यू रत्नस्थानधरान्विताः ।
शतसप्तप्रमा रम्या जिनधामादिधार्मिकैः ॥२२९॥

सीताया उत्तरे भागे क्षेमापुर्याश्च दक्षिणे ।
भवत्युपसमुद्रोऽविनश्वरः स्वोर्मिसंकुलः ।।२३०।।

अर्थः—चक्रवर्ती के देश मे जो ग्राम एवं पुर आदि होते है उनका तथा उनके योग्य भोग्य सामग्री, सम्पदा एवं बल आदि का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ ।।२१७।। चक्रवर्ती के शाश्वत बत्तीस हजार देश होते है, जिनके बत्तीस हजार मुकुट वद्ध राजा क्रम से उन्हें नमस्कार करते हैं ।।२१८।। जो वृत्ति वाड से आवृत्त (घिरे हुये) होते है, उन्हें ग्राम कहते हैं, ऐसे छयान्नवे करोड़ महा ग्राम; चार गोपुर एव उन्नत कोट आदि से वेष्टित छब्बीस हजार पुर, जो पाँच सौ ग्रामों से संयुक्त होते है ऐसे चार हजार मडम्व, (प्रत्येक मडम्व चार हजार ग्रामों से युक्त होता है) नदियों और पर्वतों के मध्य रहना है लक्षण जिनका ऐसे उन्नत जिनालयो एव धार्मिक जनो से भरे हुये सोलह हजार खेट होते है ।।२१७–२२१।। जो मात्र पर्वतो से घिरे हुये होते है उन्हें कर्वट कहते है । ऐसे मुनि और श्रावकों से युक्त चौवीस हजार कर्वट होते है ।।२२२।। धनी और धार्मिक जनों से युक्त तथा रत्न आदि उत्पत्ति के कारण भूत अडतालीस हजार पत्तन है ।।२२३।। सीता नदी के जल से उत्पन्न होने वाले उपसमुद्रों के तटों पर निन्यानवें हजार (९९०००) द्रोणमुख होते हैं ।।२२४।। रत्नप्रासादो एव जिनालयों से सहित पर्वतों के शिखरो पर चौदह हजार संवाह है जो अन्य शत्रुओं आदिकों को अगम्य है तथा धनी और धार्मिक जनों से भरे हैं ऐसे अट्ठाईस हजार (२८०००) महादुर्ग है ।।२२५–२२६।। सीता के उत्तर तट पर उपसमुद्र के मध्य में रत्नों की राशियो से भरे हुये छप्पन (५६) अन्तर्दीप है ।।२२७।। महा उन्नत प्रासादों से परिपूर्ण और रत्नों एव भूमि की अन्य सारभूत वस्तुओं से समृद्ध छब्बीस हजार (२६०००) रत्नाकर है ।।२२८।। रत्नों की स्थानभूत पृथिवी से समन्वित तथा रमणीक जिनभवनों और धार्मिक जनो से अचित सात सौ रत्नकुक्षिवास है ।।२२९।। सीता के उत्तर भाग में और क्षेमापुरी के दक्षिण में अपने आप में उठने वाली कल्लोलों से सकुलित और अविनश्वर उपसमुद्र है ।।२३०।।

अब चक्रवर्ती के बल और रूप आदि के साथ-साथ अन्य वैभव के प्रमाण का वर्णन करते हैं :—

लक्षाश्चतुरशीतिः स्युर्गजेन्द्राः पर्वतोपमाः ।
तावन्तश्चक्रिणो रम्यारथावाजिद्वयाङ्किताः ।।२३१।।

शीघ्रगामिन एवास्याश्वा अष्टादशकोटयः ।
कोटयश्चतुरशीतिः स्युद्रुतगामिपदातयः ।।२३२।।

स्याद्वज्रास्थिमयं वज्रवलयैर्वेष्टितं वपुः ।
निर्भिन्नं वज्रनाराचैरभेद्यं तस्य सुन्दरम् ।।२३३।।

आदिमं च सुसंस्थानं चतुःषष्टिसुलक्षणैः ।
व्यञ्जनैर्बहुभिर्युक्तं हेमाभं च च्युतोपमम् ॥२३४॥
षट्खण्डवासिभूपानां पिण्डीकृतं हि यद्बलं ।
ततोऽधिकं महावीर्यं चक्रिणः स्यान्निसर्गतः ॥२३५॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राण्यार्यखण्डस्थ नृपात्मजाः ।
तावत्यो वररूपाश्च म्लेच्छराजसुताः शुभाः ॥२३६॥
तत्प्रमाः खचराधीशपुत्र्योविद्याकलान्विताः ।
नाटकाः शर्मदा द्वात्रिंशत्सहस्रप्रमाः शुभाः ॥२३७॥
स्थाल्यः स्वर्णमयाः कोटिप्रमा अस्य महानसे ।
स्यादेककोटिलक्षश्च हलानां पामरैः समम् ॥२३८॥
स्युस्तिस्रो व्रजकोटयोऽस्य गोकुलैः संकुलाः शुभाः ।
अष्टादशसहस्राश्च म्लेच्छराजानमन्ति तम् ॥२३९॥

अर्थ . — चक्रवर्ती के पर्वत की उपमा को धारण करने वाले चौरासी लाख हाथी और दो-दो घोडो से युक्त तथा रम्य चौरासी लाख ही रथ होते है । अठारह करोड शीघ्रगामी घोडे और द्रुतगामी चौरासी करोड पदाति होते हैं ॥ २३१–२३२ ॥ वज्रमय वाणो से अभेद्य, सन्धि रहित, वज्रमय अस्थि एव वज्रवलय से वेष्टित चक्रवर्ती का शरीर अत्यन्त सुन्दर, समचतुरस्र सस्थान, चोसठ उत्तम लक्षणो और अनेको व्यञ्जनो से युक्त, हेम वर्ण एव उपमा रहित होता है ॥२३३–२३४॥ छह खण्डवर्ती समस्त राजाओ के बल को एकत्रित करने पर जो बल होता है उससे भी अधिक बल अर्थात् महावीर्य चक्रवर्ती के स्वभावत होता है ॥२३५॥ आर्य खण्डस्थ राजाओ की वत्तीस हजार कन्याएँ, अनुपम रूप एव शुभ लक्षणो से युक्त म्लेच्छ राजाओ की वत्तीस हजार कन्याएँ तथा विद्याओ एवं कलाओ से समन्वित विद्याधरो की वत्तीस हजार कन्याएँ अर्थात् चक्रवर्ती के छ्यान्नवे हजार रानियाँ होती है । सुख उत्पन्न करने वाले शोभनीक वत्तीस हजार नाटकगण, रसोई गृह मे स्वर्णमय एक करोड प्रमाण थालियाँ अथवा हण्डियाँ होती है । एक लाख करोड किसानो के साथ साथ एक लाख करोड प्रमाण ही हल होते हैं । नाना वर्णो की अत्यन्त शुभ लक्षण वाली गायो से भरे हुये तीन करोड व्रज होते है और चक्रवर्ती को अठारह हजार म्लेच्छ राजा नमस्कार करते हैं ॥२३६–२३९॥

अब चक्रवर्ती की नौ निधियों के नाम, कार्य एवं उनके आकार आदि का सविस्तर वर्णन करते है :—

कालाह्वयो महाकालो नैःसर्प्पः पाण्डुकाभिधः ।
पद्माख्यो माणवः पिङ्गलाभिख्यः शंखसंज्ञकः ।।२४०।।
सर्वरत्न इमे सन्ति चक्रिणो निधयो नव ।
निधिः कालोऽस्य पुण्येन पुस्तकानि ददाति च ।।२४१।।
सर्वलौकिकशब्दादि वार्तानामन्वहं तथा ।
मनोज्ञानिन्द्रियार्थांश्च वीणावंशानकादिकान् ।।२४२।।
असिमस्यादिषट्कर्मसाधनद्रव्यसम्पदः ।
महाकालनिधिर्दत्ते पुण्यात्पुण्यनिधेः प्रभोः ।।२४३।।
शय्यासनालयादीनि नैःसर्प्पो वितरेद्विभोः ।
पाण्डुकोऽखिल धान्यानि षड्रसांश्च मनोहरान् ।।२४४।।
पट्टकूलादि वस्त्राणि दत्ते पद्मो महान्ति च ।
रत्नाभरणविश्वानि दीप्तिशालीनि पिङ्गलः ।।२४५।।
शस्त्राणि नीतिशास्त्राणि सूते कृत्स्नानि माणवः ।
शंखः प्रदक्षिणावर्तः सुवर्णानि महान्ति च ।।२४६।।
सर्वरत्ननिधिर्दद्याद्विश्वरत्नानि चक्रिण ।
सर्वेऽमी शकटाकारा निधयोऽद्भुतपुण्यजाः ।।२४७।।
चतुरक्षाष्टचक्राढ्या योजनाष्टसमुन्नताः ।
नवयोजनविस्ताराः प्रत्येकं रक्षिताः सुरैः ।।२४८।।
सहस्रसंख्यकैर्द्वादशयोजनायताः शुभाः ।
ज्ञेयाः पुण्यनिधेस्तस्य नित्यं स्वेहितवस्तुदाः ।।२४९।।

अर्थ—चक्रवर्ती के काल, महाकाल, नैसर्प, पाण्डु, पद्म, माणव, पिङ्गल, शङ्ख और सवरत्न ये नव निधियाँ होती है। चक्रवर्ती के पुण्य से प्रेरित इन नौ निधियों में से काल नाम की प्रथम निधि तर्क, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार आदि के, लोक व्यवहार सम्बन्धी एव व्यापार सम्बन्धी शास्त्रों को तथा इन्द्रियो के मनोज्ञ विषयो को एवं वीणा, बाँसुरी, पटह आदि वाद्यों को निरन्तर देती है। पुण्य की खान स्वरूप चक्री के शुभोदय से महाकाल निधि असि, मसि कृष्यादि षट् कर्मों के साधन भूत द्रव्यों को और अन्य सम्पदा को भी देती है। नैःसर्प निधि चक्रवर्ती को शय्या, आसन और प्रासाद आदि देती है। पाण्डु निधि सम्पूर्ण धान्य एवं मनोहर षट्रसो को देती है। पद्म नाम की पञ्चम निधि रेशमी और सूती आदि सभी प्रकार के महान वस्त्र देती है। पिङ्गल निधि कान्तिमान् समस्त प्रकार के

रत्नाभरण आदि देती है। माणव निधि समस्त प्रकार के आयुध और नीति शास्त्र देती है। प्रदक्षिणावर्त शंख निधि महान स्वर्ण और सर्वरत्न नाम की ९ वी निधि समस्त प्रकार के रत्न चक्रवर्ती को देती है। अद्‌भुत पुण्य से उत्पन्न होने वाली ये नौ निधियाँ शकटाकार होती है ॥२४०-२४७॥ चार खूँटियो (चक्रधारा) एव आठ पहियो से सयोजित ये कल्याण प्रद नौ निधियाँ पृथक्-पृथक् आठ योजन ऊँची, नौ योजन चौडी, बारह योजन लम्बी और एक-एक हजार देवो से रक्षित है, तथा पुण्य के भडार स्वरूप चक्रवर्ती को नित्य ही स्व इच्छित पदार्थ देती है, ऐसा जानना चाहिये ॥२४८-२४९॥

अब चक्रवर्ती के चौदह रत्नों के नाम और उनके उत्पत्ति स्थानों को कहते है :—

चक्रं छत्रमसिर्दण्डो मणिश्च चर्मकाकिणी ।
इमानि सप्तरत्नान्यजीवानि साधनान्यपि ॥२५०॥

सेनागृहपतीभाश्वस्थपतिस्त्रीपुरोधसः ।
सप्तरत्नानि चैतानि सजीवानि महान्ति वै ॥२५१॥

चक्रच्छत्रासिदण्डाश्च जायन्तेऽस्यायुधालये ।
काकिणीमणिचर्माणि पुण्येन श्रीगृहान्तरे ॥२५२॥

स्त्रीगजाश्वाः त्रिरत्नान्युत्पद्यन्ते रजताचले ।
चत्वारिशेषरत्नानि क्षेमापुर्यां महान्ति च ॥२५३॥

सरत्नानिधयो नार्यः सैन्यं शय्यासने पुरी ।
भोज्यं सभाजनं नाट्यं वाहनं हीति चक्रभृत् ॥२५४॥

दशाङ्गभोगसाराणि भुनक्ति पुण्यपाकतः ।
गणबद्धामराभृत्याः सहस्रषोडशास्य च ॥२५५॥

अर्थः—चक्रवर्ती के महापुण्य योग से चक्र, छत्र, तलवार, दण्ड, मणि, चर्म रत्न और काकणी ये सात अजीव रत्न अनेक कार्यो को साधने वाले होते है। तथा सेनापति, गृहपति, हाथी, अश्व, स्थपति, स्त्री और पुरोहित ये सात सजीव रत्न है ॥२५०-२५१॥ चक्र, छत्र, असि और दण्ड ये चार रत्न चक्रवर्ती की आयुधशाला मे उत्पन्न होते है। काकणी, मणि और चर्मरत्न ये तीन रत्न श्रीगृह अर्थात् चक्री के खजाने मे तथा स्त्री, हाथी एव अश्व ये तीन रत्न विजयार्ध पर्वत पर उत्पन्न होते है शेष चार रत्न अर्थात् सेनापति, गृहपति, स्थपति और पुरोहित ये महान् चार रत्न क्षेमापुरी मे ही उत्पन्न होते है ॥२५२-२५३॥ चक्रवर्ती १ चौदह रत्नो सहित नौ निधियाँ, २ स्त्री, ३ सेना, ४ शय्या, ५ आसन, ६ पुरी, ७ भोजन, ८ भाजन, ९ नाटक और १० वाहन ये दश प्रकार के सारभूत भोगो को भोगता है। महा पुण्योदय से सोलह हजार गणबद्ध देव भृत्यो के सदृश सेवा करते है ॥२५४-२५५॥

अब चक्रवर्ती के अन्य भोग्य पदार्थों के नाम कहते हैं :—

क्षितिसाराह्वयस्तुङ्गः प्राकारोस्ति गृहावृतिः ।
गोपुरं सर्वतोभद्रमुल्लसद्रत्नतोरणम् ।।२५६।।
निवेशः शिविरस्यास्य नन्द्यावर्ताभिधो भवेत् ।
प्रासादो वैजयन्ताख्य सर्वत्र शर्मसाधकः ।।२५७।।
दिक्स्वस्तिका सभाभूमिः पराद्धर्य मणिकुट्टिमा ।
अस्य चंक्रमणीयष्टिः सुविधिर्मणिनिर्मिता ।।२५८।।
गिरिकूटाख्यकंसौधं तुङ्गं दिगवलोकने ।
वर्धमानकनामास्य प्रेक्षागारं सुसुन्दरम् ।।२५९।।
धारागृहाभिधो रम्यो घर्मान्तकोस्ति शीतलः ।
गृहकूटकसंज्ञोऽस्य वर्षावासो मनोहरः ।।२६०।।
हर्म्यं स्यात्पुष्करावर्ताह्वयं रम्यं सुधासितम् ।
कुवेरकान्तनामास्य भाण्डागारं क्षयातिगम् ।।२६१।।
अव्ययं वसुधाराख्यं कोष्ठागारं च चक्रिणः ।
जीमूतनामकं स्याच्च मज्जनागारमूर्जितम् ।।२६२।।
रत्नमालातिरोचिष्णुः सुप्रोच्चास्त्यवतन्सिका ।
देवरम्याह्वयारम्या स्मृता दूष्यकुटीपृथुः ।।२६३।।
सिंहैर्भयानकैरूढा सुशय्यासिंहवाहिनी ।
अनुत्तराख्यं दिव्यं तुङ्गं सिंहासनं महत् ।।२६४।।
रम्याणि चामराण्यस्यानुपमाख्यानि सन्ति च ।
भास्वत्सूर्यप्रभं छत्रं दीप्तं सद्रत्नभूषितम् ।।२६५।।
विद्युत्प्रभाह्वये स्यातां रुचिरे मणिकुण्डले ।
अभेद्याख्यं तनुत्राणमभेद्यं शत्रुजैः शरैः ।२६६।।
रत्नांशु जटिलाः सन्ति पादुका विषमोचिकाः ।
परांह्रिस्पर्शमात्रेण मुञ्चन्त्यो विषमुल्वणम् ।।२६७।।
रथोऽजितञ्जयाख्यः स्याद्वज्रकाण्डं महद्धनुः ।
चक्रिणोऽमोघपाताः स्युरमोघाख्यमहेषवः ।।२६८।।

अर्थ —चक्रवर्ती के नगर के चारों ओर क्षितिसार नाम का उत्तुङ्ग और वृत्ताकार प्राकार है। कान्तिमान् उत्तम रत्नो का सर्वतोभद्र नाम का गोपुर है। शिविर (डेरा, तम्बू) के निवेश द्वार का नाम नन्द्यावर्त है। सर्व ऋतुओ मे सुख देने वाला वैजयन्त नाम का प्रासाद है ॥२५६-२५७॥ पराद्धर्य मणि का है आगन (भूमि) जिसका ऐसा दिक्स्वस्तिका नाम का सभा स्थल और चक्रवर्ती के हाथ मे लेने की घूमने वालो सुविधि नाम की मणि निर्मित छडी है ॥२५८॥ दिशाओ का अवलोकन करने के लिये गिरिकूट नाम का उन्नत प्रासाद है, और अति रमणीक वर्धमान नाम का प्रेक्षागार है ॥२५९॥ आताप का विनाश करने वाला शीतल और रम्य धारागृह नाम का भवन है, वर्षाकाल में सर्व सुखो को देने वाला, मन को अभिराम गृहकूट नाम का भवन है। चूने की कलई से उज्ज्वल और रम्य पुष्करावर्त नाम का उत्तम भवन है जिसमे अक्षय निधि से परिपूर्ण कुवेरकान्त नाम का भाण्डारगार है ॥२६०-२६१॥ चक्रवर्ती के क्षय से रहित वसुधारा नाम का कोष्ठागार है और अत्यन्त तेज कान्ति से युक्त जीमूत नामका मज्जनागार (स्नानगृह) है ॥२६२॥ चक्रवर्ती की अति देदीप्यमान रत्नो की माला है, और सुप्रोच्चा नाम की उत्तम टोपी है। अति सुन्दर और महान विस्तार वाली देवरम्य नाम की दूष्य कुटी अर्थात् वस्त्रागार कहा गया है ॥२६३॥ भयावह (वडे-बड़े) सिंहो पर आरूढ सिहवाहिनी नाम की उत्तम शय्या है और अनुत्तर नाम का दिव्य और उन्नत श्रेष्ठ सिंहासन है ॥२६४॥ अनुपम नाम के श्रेष्ठ चाँमर और उत्तम रत्नो से रचित देदीप्यमान सूर्यप्रभ नाम के छत्र है ॥२६५॥ विद्युत्प्रभ नाम के सुन्दर मणिकुण्डल और शत्रुओ के वाणो द्वारा छिन्न भिन्न न होने वाला अभेद्य नाम का कवच है ॥२६६॥ चक्रवर्ती की रत्नजडित विषमोचिका नाम की दो पादुकाएँ हैं जो अन्य जनों के पैरों के स्पर्श करने मात्र से उनके अतितीव्र विष का मोचन (हरण) कर लेती है ॥२६७॥ अजितञ्जय नाम का रथ और चक्रवर्ती को विजय प्राप्त कराने वाले अमोघ नाम के वाणो से युक्त वज्रकाण्ड नाम का महान धनुप है ॥२६८॥

अब चक्रवर्ती के हथियारों, नौ निधियों एवं चौदह रत्नों के नाम कहते हैः—

वज्रतुण्डाभिधा शक्तिर्वज्रोद्भवारिखण्डिनी ।
कुन्तः सिहाटको रत्नदण्डः सिंहनखाङ्कितः ॥२६९॥
तस्यासिपुत्रिका दीप्ता महती लोहवाहिनी ।
कणयोस्ति मनोवेगोऽसिश्च सौनन्दकाख्यकः ॥२७०॥
पृथुभूतमुखं खेटं सार्थ भूतमुखान्वितम् ।
सुदर्शनाह्वयं चक्रं षट्खण्डाक्रमणक्षमम् ॥२७१॥
चण्डवेगाभिधोदण्डो गुहाद्वारद्विभेदकृत् ।
चर्मरत्नं जलाभेद्यं महद्वज्रमयाभिधम् ॥२७२॥

मणिरत्नं तमोहन्तृ चूडामण्यभिधानकम् ।
ऊर्जितं काकिणीरत्नं चिन्तामणि समाह्वयम् ॥२७३॥
सेनापतिरयोध्याख्यो नररत्नं भवेत्प्रभोः ।
पुरोधाः पुरुधीर्दक्षो बुद्धिसागरनामकः ॥२७४॥
वास्तुविद्याप्रवीणः स्थपति र्भद्रमुखोऽद्भुतः ।
श्रीमान् गृहपतिः कामवृष्टिनामास्त्यभीष्टदः ॥२७५॥
व्ययोपचयचिन्तायां नियुक्तश्चक्रवर्तिनः ।
यागहस्तीमहाकायोऽद्रयाभो विजयपर्वतः ॥२७६॥
पवनञ्जयसंज्ञोऽश्वः सुभद्रास्त्री च्युतोपमा ।
इमानि दिव्यरत्नानि रक्षितानि सुरैर्विभोः ॥२७७॥
राज्याङ्गभोगकर्तॄणि पुण्यात्सन्ति चतुर्दश ।
तद्गृहेऽपररत्नानां संख्यां को वेत्ति बुद्धिमान् ॥२७८॥
आनन्दिन्योऽब्धिनिर्घोषाभेर्यो द्वादशसम्मिताः ।
द्विषड्योजनपर्यन्तं ध्वनन्त्यापूर्यदिग्मुखम् ॥२७९॥
प्रभोर्विजयघोषाख्याः पटहा द्वादशप्रमाः ।
चतुर्विंशति शङ्खाः स्युर्गम्भीरावर्तसंज्ञकाः ॥२८०॥

अर्थ —चक्रवर्ती के पास शत्रुओं को नाश करने वाली वज्रमय वज्रतुण्डा नाम की शक्ति, सिंहाटक नाम का कुन्तल और सिंह नखो के सदृश आकार से अंचित रत्नदण्ड होता है ॥२६९॥ महा दीप्ति से युक्त लोहवाहिनी नाम का खड्ग, मनोवेग नाम की करधौनी और सौनन्द नाम की तलवार होती है ॥२७०॥ भूतमुख से सहित अपने नाम को सार्थक करने वाली पृथुभूतमुख नाम की ढाल और षट्खण्डों पर आक्रमण करने में समर्थ ऐसा सुदर्शन नाम का चक्र होता है ॥२७१॥ दोनों गुफा द्वारों को भेदने में समर्थ चण्डवेग नाम का दण्ड और जल के द्वारा अभेद्य वज्रमय नाम का महान चर्मरत्न होता है ॥२७२॥ अन्धकार को नाश करने वाला चूडामणि नाम का मणिरत्न और महाप्रकाशवान् चिन्तामणि नाम का काकिणी रत्न होता है ॥२७३॥ चक्रवर्ती के अयोध्यसेन नाम का सेनापति नररत्न और विशाल बुद्धि का धारक तथा अतिदक्ष बुद्धिसागर नाम का पुरोहित होता है ॥२७४॥ आवास विद्या अर्थात् निवास स्थानों का निर्माण करने में प्रवीण भद्रमुख नाम का अद्भुत स्थपति (सिलावट)

श्रौर मनोवाञ्छित पदार्थों को देने वाला कामवृष्टि नाम का गृहपति होता है। जिसे चक्रवर्ती अपने व्यय-उपचय (हानि-वृद्धि या देय-आदेय या लघु-दीर्घ चिन्तनवत्) की चिन्ता सौप कर निश्चिन्त हो जाता है। पर्वत के सदृश महाकाय विजयपर्वत नाम का पट्ट हाथी, पवनञ्जय नामका घोडा, और उपमा से रहित सुभद्रा नाम की स्त्री होती है। चक्रवर्ती के इन दिव्य रत्नो की रक्षा देवो द्वारा होती है ॥२७५–२७७॥ महान पुण्योदय से चक्रवर्ती के पास राज-अङ्ग स्वरूप ये चौदह रत्न नाना प्रकार के भोगो के कर्ता है। उनके प्रासाद मे अन्य और कितने रत्न है ? इसकी सख्या कौन बुद्धिमान जान सकता है ? अर्थात् कोई नही ॥ २७८ ॥ समुद्र के सदृश निर्घोष करने वाली आनन्द नाम की बारह भेरियाँ है, जो अपनी ध्वनि से बारह योजन पर्यन्त समस्त दिशाओं को व्याप्त कर देती है। इसी प्रकार चक्रेश के यहाँ विजयघोष नाम के बारह पटह और गम्भीरावर्त नाम के चौबीस शख है ॥२७९-२८०॥

अब अन्य अवशेष वस्तुओ के नाम कहते हुये उनके भोज्य आदि पदार्थों का विवेचन करते है :—

दीप्ता वीराङ्गदाभिख्या कटका मणिनिर्मिताः ।
पताका अष्टचत्वारिंशत्कोटयोऽति मनोहराः ॥२८१॥
महाकल्याणकाभिख्यं तुङ्गं दिव्यासनं महत् ।
अस्यान्यसारवस्तूनि गदितुं को बुधः क्षमः ॥२८२॥
भक्ष्यायेऽमृतगर्भाख्याः सद्गन्धस्वादुशालिनः ।
शक्ता जरयितुं तस्य नान्ये तान् सुरसोत्कटान् ॥२८३॥
स्वाद्यं चामृतकल्पाख्यं हृद्यास्वादं सुसस्कृतम् ।
रसायनरसं दिव्यं पानक ह्यमृताह्वयम् ॥२८४॥

अर्थ.—मणियो से निर्मित और विशाल कान्तिमान् वीराङ्गद नाम का कडा है। अडतालीस करोड अति मनोज्ञ पताकाएँ होती है। महाकल्याण नाम का उन्नत, दिव्य और विशाल आसन होता है। चक्रवर्ती के पास और भी अनेक सार वस्तुएँ होती है जिनका कथन करने के लिये कौन बुद्धिमान समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नही ॥२८१–२८२॥ चक्रवर्ती के भोजन के लिये उत्तम गन्ध और शुभ स्वाद युक्त अमृतगर्भ नाम के मोदक होते है। उत्तम रसो से उत्कट उन मोदको को पचाने की शक्ति चक्रवर्ती मे ही होती है अन्य किसी मे नही ॥२८३॥ चक्रवर्ती के द्वारा सेव्यमान अमृतकल्प नाम का स्वाद्य पदार्थ हृदय को प्रिय और भली भाति सस्कृत होता है, तथा अमृत नाम के पेय पदार्थ भी दिव्य एव रसायन रस के सदृश होते है ॥२८४॥

अब चक्रेश की सम्पदा पुण्य का फल है ऐसा दिखाते हुये आचार्य धर्म करने की प्रेरणा देते है :—

पुण्यकल्पद्रुमोद्भूता एताः सर्वाः सुसम्पदः ।
फलभूता महाभोगा जानन्तु चक्रवर्तिनः ॥२८५॥
मत्वेति व्रतशीलाद्यैः शर्मकामाः सुयत्नतः ।
अर्जयन्तु सदा धर्मं स्वर्मुक्तिश्रीवशीकरम् ॥२८६॥

अर्थः—चक्रवर्ती के पूर्वोपार्जित पुण्य रूपी कल्पवृक्ष से उत्पन्न होने वाली ये सब उत्तम सम्पदाएँ और उसी वृक्ष के फल स्वरूप ये उत्कृष्ट भोग है ऐसा जानो, और सुख की इच्छा करने वाले मनुष्यों ! इसे धर्म का प्रसाद मानते हुये ही व्रत और शील आदि के द्वारा समीचीन पुरुषार्थ द्वारा स्वर्ग और मोक्ष लक्ष्मी को वश करने वाले धर्म का निरन्तर अर्जन (संचय) करो ॥२८५-२८६॥

अब अन्य चक्रवर्तियों के नगरों एवं देशों का विवेचन करते हैं :—

यथास्य चक्रिणः प्रोक्ता भूतयो दिग्जयादयः ।
तथा ज्ञेया विदेहेऽस्मिन् सकले चक्रवर्तिनाम् ॥२८७॥
व्यावर्णनं कृतं यद्वत् क्षेमापुर्या मयाऽखिलम् ।
विदेहेऽन्य पुरीणां च तद्वद्ज्ञेयं न चान्यथा ॥२८८॥
कच्छाविषयषट्खण्डानां प्रोक्तावर्णना यथा ।
तथा द्विधा विदेहे स्याद्देशखण्डाऽखिलात्मनाम् ॥२८९॥

अर्थ—जिस प्रकार इस चक्रवर्ती की विभूति एवं दिग्विजय आदि का वर्णन किया गया है उसी प्रकार इस विदेह क्षेत्र सम्बन्धी समस्त चक्रवर्तियों का जानना चाहिये। मेरे (आचार्य) द्वारा क्षेमापुरी नगरी का सम्पूर्ण वर्णन जिस प्रकार किया गया है, विदेह क्षेत्र में स्थित अन्य पुरों का समस्त वर्णन इसी प्रकार जानना चाहिये, अन्य प्रकार नही। कच्छा देश में जिस प्रकार छह खण्डों का वर्णन किया गया है, पूर्व-पश्चिम विदेह स्थित देशो के छह खण्डो का समस्त वर्णन इसी प्रकार है ॥२८७-२८९॥

धर्म का फल कहते है :—

इति सुकृतविपाकाच्चक्रिलक्ष्म्यो महत्यो,
निरुपमसुखसारा रत्ननिध्यादयश्च ।
त्रिजगतिसुपदाद्याः स्यु सतां हीति मत्वा,
भजत चरणयोगैः कोविदा ! धर्ममेकम् ॥२९०॥

अर्थः—इस प्रकार महान पुण्य विपाक से सज्जन पुरुषों को चक्रवर्ती की विशाल सम्पत्ति, निरुपम सुख, चौदह रत्न और नौ निधियाँ आदि तथा देवेन्द्र, धरणेन्द्र, खगेन्द्र आदि विविध प्रकार के उत्तम पद प्राप्त होते है, ऐसा मान कर— हे प्रवीण जनो ! व्रत, तप, संयम आदि शुभ योगों के द्वारा निरन्तर एक धर्म का ही सेवन करो ॥२९०॥

धर्म प्रशंसा :—

सद्धर्मः क्रियते मया प्रतिदिनं धर्म भजे यत्नतो,
धर्मेणैव ममास्तु शाश्वतसुखं धर्माय कुर्वे तपः ।
धर्मान्नापरमाश्रये सुगतये धर्मस्य सेवे गुणान्,
धर्मे चित्तमहं दधे भवभयं मे धर्म ! दूरीकुरु ।।२९१।।

इति श्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थेभट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचितें देवकुरूत्तर-कुरु कच्छादेश चक्रिदिग्विजय विभूति वर्णनोनाम सप्तमोऽधिकारः ।।७।।

अर्थ—मेरे द्वारा प्रतिदिन समीचीन धर्म का सेवन किया जाता है, मै यत्न पूर्वक धर्म को धारण करता हूँ। धर्म के द्वारा ही मुझे शाश्वत सुख की प्राप्ति हो, मैं धर्म के लिये तप करता हूँ। उत्तम गति के लिये धर्म से अपर अन्य कोई आश्रय नही है। धर्म के गुणो को धारण करो। मै अपने चित्त को धर्म में लगाता हूँ। हे धर्म ! मेरे भव भय को दूर करो ।।२९१।।

इसप्रकार भट्टारक सकलकीर्तिविरचित सिद्धान्तसार
दीपक नाम महाग्रन्थ मे देवकुरु, उत्तरकुरु,
कच्छादेश चक्रवर्ती की दिग्-विजय
एव विभूति का वर्णन करने
वाला सातवाँ अधिकार
।। समाप्त ।।



अष्टमोऽधिकारः

मङ्गलाचरणः—

देहातिगान् जिनाधीशान् वन्द्यान् सूरींश्च पाठकान् ।
त्रिजगत्पतिभिः साधून् विदेहस्थान् नमाम्यहम् ॥१॥

अर्थः—तीन लोक के अधिपतियों द्वारा वन्दनीय देह रहित सिद्धों को, विदेह क्षेत्रों में स्थित अरहन्तों को, आचार्यों को, उपाध्याय परमेष्ठियों को और साधुओं को मैं सकलकीर्ति (आचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अब चित्रकूट नाम के प्रथम वक्षार पर्वत का वर्णन करते हैं :—

अथ कच्छामहादेशात्पूर्वे वक्षारपर्वतः ।
प्रथमश्चित्रकूटाख्यश्चतुः कूटविराजितः ॥२॥

भवेदश्वमुखाकारस्तप्तचामीकरच्छविः ।
तोरणैर्वनवेद्याद्यैर्जिनदेवालयैर्युतः ॥३॥

नद्यन्ते योजनानां च शतपञ्चभिरुन्नतः ।
कुलाचलसमीपे योजनैश्चतुःशतप्रमैः ॥४॥

स्वोच्चतुर्यांश भूमध्यः कच्छादेशसमायतः ।
शतपञ्चप्रमाणैश्च योजनैर्विस्तृतोऽद्भुतम् ॥५॥

अर्थः—कच्छा महादेश के पूर्व में चार कूटों से सुशोभित चित्रकूट नाम का प्रथम वक्षार पर्वत है, जो अश्व के मुख सदृश आकार वाला, तपाये हुये स्वर्ण के सदृश कान्तिवान् और तोरणों, वनों, वेदियो और जिनालयों से समन्वित है ॥२-३॥ इस पर्वत की ऊँचाई सीता नदी के समीप पाँच सौ योजन और नील कुलाचल के समीप चार सौ योजन प्रमाण है। भूमध्य (नीव) में इसकी ऊँचाई का चतुर्थ भाग प्रमाण पृथिवी के भीतर है। पर्वत की लम्बाई कच्छा देश की लम्बाई के प्रमाण अर्थात् १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन और विस्तार पाँच सौ योजन प्रमाण है ॥४-५॥

अब वक्षारपर्वतस्थ कूटों के नाम, स्थान एवं स्वामी आदि कहते हैं :—

सिद्धकूटं च कच्छाख्यं सुकच्छासंज्ञकं ततः ।
चित्रकूटाह्वयं कूटं चतुःकूटान्यमूनि वै ।।६।।
वक्षारोच्चचतुर्थांशतुङ्गानि स्युः शुभान्यपि ।
अर्हत्सुरालयाढ्यानि सीतासमीपतः क्रमात् ।।७।।
दिव्योपकरणैः पूर्णः सिद्धकूटे जिनालयः ।
नीलाद्रयन्तेऽन्तिमे कूटे दिक्कन्याः सन्ति धामसु ।।८।।
मध्यकूटद्वयस्थोच्चरत्नवेश्मसु पुण्यतः ।
वसतः स्वस्वकूटोत्थ नामानौ व्यन्तरामरौ ।।९।।

अर्थ :—चित्रकूट नामक प्रथम वक्षार पर्वत पर सिद्धकूट, कच्छाकूट, सुकच्छाकूट और चित्रकूट नाम के चार कूट है ।।६।। इन शुभ कूटो की ऊँचाई वक्षार पर्वत की ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण है । अर्थात् सीता महानदी के समीप स्थित सिद्धकूट की ऊँचाई ($\frac{५००}{४}$=) १२५ योजन और नील पर्वत के समीप चित्रकूट की ऊँचाई ($\frac{४००}{४}$) =१०० योजन प्रमाण है, शेष दो कूटो की क्रमश हानि-वृद्धि को लिये हुये है । सीता के समीप से क्रमशः अर्हन्त भगवान और देवों से युक्त कूट है । सिद्धकूट के ऊपर दिव्य उपकरणो से परिपूर्ण जिन चैत्यालय है, और नील पर्वत के समीप अन्तिम चित्रकूट पर अनेक प्रासाद है, जिनमे दिक्कुमारियाँ निवास करती है ।।७–८।। मध्य मे स्थित शेष दो कूटो मे रत्न के प्रासाद है जिनमे पुण्योदय से अपने अपने कूटो के सदृश ही नाम वाले व्यन्तर देव निवास करते है ।।९।।

अब कूटों का उत्सेध पृथक्-पृथक् कहते है :—

कुलगिरि निकटस्थे प्रथमे कूटे उत्सेधः शतयोजनानि । द्वितीये च तृतीय भागाधिकाष्टोत्तरशतयोजनानि । तृतीये षोडशाग्रशतयोजनानि योजनत्रिभागाना द्वौ भागौ । चतुर्थे कूटे उन्नति. पञ्चविंशत्यधिक शतयोजनानि ।

अर्थः— नील कुलाचल के समीप स्थित प्रथम कूट की ऊँचाई १०० योजन, द्वितीय कूट की १०८$\frac{१}{३}$ योजन, तृतीय कूट की ११६$\frac{२}{३}$ योजन और चतुर्थ कूट की ऊँचाई १२५ योजन प्रमाण है ।।

अब शेष वक्षार पर्वतों, सुकच्छा देश और क्षेमपुरी का कथन करते है :—

इत्थं सुवर्णना ज्ञेया विदेहे सकलेऽखिला ।
षोडशप्रमवक्षाराणां सर्वेषां समानका ।।१०।।

ततः प्राग्वर्णनोपेतः सुकच्छाविषयो भवेत् ।
द्विनदीविजयार्द्धैश्च षट्खण्डीकृत ऊर्जितः ॥११॥
तस्यार्यखण्डमध्येऽस्ति रम्या क्षेमपुरी पुरी ।
प्रागुक्तनगरीतुल्या व्यासाद्यैर्धर्ममातृका ॥१२॥

अर्थः— इस प्रकार विदेह क्षेत्र स्थित सोलह वक्षार पर्वतो का समस्त वर्णन भी इस चित्रकूट वक्षार पर्वत के सदृश ही जानना चाहिये ॥१०॥ पूर्व कथित कच्छादेश के वर्णन के समान ही सुकच्छा देश का वर्णन है। इस देश के भी रक्ता-रक्तोदा और विजयार्ध पर्वत से छह खण्ड हुये है ॥११॥ इन छह खण्डों में से आर्य खण्ड के मध्य में व्यास आदि से क्षेमापुरी नगरी के समान अतिरम्य और धर्म की माता के सदृश क्षेमपुरी नाम की नगरी है ॥१२॥

अब विभङ्गा नदी का निर्गम स्थान, परिवार नदियाँ और लम्बाई आदि कहते हैं :—

ततो नीलाद्रिपार्श्वस्थ कुण्डस्य शाश्वतस्य च ।
निर्गत्य दक्षिणद्वारेण विभङ्गा नदी शुभा ॥१३॥
अष्टाविंशसहस्राणां परिवारसरिद्युता ।
कुण्डहीनायता ग्राहवतीसंज्ञोर्मिसंकुला ॥१४॥

अर्थः—इसके बाद नीलकुलाचल के पार्श्व भाग मे एक शाश्वत कुण्ड स्थित है उस कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर ग्राहवती नाम वाली, अत्यन्त रमणीक विभङ्गा नदी अट्ठाईस हजार परिवार नदियोसे युक्त होती हुई, कुण्ड व्याससे हीन आयतवाली अनेक उर्मियों से व्याप्त होकर बहती है॥१३-१४॥

अब विभङ्गा के अवशेष वर्णन का कथन करते है :—

रोहित्सरित्समव्यासा हेमसोपानशालिनी ।
तोरणैर्वनवेदीभिरलंकृता मनोहरा ॥१५॥
योजनैः पञ्चविंशत्यग्रशतैक प्रमाणकैः ।
विस्तीर्णान्ते हि सीतायाः प्रविष्टाभ्यन्तरे परा ॥१६॥
तस्याः प्रवेशसद्द्वारस्य पूर्वापरदीर्घता ।
पञ्चविंशति संयुक्तशतैक योजनानि च ॥१७॥
तोरणस्योच्छ्रितिः सार्धसप्ताशीत्यधिकं शतम् ।
योजनानां तथास्मिन्स्युर्जिनेन्द्र प्रतिमादयः ॥१८॥

इत्येषा वर्णना सर्वा विभङ्गासरितां समा ।
सीताप्रवेश सद्द्वाराणां विज्ञेया न चान्यथा ।।१९।।

अर्थः—ग्राहवती विभङ्गा नदी का व्यास रोहित् महानदी के सदृश है । स्वर्ण सोपानो से सुशोभित, तोरणो, वनो एव वेदियो से अलकृत यह मनोज्ञ नदो अन्त मे एक सौ पच्चीस (१२५) योजन विस्तीर्ण होती हुई सीता महानदी के मध्य प्रवेश कर जाती है ।।१५-१६।। इस नदी को सीता प्रवेश द्वार की पूर्व-पश्चिम दीर्घता एक सौ पच्चीस योजन है, तथा जिस पर जिनेन्द्र आदि प्रतिमाएँ अवस्थित है ,ऐसे तोरण की ऊँचाई एक सौ साढे सतासी (१८७½) योजन प्रमाण है ।।१७-१८।। इस प्रकार का यह सब वर्णन सर्व विभङ्गा नदियोका और सीता प्रवेश द्वारो का सदृश ही जानना चाहिये। अन्यथा नहो ।।१९।।

अब महाकच्छ देश की अवस्थिति और उसके मध्य स्थित अरिष्टानगरी का संक्षिप्त कथन करते है:—

नद्याः पूर्वे महाकच्छाविषयः प्राक्तनोपमः ।
धर्मशर्माकरीभूतः स्यात् षट्खण्डधराङ्कितः ।।२०।।
तस्य मध्ये परारिष्टानगरी विद्यते शुभा ।
जिन जैनालयैस्तुङ्गैर्भूषिता धर्मकर्मभिः ।।२१।।

अर्थ —ग्राहवती नदी की पूर्व दिशा मे पूर्वोक्त (कच्छा देश सदृश) उपमाओ से युक्त महाकच्छ नाम का देश है । जो धर्म और सुख की खान, तथा छह खण्ड पृथिवियो से समन्वित है ।।२०।। उस देश के मध्य मे एक अत्यन्त शुभ और श्रेष्ठ अरिष्टा नाम को नगरो है, जो जैन धर्मावलम्बियो के प्रासादो, उन्नत जिन चैत्यालयो एव धर्म-कर्म से विभूषित है ।।२१।।

अब पद्मकूट वक्षार पर्वत की अवस्थिति आदि कहते है :—

ततोस्ति पद्मकूटाख्यो वक्षारपर्वतो महान् ।
सिद्धकूटं महाकच्छाह्वयं कूटं ततः परम् ।।२२।।
कूटं च कच्छकावत्याख्यं पद्मकूटसंज्ञकम् ।
एतैश्चतुर्महाकूटैः शिखरेऽलंकृतोऽस्ति सः ।।२३।।

अर्थ —महा कच्छ देश के आगे पद्मकूट नाम का एक महान वक्षार पर्वत है । सिद्धकूट, महाकच्छ कूट, कच्छकावतो कूट और पद्मकूट इन चार महा कूटो के द्वारा उसका शिखर अलकृत है ।।२२-२३।।

अब कच्छकावती देश, द्रह्वती विभङ्गा, आवर्त देश और नलिनकूट वक्षार की अवस्थिति कहते हैं :—

ततोऽस्ति विषयः कच्छकावती संज्ञकोऽद्भुतः ।
मध्येऽरिष्टपुरी तस्य भवेद् धर्मसुखाकरा ।।२४।।
ततो द्रह्वतीसंज्ञा विभङ्गा निम्नगा भवेत् ।
पूर्वोक्तवर्णनायुक्ता कुण्डात्सीतान्तरागता ।।२५।।
तस्याः पूर्वे महान्देश आवर्त्ताख्योऽस्ति शाश्वतः ।
तन्मध्ये नगरी रम्या खड्गाख्या च शुभाकरा ।।२६।।
ततो नलिनकूटाख्यो वक्षाराद्रिर्महान् भवेत् ।
चतुःकूटाङ्कितो हेममयो जिनालयादिभृत् ।।२७।।
सिद्धं चावर्तसंज्ञं च लाङ्गलावर्तनामकम् ।
नलिनाख्यं चतुःकूटैरमीभिर्मूर्द्ध्नसोऽन्वितः ।।२८।।

अर्थः—पद्म कूट वक्षार पर्वत के आगे कच्छकावती नाम का अनुपम देश है । उसके मध्य में धर्म और सुख की खान स्वरूप अरिष्ट नाम की नगरी है ।।२४।। कच्छकावती देश के आगे पूर्वोक्त (ग्राहवती नदी के) वर्णन युक्त द्रह्वती नदी है जो कुण्ड से निकलकर सीता नदी पर्यन्त लम्बी है ।।२५।। इस द्रह्वती विभङ्गा के पूर्व में एक आवर्ता नाम का महान और शाश्वत देश है, जिसके मध्य में अत्यन्त रम्य और कल्याणों की खान सदृश खड्गा नाम की नगरी है ।।२६।। उसके आगे (पूर्व मे) नलिनकूट नाम का एक महान वक्षार पर्वत है, जो चारकूटों से अञ्चित और स्वर्णमय जिन चैत्यालयो आदि से परिपूर्ण है ।।२७।। उस वक्षार पर्वत का शिखर सिद्ध, आवर्ता, लाङ्गलावर्त और नलिन इन चार कूटों से समन्वित है ।।२८।।

अब इसके आगे-आगे के देश, विभङ्गा नदी और वक्षार पर्वतों का संक्षिप्त कथन करते हैं :—

ततोऽस्ति विषयो लांगलावर्ताह्वय ऊर्जितः ।
षट्खण्डमण्डितो युक्तो नदीकाननपर्वतैः ।।२९।।
तन्मध्ये नगरीरम्या मञ्जूषाख्या विराजते ।
मञ्जूषेव नृरत्नानां जिनकेवलिधर्मिणाम् ।।३०।।
पुनः पङ्कवतीनाम्नी विभंगा प्रवरा नदी ।
दशक्रोशावगाहास्याद्रोहित्समानविस्तृता ।।३१।।

नद्याः पूर्वे शुभोदेशः पुष्कलाख्योऽविनश्वरः ।
ग्रामखेटादिभिः पूर्णो जिनैर्जैनैश्च धार्मिकैः ।।३२।।
औषधी नगरी रम्या तस्य मध्ये विभात्यलम् ।
औषधीव सतां जन्मजरामृत्यु रुजापहा ।।३३।।
ततः स्यादेक शैलाख्यो वक्षाराद्रिर्मनोहरः ।
चतुःकूटैर्युतो मूर्ध्नि जिनामरालयान्वितैः ।।३४।।
सिद्धं च पुष्कलाख्यं पुष्कलावती समाह्वयम् ।
एकशैलाह्वयं ह्येतैश्चतुः कूटैः सभात्यलम् ।।३५।।
ततः पूर्वे भवेत् पुष्कलावती विषयो महान् ।
नद्यद्रिग्रामसीमाद्यैर्भृतो धार्मिक योगिभिः ।।३६।।
तन्मध्ये नगरी नित्या राजते पुण्डरीकिणी ।
तुङ्गचैत्यालयैर्भव्य पुण्डरीकैः सुकर्मभिः ।।३७।।
ततो रत्नमयी दिव्या शाश्वती वनवेदिका ।
पूर्वोक्तवर्णनोपेतोत्सेधव्यासादि तोरणैः ।।३८।।

अर्थः—नलिन वक्षार के आगे लाङ्गलावर्त नाम का श्रेष्ठ देश है, जो छह खण्डो से मण्डित तथा नदी, वन और पर्वत आदि से युक्त है । इस देश के मध्य मे अति मनोज्ञ मजूषा नाम की नगरी सुशोभित है, जो जिनेन्द्रदेव, केवली और धार्मिक मनुष्य रूपी रत्नो की मञ्जूषा (पेटी) के सदृश सार्थक नाम वाली है ।।२९-३०।। इसके आगे पङ्कवती नाम की श्रेष्ठ विभङ्गा नदी है, जो दश कोस गहरी और रोहित् नदी के सदृश विस्तृत है ।।३१।। इस विभङ्गा नदी के पूर्व में पुष्कल नाम का विनाश रहित और श्रेष्ठ देश है, जो ग्राम खेट आदि से तथा अर्हन्तो, जैनो और धर्मात्माजनो से परिपूर्ण है ।।३२।। जिसके मध्य मे औषधी नाम की मनोज्ञ नगरी शोभायमान है । जो सज्जन पुरुषो के जन्म, बुढापा, मृत्यु और रोग आदि दोषो को दूर करने के लिये औषधि के सदृश है ।।३३।। इसके बाद एक शैल नामका मन को हरण करने वाला वक्षार पर्वत है, जो शिखर पर जिनचैत्यालय और अन्य देवो के प्रासादो से समन्वित चार कूटो से युक्त है ।।३४।। सिद्धकूट, पुष्कलकूट, पुष्कलावतीकूट और एक शैल इन चार कूटो से वह पर्वत शोभायमान है ।।३५।। इस वक्षार पर्वत के पूर्व मे पुष्कलावती नाम का महान देश है, जो नदी, पहाड ग्राम की सीमा आदि से तथा मुनिराजो एव धार्मिक पुरुषो से परिपूर्ण है । इसके मध्य मे पुण्डरीकिणी नाम की शाश्वत नगरी सुशोभित होती है, जो उन्नत चैत्यालयों, भव्यो, तीर्थङ्करों, गणधरादि योगियो एव उत्तम क्रिया करने वाले सज्जन पुरुषोसे व्याप्त है ।।३६-३७।। इसके बाद शाश्वत, दिव्य और रत्नमय वनवेदिका है, जो पूर्व कथित उत्सेध, एवं व्यासादि वाले तोरणो से युक्त है ।।३८।।

इसके आगे देवारण्य वन का वर्णन करते है :--

तस्याः पूर्वे समुद्रस्यापरेभागे मनोहरम् ।
नाना द्रुमौघ संकीर्णं देवारण्याह्वयं वनम् ॥३९॥
द्वे सहस्रे शतान्येव नवद्वाविंशतिस्तथा ।
योजनानामिति व्यासः पूर्वापरेण कथ्यते ॥४०॥
वनस्यास्याखिलायामो देशाद्यायामसन्निभः ।
देवारण्यवने तस्मिन् प्रासादाः सन्त्यनेकशः ॥४१॥

अर्थः—उस रत्नमय वन वेदी के पूर्व में और लवरण समुद्र के पश्चिम में अनेक प्रकार के वृक्ष समूहों से व्याप्त देवारण्य नाम का मनोहर वन है ॥३९॥ जिसका पूर्व पश्चिम व्यास दो हजार नौ सौ बाईस (२९२२) योजन प्रमाण है. और आयाम दश के आयाम सदृश अर्थात् १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन प्रमाण है। इस देवारण्य वन में अनेक प्रकार के प्रासाद है ॥४०-४१॥

अब देवारण्यस्थ प्रासादों का वर्णन करते है :—

नानारत्नमयास्तुङ्गा वनवेद्याद्यलंकृताः ।
जिनालयाङ्किता दिव्या मणितोरणभूषिताः ॥४२॥
प्रचुराः पुष्करण्यश्च क्रीडाशालाः सभागृहाः ।
उपपादालयास्तुङ्गा बाह्यान्तर्मणिचित्रिताः ॥४३॥
चतुर्विदिक्षुगेहाः स्युरात्मरक्षसुधाभुजाम् ।
परिषत् त्रयदेवानां प्रासादा दक्षिणादिशि ॥४४॥
सप्तानीकामराणां च दिग्भागे पश्चिमे गृहाः ।
किल्विषाह्वयदेवानामभियोगामृताशिनाम् ॥४५॥
सम्मोहनिर्जराणां च कन्दर्पाख्यसुरात्मनाम् ।
प्रत्येकं स्युः पृथग्भूता प्रासादाः शाश्वताः शुभाः ॥४६॥

अर्थः-देवारण्य वन मे स्थित प्रासाद नाना रत्नमय, उन्नत, वन वेदी आदि से अलकृत और जिनालयो से विभूषित है। वहाँ वहुत से तालाव, क्रीडा शालाएँ, सभागृह और वाह्य एवं अभ्यन्तर में मणियों से रचित तथा उन्नत उपपाद भवन है॥४२-४३॥ चारों विदिशाओ मे आत्मरक्षक देवो के भवन है। दक्षिण दिशा मे तीनों परिषद् देवों के प्रासाद है, और पश्चिम दिशा मे सात प्रकार के अनीक

देवो के गृह है। किल्विष देवो, आभियोग, सम्मोह और कन्दर्प जाति के देवो मे से प्रत्येक के पृथक् पृथक् शाश्वत और शोभायुक्त प्रासाद हैं ।।४४-४६।।

अब अन्य देवारण्य का विस्तार करते है :—

ततः सीतामहानद्या-भागेऽस्ति दक्षिणे परम् ।
देवारण्यं च पूर्वोक्त व्यासाद्यैस्तत्समं महत् ।।४७।।
वनेऽस्मिन् सन्ति देवानां बहूनि नगराणि च ।
प्राकारगोपुराद्यैश्च तुङ्गधामजिनालयैः ।।४८।।
अलंकृतानि वापीभिर्नगरेषु सुरोत्तमाः ।
भूपाश्चतुर्महादेवीयुक्ता वसन्ति पुण्यतः ।।४९।।
परिषत् त्रितयैः सप्तसप्तानीकैः पृथग्विधैः ।
सामान्यकात्मरक्षाद्यैर्वेष्टिताजिनभाक्तिकाः ।।५०।।

अर्थः—सीता महानदी के दक्षिण भाग में एक दूसरा देवारण्य नाम का वन है जिसके व्यास आदि का प्रमाण पूर्वोक्त देवारण्य के सदृश ही है ।।४७।। इस वन मे भी देवो के बहुत से नगर है। प्राकार, गोपुर आदि, उत्तुङ्ग प्रासाद, जिनालय और वापी आदि से अलकृत इन नगरो मे पूर्व पुण्य प्रताप से इन्द्र उत्तम देवो एव चार महादेवियो से युक्त निवास करते है ।।४८-४९।। तथा तीन प्रकार के पारिषद देवो, पृथक् पृथक् सात सात अनीको, सामानिक देवो और आत्मरक्षक आदि देवो से वेष्टित होकर जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति करते है ।।५०।।

अब देवारण्य के बाद अन्य वेदी, देश, वक्षार एवं विभङ्गा आदि की अवस्थिति का वर्णन करते है :—

ततः पश्चिमदिग्भागे दिव्यास्ति वनवेदिका ।
क्रोशार्द्धेनावगाहा च प्रागुक्तोत्सेधविस्तृता ।।५१।।
वेद्याश्च पश्चिमाशायां वत्साख्यो विषयो महान् ।
गंगासिन्धुनदीरूप्याद्रिभिः षट्खण्डसंयुतः ।।५२।।
तदार्यखण्डमध्ये स्यात् सुसीमानगरी परा ।
धर्मसीमाकरीभूता यतिश्रावकधार्मिकैः ।।५३।।
ततो भवेत् त्रिकूटाख्यो वक्षारशैल ऊर्जितः ।
चतुःकूटैर्युतोमूर्ध्नि चैत्यदेवालयाङ्कितैः ।।५४।।

सिद्धकूटं च वत्साख्यं सुवत्साकूटसंज्ञकम् ।
त्रिकूटाह्वयमेतानि कूटानि शिखरेऽस्य वै ॥५५॥
तदनन्तरमेवास्ति सुवत्सा विषयः शुभः ।
मुनिकेवलिसंघाद्यै र्भूषितोऽद्रिसरिद्वनैः ॥५६॥
तन्मध्ये विद्यते दिव्या कुण्डला नगरी युता ।
रत्नशालप्रतोल्याद्यै श्चैत्यालयैश्च धर्मिभिः ॥५७॥
ततस्तप्तजलाभिख्या विभंगा निम्नगा भवेत् ।
कुण्डोत्थादेशसीमान्ता वनवेद्यादिवेष्टिता ॥५८॥
पुनर्महान्महावत्सा विषयोऽस्ति शुभाकरः ।
ग्रामपत्तनखेटाद्यै र्जिनेन्द्रभवनांकितैः ॥५९॥
तन्मध्ये नाभिवद्भाति नगरी चापराजिता ।
जितेन्द्रियैर्जिनागारैर्जिनकल्याणकोत्सवैः ॥६०॥
ततो वैश्रवणोनाम्ना वक्षारोहेमसन्निभः ।
सिद्धकूटं महावत्सानामकूटं द्वितीयकम् ॥६१॥
कूटं च वत्सकावत्याख्यं वैश्रवणसंज्ञकम् ।
एतैश्चैत्यसुरागारैर्युतैः कूटैः स मण्डितः ॥६२॥

अर्थ — देवारण्य के आगे पश्चिम दिशा मे अर्ध कोश अवगाह (नीव) और पूर्वोक्त उत्सेध एवं विस्तारसे युक्त एक दिव्य वन वेदी है ॥५१॥ वेदी की पश्चिमदिशा मे महान् वत्सा नामक देश है, जिसके गङ्गा सिन्धु नदी और विजयार्ध पर्वत के द्वारा छह खण्ड हुये है, उनमे से आर्य खण्ड के मध्य मे सुसीमा नाम की एक श्रेष्ठ नगरी है, जो धर्म की सीमा को करने वाली अर्थात् धर्म को सीमा यही तक हो है मानो ऐसे सार्थक नाम को धारण करने वाली और मुनिगणो एव धार्मिक श्रावक गणों के द्वारा सुशोभित है ॥५२-५३॥ वत्सा देश के आगे पश्चिम मे त्रिकूट नामक श्रेष्ठ वक्षार पर्वत है, जिसके शिखर पर जिनचैत्यालय और देवालयो से अङ्कित चार कूट है ॥५४॥ सिद्ध कूट, वत्सा कूट, सुवत्सा कूट और त्रिकूट ये चार कूट उस वक्षार पर्वत के शिखर पर है ॥५५॥ इसके बाद ही मन को अभिराम सुवत्सा नाम का देश है, जो मुनिगणों, केवलियो और चतुर्विध सघों से विभूषित तथा पर्वतो, सरिताओ और वनो आदि से सयुक्त है। उस देश के मध्य मे रत्नो के शाल (परकोटा) प्रतोली आदि से एव चैत्यालयो से युक्त तथा धार्मिक जनो से व्याप्त कुण्डला नाम की दिव्य नगरी है ॥५६-५७॥ सुवत्सा देश के पश्चिम मे तप्तजला नाम की विभङ्गा नदी है, जो कुण्ड से निकली है, देश के बराबर लम्बी है और

वन वेदी आदि से वेष्टित है ।।५८।। इस विभङ्गा के पश्चिम मे कल्याण की खान सदृश महान् महावत्सा नाम का देश है, जो ग्राम पत्तन और खेटो आदि से युक्त और जिनेन्द्र भवनो से सम्पन्न है। उसके मध्य मे नाभि सदृश अपराजिता नाम की नगरी है, जो जितेन्द्रियो, जिन साधुओ और जिन कल्याणक महोत्सवो से विभूषित रहती है ।।५९-६०।। महावत्सा देश के पश्चिम में कञ्चन सदृश वैश्रवण नाम का वक्षार पर्वत है, जिसका शिखर सिद्धकूट, महावत्सा कूट, वत्सकावती कूट और वैश्रवण कूट जो कि जिन चैत्यालयो और व्यन्तर देवो के प्रासादो से मण्डित है ।।६१-६२।।

पूर्व विदेह क्षेत्र के अवशेष देशों, पर्वतों एवं विभंगा नदियों की अवस्थिति कहते है :-

ततः पर भवेद्वत्सकावतीविषयोऽद्भुतः ।
षट्खण्डाद्रिनदीयुक्तः स्वर्मुक्तिसुखसाधनः ।।६३।।

तन्मध्ये महती नित्या प्रभंकरा पुरी भवेत् ।
जिनेन्द्रजैनसंघाद्यै श्चैत्यागारैर्भृतापरैः ।।६४।।

ततो मत्तजलासंज्ञा विभङ्गा सरिदुत्तमा ।
सोतामध्ये प्रविष्टा च कुण्डद्वारेण निर्गता ।।६५।।

तस्या अपरभागेऽस्ति रम्याख्यो विषयः शुभः ।
रम्यो रम्यैर्जिनागारैर्धर्मकर्ममहोत्सवैः ।।६६।।

अंकाख्या नगरी रम्या तदार्य खण्डमध्यगा ।
भातिधर्मखनीवोच्चैर्धर्मिधर्मप्रवर्तनैः ।।६७।।

ततोऽञ्जनगिरिर्नाम्ना वक्षारस्तुङ्गविग्रहः ।
हेमवर्णश्चतुः कूट चैत्यदेवालयान्वितः ।।६८।।

सिद्धकूटं च रम्याख्यं कूटं सुरम्यनामकम् ।
अञ्जनाह्वयमेतैः सकूटैरग्रेऽप्यलंकृतः ।।६९।।

ततः सुरम्य देशोऽस्ति रमणीयः शुभावहः ।
चैत्यागारसुसङ्घाढ्यै र्ग्रामखेटपुरादिभिः ।।७०।।

पुरी पद्मावतीनाम्नी तदार्यखण्डभूस्थिता ।
श्रीमद्भिर्धार्मिकैर्भव्यैर्भाति पद्मेव शाश्वता ।।७१।।

ततो नदीविभङ्गास्ति परोन्मत्तजलाभिधा ।
जिनेन्द्रप्रतिमायुक्तै र्वेदिका तोरणैर्युता ।।७२।।

तस्या अपरभागेस्याद् रमणीयाभिधो महान् ।
धर्मिधामजिनागारैः सार्थोदेशोऽतिसुन्दरः ।।७३।।
तन्मध्ये राजते रम्या शुभाख्या नगरी शुभा ।
शुभध्यानशुभाचारैः शुभैः शुभखनीव च ।।७४।।

अर्थः—वैश्रवण वक्षार पर्वत के आगे वत्सकावती नाम का अद्भुत देश है। जो छह खण्डों, पर्वतो और नदियों से युक्त तथा स्वर्ग और मोक्ष सुख का सावन है। उस देश के मध्य मे प्रभङ्करा नाम की शाश्वत और महान नगरी है, जो अर्हन्त परमेष्ठियों, जिन संघों और जिनमन्दिरों से निरन्तर भरी रहती है ।।६३–६४।। इस वत्सकावती देश के वाद मत्तजला नाम की उत्तम विभङ्गा नदी है, जो कुण्ड के द्वार से निकल कर सीता महानदी के मध्य मे प्रविष्ट हुई है ।।६५।। इस नदी के पश्चिम भाग मे रम्या नाम का श्रेष्ठ देश है, जो मनोज्ञ जिन चैत्यालयो एव धार्मिक और लौकिक महोत्सवों से निरंतर रम्य-शोभित रहती है, इस देश के मध्य मे सुन्दर आर्य खण्ड है, जिसके मध्य में अङ्का नाम की नगरी है, जो धर्म की खान के सदृश है और धर्म प्रवर्तन करने वाले उत्कृष्ट धर्मातमाओं से सुशोभित है ।।६६–६७।। रम्या देश के पश्चिम भाग में अञ्जनगिरि नाम का उत्तुङ्ग वक्षार पर्वत है, जो हेमवर्ण का है, और चार कूटो, चैत्यालयो तथा अन्य देवगणों के प्रासादो से समन्वित है। इस पर्वत का शिखर सिद्धकूट, रम्यकूट, सुरम्यकूट और अञ्जन इन चार कूटो से अलकृत हैं ।।६८–६९।। इस अंजनगिरि वक्षार के पश्चिम में मन को अभिराम और पुण्य प्रवेश का कारण भूत सुरम्य नाम का देश है, जो जिन चैत्यालयो, जिनसघो, ग्रामो, खेटो और अनेक नगरो से युक्त है। इसके मध्य मे आर्य खण्ड है, जिसके मध्य मे शाश्वत पद्मावती नाम की नगरी है, जो धनवानों और धार्मिक भव्यजनो के द्वारा पद्म के समान शोभायमान होती है ।।७०–७१।। इस सुरम्य देश के पश्चिम मे उन्मत्तजला नाम की श्रेष्ठ विभङ्गा नदी है, जो जिनेन्द्र प्रतिमाओ, वेदिकाओ एव तोरणो से सयुक्त है ।।७२।। इस नदी के पश्चिम मे धर्म स्थानो एव जिन चत्यालयो से रम्य सार्थक नाम वाला रमणीय नाम का सुन्दर देश है, जिसके मध्य मे शुभा नाम की शुभ शोभा युक्त नगरी है, जो शुभ-कल्याण की खान के सदृश, शुभ-उत्तम ध्यान और शुभ आचरणो से सुशोभित है ।।७३–७४।।

अब सुदर्शनमेरु पर्यन्त देशों, वक्षारों एवं नदियों का अवस्थान कहते है :—

तत आदर्शनाभिख्यो वक्षारोऽतीवसुन्दरः ।
सिद्धायतनकूटं च रमणीयसमाह्वयम् ।।७५।।
कूटं हि मङ्गलावत्याख्यमादर्शनसंज्ञकम् ।
चैत्यदेवालयाग्रस्थैरेतैः कूटैः स संयुतः ।।७६।।

ततोऽस्तिविषयो मंगलावतीसंज्ञकोऽद्‌भुतः ।
धर्मकर्मोत्थ माङ्गल्यैर्जिनाद्यैर्मङ्गलोत्तमैः ।।७७।।

तन्मध्येनगरी भाति महती रत्नसञ्चया ।
दृग्ज्ञानव्रतरत्नाढ्यं र्नृस्त्रीरत्नैस्तथापरैः ।।७८।।

ततोऽपरदिशाभागे नित्या प्राग्वेदिकासमा ।
स्यात्पूर्वभद्रशालाख्य वनस्य रत्नवेदिका ।।७९।।

ततो नैऋत्य दिग्भागे मेरोश्चदक्षिणे तटे ।
सीतोदाया महानद्या विदेहेऽपरसंज्ञके ।।८०।।

अर्थः—रमणीय महादेश के पश्चिम मे आदर्शन नामका अतीव सुन्दर वक्षार पर्वत है, जिसका शिखर जिनचैत्यालय एवं अन्य व्यन्तर देवों के प्रासादो से सयुक्त सिद्धायतन, रमणीय, मङ्गलावती और आदर्शन नामक कूटो से अलकृत है ।। ७५–७६ ।। इस आदर्शन वक्षार के पश्चिम मे धर्म और अन्य क्रियाओ से उत्पन्न होने वाले मङ्गलो से तथा जिनेन्द्र भगवान रूप उत्तम मङ्गलो से संयुक्त मगलावती नाम का अद्‌भुत देश है। उसके मध्य में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र रूप रत्नों से, स्त्री पुरुष रूप रत्नो से (वहाँ के स्त्री पुरुष रत्नों के समान है) और अन्य रत्नों से युक्त रत्नसञ्चया नाम की विशाल नगरी सुशोभित है ।।७७–७८।। इस देश के पश्चिम भाग में पूर्व कथित भद्रशाल की वेदिका के समान पूर्वभद्रशालवन की शाश्वत, रत्नमय वेदिका है ।।७९।। इस पूर्वभद्रशाल वन वेदी के आगे मेरु पर्वत की नैऋत्य दिशा में और सीतोदा महानदी के दक्षिण तट पर पश्चिम विदेह क्षेत्र की अवस्थिति है ।।८०।।

अब पश्चिम विदेहगत देशों, वक्षारों एवं नदियों का अवस्थान कहते हैं :—

निषधस्योत्तरे भागे शाश्वता मणिवेदिका ।
भवेत् पश्चिमसंज्ञस्य भद्रशालवनस्य च ।।८१।।

वेद्याः पश्चिमदिग्भागे पद्माख्यो विषयः शुभः ।
स्याद् गंगासिन्धु रूपाद्रिभिः षड्‌खण्डीकृतोऽखिलः ।।८२।।

तन्मध्येऽश्वपुरी नाम्नी नगरी पुण्यमातृका ।
पुण्यवद्भिर्बुधैः पूर्णा जिनधामादिशोभिता ।।८३।।

ततोऽस्ति शब्दवान्नाम्ना वक्षारो हाटकप्रभः ।
चतुःकूटाङ्कितो मूर्ध्नि वनवेद्याद्यलंकृतः ।।८४।।

सिद्धकूटं च पद्माख्यं सुपद्माकूटनामकम् ।
शब्दवत् कूटमेतानि स्युः कूटान्यस्य मस्तके ॥८५॥
ततो भवेत् सुपद्माख्य देशः पद्मालयोपमः ।
साध्यते यत्र धर्माद्यैः पद्मालोकत्रये स्थिता ॥८६॥
तत्र सिंहपुरीसंज्ञा नगरी राजते तराम् ।
कर्मेभहननोद्युक्तैर्नरसिंहैः सुधार्मिकैः ॥८७॥
ततो नदी विभंगास्ति क्षारोदाख्या मनोहरा ।
कुण्डान्निर्गत्य सीतोदा मध्यायाता क्षयातिगा ॥८८॥
पुनर्देशो महापद्माह्वयः षट्खण्डराजितः ।
नद्यद्रिवनसद्ग्रामपुराद्यैर्धर्मिभिःशुभैः ॥८९॥
तन्मध्ये नगरी रम्या महापुरी समाह्वया ।
साधयन्ति महान्तोऽस्याः स्वर्गं मोक्षं तपोवृषात् ॥९०॥
ततो विकटवान्नाम्ना वक्षारोऽस्ति सुराश्रितः ।
सिद्धायतनकूटं च महापद्माख्यकं ततः ॥९१॥
कूटं हि पद्मकावत्याह्वयं विकटवत् परम् ।
नाम्नेमानि चतुःकूटानि सन्ति शिखरेऽस्य च ॥९२॥
ततोऽस्ति विषयः पद्मकावतीसंज्ञको महान् ।
यत्र केवलिनः पुंसां विहरन्ति शिवाप्तये ॥९३॥
तन्मध्ये राजधानी स्यात् विजयापरमापुरी ।
यस्यां मोक्षाय धर्माय स्वजन्मेच्छन्ति नाकिनः ॥९४॥

अर्थः—निषधपर्वत के उत्तर भाग मे पश्चिम भद्रशाल की मणिमय और शाश्वत वेदी है। ॥८१॥ वेदी के पश्चिम भाग मे पद्मनाम का सुन्दर देश है, जिसके विजयार्ध पर्वत और गंगा-सिन्धु नदियों के द्वारा छह खण्ड होते है। इस देश के मध्य में पुण्य की जननी के सदृश अश्वपुरी नाम की नगरी है, जो पुण्यवान् पुरुषो एवं विद्वज्जनों से परिपूर्ण और जिनचैत्यालयों से सुशोभित है ॥८२-८३॥ इस देश के पश्चिम में शिखर पर चार कूटों से युक्त एवं वन वेदी आदि से अलंकृत हेमवर्ण वाला शब्दवान् नामक वक्षार पर्वत है। इस पर्वत के अग्रभाग मे सिद्धकूट, पद्मकूट, सुपद्म और शब्दवान् नाम के चार कूट अवस्थित है ॥८४-८५॥ इस वक्षार के पश्चिम मे लक्ष्मी के आलय की उपमा को

धारण करने वाला सुपद्म नाम का देश है, जहाँ भव्यजन धर्मादि के द्वारा त्रैलोक्यस्थित लक्ष्मी का साधन करते है। इस देश के मध्य मे सिहपुरी नाम की नगरी शोभायमान है, जहाँ के उत्तम धार्मिक मनुष्य रूपी सिह निरन्तर कर्मरूपी हाथियो को मारने मे उद्यत रहते है ।।८६–८७।। इस देश के पश्चिम मे क्षीरोदा नाम की मनोहर विभगा नदी है, जो क्षय रहित है और कुण्ड से निकल कर सीतोदा महानदी के मध्य मे प्रवेश करती है ।।८८।। इस विभगा के पश्चिम मे छह खण्डो से सुशोभित महापद्म नाम का देश है, जो नदी, पर्वत, वन, उत्तम ग्राम और नगरो से तथा शुभाचरण से युक्त धार्मिक जनो से परिपूर्ण है। इस देश के मध्य मे अति रम्य महापुरी नाम की नगरी है, जहाँ पर महान पुरुष तपरूपी वृक्ष से स्वर्ग और मोक्ष का साधन करते है ।।८९–९०।। इस देश के पश्चिम में देवो के आश्रयभूत विकटवान् नाम का वक्षार पर्वत है, जिसके शिखर पर सिद्धायतन, महापद्म, पद्मकावती और विकटवान् नाम के चार कूट अवस्थित है ।।९१–९२।। विकटवान् वक्षार की पश्चिम दिशा मे पद्मकावती नाम का महान् देश है, जहाँ पर भव्यो को मोक्ष प्राप्त कराने के लिये केवली भगवान् निरन्तर विहार करते हैं। इस देश के मध्य मे विजयापरमपुरी नामक नगरी है, जो देश की राजधानी है। धर्म और मोक्ष के लिये जिस नगरी मे देवगण भी अपने जन्म लेने की वाञ्छा करते हैं ।।९३–९४।।

अब पद्मकावती देश के आगे अन्य-अन्य देशों, विभङ्गा नदियों एवं पर्वतों की अवस्थिति कहते है :—

पुनर्नदी विभङ्गा स्यात् सीतोदाख्या विभूषिता ।
कुण्डव्यासोनदेशस्य ह्यायामेन समायता ।।९५।।
तस्याः पश्चिमभागेऽस्ति देशः शङ्खाख्य ऊर्जितः ।
शलाकापुरुषा यत्र जायन्ते गणनातिगाः ।।९६।।
तन्मध्येऽस्त्यरजाभिख्या पुरी स्वर्मुक्तिदायिनी ।
यस्याः सन्तोऽन्वहं यान्ति धर्माचारैर्दिवं शिवम् ।।९७।।
तत आशीविषोनाम्ना वक्षारः काञ्चनच्छविः ।
देशायामसमायामश्चतुःकूटाश्रितोऽद्भुतः ।।९८।।
सिद्धकूटं च शङ्खाख्यं कूटं नलिनसंज्ञकम् ।
कूटमाशीविषं हीति कूटानि तस्य मस्तके ।।९९।।

ततो नलिनदेशोऽस्ति यत्र सन्मार्गवृत्तये ।
विहरन्ति गणेशाश्च सूरयः पाठकाः सदा ।।१००।।

भवेत्तस्यार्यखण्डे च विरजा नगरी परा ।
यस्यां कर्मरजांस्युच्चैं निर्धूयस्युर्विदोऽमलाः ।।१०१।।
तदनन्तरमेवात्र स्यान्नदी श्रोतवाहिनी ।
वनतोरणवेदीभिर्भूषिता तटयोर्द्वयोः ।।१०२।।
ततोऽस्ति कुमुदाभिख्यो देशोधर्मसुखाकरः ।
दृश्यन्ते योगिनो धीरा यत्रारण्याचलादिषु ।।१०३।।
अशोकानगरी तत्रातीतशोकैर्बुधैर्भृता ।
अर्जयन्ति सदा धर्मं यस्यां दक्षाव्रतादिभिः ।।१०४।।
ततः सुखावहो नाम्ना वक्षारोऽस्ति सुखाकरः ।
तत्रत्यानामिहामुत्र संततं पुण्यकर्मभिः ।।१०५।।
सिद्धाख्यं कुमुदाभिख्यं सरिताह्वयमेव हि ।
सुखावहमिमान्यस्य चतुःकूटानि मस्तके ।।१०६।।

अर्थ—पद्मकावती देश के आगे सीतोदा नाम की विभगा नदी है, जिसका आयाम कुण्ड व्यास से हीन देश के आयाम प्रमाण है ।।९५।। विभगा के पश्चिम भाग में शङ्खा नामक श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर गणनातीत अर्थात् असंख्याते शलाका पुरुष उत्पन्न होते है। उसके मध्य में स्वर्ग और मोक्ष देने वाली अरजा नाम की नगरी है, जहाँ से भव्यजन धर्माचरण के द्वारा निरन्तर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते है ।।९६–९७।। इस देश के आगे देश की लम्बाई प्रमाण आयाम से युक्त, चार कूटों से अलंकृत और कञ्चन की आभा को धारण करने वाला आशीविष नाम का वक्षार पर्वत है। उसके मस्तक पर सिद्धकूट, शंखाकूट, नलिन और आशीविष नाम के चार कूट है ।।९८–९९।। वक्षार पर्वत के आगे नलिन नाम का देश है, जहाँ पर धर्म मार्ग के प्रकाशन हेतु अथवा सन्मार्ग की प्रवृत्ति हेतु गणधरदेव, आचार्य और उपाध्याय निरन्तर विहार करते है। इस देश के आर्य खण्ड में विरजा नाम की श्रेष्ठ नगरी है, जहाँ पर विद्वज्जन कर्म रूपी रज–धूल को भलीप्रकार नष्ट करके निर्मल होते है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते है ।।१००–१०१।। इस देश के बाद ही दोनों तटों पर वनों, तोरणों एवं वेदियो से विभूषित श्रोतवाहिनी विभंगा नदी है ।।१०२।। विभगा के पश्चिम मे धर्म और सुख का आकर (खान) कुमुद नाम का देश है, जहाँ के वनों और पर्वतो पर निरन्तर धीर-वीर योगिगण (साधु) दिखाई देते है। वहाँ शोक आदि से रहित बुद्धिमान मनुष्यों से भरी हुई अशोक नामक नगरी है। जहाँ पर व्रत आदि करने मे चतुर भव्य जन सदा धर्म का अर्जन करते है।। १०३-१०४।। उस कुमुद देश के आगे सुखोत्पादक सुखावह नाम का वक्षार पर्वत है, जहाँ के मनुष्य सदा पुण्य क्रियाओं के द्वारा इह लोक और परलोक में सुख प्राप्त करते है और जिसके शिखर पर सिद्ध कूट, कुमुद, सरिता और सुखावह नामक चार कूट है ।।१०५-१०६।।

अब अन्य अवशेष देशों आदि के अवस्थान का दिग्दर्शन कराते हैं :—

ततोऽस्ति सरिताभिख्यो महान् जनपदः शुभः ।
यत्रायान्त्यन्वहं देवाः पूजाभक्त्यै परात्मनाम् ॥१०७॥
वीतशोकापुरी तत्र यस्यां शोकातिगा विदः ।
स्वर्गमोक्षसुखाद्याप्त्यै कुर्वन्ते धर्ममुत्तमम् ॥१०८॥
ततो हेममया रम्या स्यात् परा वनवेदिका ।
पूर्वोक्तवेदिकातुल्या व्यासायामोच्छ्रितादिभिः ॥१०९॥
वेद्या अपरभागे स्याद् भूतारण्याख्यसद्वनम् ।
देवारण्यसमं चैत्यालयदेवपुरान्वितम् ॥११०॥
तस्योत्तरदिशाभागे जिनेन्द्रभवनाश्रितम् ।
भूतारण्यं भवेदन्यत्सुरसौधपुरान्वितम् ॥१११॥
वनात्पूर्वदिशाभागे सीतोदायास्तटोत्तरे ।
नीलाद्रेर्दक्षिणे पार्श्वेस्याद्रत्नवनवेदिका ॥११२॥
ततः पूर्वे भवेद्देशो वप्राख्यो भृत उत्तमैः ।
यतिश्रावकचैत्याद्यैः कुलिङ्ग्यादिविवर्जितः ॥११३॥
तस्य मध्ये पुरी रम्या विजयाख्या जयन्ति च ।
दुःकर्माक्षकषायारीन् यस्यां योगैर्मुमुक्षवः ॥११४॥
ततः पूर्वेस्ति चन्द्राख्यो वक्षारोहेमभानिभः ।
जिनेन्द्रसुरधामाग्रैश्चतुः कूटैः शिरोऽङ्कितः ॥११५॥
सिद्धकूट च वप्राख्यं सुवप्राभिधमन्तिमम् ।
चन्द्रकूटमिमानि स्युः शिखरेऽस्य शुभान्यपि ॥११६॥
ततः स्याद्विषयो रम्यः सुवप्राह्वय ऊर्जितः ।
यत्रार्हद्गणियोगीन्द्रा विरहन्ति सुरार्चिताः ॥११७॥
तदार्य खण्डभूभागे वैजयन्तीपुरी परा ।
वसन्ति तुङ्गसौधेषु यस्यां विजयशालिना ॥११८॥
ततो नदी विभङ्गास्ति गम्भीरमालिनी परा ।
नीलाद्र्यधःस्थकुण्डोत्था सीतोदामध्यमाश्रिता ॥११९॥

तस्याः पूर्वे महावप्राभिधो देशः शुभाकरः ।
शुभैर्ग्रामपुराद्यैश्च सतां शुभप्रवर्तनैः ॥१२०॥
तन्मध्ये नगरी भाति जयन्ती संज्ञिका परा ।
जिनेन्द्रापरधामौघैः पुण्यवद्भिर्जयोद्धतैः ॥१२१॥

अर्थ.—सुखावह् वक्षार पर्वत के पश्चिम में सरिता नाम का एक महान श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति के लिये निरन्तर देवगण आते रहते है। इस देश के मध्य मे वीतशोका नाम की नगरी है, जहाँ पर बुद्धिमान् जीव शोक से रहित होते है, और स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिये सदा उत्तम धर्म का आचरण करते है ॥१०७-१०८॥ सरिता देश के आगे कञ्चनमय, अत्यन्त रम्य और श्रेष्ठ वेदिका है, जिसके व्यास आदि का प्रमाण पूर्व कथित वेदिका के व्यास, आयाम और ऊँचाई के सदृश है ॥१०९॥ इस वेदी के पश्चिम मे भूतारण्य नाम का उत्तम वन है, जो देवारण्य के सदृश जिनचैत्यालयों और देवो के नगरो से सयुक्त है ॥११०॥ इस वन की उत्तर दिशा में जिन चैत्यालयो से युक्त तथा प्रासादो से सयुक्त देवो के नगरो से समन्वित अन्य भूतारण्य वन है ॥१११॥ इस भूतारण्य वन की पूर्व दिशा मे, सीतोदा महानदी के उत्तर तट पर और नील कुलाचल के दक्षिण भाग मे एक रत्नमय वेदिका है ॥११२॥ इस वेदी की पूर्व दिशा मे कुलिङ्गी साधुओं आदि से रहित और उत्तम मुनिगणो, श्रावकों एव जिनचैत्यालयों से परिपूर्ण वप्रा नाम का देश है। जिसके मध्य मे विजया नाम की अति रम्य नगरी है, जहां पर मोक्षाभिलाषी भव्यजन मन-वचन और काय की स्थिरता द्वारा अथवा ध्यान आदि के द्वारा दुष्ट कर्मो, इन्द्रियों और कषाय रूपी वैरियों को जीतते है ॥११३-११४॥ इस वप्रा देश के पूर्व में स्वर्णाभा के सदृश कान्तिवान् चन्द्रा नाम का वक्षार पर्वत है, जो जिनचैत्यालय और देवालयो से समन्वित चार कूटो से सुशोभित है। इसके शिखर पर सिद्धकूट, वप्रा, सुवप्रा और चन्द्रकूट नाम के चार उत्तम कूट है॥ ११५-११६॥ इस वक्षार के पूर्व में सुवप्रा नाम का रम्य और श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर अरहन्त देव, गणधर देव और मुनि समूह निरन्तर विहार करते है। इस देश के आर्य खण्ड मे विजयन्ती नाम की श्रेष्ठ नगरी है, जहां के उन्नत भवनों मे विजय स्वभावी भव्य जीव रहते है ॥११७-११८॥ इसके बाद गम्भीरमालिनी नाम की श्रेष्ठ विभंगा नदी है, जो नील कुलाचल के अधोभाग मे स्थित कुण्ड से निकली है, और सीतोदा के मध्य प्रवेश करती है ॥११९॥ इसके पूर्व मे उत्तम ग्राम नगर आदि से युक्त और सज्जनों की शुभ प्रवृत्तियों से सुशोभित पुण्य की खान सदृश महावप्रा नाम का उत्तम देश है। जिसके मध्य में जयन्ती नाम की उत्तम नगरी शोभायमान होती है, जो जिन चैत्यालयो, अन्य प्रासाद समूहो, पुण्यवान् भव्य जीवो एव जितेन्द्रिय जीवो से सदा परिपूर्ण रहती है ॥१२०-१२१॥

अब पूर्वविदेहगत वक्षार पर्वतों आदि की अवस्थिति कहते हैं :—

ततः सूराह्वयोऽद्रिः स्याद्वक्षारोऽमरसंयुतः ।
सिद्धकूटं महावप्राभिधानकूटमेव हि ॥१२२॥
कूटं च वप्रकावत्याख्यं सूरकूट मन्तिमम् ।
तस्याग्रे स्यात्सुरोपेत मेतत्कूट चतुष्टयम् ॥१२३॥
ततो जनपदो वप्रकावत्याख्यो महान्भवेत् ।
यत्र प्रवर्तते धर्मो मोक्षमार्गोऽविनश्वरः ॥१२४॥
धर्मशर्माकरा तस्य मध्येऽपराजिता पुरी ।
कर्मारिनिर्जयोद्युक्तैर्विद्वद्भिराजतेतराम् ॥१२५॥
ततो नदी विभङ्गास्ति शाश्वता फेनमालिनी ।
रत्नतोरणसद्वेदी वनाङ्कितत्तटद्वया ॥१२६॥
ततो गन्धाह्वयो देश एकार्यखण्डभूषितः ।
धर्मशर्माकरः पञ्चम्लेच्छखण्डयुतोऽक्षयः ॥१२७॥
तन्मध्ये नगरी चक्राह्वया भाति जिनालयैः ।
शालगोपुरसौधाद्यैश्चक्र्यादि पुरुषोत्तमैः ॥१२८॥
ततो नागाभिधः शैलो वक्षारः शिखरैऽङ्कितः ।
अर्हत्सुरालयाग्रस्थैस्तुङ्गकूटचतुष्टयैः ॥१२९॥
सिद्धकूटं च गन्धाख्यं सुगन्धाह्वयमेव च ।
नागकूटमिमान्युच्चैः स्फुरन्ति शैलमस्तके ॥१३०॥
तस्य पूर्व भवेद्देशः सुगन्धाख्यो महोत्तमः ।
धर्मचैत्यालयोपेतैः ग्रामारामपुरादिभिः ॥१३१॥
तन्मध्ये राजते खड्गापुरी रत्नजिनालयैः ।
पुण्यवद्भिर्बुधैर्नित्यं धर्मोत्सवशतैः परैः ॥१३२॥
ततः पराविभङ्गा च नदीस्यादूर्मिमालिनी ।
दक्षिणोत्तर दिग्दीर्घा पूर्वपश्चिमविस्तरा ॥१३३॥
तदनन्तरमत्रास्ति विषयो गन्धिलाख्यकः ।
जिनधर्मोत्तमाचारैर्जैनैश्च धर्मिभिर्भृतः ॥१३४॥
तत्रायोध्यापुरी भाति भटैः कर्मजयोद्यतैः ।
जिनचैत्यालयैर्दक्षैः खनीवध्र्मधर्मिणाम् ॥१३५॥

अर्थः—महावप्रा देश के पूर्व में देवों से संयुक्त सूर नामक वक्षार पर्वत है। उसके शिखर पर जिनचैत्यालय और देव प्रासादों से युक्त सिद्धकूट, महावप्रा, वप्रकावती और सुर नाम वाले चार कूट अवस्थित है ॥१२२-१२३॥ सूर वक्षार के पूर्व में वप्रकावती नाम का श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर धर्म और मोक्षमार्ग शाश्वत प्रवर्तते है। उस देश के मध्य में धर्म और सुख की खान स्वरूप अपराजित नाम की नगरी है, जो कर्म शत्रुओं को जीतने में उद्यत भव्य जीवो से और विद्वज्जनों से अत्यन्त शोभायमान रहती है ॥१२४-१२५॥ उस देश के आगे शाश्वत बहनेवाली फेनमालिनी नाम की विभङ्गा नदी है, जिसके दोनों तट रत्नों के तोरणों, उत्तम वेदियों और वनों से अञ्चित है ॥१२६॥ विभङ्गा नदी के आगे धर्म और सुख के आकर स्वरूप एक आर्य खण्ड से विभूषित और पाँच म्लेच्छ खण्डों से युक्त गन्ध नाम का शाश्वत देश है। जिसके मध्य में जिन चैत्यालयो, शाल, गोपुर एव प्रासादों और चक्रवर्ती आदि महापुरुषों से विभूषित चक्र नाम की नगरी है ॥१२७-१२८॥ गन्ध देश के पूर्व मे शिखर पर अङ्कित है जिन चैत्यालय और देवों के आलय जिनके ऐसे चार कूटों से सयुक्त नागा (धिप) नाम का वक्षार पर्वत है। जिसके मस्तक पर सिद्धकूट, गन्धकूट, सुगन्धकूट और नागकूट नाम के चार महान कूट स्फुरायमान होते है ॥१२९-१३०॥ नाग वक्षार के पूर्व मे जिन चैत्यालयों, नगरों, ग्रामो और उद्यानों से सहित सुगन्ध नाम का महा उत्तम देश है। उसके मध्य में खड्गापुरी नगरी है, जो रत्नों के जिनालयो से, पुण्यवान् पुरुषों, बुद्धिमानों और धार्मिक महोत्सवो मे तल्लीन ऐसे अन्य भव्यजनों से सदा शोभायमान रहती है ॥१३१-१३२॥ सुगन्ध देश के आगे ऊर्मि नाम की विशाल विभङ्गा नदी है, जो दक्षिण-उत्तर लम्बी और पूर्व-पश्चिम चौडी है ॥१३३॥ उसके बाद जैनधर्म जन्य उत्तम आचरणों, जैन बन्धुओं एवं धर्मात्माओ से परिपूर्ण गन्धिला नाम का देश है। उसके मध्य मे धर्म और धर्मात्माओं की खान के सदृश अयोध्या नाम की नगरी है, जो पण्डित जनों, जिन चैत्यालयों एवं कर्मों पर विजय प्राप्त करने में प्रयत्नशील भव्यजनों से सदा सुशोभित रहती है ॥१३४-१३५॥

अब भद्रशाल की वेदी पर्यन्त देशों, वक्षारों एवं विभंगा नदियों का अवस्थान कहते है :—

ततो देवाद्रिनामास्ति वक्षार ऊर्जितोऽव्ययः ।
प्रथमं सिद्धकूटाख्यं द्वितीयं गन्धिलाह्वयम् ॥१३६॥

कूटं च गन्धमालिन्याख्यं देवकूटमन्तिमम् ।
मणिकूटैरमोभिः सोऽलंकृतः शिखरे वरे ॥१३७॥

तत्पार्श्वे विषयो गन्धमालिनीसंज्ञकोऽद्भुतः ।
द्विनदीविजयार्धैश्च षट्खण्डीकृत उत्तमः ॥१३८॥

तत्सीतोदोत्तरे भागे स्यादवध्यापुरी परा ।
पुण्यकर्माकरीभूतास्वर्मुक्ति धर्ममातृका ।।१३९।।
तदन्ते शाश्वती दिव्या वेदिका स्थूलविग्रहा ।
वनस्यापर भद्रादिशालस्यांघ्रिप–शालिनः ।।१४०।।

अर्थ —गन्धिला नाम देश के आगे अनादि निधन देवाद्रि नाम का श्रेष्ठ वक्षार पर्वत है। इसके शिखर पर सिद्धकूट, गन्धिला, गन्धमालिनी और देवकूट नाम के चार कूट है, इन्ही मणिमय चार कूटो से वह पर्वत अलकृत है ।। १३६–१३७ ।। देवाद्रि वक्षार के आगे गन्धमालिनी नाम का अद्भुत देश है, जिसके दो नदियो और विजयार्ध पर्वत के द्वारा छह खण्ड हुये हैं। इस देश के मध्य में और सीता महानदी की उत्तर दिशा मे अवध्या नाम की श्रेष्ठ नगरी है, जो पुण्यकर्म की खान स्वरूप और स्वर्ग मोक्ष देने वाले धर्म की माता के समान है।।१३८–१३९।। इस देश के वाद अन्त मे अघ्रिप ( ) वृक्षो से सुशोभित, अनादि निधन, स्थूलकाय और दिव्य, पश्चिम भद्रशाल वन की वेदी है।।१४०।।

अब वनों, वेदियों, वक्षार पर्वतों और देशों का आयाम कहते है :—

देवारण्यद्वयोर्भूतारण्याख्ययोर्वनद्वयोः ।
अष्टानां वनवेदीनां द्व्यष्टवक्षारभूभृताम् ।।१४१।।
द्वात्रिंशद्विषयानां चायामः स कीर्तितो बुधैः ।
सीताव्यासोन विस्तारो विदेहार्धस्ययो भुवि ।।१४२।।

अर्थः—सीता नदी के विस्तार (५०० यो०) को विदेह के विस्तार (३३६८४$\frac{४}{१९}$ यो०) मे से घटा (३३६८४$\frac{४}{१९}$—५००) कर शेष को आधा (३३१८४$\frac{४}{१९}$÷२) करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना ही आयाम प्रमाण (१६५९२$\frac{२}{१९}$ यो०) दो देवारण्यो, दो भूतारण्य वनो, आठ वन वेदियो, सोलह वक्षार पर्वतो और बत्तीस देशो का है ऐसा विद्वानो के द्वारा कहा गया है।।१४१–१४२।।

उसी का विशेष कहते है :—

द्वि देवारण्यद्विभूतारण्याष्ट वेदिकाषोडशवक्षारद्वात्रिंशद्देशानां प्रत्येकमायाम षोडशसहस्र पचशतद्विनवतियोजनानि योजनैकोनविंशति भागाना द्वे कले च ।

अर्थ —दो देवारण्यवनो दो भूतारण्य वनो, (चार वनो की) आठ वेदिकाओ, सोलह वक्षार पर्वतो और वत्तीस देशो मे से प्रत्येक का आयाम सोलह हजार पाँच सौ बानवे योजन और एक योजन के उन्नीस भागो मे से दो भाग (१६५९२$\frac{२}{१९}$ यो०) प्रमाण है।।

अब कुण्डों का व्यास एवं गहराई कहते हैं :—

द्वादशप्रमकुण्डानां विभङ्गोत्पत्तिकारिणाम् ।
योजनानां शतं व्यासः पञ्चविंशतिसंयुतम् ॥१४३॥

सर्वत्र चावगाहो योजनैर्विंशतिसम्मितः ।
महांतस्तोरणद्वारवेद्याद्याः सन्ति शाश्वताः ॥१४४॥

अर्थः—बारह विभङ्गा नदियों की उत्पत्ति के कारण भूत बारह कुण्डों का व्यास एक सौ पच्चीस (१२५) योजन प्रमाण है और अवगाह सर्वत्र बीस योजन प्रमाण है । ये कुण्ड अनाद्यनिधन और विशाल तोरण द्वारों एवं वन वेदियों से युक्त है ॥१४३-१४४॥

अब विभंगा नदियों का आयाम कहते हैं :—

द्विषट्प्रमविभङ्गानामायामः प्रोदितः श्रुते ।
कुण्डव्यासोनदेशायामेन सादृश्य आश्रितः ॥१४५॥

द्वादशविभङ्गानदीना प्रत्येकंदीर्घताषोडशसहस्रचतु शतसप्तषष्टि योजनानि योजनैकोनविंश-भागानां द्वे कले ।

अर्थः—देश के आयाम (१६५९२$\frac{2}{19}$ यो०) में से कुण्ड का व्यास (१२५ यो०) घटाने पर जो प्रमाण (१६५९२$\frac{2}{19}$—१२५=१६४६७$\frac{2}{19}$ यो०) रहता है, उसी के सदृश प्रत्येक विभङ्गा नदियों का आयाम आगम में कहा गया है ॥१४५॥

बारह विभङ्गा नदियो में से प्रत्येक विभङ्गा की दीर्घता (लम्बाई) सोलह हजार चार सौ सडसठ योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दो भाग प्रमाण अर्थात् १६४६७$\frac{2}{19}$ योजन है ।

अब विदेहस्थ रक्तादि ६४ नदियों का आयाम कहते हैं :—

चतुःषष्टिप्रमाणानां रक्तादिसरितां स्फुटम् ।
स्वकुण्डविस्तरोनोयो देशायामः स एव हि ॥१४६॥

रक्तारक्तोदागङ्गासिन्धुसंज्ञानां चतुःषष्टिनदीनामायामः प्रत्येकं षोडशसहस्रपञ्चशतैकोनत्रिंश-द्योजनानि द्वौ क्रोशौ योजनैकोनविंशति भागानां द्वौ भागौ ॥

अर्थ —विदेहस्थ गगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन ६४ नदियों में से प्रत्येक के आयाम का प्रमाण अपने-अपने कुण्ड के विस्तार (६२$\frac{1}{2}$ यो०) से हीन देश के आयाम (१६५९२$\frac{2}{19}$—६२$\frac{1}{2}$= १६५२९$\frac{2}{19}$ योजन और दो कोश) प्रमाण ही है ॥१४६॥

रक्ता, रक्तोदा, गङ्गा और सिन्धु इन ६४ नदियो मे से प्रत्येक नदी की लम्वाई सोलह हजार पाँच सौ उन्तीस योजन दो कोस और एक योजन के उन्नीस भागो मे से दो भाग प्रमाण है। अर्थात् १६५२९$\frac{२}{१९}$ योजन और दो कोस प्रमाण है।

इदानीं विदेहक्षेत्रस्य पूर्वापरेणायामः कथ्यते :—

मेरोर्विष्कम्भो दशसहस्रयोजनानि। भद्रशालवनद्वयो चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि च षोडश-विषयानामेकीकृते विस्तरः पञ्चत्रिंशत्सहस्रचतुःशतषड्डुत्तरयोजनानि। अष्टवक्षाराद्रीणां पिण्डीकृतो व्यासः चतुःसहस्रयोजनानि। षड्विभङ्गनदीनामेकत्रीकृतो विष्कम्भः सार्धसप्तशतयोजनानि। देवारण्य-भूतारण्यवनद्वयोर्मेलिता विस्तृतिः पञ्चसहस्राष्टशतचतुश्चत्वारिंशद्योजनानि। एवमेतेषा मेर्वादीनामे-कत्रीकृतो व्यासः विदेहस्यायामो लक्षयोजनप्रमाणो भवति।

अर्थ —अब विदेहक्षेत्र का पूर्व-पश्चिम आयाम कहते है :—सुदर्शनमेरु का विष्कम्भ १०००० योजन, दोनो भद्रशाल वनो का ४४००० योजन, सोलह देशो का एकत्रित विस्तार ३५४०६ योजन, आठ वक्षार पर्वतो का एकत्रित व्यास ४००० योजन, छह विभङ्गा नदियो का एकत्रित व्यास ७५० योजन और देवारण्य भूतारण्य दोनो वनो का एकत्रित व्यास ५८४४ योजन प्रमाण है। इन सब मेरु आदि का एकत्रित व्यास (१००००+४४०००+३५४०६+४०००+७५०+५८४४=) एक लाख १००००० योजन होता है, विदेह क्षेत्र का पूर्व-पश्चिम आयाम भी यही एक लाख योजन प्रमाण है।

अब २६ श्लोकों द्वारा विदेह का विस्तृत वर्णन करते है :—

विदेहक्षेत्रदेशेषु सर्वेषु च पुरादिषु।
मणिहेममयास्तुङ्गा जिनप्रासादपंक्तयः ।।१४७।।

उत्तुङ्गतोरणादीप्ता रत्नबिम्बशतैर्भृताः।
रत्नोपकरणैः पूर्णा न कुदेवालयाः क्वचित् ।।१४८।।

सन्ति बह्व्यः स्फुरद्दीप्राजिनेन्द्रदिव्यमूर्तयः।
नृसुरैश्चार्चिता वन्द्या न नीचदेवमूर्तयः ।।१४९।।

तत्रत्यैः सर्वदा दक्षैरर्च्यन्ते जिनमूर्तयः।
विश्वाभ्युदयसर्वार्थसिद्धयै नाना विधार्चनैः ।।१५०।।

विवाहजातकर्मादि मंङ्गलेष्वखिलेषु च।
परमेष्ठिन एवाहो न क्षेत्रपालकादयः ।।१५१।।

जिनेन्द्राः समवसृत्याश्रिता द्विषड्गणावृताः ।
सतां धर्मोपदेशादीन् ददतो विहरन्ति च ॥१५२॥
मुक्तिमार्गप्रवृत्यर्थं गणेशागणवेष्टिताः ।
चतुर्ज्ञानमहर्द्धीशा विहारं कुर्वतेऽनिशम् ॥१५३॥
शिष्यादिपरिवारेणावृताः सूरय ऊर्जिताः ।
विहरन्तोऽत्र दृश्यन्ते पञ्चाचारपराः सदा ॥१५४॥
पठन्तः पाठयन्तोऽन्यानङ्गपूर्वाण्यनेकशः ।
रत्नत्रयतपोभूषाः सन्त्युपाध्याययोगिनः ॥१५५॥
गिरिकन्दरदुर्गादिवनेषु निर्जनेषु च ।
साधवो ध्यानसंलीना महाघोरतपोऽङ्किताः ॥१५६॥
प्रवर्तकागुणैर्वृद्धा अन्ये वा संयतव्रजाः ।
सुभव्यैर्वन्दिताः पूज्या दृश्यन्तेऽत्रपदे पदे ॥१५७॥
इत्याद्या जिनयोगीन्द्रा निर्ग्रन्थाः स्युरनेकशः ।
मोक्षमार्गे स्थिता धीरा न स्वप्नेऽपि कुलिङ्गिनः ॥१५८॥
अङ्गपूर्वाणि सर्वाणि पठ्यन्ते यत्र योगिभिः ।
श्रूयन्ते श्रावकैर्नित्यं न कुशास्त्राणि जातुचित् ॥१५९॥
अहिंसालक्षणो धर्म्मः शाश्वतो वर्ततेऽनिशम् ।
सागारयमिनां द्वेधा स्वर्मुक्तिसुखसाधकः ॥१६०॥
व्रतशीलोपवासाद्यैर्जिनप्रणीत ऊर्जितः ।
न धूर्तजल्पितश्चान्यो हिंसोत्थो दुर्गतिप्रदः ॥१६१॥
वैश्याश्चक्षत्रियाः शूद्रा इति वर्णत्रयान्विता ।
प्रजा भद्रा विवेकज्ञा जिनधर्मपरायणा ॥१६२॥
न्यायमार्गरता नित्यं दृक्सद्वृत्ताद्यलंकृता ।
कुमार्गगा द्विजा नात्र न दुर्मतोत्थदुर्धियः ॥१६३॥
जैनसङ्घादिभेदो न पाखण्डदर्शनानि न ।
न मतान्तर एकोपि ह्येकं जिनमतं विना ॥१६४॥
वहत्येवानिशं मोक्षमार्गोऽत्रानन्तसौख्यदः ।
रत्नत्रयात्मकः सत्यो जिनेन्द्रोक्तो महात्मनाम् ॥१६५॥

अत्रत्याः श्रावका दक्षाः श्रावकव्रतधर्मतः ।
षोडशस्वर्गपर्यन्तं गच्छन्ति श्राविकास्तथा ।।१६६।।
केचिद्भोगमहीं पात्रदानपुण्येन भद्रकाः ।
जिनार्चा स्तुतिभक्त्याद्यैर्यान्ति चेन्द्रास्पदं विदः ।।१६७।।
नाकिनः कृतपुण्या येतेऽत्र स्वर्मोक्षसिद्धये ।
सत्कुलेषु प्रजायन्ते बहुश्रीभोगिनो बुधाः ।।१६८।।
यत्रोत्पन्नैः प्रयत्नेन साक्षान्मोक्षो हि साध्यते ।
रत्नत्रयतपोघोरैस्तत्र का वर्णना परा ।।१६९।।
यथैषा वर्णना प्रोक्ता विदेहे द्विविधेऽखिला ।
तथा शेषविदेहेषु ज्ञेया द्वीपापरद्वये ।।१७०।।
द्वीपेष्वर्ध तृतीयेषूत्कृष्टेन श्रीजिनेश्वराः ।
उत्पद्यन्ते क्वचित्सर्वे सप्तत्यग्रं शतं परम् ।।१७१।।
तावन्तश्चक्रिणश्चैव जायन्ते नृसुरार्चिताः ।
सप्तत्यग्रशतेष्वार्यखण्डेष्वेकैकसंख्यकाः ।।१७२।।
जघन्येन जिनाधीशा भवन्ति विंशति प्रमाः ।
चक्राधिपाश्च सर्वत्र नृदेवखचरार्चिताः ।।१७३।।

अर्थ —विदेहक्षेत्रस्थ देशो के सर्व नगरो एव ग्रामो आदि मे मणिमय और स्वर्णमय जिन चैत्यालयो की पक्तियाँ है। वे जिन मन्दिर उन्नत और प्रकाशमान तोरणो से युक्त, रत्नमय सहस्रो जिन विम्बो से भरे हुये और रत्नमय उपकरणो से परिपूर्ण है, वहाँ कही भी कुदेवालय नही हैं ।।१४७-१४८।। वहाँ पर मनुष्यो एव देवगणो से पूजित और वन्दित तथा प्रकाशमान् दीप्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान् की दिव्यमूर्तियाँ ही प्रचुर मात्रा मे हैं, नीच देवो की मूर्तियाँ नही हैं ।।१४९।। वहाँ उत्पन्न होने वाले प्रवीण पुरुष समस्त अभ्युदय सुख एव अन्य समस्त सर्व अर्थ की सिद्धि के लिये नानाप्रकार की पूजनविधि से जिनेन्द्र भगवान को ही पूजते हैं ।।१५०।। विवाह एव जन्म आदि कार्यों मे तथा अन्य समस्त मङ्गल कार्यो मे एक परमेष्ठी अर्थात् अर्हन्त, सिद्ध आदि का ही पूजन होता है, क्षेत्रपाल आदि का नही ।।१५१।। समवसरण के आश्रित होने वाली वारह सभाओ से घिरे हुये जिनेन्द्र भगवान् सज्जन पुरुषो को उपदेश देते है और विहार भी करते हैं ।।१५२।। चार ज्ञान के धारी, महाऋद्धियो के अधीश्वर तथा मुनिगणो से वेष्टित गणधरदेव मुक्ति मार्ग की प्रवृत्ति के लिये निरन्तर विहार करते है। ।।१५३।। विदेह क्षेत्र मे पञ्चाचार परायण तथा शिष्य आदि परिवार मे वेष्टित महान आचार्य निरतर

विहार करते हुये दिखाई देते है ।।१५४।। वहाँ पर अङ्ग और पूर्व रूप जिनागम को स्वयं पढते हुये और अन्य मुनिगणों को पढाते हुये तथा रत्नत्रय एवं तप से विभूपित अनेक उपाध्याय परमेष्ठी है ।।१५५।। वहाँ पर उत्तम ध्यान में संलग्न तथा महाघोर तप से आलीढ साधु पर्वतो पर, कन्दराओ मे, दुर्ग आदि में, वनों में तथा और भी अन्य निर्जन स्थानों में निवास करते है ।।१५६।। विदेह क्षेत्र मे उत्तम भव्य जीवों के द्वारा वन्दित एव पूजित प्रवर्तक साधु, गुणसमूह से वृद्ध-महान् साधु तथा अन्य और भी यति समूह पद पद पर दिखाई देते है ।।१५७।। इस प्रकार इनको आदि लेकर जिनेन्द्र भगवान्, योगियो के अधिनायक आचार्य आदि तथा अनेक प्रकार के धैर्यवान् निर्ग्रन्थ साधु मोक्षमार्ग मे स्थित रहते है। वहाँ स्वप्न मे भी कुलिङ्गी साधुओ के दर्शन नही होते ।।१५८।। योगिजन अङ्ग पूर्व आदि के समस्त आगम को पढते है और श्रावक गण नित्य ही सुनते है। खोटे शास्त्र वहाँ पर कभी भी नहीं सुनते ।।१५९।। स्वर्ग और मोक्ष सुख का जो साधक है, श्रावक धर्म और मुनि धर्म के भेद से जो दो प्रकार है तथा अहिसा ही जिसका लक्षण है, ऐसा अनाद्यनिधन धर्म ही वहाँ निरतर प्रवर्तित रहता है ।।१६०।। वहाँ पर व्रत, शील और उपवास आदि के द्वारा जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित श्रेष्ठ धर्म का ही सेवन होता है। धूर्तो के द्वारा कहा हुआ तथा अन्य हिंसा आदि से उत्पन्न और दुर्गति प्रदाता धर्म नही है। ।।१६१।। वहाँ की प्रजा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णो से समन्वित है, भद्रपरिणामी अर्थात् कुटिलता रहित है, विवेकवान एवं ज्ञानवान् है, जिनधर्मपरायण, न्यायमार्ग में आरूढ और सम्यग्दर्शन ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र से अलकृत है। वहाँ पर मिथ्यामतो से उत्पन्न होने वाली खोटी बुद्धि को धारण करने वाले मनुष्य नही हैं, तथा कुमार्गगामी द्विज-ब्राह्मण भी नही है ।।१६२-१६३।।

वहाँ जैन संघों मे भेद नही है, न वहाँ पाखण्डी दर्शन है और न एक अद्वितीय जिनमत के विना अन्य कोई मतान्तर है ।।१६४।। वहाँ पर जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ, अनन्त सुख प्रदाता, रत्नत्रयात्मक सत्य मोक्षमार्ग का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है ।।१६५।। यहाँ उत्पन्न होने वाले निपुण श्रावक एव श्राविकाएँ श्रावक धर्म के प्रभाव से सोलह स्वर्ग पर्यन्त जाते है। कोई भद्रपरिणामी गृहस्थ पात्रदान के प्रभाव से भोगभूमि मे उत्पन्न होते है, और कोई बुद्धिमान् जन जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, स्तुति एव भक्ति आदि के द्वारा इन्द्र पद प्राप्त करते है ।।१६५-१६७।। बहुत प्रकार के भोगो को भोगने वाले जो विवेकी देव स्वर्ग मे पुण्यकर्मा है वे वहाँ से चय होकर स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धि के लिये विदेह क्षेत्रस्थ उत्तम कुलो मे जन्म लेते है ।।१६८।। वहाँ उत्पन्न होने के बाद रत्नत्रय युक्त घोर तपश्चरण के द्वारा वे प्रयत्नपूर्वक साक्षात् मोक्ष को ही साधते है। वहाँ का अन्य और क्या वर्णन किया जाय ।।१६९।। पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह का यहां समस्त वर्णन जैसा किया गया है, वैसा ही धातकी खण्ड और पुष्करार्धगत विदेह क्षेत्रो का जानना चाहिये ।।१७०।। अढ़ाई द्वीप में उत्कृष्ट रूप से एक साथ एक सौ सत्तर तीर्थकर उत्पन्न हो सकते है। मनुष्यो और देवो से अर्चित चक्रवर्ती भी एक साथ एक सौ सत्तर हो सकते है। पञ्च मेरु सम्बन्धी १६० विदेह देशो के १६० आर्य खण्ड और पांच

भरत एवं पाच ऐरावत सम्बन्धी १० आर्य खण्ड, इस प्रकार एक सौ सत्तर आर्य खण्ड है, इनमे से एक एक आर्य खण्ड मे एक-एक तीर्थंकर और एक-एक ही चक्रवर्ती उत्पन्न हो तो १७० हो सकते है। ।।१७१-१७२।। जघन्य रूप से सर्व क्षेत्रो मे (सर्वत्र) मनुष्यो, देवो एवं विद्याधरों से पूजित तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती मात्र बीस हो सकते है। बीस से कम कभी नही होते ।।१७३।।

अब जम्बूद्वीपस्थ समस्त पर्वतों की एकत्रित संख्या कहते हैं :—

जम्बूद्वीपे महामेरुरेकः षट्कुलपर्वताः ।
चत्वारो गजदन्ताश्च द्व्यष्टवक्षारभूधराः ।।१७४।।
अष्टौ दिग्गजशैलाः स्युश्चत्वारो यमकाद्रयः ।
चत्वारो नाभिशैलाश्च द्वेशते काञ्चनाद्रयः ।।१७५।।
विजयार्धाश्चतुस्त्रिंशत्तावन्तो वृषभाद्रयः ।
सर्वे पिण्डीकृता एते त्रिशतैकादशोत्तराः ।।१७६।।

अर्थ —जम्बूद्वीप मे एक सुदर्शनमेरु, छह कुलाचल पर्वत, चार गजदन्त, सोलह वक्षार पर्वत, आठ दिग्गज पर्वत, चार यमकगिरि, चार नाभिगिरि, दो सौ काञ्चन पर्वत, चौतीस विजयार्ध और चौतीस वृषभाचल पर्वत है। इन सबको एकत्रित करने पर जम्बूद्वीपस्थ (१+६+४+१६+८+४+४+२००+३४+३४=) ३११ पर्वत होते है ।।१७४-१७६।।

अब अवशेष द्वीपों के पर्वतों की संख्या कहते है :—

एतेभ्यो द्विगुणाः सन्ति मेर्वाद्या अद्रयोऽखिलाः ।
द्वीपे च धातकीखण्डे पुष्करार्धे तथापरे ।।१७७।।

अर्थः—धातकी खण्ड मे और पुष्करार्ध द्वीप मे मेरु आदि पर्वतो की संख्या जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है। अर्थात् धातकी खण्ड मे ६२२ पर्वत और पुष्करार्ध द्वीप मे ६२२ पर्वत है ।।१७७।।

अब जम्बूद्वीपस्थ वन, वृक्ष, सरोवर एवं महादेशों आदि की संख्या का दिग्दर्शन कराते है :—

जम्बूद्वीपे वनेद्वेस्तो भद्रशालाह्वये परे ।
जम्बूशाल्मलिवृक्षौ च कुलाचलस्थ षट्द्रहाः ।।१७८।।
सीतासीतोदयोर्मध्ये ह्रदाः स्युर्विंशति प्रमाः ।
जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदैः षड् भोगभूमयः ।।१७९।।
चतुस्त्रिंशन्महादेशा भरतैरावतान्विताः ।
स्युर्नगर्यश्चतुस्त्रिंशदार्यखण्डान्तर स्थिताः ।।१८०।।

भवन्त्युपसमुद्राश्चतुस्त्रिंशत्छाश्वतेतराः ।
देवारण्यवनेद्वेस्तो द्वे भूतारण्यसद्वने ।।१८१।।

अर्थः—जम्बूद्वीप में पूर्वभद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल नाम के दो वन है। जम्बू और शाल्मली नाम के दो वृक्ष है। छह कुलाचलों पर छह सरोवर है। सीतासीतोदा के मध्य में बोस ह्रद है। दो जघन्य भोगभूमियाँ, दो मध्यम और दो उत्कृष्ट, इस प्रकार छह भोगभूमियाँ है। भरतैरावत सहित चौंतीस महादेश है और आर्य खण्डो मे स्थित चौंतीस ही नगरी (राजधानियाँ) हैं। अनाद्यनिधन चौंतीस उपसमुद्र है, एवं देवारण्य नाम के दो तथा भूतारण्य नाम के दो उत्तम वन है।।१७८-१८१।।

अब जम्बूद्वीपस्थ समस्त नदियों का विवेचन करते हैं :—

द्वादशैव विभाङ्गाख्या नद्यस्तास्ताश्च पिण्डिताः ।
परिवाराह्वयानद्यस्त्रिलक्षसहितान्यपि ।।१८२।।
स्युः षड्त्रिंशत्सहस्राणि विदेहक्षेत्रमध्यगाः ।
गङ्गाद्याः क्षुल्लिका नद्यश्चतुःषष्टिप्रमाणकाः ।।१८३।।
आसां पिण्डीकृताः सर्वाः परिवाराख्यनिम्नगाः ।
षण्णवतिसहस्राणिह्यष्टलक्षयुतान्यपि ।।१८४।।
चतुर्दशमहानद्यः सप्तक्षेत्रान्तराध्वगाः ।
गङ्गादिप्रमुखास्तासां परिवारनदीव्रजाः ।।१८५।।
मेलिताः पञ्चलक्षाग्रसहस्रषष्टिसम्मिताः ।
सप्ताग्रदशलक्षाणि द्वियुता नवतिस्तथा ।।१८६।।
सहस्राणि नवत्या सहेति संख्या जिनोदिताः ।
मूलोत्तरनदीनां सर्वासां द्वीपे किलादिमे ।।१८७।।

अर्थ.—विदेह क्षेत्र मे विभङ्गा नदियाँ १२ है, (प्रत्येक नदी की सहायक नदियां २८००० हैं, अत २८००० × १२ =) इनकी समस्त परिवार नदियों का योग ३३६००० होता है। विदेह देशस्थ गङ्गासिन्धु और रक्ता-रक्तोदा ६४ हैं, (इनमे प्रत्येक की परिवार नदियां १४००० हैं) अतः इनकी परिवार नदियो का कुल योग (१४००० × ६४ =) ८९६००० होता है।।१८२-१८४।। जम्बूद्वीपस्थ सात क्षेत्रो के मध्य मे वहने वाली गंगादि चौदह महानदियाँ है, जिनकी परिवार नदियों का कुल योग (गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा की १४०००×४=५६००० + रोहित, रोहितास्या, स्वर्णकूला, रूप्य-कूला की २८०००×४=११२०००+हरि, हरिकांता, नारी, नरकान्ता की ५६०००×४=२२४००० +और सीता, सीतोदा की १६८०००=) १७९२००० है। इनमे मूल नदिया (१४+१२+६४=)९० और मिला देने से जम्बूद्वीपस्थ कुल नदियों का योग १७९२०९० होता है।।१८५-१८७।।

अब इसी प्रमाण को पुनः कहते हैं :—

सर्वजम्बूद्वीपस्य भरतादिसप्तक्षेत्रेषु सर्वाः मूलपरिवारनद्यः एकत्रीकृताः सप्तदशलक्ष-द्विनवति-सहस्रनवतिप्रमा ज्ञातव्या ।

अर्थ—जम्बूद्वीपस्थ भरतादि सात क्षेत्रों में मूल और परिवार नदियों का सर्व योग १७९२०९० प्रमाण जानना चाहिये ।

अब कुण्डों का प्रमाण एवं शेष द्वीपों के भद्रशाल आदि का प्रमाण कहते हैं :—

गङ्गादिपातदेशेषु कुण्डान्येव चतुर्दश ।
विभंगाक्षुल्लकानिम्नगाश्च षट्सप्ततिः स्फुटम् ।।१८८।।
भद्रशालसरिज्जम्बूवृक्षादयोऽखिला अमी ।
द्विगुणा धातकीखण्डे पुष्करार्धे भवन्ति च ।।१८९।।

अर्थः—जम्बूद्वीप में गंगादि चौदह महानदियों के पतन स्वरूप चौदह कुण्ड हैं, और बारह विभङ्गा एवं ६४ गंगादि छोटी नदियों के निकलने के (६४+१२) छिहत्तर (७६) कुण्ड हैं। इस प्रकार कुल ९० कुण्ड हैं ।।१८८।। जम्बूद्वीप में भद्रशाल आदि वन, जम्बू आदि वृक्ष एवं नदियों आदि का जो-जो प्रमाण कहा है, धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप में वह सब प्रमाण दूना-दूना जानना चाहिये ।।१८९।।

अब आचार्य विदेहक्षेत्र के प्रति आशीर्वचन कहते हैं :—

यत्रोच्चैः पदसिद्धये सुकृतिनोजन्माश्रयन्तेऽमरा,
यस्मान्मुक्तिपदं प्रयान्तितपसा केचिच्चनाकं व्रतैः ।
तीर्थेशा गणनायकाश्च गणिनः श्रीपाठकाः साधवः,
सङ्घाढ्याविहरन्ति सोऽत्रजयतान्नित्यो विदेहो गुणैः ।।१९०।।

अर्थ—जहाँ पर पुण्यशाली देव गण मोक्षपद की प्राप्ति के लिये जन्म लेते हैं। जहाँ से कितने ही भव्य जन समीचीन तप के द्वारा मोक्षपद प्राप्त करते हैं, कितने ही व्रतों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं, तथा जहाँ पर तीर्थंकर देव, गणधर देव, आचार्य, उपाध्याय और साधुगण संघ सहित विहार करते हैं, और जहाँ से रत्नत्रय आदि गुणों के द्वारा देह से रहित होते हैं ऐसा वह विदेह क्षेत्र नित्य ही जयवन्त रहो ।।१९०।।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण :—

ये तीर्थेशाः सुराच्या जगति हितकराः सद्विदेहे च जाता,
अस्माद्ये मोक्षमाप्ता हतविधिवपुषोज्ञानरूपाश्च सिद्धाः ।

आचार्याः पाठकाये गुणगणनिलयाः साधवः साधितार्था-
स्ते सर्वे सङ्गहीना निजगुणगतये वन्दिताः सन्तुमेऽद्य ।।१६१।।

इति श्रीसिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते विदेहाऽखिल-देशादिवर्णनोनामाष्टमोध्याय ।।८।।

अर्थः—विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले, जगत का सर्वोपरि हित करने वाले और देवसमूह से अर्चित तीर्थंकर देव, कर्म और शरीर को नाश करके मोक्ष प्राप्त करने वाले ज्ञानशरीरी सिद्ध परमेष्ठी, गुणसमूह के आलय आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन करने वाले समस्त निर्ग्रन्थ साधु जो कि आज मेरे द्वारा वन्दित है, वे सब मेरे निजगुणों की प्राप्ति के लिये हों। अर्थात् मुझे मोक्षगति प्राप्त करने में सहायक हों ।।१६१।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नाम महाग्रन्थ में
विदेहक्षेत्रस्थ सम्पूर्ण देशों आदि का वर्णन करने वाला
आठवाँ अधिकार समाप्त ।।



नवमोऽधिकारः

मङ्गलाचरणः—

आदिमध्यान्तसञ्जातान् तुर्ये काले जगद्धितान् ।
त्रिजगद्दीपकान् वन्दे ज्ञानाय परमेष्ठिनः ॥१॥

अर्थ.—चतुर्थकाल के आदि, मध्य और अन्त मे उत्पन्न होने वाले, त्रैलोक्य का हित करने वाले और तीनों जगत को प्रकाशित करने के लिये दीपक के सदृश पञ्चपरमेष्ठियो के ज्ञान प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ॥१॥

छह कालों का सामान्य वर्णन :—

अथ येऽत्र प्रवर्तन्ते कालाः षट् षट् पृथग्विधाः ।
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भरतैरावतेषु च ॥२॥
एकैकनित्यरूपेण विदेहादिजगत्त्रये ।
वक्ष्ये तेषां पृथग्भूतं स्वरूपं वर्तनादिभिः ॥३॥

अर्थः—भरत एव ऐरावत क्षेत्रो (के आर्य खण्डो) मे उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल सम्बन्धी भिन्न-भिन्न छह-छह कालो का वर्तन होता है, और विदेह आदि तीनो लोको मे अवस्थित रूप से एक-एक काल का वर्तन होता है । अब यहाँ मैं वर्तनादि के द्वारा उनका भिन्न-भिन्न स्वरूप कहूँगा ॥२-३॥

अब प्रथम काल का सामान्य वर्णन करते है :—

अमीषां प्रथमः कालः सुषमासुषमाह्वयः ।
सुखाकरोऽवसर्पिण्यामुत्कृष्टभोगभूमिवत् ॥४॥
सागराणां चतुःकोटि कोटिप्रमाणउत्तमः ।
तस्यादौ तपनीयाभास्त्रिपल्योपमजीविताः ॥५॥
क्रोशत्रयोन्नता आर्या वदरीफलमात्रकम् ।
भुञ्जना दिव्यमाहारं गते दिनत्रये सति ॥६॥
उत्कृष्टपात्रदानोत्थोत्कृष्टपुण्येन सन्ततम् ।
भुञ्जन्त्युत्कृष्टसद्भोगान् दशांगकल्पवृक्षजान् ॥७॥

अर्थः—अवसर्पिणी काल के इन छह कालों में से सुख के आकर स्वरूप प्रथम काल का नाम सुषमासुषमा है, जहां की रचना उत्कृष्ट भोगभूमि के सदृश होती है ।।४।। इस काल का प्रमाण चार कोड़ाकोड़ि सागरोपम (४०००००००००००००० सागर) होता है। इस काल के आदि में जीवों की आयु का प्रमाण तीन पल्योपम, शरीर की कान्ति तपाये हुए स्वर्ण के सदृश और ऊँचाई तीन कोश (छह हजार धनुष) प्रमाण होती है। 'आर्य' इस नाम को धारण करने वाले मनुष्य तीन दिन बाद वदरीफल प्रमाण दिव्य आहार का भोजन करते है ।।५-६।। उत्तम पात्रदान के फल से उत्पन्न उत्कृष्ट पुण्य के द्वारा यहां उत्पन्न होने वाले जीव दश प्रकार के कल्पवृक्षों से है उत्पत्ति जिनकी ऐसे उत्कृष्ट भोगो को निरन्तर भोगते है ।।७।।

अब दशप्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन करते है :—

मद्यवाद्यविभूषास्रग्दीपज्योतिर्गृहाङ्गकाः ।
भोजनाङ्गास्तथा भाजनवस्त्राङ्गा दशेत्यमी ।।८।।
मद्यांगा वितरन्त्येषां ततामोदान् रसोत्कटान् ।
सारान् सुधोपमान् कामोद्दीपकान् मद्यवत्तराम् ।।९।।
भेरीपटहशंखादीन्नाना वाद्यान् फलन्ति च ।
वाद्याङ्गागीतनृत्यादौ वीणामृदंग-झल्लरीः ।।१०।।
स्वर्णरत्नमयान् दीप्तान् दिव्यांश्च भूषणांगकाः ।
हारकुण्डलकेयूरमुकुटादीन् ददत्यलम् ।।११।।
स्रजो नानाविधादिव्याः सर्वर्तु कुसुमांकिताः ।
स्नुवन्ते भोगसौख्यायार्याणां सदा स्रगंगकाः ।।१२।।
ध्वस्तध्वान्ताश्च दीपांगामणिदीपैर्विभान्त्यलं ।
ज्योतिरंगा महोद्योतमातन्वन्ति स्फुरद्द्रुमः ।।१३।।
तुंगसौधसभागेहमण्डपादीन् गृहांगकाः ।
चित्रनर्तनशालाश्च विधातुं सर्वदा क्षमाः ।।१४।।
अन्नादिचतुराहारानमृतस्वादुदायिनः ।
दिव्यांश्च षड्रसान् पुण्याद् भोजनांगा ददत्यहो ।।१५।।
हेमस्थालानि भृंगारान् चषकान् करकादिकान् ।
भाजनांगा दिशन्त्याविर्भवच्छाखाग्र सत्फलाः ।।१६।।

मृदुसूक्ष्माणिवस्त्राणि पट्टकूलानि संततम् ।
वितरन्ति च वस्त्रांगाः प्रावारपरिधानकान् ॥१७॥
न वनस्पतयोऽत्रैते नापिदेवैरधिष्ठिताः ।
केवलं पृथिवीसारमया निसर्गसुन्दराः ॥१८॥
अनादिनिधनाः कल्पद्रुमाः सत्पात्रदानतः ।
संकल्पितमहाभोगान् दशभेदांश्च्युतोपमान् ॥१९॥
फलन्ति दानिनां प्रीत्यै यथैते पादपा भुवि ।
सर्वरत्नमयं दीप्रं भात्यत्र भूतलं परम् ॥२०॥

अर्थः—प्रथम काल मे मद्याग (पानाग), वाद्याग, भूषणाग, मालाग, दीपाग, ज्योतिरग, गृहाग, भोजनाग, भाजनाग और वस्त्राग ये दश प्रकार के कल्पवृक्ष होते है। इनमे से मद्याग नाम के कल्पवृक्ष प्रमोद बढाने वाले, मद्य के समान कामोद्दीपक, अमृत की उपमा को धारण करने वाले और श्रेष्ठ (वीर्यवर्धक) (३२ प्रकार के) उत्कृष्ट रसो को देते है ॥८-९॥ वाद्याग कल्पवृक्ष, भेरी, पटह, शङ्ख आदि तथा गीत नृत्य आदि के उपयोग मे आने वाले वीणा, मृदग और झल्लरी आदि वाद्यो को देते है ॥१०॥ भूषणाग कल्पवृक्ष स्वर्ण और रत्नमय देदीप्यमान् हार, कुण्डल, केयूर और मुकुट आदि दिव्य आभूषण देते है ॥११॥ स्रगगकल्पवृक्ष वहाँ के आर्य मनुष्यो के भोग और सुख के लिये सर्व ऋतुओ के फूलो से बनी हुई नाना प्रकार की दिव्य मालाएँ देते है ॥१२॥ दीपाग कल्पवृक्ष मणिमय दीपो के द्वारा अन्धकार को नष्ट करते हुए सुशोभित होते है। ज्योतिरग कल्पवृक्ष देदीप्यमान् ज्योति से महान् प्रकाश फैलाते हैं ॥१३॥ गृहाग वृक्ष निरन्तर ऊँचे-ऊँचे प्रासाद, सभागृह, मण्डप आदि तथा चित्र शालाएँ और नृत्य आदि शालाएँ देने मे समर्थ है ॥१४॥ भोजनाग कल्पवृक्ष पुण्य के प्रभाव से अन्न, पान, खाद्य और लेह्य यह चार प्रकार का अमृततुल्य, उत्तम स्वाद देने वाला, छह रसो से युक्त और दिव्य आहार देते है ॥१५॥ भाजनाग कल्पवृक्षो की शाखाओ के अग्रभाग पर स्वर्णमय थालियाँ, भृगार, कटोरा और करक (जलपात्र) आदि प्रगट होते है ॥१६॥

वस्त्राग कल्पवृक्ष निरन्तर मृदु एव बारीक रेशम आदि के वस्त्र और धोती दुपट्टा तथा अभ्यतर मे पहिनने योग्य वस्त्रो को देते है ॥१७॥ ये दशो प्रकार के कल्पवृक्ष न वनस्पतिकाय है और न देवो के द्वारा अधिष्ठित है, ये तो केवल पृथ्वी के सारमय, स्वाभाविक सुन्दर और अनादिनिधन है। सत्पात्र दान के प्रभाव से उपमा रहित ये कल्पवृक्ष मनोवाछित उत्तम भोगो को देते है। पृथ्वी पर जैसे अन्य वृक्ष फल देते है उसी प्रकार दानियो के फल प्राप्ति के लिए ये वृक्ष फलते है, यहाँ की सर्व रत्नमय चमकती हुई उत्कृष्ट भूमि अत्यन्त सुशोभित होती है ॥१९-२०॥

भोगभूमि का अवशेष वर्णन :—

मृगाश्चरन्ति तत्रात्या मृदुस्वादुतृणान्यपि ।
चतुरंगुलमानानि रसायनरसास्थया ।।२१।।
न तत्रातपजा वाधा शीतो वृष्टिर्न जातुचित् ।
ऋतवो नाप्यहोरात्रं किञ्चिन्नाशर्मकारणम् ।।२२।।

अर्थः—वहाँ पर मृदु और सुस्वादु चार अंगुल प्रमाण तृण उत्पन्न होता है जिसे मृग रसायन के स्वाद की वाञ्छा से चरते है ।। २१ ।। वहाँ पर न गर्मी जन्य बाधा होती है, न कभी शीत जन्य, न वर्षा जन्य और न कभी ऋतुओं के परिवर्तन जन्य बाधा होती है। उन्हें रात्रि दिन मे दुःख के कारण किञ्चित् भी प्राप्त नही होते ।।२१–२२।।

अब भोगभूमिज जीवों की उत्पत्ति एवं वृद्धि आदि का वर्णन करते है :—

सद्यो जातार्यबालानां दिनसप्तांन्तमुद्रसम् ।
भवेदुत्तानशय्यायामंगुल्याहार उत्तमः ।।२३।।
ततः सप्तदिनान्येषां धरिणोरङ्गरिङ्गिणाम् ।
दम्पतीनां मनोज्ञः स्यात्किञ्चिद्‌वृद्ध्या दशान्तरः ।।२४।।
सप्ताहेनापरेणैते प्रोत्थाय कलभाषिणः ।
सञ्चरन्ति स्वयं भूमौ स्खलगति सहेलया ।।२५।।
पुनः स्थिरपदन्यासैर्व्रजन्ति दिनसप्तकम् ।
सप्ताहं निर्विशंत्युच्चैः कलाज्ञानादिसद्‌गुणैः ।।२६।।
अन्यैः सप्तदिनैस्ते स्युः सम्पूर्णनवयौवनाः ।
दिव्यांशुकसुभूषाढ्याः स्त्रीनरा भोगभागिनः ।।२७।।
स्थित्वातिनिर्मले गर्भे नवमासान् स्त्रियःशुभान् ।
एत्य दम्पतितामत्रोत्पद्यन्ते दानिनो नराः ।।२८।।
यदा दम्पति सम्भूतिस्तदा मृत्युः स्फुटं भवेत् ।
जनयित्रोस्ततोऽमोषां संकल्पो न सुतादिजः ।।२९।।

अर्थः—तत्काल उत्पन्न हुए आर्य वालकों का सात दिन पर्यन्त शय्या पर सीधे सोते हुए अंगुली मे स्थित उत्कट एवं उत्तम रस का आहार होता है ।।२३।। इसके पश्चात् सात दिन पर्यन्त पृथ्वी पर रेंगते हुए वे अति मनोज्ञ स्त्री पुरुष किञ्चित् बुद्धि के द्वारा अन्य दशा को प्राप्त होते हैं। अर्थात् कुछ

बडे हो जाते है ।।२४।। अन्य सात दिनो मे वे उठ कर सुन्दर वचन बोलते है और स्वयं अपनी इच्छा से क्रीडा करते हुए अस्थिर गति से भूमि पर चलते है ।।२५।। पुन सात दिन पर्यन्त स्थिर पैर रखते हुए चलते है, और अन्य सात दिनो मे वे ज्ञान कला आदि सद्गुणो के द्वारा परिपूर्ण हो जाते है ।।२६।। अन्य सात दिनो के द्वारा दिव्य वस्त्राभूषणो से युक्त और अखण्ड भोग-भोगने वाले वे स्त्री पुरुष सम्पूर्ण नव योवन सम्पन्न हो जाते है ।।२७।। दानी मनुष्य शुभ योग से भोगभूमिज स्त्रियो के अत्यन्त निर्मल गर्भ में नौ मास स्थित रह कर उत्पन्न होते है और पश्चात् वे ही दम्पतिपने को प्राप्त हो जाते है ।।२८।। जब नवीन दम्पति उत्पन्न होते है तभी उत्पन्न करने वाले दम्पति मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, इसीलिए माता पिता पुत्रादि की उत्पत्ति के सुख से रहित होते है। अर्थात् ये पुत्र पुत्री है इस सकल्प से रहित होते है ।।२९।।

अब भोगभूमिज जीवों की अन्य विशेषताएँ कहते है :—

आजन्ममरणान्तं नार्याणां रोगो मनाक् क्वचित् ।
न चेष्टादिवियोगो नानिष्टसंयोगशोचनम् ।।३०।।
न चिन्ता दीनता नैव नाप्युन्मेषनिमेषणम् ।
न निद्रा नातितन्द्रा नो लाला स्वेदोद्भवो न च ।।३१।।
मलं मूत्रं न शारीरं कामभोगे न खण्डता ।
विरहो नाशुभोन्मादो नेर्ष्या न च पराभवः ।।३२।।
विषादो न भयं ग्लानिर्न च किञ्चिद् विरूपकम् ।
अन्यद् वा जायते दुःखहेतुः स्वप्नेऽपि भोगिनाम् ।।३३।।
आदि संहनना आदि संस्थाना दिव्यरूपिण ।
समभोगोपभोगास्ते सर्वे मन्दकषायिणः ।।३४।।
स्वभावसुन्दराकाराः स्वभावसौम्यमूर्तयः ।
स्वभावमधुरालापाः स्वभावगुणभूषिताः ।।३५।।

अर्थ —भोगभूमिज मनुष्यो के जन्म से मरण पर्यन्त न कभी किंचित् भी रोग होता है, न इष्ट आदि का वियोग, न अनिष्ट आदि का सयोग और न शोच आदि होता है, न चिन्ता है, न दैन्यता है और न नेत्रो का उन्मेषनिमेष अर्थात् पलको का झपकना है। न अति निद्रा है, न अति तन्द्रा, न मुख से लार और न शरीर से पसीना की उद्भूति होती है, शरीर सम्बन्धी मलमूत्र भी नही होता, और नकाम भोग मे कभी खंडता आती है, न कभी विरह होता है, न अशुभ उन्माद होता है, न ईर्षा भाव है, न पराभव है, न विषाद है, न भय है, न ग्लानि है, और न शरीर आदि मे किञ्चित् भी विरूपता होती है। उन भोगी जीवो के स्वप्न मे भी अन्य कोई दु ख के कारण उत्पन्न नही होते ।।३०-३३।। वे सर्व भोगभूमिज जीव

प्रथम (वज्रर्षभवज्रनाराच) संहनन और प्रथम समचतुरस्र संस्थान से युक्त, दिव्य रूप सम्पन्न, मन्द-कषायी एवं समान भोग उपभोग वाले होते है। वे स्वभावतः सुन्दर आकार वाले, स्वभावतः सौम्य मूर्ति, स्वभावतः मधुर भाषी और स्वभावत अनेक गुण विभूषित होते है ।।३४-३५।।

दाता और पात्रदान के भेद से फल में भेद होता है, यह बताते है :—

आर्या आर्यस्वभावास्ते सत्पात्रदानपुण्यतः ।
दशधाकल्पवृक्षोत्थान् भोगान् भुञ्जन्त्यहर्निशम् ।।३६।।

भद्रकाः पात्रदानेन केचिद् दानानुमोदतः ।
स्त्रीनरा चात्र तिर्यञ्चो जायन्ते भोगभागिनः ।।३७।।

अव्रता दृष्टिहीनाश्च कुपात्रदानतो मृगाः ।
उत्पद्यन्तेऽल्पशर्माणो युग्मरूपेण भद्रकाः ।।३८।।

अर्थ.—सत्पात्रदान के पुण्य से जीव भोगभूमि मे आर्य और आर्या भाव से उत्पन्न होकर अहर्निश दश प्रकार के कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोगो को भोगते है ।।३६।। कुटिलता रहित भद्र परिणामी कोई जीव पात्रदान के फल से और कोई दान की अनुमोदना से वहाँ पर भोग भोगने वाले स्त्री, पुरूष और तिर्यञ्च होते है ।।३७।। व्रत रहित और सम्यक्त्व रहित कोई जीव कुपात्रों को दान देते है, और उसके फल स्वरूप भोगभूमि में अल्पसुख से युक्त, युगल रूप से भद्र परिणामी मृग आदि पर्यायों में उत्पन्न होते है ।।३८।।

अब भोगभूमिज जीवों के मरण का कारण और प्राप्त होने वाली गति कहते हैं:—

आयुषोऽन्ते विमुच्यासून् क्षुता जृम्भकया ततः ।
आर्याः स्त्रियो दिवं यान्त्यार्जवभावेन नान्यथा ।।३९।।

अर्थ:—आयु के अन्त मे पुरुष और स्त्री क्रमशः छीक एवं जम्भाई के द्वारा प्राणों को छोड़ कर आर्जव (सरल) भावो के कारण स्वर्ग ही जाते है, अन्य गतियों में नही जाते ।।३९।।

अब द्वितीय और तृतीय कालों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं :—

ततः कालो द्वितीयोऽस्ति सुषमाख्यः सुखाङ्कितः ।
त्रिकोटीकोटिवाराशिप्रमो मध्यमभोगकृत् ।।४०।।

तस्यादौ पूर्णचन्द्राभा द्विक्रोशोच्चसुविग्रहाः ।
द्विपल्याखण्डितायुष्का अक्षमानान्नभोजिनः ।।४१।।

दिनद्वये गते मध्यमपात्रदानजाच्छुभात् ।
भोगान् दशविधानार्या भजन्ति कल्पवृक्षजान् ॥४२॥

अन्यत्सर्वं समानं स्यादद्याद्यकालवर्तनैः ।
ततस्तृतीयकालोऽस्ति सुषमादुःषमाभिधः ॥४३॥

जघन्यभोगभूयुक्त आद्यसौख्यान्तदुःखधृत् ।
द्विकोटीकोटिपूर्णाब्धिस्थितिः कल्पद्रुमाश्रितः ॥४४॥

अस्यादौ मानवाः सन्ति पल्यैकाखण्डजीविनः ।
प्रियंगुश्यामवर्णाङ्गाः क्रोशैकोन्नतविग्रहाः ॥४५॥

दिनान्तरेण सौख्यायामलकाभान्नभोगिनः ।
कृत्स्नमन्यत्समानं स्यात्प्रागुक्तकालवर्तनैः ॥४६॥

कालत्रयोद्भवार्याणां सहसा स्वायुषः क्षये ।
दिव्याङ्गानि विलीयन्ते यथाभ्रपटलानि च ॥४७॥

अर्थ :—प्रथमकाल के वाद सुखो से युक्त सुखमा नाम का दूसरा काल आता है, इसमे मध्यम भोगभूमि की रचना होती है और इसका प्रमाण तीन कोडाकोडी (३००००००००००००००) सागरोपम होता है ॥४०॥ द्वितीय काल के प्रारम्भ मे मनुष्यो के शरीर की प्रभा पूर्ण चन्द्रमा के सदृश और ऊँचाई दो कोश प्रमाण होती है। ये दो पल्य प्रमाण अखण्डित आयु से युक्त और दो दिन वाद अक्ष (हरड) फल प्रमाण अन्न का भोजन करने वाले होते है। मध्यम पात्रदान से उत्पन्न पुण्य फल के प्रभाव से ये आर्य दशप्रकार के कल्पवृक्षो से उत्पन्न भोगो को भोगते है ॥४१-४२॥ अन्य और सर्व वर्णन प्रथम काल के वर्तन के सदृश ही होता है। इसके बाद सुखमादुखमा नाम का तृतीय काल आता है। इसकी रचना जघन्य भोगभूमि के सदृश होती है और इस काल के प्रारम्भ में सुख तथा अन्त मे दुःख होता है। इस काल की स्थिति दो कोटाकोटी (२०००००००००००००००) सागरोपम प्रमाण होती है, तथा इस काल के प्रारम्भ मे मनुष्य कल्पवृक्षो के आश्रय से अखण्डित एक पल्य पर्यन्त जीवित रहते है। मनुष्यो के शरीर की आभा प्रियगुमणि सदृश हरित और श्याम वर्ण होती है, ऊँचाई एक कोस प्रमाण होती है। ये एक दिन के अन्तर से सुख प्राप्ति के लिए आँवले के वरावर भोजन करते हैं। इस काल का अन्य और समस्त वर्तन पहिले कहे हुए प्रथम काल के वर्तन के सदृश ही होता है। ॥४३-४६॥ तीनो कालों मे उत्पन्न होने वाले आर्यों (जीवो) के दिव्य शरीर अपनी अपनी आयु पूर्ण हो जाने पर सहसा अभ्रपटल (मेघो के समूह के) सदृश विलीन हो जाते हैं ॥४७॥

अब कुलकरों की उत्पत्ति के समय का वर्णन करके सर्व प्रथम प्रतिश्रुत और सन्मति इन दो कुलकरों का सम्पूर्ण वर्णन करते हैं :—

यदा तृतीयकालस्यान्तिमे पल्याष्टमे क्रमात् ।
अवशिष्टे स्थिते भागेऽत्रेमे कुलकरास्तदा ॥४८॥
आर्याणां हितकर्तारो जाता दक्षाश्चतुर्दश ।
बभूव प्रथमस्तेषां प्रतिश्रुत्यभिधानकः ॥४९॥
स्वयंप्रभापतिर्धीमान् हेमवर्णोऽतिरूपवान् ।
अष्टादशशतानां च धनुषामुच्चविग्रहः ॥५०॥
पल्यस्य दशभागानामेकभागस्वजीवितः ।
तत्काले ज्योतिरङ्गानां व्युच्छित्तौखेऽति भास्वरौ ॥५१॥
प्रादुर्बभूवतुश्चन्द्रादित्यौ ते दर्शनात्तयोः ।
आर्या भीता द्रुतं प्रापुः शरणं तं प्रतिश्रुतिम् ॥५२॥
सोऽपि विद्वान् निरूप्याशु गिरा स्वरूपमञ्जसा ।
चन्द्रेनोदयकालानां तेषां भयमपाकरोत् ॥५३॥
"हा" नीत्यादान्नृणां शिक्षां तदनन्तरमेव हि ।
गते पल्योपमाशीत्येकभागेऽभून्महान्मनुः ॥५४॥
सन्मत्याख्यो द्वितीयोऽत्र भर्ता यशस्वतीस्त्रियः ।
त्रयोदशशतानां च चापानां तुङ्गदेहभाक् ॥५५॥
पल्यस्य शतभागानामेकभागायुरूर्जितः ।
स्वर्णवर्णस्तदा सर्व ज्योतिरङ्ग क्षयान्नभः ॥५६॥
आपूर्य ग्रहताराद्याः प्रादुरासन् स्फुरत्प्रभाः ।
ते भीता दर्शनात्तेषां जग्मुस्तं सन्मतिं विभुम् ॥५७॥
भयनाशाय तेषां स इत्याख्यत्प्रवरं वचः ।
हे भद्रका ! ग्रहा एते ह्यमीतारादयः शुभाः ॥५८॥
ज्योतिश्चक्रेण वोऽनेन किञ्चिन्नास्तिभयादिकम् ।
किंत्वद्यप्रभृति ज्योतिष्कैर्वर्तते दिनं निशा ॥५९॥
इति तद्वचनात्प्रीतास्तं स्तुत्वाऽगुर्निजास्पदम् ।
क्वचित् तान् कृतदोषान् स हा नीत्यातर्जयेत्सुधीः ॥६०॥

अर्थ.—जब तृतीयकाल के अन्त मे पल्य का आठवाँ भाग अवशेष रहता है तब यहाँ आर्यो का हित करने मे प्रवीण ऐसे चोदह कुलकर क्रम से उत्पन्न होते है। उनमे से प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति नाम के हुए। जिनकी पत्नी का नाम स्वयप्रभा था। जो हेमवर्ण की आभा से युक्त अति रूपवान् एव बुद्धिमान् थे। उनके शरीर की ऊँचाई १८०० धनुष और आयु का प्रमाण पल्य के दश भागो मे से एक भाग (१/१० पल्य) प्रमाण थी। तत्काल ही अर्थात् पल्य का आठवाँ भाग अवशेष रहने पर ज्योतिरग कल्पवृक्षो की कान्ति नष्ट हो जाने पर आकाश मे (आषाढी पूर्णिमा के दिन) सूर्य और चन्द्र का प्रादुर्भाव होता है, उन रवि शशि के दर्शन से भयभीत हुए वे सब आर्य और आर्या शीघ्र ही प्रतिश्रुति कुलकर की शरण मे पहुँचते है, तब वे बुद्धिमान् प्रतिश्रुति कुलकर शीघ्र ही अपने प्रिय वचनो द्वारा सूर्य चन्द्र के उदय काल आदि के स्वरूप का वर्णन करके उनका भय दूर करते है ॥४८–५३॥ उसी समय ही उन्होने मनुष्यो को "हा" इस दण्ड नीति की शिक्षा दी थी। अर्थात् अपराध करने वाले मनुष्यो को 'हा' इस प्रकार के दण्ड का स्थापन किया था। इसके बाद अर्थात् इस कुलकर की मृत्यु के बाद पल्योपम के अस्सी भाग समाप्त हो चुकने पर यशस्वति स्त्री के स्वामी सन्मति नाम के द्वितीय महामनु यहाँ उत्पन्न हुए। इनके शरीर की ऊँचाई १३०० धनुष, आयु पल्य के सौ भागो मे से एक भाग (१/१०० पल्य) प्रमाण और शरीर की कान्ति स्वर्ण सदृश थी। सर्व ज्योतिरग कल्पवृक्षो के क्षय हो जाने से चमकती हुई प्रभा से युक्त प्रगट होते हुए ग्रहो एव तारागणो ने आकाश मण्डल को आपूर्ण कर दिया अर्थात् भर दिया, जिसके दर्शन से भयभीत हुए लोक जन सन्मति प्रभु की शरण को प्राप्त हुए। उनके भय को नाश करने के लिए वे इस प्रकार श्रेष्ठ वचन बोले कि–हे भद्र जनो! ये ग्रह हैं, और ये शुभ तारा गण आदि हैं। इस ज्योतिष चक्र से आप लोगो को किंचित् भी भय नहीं करना चाहिए, क्योकि अब इन्ही ज्योतिष देवो के द्वारा आप लोगो को दिन और रात्रि के भेद का ज्ञान होगा। इस प्रकार मनु के वचनो से सन्तोष को प्राप्त होकर तथा उनको स्तुति करके वे सब अपने अपने स्थान को चले गये। दोष करने वाले लोगो को वे उत्तम बुद्धि के धारक सन्मति मनु 'हा' इसी दण्ड नीति से तर्जन करते थे ॥५४–६०॥

अब क्षेमङ्कर आदि तीन कुलकरों की आयु आदि का तथा उनके कार्यो का वर्णन करते है :—

ततोऽष्टशतभागानां पल्यस्यातिक्रमे सति।
एकभागे मनुर्जज्ञे क्षेमङ्करो विशारदः ॥६१॥
सुनन्दायाः स्त्रियोभर्त्ताप्रोद्यमी काञ्चनच्छविः।
शताष्टधनुरुत्तुङ्ग एकभागायुरुत्तमः ॥६२॥

पल्यस्य कृतभागानां सहस्रसंखयया तदा ।
तत्रत्याः भद्रकाः प्रापुः क्रूरतां कालतो मृगाः ।।६३।।

तद् बाधामक्षमाः सोढुमार्याः क्षेमङ्करं भयात् ।
आश्रित्याशु स्वबाधानाशायेदं सद्वचोऽवदन् ।।६४।।

प्रभो ! ये प्राग्मृगा भद्रा अस्माभिर्लालिताः करैः ।
अधुना क्रूरतां प्राप्तास्ते घ्नन्त्यस्मान् नखादिभिः ।।६५।।

तान् प्रत्याह मनुश्चेत्थमेतेऽहो कालदोषतः ।
सहसा परिहर्तव्या अन्तरे विकृतिं गताः ।।६६।।

भवद्भिर्नाद्य विश्वासः कर्तव्यः क्रूरजन्मनाम् ।
एतान् स्वक्षेमशिक्षादीन् श्रुत्वा ते तत्स्तवं व्यधुः ।।६७।।

प्रीतः सोपि प्रजानां स्वहाकारदण्डमादिशेत् ।
पुनर्भागे गते पल्याष्टसहस्रैकमानके ।।६८।।

धीमान् कुलकरोऽआसीत् क्षेमन्धरः सुक्षेमकृत् ।
विमलाभामिनीकान्तः कनत्काञ्चनभाङ्गभृत् ।।६९।।

तस्योन्नतिश्च दण्डानां पादोनाष्टशतप्रमा ।
पल्यस्य दशसहस्रैकभागाभङ्गजीवितम् ।।७०।।

तदाति क्रूरताप्तेभ्यो मृगादिभ्यः स धीरधीः ।
यष्ट्यादिताडनैस्तासां बाधां न्यवारयद्द्रुतम् ।।७१।।

प्रजानां कृतदोषाणां सोऽपि हाकारदण्डभृत् ।
पल्याशीतिसहस्रैकभागे गते ततोऽभवत् ।।७२।।

मनु सीमङ्करो ज्ञानी पतिर्मनोहरीस्त्रियः ।
सार्धसप्तशतैश्चापैरुन्नतः कनकप्रभः ।।७३।।

पल्यलक्षैकभागायुर्हाकारदण्डदायकः ।
कल्पवृक्षा यदा चासन् विरला मन्दकाः फलैः ।।७४।।

तदार्याणां विसम्वादस्तत्कृतोऽभूत् परस्परम् ।
ततः सीमावधिं तेषां स व्यधात् क्षेमवृत्तये ।।७५।।

अर्थ —इसके वाद पल्य के ८०० भाग व्यतीत हो जाने पर एक भाग मे क्षेमङ्कर नाम के अति निपुण मनु हुए, जो सुनन्दा स्त्री के स्वामी, उद्यमवान् और स्वर्णाभा के सदृश सुन्दर शरीर के धारक थे। इनके शरीर की ऊँचाई ८०० धनुष और आयु का प्रमाण पल्य के एक हजार भागों मे से एक भाग (१/१००० पल्य) था। इन्ही मनु के जीवन काल मे वहाँ रहने वाले मृग, शेर आदि काल दोष के प्रभाव से क्रूरता को प्राप्त हो गये तव उनकी वाधा को सहन करने मे असमर्थ होते हुए आर्य जन भय से शीघ्र ही क्षेमकर के समीप जाकर अपनी वाधा नाश करने के लिये इस प्रकार उत्तम वचन बोले—हे प्रभो ! ये मृग, सिंह आदि पहिले भद्र परिणामी थे और हम लोगो के हाथो से इनका लालन पालन किया गया है, किन्तु आज ये क्रूरता को प्राप्त होकर हमे अपने नाखूनो से मारते है ।।६२–६५।। उन आर्य जनो को प्रति उत्तर देते हुए मनु वोले—कि काल दोष के प्रभाव से इनके मनो मे विकार उत्पन्न हो गया है, अतः इनको शीघ्र ही छोड देना चाहिए। आप लोगो को अव इनका विश्वास नही करना चाहिए। इस प्रकार अपने कल्याण की शिक्षा आदि को सुनकर उन्होने मनु की वहुत स्तुति की ।।६६–६७।।

प्रजा जनो को प्रीति (कल्याण) के लिए उन्होने भी "हा" दण्ड नीति का ही आदेश दिया। पुन. पल्य के आठ हजार (८०००) प्रमाण भाग व्यतीत हो जाने पर अत्यन्त कल्याण करने वाले, वुद्धिमान् क्षेमन्धर नाम के कुलकर उत्पन्न हुए, जो विमला महादेवी के स्वामी और स्वर्ण सदृश आभा को धारण करने वाले थे ।।६८–६९।। उनके शरीर की ऊँचाई ७७५ धनुष और आयु पल्य के दश हजार भागो मे से एक भाग (१/१०००० पल्य) प्रमाण थी ।।७०।। उस समय मृगादि पशु अत्यन्त क्रूरता को प्राप्त हो गये थे, अत उन उत्तम वुद्धि को धारण करने वाले मनु ने लकडी आदि के द्वारा ताडन आदि करने की शिक्षा देकर शीघ्र ही उनकी वाधा को दूर किया ।।७१।। प्रजा के द्वारा किये हुए दोषों पर उन्होने भी "हा" इस दण्ड नीति का प्रयोग किया। पल्य के अस्सी हजार भाग व्यतीत हो जाने के वाद मनोहारी स्त्री के अत्यन्त विद्वान पति सीमङ्कर नाम के मनु हुए। जिनके शरीर की ऊँचाई ७५० धनुष और कान्ति स्वर्ण के सदृश थी ।।७२–७३।। इनकी आयु पल्य के एक लाख भागो मे से एक भाग (१/१००००० पल्य) प्रमाण थी, तथा ये भी 'हा' दण्ड नीति का ही प्रयोग करते थे। आपके समय मे जव कल्पवृक्ष विरले और मन्द फल देने वाले हो गये तव आर्य जन परस्पर मे विसम्वाद करने लगे, उस समय आपने प्रजा के कल्याण के लिये उनकी अलग सीमा वाध दी थी ।।७४–७५।।

अव सीमन्धर आदि चार कुलकरों के स्वरूप एवं कार्यो का वर्णन करते है :—

ततः पल्याष्टलक्षैकभागे गतेऽभवन्मनुः ।
सीमन्धरोऽङ्गहेमाभोऽत्र यशोधारिणीप्रियः ।।७६।।

पल्यस्य दशलक्षैकभागायुस्तुङ्गविग्रहः ।
शतसप्तप्रमैश्चापैः पञ्चविंशति संयुतैः ।।७७।।
हा-मा-नीतिकरस्तस्मिन् कालेऽतिविरलाः स्वयम् ।
जाताः कल्पद्रुमा मन्दफलाश्च कालहानितः ।।७८।।
तत्कारणैस्तदाऽमीषां विसम्वादः परोऽजनि ।
ततो गुल्मादि चिह्नैः स तेषां सीमांन्यधात् सुधीः ।।७९।।
पल्यस्याशीति लक्षैकभागे गते ततोऽभवत् ।
सुमतिस्त्रीप्रभुर्दक्षो मनुर्विमलवाहनः ।।८०।।
स्वर्णकान्तिर्महाँस्तुङ्गः शतसप्तशरासनैः ।
पल्यकोट्यैकभागायुर्हा-मा-नीतिकृतोद्यमः ।।८१।।
अकारयत्प्रजानां तदांकुशाद्यायुधैर्बुधः ।
आरोहणं गजादीनामुपरि स्फुटमञ्जसा ।।८२।।
पुनः पल्याष्टकोट्यैकभागे गतेऽभवत्सुधीः ।
चक्षुष्मान् कुलकर्तात्र धारिणीप्रिय उन्नतः ।।८३।।
दण्डैः षट्शतसंख्यानैः पञ्चसप्ततिसश्रितैः ।
पल्यस्य दशकोट्यैकभागजीव्यवधीक्षणः ।।८४।।
प्रियंगुवर्णदीप्राङ्गस्तदा सुसूनुदर्शनैः ।
बभूवादृष्टपूर्वैश्चार्याणां भयं सुजीविनाम् ।।८५।।
तत् क्षणं स निवेद्य स्वपुत्रोत्पत्ति सुखाप्तये ।
सन्तानवृद्धिभूतां च तेषां निराकरोद्भयम् ।।८६।।
तेनैष सार्थनामाभूद्धा-मा-नीतिप्रदोऽङ्गिनाम् ।
पल्यस्याशीतिकोट्यैकभागेऽतीते ततः शुभात् ।।८७।।
यशस्वी कुलकर्तासीत् कान्तिमालापतिर्बुधः ।
सार्धषट्शतचापोच्च प्रियंगुप्रभदेहवान् ।।८८।।
पल्यस्य शतकोट्यैकभागायुर्ज्ञानलोचनः ।
यशसा भूषितो वाग्मी हा-मा-नीतिप्रवर्तकः ।।८९।।
तदासौ कारयामास पुत्रजातमहोत्सवम् ।
अनन्तरं प्रसूतेस्तुक् पितॄणां चिरजीविनाम् ।।९०।।

अर्थ—इसके बाद पल्य के आठ लाख भाग व्यतीत हो जाने के बाद यहाँ पर हेम सदृश आभा को धारण करने वाले, यशोधारणी प्रिया के स्वामी सीमन्धर नाम के मनु उत्पन्न हुए थे ।।७६।। इनकी आयु पल्य के दशलाख भागो मे से एक भाग (१/१०००००० पल्य) प्रमाण एवं शरीर की ऊँचाई ७२५ धनुष प्रमाण थी ।।७७।। आपके द्वारा 'हा–मा' दण्डनीति निर्धारित की गई थी। इस समय में काल हानि के प्रभाव से कल्पवृक्ष अत्यन्त विरले एव अत्यन्त मन्द फल प्रदान करने वाले हो गये थे, इस कारण से आर्य जनो के परस्पर मे बहुत कलह होने लगा था, तब अति निपुण आपने झाडी, डाली, झौरा, गुच्छा एव फल आदि चिह्नो के द्वारा उनकी सीमा बाध दी थी ।।७८–७९।। इसके बाद पल्य के अस्सी लाख भाग व्यतीत हो जाने पर सुमति महादेवी के स्वामी अत्यन्त निपुण विमलवाहन नाम के मनु उत्पन्न हुए ।।८०।। इनके शरीर की कान्ति स्वर्ण के सदृश और ऊँचाई ७०० धनुष थी। आयु पल्य के एक करोड भागो मे से एक भाग (१/१००००००० पल्य) प्रमाण थी। आपके द्वारा भी "हा–मा" नीति निर्धारित की गई थी ।।८१।। इन्होने प्रजा को अकुश आदि आयुधो का धारण व प्रयोग करना तथा हाथी आदि पर चढना (सवारी करना) बतलाया था ।।८२।। पश्चात् पल्य के आठ करोड भाग व्यतीत हो जाने के बाद यहाँ पर धारिणी प्रिया के स्वामी महान् कुलकर चक्षुष्मान् हुए ।।८३।। आपके शरीर की ऊँचाई ६७५ धनुष और कान्ति प्रियगुमणि के सदृश हरित वर्ण की थी। आयु का प्रमाण पल्य के दश करोड भागो मे से एक भाग (१/१०००००००० पल्य) प्रमाण था। अवधि-ज्ञान ही आपके नेत्र थे। अर्थात् आप अवधिज्ञान से देखते थे। उस समय पूर्व मे कभी नही देखे हुए अपने पुत्र के दर्शन से जीवित रहने वाले आर्य जनो को बहुत भय उत्पन्न हुआ, उसी क्षण कुलकर ने अपने पुत्र की उत्पत्ति सुख प्राप्ति के लिए होती है, ऐसा कह कर सन्तान वृद्धि से होने वाले उन जीवो के भय को दूर कर दिया ।।८४–८६।।

सार्थक नाम को धारण करने वाले उन चक्षुष्मान् कुलकर के द्वारा भी प्रजाजनो को "हा–मा" का ही दण्ड दिया जाता था। इसके पश्चात् पल्य के अस्सी करोड भाग व्यतीत हो जाने पर कान्तिमाला के पति बुद्धिमान् यशस्वी नाम के कुलकर उत्पन्न हुये। आपके शरीर की ऊँचाई ६५० धनुष और कान्ति प्रियगु मणि के सदृश थी ।। ८७–८८ ।। पल्य के सौ करोड भागो मे से एक भाग (१/१००००००००० पल्य) प्रमाण आयु थी। ज्ञान नेत्र एवं यश से विभूषित आपने भी "हा–मा' दण्ड नीति का ही प्रवर्तन किया था ।। ८९ ।। उस समय पुत्र उत्पत्ति के बाद माता पिता बहुत काल तक जीवित रहने लगे तव कुलकर ने पुत्र उत्पत्ति का महामहोत्सव करने का उपदेश दिया। अर्थात् पुत्र उत्पत्ति के बाद लोगो मे महोत्सव करवाये ।।९०।।

अब अभिचन्द्र और चन्द्राभ इन दो कुलकरों की उत्पत्ति आदि का एवं कार्यों का वर्णन करते हैं :—

पल्याष्टशतकोट्यैकभागेऽतीते ततोऽभवत् ।
अभिचन्द्रो मनुर्ज्ञानी श्रीमतीकान्त उन्नतः ॥६१॥

पञ्चविंशतिसंयुक्तैश्चापैः षट्शतसम्मितैः ।
पल्यकोटिसहस्त्रैकभागायुः कनकच्छविः ॥६२॥

चन्द्रादिदर्शनै रात्रौ चिरजीविप्रजात्मनाम् ।
सूनोर्वीक्ष्य मुखं प्रीत्यै क्रीडनं वचसादिशत् ॥६३॥

तेन तत्कृतनामासीद्धा-मा-नीतिविधिं व्यधात् ।
पल्यस्याष्टसहस्त्रप्रमकोट्यैकप्रमाणके ॥६४॥

गते भागे ततोऽत्राभूच्चन्द्राभश्चन्द्रवर्णवान् ।
प्रभावतीप्रियस्तुङ्गो दण्डैः षट्शतसंख्यकैः ॥६५॥

पल्यस्य दशसहस्त्रकोट्यैकांशात्मजीवितः ।
आर्याणां कृतदोषाणां हा-मा-धिक्कारदण्डकृत् ॥६६॥

तदासौ स्वगिरा दक्षः पितॄणां चिरजीविनाम् ।
व्यवहारं व्यधात् प्रीत्यै पितृपुत्रादिकल्पनैः ॥६७॥

अर्थ—तत्पश्चात् पल्य के आठ सौ करोड भाग व्यतीत हो जाने के बाद श्रीमती कान्ता के पति, ज्ञानवान् एव श्रेष्ठ मनु अभिचन्द्र उत्पन्न हुए ॥६१॥ इनकी ऊँचाई ६२५ धनुष, आयु पल्य के हजार करोड भागो मे से एक भाग ($\frac{१}{१०००००००००००}$ पल्य) प्रमाण एवं शरीर की कान्ति स्वर्णाभा सदृश थी ॥६२॥ सार्थक नाम को धारण करने वाले इन कुलकर ने अपनी वाणी द्वारा बहुत काल तक जीवित रहने वाली अपनी प्रजा को रात्रि मे चन्द्रमा आदि के दर्शन द्वारा अर्थात् अपने बालको को चन्द्रमा दिखा दिखा कर प्रीति पूर्वक उनका मुख देख कर क्रीड़ा कराने (रमाने) का उपदेश दिया ॥६३॥ इनके द्वारा भी "हा-मा" दण्ड नीति का ही विधान किया गया था। पश्चात् पल्य के आठ हजार करोड प्रमाण भाग बीत जाने पर यहा चन्द्रमा की कान्ति को धारण करने वाले प्रभावती प्रिया के स्वामी चन्द्राभ नाम के मनु हुए। इनके शरीर की ऊँचाई ६०० धनुष प्रमाण और आयु पल्य के दश हजार करोड भागो में से एक भाग ($\frac{१}{१०००००००००००}$ पल्य) प्रमाण थी। दोष करने वाले आर्यो को ये हा-मा और धिक्कार का दण्ड देते थे ॥६४-६६॥ उस समय आपने अपने वचनो द्वारा बहुत काल तक जीवित रहने वाले माता पिता को पिता पुत्र आदि के सम्बन्ध की कल्पना द्वारा प्रीति पूर्वक व्यवहार करने का उपदेश दिया ॥६७॥

अब मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराय कुलकरों का वर्णन करते हैं :—

पल्याशीति सहस्रादि कोटय्येक सम्मिते गते ।
भागे ततो मरुद्देवो बभूवानुपमाप्रियः ॥९८॥
पञ्चसप्ततिसंयुक्त धनु पञ्चशतोन्नतः ।
पल्यस्य लक्षकोटच्येकभागायुः कनकद्युतिः ॥९९॥
हा-मा-धिक्कारनीत्युक्तस्तत्काले वार्धयः स्वयम् ।
प्रादुरासंश्च नद्यौघा-मेघा-नानाविधाः शुभाः ॥१००॥
नद्यब्ध्युत्तरणे पोतनौ द्रोण्यादीन् ह्यकारयत् ।
आरोहणे स गिर्यादि सुधीः सोपानमालिकाः ॥१०१॥
पल्याष्टलक्षकोटय्येकभागे व्यतिक्रमे ततः ।
प्रियंगुकान्ति सत्कायो जज्ञे मनुः प्रसेनजित् ॥१०२॥
तुङ्गाः शरासनैः सार्धशतपञ्चप्रमैर्बुध ।
पल्यस्य दशलक्षादि कोटय्येकभागजीवितः ॥१०३॥
हा-मा-धिग्नीति दण्डोक्तस्तस्यामितगतिः पिता ।
वरकन्यकयासार्धं विवाहं विधिना व्यधात् ॥१०४॥
कुलकृच्चैक एवात्रोत्पन्नः स युगलं विना ।
तदा प्रभृति युग्मानामुत्पत्तौ नियमो गतः ॥१०५॥
कालेऽस्यैव सुतोत्पत्तिर्जरायुपटलावृता ।
अभूत् तत् कर्षणस्नानान् प्रजानां सोऽदिशद्गिरा ॥१०६॥
पल्यस्याशीति लक्षादिकोटय्येकप्रमिते गते ।
भागे ततोऽभवत्पुण्यान् नाभिः कुलकरोऽद्भुतः ॥१०७॥
मरुदेवीप्रियो विद्वान् हेमकान्तिः सुरार्चितः ।
पंचविंशतिसंयुक्त धनुः पंचशतोच्छ्रितः ॥१०८॥
पूर्वकोटिप्रमायुष्को हा-मा-धिग्नीतिकारकः ।
काले तस्य सुतोत्पत्तिर्नाभिनालयुताजनि ॥१०९॥
तत्कर्तनं स पितॄणां सुखाय विधिनादिशत् ।
ततोऽसौ सार्थकं स्वस्य नाम प्रापप्रजोदितम् ॥११०॥

तस्मिन् काले नभो व्याप्य तडिदम्बरगर्जनैः ।
सार्धं मुहुर्महावृष्टीर्मेघाधाराव्रजैर्व्यधुः ॥१११॥
तदा शनैः शनैर्भूषु सर्वतो विरलं स्वयम् ।
वृद्धान्यासंश्च सस्यानि पूर्णपक्वान्यनेकशः ॥११२॥
षाष्टिकाः कलमव्रीह्यियवगोधूम कङ्गवः ।
श्यामाक कोद्रवोद्दालनीबारवरकास्तथा ॥११३॥
तिलालस्यौमसूराश्च सर्षपा धान्य जीरकाः ।
माषमुद्गाढकीराजमाषां निष्पावकाश्चणाः ॥११४॥
कुलत्थास्त्रिपुटा धान्यभेदा एते तदाभवन् ।
कुसुम्भाद्याश्च कर्पासाः प्रजाजीवनकारिणः ॥११५॥
सामस्त्येन तदा जग्मुर्व्युच्छित्तिं कल्पशाखिनः ।
महत्याहारसंज्ञासीत् तेषां सर्वाङ्गशोषिणी ॥११६॥
तयान्तराकुलीभूताः प्रजाः क्षुद्वेदनाक्षताः ।
नाभिमभ्येत्य नत्वेति प्रोचुर्दीनगिरा बुधाः ॥११७॥
स्वामिन् ! कल्पद्रुमा विश्वेऽग्रास्मत्पुण्यक्षयात् क्षयम् ।
ययुरन्ये द्रुमाः केचिज्जाता नानाविधाः स्वयम् ॥११८॥
किमेते परिहर्तव्या भोग्याः किं वा तदादिश ।
सदुपायं च वृत्तान्तं जीविकायेन नो भवेत् ॥११९॥
तदाख्यन् नाभिरित्थं हे भद्रकाः ! सद्द्रुमा इमे ।
कार्या भोग्या अमी शीघ्रं त्याज्या विषादिपादपाः ॥१२०॥
काश्चिदेता महौषध्य एते पुण्ड्रेक्षुदण्डकाः ।
प्रपातव्या रसीकृत्य यन्त्रैः खाद्या इमे द्रुमाः ॥१२१॥
आम्राद्या इति तत्प्रोक्तं श्रुत्वा प्रीता प्रशस्यतम् ।
नत्वा तद् दर्शितां वृत्तिं भेजुः कालोचितां प्रजाः ॥१२२॥

अर्थ.— पश्चात् पल्य के अस्सी हजार करोड़ भाग समाप्त हो जाने पर अनुपमा प्रिया के स्वामी मरुदेव कुलकर उत्पन्न हुए। आपको ऊँचाई ५७५ धनुष, आयु पल्य के एक लाख करोड़ भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१०००००००००००००}$ पल्य) प्रमाण एवं शरीर की कान्ति स्वर्णाभासदृश थी ॥९८–९९॥ आपने भी हा–मा और धिक्कार दण्ड नीति का ही प्रयोग किया गया था। इस समय समुद्र,

नदियो के समूह और नाना प्रकार के श्रेष्ठ मेघो का स्वय ही प्रादुर्भाव हुआ था। मरुदेव कुलकर ने नदी और समुद्र आदि को पार करने के लिए पुल, नाव और द्रोणी आदि का तथा पर्वत आदि पर चढने के लिए सोपान मालिका-सीढियो की पक्तियों का विधान किया था ॥१००-१०१॥ इसके पश्चात् पल्य के आठ लाख करोड भाग व्यतीत हो जाने पर प्रियगुमणि की हरित आभा के सदृश उत्तम शरीर द्युति से युक्त प्रसेनजित् मनु उत्पन्न हुए ॥१०२॥ आपके शरीर की ऊँचाई ५५० धनुप और आयु पल्य के दशलाख करोड भागो मे से एक भाग (१०००००००००००००० पल्य) प्रमाण थी ॥१०३॥ प्रसेनजित् मनु के द्वारा भी हा-मा और धिक्कार नीति का ही प्रयोग किया गया था। आपके पिता अमितगति ने आपका विवाह उत्तम कन्या से विधि पूर्वक किया था ॥१०४॥ यह एक ही कुलकर बिना युगल के उत्पन्न हुए हैं और इसी समय से युगल उत्पत्ति का नियम समाप्त हुआ है। अर्थात् युगल ही उत्पन्न हो, ऐसा नियम नही रहा ॥१०५॥ इसी समय मे पुत्रो (सन्तानो) की उत्पत्ति जरायु पटल से आवृत्त होने लगी थी। उस समय आपने अपनी मृदु वाणी के द्वारा प्रजा को जरायु आदि काटने का तथा स्नान आदि कराने का उपदेश दिया था ॥ १०६ ॥ पश्चात् पल्य के अस्सी लाख करोड भाग व्यतीत हो जाने पर पुण्य उदय से चौदहवे कुलकर नाभिराय उत्पन्न हुये ॥१०७॥ मरुदेवी कान्ता के स्वामी, विद्वान्, हेमकान्ति को धारण करने वाले और देवो द्वारा पूजित आपकी ऊँचाई ५२५ धनुष प्रमाण तथा आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण थी। आप भी हा-मा और धिक् दण्ड नीति का ही प्रयोग करते थे। इस काल में सन्तान की उत्पत्ति नाभि नाल से युक्त होने लगी थीं। आपने माता पिता के सुख के लिए उस नाल को काटने का उपदेश दिया था, इसीलिये प्रजा ने आपका सार्थक नाम नाभिराय रखा था ॥१०८-११०॥

इसी काल मे नभ को व्याप्त करके बिजली सहित मेघ गम्भीर गर्जना के साथ साथ स्थूल जल धारा के द्वारा बार बार महावृष्टि करने लगे थे ॥१११॥ वर्षा होने के बाद ही पृथ्वी पर धीरे धीरे चारो ओर पूर्ण रूपेण पके हुए अनेक प्रकार के धान्य को वृद्धि होने लगी थी, जिसमे शालि चावल, कलम, व्रीहि आदि और अनेक प्रकार के चावल, जव, गेहूँ, कागणी, श्यामक (एक प्रकार का धान्य) कोदो, मोट, नोवार (कोई धान्य), वरवटी, तिल, अलसी, मसूर, सरसो, धना, जीरा, उडद, मूँग, अरहड, चौला, निष्पावक (बालोर), चना, कुलथी और त्रिपुटा (तेवडा) आदि भेद वाले धान्य हो गये थे। तथा कल्पवृक्षो की सम्पूर्ण रूपेण समाप्ति हो जाने पर प्रजा के जीवनोपयोगी कौसुम्भ और कापास आदि की भी उसी समय उत्पत्ति हो गई थी। कल्पवृक्षो का अभाव हो जाने से जीवो मे आहार की तीव्र वाञ्छा उत्पन्न होने लगी, उस समय सर्व अङ्गो को शोषण करने वाली क्षुधा वेदना से प्रजा अन्तरङ्ग मे अत्यन्त दुःखी होती हुई नाभिराय मनु के समीप जाकर तथा नमस्कार करके दीन वचनो से-इस प्रकार कहने लगी कि—हे स्वामिन्! हम लोगो का पुण्य क्षय हो जाने से समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो गये है और उनके स्थान पर और कोई नाना प्रकार के अनेक वृक्ष स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं, इनमे

से कौन से वृक्ष छोडने योग्य है और कौन से भोगने योग्य है यह समझाते हुए आप हमें ऐसा सर्वोत्तम उपाय बतलाइये जिससे हम लोगों की जीविका चले। इसके बाद नाभिराय इस प्रकार बोले कि— हे भद्र ! इनमें ये तो उत्तम वृक्ष भोगने योग्य और काम में लेने योग्य है तथा ये विष आदि के वृक्ष है, जो शीघ्र ही छोडने योग्य है ॥११२–१२०॥ इनमे ये वृक्ष महा औषधि रूप हैं, ये आम्र आदि खाने योग्य है और ये गन्ना आदि है, जिनका यन्त्र के द्वारा रस निकाल कर पीना चाहिए। इस प्रकार राजा के वचनों को सुन कर और भली प्रकार प्रीतिपूर्वक उन्हे नमस्कार करके प्रजा उनके द्वारा दर्शाई हुई कालोचित वृत्ति का सेवन करने लगी ॥१२१–१२२॥

अब कुलकरों की उत्पत्ति आदि का कुछ वर्णन करते हैं :—

प्रतिश्रुत्यादयोयेऽत्र वर्णिता मनवोऽखिलाः ।
ते प्राग्भाग्विदेहेषु ज्ञेया नृपाः महान्वयाः ॥१२३॥
सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्व पात्रदानशुभार्जनैः ।
भोगभूमिमनुष्याणां बद्ध्वायुस्ते शुभाशयाः ॥१२४॥
पश्चात क्षायिकसम्यक्त्वं जिनान्ते काललब्धितः ।
गृहीत्वा स्वायुरन्तेऽत्र सर्वे जाता विचक्षणाः ॥१२५॥
तेषु जातिस्मराः केचित्केचिच्चावधिलोचनाः ।
एतान् हितोपदेशादीन् प्रजानामादिशन् बुधाः ॥१२६॥

अर्थ —यहाँ पर जिन प्रतिश्रुति आदि कुलकरो का वर्णन किया गया है वे सभी पूर्व भव में विदेह क्षेत्र मे उत्तम कुलोत्पन्न श्रेष्ठ राजा थे। सम्यक्त्व ग्रहण के पूर्व पात्रदान से अर्जित पुण्य फल के द्वारा उन पवित्र चित्तवृत्ति वाले सभी मनुओं ने भोगभूमि के मनुष्यो की आयु का वन्ध कर लिया था। पश्चात् काललब्धि के योग से जिनेन्द्र भगवान् के पादमूल मे क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण करके विचक्षण बुद्धि को धारण करने वाले वे सभी आयु के अन्त मे वहाँ से मरण कर यहाँ उत्पन्न होते हैं ॥१२३–१२५॥ उनमे से किन्ही को जातिस्मरण और किन्ही को अवधिज्ञान होता है, जिससे वे विद्वज्जन प्रजा को हितोपदेश देते है ॥१२६॥

अब ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती की दण्डनीति तथा ऋषभदेव के मोक्ष जाने का वर्णन करते है :—

नाभेः कुलकरस्यान्तिमस्यात्रासीत्सुतः परः ।
ऋषभस्तीर्थकृत् पूज्यः कुलकृत् त्रिजगद्धितः ॥१२७॥

हा-मा-धिग्नीतिमार्गोक्तोऽस्य पुत्रो भरतोऽग्रजः ।
चक्री कुलकरो जातो बधबन्ध्यादि दण्डभृत् ॥१२८॥
ततश्चतुर्थकालाच्च पूर्व ग्रचादिजिनेश्वरः ।
मुक्ते मार्गं द्विधा धर्म प्रकाश्य ध्वनिना सताम् ॥१२९॥
हत्वा कृत्स्नाङ्गकर्माणि प्राप्य देवाधिपार्चनम् ।
अनन्तगुणशर्माब्धिजगामान्ते शिवालयम् ॥१३०॥
विश्वाग्रस्थं तृतीयस्य कालान्तेऽस्यान्तिमे सति ।
वर्षत्रयेऽवशिष्टे च सार्धाष्टमाससंयुते ॥१३१॥

अर्थः—अन्तिम कुलकर नाभिराय के ऋषभदेव नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो तीर्थंकर, पूज्य, कुलकर और त्रैलोक्य का हित करने वाला था। आपने भी हा–मा और धिक् दण्डनीति का ही प्रयोग किया था। आपके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत, कुलकर रूप में उत्पन्न हुए जिन्होने दोष करने वालो प्रजा पर वध, बन्धन आदि दण्ड नीति का प्रयोग किया ॥१२७–१२८॥ चतुर्थ काल से पूर्व ही अतरग वहिरग लक्ष्मी से युक्त प्रथम तीर्थंकर हुए, जो भव्य जनो को अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा मोक्षमार्ग को तथा मुनि और श्रावक के धर्म को प्रकाश कर, सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर तथा देवेन्द्रो से पूजा को प्राप्त कर सम्पूर्ण तृतीयकाल के अन्त मे तीन वर्ष साढे आठ मास अवशेष रहने पर अनन्त गुण और अनन्त सुख के सागर मोक्ष को प्राप्त हुए ॥१२९–१३१॥

अब चतुर्थकाल का सविस्तृत वर्णन करते है :—

ततश्चतुर्थकालोऽभूत् दुःषमासुषमाह्वयः ।
दु खसौख्यकरो ह्येक कोटीकोटचम्बुधिप्रमः ॥१३२॥
ऊनो वर्षद्विचत्वारिंशत्सहस्रप्रमैर्महान् ।
शुभः कर्मधरोत्पन्नः स्वर्मोक्षसुखसाधनः ॥१३३॥
अस्यादौ मानवाः सन्ति पूर्वकोटिपरायुषः ।
पञ्चवर्णा लसद्देहाश्चापपञ्चशतोच्छ्रिताः ॥१३४॥
वारैकं पूर्णमाहारं दिनं प्रत्याहरन्ति ते ।
षट्कर्मकारिणोऽन्ते मोक्षचतुर्गतिगामिनः ॥१३५॥
आद्यकालत्रये भोगभूमिभागेषु येऽङ्गिनः ।
न भूता दुःखदा द्वित्रिचतुरिन्द्रियजातयः ॥१३६॥



मांसाशिपक्षिणः क्रूरा अन्ये जलचरादयः ।
ते सर्वे विकलाक्षाद्याः कालेऽस्मिन्स्वयमुद्गताः ॥१३७॥
चतुर्विंशतितीर्थेशाश्चक्रेशा द्वादशोत्तमाः ।
बलदेवा नवैवासन् वासुदेवा नवोत्कटाः ॥१३८॥
तच्छत्रवोऽत्र तावन्तो रुद्रा एकादशाशुभाः ।
चतुर्विंशतिकामाश्च दुर्वेषा नारदा नव ॥१३९॥

अर्थ.—तृतीयकाल के अन्त में दुखमा–सुखमा नाम का चतुर्थ काल प्रारम्भ हुआ, जो दुख और सुख दोनों का सम्पादन करने वाला था और उसका प्रमाण व्यालीस हजार वर्ष कम एक कोडा-कोडी सागर (१००००००००००००००० सागर—४२००० वर्ष) था। इसमे शुभकर्मो द्वारा पुण्य उपार्जन करने वाले तथा स्वर्ग और मोक्ष का साधन करने वाले जीव उत्पन्न होते थे ॥१३२–१३३॥ चतुर्थकाल के प्रारम्भ मे मनुष्यो की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि (७०५६ के आगे १७ शून्य), शरीर की आभा पंच वर्ण की और ऊँचाई ५०० धनुष प्रमाण थी ॥१३४॥ उस समय जीव दिन में एक बार पूर्ण आहार करते थे तथा षट्कर्मो में तत्पर रहते थे, और आयु के अन्त मे मोक्ष एव कर्मानुसार चारों गतियों को प्राप्त होते थे ॥१३५॥ प्रारम्भ के भोगभूमि सम्बन्धी तीनो कालो में दुखदाई द्वीन्द्रिय, त्रेन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अर्थात् विकलत्रय जीव, मांस भक्षी एवं अन्य क्रूर पक्षी तथा जलचर आदि जो जीव उत्पन्न नही होते थे, वे सब इस काल में स्वयमेव उत्पन्न होने लगे थे ॥१३६–१३७॥ इस काल मे चौबीस तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती, नव नारायण और नव हो प्रतिनारायण उत्कट बल के धारी हुये। ग्यारह रुद्र, शुभकार्य करने वाले चौबीस कामदेव और दुर्बुद्धि धारी नव नारद भी इसी काल मे होते है ॥१३८–१३९॥

अब चौबीस तीर्थंकरों का सविस्तृत वर्णन करते है :—

वृषभोऽजिततीर्थेशः सम्भवाख्योऽभिनन्दनः ।
सुमतिः श्रीजिनः पद्मप्रभसुपार्श्वतीर्थकृत् ॥१४०॥
चन्द्रप्रभजिनः पुष्पदन्तः शीतलसंज्ञकः ।
श्रेयान् श्रीवासुपूज्योऽर्हद्विमलोऽनन्ततीर्थकृत् ॥१४१॥
धर्मः शान्तीश्वरः कुन्थुनाथोऽरो मल्लिनामकः ।
मुनिसुव्रततीर्थेशो नमिर्नेमिजिनेश्वरः ॥१४२॥
पार्श्वः श्रीवर्धमानाख्य एते श्रीजिननायकाः ।
त्रिजगन्नाथवन्द्याचर्याश्चतुर्विंशतिरेव च ॥१४३॥

चन्द्राभपुष्पदन्तौ द्वौ चन्द्रकान्तमणिप्रभौ ।
पद्माभवासुपूज्यौ च पद्मरागमणिच्छवी ॥१४४॥
सुपार्श्वपार्श्वतीर्थेशौ स्फुरन्मरकतद्युती ।
नेमीशसुव्रतौ श्यामौ शेषास्ते कनकप्रभाः ॥१४५॥
मुनिसुव्रतनेमीशौ हरिवंशशिरोमणी ।
शान्तिकुन्थ्वरतीर्थेशा कुरुवंशविभूषणाः ॥१४६॥
उग्रवंशाग्रणीः पार्श्वो वीरो नाथान्वयोद्भवः ।
इक्ष्वाकुकुलसञ्जाता जिनाः सप्तदशापरे ॥१४७॥
चापपञ्चशतान्याद्ये चोनं पञ्चाशदष्टसु ।
दश-पञ्चसु चापानि हीनानि पञ्च चाष्टसु ॥१४८॥
नव सप्तकराः प्रोक्ताः क्रमेण पार्श्ववीरयोः ।
उत्सेधास्तीर्थकर्तॄणां दिव्याङ्गेषु भवन्त्यमी ॥१४९॥
आयुश्चतुरशीतिश्च प्रथमश्रीजिनेशिन ।
ततो द्वासप्ततिः षष्टिः पूर्वलक्षाणि चार्हताम् ॥१५०॥
तेभ्यो दशविहीनानि पञ्चानां हि क्रमात् तथा ।
पूर्वलक्षद्वयं जेष्ठायुः पूर्वलक्षमर्हतः ॥१५१॥
लक्षाश्चतुरशीतिः सम्वत्सराणां द्विसप्ततिः ।
षष्टिस्त्रिंशद्दशैवायुस्ततो लक्षैकमञ्जसा ॥१५२॥
पंचाग्रा नवतिर्वर्षाण्यशीतिश्चतुरुत्तरा ।
आयुश्च पंचपंचाशत् सहस्राणि पृथक् ततः ॥१५३॥
त्रिंशद्दशसहस्राणि सहस्रैकं ततः परम् ।
वर्षाण्यायुः शतैकं स्याद्वर्धमाने द्विसप्ततिः ॥१५४॥

अर्थ.—वृषभनाथजी, अजितनाथ तीर्थंकर, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभजिनेन्द्र, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयान्सनाथ, वासुपूज्य अर्हन्त, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान नाम के ये चौबीस तीर्थंकर हुये है। ये चौबीसो तीर्थंकर तीनो लोको के स्वामियो द्वारा अर्थात् सुरेन्द्र, धरणेन्द्र और नरेन्द्रोके द्वारा वन्दनीय एव अर्चनीय है ॥१४०-१४३॥ इन चौबीस तीर्थंकरो मे से चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त भगवान् के शरीर की कान्ति चन्द्रकान्तमणि की

प्रभा के सदृश श्वेत, पद्मप्रभ और वासुपूज्य भगवान् के शरीर की आभा पद्मरागमणि की आभा के सदृश लाल, सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थकरों की कान्ति मरकत मणि की कान्ति सदृश हरित, नेमिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ के शरीर की द्युति श्याम तथा अन्य अवशेष सोलह तीर्थकरो के शरीर की कान्ति कनकप्रभाके सदृश थी ।।१४४–१४५।।

मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ हरिवश के शिरोमणि थे । शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ कुरुवंश के विभूषण थे, पार्श्वनाथ उग्रवंश के अग्रणी थे, वीरनाथ नाथवश के एवं अन्य शेष सत्रह जिनेश्वर इक्ष्वाकुवश के आभूषण थे । अर्थात् इन-इन वशों मे उत्पन्न हुए थे ।।१४६–१४७।।

प्रथम तीर्थकर आदिनाथ भगवान् के शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष प्रमाण थी, द्वितीयादि आठ तीर्थकरो को ५०-५० धनुष कम अर्थात् ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५० और १०० धनुष थी। दशवें आदि पाच तीर्थकरों की १०-१० धनुष कम अर्थात् ९०, ८०, ७०, ६० और ५० धनुष थी। पन्द्रहवे आदि आठ तीर्थकरों की क्रमश: ५-५ धनुष कम अर्थात् ४५, ४०, ३५, ३०, २५, २०, १५ और १० धनुष थी । पार्श्वनाथ भगवान् की ९ हाथ और वीर नाथ भगवान की ७ हाथ प्रमाण ऊँचाई थी, इस प्रकार चौबीस तीर्थकरों के दिव्य शरीरों का उत्सेध था ।।१४८-१४९।।

चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थकर की आयु चौरासी लाख पूर्व, द्वितीय की बहत्तर लाख पूर्व और तृतीय की साठ लाख पूर्व थी । इसके आगे पाँच-पाँच तीर्थकरों की क्रमश: १०-१० लाख पूर्व कम, पुष्पदन्त की दो लाख पूर्व और शीतलनाथ की एक लाख पूर्व की आयु थी । श्रेयासनाथ की ८४ लाख वर्ष, वासुपूज्य की ७२ लाख वर्ष, विमलनाथ की ६० लाख वर्ष, अनन्तनाथ की ३० लाख वर्ष, धर्मनाथ की १० लाख वर्ष, शान्तिनाथ की एक लाख वर्ष, कुन्थुनाथ की ९५ हजार वर्ष, अरनाथ की ८४ हजार वर्ष, मल्लिनाथ की ५५ हजार वर्ष, मुनिसुव्रतनाथ की ३० हजार वर्ष, नमिनाथ की १० हजार वर्ष, नेमिनाथ की एक हजार वर्ष, पार्श्वनाथ की १०० वर्ष और वर्धमान स्वामी की ७२ वर्ष प्रमाण आयु थी ।।१५०-१५४।।

अथ कायायुषोः सुखबोधाय विस्तरमाह :—

वृषभस्याङ्गोत्सेधःपञ्चशतधनूंषि । आयुश्चतुरशीति लक्षपूर्वाणि । अजितस्योन्नति सार्धचतुःशतचापानि । आयुर्द्वासप्ततिर्लक्षपूर्वाणि । सम्भवस्योत्सेधः चतुःशतधनूंषि, आयुः षष्टिलक्षपूर्वाणि । अभिनन्दनस्याच्छ्रितिः सार्धत्रिशतचापानि, आयुः पञ्चाशल्लक्षपूर्वाणि । सुमतेरुन्नतिः त्रिशतधनूंषि, आयुश्चत्वारिशल्लक्ष पूर्वाणि । पद्मप्रभस्योत्सेधः सार्धद्विशतचापानि, आयुस्त्रिशल्लक्षपूर्वाणि । सुपार्श्वस्योन्नतिर्द्विशतधनूंषि, आयुर्विशतिलक्षपूर्वाणि । चन्द्रप्रभस्योत्सेधः सार्धशतचापानि, अयुर्दशलक्षपूर्वाणि । पुष्पदन्तस्योन्नतिः शतधनूंषि, आयुर्द्विलक्षपूर्वाणि । शीतलोत्सेध नवतिचापानि, आयुरेकलक्षपूर्वाणि । श्रेयस. उन्नतिरशीतिधनूंषि, आयुश्चतुरशीतिलक्षवर्षाणि । वासुपूज्योत्सेधः सप्ततिचापानि, आयुर्द्वासप्ततिलक्षवर्षाणि । विमलस्योत्सेधः षष्टिधनूंषि, आयुः षष्टिलक्षवर्षाणि । अनन्तस्योन्नतिः पञ्चाशच्चापानि, आयुस्त्रिशल्लक्षवर्षाणि । धर्मस्योत्सेधः पञ्चचत्वारिंशद्धनूंषि, आयुर्दशलक्ष-

वर्षाणि। शान्तेरुन्नतिश्चत्वारिंशच्चापानि, आयुरेकलक्षवर्षाणि। कुन्थोरुत्सेध पञ्चत्रिंशद्धनूषि, आयु पञ्चनवतिसहस्रवर्षाणि। अरस्योन्नतिस्त्रिंशच्चापानि, आयुश्चतुरशीतिसहस्रवर्षाणि। मल्लिनाथस्योत्सेधः पञ्चविंशतिधनूषि, आयुः पञ्चपञ्चाशत्सहस्रवर्षाणि। मुनिसुव्रतस्योन्नतिर्विंशति चापानि, आयुस्त्रिंशत्सहस्रवर्षाणि। नमेरुत्सेध पञ्चदशधनूंषि, आयुर्दशसहस्रवर्षाणि। नेमेरुन्नतिर्दशचापानि, आयु सहस्रवर्षाणि। पार्श्वस्योत्सेधः नवहस्ता., आयु शतवर्षाणि। वर्धमानस्योन्नतिः सप्तकरा. आयुर्द्विसप्ततिवर्षाणि।

उपर्युक्त गद्य मे वर्णित चौबीस तीर्थकरो के शरीर के उत्सेध का प्रमाण और आयु का प्रमाण निम्न लिखित तालिका द्वारा दर्शाया जा रहा है —

चौबीस तीर्थकरों की आयु एव उत्सेध :—

क्रम	नाम	आयु	उत्सेध
१	ऋषभनाथ	८४ लाख पूर्व	५०० धनुष
२	अजितनाथ	७२ ,, ,,	४५० ,,
३	सम्भवनाथ	६० ,, ,,	४०० ,,
४	अभिनन्दननाथ	५० ,, ,,	३५० ,,
५	सुमतिनाथ	४० ,, ,,	३०० ,,
६	पद्मनाथ	३० ,, ,,	२५० ,,
७	सुपार्श्वनाथ	२० ,, ,,	२०० ,,
८	चन्द्रप्रभ	१० ,, ,,	१५० ,,
९	पुष्पदन्त	२ ,, ,,	१०० ,,
१०	शीतलनाथ	१ ,, ,,	९० ,,
११	श्रेयाँसनाथ	८४ लाख वर्ष	८० ,,
१२	वासुपूज्य	७२ ,, ,,	७० ,,
१३	विमलनाथ	६० ,, ,,	६० ,,
१४	अनन्तनाथ	३० ,, ,,	५० ,,
१५	धर्मनाथ	१० ,, ,,	४५ ,,
१६	शान्तिनाथ	१ ,, ,,	४० ,,
१७	कुन्थुनाथ	९५ हजार वर्ष	३५ ,,
१८	अरनाथ	८४ ,, ,,	३० ,,
१९	मल्लिनाथ	५५ ,, ,,	२५ ,,
२०	मुनिसुव्रत	३० ,, ,,	२० ,,
२१	नमिनाथ	१० ,, ,,	१५ ,,
२२	नेमिनाथ	१ ,, ,,	१० ,,
२३	पार्श्वनाथ	१०० वर्ष	९ हाथ
२४	वर्धमान	७२ वर्ष	७ हाथ

अब तीर्थंकरों का अन्तरकाल कहते हैं :—

गतेऽत्र वृषभे निर्वाणं जातेऽजितनायके ।
तयोस्तीर्थेशयोर्मध्ये गतकालो जिनान्तरः ॥१५५॥
पञ्चाशल्लक्षकोटयश्च सागराः प्रथमान्तरम् ।
सार्धाष्टमाससंयुक्त त्रिवर्षाग्रमतं परम् ॥१५६॥
ज्ञेयं मध्येऽन्तरस्यास्यैवाजितस्यायुरञ्जसा ।
इत्यन्तरस्य मध्ये स्यादायुः शेषजिनेशिनाम् ॥१५७॥
ततोऽब्धिलक्षकोटीनां त्रिंशद्दश नव क्रमात् ।
तथा सहस्रकोटीनां नवतिः क्रमतो नव ॥१५८॥
कोटयो नवशतान्येव कोटयो नवतिर्नव ।
ततः शतोन कोटयेका, जिनेन्द्रस्यान्तरं पृथक् ॥१५९॥
षट्षष्टिलक्षषड्विंशसहस्रवत्सरोनितम् ।
सागरा हि चतुः पञ्चाशत्त्रिंशच्च नवान्तरम् ॥१६०॥
चत्वारोऽम्बुधयः पादोनपल्यवर्जितास्त्रयः ।
पल्यार्धं पल्य पादं सहस्रकोटिसमोनितम् ॥१६१॥
सहस्रकोटिवर्षाणि मध्येऽर्हतो जिनान्तरम् ।
सम्वत्सराश्चतुः पञ्चाशल्लक्षाः षट् च पञ्च हि ॥१६२॥
सार्धसप्तशताग्रास्त्र्यशीतिसहस्रवत्सराः ।
सार्धद्विशतवर्षाणि ततोऽपरं जिनान्तरम् ॥१६३॥
हीनं सार्धाष्टमासाधिकवर्षं त्रिभिरंजसा ।
चतुर्विंशार्हतामित्थं पृथक् पृथग्जिनान्तरम् ॥१६४॥
इत्युक्त कालमध्येषु जगन्नाथा जिनेश्वराः ।
हत्वा कृत्स्नाङ्कर्माणि जग्मुर्मोक्षं जगद्धिताः ॥१६५॥
यदा चतुर्थकालस्य सार्धाष्टमाससंयुते ।
सति वर्षत्रये शेषे तदा वीरोऽगमच्छिवम् ॥१६६॥
एषां जिनान्तराणां च मध्ये क्षिप्तेषु सत्सु वै ।
ह्येकविंशसहस्त्राब्देषु पंचमान्त्यकालयोः ॥१६७॥

जिनान्तराणि सर्वाणि पिण्डितानि भवन्ति च ।
कोटीकोटचब्धयः कालसंख्ययात्र जिनेशिनाम् ।।१६८।।

अर्थः—वृषभदेव भगवान् के मोक्ष जाने के बाद अजितनाथ भगवान् मोक्ष गये, इन दोनो तीर्थंकरो के मध्य मे जो काल व्यतीत होता है, वही तीर्थंकरो का अन्तरकाल कहलाता है ।।१५५।। प्रथम अन्तर पचास करोड सागर तीन वर्ष और साढे आठ माह प्रमाण था। इस ऋषभनाथ और अजितनाथ के प्रथम अन्तर के मध्य मे अजितनाथ भगवान् की आयु सम्मिलित ही जानना। इसी प्रकार अन्य अन्तरालो मे अन्य तीर्थकरो की आयु भी सम्मिलित है ।।१५६–१५७।। इसके बाद दूसरे आदि अन्तराल क्रमश तीस लाख करोड सागर, दश लाख करोड सागर, नव लाख करोड सागर, ९० हजार करोड सागर, नव हजार करोड सागर, ९०० करोड सागर, ९० करोड सागर, ९ करोड सागर और ६६ लाख २६ हजार एक सौ सागरो से हीन एक करोड (३३७३९००) सागर था। इस ग्यारहवे अन्तराल के बाद क्रमश चौवन सागर, तीस सागर, नौ सागर, चार सागर, पौन पल्य कम तीन सागर, अर्ध पल्य, हजार करोड वर्ष कम चौथाई पल्य, हजार करोड वर्ष, चौवन लाख वर्ष, छह लाख वर्ष और पाँच लाख वर्ष प्रमाण जिनान्तर जानना चाहिए ।।१५८–१६२।। इसके बाद तेरासी हजार सात सौ पचास वर्ष और अन्तिम अन्तर दो सौ पचास वर्षो मे से तीन वर्ष, साढे आठ मास कम अर्थात् दो सौ छयालीस वर्ष तीन मास और एक पक्ष प्रमाण था। इस प्रकार चौबीस तीर्थंकरो का यह पृथक्-पृथक् अन्तरकाल जानना चाहिए ।।१६३-१६४।। इस उपर्युक्त काल मे त्रैलोक्य हित कर्ता, तीन लोक के स्वामी जिनेश्वर भगवान् द्रव्य कर्म, नोकर्म और भाव कर्मो का नाश कर मोक्ष गये ।।१६५।। जव चतुर्थ काल के तीन वर्ष साढे आठ मास अवशेष थे तब वीर प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया था ।।१६६।। चौवीस जिनेन्द्रो के सम्पूर्ण अन्तर कालो को एकत्रित करके उसमे पचम और छठवे काल के ४२००० वर्ष और मिला देने पर एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण हो जाता है ।।१६७–१६८।।

विशेषः—पूर्व पूर्व तीर्थंकर के अन्तर मे उत्तर–उत्तर तीर्थंकर की आयु सयुक्त रहती है अत सम्पूर्ण अन्तराल काल मे ४२००० वर्ष जोड देने से एक कोटाकोटि सागरोपम हो जाता है।

इदानी पृथक् पृथग्बालावबोधाय जिनान्तराण्युच्यन्ते :—

वृषभे निर्वाणं गते सति जिनान्तर सागरोपमाना सार्धाष्टमासत्रिवर्षाधिक पचाशल्लक्षकोटयः। अजिते च त्रिंशल्लक्षकोटय । सम्भवे दशलक्ष कोटय. । अभिनदने नवलक्षकोटयः। सुमतौ नवतिसहस्रकोटय पद्मप्रभे नवसहस्रकोटयः। सुपार्श्वे नवशतकोटयः। चन्द्रप्रभे नवतिकोटय । पुष्पदन्ते नवकोटयः। शीतले षट्षष्टिलक्षषड्विंशतिसहस्रवर्षहीन नवनवति सहस्र नवशतकोटयः। श्रेयसि जिनान्तर सागराणा चतुःपचाशत्। वासुपूज्ये त्रिशत्। विमले नव। अनन्ते चत्वार। धर्मे पादोनपल्यहीनत्रिसागरा। शान्तौ

पल्यार्धम् । कुन्थौ सहस्रकोटि वर्षोनपल्य पादं । अरे सहस्रकोटि वर्षाणि । मल्लिनाथे चतुःपञ्चाशल्लक्ष-वर्षाणि । मुनिसुव्रते षड्लक्षवर्षाणि । नमिनाथे पञ्चलक्षवर्षाणि । नेमिनाथे सार्धसप्तशताधिकत्र्य-शीतिसहस्रवर्षाणि । पार्श्वे निर्वाणं गते श्री वर्धमाने उत्पन्ने सति तयोः पार्श्ववर्धमानयोर्मध्ये जिनांतरं सार्धाष्टमासाग्रत्रिवर्षहीनसार्धद्विशतवर्षाणि । यदा वीरनाथो मोक्ष गतः तदा चतुर्थकालः सार्धाष्टमास त्रिवर्षप्रमोऽवशिष्टोऽभूत् । पञ्चमषष्ठसमानकालयोर्द्वयोः संख्या द्विचत्वारिंशत्सहस्रवर्षाणि । एवं सर्वे जिनान्तरकालाः एकत्रीकृताः कोटीकोटिसागरोपमा भवन्ति ।

अर्थः—वृषभनाथ भगवान् के मोक्ष चले जाने पर ५० करोड लाख सागर ३ वर्ष ८½ माह व्यतीत हो जाने पर अजितनाथ भगवान् मुक्ति गये । अजितनाथ के मोक्ष जाने के बाद तीस लाख करोड सागर का, सम्भवनाथ भगवान् के बाद दश लाख करोड सागर का, अभिनन्दन नाथ के जाने पर ९ लाख करोड सागर का, सुमतिनाथ के बाद ९० हजार करोड़ सागर का, पद्मप्रभु के बाद नौ हजार करोड का, सुपार्श्वसागर के वाद ९ सौ करोड सागर का, चन्द्रप्रभु के बाद ९० करोड सागर का, पुष्पदन्त के मोक्ष जाने के बाद ९ करोड़ सागर का, शीतलनाथ के मोक्ष जाने के बाद (एक करोड़ सागर) १००००००००—६६२६१००=३३७३९०० सागर का, श्रेयांसनाथ भगवान के मोक्ष जाने के वाद ५४ सागर का, वासुपूज्य भगवान् के ३० सागर का, विमलनाथ के ९ सागर का, अनन्तनाथ के चार सागर का, धर्मनाथ के मोक्ष जाने के बाद ¾ पल्य कम तीन सागर–अर्थात् ३ सागर–¾ पल्य= २ सागर और ९९९९९९९९९९९९९९¼ पल्य का, शान्तिनाथ के मोक्ष गमन के बाद अर्ध पल्य का, कुन्थु-नाथ के बाद हजार करोड वर्ष कम ¼ पल्य (¼ पल्य—१००० करोड वर्ष) का, अरनाथ के एक हजार करोड़ वर्ष का, मल्लिनाथ के ५४००० वर्ष का, मुनिसुव्रतनाथ के ६००००० वर्षो का, नमिनाथ के ५००००० वर्षो का, नेमिनाथ के ८३७५० वर्षो का और पार्श्वनाथ भगवान् के मोक्ष जाने के बाद तीन वर्ष साढे आठ मास कम २५० वर्ष अर्थात् (२५०–३ वर्ष ८½ मास) =२४६ वर्ष, ३ मास और एक मास बाद वीर प्रभु मोक्ष गये अत यह पार्श्वजिनेन्द्र और वीरजिनेन्द्र इन दोनों के मध्य का अन्तर है । जब वर्धमान स्वामी मोक्ष गये तब चतुर्थकाल के तीन वर्ष ८½ मास अवशेष थे पञ्चम और षष्ठ ये दोनो काल इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के है, इन दोनों का एकत्रित काल ४२००० वर्ष प्रमाण है जिनेन्द्रों के सर्व अन्तर कालों को एकत्रित करके उसमें दोनों कालों के ४२००० वर्ष जोड देने पर एक कोटाकोटि सागरोपम का प्रमाण हो जाता है ॥

अब जिनधर्म का उच्छेदकाल दर्शाते हैं :—

पुष्पदन्तस्य कालान्ते धर्मव्युच्छित्तिरंजसा ।
पल्यस्यासीच्चतुर्थांशः पल्यार्धं शीतलस्य च ॥१६९॥

श्रेयसः प्रोक्त तीर्थान्ते पादोनपल्यमेव च ।
वासुपूज्यस्य पल्यैकं धर्मनाशो द्विधाभवत् ।।१७०।।
पादोनपल्यमिव श्रीविमलस्य जिनान्तरे ।
धर्मनाशोऽप्यनन्तस्य पल्यार्ध कालदोषतः ।।१७१।।
धर्मनाथजिनेन्द्रस्य भागे जिनान्तरान्तिमे ।
पल्यपादोऽभवद् वक्तृश्रोतृयत्पाद्यऽभावतः ।।१७२।।

अर्थ —पुष्पदन्त•भगवान् के काल के अन्त मे ¼ पल्य तक धर्म का व्युच्छेद रहा। शीतलनाथ के अन्तराल मे अर्धपल्य, श्रेयासनाथ के तीर्थकाल के अन्त मे ¾ पल्य और वासुपूज्य भगवान् के तीर्थ-काल के अन्त मे एक पल्य पर्यन्त मुनि और श्रावक इन दोनो प्रकार के धर्म का अभाव रहा। विमल जिनेन्द्र के अन्तर काल के अन्त मे ¾ पल्य तक तथा कालदोष से अनन्तनाथ के तीर्थ मे अर्धपल्य पर्यन्त धर्म का नाश रहा और धर्मनाथ जिनेन्द्र के अन्तर काल के अन्तिम भाग मे ¼ पल्य पर्यन्त वक्ता और श्रोता दोनो का सर्वथा अभाव रहा। अर्थात् सुविधिनाथ और शीतलनाथ के अन्तराल मे ¼ पल्य तक, शीतलनाथ और श्रेयासनाथ के अन्तराल मे ½ पल्य तक, श्रेयास एवं वासुपूज्य के अन्तराल मे ¾ पल्य तक, वासुपूज्य और विमलनाथ के अन्तराल मे एक पल्य तक, विमल एव अनन्त नाथ के अन्तराल मे ¾ पल्य तक, अनन्तनाथ एव धर्मनाथ के अन्तराल मे ½ और धर्मनाथ एवा शाति-नाथ के अन्तराल मे ¼ पल्य तक जैनधर्म का अत्यन्त विच्छेद रहा। अर्थात् चतुर्थकाल मे ४ पल्य तक जैन धर्म के अनुयायियो का सर्वथा अभाव रहा ।।१६९–१७२।।

अब हुण्डावसर्पिणी काल की विशेषताओं को दर्शाते है :—

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यसंख्यातेषु गतेष्वपि ।
हुण्डावसर्पिणीकाल इहायाति न चान्यथा ।।१७३।।
तस्यां हुण्डावसर्पिण्यां पंचपाखण्डदर्शनम् ।
शलाकापुरुषा ऊनाः सङ्घभेदा अनेकशः ।।१७४।।
जिनशासनमध्ये स्युर्विपरीता मतान्तराः ।
चीवराद्यावृता निन्द्याः सग्रन्थाः सन्ति लिङ्गिनः ।।१७५।।
उपसर्गा जिनेन्द्राणां मानभङ्गाश्च चक्रिणाम् ।
कुदेवमठमूर्त्याद्याः कुशास्त्राणि दुरागमाः ।।१७६।।
दुर्मार्गा गुरवः काम-लालसा दुर्दशोजनाः ।
इत्याद्या अपरेऽनिष्टा जायन्ते बहवोऽशुभाः ।।१७७।।

अर्थ—असख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के व्यतीत हो जाने पर इह अर्थात् भरतैरावत क्षेत्रों में एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, इसके पूर्व नही आता ॥ १७३ ॥ इस हुण्डावसर्पिणी काल मे पॉच प्रकार के पाखण्डो के दर्शन होते है। शलाका पुरुष कम अर्थात् ६३ न होकर ५८ होते हैं। जिनशासन के मध्य भी मूलसघ, काष्ठासघ आदि अनेक भेद हो जाते है। जैनधर्म से अत्यन्त विपरीत प्रवृत्ति वाले अनेक मतान्तरों का जन्म हो जाता है। वस्त्र आदि से युक्त तथा परिग्रह से युक्त अनेक निन्दनीय लिग को धारण करने वाले साधु बहुत होते है। तीर्थंकरो पर उपसर्ग और चक्रवर्ती का मानभङ्ग होता है। खोटे देवों के मठ तथा उनकी मूर्तियाँ, खोटे शास्त्र, खोटा आगम, खोटे मार्ग पर चलने वाले गुरु और काम आदि लालसा से युक्त तथा अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त मनुष्य बहुत होते है। इस प्रकार और भी अनेक प्रकार के अनिष्ट और अशुभ कार्य आदि इस काल मे स्वयमेव उत्पन्न होते है॥१७४–१७७॥

अब बारह चक्रवर्तियों के नाम, उत्सेध एवं उनकी आयु का कथन करते है :—

प्रथमो भरतश्चक्री सगरो मघवाह्वयः ।
सनत्कुमारचक्रेशः शान्तिकुन्थ्वरचक्रिणः ॥१७८॥

सुभौमश्च महापद्मो हरिषेणो जयोऽन्तिमः ।
ब्रह्मदत्तोद्विषट् ह्येते हेमाभाः सन्ति चक्रिणः ॥१७९॥

भरतस्य समुत्सेधो धनुः पंचशतप्रमः ।
आयुश्चतुरशीतिश्च पूर्वलक्षाण्यखण्डितम् ॥१८०॥

उन्नतिः सगरेशस्य सार्धशतचतुष्टयम् ।
चापानां पूर्वलक्षाण्यायुर्द्विसप्ततिरेव च ॥१८१॥

उच्छ्रितिर्मघवाख्यस्य धनुः सार्धद्विसंयुता ।
चत्वारिंशत्प्रमायुश्च पंचलक्षाब्द सम्मितम् ॥१८२॥

कायोत्तुङ्गश्च सार्धैक चत्वारिंशद्धनुः प्रमः ।
आयुर्वर्षत्रिलक्षाणि सनत्कुमारचक्रिणः ॥१८३॥

शान्तेर्देहोन्नतिश्चत्वारिंशच्चापानि निश्चितम् ।
आयुर्वत्सरलक्षैकं जिनकामपदेशिनः ॥१८४॥

कुन्थोः शरीरतुङ्गोऽस्ति पंचत्रिंशद्धनुः प्रमः ।
आयुर्वर्षसहस्राणि पंचाग्रनवतिः परम् ॥१८५॥

अरस्य वपुरुत्सेधो भवेत् त्रिंशद्धनुः प्रमः ।
आयुश्चतुरशीतिश्चाब्दसहस्राण्यखण्डितम् ।।१८६।।

सुभौमस्योच्छ्रितिश्चापान्यष्टाविंशतिरेव च ।
आयुः षष्टिसहस्राणि वर्षाणां खण्डवर्जितम् ।।१८७।।

महापद्मस्य चोत्सेधो द्वाविंशतिधनुः प्रमः ।
आयुस्त्रिंशत्सहस्राणि वत्सराणां परं ततः ।।१८८।।

प्रोन्नतिर्हरिषेणस्य चापविंशतिसम्मिता ।
आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां चक्रवर्तिनः ।।१८९।।

जयस्य वपुरुत्तुङ्गो धनुः पञ्चदशप्रमः ।
आयुः सम्वत्सराणां च त्रिसहस्राणि चक्रिणः ।।१९०।।

उत्सेधो ब्रह्मदत्तस्य चापसप्तप्रमाणकः ।
आयुः सप्तशतान्येव वर्षाणां रत्नभोगिनः ।।१९१।।

अर्थः—चतुर्थकाल मे (१) भरत, (२) सगर, (३) मघवान्, (४) सनत्कुमार, (५) शातिजिन, (६) कुन्थुजिन, (७) अरजिन, (८) सुभौम, (९) महापद्म, (१०) हरिषेण, (११) जय और अन्तिम (१२) ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती हुए है। इन सर्व चक्रवर्तियो के शरीर की आभा स्वर्ण वर्ण के सदृश थी ।।१७८-१७९।। भरत चक्रवर्ती के शरीर का उत्सेध ५०० धनुष और आयु ८४०००० पूर्व की थी ।।१८०।। सगर चक्रवर्ती का उत्सेध ४५० धनुष और आयु ७२००००० पूर्व की थी ।।१८१।। मघवा का उत्सेध ४२½ धनुष और आयु ५००००० वर्ष की थी ।। १८२ ।। सनत्कुमार चक्रवर्ती का उत्सेध ४१½ धनुष और आयु ३००००० वर्ष की थी।। १८३ ।। शान्तिनाथ का उत्सेध ४० धनुष और आयु १००००० वर्ष की थी, ये चक्रवर्ती, तीर्थंकर और कामदेव इन तीन पदो के धारी थे।।१८४।। कुन्थुनाथ का उत्सेध ३५ धनुष और आयु ९५००० वर्ष प्रमाण थी (आप भी तीन पद धारी थे) ।।१८५।। अरनाथ का उत्सेध ३० धनुष और आयु ८४००० वर्ष की थी ।।१८६।। सुभौम चक्रवर्ती का उत्सेध २८ धनुष और आयु ६०००० वर्ष प्रमाण थी ।।१८७।। महापद्म का उत्सेध २२ धनुष और आयु ३०००० वर्ष की थी ।। १८८ ।। हरिषेण का उत्सेध २० धनुष और आयु १०००० वर्ष की थी ।।१८९।। जय चक्रवर्ती का उत्सेध १५ धनुष और आयु ३००० वर्ष प्रमाण थी ।।१९०।। अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का उत्सेध ७ धनुष प्रमाण और आयु ७०० वर्ष प्रमाण थी, ये सभी चौदह रत्नो के भोक्ता हुये है ।।१९१।।

अब पाँच श्लोकों द्वारा चक्रवर्तियों के वर्तना काल का कथन करते है :—

काले प्रवर्तमानेऽभूद् भरतो वृषभस्य च ।
सगरोऽजितनाथस्य वर्तमानस्य सम्प्रति ॥१६२॥
सञ्जातौ मघवाभिख्यसनत्कुमारचक्रिणौ ।
जिनान्तरेऽत्र धर्मस्य चक्रिणः स्युर्जिनास्त्रयः ॥१६३॥
सुभौमचक्रभृज्जातोऽत्रारनाथजिनान्तरे ।
महापद्मसमुत्पन्नो मल्लिनाथजिनान्तरे ॥१६४॥
चक्रेशो हरिषेणो मुनिसुव्रतजिनान्तरे ।
अभूच्चक्री जयाख्यश्च नमिनाथजिनान्तरे ॥१६५॥
ब्रह्मदत्ताह्वयो जातो नेमीशस्य जिनान्तरे ।
इति चक्राधिपा जाता जिनकाले जिनान्तरे ॥१६६॥

अर्थ :—वृषभनाय तोर्थकर के काल मे भरत चक्रवर्ती और अजितनाथ के काल में सगर चक्रवर्ती हुए थे ॥१६२॥ मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती धर्मनाथ और शान्तिनाथ के अन्तराल मे, शान्ति, कुन्थु और अर नाथ ये तोन चक्रबर्ती स्वय जिन थे ॥ १६३ ॥ सुभौमचक्री, अरनाथ और मल्लिनाथ के अन्तराल मे, महापद्म चक्रवर्ती मल्लिनाथ और मुनिसुव्रत के अन्तराल में, हरिषेण चक्रवर्ती मुनिसुव्रत और नमिनाथ के अन्तराल मे उत्पन्न हुए थे। जय चक्री नमि और नेमिनाथ के अन्तराल मे तथा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के अन्तराल मे उत्पन्न हुए थे, इस प्रकार वारह चक्रवर्तियों मे से कोई तो जिनेन्द्र के काल में और कोई अन्तराल मे उत्पन्न हुए थे ॥१६४-१६६॥

अब चक्रवर्तियों को गति विशेष कहते है :—

सुभौमब्रह्मदत्ताख्यौ बह्वारम्भपरिग्रहैः ।
जात पार्पविना धर्मं सप्तमं नरकं गतौ ॥१६७॥
चक्रेशौ मघवाभिख्यसनत्कुमारसंज्ञकौ ।
सनत्कुमारकल्पं च जग्मतुर्व्रतपुण्यतः ॥१६८॥
शेषाष्टचक्रिणो हत्वा तपो ध्यानासिना वलात् ।
कृत्स्नकर्मरिपून् जग्मुर्मोक्षं रत्नत्रयाङ्किताः ॥१६९॥

अर्थ.—सुभौम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह से उपार्जित पाप के कारण धर्म भावना से रहित होते हुए सप्तम नरक में गये है ॥१६७॥ मघवा और सनत्कुमार नाम

के दो चक्रवर्ती व्रत और धर्म (पुण्य) के प्रभाव से सनत्कुमार स्वर्ग में गये है ॥१९८॥ रत्नत्रय से अलंकृत शेष आठ चक्रवर्ती तप एवं ध्यान रूपी तलवार के बल से सम्पूर्ण कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करके मोक्षपद को प्राप्त हुए है ॥१९९॥

अब नव बलदेवों के नाम, उनका उत्सेध और आयु का कथन करते है :—

विजयोऽथाचलो धर्मः सुप्रभाख्यः सुदर्शनः ।
नन्दी च नन्दिमित्रोऽत्र रामः पद्म इमे बलाः ॥२००॥
उत्सेधो विजयेशस्य चापाशीतिप्रमः स्मृतः ।
सप्ताग्राशीतिलक्षाणि वर्षाणामायुरञ्जसा ॥२०१॥
कायोत्सेधोऽचलस्यास्ति धनुः सप्ततिमानकः ।
सप्तसप्ततिलक्षाण्यब्दानामायुरखण्डितम् ॥२०२॥
धर्मस्य वपुरुत्तुङ्गः षष्टिचापप्रमाणकः ।
सप्ताग्रषष्टिलक्षाणि वर्षाणि चायुरुत्तमम् ॥२०३॥
त्तुङ्गत्वं सुप्रभाख्यस्य पञ्चाशद्दण्डसम्मितम् ।
आयुरखण्डितं सप्तत्रिंशल्लक्षाब्दमानकम् ॥२०४॥
सुदर्शनस्य देहः पञ्चचत्वारिंशदुन्नतः ।
चापानि जीवितं सप्तदशलक्षाब्दगोचरम् ॥२०५॥
उन्नतिर्नन्दिनश्चैकोनत्रिंशद्दण्डसम्मिता ।
सप्तषष्टिसहस्राण्यायुर्वर्षाणामखण्डितम् ॥२०६॥
उच्छ्रायोर्नन्दिमित्रस्य द्वाविंशतिधनुः समः ।
त्रिंशत्सहस्रवर्षाणि ह्यायुर्बलपदेशिनः ॥२०७॥
रामस्याङ्गसमुत्सेधः चापषोडशसंख्यकः ।
सप्ताग्रदशसंख्यान्यऽब्दसहस्राणि जीवितम् ॥२०८॥
अङ्गोन्नतिश्च पद्मस्य दशदण्डप्रमा मता ।
आयुर्वर्षाणि च द्वादशशतप्रमितान्यपि ॥२०९॥

अर्थः—विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये बलदेव है। ॥२००॥ विजय बलदेव का उत्सेध ८० धनुष और आयु ८७ लाख वर्ष की थी ॥२०१॥ अचल का उत्सेध ७० धनुष और आयु ७७ लाख वर्ष, धर्म का उत्सेध ६० धनुष और आयु ६७ लाख वर्ष, सुप्रभ का उत्सेध ५० धनुष और आयु ३७ लाख वर्ष, सुदर्शन का उत्सेध ४५ धनुष और आयु १० लाख वर्ष,

नन्दी बलदेव का उत्सेध २६ धनुष और आयु ६७ हजार वर्ष, नन्दिमित्र का उत्सेध २२ धनुष और आयु ३७ हजार वर्ण, राम बलदेव का उत्सेध, १६ धनुष और आयु १७ हजार वर्ष तथा नवमें बलभद्र पद्म का उत्सेध १० धनुष और आयु १२०० वर्ष प्रमाण थी ॥२०२-२०६॥

अब बलभद्रों के रत्न, अन्य सम्पदा, शरीर का वर्ण और प्राप्त होने वाली गति का दिग्दर्शन कराते हैं :—

गदा सद् रत्नमाला च मुशलं हलमूर्जितम् ।
सुररक्षाणि चत्वारीमानि रत्नानि सन्ति वै ॥२१०॥
सर्वेषां बलभद्राणां दिव्यरूपाः स्त्रियोऽखिलाः ।
सहस्राष्टप्रमा अन्याः सम्पदः स्युश्च्युतोपमाः ॥२११॥
कुन्देन्दुवर्णा दिव्याङ्गा धर्मशीलाः शुभाशयाः ।
बलेशाः सकला ज्ञेया निसर्गेणोर्ध्वगामिनः ॥२१२॥
हलिनोऽष्टौ विजयाद्यास्तपोध्यानायुधैर्बलात् ।
निहत्य कृत्स्नकर्माणि ययुर्मुक्ति सुखावनिम् ॥२१३॥
पद्मोऽन्तिमो गतो ब्रह्मस्वर्गसोऽप्यमरस्ततः ।
कृष्णं तीर्थेशमभ्येत्य मोक्षं यास्यति दीक्षया ॥२१४॥

अर्थः—सर्व बलभद्रों के, देवों द्वारा रक्षित गदा, रत्नमाला, मूसल और उत्कृष्ट हल ये चार रत्न, दिव्य रूप को धारण करने वाली आठ-आठ हजार रानियाँ तथा उपमा रहित और भी अन्य बहुत सम्पत्तियाँ होती है ॥२१०-२११॥ सभी बलदेवों के दिव्य शरीर की आभा कुन्द पुष्प एवं चंद्रमा सदृश होती है। धर्म स्वभावी, शुभ चित्त वाले सभी बलदेवों की स्वभावत ऊर्ध्वगति ही होती है। ॥२१२॥ विजयादि आठ बलभद्र तप एव ध्यान रूपी शस्त्रों के बल से द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नो-कर्मो का नाश कर सुख की भूमि स्वरूप मोक्ष पद को प्राप्त हुए, अन्तिम बलभद्र पद्म ब्रह्मस्वर्ग में देव हुए है। कृष्ण नारायण का जीव जब तीर्थकर होगा तब ये भी दीक्षा धारण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥२१३-२१४॥

अब बलभद्रों का वर्तना काल दर्शाते हैं :—

श्रेयसो वर्तमानेऽत्र कालेऽभूद्विजयो बलः ।
वासुपूज्य जिनेशस्या चलः काले प्रवर्तिनि ॥२१५॥
बभूव वर्तमानस्य विमलस्य जिनेशिनः ।
काले धर्मोऽप्यनन्तस्य वर्तमाने च सुप्रभः ॥२१६॥

धर्मस्य वर्तमानेऽभूत्काले सुदर्शनो बलः ।
जिनान्तरेऽरनाथस्य जातो नन्दी नरेश्वरः ॥२१७॥
नन्दिमित्रो बभूव श्रीमल्लिनाथजिनान्तरे ।
मुनिसुव्रतनाथस्य जातो रामो जिनान्तरे ॥२१८॥
नेमिनाथस्य कालेऽभूत्पद्मः प्रवर्तमानकः ।
इत्यत्रोत्पत्तिकालाः स्युर्बलभद्रादिभूभृताम् ॥२१९॥

अर्थ—विजय नामक प्रथम बलदेव श्रेयासनाथ स्वामी के विद्यमान काल मे, अचल बलभद्र वासुपूज्य स्वामी के काल मे, धर्म बलभद्र विमलनाथ स्वामी के काल मे, सुप्रभ अनन्तनाथ स्वामी के काल मे और सुदर्शन बलदेव धर्मनाथ स्वामी के विद्यमान काल मे उत्पन्न हुए थे। नन्दी बलदेव अरहनाथ स्वामी के अन्तरकाल मे, नन्दिमित्र मल्लिनाथ स्वामी के अन्तर काल मे और राम मुनिसुव्रत नाथ के अन्तर काल मे उत्पन्न हुए थे, तथा अन्तिम बलभद्र पद्म, नेमिनाथ स्वामी के विद्यमान काल मे उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार यहाँ बलभद्र आदि राजाओ के उत्पत्ति काल हैं ॥२१५-२१९॥

अब नौ नारायणों के नाम, स्वभाव, शरीर का वर्ण और उत्सेध का कथन करते है :—

त्रिपृष्टाख्यो द्विपृष्टोऽथ स्वयम्भूः पुरुषोत्तम ।
ततः पुरुषसिंहश्च पुण्डरीकस्त्रिखण्डभाक् ॥२२०॥
दत्ताख्यो लक्ष्मणः कृष्णो वासुदेवा इमे नव ।
रौद्राशयाः प्रकृत्या स्युस्त्रिखण्डभरताधिपाः ॥२२१॥
व्रतशीलतपोहीनाः पञ्चाक्षसुखलोलुपाः ।
उल्लसत्कृष्णवर्णाङ्गा-बलाङ्गोच्चसमोन्नताः ॥२२२॥

अर्थ—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ (पुरुष) पुण्डरीक, ७ (पुरुष) दत्त, ८ लक्ष्मण और ९ कृष्ण ये नव वासुदेव स्वभावत रौद्र परिणामी, व्रत, शील एव तप से हीन, पचेन्द्रिय सुखो के लोलुपी तथा भरत क्षेत्र मे आर्य खण्ड आदि तीन खण्डो के अधिपति हुए है। इन सभी के शरीरो का वर्ण कृष्ण एव उत्सेध बलदेवो के सदृश अर्थात् क्रमशः ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, २९, २२, १६ और १० धनुष प्रमाण था ॥२२०-२२२॥

अब सर्व नारायणों की आयु का कथन करते है :—

लक्षाश्चतुरशीतिश्च वर्षाणामायुरञ्जसा ।
त्रिपृष्टस्य द्विपृष्टस्यायुर्लक्षाणि द्विसप्ततिः ॥२२३॥

स्वयंभूभूभृतोऽब्दानां षष्टिलक्षाणि जीवितम् ।
स्यात्पुरुषोत्तमस्यायुः त्रिंशलक्षाब्दसम्मितम् ।।२२४।।
आयुः पुरुषसिंहस्य दशलक्षाब्दगोचरम् ।
पञ्चषष्टिसहस्राब्दाः पुण्डरीकस्य जीवितम् ।।२२५।।
दत्तस्यायुः परं द्वात्रिंशत्सहस्राब्दमानकम् ।
वर्षाणां लक्ष्मणस्यायुः सहस्रद्वादशप्रमम् ।।२२६।।
कृष्णस्य वासुदेवस्य सहस्रवर्षजीवितम् ।
इत्यत्र वासुदेवानां सन्त्यायूंषि क्रमात् तथा ।।२२७।।

अर्थ —प्रथम नारायण त्रिपृष्ट की आयु ८४ लाख वर्ष की, द्विपृष्ट की ७२ लाख वर्ष की, स्वयम्भू की ६० लाख वर्ष की, पुरुषोत्तम की ३० लाख वर्ष की, पुरुषसिंह की १० लाख वर्ष की, पुण्डरीक की ६५००० वर्ष की, दत्त नारायण की ३२००० वर्ष की, लक्ष्मण की १२००० वर्ष की और अन्तिम वासुदेव कृष्ण की आयु १००० वर्ष प्रमाण थी। इस प्रकार वासुदेवों की यह आयु क्रम से होती है।।२२३-२२७।।

अब नारायणों के सात रत्नों का एवं अन्य विभूति का वर्णन करते है :—

धनुः शङ्खो गदा चक्रं दण्डोऽसिः शक्तिरेव च ।
इमानि सप्तरत्नानि रक्षितानि सुरव्रजैः ।।२२८।।
दिव्यरूपाः सुदेव्यः स्युः सहस्रषोडशप्रमाः ।
नृपा मुकुटबद्धाश्च सहस्र द्वयष्टसम्मिताः ।।२२९।।
अमीषां वासुदेवानां सर्वेषां भूतयोऽपराः ।
गजादिगोचरा बह्व्यो विज्ञेया आगमे बुधैः ।।२३०।।

अर्थः—प्रत्येक नारायण के पास देव समूह के द्वारा रक्षित धनुष, शंख, गदा, चक्र, दण्ड, असि, और शक्ति ये सात रत्न एव दिव्य रूप को धारण करने वाली सोलह हजार श्रेष्ठ रानियाँ होती हैं, तथा मुकुटबद्ध सोलह हजार राजा इनकी सेवा करते है। इन सभी वासुदेवो के अन्य बहुत जन-समुदाय एव हाथी घोडे आदि होते है, जो विद्वानों के द्वारा आगम से जानने योग्य है।।२२७-२३०।।

अब नारायणों की गति विशेष का वर्णन करते हैं :—

त्रिपृष्टोऽपि महापापैः सप्तमीभूमिमाश्रितः ।
द्विपृष्टाख्यः स्वयंभूश्च पुरुषोत्तमसंज्ञकः ।।२३१।।

ततः पुरुषसिंहाख्यः पुण्डरीक इमेऽशुभात् ।
पंचार्धचक्रिणो जग्मुः षष्ठीपृथ्वीं व्रतातिगाः ।।२३२।।
दत्तोऽगात् पंचमी चान्ते चतुर्थी लक्ष्मणः क्षितिम् ।
तृतीयां पृथिवी कृष्णः स्वकर्मवशगो विधिः ।।२३३।।

अर्थः—महत्पाप के भार से प्रथम नारायण त्रिपृष्ठ सप्तम नरक, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह और पुण्डरीक ये पाँच नारायण अर्थात् अर्धचक्रवर्ती अशुभ योग एवं व्रतरहित होने से छठे नरक, दत्तनारायण पाँचवें नरक, लक्ष्मण चौथे नरक और कृष्ण नारायण अपने स्वकर्म के वशीभूत होते हुए तीसरे नरक गये हैं ।।२३१-२३३।।

अब प्रतिवासुदेवों के नाम, उत्सेध, वर्ण एवं स्वभाव आदि का कथन करते हैं:-

अश्वग्रीवस्त्रिखण्डेशस्तारको मेरकाह्वयः ।
निशुम्भः कैटभारिस्तु मधुसूदननामकः ।।२३४।।
वलिहन्ता ततो रावणो जरासिन्धसंज्ञकः ।
वासुदेवद्विषोऽमी प्रतिवासुदेवभूभृतः ।।२३५।।
बलेशाङ्गसमोत्तुङ्गाः श्यामकायाः सुरूपिणः ।
रौद्रध्यानाः प्रकृत्या स्यु समदा उद्धताशयाः ।।२३६।।
अश्वग्रीवादयोऽत्राष्टौ तेषां मध्ये वियच्चराः ।
सन्त्यर्ध चक्रिणोऽन्त्यः स्याज्जरासंघो महीचरः ।।२३७।।

अर्थ —अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशुम्भ, कैटभ, मधुसूदन, वलिहन्ता, रावण और जरासिन्ध नाम के ये नौ अर्धचक्री प्रतिवासुदेव हैं । ये प्रतिवासुदेव राजा वासुदेवों के शत्रु होते हैं । इनके शरीर की कान्ति श्याम वर्ण एवं उत्सेध बलदेवों के उत्सेध सदृश होता है । ये स्वभाव से रौद्र परिणामी, गर्व युक्त और उद्धत प्रकृति के होते हैं -२३४-२३६।। इनमें से अश्वग्रीव आदि आठ प्रतिनारायण विद्याधर हैं और अन्तिम अर्धचक्री जरासिन्ध भूमिगोचरी है ।।२३७।।

अब प्रतिवासुदेवों की आयु और गति आदि का कथन करते हैं :--

पञ्चानां वासुदेवानामादिमानां सुजीवितैः ।
सममायूंषि पंचानां तच्छत्रूणां भवन्ति च ।।२३८।।
षष्टस्यैवात्र पंचाशत्सहस्रवर्षजीवितम् ।
सप्तमे वत्सराणां द्वात्रिंशत्सहस्रजीवितम् ।।२३९।।

चतुर्दशसहस्राब्दान्यायुश्च रावणस्य वै ।
जरासिंधनृपस्यायुः सहस्रवत्सरप्रमम् ।।२४०।।

त्रिखण्डस्वामिनोऽप्येते बह्वारम्भधनार्जनैः ।
अतीव विषयासक्त्योपार्ज्य पापं महत्परम् ।।२४१।।

धर्माद्दतेनवैवागुस्ताः पृथ्वीर्दुःखपूरिताः ।
रौद्रध्यानेन मृत्वा या वासुदेवा गता नव ।।२४२।।

वासुदेवप्रक्षिप्तेन स्वचक्रेणाखिला अमी ।
अवश्यं मरणं प्राप्य श्वभ्रं यान्ति न चान्यथा ।।२४३।।

शलाकापुरुषा एते त्रिषष्टिसंख्यकाः परे ।
तुर्यकालेऽत्र जायन्ते नृपदेवखगार्चिताः ।।२४४।।

अर्थः—अश्वग्रीव आदि पाँच प्रतिवासुदेवों की आयु त्रिपष्ठि आदि पाँच वासुदेवों के सदृश ही है। अर्थात् क्रमशः ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष और १० लाख वर्ष प्रमाण है ।।२३८।। छठवे मधुसूदन प्रतिवासुदेव की ५० हजार वर्ष, बलि की ३२००० वर्ष, रावण की १४००० वर्ष और नवमे प्रतिवासुदेव जरासिन्ध को आयु १००० वर्ष प्रमाण थी। ।।२३९-२४०।। ये सब तीन खण्ड के स्वामी बहु आरम्भ परिग्रह एव धनार्जन के द्वारा तथा अत्यन्त विषया शक्ति से अति महान पाप का उपार्जन करके धर्म के विना, रौद्र ध्यान से मरण कर दु ख पूरित जिस जिस नरक पृथ्वी मे नव वासुदेव जाते है, उसी पृथ्वीको ये प्राप्त होते है ।।२४१-२४२।। ये सभी प्रतिवासुदेव अपना चक्र वासुदेव पर छोडते है पश्चात् वासुदेव के द्वारा छोड़े हुए उसी चक्र से ये अवश्यमेव मृत्यु को प्राप्त होकर नरक जाते है। अन्य और किसी गति को प्राप्त नही होते ।।२४३।। यहाँ चतुर्थकाल मे नरेन्द्रो, देवो एव विद्याधरों से पूजित ये त्रैसठ शलाका के पुरुष उत्पन्न होते है ।।२४४।।

अब रुद्रों के नाम, उनका उत्सेध एवं आयु का कथन करते हैं :—

भीमो बलिर्जितारिश्च विश्वानलाह्वयस्ततः ।
सुप्रतिष्ठोऽचलाभिख्यः पुण्डरीकोऽजितन्धरः ।।२४५।।

जितनाभिस्ततः पीठः सात्वकीतनयोऽप्यमी ।
व्रतभ्रष्टात्मजारुद्रा भवन्त्येकादशाशुभाः ।।२४६।।

भीमस्याङ्गसमुत्सेधो धनुः पञ्चशतानि च ।
त्र्यशीतिलक्षपूर्वाण्यायुर्दीक्षापतितात्मनः ।।२४७।।
उच्छ्रितिश्च बलेश्चापसार्धचतुःशतप्रमा ।
एकसप्ततिलक्षाणि पूर्वाणामायुरञ्जसा ।।२४८।।
जितारेर्वपुरुत्सेधो धनुःशतप्रमाणकः ।
आयुर्द्विलक्षपूर्वाणि चारित्रचलितात्मनः ।।२४९।।
विश्वानलस्य देहोच्चो धनुर्नवतिसम्मितः ।
आयुर्लक्षैकपूर्वाणि भ्रष्टरत्नत्रयात्मनः ।।२५०।।
सुप्रतिष्ठस्य कायोच्चश्चापाशीतिप्रमो मतः ।
लक्षाश्चतुरशीतिश्च वर्षाणामायुरुत्तमम् ।।२५१।।
देहोत्सेधोऽचलस्यास्ति दण्डसप्ततिमानकः ।
आयुश्च षष्टिलक्षाणि वत्सराणां चलात्मनः ।।२५२।।
उन्नतिः पुण्डरीकस्य षष्टिचापप्रमा स्मृता ।
पञ्चाशल्लक्षवर्षायुस्त्यक्तदीक्षात्मजात्मनः ।।२५३।।
तुङ्गोऽजितन्धरे कायः पंचाशद्दण्डमानकः ।
आयुर्वर्षाणि चत्वारिंशल्लक्षप्रमितानि च ।।२५४।।
उच्छ्रितिर्जितनाभेश्चाष्टाविंशतिधनुःप्रमा ।
आयुर्विंशतिलक्षाणि वर्षाणां चंचलात्मनः ।।२५५।।
चतुर्विंशतिचापानि पीठस्याङ्गसमुन्नतिः ।
आयुश्च लक्षवर्षाणि व्रतशीलच्युतस्य वै ।।२५६।।
सात्वकीतनयस्याङ्गोत्सेधः सप्तकरप्रमः ।
जीवितं त्यक्तवृत्तस्य वर्षाण्येकोनसप्तति ।।२५७।।

अर्थः—१ भीम, २ बलि, ३ जितारि, ४ विश्वानल, ५ सुप्रतिष्ठ, ६ अचल, ७ पुण्डरीक, ८ अजितन्धर, ९ जितनाभि, १० पीठ और ११ सात्विकीतनय ये ११ रुद्र अशुभचित्तवृत्ति के धारी और चारित्र से भ्रष्ट होने वालो के पुत्र है ।।२४५–२४६।। प्रथम रुद्र भीम का उत्सेध ५०० धनुष और आयु ८३ लाख पूर्व की थी, यह दीक्षा से च्युत होने वाले मुनि आर्यिका की सन्तान है ।।२४७।। बलिरुद्र का उत्सेध ४५० धनुष और आयु ७१ लाख पूर्व की थी ।।२४८।। जितारि का उत्सेध १०० धनुष और आयु दो लाख पूर्व की थी, यह भी चारित्र भ्रष्ट होने वालो का पुत्र है ।।२४९।। विश्वानल के देह की

ऊँचाई ९० धनुष और आयु एक लाख पूर्व की थी। यह भी रत्नत्रय से भ्रष्ट होने वालों का पुत्र है। ॥२५०॥ सुप्रतिष्ठ का उत्सेध ८० धनुष और आयु ८४ लाख वर्ष की थी ॥२५१॥ अचल रुद्र का उत्सेध ७० धनुष और आयु ६० लाख वर्ष की थी, इसके माता पिता भी चारित्र रूपी रत्न को नष्ट करने वाले थे ॥२५२॥ दीक्षा लेकर जो भ्रष्ट हो चुके थे ऐसे मुनि आर्यिका से उत्पन्न होने वाले पुण्डरीक रुद्र का उत्सेध ६० धनुष और आयु ५० लाख वर्ष की थी ॥ २५३ ॥ अजितन्धर रुद्र का उत्सेध ५० धनुष और आयु ४० लाख वर्ष की थी ॥ २५४ ॥ चारित्र से चलायमान हो चुकी थी आत्मा जिनकी ऐसे मुनि आर्यिका से उत्पन्न जितनाभि रुद्र का उत्सेध २८ धनुष और आयु २० लाख वर्ष प्रमाण थी ॥२५५॥ व्रत और शील से च्युत मुनि आर्यिका से उत्पन्न होने वाले पीठ रुद्र का उत्सेध २४ धनुप और आयु एक लाख वर्ष प्रमाण थी ॥२५६॥ अपने जीवनकाल में ही चारित्र को छोड देने वाले मुनि आर्यिका से उत्पन्न हुए सात्विकीतनय रुद्र का उत्सेध सात हाथ प्रमाण और आयु ६९ वर्ष प्रमाण थी ॥२५७॥

अब रुद्रों का वर्तनाकाल कहते है :—

जातौ नाभेयकाले द्वावेतौभीमवली भुवि ।
पुष्पदन्तस्य कालेऽभूज्जितारिः श्रीजिनेशिनः ॥२५८॥

रुद्रो विश्वानलो जातः काले श्रीशीतलस्य च ।
श्रेयसो वर्तमाने काले सुप्रतिष्टसंज्ञकः ॥२५९॥

वासुपूज्यस्य काले प्रवर्तमानेऽचलोऽभवत् ।
काले विमलनाथस्य पुण्डरीको बभूव च ॥२६०॥

काले विहरमाणस्यानन्तस्याश्राजितन्धरः ।
धर्मनाथस्य कालेऽभूज्जितनाभिसमाह्वयः ॥२६१॥

शान्तेः प्रवर्तमानस्य काले पीठाभिधोऽभवत् ।
सात्वकीतनयो जातः काले वीरस्य सम्प्रति ॥२६२॥

अर्थ :—पुष्पदन्त जिनेन्द्र के काल मे जितारि रुद्र, शीतलनाथ के काल में विश्वानल, श्रेयांस नाथ के काल मे सुप्रतिष्ठ नाम के रुद्र हुए है ॥२५८-२५९॥ वासुपूज्य भगवान् के काल में अचल रुद्र, विमलनाथ के काल मे पुण्डरीक, अनन्तनाथ के काल में अजितन्धर, धर्मनाथ के काल मे जितनाभि, शान्तिनाथ के काल मे पीठ रुद्र और वीर प्रभु के काल मे सात्विकी तनय नामक रुद्र उत्पन्न हुए है ॥२६०-२६२॥

अब उन रुद्रों द्वारा प्राप्त नरकों को एवं नरकगति की प्राप्ति के मूल कारणों का वर्णन करते है :—

रुद्रा रौद्राशया एते दीक्षापतितसूनवः ।
विद्यानुवादपाठेन प्राप्तविद्याश्चलात्मकाः ।।२६३।।
विषयासक्तदुर्बु द्धया त्यक्तदृग्ज्ञानसंयमाः ।
दीक्षाभङ्गमहापापैर्ययुः श्वभ्रं यथोचितम् ।।२६४।।
द्वौ भीमबलिसंज्ञौ च नरकं सप्तमं गतौ ।
दीक्षाभङ्गाज्जितारिश्च रुद्रो विश्वानलाख्यकः ।।२६५।।
सुप्रतिष्ठोऽचलः पुण्डरीको रुद्रा इमेऽखिलाः ।
पञ्च श्वभ्रं ययुः षष्ठं रत्नत्रयतपोत्ययात् ।।२६६।।
रुद्रोऽजितन्धराभिख्यो जगाम पञ्चमीं क्षितिम् ।
गतौश्वभ्रं चतुर्थं जितनाभिपीठसञ्ज्ञकौ ।।२६७।।
सात्विकीतनयः प्राप्तस्तृतीयां पृथिवीमहो ।
एते तपस्विनो दृष्टिज्ञानसंयमभूषिता ।।२६८।।
दीक्षाभङ्गजपापौद्यैर्ययुश्चेदृशी गतिम् ।
ततो मन्येऽहमत्रेति दीक्षाभङ्गसमं महत् ।।२६९।।
न भूतं भुवने पापं नास्ति नाग्रे भविष्यति ।
अपमानं च निन्द्यत्वं निर्लज्जत्वं जगत्त्रये ।।२७०।।
मत्वेति धीधनैः सारं वृत्तरत्नं सुदुर्लभम् ।
स्वप्नेऽपि नात्र नेतव्यं मलपार्श्वेऽतिनिर्मलम् ।।२७१।।
अमीषां सर्वरुद्राणां भवैः कतिपयैः स्फुटम् ।
लब्धसम्यक्त्वमाहात्म्यान्निर्वाण भविता व्रतैः ।।२७२।।

अर्थः—रौद्र परिणामी ये सभी रुद्र जैनेन्द्री दीक्षा को नष्ट कर देने वाले मुनि आर्यिकाओ के पुत्र है। ये सभी दैगम्बरी दीक्षा धारण करके विद्यानुवाद नामक दशवे पूर्व को पढ़ते है, उससे इन्हे विद्याओ की प्राप्ति होती है, उससे इनकी आत्मा चलायमान हो जाती है, और विषयों में आसक्त दुर्बुद्धि से अपने ग्रहण किये हुए दर्शन, ज्ञान और सयम को छोड़कर दीक्षाभङ्ग के महान् पाप से यथोचित नरको को प्राप्त करते है।।२६३-२६४।। दीक्षा भङ्ग के पाप से भीम और बलि ये दो रुद्र सप्तम नरक को प्राप्त हुए है। जितारि, विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल और पुण्डरीक ये पाँच रुद्र रत्नत्रय एवं तपके

परित्याग से छठवे नरक को प्राप्त हुए ।।२६५–२६६।। अजितन्धर नाम का रुद्र पाँचवे नरक, जितनाभि और पीठ ये दो रुद्र चौथे नरक तथा सात्विकीतनय तीसरे नरक को प्राप्त हुए है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान एव सयम से विभूषित ये सभी तपस्वी (रुद्र) दीक्षाभङ्ग से उत्पन्न होने वाले पाप के समूह से ही इस प्रकार की दुर्गति को प्राप्त होते है, इसलिए मै ऐसा मानता हूँ कि इस पृथ्वी पर तीन लोक मे दीक्षा भङ्ग बराबर महान् पाप, अपमान, निन्द्यपना एव निर्लज्जता न कभी (अन्य क्रियाओं से) भूतकाल मे थी, और न कभी भविष्यतकाल मे होगी। त्रैलोक्य मे बुद्धिमानों के द्वारा सारभूत अति दुर्लभ रत्न चारित्र ही माना गया है अतः अति निर्मल चारित्र के समीप स्वप्न मे भी मल नहीं लाना चाहिए। अर्थात् ग्रहण किए हुए चारित्र मे स्वप्न में भी दोष नही लगाना चाहिए ।।२६७–२७१।। इन सभी रुद्रों को अनेक भवान्तरो के बाद प्राप्त किये हुए सम्यक्त्व के माहात्म्य से चारित्र होगा और चारित्र के द्वारा इन्हे निर्वाण की प्राप्ति होगी ।।२७२।।

अब नौ नारदों के नाम एवं उनका अन्य वर्णन संक्षिप्त में करते है :—

भीमाह्वयो महाभीमो रुद्रसंज्ञस्तृतीयकः ।
महारुद्राभिधः कालो महाकालश्चतुर्मुखः ।।२७३।।
ततो नरमुखो नाम्नोन्मुखोऽत्र नारदा इमे ।
वासुदेवसमानायुः कायोच्चाः कलहप्रियाः ।।२७४।।
हिंसानन्दपरा नित्यं कदाचिद्धर्मवत्सलाः ।
जाता नवैव काले बलभद्रादित्रिभूभुजाम् ।।२७५।।
ते सर्वे नारदाः हिंसानन्दोत्थपापपाकतः ।
जग्मुः श्वभ्रं यथायोग्यमन्येषां कलियोजनात् ।।२७६।।

अर्थः—१ भीम, २ महाभीम, ३ रुद्र, ४ महारुद्र, ५ काल, ६ महाकाल, ७ चतुर्मुख, ८ नरमुख और ९ उन्मुख (अधोमुख) नाम के ये ९ नारद हैं। इनकी आयु एव शरीर का उत्सेध वासुदेव के सदृश ही होता है। अर्थात् भीम आदि नारदो की आयु यथाक्रम से ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, ६५ हजार वर्ष, ३२ हजार वर्ष, १२००० वर्ष और एक हजार वर्ष की हुई है। इसी प्रकार प्रथमादिक के क्रम से इनका उत्सेध क्रमशः ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, २९, २२, १६ और १० धनुष प्रमाण था ।।२७३–२७४।। ये सभी नारद कलह प्रिय होते है और नित्य ही हिंसानन्द रौद्र ध्यान मे संलग्न रहते है। ये कदाचिद् धर्मवत्सल भी होते है। ये सभी बलभद्र एवं त्रिखण्डी नारायण आदि के समय में ही उत्पन्न होते है ।।२७५।। वे सभी नारद हिसानन्दी रौद्रध्यान से उत्पन्न हुए पाप के फल से तथा अन्य जीवो को युद्ध मे सयुक्त कराते रहने से यथा योग्य (परिणामो के अनुसार) नरकों मे ही जाते है ।।२७६।।

अब पञ्चमकाल का संक्षिप्त वर्णन करते है :—

ततोऽत्र दुषमाकालः कृत्स्नदुःख निबन्धनः ।
एकविंशतिसख्यानसहस्रवर्षसम्मितः ।।२७७।।
अस्यादौ मानवाः सन्ति सप्तहस्तोच्चविग्रहाः ।
रूक्षकायाश्च विंशत्यग्रवत्सरशतायुषः ।।।।२७८।।
दिनमध्ये सकृद्वारमाहरन्त्यशनं जनाः ।
बलसत्वसुबुद्धयाद्यैर्हीनाः केचिच्च संयुता ।।२७९।।

अर्थः—आर्य क्षेत्र मे चतुर्थकाल की समाप्ति के बाद सम्पूर्ण दु खो का निबन्धन करने (बाधने) वाला, २१००० वर्ष प्रमाण से युक्त दुखमा नामका पञ्चम काल प्रारम्भ होता है। इसके प्रारम्भ मे मनुष्यो के शरीर की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण, कान्ति रूक्ष और आयु १२० वर्ष की होती है। उस समय मनुष्य दिन में अनेक बार भोजन करने वाले होते है। उस समय कोई कोई मनुष्य बल, सत्व और उत्तम बुद्धि के धारक होते है, किन्तु अधिकाशतः इनसे रहित ही होते है ।।२७७-२७९।।

अब शक राजा और प्रथम कल्की की उत्पत्ति का काल तथा कल्की का नाम एवं आयु आदि का कथन करते है :—

त्यक्त्वा सम्वत्सरान् पञ्चाधिकषट्शतसम्मितात् ।
पञ्चमासयुतान् मुक्ति वर्धमाने गते सति ।।२८०।।
शकराजोऽभवत् ख्यातस्ततोऽब्देषु गतेष्वपि ।
चतुर्नवतिसंयुक्तत्रिशतप्रमितेषु च ।।२८१।।
सप्तमासाधिकेष्वासीत् कल्कीचतुर्मुखाह्वयः ।
वर्षसप्ततिजीवी सद्धर्मद्वेषोह चादिमः ।।२८२।।

अर्थः—श्री वर्धमान स्वामी के मोक्ष जाने के ६०५ वर्ष ५ मास बाद शक राजा (विक्रमादित्य) हुआ था, और शक राजा के ३९४ वर्ष ७ माह अर्थात् वीर भगवान के मोक्ष जाने के ६०५ वर्ष ५ मास + ३९४ वर्ष ७ माह = १००० वर्ष बाद चतुर्मुख नाम का प्रथम कल्की उत्पन्न हुआ था। इसकी आयु ७० वर्ष प्रमाण थी। यह राजा जैन धर्म का अत्यन्त विद्वेषी था ।।२८०-२८२।।

अब प्रथम कल्की चतुर्मुख के और उसके पुत्र जयध्वज के कार्य कहते है :—

सोऽन्यदाजितभूमि प्रधानाख्यमित्थमादिशत् ।
निर्ग्रन्थामुनयोऽस्माकमवश्याः सन्ति भूतले ।।२८३।।

एतेषां पाणिपात्रे सद्ग्रासं प्रदत्तमादिमम् ।
त्वं गृहाण स्वशुल्कायेत्यादेशं श्वभ्रकारणम् ॥२८४॥
श्रुत्वा स मूढधीर्मन्त्री सर्वं तथाकरोत्तदा ।
तदुपद्रवतोऽत्रासन् व्याकुला मुनयो नृपात् ॥२८५॥
उपसर्गं विदित्वा तं मुनीनामसुराधिपः ।
चतुर्मुखं जघानाशु जिनशासनरक्षकः ॥२८६॥
ततो मृत्वा स पापात्मा कल्की पापविपाकतः ।
विश्वदुःखाकरीभूतं प्रथमं नरकं गतः ॥२८७॥
तदाशु तद्भयात्तस्य सुतो जध्वं जयाह्वयः ।
जिनशासनमाहात्म्यं प्रत्यक्षं वीक्ष्य तत्कृतम् ॥२८८॥
सम्यक्त्वरत्नमादाय काललब्ध्यासुरेशिनम् ।
स्वसैन्यस्वजनाद्यैश्च जगाम शरणं सह ॥२८९॥
अहो ! पुण्याघकर्तृणां शुभाशुभं फलं महत् ।
इहैव दृश्यते साक्षात्का वार्ता परजन्मनि ॥२९०॥

अर्थ :—उस चतुर्मुख कल्की ने अपने योग्य भूमि को जीत कर प्रधानमन्त्री को इस प्रकार आदेश दिया कि इस भूतल पर निर्ग्रन्थ मुनि हमारे वश में नही है अत: उनके पाणिपात्र में दिया हुआ प्रथम ग्रास तुम ग्रहण करो। नरकगति के कारण भूत आदेश को सुन कर उस मूढमति मन्त्री ने सर्व कार्य उसी आदेशानुसार किया, उस समय उस उपद्रव से उस क्षेत्र मे रहने वाले समस्त मुनिजन राजा से बहुत व्याकुल हो गये (इस राजा के द्वारा जैनधर्म नाश हो रहा है इसलिए मुनिजन व्याकुल हुए) ॥२८३–२८५॥ मुनियो के उपसर्ग को जानकर जिनशासन के रक्षक असुरेन्द्र ने शीघ्र ही उस चतुर्मुख राजा को मार डाला ॥२८६॥ वह पापात्मा कल्की मर कर पापोदय से सम्पूर्ण दु:खो के आकर स्वरूप प्रथम नरक गया ॥२८७॥ उसी समय कल्की का पुत्र जयध्वज और स्त्री चेलका असुरेन्द्र के भय से और जैनधर्म कृत जिनशासन के माहात्म्य को प्रत्यक्ष देख कर तथा काललब्धि के प्रभाव से सम्यक्त्व रूपी महारत्न को ग्रहण करता हुआ शीघ्र ही अपनी सेना एवं स्वजन परिजनों के साथ असुरेन्द्र की शरण मे गया ॥२८८–२८९॥ अहो ! पुण्य करने वालो के महान् शुभ फल और पाप करने वालों के महान् अशुभफल साक्षात् यहाँ ही दिखाई दे जाते है अगले जन्म की तो क्या बात ! ॥२९०॥

अब अन्तिम कल्की का स्वरूप और उसके कार्यो आदि का दिग्दर्शन कराते है :—

इति मुक्ति गते वीरे प्रतिवर्षसहस्त्रकम् ।
एकैको जायते कल्की जिनधर्मविराधकः ।।२९१।।
तेषां विंशति संख्येषु गतेष्वत्रान्तिमः खलः ।
जलमन्थननामोन्मार्गस्थः कल्की भविष्यति ।।२९२।।
इन्द्रराजमुनेः शिष्यो यतिर्वीराङ्गदाभिधः ।
अन्तिमश्चार्यिका सर्वश्रीः श्रावकोऽग्निलाख्यकः ।।२९३।।
श्राविका च प्रिया तस्य पञ्चसेनाभिधा तदा ।
कालदोषेण चत्वारोऽमीस्थास्यन्ति सुधर्मिणः ।।२९४।।
स कल्की पापधीः पापात् पूर्ववत् तस्य सन्मुनेः ।
सद्ग्रासहरणाद्यैर्महोपसर्ग करिष्यति ।।२९५।।
चत्वारस्ते तदा तस्मिन्नुपसर्गे शिवाप्तये ।
ग्रहीष्यन्ति सुसंन्यासं त्यक्त्वाहारं चतुर्विधम् ।।२९६।।
ततो दिनत्रयेणैव मुक्त्वा प्राणान् समाधिना ।
दुःषमस्यैव कालस्यावसानस्य स्थितेषु च ।।२९७।।
सार्धष्टमाससंयुक्त–त्रिवर्षोद्धरितेष्वपि ।
पूर्वाह्णे कार्तिके मास्यमावास्यायां शुभोदयात् ।।२९८।।
अन्ते सौधर्मकल्पं ते चत्वारः सुखसागरम् ।
गमिष्यन्ति महाशर्मभोक्तारो धर्मतत्पराः ।।२९९।।
तन्मुनेः सागरैकं च भवितायुरखण्डितम् ।
तत्र शेषत्रयाणां च पल्यमेकं हि साधिकम् ।।३००।।
ततः पञ्चमकालस्य दिनस्य चरमस्य च ।
पूर्वाह्णे द्विविधो धर्मो विनश्यति सुखाकरः ।।३०१।।
राजा मध्याह्नकाले चापराह्णे वह्निरञ्जसा ।
ततोऽतिदुःषमाकालः षष्ठो दुःखैकसागरः ।।३०२।।

अर्थ—इस प्रकार महावीर स्वामी के मोक्ष चले जाने पर प्रत्येक एक एक हजार वर्ष बाद जिनधर्म का विरोधी एक एक कल्की उत्पन्न होता है। बीस कल्की उत्पन्न हो चुकने के बाद उन्मार्गगामी एव दुष्ट स्वभावी जलमन्थन नाम का अन्तिम कल्की होगा ।।२९१–२९२।। उस समय इन्द्रराज

मुनिराज के शिष्य वीराङ्गद नाम के अन्तिम मुनिराज, सर्व श्री आर्यिका, अग्निल नाम का श्रावक और उसकी प्रिया पचसेना नाम की श्राविका काल दोष से ये चार ही धर्मात्मा जीव अवस्थित रहेगे ।।२९३-२९४।। पाप बुद्धि को धारण करने वाला वह जलमन्थन कल्की पापोदय से पूर्व कल्कियो के सदृश वीराङ्गद मुनिराज के पाणिपात्र से प्रथम ग्रास का हरण कर घोर उपसर्ग करेगा। तब उस उपसर्ग के प्राप्त होते ही वे चारो धर्मात्मा जीव चारो प्रकार के आहार का त्याग कर सुख प्राप्ति के लिए उत्तम संन्यास ग्रहण कर लेगे ।।२९५-२९६।। पंचम (दु खमा) काल के अन्त मे तीन वर्ष साढे आठ मास अवशेष रहने पर कार्तिक बदी अमावस्या को प्रातः काल के शुभ उदय में तीन दिनो मे ही वे चारो धर्मात्मा जीव समाधिपूर्वक प्राणों को छोडकर सुख के सागर स्वरूप सौधर्मकल्प में चले जावेगे और वहाँ धर्म में तत्पर रहते हुए महा सुखों को भोगेगे ।।२९७-२९९।। स्वर्ग में वे मुनिराज खण्ड रहित एक सागर की और शेष तीनों जीव कुछ अधिक एक पल्य की आयु प्राप्त करेगे ।।३००।। पचम काल के उसी अन्तिम दिन प्रातः काल सुख की खान स्वरूप मुनि एव श्रावक धर्म का नाश होगा, मध्याह्न काल में राजा का और सन्ध्याकाल मे अग्नि का नाश हो जायगा ।।३०१-३०२।।

अब अतिदुखमाकाल का दिग्दर्शन कराते हैं :—

धर्मशर्मातिगः पञ्चमकालस्थितिसंख्यकः ।
विश्वानिष्टाकरीभूतः पापिसत्त्वकुलालयः ।।३०३।।
अस्यादौ धूम्रवर्णाङ्गा नरा हस्तद्वयोन्नताः ।
शाखामृगोपमानग्ना वर्षविंशतिजीविनः ।।३०४।।
मांसाद्याहरिणोऽनेकवाराशिनो दिनं प्रति ।
बिलादिवासिनो दुष्टा आयाता दुर्गतिद्वयात् ।।३०५।।
मात्रादिकामसेवान्धास्तिर्यग्–नरकगामिनः ।
भविष्यन्ति दुराचाराः पापिनो दुःखभोगिनः ।।३०६।।
तस्मिन् काले शुभातीते मेघास्तुच्छजलप्रदाः ।
स्वादुवृक्षोज्झितापृथ्वी निराश्रया नराः स्त्रियः ।।३०७।।
कालस्यान्ते करैकोच्चदेहा नराः कुरूपिणः ।
उत्कृष्टषोडशाब्दायुष्काः शीतोष्णादिपीडिताः ।।३०८।।
प्रान्ते तस्यैव कालस्य कियद्दिनावशेषतः ।
स्फुटिष्यति मही सर्वा निःशेषं वारिशोक्ष्यति ।।३०९।।

ते तदात्युष्णसंतप्ता भ्रमिष्यन्ति दिशोऽखिलाः ।
मूर्च्छांयास्यन्ति दुःखार्ता यमान्तं चाप्यनेकशः ।।३१०।।
विजयार्धगिरेः सिन्धुगङ्गयोः सरितोस्तदा ।
युग्मानि बहुजीवानां द्विसप्ततिमितान्यपि ।।३११।।
बिलादिषु खगाधीशा नेष्यन्ति कृपया स्वयम् ।

अर्थ —दुखमा नामक पंचम काल की समाप्ति के बाद मात्र एक दुःख के सागर स्वरूप अति-दुखमा नाम के छठवे काल का प्रारम्भ होगा । इसकी स्थिति पंचम काल के सदृश २१००० वर्ष की ही होगी । यह काल धर्म और सुख से रहित समस्त अनिष्टो के खान स्वरूप और पापी जीवो के समुदाय से व्याप्त होगा ।।३०३।। इस काल के प्रारम्भ मे बन्दरो की उपमा को धारण करने वाले मनुष्यो के शरीरो का वर्ण धूम्र के सदृश, ऊँचाई दो हाथ प्रमाण और उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष की होगी, तथा ये सब नग्न ही रहेगे । प्रतिदिन अनेको बार मास आदि का भोजन करेगे, बिलो आदि मे निवास करेगे, दुष्ट प्रकृति के होगे और नरक एवं तिर्यञ्च इन दोनो गतियो से आकर यहाँ उत्पन्न होगे ।।३०४-—३०५।। अत्यन्त दुराचारी, पापी, दुःख भोगने वाले, काम वासना से अन्ध माता आदि से भी व्यभिचार करने वाले तथा मरण कर नरक और तिर्यञ्च इन दोनो गतियो मे जन्म लेने वाले होगे ।।३०६।। इस काल मे मेघ अत्यन्त अशुभ एव अल्प जल देने वाले होगे । पृथ्वी स्वाद एवं सार युक्त वृक्षो से रहित एव पुरुष स्त्री निराश्रय रहेगे ।।३०७।। काल के अन्त मे मनुष्यो की ऊँचाई एक हाथ और आयु सोलह वर्ष प्रमाण होगी । मनुष्य कुत्सित रूप वाले एव शीत उष्ण की बाधाओ से पीडित होगे ।।३०८।। इस अतिदुखमा काल के अन्त मे जब कुछ दिन अवशेष रहेगे, तब यहाँ की पृथ्वी फट कर सम्पूर्ण जल का शोषण कर लेगी, तब वे सभी जीव अति उष्णता से सन्तप्त होते हुए सम्पूर्ण दिशाओ मे परिभ्रमण करेगे, और उनमे से दु ख के कारण अनेक जीव तो मूर्छित हो जाते है और अनेक मरण को प्राप्त हो जाते है ।।३१०।। उस समय कृपावन्त विद्याधर वहत्तर कुलो मे उत्पन्न जीवो के वहत्तर युगलो को विजयार्ध पर्वत की गुफाओ मे, गङ्गा सिन्धु नदियो की वेदियो मे और विलो मे ले जाकर वहाँ रख देते है ।।३११-३१२।।

नोटः—३१२ श्लोक के दो चरणो का अर्थ ऊपर किया गया है, शेष दो चरणो का आगे लिखा जायगा ।

अब दुर्वृष्टियों के नाम, उनका फल और जघन्य आयु आदि का कथन करते है :-

.... ।
सावर्ताऽनिलदुर्वृष्टिः शैत्याम्बुवृष्टिरञ्जसा ।।३१२।।

अतिक्षाराम्बुवृष्टिश्च विषवृष्टिः सुदुःसहा ।
अग्निवृष्टी रजोवृष्टिर्धूमवृष्टिर्भविष्यति ॥३१३॥
सप्तसप्तदिनान्युच्चैर्विश्वाङ्गिक्षयकारिणी ।
तद् वृष्टिभिरधोभागे योजनान्तं महीतलम् ॥३१४॥
भस्मसाद् भविता नूनं जीवानामञ्जसा क्षयः ।
इत्याहुर-वसर्पिण्याः स्वरूपं सकलं जिनाः ॥३१५॥
आदौ द्वितीयकालादीनामुत्कृष्टाश्चये मताः ।
आयुरुत्सेधशर्माद्या आर्याणां भोगशालिनाम् ॥३१६॥
अन्ते प्रथमकालादिषु जघन्यादिषु तेऽखिलाः ।
ज्ञातव्या अवसर्प्पिण्याः षट् कालानामिति स्थितिः ॥३१७॥

अर्थः—छठवे काल के अन्त मे सर्व प्रथम सावर्त नाम की वायु चलेगी, पश्चात् अत्यन्त शीतल जल की, पश्चात् अतिक्षार जल की और इसके बाद अत्यन्त दुस्सह विष की वृष्टि होगी। इसके पश्चात् सात सात दिन पर्यन्त सर्व जीवों का नाश करने वाली अग्नि वृष्टि, धूलि वृष्टि और धूम की वृष्टि होगी। इन दुर्वृष्टियो से पृथ्वी, नीचे एक योजन पर्यन्त भस्म हो जावेगी, और नियम से सर्व जीवों का नाश हो जायगा। इस प्रकार सभी जिनेन्द्रो ने अवसर्पिणी काल का स्वरूप कहा है ॥३१२ (के दो चरण) ३१५॥ द्वितीय आदि कालो के प्रारम्भ में भोगभूमिज मनुष्यों की जो उत्कृष्ट आयु, उत्सेध एवं सुख आदि पूर्व मे कहा गया है, वही सब प्रथम आदि कालो के अन्त मे जघन्य रूप से जानना चाहिए। अर्थात् द्वितीय काल की आदि मे जो उत्कृष्ट आयु आदि कही है, वह प्रथम काल के अन्त की जघन्य है। इस प्रकार अवसर्पिणी काल सम्बन्धी छह कालो की अवस्थिति जानना चाहिए ॥३१६-३१७॥

अब उत्सर्पिणी काल के प्रथम काल का वर्णन करते है :—

ततोऽतिदुःषमाद्याः षट्काला वृद्धियुताः क्रमात् ।
उत्सर्पिण्यो भविष्यन्त्यङ्गोत्सेधायुर्बलादिभिः ॥३१८॥
तस्या अत्रादिमः कालः षष्ठेन सदृशोऽखिलः ।
क्रमवृद्धियुतश्चातिदुःषमाख्यो बलादिकैः ॥३१९॥
तस्यादौ जलसद्वृष्टिः क्षीरवृष्टिर्घनोद्भवा ।
घृतवृष्टिस्ततोऽपीक्षुरसवृष्टिः सुखप्रदा ॥३२०॥
सुधावृष्टिर्जगत्ताप-नाशिनी च भविष्यति ।
सप्तसप्तदिनान्यत्र सुगन्धा शीतला मही ॥३२१॥

तिर्यंचो मानवास्तद्‌गन्धाकृष्टाश्च निजेच्छया ।
नाना युगलरूपेण वर्तिष्यन्ते वृषातिगाः ॥३२२॥
ते सर्वे मृण्मयाहारजीविनो वृद्धिसंयुताः ।
आयुर्धीबलदेहाद्यैर्मताः कालान्तमञ्जसा ॥३२३॥

अर्थ—अवसर्पिणी काल की परिसमाप्ति के अनन्तर ही उत्सर्पिणी सम्बन्धी अति दुखमा आदि छह काल होगे, जिनमे उत्पन्न होने वाले जीव उत्सेध, आयु एव बल आदि के द्वारा क्रम से वृद्धि को प्राप्त होगे ॥३१८॥ अवसर्पिणी के छठवें काल के सदृश उत्सर्पिणी का दुखमादुखमा नाम का प्रथम काल है। अन्तर केवल इतना है कि इस काल मे बल, आयु और विवेक आदि की क्रमश. वृद्धि होती जायगी ॥३१९॥ इस काल के प्रारम्भ मे जगत का सन्ताप नाश करने वाली और सुख प्रदान करने वाली सात सात दिन पर्यन्त उत्तम जल की, दूध की, घी की, इक्षु रस की और अमृत की वर्षा होगी, जिससे पृथ्वी शीतल और सुगन्धित हो जायगी ॥३२०-३२१॥ उस गन्ध से आकृष्ट होकर मनुष्य और तिर्यञ्चो के अनेक युगल अपनी इच्छा से उन गुफाओ आदि से निकल कर वृद्धि को प्राप्त होगे। वे सब जीव उस प्रथम काल के अन्त पर्यन्त धर्म से रहित, मिट्टी मय आहार से जीवन यापन करने वाले तथा आयु, देह के उत्सेध, बल एव बुद्धि आदि से निरन्तर वृद्धिगत होते रहेगे ॥३२२-३२३॥

अब उत्सर्पिणीकाल सम्बन्धी द्वितीय दुखमा काल का वर्णन करते हैं :—

उत्सर्प्पिण्यास्ततोऽप्यस्या द्वितीयो दुःषमाभिधः ।
कालः पञ्चमसादृश्यो भविता क्रमवृद्धिभाक् ॥३२४॥
अन्ते द्वितीयकालस्यावशिष्टेऽब्दसहस्रके ।
सत्येते कुलकर्त्तारो भविष्यन्त्यत्र षोडश ॥३२५॥
आदिम. कनकाभिख्यो द्वितीयः कनकप्रभः ।
ततः कनकराजाख्यः कुलकृत् कनकध्वजः ॥३२६॥
स्वर्णपुङ्गव संज्ञोऽथ नलिनोनलिनप्रभः ।
ततो नलिन राजाख्यः कुलभृन्नलिनध्वजः ॥३२७॥
नलिनीपुङ्गवाभिख्यः पद्मः पद्मप्रभाभिधः ।
पद्मराजाह्वयःपद्मध्वजश्च पद्मपुङ्गवः ॥३२८॥
महापद्म इमे प्रोक्ता भविष्या मनवोऽखिलाः ।
सूचयिष्यन्ति मुग्धानां कृत्याकृत्यादि देहिनाम् ॥३२९॥

अर्थः— अवसर्पिणीकाल के पञ्चम काल सदृश उत्सर्पिणी का दुःखमा नाम का द्वितीयकाल होगा किन्तु इसमें बुद्धि बल आदि की क्रमश. वृद्धि होती जायगी ।।३२४।। उत्सर्पिणी के द्वितीय काल के अन्त में एक हजार वर्ष अवशेष रहने पर निम्नलिखित सोलह कुलकर होंगे । यथा—१ कनक, २ कनकप्रभ, ३ कनकराज, ४ कनकध्वज, ५ कनकपुङ्गव, ६ नलिन, ७ नलिनप्रभ, ८ नलिनराज, ९ नलिनध्वज, १० नलिनपुङ्गव, ११ पद्म, १२ पद्मप्रभ, १३ पद्मराज, १४ पद्मध्वज, १५ पद्मपुङ्गव और महापद्म ये १६ मनु होंगे, जो मुग्ध (भोले) जीवों को कृत्य-अकृत्य आदि कार्यो की शिक्षा देंगे । अर्थात् क्षत्रिय आदि कुलों के अनुरूप आचरण और अग्नि द्वारा पाचन आदि का विधान सिखावेंगे ।।३२५-३२९।।

अब दुःखमासुखमा नामक तृतीयकाल की स्थिति बतलाते हुए इसमें उत्पन्न होने वाले चौबीस तीर्थंकरों का वर्णन करते हैं :—

ततस्तृतीयः कालः स्याद् दुःषमासुषमाह्वयः ।
चतुर्थकालतुल्योऽत्रायास्यति क्रमवृद्धिभाक् ।।३३०।।
तस्मिन् काले क्रमेणैव भविष्यन्ति जिनेश्वराः ।
नष्टधर्मोद्धरा एते चतुर्विंशतिसंख्यकाः ।।३३१।।
पद्माख्यः सुरदेवोऽथ सुपार्श्वो हि स्वयप्रभः ।
सर्वात्माभूतसंज्ञश्च देवपुत्रसमाह्वयः ।।३३२।।
कुलपुत्र उदङ्काख्यः प्रोष्ठिलो जयकीर्तिवाक् ।
मुनिसुव्रतनामातथारनाथो ह्यपापकः ।।३३३।।
नि कषायाभिधानोऽथ विपुलो निर्मलाख्यकः ।
चित्रगुप्तो जिनाधीशः समाधिगुप्तनामकः ।।३३४।।
स्वयंभूरनिवर्तिस्तु जयाख्यो विमलाभिध ।
देवपालाह्वयोऽनन्तवीर्य एते जिनाधिपाः ।।३३५।।
त्रिजगन्नाथवन्द्यार्च्याः स्वर्मुक्तिमार्गदर्शिनः ।
धर्मतीर्थप्रणेतारो ज्ञेया विश्वहितङ्कराः ।।३३६।।
मध्ये यः प्रथमोऽमीषां श्रेणिकः स भविष्यति ।
शुद्धसम्यक्त्व माहात्म्यादादितीर्थप्रवर्तकः ।।३३७।।
षोडशाग्रशताब्दायुः सप्तहस्तोच्चविग्रहः ।
दिव्येन ध्वनिना पुंसां स्वर्गमोक्षाध्वदर्शकः ।।३३८।।

अन्तिम· कोटिपूर्वायुर्भविता तीर्थकारकः ।
शतपञ्चधनुस्तुङ्ग· सन्मार्गदीपको महान् ॥३३९॥
शेषाणां तीर्थकर्तृणां भविष्याणां जिनागमे ।
आयुरुत्सेधकालाद्या ज्ञेयाश्च भूतयेऽखिलाः ॥३४०॥

अर्थ —द्वितोय काल के बाद उत्सर्पिणी का दुःखमासुखमा नाम का तृतीय काल आयगा, जो अवसर्पिणी के चतुर्थकाल सदृश होगा, किन्तु इसमे आयु, बल एव बुद्धि आदि मे क्रमशः वृद्धि होती जायगी ॥३३०॥ इस तृतीय काल मे नष्ट हुए धर्म का उद्धार करने मे तत्पर आगे कहे जाने वाले चौवीस तीर्थंकर क्रमश होगे ॥३३१॥ प्रथम तीर्थंकर (श्रेणिक राजा का जीव) १ पद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयम्प्रभ, ५ सर्वात्मभूत, ६ देवपुत्र, ७ कुलपुत्र, ८ उदङ्क, ९ प्रोष्ठिल, १० जयकीर्ति, ११ मुनिसुव्रत, १२ अरनाथ, १३ अपावक, १४ निष्कषाय, १५ विपुल, १६ (कृष्णनारायण का जीव) निर्मद, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ स्वयम्भू, २० अनिवर्ति, २१ जय, २२ विमल, २३ देवपाल और २४ (सात्यिकी तनुज अन्तिम रुद्र का जीव) अन्तिम तीर्थंकर अनन्तवीर्य होगा। ये चौवीस जिनेन्द्र, देवेन्द्र, धरणेन्द्र एव नरेन्द्रो के द्वारा वन्दित और पूजित है, स्वर्ग एव मोक्ष के मार्ग को दर्शाने वाले है, धर्म तीर्थ के प्रणेता एव विश्व का हित करने वाले है, ऐसा जानना चाहिए ॥३३२–३३६॥ इन चौवीस तीर्थंकरो के मध्य, तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले जो प्रथम तीर्थंकर होगे वे शुद्धसम्यक्त्व के माहात्म्य से श्रेणिक राजा का जीव ही होगा। इनकी आयु ११६ वर्ष प्रमाण और शरीर की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण होगी। ये अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा मनुष्यो को स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग दर्शायेगे ॥३३७–३३८॥ सात्यिकीतनुज अन्तिम रुद्र का जीव अनन्तवीर्य नाम के अन्तिम तीर्थंकर होगे। सन्मार्ग दर्शाने के लिये दीपक सदृश इन महान तीर्थंकर की आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण और शरीर का उत्सेध ५०० धनुष प्रमाण होगा। भविष्य मे होने वाले अवशेष बाईस तीर्थंकरो की आयु, उत्सेध एवं काल आदि का समस्त वर्णन जिनागम से जान लेना चाहिए ॥३३९–३४०॥

अब आगामी द्वादश चक्रवर्तियों के नाम कहते है :—

भरतो दीर्घदन्ताख्यो जयदत्ताभिधानकः ।
गूढदन्ताह्वयः श्रीषेणाख्यः श्रीभूतिसंज्ञकः ॥३४१॥
श्रीकीर्तिश्च ततः पद्मो महापद्माभिधानकः ।
चित्रवाहननामा विमलवाहननामकः ॥३४२॥
अरिष्टसेननामासी भाविचक्रधरा मताः ।
द्वादशाद्भुत पुण्याढ्या नृदेव खचरार्चिताः ॥३४३॥

अर्थः—(भविष्यतकाल में भी प्रथम चक्रवर्ती का नाम भरत ही होगा, इस प्रकार)—१ भरत, २ दीर्घदन्त, ३ जयदत्त, ४ गूढदन्त, ५ श्रीषेण, ६ श्रीभूति, ७ श्रीकीर्ति, ८ पद्म, ९ महापद्म, १० चित्रवाहन, ११ विमलवाहन और १२ अरिष्टसेन नाम के ये द्वादश चक्रवर्ती अद्भुत पुण्य से युक्त और नरेन्द्रों, देवो एव विद्याधरो से पूजित भविष्यतकाल मे होगे ।।३४१–३४३।।

अब भविष्यतकाल में होने वाले बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेवों के नाम कहते हैं :—

चन्द्राह्वयो महाचन्द्रस्ततश्चन्द्रधराभिधः ।
हरिचन्द्राख्यकः सिंहचन्द्राख्यो वरचन्द्रमाः ।।३४४।।
पूर्णचन्द्रः सुचन्द्राख्यः श्रीचन्द्रो भाविनोऽप्यमी ।
बलभद्रा नव ज्ञेया देवार्च्या ऊर्ध्वगामिनः ।।३४५।।
नन्दी च नन्दिमित्राख्यो नन्दिषेणसमाह्वयः ।
नन्दिभूति नरेशोऽथ प्रतीतबलसञ्ज्ञकः ।।३४६।।
ततो महाबलाभिख्योऽतिबलाख्यस्त्रिखण्डभृत् ।
त्रिपृष्टोऽथ द्विपृष्टोऽमी वासुदेवा नवस्मृताः ।।३४७।।
श्रीकण्ठो हरिकण्ठाख्यो नीलकण्ठोऽश्वकण्ठकः ।
सुकण्ठः शिखिकण्ठश्च ततोऽश्वग्रीवसंज्ञकः ।।३४८।।
हयग्रीवो मयूरग्रीवोऽमी खण्डत्रयाधिपाः ।
वासुदेवद्विषः सर्वे ज्ञातव्या नव भूतले ।।३४९।।
शलाकाः पुरुषा एते खभूचरसुराधिपैः ।
वन्द्याः पूज्यास्त्रिषष्टिश्च भविष्यन्ति जिनादयः ।।३५०।।

अर्थः—भविष्यतकाल मे चन्द्र, महाचन्द्र, चन्द्रधर, हरिचन्द्र, सिहचन्द्र, वरचन्द्र, पूर्णचन्द्र, सुचन्द्र और श्रीचन्द्र नाम के ये नौ वलभद्र, देवो से पूज्य और ऊर्ध्वगामी होगे ।।३४४–३४५।। इसी प्रकार आगामी काल मे नन्दी, नन्दिमित्र, नन्दिषेण, नन्दिभूत, प्रतीतवल, महाबल, अतिवल, त्रिपृष्ठ और द्विपृष्ठ ये नव नारायण होगे ।।३४६–३४७।। इसी प्रकार तृतीय काल में श्रीकण्ठ, हरिकण्ठ, नील कण्ठ, अश्वकठ, सुकण्ठ, शिखिकण्ठ, अश्वग्रीव, हयग्रीव और मयूरग्रीव ये नौ त्रिखडाधिपति प्रतिवासुदेव होगे । पृथ्वीतल पर ये नौ प्रतिनारायण, नारायणो के शत्रु होते है, ऐसा जानना ।।३४८–३४९।। विद्याधरो, राजाओं और देवों द्वारा वन्दनीय एवं पूजनीय जिनेन्द्र आदि त्रेसठ शलाका के ये सभी महापुरुष भविष्यतकाल में होगे ।।३५०।।

अब अवशेष तीन कालों में भोगभूमि की रचना कहते है :—

ततः कालत्रयोऽन्येऽत्र स्थित्यादिवृद्धिसंयुताः ।
जघन्यमध्यमोत्कृष्टा भोगभूमिभवाः क्रमात् ।।३५१।।
प्रागुक्तत्रिकसद्भोगभूमितुल्याः सुखाकराः ।
दशधा कल्पवृक्षाढ्या आयास्यन्ति पृथग्विधाः ।।३५२।।

अर्थः—इस तृतीय काल की परिसमाप्ति के अनन्तर स्थिति आदि की वृद्धि से युक्त तीन काल और होगे, जिसमे क्रम से जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भोगभूमि की रचना होगी । अर्थात् चतुर्थ सुखमा-दुखमा काल मे जघन्य भोगभूमि की, पचम सुखमा काल मे मध्यम की और छठवे सुखमासुखमाकाल मे उत्कृष्ट भोगभूमि की रचना होगी ।।३५१।। पृथक्-पृथक् दश दश प्रकार के कल्पवृक्षो से युक्त सुख की खान स्वरूप इन तीनो भोगभूमियो मे पूर्वोक्त भोगभूमियों के सदृश ही रचना होगी ।।३५२।।

भरतैरावत मे कहे हुए इन छह कालों को नियम पूर्वक अन्य क्षेत्रों में जोड़ने के लिए कहते है :—

भरतैरावतक्षेत्रेषु सर्वेषु द्विपञ्चसु ।
द्विषट्कालाः प्रवर्तन्ते वृद्धिह्रासयुताः सदा ।।३५३।।
विजयार्धनगेष्वत्र म्लेच्छखण्डेषु पञ्चसु ।
चतुर्थकाल एवास्ति शाश्वतो निरुपद्रवः ।।३५४।।
किन्तु चतुर्थकालस्य यदा स्याद् भरतादिषु ।
आयुःकायसुखादीनां वृद्धिह्रासश्च जन्मिनाम् ।।३५५।।
तदा तेन समः कालो वृद्धिह्रासयुतो भवेत् ।
रूप्याद्रिम्लेक्षखण्डेषु शेषकालेषु न क्वचित् ।।३५६।।
पूर्वापरविदेहेषु द्विपञ्चसु प्रवर्तते ।
चतुर्थकाल एवैको मोक्षमार्गप्रवर्तकः ।।३५७।।
देवोत्तरकुरुष्वेव द्विपञ्चभोगभूमिषु ।
दक्षिणोत्तरयोर्मेरोः प्रथमः काल ऊर्जितः ।।३५८।।
हरिरम्यकवर्षेषु मध्यमभोगभूमिषु ।
वृद्धिह्रासातिगः कालो द्वितीयो मध्यमो मतः ।।३५९।।
हैमवताख्यहैरण्यवतक्षेत्रद्विपञ्चसु ।
तृतीयः शाश्वतः कालो जघन्यभोगभूमिषु ।।३६०।।

तिर्यग्द्वीपेष्वसंख्येषु मानुषोत्तरपर्वतात् ।
बाह्यस्थेष्वन्तरस्थेषु नागेन्द्रशैलतः स्फुटम् ॥३६१॥
जघन्यभोगभूभागस्थिति युक्तेषु वर्तते ।
जघन्यभोगभूकर्ता नित्यः कालस्तृतीयकः ॥३६२॥
नागेन्द्रपर्वताद्बाह्ये स्वयम्भूरमणार्णवे ।
स्वयम्भूरमणद्वीपार्धे कालः पञ्चमोऽव्ययः ॥३६३॥
चतुर्णिकायदेवानां स्वर्गादिसर्वधामसु ।
सुषमासुषमाकालो नित्योऽस्ति सुखसागरः ॥३६४॥
कालोऽतिदुःषमाभिख्यो नरकेष्वस्ति सप्तसु ।
विश्वासाताकरीभूतः शाश्वतो नराङ्गिनाम् ॥३६५॥

अर्थ:—पञ्चमेरु सम्बन्धी पाँच भरत और पाँच ऐरावत (इन दश) क्षेत्रो के आर्य खण्डों मे वृद्धिह्रास युक्त छह काल उत्सर्पिणी सम्बन्धी और छह काल अवसर्पिणी सम्बन्धी इस प्रकार बारह काल निरन्तर प्रवर्तन करते रहते है ॥३५३॥ विजयार्ध पर्वतों की श्रेणियो मे एव भरतैरावत सम्बधी दश क्षेत्रो के पाच पाच म्लेच्छ खण्डो मे उपद्रव रहित चतुर्थकाल की वर्तना शाश्वत रहती है, किन्तु भरतैरावत क्षेत्रो के चतुर्थ काल मे जीवो के काय, आयु एवं सुख आदि का जिस प्रकार वृद्धि ह्रास होता है उसी के सदृश वृद्धि ह्रास वहाँ भी होता है। अर्थात् भरतैरावत क्षेत्रो के आर्य खण्डो में अवसर्पिणी के चतुर्थ काल मे आदि से अन्त तक जीवो की आयु आदि मे जैसी क्रमिक हानि होती है, वैसी ही हानि वहाँ होती है, और आर्य खण्डो मे उत्सर्पिणी काल के तृतीय काल (क्योंकि जो अवसर्पिणी का चतुर्थ काल है, वही उत्सर्पिणी का तृतीय है) मे आदि से अन्त तक जैसी क्रमिक वृद्धि होती है, वैसी ही वृद्धि वहाँ (म्लेच्छ खण्डो में और विजयार्धो मे) होती है।

विजयार्धों की श्रेणियो मे और म्लेच्छ खण्डो मे शेष कालो के सदृश वर्तना कभी भी नही होती। अर्थात् वहाँ अवसर्पिणी के पाँचवे और छठवे तथा उत्सर्पिणी के पहिले और दूसरे काल सदृश वर्तना कदापि नही होती ॥ ३५४–३५६ ॥ पचमेरु सम्बन्धी पाच पूर्वविदेह और पाँच पश्चिम विदेह इस प्रकार पूर्वापर दश विदेह क्षेत्रो मे मोक्षमार्ग के प्रवर्तक मात्र एक चतुर्थकाल की एक सदृश वर्तना होती है। अर्थात् जैसे यहाँ आर्य खण्डो सम्बन्धी चतुर्थ काल मे आयु आदि हीनाधिक होती है वैसे वहाँ नही होती । यहाँ अवसर्पिणी सम्बन्धी चतुर्थ काल के प्रारम्भ मे जैसी वर्तना होती है, वैसी वहाँ निरन्तर होती रहती है ॥३५७॥ यहाँ अवसर्पिणी के प्रथम काल के प्रारम्भ मे आयु, उत्सेध एवं सुख आदि की जो वर्तना होती है, वैसी ही वर्तना पञ्चमेरुओ के उत्तर और दक्षिण मे अवस्थित उत्तरकुरु, देवकुरु नामक दश उत्तम भोगभूमियो मे निरन्तर रहती है ॥३५८॥ अवसर्पिणी के द्वितीय

काल के प्रारम्भ सदृश पञ्चमेरु सम्बन्धी हरि-रम्यक क्षेत्रो की दश मध्यम भोगभूमियो मे वृद्धि-ह्रास से रहित वर्तना होती है ।।२५९।। इसी प्रकार अवसर्पिणी के तृतीय काल के प्रारम्भ सदृश हैमवत् और हैरण्यवत् क्षेत्रगत दश जघन्य भोगभूमियो मे शाश्वत वर्तना होती है ।।२६०।। मानुषोत्तर पर्वत से वाहर और स्वयम्भूरमण द्वीप के मध्य मे अवस्थित नागेन्द्र पर्वत के भीतर भीतर तिर्यग्लोक सम्बधी असख्यात द्वीपो मे जघन्य भोगभूमि का वर्तन होता है, अवसर्पिणी के तृतीय काल के प्रारम्भ मे जघन्य भोगभूमि जन्य यहाँ जैसा वर्तन होता है, वैसा वहाँ शाश्वत होता है ।।२६१-२६२।।

नागेन्द्र पर्वत के बाह्य भाग से स्वयम्भूरमण समुद्र के अन्त पर्यन्त अर्थात् अर्ध स्वयम्भूरमण द्वीप मे और स्वयम्भूरमण समुद्र मे अवसर्पिणी के पञ्चम काल के प्रारम्भ सदृश, हानि-वृद्धि रहित पचम काल का ही नित्य वर्तन होता है ।।२६३।। चतुर्निकाय देवो के स्वर्गादिक सभी स्थानो मे सुख के सागर स्वरूप सुखमा सुखमा काल के सदृश ही नित्य वर्तन होता है, तथा सातो नरक भूमियो मे नारकी जीवो के नित्य ही समस्त असाता की खान स्वरूप दुःखमा दु खमा काल के सदृश वर्तन होता है (स्वर्गो एवं नरकों मे अत्यन्त सुखो एव अत्यन्त दु खो की विवक्षा से यह कथन किया गया है, आयु तथा उत्सेध आदि की विवक्षा से नही ।।२६४-२६५।।

अब आचार्य कालचक्र के परिभ्रमण से छूटने का उपाय बतलाते है :—

इत्येतत् कालचक्रं भ्रमणभरयुतं तीर्थनाथैः प्रणीतम् ।
षड्भेदं सौख्यदुःखास्पदमपि निखिलं भो ! भ्रमन्त्येव नित्यम् ।।
संसारे दुःखपूर्णे विधिगणगलिताः प्राणिनश्चेति मत्वा ।
दक्षाः कालादिदूरं सुचरणसुतपोभिः शिवं साधयध्वम् ।।३६६।।

अर्थ.—इस प्रकार भ्रमण के भार से युक्त, समस्त सुखों एवं दुःखो के स्थान स्वरूप यह छह भेद वाला कालचक्र भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा कहा गया है । इस कारण कर्म समूह से प्रेरित जीव इस दुःख पूर्ण ससार मे नित्य ही भ्रमण करता है, ऐसा जानकर भो चतुर भव्य जनो ! आप सब उत्तम चारित्र और उत्तम तप के द्वारा काल चक्र के प्रभाव से रहित मोक्ष का साधन करो ।।३६६।।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण :—

एषां काले चतुर्थे वसुगुणवपुषो येऽभवन् सिद्धनाथाः,
सार्धद्वीपद्वये ये सकलगुणमयास्त्यक्तदोषा जिनेन्द्राः ।
अन्तातीताः सुरार्च्या जगति हितकराः सूरयः पाठकाश्चा-
चाराढ्याः साधवस्तांस्तदसमगतये नौमि सर्वान् जिनादीन् ।।३६७।।

इति श्रीसिद्धांतसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते अवसर्पिण्युत्सर्पिणी षट्काल प्ररूपको नाम नवमोधिकारः ।

अर्थः—इन छह कालो के मध्य चतुर्थ काल मे आठ गुण ही है शरीर जिनका ऐसे सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं। अढाई द्वीप में जो अठारह दोषो से रहित, सम्पूर्ण गुणो से सहित, विनाश रहित और देव समूह से पूज्य जिनेन्द्र अर्हन्त हए है, तथा जगत का हित करने वाले एव चारित्र गुण से विभूषित आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु हुए है, उन सब जिनेन्द्रादि-पंचपरमेष्ठियों को मै अनुपम गति की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ।।३६७।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नाम महाग्रन्थ में

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी के छह कालो का प्ररूपण करने वाला

नवमा अधिकार समाप्त ।।



दशमोऽधिकारः

मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञा सूत्रः—

अथ पंचगुरून् नत्वा धर्मसाम्राज्यनायकान् ।
महतस्त्रिजगत्पूज्यान् प्रवक्ष्ये लवणार्णवम् ॥१॥

अर्थ —अब त्रैलोक्य पूज्य और धर्म साम्राज्य के अधिनायक पञ्च परमेष्ठियो को नमस्कार करके लवण समुद्र का वर्णन करूँगा ॥१॥

अब जम्बूद्वीप की परिधि और प्राकार का प्रमाण कहते है :—

योजनानां त्रिलक्षाणि सहस्राण्यपि षोडश ।
द्वेशते सप्तविंशत्यधिके क्रोशास्त्रयस्तथा ॥२॥
धनुषां शतमेकं किलाष्टाविंशतिसंयुतम् ।
त्रयोदशांगुलान्यर्धांगुलं साधिकमञ्जसा ॥३॥
इत्येवं संख्यया जम्बूद्वीपस्य परिधिर्मता ।
सूक्ष्मः प्राकार एतस्य स्यादष्टयोजनोन्नतः ॥४॥
योजनानां द्विषड्व्यासो मूले मध्येऽष्टविस्तृतः ।
चतुर्भिर्विस्तृतोऽन्ते च वज्राङ्गो वलयाकृतिः ॥५॥

अर्थः—(एक लाख योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयाम से सहित) जम्बूद्वीप की परिधि का सूक्ष्म प्रमाण तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक है। अर्थात् ३१६२२७ यो०, ३ कोश १२८ धनुष और १३½ अगुल से कुछ अधिक है। इस जम्बूद्वीप को चारो ओर से वेष्टित करने वाला एक वज्रमय वलयाकार कोट है, जो आठ योजन ऊँचा, मूल मे बारह योजन, मध्य मे आठ योजन और ऊपर चार योजन प्रमाण चौडा है ॥२–५॥

अब प्राकार ऊपर स्थित वेदिका का निरूपण करते है :—

प्राकारोपरिभागेऽस्ति पद्मवेदी च शाश्वता ।
धनुःपञ्चशतव्यासादिव्या क्रोशद्वयोच्छ्रिता ॥६॥

अर्थः—प्राकार के उपरिम भाग मे पद्म नाम की वेदी है, जो शाश्वत है पाँच सौ धनुष चौडी है और दो कोश ऊँची है ॥६॥

अब कोट के चारों दिशाओं में स्थित द्वारों के नाम, प्रमाण और उनके ऊपर स्थित जिन प्रतिमाओं का निरूपण करते है :—

शालस्य पूर्वदिग्भागे द्वारं विजयसंज्ञकम् ।
दक्षिणे वैजयन्ताख्यं द्वारं भागे च पश्चिमे ॥७॥
जयन्तमुत्तरे गोपुरद्वारमपराजितम् ।
चत्वारिगोपुराणीति नानारत्नमयान्यपि ॥८॥
प्रत्येकं गोपुराणां च योजनाष्टसमुन्नतिः ।
सर्वत्र व्यास आयामश्चतुर्योजनसम्मितः ॥९॥
गोपुरद्वारसर्वेषु जिनेन्द्रप्रतिमाः पराः ।
सन्ति भामण्डलच्छत्रत्रय सिंहासनाश्रिताः ॥१०॥

अर्थ.—कोट की पूर्व दिशा में विजय, दक्षिण में वैजयन्त, पश्चिम में जयन्त और उत्तर में अपराजित नाम के, नाना प्रकार के रत्नमय चार गोपुर द्वार है। ये प्रत्येक गोपुरद्वार आठ योजन ऊँचे, चार योजन चौडे और चार योजन लम्बे है, इन समस्त द्वारों पर भामण्डल, तीन छत्र एवं सिंहासन आदि से युक्त जिनेन्द्र प्रतिमाएँ है ॥७–१०॥

अब इन चारों गोपुरद्वारों के अधिनायकों का कथन करते है :—

विजयो वैजयन्तोऽथ जयन्ताख्योऽपराजितः ।
चत्वारो व्यन्तराधीशा एते पल्यैकजीविनः ॥११॥
देवीभिर्बहुसैन्याद्यैः समृद्धा अधिनायकाः ।
पूर्वादिदिक्प्रतोलीनां दिव्यदेहा भवन्ति च ॥१२॥

अर्थः—इन चारो द्वारो के क्रमशः विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के चार व्यन्तर देव है। पूर्वादि दिशाओ मे स्थित प्रतोलियो के ये चारों अधिनायक दिव्य देह के धारी, एक पल्य की आयु से युक्त और देवो की अनेक प्रकार की सेनाओ से समृद्ध होते है ॥११–१२॥

अब चारों गोपुरद्वारों के ऊपर स्थित नगरों का वर्णन करते है :—

अमीषां विजयादीनां प्रत्येकं पुरमुत्तमम् ।
सर्वत्रायामविष्कम्भं सहस्रद्वादशप्रमैः ॥१३॥

योजनैर्मणिसौधोच्चप्राकारगोपुराङ्कितम् ।
द्वाराणामूर्ध्वभागं च गत्वा तिष्ठति शाश्वतम् ॥१४॥
ते स्वकीये स्वकीयेऽत्र पुरे तस्मिन् मनोहरे ।
स्वदेवीपरिवाराढ्या वसन्ति व्यन्तराधिपाः ॥१५॥

अर्थः—चारो गोपुर द्वारों के ऊपर (गगन तल मे) जाकर इन विजय आदि चारों व्यन्तराधिनायको के अत्यन्त रमणीक और शाश्वत नगर है। जिनका आयाम और विस्तार पृथक्-पृथक् बारह हजार योजन प्रमाण है। ये नगर मणियो के ऊँचे ऊँचे महलो, प्राकारो और गोपुरो आदि से सयुक्त है। व्यन्तर देवो के स्वामी ये विजय आदि देव अपने अपने मनोहर नगरो मे अपनी अपनी परिवार देवियो के साथ निवास करते है ॥१३-१५॥

अब चारों द्वारों का पारस्परिक अन्तर और प्राकार के बाह्याभ्यन्तर भाग में स्थित वनों आदि का निरूपण करते है :—

प्राकारपरिधेर्यच्चचतुर्थांशं तदेव हि ।
द्वारव्यासोनितं तेषां द्वाराणामन्तरं भवेत् ॥१६॥
प्राकाराभ्यन्तरे भागे क्रोशद्वयसुविस्तरम् ।
नानापादपसंकीर्णं वनमस्ति मनोहरम् ॥१७॥
वेदिका स्याद्वनस्यान्ते गोपुरादिविभूषिता ।
क्रोशद्वयोन्नतादिव्या क्रोशतुर्यांशविस्तृता ॥१८॥
इत्यादिवर्णनोपेतः प्राकारोऽस्ति पृथक् पृथक् ।
असंख्यद्वीपवार्धीनां पर्यन्ते वलयाकृतिः ॥१९॥

अर्थ —द्वार के व्यास से हीन कोट की परिधि के चतुर्थांश का जो प्रमाण प्राप्त होता है, वही उन द्वारो के अन्तर का प्रमाण है। अर्थात् कोट (जम्बूद्वीप) की परिधि का प्रमाण ३१६२२८ योजन है, और चारो द्वारो का व्यास १६ योजन है. इसे परिधि के प्रमाण मे से घटा देने पर (३१६२२८—१६) ३१६२१२ योजन अवशेष रहते है। मुख्य द्वार चार है, अत. अवशेष को चार से भाजित करने पर ($\frac{३१६२१२}{४}$)=७९०५३ योजन प्राप्त हुये। यही एक द्वार से दूसरे द्वार के अन्तर का प्रमाण है॥१६॥

प्राकार के भीतर की ओर (पृथ्वी के ऊपर) दो कोश विस्तार वाला तथा अनेक प्रकार के वृक्षो से व्याप्त महामनोहर वन है। उस वन के अन्त मे गोपुर आदि द्वारो से विभूषित वेदिका है, जो दो कोश ऊँची और एक कोश का चतुर्थांश अर्थात् पाव ($\frac{१}{४}$) कोश विस्तार वाली है ॥१७-१८॥

चूडी के आकार को धारण करने वाले असंख्यात द्वीप समुद्रों के अन्त मे उपर्युक्त वर्णन से युक्त पृथक् पृथक् प्राकार-कोट है ।।१९।।

अब लवण समुद्र की अवस्थिति और उसके स्वामी कहते हैं :—

तत्प्राकारान्तमाश्रित्य वलयाकारभृन्महान् ।
द्विलक्षयोजनव्यासो नित्योऽस्ति लवणार्णवः ।।२०।।
सत्स्वामिसुस्थिताभिख्यौ देवौ दिव्याङ्गधारिणौ ।
लवणाख्यसमुद्रस्य तिष्ठतः परिरक्षकौ ।।२१।।

अर्थः—उस जम्बूद्वीप के कोट के अन्तिम भाग का आश्रय कर अर्थात् कोट से लगा हुआ, चूडी के आकार को धारण करने वाला, दो लाख योजन व्यास से युक्त शाश्वत और महान् लवण समुद्र है। इस लवण समुद्र के दिव्य अङ्ग को धारण करने वाले सत्स्वामि और सुस्थित नाम के दो परिरक्षक देव वहाँ रहते है ।।२०-२१।।

अब लवण समुद्र के अभ्यन्तरवर्ती पातालों के नाम, उनका अवस्थान और संख्या का वर्णन करते है :—

समुद्राभ्यन्तरे पंचनवति प्रमितान्यपि ।
योजनानां सहस्राणि चतुर्दिक्षु विहाय च ।।२२।।
स्युः पातालानि चत्वारि महान्ति शाश्वतान्यलम् ।
पूर्वस्यां दिशि पातालं पश्चिमे वडवामुखम् ।।२३।।
भवेद्दक्षिणदिग्भागे कदम्बकसमाह्वयः ।
उत्तराख्ये दिशाभागे नाम्नास्ति युगकेशरी ।।२४।।
अमीषामन्तरेऽत्रैव विदिक्षु मध्यमान्यपि ।
चत्वारि श्रेणिरूपेण पातालानि भवन्ति च ।।२५।।
एतेषामष्टपातालानामन्तरेषु चाष्टसु ।
पातालानि जघन्यानि पञ्चविंशाधिकं शतम् ।।२६।।
प्रत्येकं तानि सर्वाणि पातालानि भवन्ति च ।
अष्टाधिकसहस्राणि पिण्डितानि जिनागमे ।।२७।।

अर्थः—लवण समुद्र के अभ्यन्तर भाग में ९५ हजार योजन छोड कर अर्थात् तट से ९५००० योजन पानी के भीतर जाकर चारो दिशाओं में चार महा पाताल है, जो शाश्वत है। पूर्व दिशा स्थित

बडवानल का नाम पाताल, दक्षिण दिश स्थित का नाम बडवामुख, पश्चिम दिशा स्थित का कदम्बक और उत्तर दिशा स्थित पाताल का नाम युगकेशरी है ॥२२–२४॥ इन चारो पातालो के अन्तराल मे चारो विदिशाओ गत श्रेणी रूप से स्थित चार मध्यम पाताल है, और इन चार दिशा सम्बन्धी तथा चार विदिशा सम्बन्धी आठ पातालो के आठ अन्तराल है, जिनमे १२५-१२५ जघन्य पाताल है। जिनागम मे इन समस्त पातालो का योग (१२५×८=१०००+४+४)=१००८ अर्थात् एक हजार आठ कहा गया है ॥२५–२७॥

अब तीनों प्रकार के पातालों का अवगाह आदि कहते है :—

ज्येष्ठानामवगाहोऽस्तिलक्षैकयोजनप्रमः ।
मध्यभागे महाव्यासो लक्षयोजनमानकः ॥२८॥

पातालानामधोभागे सहस्रदशसम्मितः ।
योजनानां लघुव्यासो मुखेऽधोभागसन्निभः ॥२९॥

चतुर्णा मध्यमानां च सहस्राणि दशैवहि ।
अवगाहोऽवगाहेन समोऽस्ति मध्यविस्तरः ॥३०॥

योजनानां सहस्रैकोऽधस्तले विस्तरो मतः ।
पातालानां मुखे व्यासः सहस्रयोजनप्रमः ॥३१॥

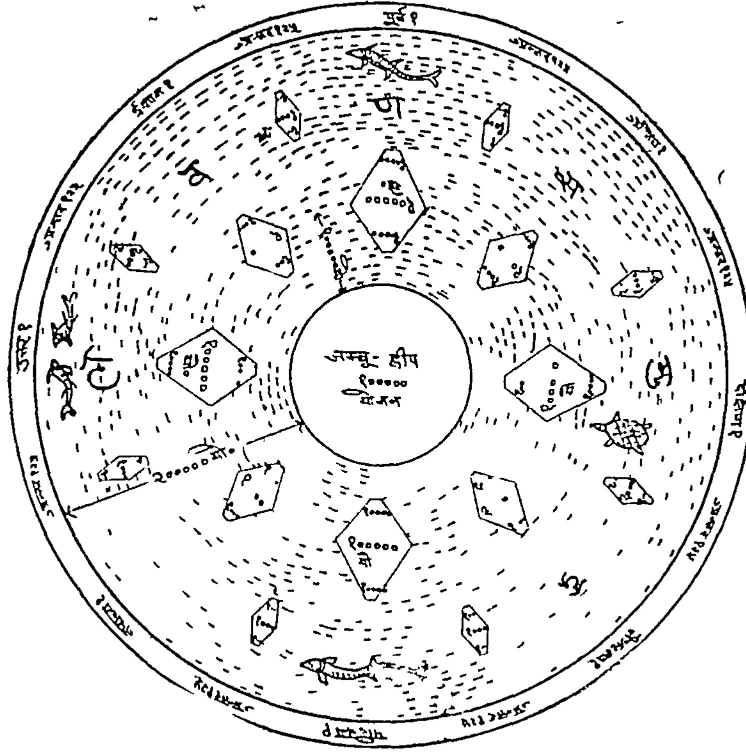
अवगाहो जघन्यानां योजनानां सहस्रकम् ।
मध्यभागे च विष्कम्भोऽवगाहेन समानकः ॥३२॥

शतैकयोजनव्यासः पातालानामधस्तले ।
योजनानां शतैकं स्याद्विस्तारस्तन्मुखे क्रमात् ॥३३॥

अर्थ —चारो दिशाओ मे स्थित महा पातालो का अवगाह एक लाख योजन, मध्य भाग का व्यास एक लाख योजन, पातालो के अधोभाग का व्यास दश हजार योजन और मुख व्यास भी दश हजार योजन प्रमाण है ॥२८–२९॥ चारो मध्यम पातालो का अवगाह दश हजार योजन, मध्य व्यास दश हजार योजन, मुख व्यास एक हजार योजन और अधोभाग का व्यास भी एक हजार योजन प्रमाण है ॥३०–३१॥ एक हजार प्रमाण जघन्य पातालो का पृथक् पृथक् अवगाह एक हजार योजन, मध्य व्यास एक हजार योजन तथा मुख और अधोभाग का व्यास सौ-सौ योजन प्रमाण है ॥३२–३३॥

[इसका चित्रण अगले पृष्ठ पर देखिये ।]

इसका चित्रण निम्न प्रकार है —



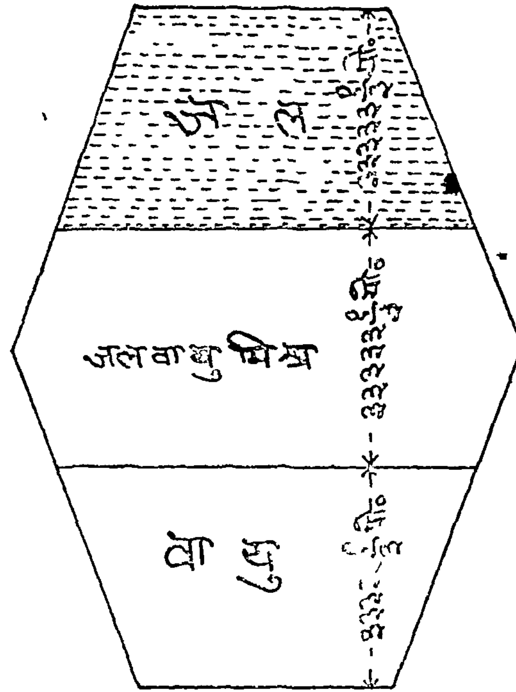
अब पातालों के अभ्यन्तरवर्ती जल और वायु के प्रवर्तन का क्रम तथा जल में होने वाली हानि वृद्धि का कारण कहते हैं :—

पातालानां समस्तानामवगाहे निरूपिताः ।
पृथक् त्रयस्त्रयो भागाः समाना आगमे जिनैः ।।३४।।
अधोभागेषु सर्वेषां केवलं वातसञ्चयः ।
मध्यतृतीयभागे स्तो जलवातौ स्वभावतः ।।३५।।
ऊर्ध्वस्थतृतीयांशेषु तिष्ठन्ति जलराशयः ।
वीचीनां वृद्धिह्रासौ स्तो वाताधीनौ न संशयः ।।३६।।
यदाधस्तान् महान् वायुरूर्ध्वमायाति तेन च ।
वीचीनां हि तदा वृद्धिर्जघन्यमध्यमोत्तमा ।।३७।।
यदा पातालमध्येषु प्रवेशं कुरुते मरुत् ।
हानिस्तदैव वीचीनां सर्वत्र लवणाम्बुधौ ।।३८।।

अर्थः—आगम मे जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उन समस्त पातालों का जो पृथक् पृथक् अवगाह निरूपण किया गया है, उसके समान रूप से तीन तीन भाग करने पर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य तीनों

पातालो के अधो भागो मे स्वभाव से ही मात्र वायु है। मध्य के तृतीय भागो मे जल और वायु है, तथा ऊपर के तृतीय भागो मे मात्र जल है। जल कल्लोलो की वृद्धि और हानि में मात्र वायु ही कारण है, इसमें किञ्चित् भी सशय नही है ।।३४–३६।। जब अधस्तन भाग मे स्थित वायु ऊपर की ओर आती है, तब उस वायु से जल कल्लोलो मे क्रमश जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट वृद्धि होती है, किन्तु जब वह वायु पाताल के अभ्यन्तर भाग मे प्रवेश करती है, तब जल कल्लोलों में सर्वत्र क्रमश. हानि होती जाती है ।।३७–३८।।

उत्कृष्ट पाताल के त्रिभाग का प्रमाण एव उनमे स्थित वायु आदि का चित्रण निम्न प्रकार है। अन्य पातालो का भी इसी प्रकार जानना। केवल प्रमाण मे अन्तर होगा, अन्य नही :—



अब अमावस्या एवं पूर्णिमा को हानि वृद्धि रूप होने वाले जल के भूव्यास आदि का प्रमाण कहते है :—

बीचेर्व्यासो ह्यमावस्यायां द्विलक्षप्रमाणकः ।
योजनानां महीभागे शिखरे विस्तरस्तथा ।।३९।।

सार्धत्रिशतयुक्तैकोनसप्ततिसहस्रकाः ।
एकादशसहस्राण्युत्सेधो जघन्य एव च ।।४०।।

योजनानां त्रयस्त्रिशदधिकत्रिशतानि च ।
योजनस्य तृतीयांश इति संख्यादिनं प्रति ।।४१।।
वीचेर्वृद्धिः परिज्ञेया यावत् पक्षान्तिमं दिनम् ।
पूर्णमास्यां महावीचेर्द्विलक्षयोजनप्रमः ।।४२।।
विस्तारो भूतले मूर्द्ध्नि सहस्रदशसम्मितः ।
उत्सेधो योजनानां च सहस्रषोडशप्रमः ।।४३।।

अर्थ:—अमावस्या को समभूमि से जल की ऊँचाई ११००० योजन रहती है यह लवण समुद्र के जल का जघन्य उत्सेध है। इस दिन अर्थात् ११००० ऊँचाई वाले जल का भूव्यास दो लाख योजन और मुख व्यास अर्थात् शिखर पर जल की चौडाई का प्रमाण ६९३५० योजन है ।।३९–४०।।

नोट :—त्रिलोकसार गा० ९०० की टीका मे मुख व्यास का प्रमाण ६९३७५ योजन कहा है। मुख व्यास ६९३७५ योजन कैसे हुआ ? इसे त्रैराशिक से सिद्ध भी किया गया है।

शुक्ल पक्ष मे प्रतिदिन ३३३⅓ योजन की वृद्धि जल लहरों मे होती है, इस प्रकार शुक्ल पक्ष के अन्त में पूर्णमासी को लवण समुद्र के जलराशि की ऊँचाई १६००० योजन हो जाती है। उस दिन भूमितल पर जल का विस्तार दो लाख योजन और शिखर पर जल का व्यास अर्थात् चौडाई १०००० योजन रहती है ।।४१–४३।।

विशेष:—लवण समुद्र का जल मुरजाकार है। अर्थात् समुद्र के मध्य मे जल हमेशा समभूमि से ११००० योजन ऊपर तक राशि के समान स्थित रहता है। पातालो के मध्यम त्रिभागो मे नीचे पवन और ऊपर जल है। शुक्ल पक्ष मे प्रत्येक दिन जल के स्थान पर पवन होता जाता है, इससे जल कल्लोलो में प्रतिदिन ३३३⅓ योजन की वृद्धि होती है, इस प्रकार बढते हुए पूर्णमासी को जल राशि की वृद्धि (३३३⅓ × १५) = ५००० योजन हो जाती है। अर्थात् जल राशि की ऊँचाई ११००० योजन तो थी ही, ५००० योजन की वृद्धि हो गई, अतः पूर्णमासी को जल राशि की ऊँचाई (११०००+ ५०००) = १६००० योजन प्राप्त होती है। कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन पवन के स्थान पर जल होता जाता है, अत जलराशि मे प्रतिदिन ३३३⅓ योजन की हानि होते हुये अमावस्या को जलराशि की ऊँचाई (१६०००—५०००=) ११००० योजन प्रमाण रह जाती है।

अब तीनों प्रकार के पातालों के पारस्परिक अन्तर का प्रमाण दर्शाते है :—

नवलक्षाः सहस्राण्यष्टचत्वारिंशदेव च ।
षट्शतानि त्र्यशीतिः किलेति योजनसंख्यया ।।४४।।

मध्यमा परिधिः प्रोक्तो मध्यसूच्या महाम्बुधेः ।
चतुर्थभागएवास्याः परिधेर्यः पृथक् कृतः ।।४५।।
दिक् पातालमुखव्यासहीनः सोऽत्रान्तरं भवेत् ।
चतुर्णां ज्येष्टपातालानां पृथग् भूतमञ्जसा ।।४६।।
द्वौ लक्षौ च सहस्राणि सप्तविंशतिरेव हि ।
शतैकं सप्ततिर्योजनानां क्रोशास्त्रयः स्फुटम् ।।४७।।
इत्येवं संख्यया तेषां ज्येष्टानामन्तरं मतम् ।
तस्यार्धं मध्यमानां स्यान्मुखव्यासोनमन्तरम् ।।४८।।
योजनानां च लक्षैकं सहस्राणि त्रयोदश ।
पंचाशीतिस्तथा सार्धक्रोशइत्यङ्क संख्यया ।।४९।।
मध्यमानां चतुर्णां पातालानामन्तरं पृथक् ।
विभक्तमन्तरं चोनं मुखव्यासैस्तदेव हि ।।५०।।
पातालक्षुल्लकानां पञ्चविंशाग्रशतात्मनाम् ।
अन्तरैरन्तरं प्रोक्तं षड्विंशाग्रशतप्रमैः ।।५१।।
योजनानां शतान्येव सप्ताष्टानवतिस्तथा ।
योजनैकस्य भागानां षड्विंशाग्रशतात्मनाम् ।।५२।।
सप्तत्रिंशत्प्रमा भागा इत्यङ्कसंख्ययान्तरम् ।
मतं क्षुल्लकपातालानां सर्वेषां जिनागमे ।।५३।।

अर्थ—लवण समुद्र की मध्यम सूची व्यास की मध्यम सूक्ष्म परिधि का प्रमाण ९४८६८३ योजन प्रमाण है। इस मध्यम परिधि के चतुर्थ भाग ($\frac{९४८६८३}{४}$ = २३७१७०$\frac{३}{४}$ यो०) मे से उत्कृष्ट पाताल के मुख व्यास का प्रमाण (१० हजार यो०) घटा देने पर दिशा सम्बन्धी उत्कृष्ट पातालो का पृथक् पृथक् अन्तर (२३७१७०$\frac{३}{४}$—१००००=२२७१७०$\frac{३}{४}$ यो०) प्राप्त होता है। अर्थात् पूर्व दिशागत उत्कृष्ट पाताल के मुख से दक्षिण दिशा गत उत्कृष्ट पाताल के मुख पर्यन्त २२७१७०$\frac{३}{४}$ योजन का अन्तर है। इसी प्रकार दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पूर्व मे जानना।। इन उत्कृष्ट पातालो के अन्तर प्रमाण मे से मध्यम पाताल के मुख व्यास (१०००) को कम करके आधा करने पर [(२२७१७०$\frac{३}{४}$—१०००)—२=] ११३०८५ यो० और डेढ कोश ($\frac{३}{२}$) प्राप्त होते है, यही चारो विदिशाओ गत चार मध्यम पातालो का चारो दिशा गत ज्येष्ठ पातालो से पृथक् पृथक् अन्तर का प्रमाण है। अर्थात् पूर्व दिशागत ज्येष्ठ पाताल और आग्नेय दिशा गत मध्यम पाताल के मुखो मे ११३०८५ योजन और १$\frac{१}{२}$ कोश का अन्तर है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना। दिशागत और विदिशागत पातालो के मध्य मे १००

योजन मुख व्यास वाले १२५ जघन्य पाताल हैं, इन सबका मुख व्यास (१२५×१००=) १२५०० यो० होता है। ज्येष्ठ और मध्यम पाताल के अन्तर प्रमाण ११३०८५ यो० $१\frac{१}{२}$ कोश में से मुख व्यास घटा कर अवशेष को १२६ (क्योंकि आजू बाजू के दिशागत और विदिशागत पातालों सहित १२७ पाताल हैं, अत १२७ पातालो के १२६ अन्तराल होते है।) से भाजित करने पर समस्त क्षुल्लक पातालों के बीच का अतराल जिनागम में (११३०८५ यो० $१\frac{१}{२}$ कोश—१२५०० यो० = १००५८५ यो० $१\frac{१}{२}$ कोश ÷ १२६) = ७९८ + $\frac{३७}{१२६}$ + $\frac{१}{३३६}$ योजन कहा गया है $१\frac{१}{२}$ कोश मे १२६ का भाग देने पर $\frac{३}{२}$ × $\frac{१}{१२६}$ × $\frac{१}{४}$ =) $\frac{१}{३३६}$ योजन प्राप्त होते है॥४४–५३॥

अब लवणोदक समुद्र के प्रतिपालक नागकुमार आदि देवों के विमानों की संख्या को तीन स्थानों के आश्रय से कहते हैं :—

बेलन्धराधिपा नागा नागैर्वेलन्धरैः समम् ।
वसन्ति पर्वताग्रस्थनगरेषु मुदाम्बुधौ ॥५४॥
नागा द्व्यधिक चत्वारिंशत्सहस्रप्रमाः सदा ।
अब्ध्यभ्यन्तरजां बेलां धारयन्ति नियोगतः ॥५५॥
द्वासप्ततिसहस्राश्च बाह्यवेलां जलोर्जिताम् ।
धारयन्त्यम्बुधौ नागा जलक्रीडापरायणाः ॥५६॥
अष्टाविंशतिसंख्यातसहस्रनागनिर्जराः ।
महदग्रोदकं नित्यं धारयन्ति यथायथम् ॥५७॥

अर्थः—वेलन्धर नागकुमारों के स्वामी अपने वेलन्धर नागकुमारों के साथ पर्वतों के अग्रभाग पर स्थित नगरों में अति प्रसन्नता पूर्वक निवास करते है। लवणसमुद्र के अभ्यन्तर भाग (जम्बूद्वीप की ओर प्रविष्ट होने वाली वेला) की अपने नियोग से व्यालीस हजार नागकुमार देव रक्षा करते है। समुद्र के बाह्यभाग (धातकी खण्ड द्वीप की ओर की वेला) को जलक्रीडा में परायण बहत्तर हजार नागकुमार देव धारण (रक्षा) करते है, और जल के महान् अग्रभाग को अर्थात् सोलह हजार ऊँची जल राशि को निरन्तर अट्ठाईस हजार नागकुमार देव धारण करते है। अर्थात् रक्षा करते है॥५४-५७॥

नोट :—तिलोय पण्णत्ति, त्रिलोकसार और लोक विभाग मे लवण समुद्र के बाह्याभ्यन्तर भाग में और शिखर पर जल से ऊपर आकाश तल में नागकुमार देवों के ४२०००, ७२००० और २८००० नगरों या विमानों का प्रमाण कहा है, देवों का नही।

अब लवणसमुद्र की वेदियों के आगे दिशाओं आदि में स्थित बत्तीस पर्वतों के नाम, प्रमाण एवं उनके आकार आदि का निरूपण करते हैं :—

अस्याम्बुधेश्च बाह्याभ्यन्तरवेदिकयोर्द्वयोः ।
योजनानि द्विचत्वारिंशत्सहस्रप्रमाण्यपि ।।५८।।
तटमुत्सृज्य सन्त्येते चतुर्दिक्ष्वष्टपर्वताः ।
कौस्तभः कौस्तभासोऽन्य एतौ पूर्वदिशि स्थितौ ।।५९।।
दक्षिणे स्त इमौ शैलौ ह्य ुदकाख्योदकप्रभौ ।
अद्री शंखमहाशंखौ दिग्भागे पश्चिमे स्थितौ ।।६०।।
गदाद्रिगदवासाक्षो भवन्तश्चोत्तरेऽम्बुधौ ।
इत्यमी पर्वता अष्टौ सहस्रयोजनोन्नताः ।।६१।।
सहस्रयोजनामूर्ध्नि विस्तीर्णाः शाश्वताः शुभाः ।
कलशार्धसमा श्वेतावनवेद्यादिभूषिताः ।।६२।।
तावन्ति योजनान्यब्धेर्मुक्त्वा वेद्यो द्वयोस्तटम् ।
चतुर्विदिक्षु सन्त्यन्ये शैला अष्टौ मनोहराः ।।६३।।
तथा तेषां महाद्रीणामष्टस्वन्तरदिक्षु च ।
भवन्ति वनवेद्याद्यैर्युताः षोडशपर्वताः ।।६४।।
गिरयो मिलिता एते निखिलाः कौस्तभादयः ।
द्वात्रिंशत्संख्यका ज्ञेया लवणाब्धौ मनोहराः ।।६५।।

अर्थ —लवण समुद्र की बाह्याभ्यन्तर दोनो वेदियो के तटो से ब्यालीस हजार (४२०००) योजन आगे समुद्र मे जाकर अर्थात् तट को छोड कर पूर्वादि चारो दिशाओ मे आठ पर्वत है, इनमे पूर्व दिशा मे स्थित पर्वतो के नाम कौस्तुभ और कौस्तुभास है। दक्षिण दिशा मे उदक एव उदकप्रभ, पश्चिम मे शख और महाशख तथा उत्तर दिशा मे गद एव गदवास नाम के पर्वत है। ये आठो पर्वत एक हजार योजन ऊँचे, शिखर पर एक हजार योजन चौडे, शाश्वत, अत्यन्त मनोहर, अर्धकलश के आकार सदृश, श्वेत वर्ण को धारण करने वाले और वन एव वेदियो आदि से विभूषित है ।।५८-६२।।

दोनो वेदियो के तटो से समुद्र को ब्यालीस हजार (४२०००) योजन छोडकर चारो विदिशाओ मे अत्यन्त मनोहर आठ अन्य पर्वत है, तथा इन दिशा-विदिशा सम्बन्धी आठ युगल पर्वतो के आठ अन्तरालो मे वन वेदी आदि से युक्त सोलह पर्वत है। इन कौस्तभ आदि समस्त पर्वतो का योग करने पर लवण समुद्र मे मन को हरण करने वाले बत्तीस पर्वत जानना चाहिये ।।६३-६५।।

नोट :—त्रिलोकसार आदि ग्रन्थो मे इन बत्तीस पर्वतो का अवस्थान दिशाओ-विदिशाओ गत पातालो के दोनो पार्श्व भागो मे कहा गया है।

उन पर्वतों के ऊपर स्थित द्वीपों को और पर्वतों के स्वामियों को कहते हैं :—

एषामुपरि सर्वेषां द्वीपाः स्युः प्रवरा युताः ।
नाना प्रासादसद्वेदीप्रोद्यानगोपुरादिभिः ।।६६।।
तेषु द्वीपस्थसौधेषु वसन्ति व्यन्तरामराः ।
तुङ्गेषु स्वस्वशैलेन समनामान ऊर्जिताः ।।६७।।

अर्थः—इन सम्पूर्ण पर्वतों के ऊपर द्वीप है, जो अनेक कमरों वाले प्रासादों से उत्तम वेदियों, उद्यानों और गोपुरों आदि से संयुक्त है । उन द्वीप स्थित ऊँचे ऊँचे प्रासादों में अपने अपने पर्वतों के नाम सदृश नाम वाले व्यन्तर देव रहते है ।।६६-६७।।

अब वायव्य दिशा में स्थित गोतम द्वीप, उसके ऊपर स्थित प्रासाद और उसके रक्षक देव का सविस्तार वर्णन करते हैं :—

अब्धेस्तीराद् द्विषट्संख्य सहस्रयोजनान्यपि ।
शैलोऽस्ति वायुदिक्कोणे गोतमाख्योऽतिसुन्दरः ।।६८।।
तत्समोदयविस्तीर्णो वनवेद्याद्यलकृतः ।
विचित्रवर्णनोपेतः शाश्वतः सुरसंकुलः ।।६९।।
तस्योपरिमहान् द्वीपो गोतमाख्योऽतिभास्वरः ।
स्वर्णवेदी स्फुरद्रत्नप्रासादवनगोपुरैः ।।७०।।
तस्याग्रे भवनं तुङ्गं सार्धद्विषष्टियोजनैः ।
तदर्धविस्तरायामं क्रोशद्वयावगाहभाक् ।।७१।।
नानारत्नमयं स्याच्च द्वारेणाऽलंकृतं महत् ।
अष्टयोजनतुङ्गेन चतुर्व्यासयुतेन च ।।७२।।
गोतमाख्योऽमरस्तत्र वसेत् पल्यैकजीवितः ।
दशचापोच्च दिव्याङ्गः स्वदेवीसुरभूषितः ।।७३।।

अर्थः—लवण समुद्र से १२००० योजन दूर जाकर वायव्य दिशा में स्थित गोतम नाम का अति सुन्दर पर्वत है, जो १२००० योजन ऊँचा, १२००० योजन चौडा, वन वेदियों से अलकृत, नाना प्रकार की रचना से युक्त, शाश्वत और अनेक देव गणों से युक्त है ।।६८-६९।। उस पर्वत के ऊपर गोतम नाम का एक महान द्वीप है, जो स्वर्णमय वेदी, तेजोमय रत्नो के प्रासादों, वनों एवं गोपुर द्वारों से दैदीप्यमान है ।।७०।। उस द्वीप के (ऊपर) आगे साढे बासठ योजन ऊँचा, सवा इकतीस (३१¼) योजन लम्बा और दो कोश की अवगाह (नीव) से युक्त भवन है । जो विविध प्रकार के रत्नमय,

आठ योजन ऊँचे और चार योजन चौडे द्वारो से अलकृत है ।।७१-७२।। उस भवन मे एक पल्य की आयु से युक्त और दश धनुष ऊँचे दिव्य शरीर को धारण करने वाला गोतम नाम का देव अपने परिवार देव देवियो के साथ निवास करता है ।।७३।।

अब लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट सम्बन्धी २४ अन्तर द्वीपों का सविस्तार वर्णन करते है :—

अब्धेर्वेदीतटाद्गत्वा शतपञ्चप्रमाणि च ।
योजनानि चतुर्दिक्षु सन्ति द्वीपाश्चतुःप्रमाः ।।७४।।
शतयोजनविस्तीर्णाः कुभोगभूनरान्विताः ।
पुनस्त्यक्त्वाम्बुधेस्तीरं तावन्ति योजनानि च ।।७५।।
चतुर्विदिक्षु चत्वारः स्युर्द्वीपा विस्तृताः स्फुटम् ।
योजनैः पञ्चपञ्चाशत्प्रमैः कुनृयुगाश्रिताः ।।७६।।
योजनानि विहायाब्धेः सार्धं पंचशतानि च ।
दिग्विदिग्मध्यभागाष्टान्तरदिक्षुक्षयातिगाः ।।७७।।
पञ्चाशद्योजनव्यासा द्वीपा अष्टौ भवन्ति वै ।
पार्श्वयोश्च द्वयोरब्धौ हिमवद्विजयार्धयोः ।।७८।।
रूप्याचलशिखर्यद्र्योः प्रत्येकं योजनान्यपि ।
षट्शतानि विमुच्यस्तो द्वौ द्वौ द्वीपौ पृथक् पृथक् ।।७९।।
कुलाद्रिद्वयरूप्याद्रिद्वयान्तमस्तकाश्रिताः ।
भवेयुर्मेलिता अष्टौ द्वीपाः सर्वे सुविस्तृताः ।।८०।।
योजनैः पंचविंशत्या कुत्सिताभोगभूयुताः ।
समस्ताः पिण्डिता एते चतुर्विंशति सम्मिताः ।।८१।।
तोयोदयावगाहस्य संयोगेन समोन्नताः ।
सर्वे द्वीपा जलादूर्ध्वं योजनैकोच्छ्रिता मताः ।।८२।।

अर्थ —लवण समुद्र की वेदी के तट से ५०० योजन आगे जाकर चारो दिशाओ में सौ सौ योजन चौडे और कुभोगभूमिज मनुष्यो से सकुलित चार द्वीप है। पुन समुद्र तीर से ५०० योजन आगे जाकर चारो विदिशाओ मे ५५ योजन विस्तार वाले और कुभोगभूमिज मनुष्य युगलो से भरे हुये चार द्वीप है ।।७४-७६।। समुद्र तट को ५५० योजन छोड कर दिशाओ और विदिशाओ के मध्य

आठ विदिशाओं में कभी नाश न होने वाले और ५० योजन विस्तार वाले आठ द्वीप हैं। समुद्र के दोनो पार्श्व भागो मे हिमवन् कुलाचल, (भरतक्षेत्र सम्बन्धी) विजयार्ध पर्वत, शिखरी कुलाचल और (ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी) विजयार्ध पर्वत, इन प्रत्येको को छह सौ-छह सौ योजन छोड़ कर दोनो कुलाचलो और दोनो विजयार्धों के अन्तिम भागो का आश्रय कर पृथक् पृथक् दो दो द्वीप है। ये सब एकत्रित कर देने पर आठ द्वीप होते है। ये आठो द्वीप पच्चीस पच्चीस योजन विस्तार वाले और कुभोगभूमिज जीवों से संकुलित है। इन समस्त द्वीपों का योग २४ होता है ॥७४-८१॥ समभूमि से नीचे जल की गहराई और समभूमि से जल की ऊँचाई इन दोनों का योग कर देने पर जल के अवगाह का प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् (वेदी सहित) सर्व द्वीप जल से एक-एक योजन ऊँचे है ॥८२॥

नोट :—लवण समुद्र के (२४+२४)=४८ द्वीपो का चित्रण श्लोक १०२ में दिया गया है।

अब कुभोगभूमिज मनुष्यों की आकृति, आयु, वर्ण, आहार और उनके रहने के स्थान आदि का वर्णन करते है :—

एकोरुकाः सश्रृङ्गालांगुलिनोऽथाप्यभाषिणः ।
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वसन्त्येते क्रमान्नराः ॥८३॥
शशकर्णाः कुमर्त्याश्च सन्ति शष्कुलि कर्णकाः ।
कर्णप्रावरणा लम्बकर्णाश्चतुर्विदिक्षु वै ॥८४॥
सिंहाश्वमहिषोलूक-व्याघ्र-सूकरगोमुखाः ।
कपिवक्त्रा वसन्त्यष्टान्तरदिक्षु कुमानुषाः ॥८५॥
मत्स्यकालमुखा मेघविद्युद्वक्त्रा वसन्ति च ।
हिमाद्रेर्विजयार्द्धस्य पूर्वपश्चिमभागयोः ॥८६॥
गजदर्पणमेषाश्व वदनाः कुत्सिता नराः ।
स्यू रूपाद्रिशिखर्यद्रचोरुभयोः पार्श्वयोः क्रमात् ॥८७॥
एषु द्वीपेषु सर्वेषु प्राप्य जन्म सुगर्भतः ।
दिनैरेकोन पञ्चाशत्प्रमैर्लब्ध्वा सुयौवनम् ॥८८॥
स्त्रीमर्त्ययुग्मरूपेण रोगक्लेशादिवर्जिता ।
पल्यैकजीविनः पंचवर्णाः क्रोशोन्नता नराः ॥८९॥
नानाकायमुखाकारा भुञ्जन्ति नीचपुण्यतः ।
नीचान् भोगान् सदा तत्रत्याः कुभोगधरासु च ॥९०॥

एकोरुका गुहायां च वसन्ति कान्तया समम् ।
मधुरं मृण्मयाहारमाहरन्ति सुखावहम् ॥६१॥

स्वसमस्त्रीयुताः शेषावृक्षमूलाधिवासिनः ।
भुञ्जन्ति तृप्तये सर्वे पत्रपुष्पफलानि च ॥६२॥

आयुषोऽन्तेऽप्यसून् मुक्त्वा विश्वे मन्दकषायिणः ।
ज्योतिर्भावनभौमानां ते जायन्ते सुवेश्मसु ॥६३॥

तेषु ये प्राप्तसम्यक्त्वाः काललब्ध्या व्रजन्ति ते ।
सौधर्मैशानकल्पौ च नान्यत्र दृष्टिपुण्यतः ॥६४॥

अर्थ —लवण समुद्र की पूर्वादि चारो दिशाओ के द्वीपो मे क्रम से एकोरुक, सश्रृङ्ग अर्थात् वैषाणिक, लागुलिक और अभाषक ये चार प्रकार के मनुष्य रहते है ॥८३॥ चारो विदिशाओ के चार द्वीपो मे क्रम से शशकर्ण, शष्कुलिकर्ण, कर्णप्रावरण और लम्बकर्ण ये चार प्रकार के कुमानुष रहते है ॥८४॥ आठ अन्तरालो की आठ दिशाओ मे स्थित द्वीपो मे क्रम से सिह, अश्व, भैसा, उल्लू, व्याघ्र, सूकर, गाय और बन्दर सदृश मुख वाले कुमानुप रहते है ॥८५॥ हिमवान् पर्वत और विजयार्ध पर्वत के पूर्व पश्चिम भाग मे मछलीमुख, कालमुख, मेघमुख और विद्युत्मुख वाले कुमनुष्य रहते है अर्थात् पूर्व मे मछलीमुख, पश्चिम मे कालमुख, पूर्व मे मेघमुख और पश्चिम मे विद्युत्मुख वाले मनुष्य रहते है ॥८६॥ विजयार्ध और शिखरी पर्वत के दोनो पार्श्व भागो मे क्रमश गज, दर्पण, मेष और अश्वमुख अर्थात् पूर्व मे गजमुख, पश्चिम मे दर्पणमुख, पूर्व मे मेपमुख और पश्चिम मे अश्वमुख वाले कुमनुष्य निवास करते हैं ॥८७॥ इन समस्त द्वीपो मे स्त्री पुरुष दोनो का युगल रूप से गर्भ जन्म होता है, ये रोग और क्लेश आदि से रहित होते है तथा ४९ दिनो मे पूर्ण यौवन प्राप्त कर लेते है। इनकी आयु एक पल्य की, शरीर पाँच वर्णो का और शरीर की ऊँचाई एक कोश की होती है ॥८८-८९॥ विविध प्रकार के शरीराकार और मुखाकार को धारण करने वाले ये कुमनुष्य पूर्व जन्म मे (अपने व्रतो मे लगे हुये दोषो की) निन्दा गर्हा रहित व्रत तप पालन करने से उत्पन्न नीच पुण्य के योग से इन कुभोग भूमियो मे निरन्तर नोच भोग भोगते है ॥९०॥ चारो दिशाओ मे निवास करने वाले एकोरुक आदि मनुष्य अपनो स्त्रियो के साथ गुफाओ मे रहते है, और सुख प्रदान करने वाली अति मधुर मिट्टी का आहार करते है ॥९१॥ शेष कुमनुष्य अपने सदृश आकार वाली अपनी अपनी स्त्रियो के साथ वृक्षो के मूल भाग मे निवास करते है, और क्षुधा शान्ति के लिये सव प्रकार के पत्र, पुष्प और फल खाते है। ॥९२॥ ये सब भोग कुभूमिज जीव मन्दकषायी होते है, और आयु के अन्त मे प्राणो को छोड कर भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिपी देवो के भवनो आदि मे उत्पन्न होते है। इन कुभोगभूमिज

जीवो मे काललब्धि के प्रभाव से जो जीव सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लेते है, वे सौधर्मैशान कल्प में उत्पन्न होते है, वे सम्यक्त्व रूपी पुण्य के प्रभाव से अन्यत्र (भवनत्रिकमे) उत्पन्न नही होते है ।।९३-९४।।

कुभोगभूमियों में कौन जीव उत्पन्न होते है ? उसे कहते हैं :—

येऽर्हल्लिङ्गे प्रपंचत्वादिकारिणः कुमार्गगाः ।
अनालोचनपूर्वं ये तपोवृत्तं चरन्ति च ।।९५।।
परेषां ये विवाहादिपापानुमतिकारिणः ।
ज्योतिष्कमन्त्रतन्त्रादिवैद्यकर्मोपजीविनः ।।९६।।
पंचाग्न्यादितपोनिष्ठा ये दृगादिविराधिनः ।
कुज्ञानकुतपोयुक्ता मौनहीनान्नभोजिनः ।।९७।।
कुकुलेषु च दुर्भावसूतकादियुतेषु वा ।
आहारग्रहणोद्युक्ताः सदोषाशनसेविनः ।।९८।।
इत्यादिशिथिलाचारा मायाविनोऽक्षलम्पटाः ।
शुद्धिहीनाश्च ते सर्वे स्युः कुपात्राणि लिङ्गिनः ।।९९।।
तेभ्यः कुपात्रलिङ्गिभ्यो दानं ददति ये शठाः ।
ते कुपुण्यांशतो जन्म लभन्तेऽत्र कुभूमिषु ।।१००।।
जघन्यभोगभूमौ यामृत्युत्पत्त्यादिका स्थितिः ।
सा ज्ञेया कुमनुष्याणां कुत्सिता भोगभूमिषु ।।१०१।।

अर्थः—जो कुमार्गगामी जीव जिनलिङ्ग को धारण करके प्रपञ्च आदि करते है, आलोचना किये बिना ही व्रतों एवं तपो का आचरण करते है, जो विवाह आदि की एव और भी अन्य सावद्य कार्यो की अनुमति देते है । ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र एव वैद्यक आदि कार्यों द्वारा उपजीविका अर्थात् आहार आदि प्राप्त करते है । पंचाग्नि आदि मिथ्या तपो में निष्ठा रखते है । जो सम्यग्दर्शन की विराधना करते है, कुज्ञान और कुतप से युक्त है, मौन छोडकर भोजन करते है । निन्द्य कुलो मे, दुष्ट स्वभाव (दुर्भावना) से युक्त एवं सूतक आदि से युक्त गृहों में आहार ग्रहण करते है । ४६ दोषो को न टालते हुए सदोष आहार ग्रहण करते है, अनेक प्रकार के शिथिलाचार से युक्त है, मायावी है, इन्द्रिय लम्पट हैं और बाह्याभ्यन्तर शुद्धता से रहित है, वे सब लिगी कुपात्र है और मर कर कुभोग भूमियो में जन्म लेते है, और जो मूर्ख जन ऐसे कुपात्रो एवं लिगधारियों को दान देते है वे सब खोटे पुण्य अशों से कुभोगभूमियो मे जन्म लेते है ।।९५–१००।।

नोट —यही विषय त्रिलोकसार गाथा ९२२ से ९२४, तिलोयपण्णत्ति अधिकार चतुर्थ गाथा २५०३ से २५११, जम्बूद्वीप पण्णत्ति सर्ग १० गाथा ५९ से ६९ मे द्रष्टव्य है ।

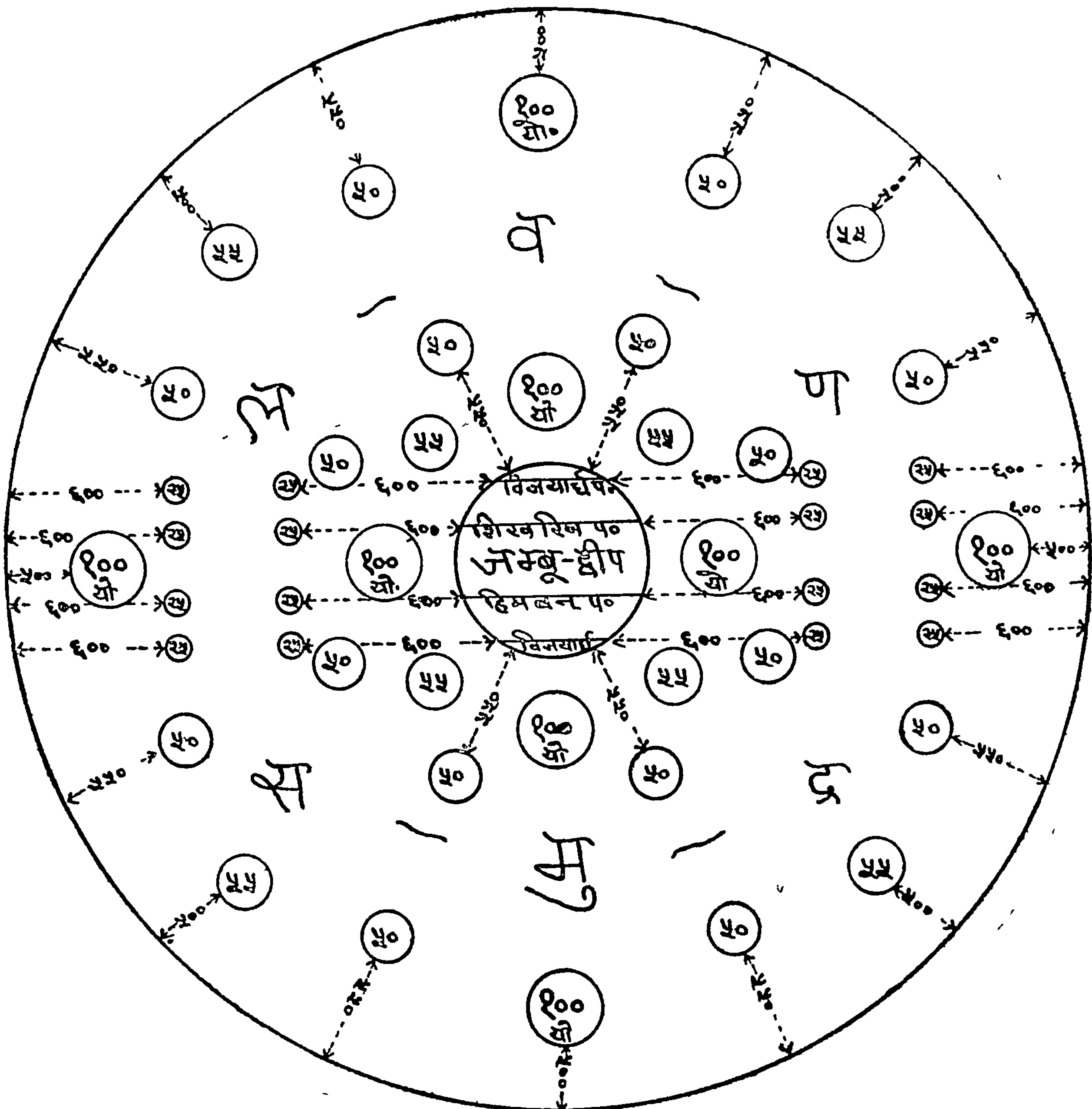
जघन्य भोगभूमि मे जीवो की जन्म, मरण एवं आयु आदि की जो व्यवस्था है, कुभोगभूमिज मनुष्यों की भी सभी व्यवस्थाएँ वैसी ही जानना ।।१०१।।

अब लवण समुद्र के अन्य २४ द्वीप कहते है :—

तथा चेदग्विधा द्वीपाश्चतुर्विंशतिसंख्यकाः ।
भवन्ति धातकीखण्डनिकटे लवणार्णवे ।।१०२।।

अर्थः—लवणसमुद्र मे जम्बूद्वीप के निकट जिस प्रकार से चौबीस द्वीप कहे है, वैसे ही धातकी खण्ड के समीप भी २४ ही द्वीप हैं ।।१०२।। इसप्रकार लवणसमुद्र मे ४८ द्वीप है ।

जिनका चित्रण निम्न प्रकार है —



अब कालोदधि समुद्र के २४ द्वीप कह कर सम्पूर्ण द्वीपों की संख्या दर्शाते हैं :—

कालोदजलधेस्तद्वत् सन्त्येवोभयभागयोः ।
द्वीपाः सर्वेऽष्टचत्वारिंशत्कुभोगमहीयुताः ॥१०३॥
विश्वेऽमी पिण्डिता द्वीपा अब्धिद्वयान्तरे स्थिताः ।
कुभोगभूनराकीर्णा ज्ञेयाः षण्णवतिप्रमाः ॥१०४॥

अर्थः—लवणसमुद्र के सदृश कालोदधि समुद्र के बाह्याभ्यन्तर दोनों भागों में भी चौबीस-चौबीस द्वीप है। ये सम्पूर्ण द्वीप ४८ कुभोगभूमियो से युक्त है ॥ १०३ ॥ कालोदधि और लवण इन दोनो समुद्रों के अभ्यन्तर भाग मे स्थित अड़तालीस अडतालीस द्वीपो का योग कर देने पर कुभोग-भूमिज मनुष्यों से व्याप्त ९६ अन्तर्द्वीप प्राप्त होते है ॥१०४॥

अब लवण समुद्र का अवगाह और उसकी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण आदि कहते हैं :—

मध्यभागेऽवगाहोऽस्य सहस्रयोजनप्रमः ।
मक्षिकापक्षसादृश्यश्चान्ते पातालवर्जितः ॥१०५॥
पञ्चाग्रदशलक्षाणि ह्येकाशीतिप्रमाण्यपि ।
सहस्राणि शतं चैकोनचत्वारिंशदेव हि ॥१०६॥
योजनानामिति ख्यातसंख्यया लवणाम्बुधौ ।
परिधिः प्रोदिता सूक्ष्मा किञ्चिदूना जिनागमे ॥१०७॥
एवं नाना गिरिद्वीपादियुतो लवणार्णवः ।
जम्बूद्वीपपरिक्षेपावृतोऽत्र वर्णितो बुधैः ॥१०८॥
वेलाः पातालरन्ध्राणि वृद्धिहानिशिखादयः ।
विद्यन्ते लवणाब्धौ च न शेषा संख्यवार्धिषु ॥१०९॥
यतः शेषार्णवाः सर्वे टङ्कोत्कीर्णा इवोर्जिताः ।
सहस्रयोजनागाहा वृद्धिह्रासातिगाः स्मृताः ॥११०॥

अर्थः—लवणसमुद्र के वडवानलो का मध्य भाग मे जल का अवगाह (गहराई) एक हजार योजन है, और अन्त मे अर्थात् समुद्र के किनारों पर जल मक्खी के पंख सदृश पतला है ॥१०५॥ जिनागम मे लवण समुद्र की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण कुछ कम पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस (१५८११३९) योजन कही गई है ॥१०६-१०७॥ विद्वानो ने लवण समुद्र को अनेकों पर्वतों एव द्वीपो से युक्त, जम्बूद्वीप को वेष्टित किये हुए और चूडी सदृश वलयाकार कहा है ॥१०८॥

वेला, पातालविवर, जल मे हानि वृद्धि एवं शिखा सदृश जल की ऊँचाई अर्थात् जल की शिखा केवल लवणसमुद्र मे ही है, अन्य असख्यात समुद्रो मे नही है ॥१०९॥ इसलिए शेप सब समुद्र टङ्कोत्कीर्ण के सदृश, एक हजार योजन अवगाह से युक्त और हानि वृद्धि रूप विकार से रहित कहे गये है ॥११०॥

ततोऽस्ति वलयाकारी धातकीवृक्षलक्षितः ।
योजनानां चतुर्लक्षैर्विस्तीर्णो हि द्विधाव्ययः ॥१११॥
द्वितीयो धातकीखण्डद्वीपस्तस्य द्वयोर्दिशोः ।
दक्षिणोत्तरयोः स्यातामिक्ष्वाकाराख्यपर्वतौ ॥११२॥
सहस्रयोजनव्यासौ चतुःशतसुयोजनैः ।
उन्नतौ सच्चतुःकूटैः प्रत्येकं मूर्ध्नि भूषितौ ॥११३॥
एकैक श्रीजिनागारालंकृतौ काञ्चनप्रभौ ।
लवणाम्बुधिकालोदवेद्यन्तस्पर्शिनौ परौ ॥११४॥
ताभ्यां स धातकीखण्डो द्विधाभेदमुपाश्रितः ।
पूर्वाख्यो धातकीखण्ड एकोऽन्योऽपरसंज्ञकः ॥११५॥
एतस्याभ्यन्तरा सूची पञ्चलक्षप्रमाणिका ।
मध्यमा नव लक्षा च बाह्या जिनागमे मता ॥११६॥
योजनानां जिनाधीशैर्लक्षत्रयोदशप्रमा ।
सूचीनां त्रिगुणा सर्वा स्थूला परिधिरुच्यते ॥११७॥
लक्षाः पञ्चदशैकाशीतिसहस्राः शतं तथा ।
योजनानां किलैकोनचत्वारिंशदिति स्फुटम् ॥११८॥
परिधिः प्रोदिता पूर्वसूच्या दक्षैर्जिनागमे ।
अष्टाविंशतिलक्षाः षट्चत्वारिंशत्सहस्रकाः ॥११९॥
तथैवैकोन पञ्चाशत् परिधिश्चेति मध्यमा ।
लक्षाणि चैकचत्वारिंशद्दशैव सहस्रकाः ॥१२०॥
शतानि नव चैकाग्रषष्टिरित्यङ्कयोजनैः ।
तद्द्वीपे बाह्यसूच्या हि कीर्तिता परिधिर्जिनैः ॥१२१॥

अर्थ.—लवणसमुद्र के बाद वलयाकार, धातकी वृक्ष से युक्त, चार लाख योजन प्रमाण व्यास वाला, पूर्व और पश्चिम के भेद से दो भेद वाला और अविनाशी धातकी खण्ड नाम का दूसरा द्वीप है । इस द्वीप की उत्तर दक्षिण दोनो दिशाओ मे दो इष्वाकार पर्वत है । जो (पूर्वपश्चिम) एक हजार

योजन चौडे, चार सौ योजन ऊँचे (और दक्षिणोत्तर लम्बे) है। ये दोनो पर्वत काञ्चन वर्ण वाले है, और इनके शिखर चार-चार कूटो से सुशोभित है। वे इष्वाकार पर्वत एक एक जिनमन्दिर से विभूपित है, तथा लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्र की वेदियो को स्पर्श करते है ॥१११-११४॥ उन इष्वाकार पर्वतो से वह धातकी खण्ड पूर्व धातकी खण्ड और पश्चिम धातकी खण्ड के नाम से दो प्रकार वाला है ॥ ११५ ॥ जिनेन्द्र भगवंतो के द्वारा जिनागम मे धातकी खण्ड का अभ्यंतर सूची व्यास पाँच लाख योजन, मध्यम सूची व्यास नौ लाख योजन और बाह्य सूची व्यास तेरह लाख योजन प्रमाण कहा गया है। तीनों सूची व्यासों का त्रिगुणा तीनों स्थूल परिधियों का प्रमाण होता है। अर्थात् अभ्यन्तर सूची व्यास की स्थूल परिधि पन्द्रह लाख, मध्यम परिधि सत्ताईस लाख और बाह्य सूची व्यास की स्थूल परिधि का प्रमाण उन्तालीस लाख योजन है ॥११६–११७॥ जिनागम में विद्वानों के द्वारा धातकी खण्ड की अभ्यन्तर सूक्ष्म परिधि का प्रमाण पद्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उन्तालीस (१५८११३९) योजन कहा गया है। मध्यम सूक्ष्म परिधि का प्रमाण अट्ठाईस लाख छचालीस हजार उनचास (२८४६०४९) योजन और बाह्य सूची व्यास की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण जिनेन्द्र भगवान के द्वारा इक्तालीस लाख दश हजार नौ सौ इकसठ (४११०९६१) योजन कहा गया है ॥११८-१२१॥

अब धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वतों का अवस्थान, भरतादि क्षेत्रों का आयाम और हिमवान् आदि पर्वतों का उत्सेध एवं विस्तार आदि दर्शा कर दृष्टान्त द्वारा इनके आकारों का वर्णन करते है :--

महामेरोश्च मेरूद्वौ पूर्वापरौ हि क्षुल्लकौ ।
स्तो मध्यभागयोर्धातकीखण्डद्वीपयोर्द्वयोः ॥१२२॥

मेरोर्दक्षिणदिग्भागाद् भरतादीनि सप्त च ।
क्षेत्राणि योजनानां स्युश्चतुर्लक्षायतान्यपि ॥१२३॥

योजनानां चतुर्लक्षैरायामा षट् कुलाद्रयः ।
हिमाद्रयाद्याः समोत्सेधा जम्बूद्वीपकुलाचलैः ॥१२४॥

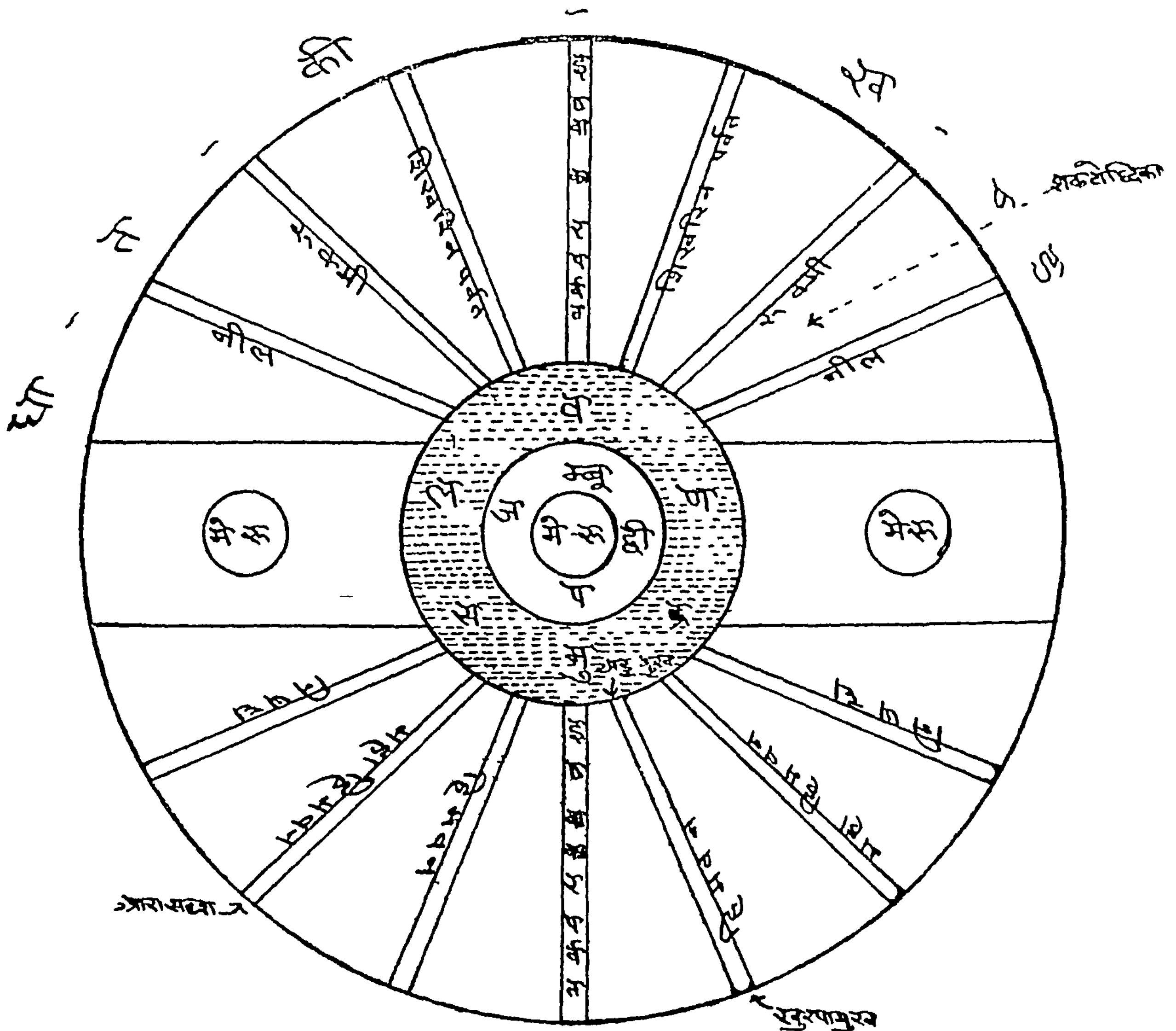
आद्यद्वीपकुलाद्रिभ्यो सर्वेभ्यो विस्तरान्विताः ।
प्रत्येकं द्विगुणव्यासेनैव सन्ति मनोहराः ॥१२५॥

चक्रस्येह यथाराश्च मध्ये छिद्राणि चारयो ।
द्वीपस्यास्य तथा सन्ति ह्यराकाराः कुलाद्रयः ॥१२६॥

अरान्तररन्ध्रतुल्यानि क्षेत्राणि निखिलानि च ।
सङ्कीर्णानि निजाभ्यन्तरे बाह्ये विस्तृतान्यपि ॥१२७॥

अर्थ —दोनो धातकी खण्ड द्वीपो (पूर्व धातकी, पश्चिम धातकी खण्डो) के ठीक मध्य भाग मे पूर्व, पश्चिम दिशा मे एक एक मेरु पर्वत अवस्थित है ।। १२२ ।। मेरु पर्वतो की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर भरत, हैमवत आदि सात-सात क्षेत्र है, जो चार-चार लाख योजन प्रमाण लम्बे है ।।१२३।। भरत आदि क्षेत्रो के मध्य हिमवन् आदि छह-छह कुलाचल पर्वत है । इन कुलाचलो का आयाम चार-चार लाख योजन प्रमाण और उत्सेध जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलो के सदृश अर्थात् १००, २००, ४००, ४००, २०० और १०० योजन प्रमाण है, किन्तु धातकी खण्डस्थ कुलाचलों आदि का विष्कम्भ विस्तार जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलों के विस्तार से दूने दूने प्रमाण वाला है ।।१२४-१२५।। जिस प्रकार चक्र-पहिया मे आरा होते है और आरो के मध्य भाग मे छिद्र होते है, इसी प्रकार इस धातकी खण्ड मे स्थित कुलाचल आरो के सदृश है और उनके मध्य स्थित क्षेत्रो मे भरतादि सभी क्षेत्र स्थित है, जो अभ्यन्तर अर्थात् लवण समुद्र की ओर सकीर्ण तथा बाह्य अर्थात् कालोदधि की ओर विस्तीर्ण है ।।१२६-१२७।।

इसका चित्रण निम्न प्रकार है —



अब धातकीखण्ड के पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण और इस क्षेत्र से रहित द्वीप की तीनों परिधियों का प्रमाण कहते है :—

एकलक्षसहस्राण्यष्टसप्ततिः शताष्टकम् ।
योजनानां द्विचत्वारिंशच्चेति संख्यया मतम् ॥१२८॥
तत् क्षेत्रं पर्वतै रुद्धं शेषं पर्वतवर्जितम् ।
त्रिधापरिधिभेदेन क्षेत्रं त्रिविधमुच्यते ॥१२९॥
चतुर्दशैव लक्षाणि द्वे सहस्रे शतद्वयम् ।
सप्ताग्रानवतिश्चेति योजनानां हि संख्यया ॥१३०॥
जघन्यपरिधेर्ज्ञेयं क्षेत्रं सर्वाचलातिगम् ।
षड्विंशतिश्च लक्षाणि सप्तषष्टिसहस्रकाः ॥१३१॥
सप्तोत्तरशते द्वे चेत्यङ्कयोजनविस्तरैः ।
मध्यमापरिधेः क्षेत्रं भवेत्पर्वतदूरगम् ॥१३२॥
लक्षा एकोनचत्वारिंशद् द्वात्रिंशत्सहस्रकाः ।
तथा शतैकमेकोनविंशतियोजनानि च ॥१३३॥
इत्येवं पर्वतातीतं क्षेत्रं सर्वं मतं जिनैः ।
उत्कृष्टपरिधेर्धातकीखण्डस्यास्य पिण्डितम् ॥१३४॥

अर्थः—धातकीखण्ड मे पर्वतो से अविरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण एक लाख अट्ठत्तर हजार आठ सौ व्यालीस (१७८८४२$\frac{२}{१९}$) योजन है। (इस क्षेत्र को प्राप्त करने का विधान त्रिलोकसार गाथा ९२८ की टीका से ज्ञातव्य है।) इस क्षेत्र के अतिरिक्त सर्व क्षेत्र, पर्वत क्षेत्र से रहित है, जो तीन प्रकार की परिधियो के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है ॥१२८-१२९॥ लवणोदधि के समीप जघन्य परिधि का पर्वत रहित क्षेत्र अर्थात् पर्वत रहित जघन्य परिधि का प्रमाण (१५८११३९—१७८८४२)= १४०२२९७ योजन, पर्वत रहित मध्यम परिधि का प्रमाण (२८४६०५०—१७८८४२)=२६६७२०७ योजन और पर्वत रहित बाह्य (उत्कृष्ट) परिधि का प्रमाण (४११०९६१—१७८८४२)= ३९३२११९ योजन है। इस प्रकार जिनेन्द्र देव के द्वारा पर्वत रहित तीनों परिधियो का प्रमाण कहा गया है ॥१३०-१३४॥

अब धातकीखण्ड स्थित क्षेत्रों एवं पर्वतों का विष्कम्भ कहते है :—

क्षेत्राच्चतुर्गुणं क्षेत्रं विदेहान्तमिह स्मृतम् ।
ततश्चतुर्गुणोनान्युत्तरक्षेत्रत्रयाणि च ॥१३५॥

जम्बूद्वीपहिमाद्रेः स्यादत्रत्यो हिमवान्महान् ।
द्विगुणव्याससयुक्तो हिमाद्रेरपराचलौ ॥१३६॥
चतुश्चतुर्गुणाव्यासैर्विस्तृतौ चोत्तराद्रयः ।
नीलादयस्त्रयो ज्ञेया हिमाद्र्यादि त्रिकैः समाः ॥१३७॥

अर्थ —दोनो धातकी खण्डो के भरतादि क्षेत्रों का क्षेत्र से क्षेत्र के विष्कम्भ विदेह पर्यन्त चौगुने चौगुने है और विदेह के बाद उत्तर दिशा सम्बन्धी क्षेत्रो का विष्कम्भ चौगुना चौगुना हीन हीन है। अर्थात् भरत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त और ऐरावत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त क्षेत्रों का विष्कम्भ क्रमशः चौगुना है। जम्बूद्वीपस्थ हिमवन् पर्वत से धातकी खण्डस्थ हिमवन् पर्वत का विष्कम्भ दूना है, और धातकी खण्डस्थ हिमवन् के विस्तार से निषध कुलाचल तक का विस्तार क्रमश· चौगुना है, तथा उत्तर दिशा गत नील आदि तीनो पर्वतो का विष्कम्भ निषध, महाहिमवन् और हिमवान् पर्वतो के सदृश समझना चाहिए ॥१३५-१३७॥

अथ क्षेत्रकुलाचलानां प्रत्येकं विष्कम्भः कथ्यते :—

भरतस्याभ्यन्तरविस्तृति षट्सहस्र-षट्शतचतुर्दशयोजनानि योजनस्य द्विशतद्वादशोत्तरभागाना एकोनत्रिंशदधिकशतभागाश्च । मध्यव्यास द्वादशसहस्रपञ्चशतैकाशीतियोजनानि, द्विशतद्वादशोत्तर भागाना षट्त्रिंशद्भागा । बाह्यविष्कभ अष्टादशसहस्रपञ्चशतसप्तचत्वारिंशद्योजनानि द्विशतद्वादशोत्तरभागाना पञ्चपञ्चाशदग्रशतभागाश्च ।

हैमवतस्याभ्यन्तरविस्तारः षड्विंशतिसहस्रचतु शताष्टपञ्चाशद्योजनानि, द्विशतद्वादशोत्तरभागाना द्विनवतिभागा. । मध्यविष्कम्भ. पञ्चाशत्सहस्रत्रिशतचतुर्विंशतियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशोत्तरभागाना चतुश्चत्वारिंशदग्रशतभागाश्च । बाह्यव्यासः चतुःसप्ततिसहस्रैकशतनवतियोजनानि योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना षट्पञ्चाशदधिकशतभागाश्च ।

हरिवर्षस्याभ्यन्तरविष्कम्भ–एकलक्षपञ्चसहस्राष्टशतत्रयस्त्रिंशद्योजनानि, योजनस्य द्वादशाग्रद्विशतभागाना षट्पञ्चाशदधिकशतभागाश्च । मध्यव्यास द्विलक्षैकसहस्रद्विशताष्टनवतियोजनानि योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना द्विपञ्चाशदग्रशतभागाश्च । बाह्यविस्तरः द्विलक्षषण्णवति सहस्रसप्तशतत्रिषष्टियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना अष्टचत्वारिंशदधिकशतभागा ॥

विदेहक्षेत्रस्याभ्यन्तरविष्कम्भ –चतुर्लक्षत्रयोविंशतिसहस्रत्रिशतचतुस्त्रिंशद्योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना द्विशतभागाश्च । मध्ये विस्तृतिः अष्टलक्षपञ्चसहस्रैकशतचतुर्णवतियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना चतुरशीत्यग्रशतभागाः । बाह्यविस्तर· एकादशलक्षसप्ताशीति सहस्रचतु-पञ्चाशद्योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना अष्टषष्ट्यग्रशतभागा एवं रम्यकस्य हरिवर्षविष्कम्भेन

समस्त्रिविघ्नो विष्कम्भोऽस्ति । हैरण्यवतस्य त्रिधा व्यासः हैमवतव्याससमो भवेत् । ऐरावतस्याभ्यन्तर-मध्यबाह्यविष्कम्भाः भरतविष्कम्भसमाना स्यु । इति पूर्वापरधातकीखण्डयोर्द्वयोः भरतादिसप्तक्षेत्राणामभ्यन्तरमध्यबाह्यविष्कम्भा ज्ञातव्या ।

नोट —उपर्युक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका मे निहित है ।

धातकीखण्डद्वीपस्थ भरतादि सात क्षेत्रों का अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य विष्कम्भ :–

क्रमांक	क्षेत्र-नाम	अभ्यन्तर वि०	मध्य विष्कम्भ	बाह्य विष्कम्भ
१	भरत	६६१४ १२९/२१२ योजन	१२५८१ ३६/२१२ योजन	१८५४७ १५५/२१२ योजन
२	हैमवत	२६४५८ १२/२१२ ,,	५०३२४ १४४/२१२ ,,	७४१९० १५६/२१२ ,,
३	हरि	१०५८३३ १५६/२१२ ,,	२०१२९८ १५२/२१२ ,	२९६७६३ १४८/२१२ ,,
४	विदेह	४२३३३४ २००/२१२ ,,	८०५१९४ १८४/२१२ ,,	११८७०५४ १६८/२१२ ,,
५	रम्यक	१०५८३३ १५६/२१२ ,,	२०१२९८ १५२/२१२ ,,	२९६७६३ १४८/२१२ ,,
६	हैरण्यवत	२६४५८ १२/२१२ ,,	५०३२४ १४४/२१२ ,,	७४१९० १५६/२१२ ,,
७	ऐरावत	६६१४ १२९/२१२ ,,	१२५८१ ३६/२१२ ,,	१८५४७ १५५/२१२ ,,

अथ कुलाद्रीणां विष्कम्भा प्रोच्यन्ते :––

हिमवतविष्कम्भः द्विसहस्रैकशतपञ्चयोजनानि, योजनस्यैकोनविंशतिकलानां कलाः पञ्च । महाहिमवतो विस्तार अष्टसहस्रचतुःशतैकविंशति योजनानि कलैका च ।

निषधस्य व्यासः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रषट्शतचतुरशीतियोजनानि चतुःकलाश्च नीलस्य व्यासः निषधव्याससमः। रुक्मिणः विस्तारः महाहिमवतवद्विस्तारसमानः शिखरिणः विष्कम्भः हिमवद्विष्कम्भतुल्य. ।

धातकी खण्डस्थ कुलाचलों का विष्कम्भ :—

क्रमाक	नाम	विष्कम्भ	क्रमाक	नाम	विष्कम्भ
१	हिमवन्	२१०५ ५/१९ योजन	४	नील	३३६८४ ४/१९ योजन
२	महाहिमवन्	८४२१ १/१९ ,,	५	रुक्मी	८४२१ १/१९ ,,
३	निषध	३३६८४ ४/१९ ,,	६	शिखरी	२१०५ ५/१९ ,,

अब धातकीखण्डस्थ ह्रद, कुण्ड और नदियों के विस्तार आदि का निरूपण करते है :—

धातकीखण्डमध्यस्था ह्रदकुण्डापगादयः ।
सर्वे द्विगुणविस्ताराः कीर्तिताः श्रीजिनागमे ।।१३८।।
ह्रदकुण्डापगादिभ्यः प्राग्द्वीपस्थेभ्य एव च ।
अवगाहसमाना हि वेदीवनादिभूषिताः ।।१३९।।

अर्थ —जिनागम मे जम्बूद्वीपस्थ सरोवर आदि के विस्तार से धातकीखण्डस्थ समस्त ह्रद, कुण्ड और नदियो का विस्तार दूना दूना कहा गया है ।।१३८।। तथा प्रथम (जम्बू) द्वीपस्थ ह्रद, कुण्ड और नदियो के अवगाह समान ही धातकीखण्डस्थ वन, वेदी आदि से विभूषित ह्रद कुण्ड और नदियो का अवगाह कहा गया है ।।१३९।।

अब धातकीखण्डस्थ सरोवरों का व्यास आदि कहते है :—

योजनानां सहस्रे द्वे पद्मस्यायाम एव च ।
सहस्रयोजनव्यासस्ततो परौ द्रहद्वयौ ।।१४०।।
द्विगुणद्विगुणव्यासदीर्घौ शेषास्त्रयोऽपरे ।
ह्रदा एभिर्ह्रदैस्तुल्या धातकीखण्डयोर्द्वयोः ।।१४१।।

अर्थः—धातकीखण्डस्थ पद्मसरोवर का आयाम २००० योजन और विस्तार १००० योजन प्रमाण है। इसके आगे स्थित महापद्म का आयाम ४००० योजन एव विस्तार २००० योजन है।

तिगिञ्छ सरोवर का विस्तार आदि महापद्म से दूना है। इसके आगे केशरी महा पुण्डरीक और पुण्डरीक सरोवरो का प्रमाण क्रमश. तिगिंछ, महापद्म और पद्म सरोवरो के सदृश ही है ॥१४०-१४१॥

अब धातकीखण्डस्थ कुण्डों का व्यास आदि कहते है :—

गङ्गाकुण्डस्य विस्तारः पञ्चविंशतियोजनैः ।
शताग्रैश्च तथा सिन्धुकुण्डस्य कीर्तितो बुधैः ॥१४२॥
सीतोदान्तनदीकुण्डानामस्माद् द्विगुणः क्रमात् ।
व्यासो वृद्धियुतोऽन्येषामेभिः कुण्डैः समानकः ॥१४३॥

अर्थः—गणधरों के द्वारा गंगा कूट का विस्तार १२५ योजन और सिन्धु कूट का विस्तार भी १२५ योजन कहा गया है, इसके आगे सीतोदा नदी पर्यन्त यह विस्तार दुगुना दुगुना कहा गया है। सीतोदा नदी के आगे कुण्डो का विस्तार क्रमशः उत्तर के अर्थात् गगा आदि कुण्डो के विस्तार सदृश ही जानना चाहिए ॥१४२–१४३॥

अब धातकीखण्डस्थ गंगादि नदियों का हिमवन् आदि पर्वतों पर ऋजु (सीधे) बहाव का प्रमाण कहते हैं :—

योजनानां सहस्राणि ह्येकोनविंशतिस्तथा ।
त्रिशतानि नवाग्राणीति गङ्गासरितो मतम् ॥१४४॥
ऋजुत्वं हिमवन्मूर्ध्निसिन्धोश्च गमनं प्रति ।
रक्तारक्तादयोस्तद्वच्छिखर्यचलमस्तके ॥१४५॥
शेषाखिलनदीनां स्याद् ऋजुत्वगमनं द्रहात् ।
कुलाद्रितटपर्यन्तं पर्वतोपरि नान्यथा ॥१४६॥

अर्थः—धातकीखण्डस्थ गंगा नदी हिमवन् पर्वत पर १९३०९ योजन पर्यन्त सीधी जाती है। हिमवन् पर्वत पर सिन्धु नदी का सीधा बहाव भी इतना ही है। इसी प्रकार शिखरी पर्वत पर रक्ता-रक्तोदा नदियों का भी सीधा बहाव १९३०९ योजन प्रमाण ही है। शेष सम्पूर्ण नदियों का अपने अपने पर्वतो के ऊपर सीधा बहाव सरोवरो से कुलाचलों के तट पर्यन्त है, अन्य प्रकार नही है ॥१४४–१४६॥

अब गंगा सिन्धु आदि नदियों का निर्गम आदि स्थानों का व्यास कहते है :—

गङ्गासिन्ध्वोश्च विस्तारो निर्गमे योजनान्यपि ।
सार्धद्वादशवार्ध्यन्ते पञ्चविंशाधिकं शतम् ॥१४७॥

ततोऽन्यसरितां व्यासो द्विगुणद्विगुणः क्रमात् ।
सीतोदान्तं तथान्यासां विष्कम्भो ह्लाससंयुतः ।।१४८।।

अर्थ:—निर्गम स्थान पर गगा और सिन्धु नदियो का मुख व्यास १२½ योजन प्रमाण है, इससे क्रमश वृद्धि होते हुए समुद्र प्रवेश द्वार पर नदी का विस्तार १२५ योजन हो जाता है। इस प्रकार सीतोदा पर्यन्त अन्य नदियो का यह विस्तार दूना दूना होता जाता है, इसके आगे जिस क्रम से वृद्धिगत हुआ था, उसी क्रम से घटता हुआ अन्त मे गगा सिन्धु सदृश ही रह जाता है ।।१४७-१४८।।

अब धातकीखण्डस्थ पूर्वविदेह के मेरु पर्वत का प्रमाण एवं उसके चैत्यालयों का प्रमाण कहते है —

मेरुः पूर्वविदेहस्य मध्यभागेऽस्ति क्षुल्लकः ।
सहस्रयोजनागाहो वनधामाद्यलंकृतः ।।१४९।।
तुङ्गश्चतुरशीत्या च सहस्रयोजनैः शुभः ।
द्व्यष्टचैत्यालयोपेतश्चूलिकादिविराजितः ।।१५०।।

अर्थ —धातकीखण्डस्थ पूर्वविदेह क्षेत्र के मध्यभाग मे वन एव प्रासाद आदि से अलंकृत विजय नाम का मेरु पर्वत स्थित है। इसका अवगाह (नीव) एक हजार योजन और ऊँचाई ८४००० योजन प्रमाण है। यह विजय मेरु सोलह अकृत्रिम जिन चैत्यालयो और चूलिका आदि से सहित होने के कारण अत्यन्त शोभायमान है।।१४९-१५०।।

अब विजयमेरु पर्वत के सम्पूर्ण विष्कम्भ एवं परिधियों के प्रमाण आदि का विस्तृत वर्णन करते है :—

अस्य मेरो कन्दतले विष्कम्भः योजनाना पञ्चनवतिशतानि । परिधिश्च किञ्चिदूनद्विचत्वारिंशदधिकत्रिशत्सहस्रयोजनानि । भूतले व्यास नवसहस्रचतु शतयोजनानि । परिधिश्च एकोनत्रिंशत्सहस्रसप्तशतपञ्चविंशतियोजनानि । भूतलादूर्ध्व पञ्चशतयोजनानि गत्वास्य मेरो प्रथममेखलाया प्रागुक्त वर्णनोपेत पञ्चशतयोजनविस्तृत चतुश्चैत्यालयादिअलकृत नानापादपाकीर्ण शाश्वत बन स्यात् । तत्र नन्दनवनसहितमेरोर्बाह्यविस्तार —नवसहस्रत्रिशतपञ्चाशद्योजनानि । बाह्यपरिधि एकोन त्रिंशत्सहस्रपञ्चशतसप्तषष्टियोजनानि । वनरहितमेरोऽभ्यन्तरविष्कम्भः अष्टसहस्रत्रिशतपञ्चाशद्योजनानि । अभ्यन्तरपरिधिः षड्विंशतिसहस्रचतुःशतपञ्चयोजनानि । ततः ऊर्ध्व सार्धपञ्चपञ्चाशत्सहस्रयोजनानि विमुच्य मेरो चतुर्जिनालयवापीसुरसद्मादि विभूषित पञ्चशतयोजनविस्तीर्णं रम्य सौमनसाख्य वन विद्यते, तेषा सार्धपञ्चपञ्चाशत्सहस्रयोजनाना मध्येऽसौ मेरु दशसहस्रयोजनपर्यन्तं समविष्कम्भो भवति तत सार्धपञ्चचत्वारिंशत्सहस्रयोजनान्तं क्रमह्रस्वश्च ।

तत्रास्य बाह्यविष्कम्भ: त्रिसहस्राष्टशतयोजनानि । बाह्यपरिधि द्वादशसहस्रकिञ्चिदूनसप्तदश योजनानि । अभ्यन्तरव्यास. द्विसहस्राष्टशतयोजनानि । अभ्यन्तरपरिधिः अष्टसहस्राष्टशतचतु.पञ्चाशद्योजनानि । ततोऽस्यैव मेरोरूर्ध्वं अष्टाविंशति सहस्रयोजनानि विहाय मूर्ध्निचतुर्नवतियुतचतु शतयोजनव्यास जिनालयपाण्डुकशिलादि भूषित पाण्डुकवनमस्ति । तेषामष्टाविंशतिसहस्रयोजनानां, मध्ये दशसहस्रयोजनपर्यन्तं मेरुः ऋजुविष्कम्भो भवेत् । ततोऽष्टादशसहस्र योजनान्तं क्रमहीयमानह्रस्वश्च । तत्रास्य सहस्रयोजनविस्तीर्णस्य मेरोर्मूर्ध्नि परिधि: त्रिसहस्रैकशतद्विषष्टियोजनानि साधिकः क्रोशश्च । अत्र मेरौ अन्ये चैत्यालयदेवगृहवापीकूटचूलिकादयः उत्सेध-व्यासावगाहादि वर्णनै जम्बूद्वीपस्थ महामेरोः समाना भवन्ति । ईदृग्विधवर्णनोपेतोऽपरमेरुरपि पश्चिमधातकीखण्ड विदेहस्य मध्ये ज्ञातव्यः ।

अर्थः—इस विजयमेरु पर्वत का मूल में अर्थात् चित्रा पृथ्वी के तल (निचले) भाग पर (जड़) विस्तार ९५०० योजन है, और इस कन्द विष्कम्भ की परिधि कुछ कम ३००४२ योजन प्रमाण है। भूतल पर अर्थात् पृथ्वीतल (चित्रा पृथ्वी के उपरले भाग) पर विजयमेरु का व्यास ९४०० योजन तथा परिधि २९७२५ योजन प्रमाण है । पृथ्वीतल से ५०० योजन ऊपर जाकर विजयमेरु की प्रथम मेखला (कटनी) पर सुदर्शनमेरु की प्रथम मेखला के वर्णन के सदृश ५०० योजन विस्तृत, चार चैत्यालयो आदि से अलकृत और अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त शाश्वत नन्दन नाम का वन है। उस नन्दन वन सहित विजयमेरु का बाह्यविस्तार ९३५० योजन और इसकी बाह्यपरिधि २९५६७ योजन प्रमाण है। नन्दनवन के व्यास रहित मेरु का अभ्यन्तर व्यास ८३५० योजन एव इसी व्यास की अभ्यन्तर परिधि २६४०५ योजन प्रमाण है। इस नन्दनवन से ५५५०० योजन ऊपर जाकर मेरु की दूसरी मेखला है, जिस पर चार जिन चैत्यालय, वापियाँ एव देवो के प्रासादो आदि से विभूषित ५०० योजन विस्तृत सौमनस नामका वन है। इस ५५५०० योजनों के मध्य मेरु १०००० योजन पर्यन्त समरुन्द्र अर्थात् समान चौडाई से युक्त है, इसके बाद ४५५०० योजन पर्यन्त क्रमश. हीन होता गया है। यहाँ का अर्थात् सौमनस वन के बाह्यव्यास का प्रमाण ३८०० योजन और इसकी बाह्यपरिधि का प्रमाण कुछ कम १२०१७ योजन है । सौमनस वन का अभ्यन्तर व्यास २८०० योजन और अभ्यन्तर व्यास की परिधि ८८५४ योजन प्रमाण है । इस सौमनस वन से २८००० योजन ऊपर जाकर चार जिनालयो एवं पाण्डुक आदि शिलाओ से युक्त ४९४ योजन विस्तृत पांडुक नाम का वन है । इन २८००० योजनो के मध्य १०००० योजन पयन्त मेरु का विष्कम्भ बिल्कुल सीधा है । अर्थात् चौडाई समान है। इसके ऊपर १८००० योजनो पर्यन्त विष्कभ क्रमश. हीन होता गया है। पांडुक वन का बाह्यविष्कम्भ १००० योजन और मेरु के ऊपर परिधि ३१६२ योजन और कुछ अधिक एक कोस प्रमाण है। यहाँ मेरु पर्वत के ऊपर चार जिन चैत्यालय, देवगृह, वापी, कूट एवं चूलिका आदि है, इन सब के उत्सेध, व्यास और अवगाह आदि का वर्णन जम्बूद्वीपस्थ महामेरु के सदृश ही जानना चाहिए। इसी प्रकार धातकीखण्ड स्थित पश्चिम विदेह क्षेत्र के

मध्य मे अचल नाम का मेरु पर्वत स्थित है, उसका सम्पूर्ण वर्णन इसी विजय मेरु पर्वत के सदृश ही जानना चाहिए।

अब भद्रशाल वन, गजदन्त और देवकुरु उत्तर कुरु का आयाम एवं सूची-व्यास तथा परिधि आदि का वर्णन करते है :—

मेरो प्राक् पश्चिमदिगाश्रिते जिनेन्द्रचैत्यालयाद्यलंकृते एकलक्षसप्तसहस्राष्टशतैकोनाशीति-योजनायामे पचविशत्यग्रद्वादशशतयोजनविस्तीर्णे पूर्वापर भद्रशालाह्वये द्वे वने भवत । अत्रैव मेरो-र्वायुनैऋत्यविदिगाश्रितौ त्रिलक्षषट्पचाशत् सहस्रद्विशतसप्तविशतियोजनायामौ प्रागुक्तकूटचैत्यालय-वनवेद्याद्यलकृतौ गन्धमादनविद्युत्प्रभाख्यौ द्वौ लघुगजदन्तपर्वतौ स्याता । ईशानाग्नेयविदिक् स्थितौ पचलक्षैकोनसप्ततिसहस्रद्विशतैकोनषष्टियोजनायामौ । माल्यवत्सौमनसाह्वयौ द्वौ वृहद्गजदन्ताचलौ भवत । देवकुरूत्तरकुरुभोगभूम्यो प्रत्येक कुलाचलसमीपे विष्कम्भ द्विलक्षत्रयोविशतिसहस्रैकशताष्ट-पचाशद्योजनानि, कुलाचलात् मेरुपर्यन्त वक्रायाम त्रिलक्षसप्तनवतिसहस्राष्टशतसप्तनवति योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां द्विनवतिभागाश्च । कुरूणामुभयान्तयोः ऋज्वायाम त्रिलक्षषट्षष्टिसहस्र षट्शताशीतियोजनानि । पूर्वापरमेर्वोः पूर्वापरभद्रशालान्तयोश्वान्तराले जम्बूद्वीपलवणसमुद्रादिसहिते सूची एकादश लक्षपचविशतिसहस्रैकशताष्टपचाशद्योजनानि । सूच्या परिधि पञ्चत्रिंशल्लक्षाष्टपचा-शत्सहस्रद्विषष्टियोजनानि । पूर्वापर मेर्वो, पूर्वापर सर्वभद्रशालवनाभ्या विनान्तराले सूची षड्लक्षचतु. सप्ततिसहस्राष्टशत द्विचत्वारिंशद्योजनानि । तत्सूच्या. परिधि· एकविशतिलक्षचतुस्त्रिशत् सहस्राष्ट-त्रिशद्योजनानि । मेरुपूर्वापरभद्रशालदेवारण्य भूतारण्यवनैर्विना, पूर्वापरविदेहयोः प्रत्येक व्यासः एका-शीतिसहस्रपचशतसप्तसप्तति योजनानि ।

अर्थ —धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वत की पूर्व और पश्चिम दिशा मे मेरु के मूल अर्थात् पृथ्वीतल पर जिन चैत्यालयो आदि से अलकृत, १०७८७६ योजन लम्बे और १२२५ योजन चौडे पूर्वभद्रशाल एव पश्चिम भद्रशाल नाम के दो वन है। इसी पश्चिम भद्रशाल वन मे मेरु की वायव्य एव नैऋत्य विदिशाओ मे क्रम से ३५६२२७ योजन लम्बे और पूर्व मे कहे हुए कूटो, जिन चैत्यालयो एव वन वेदी आदि से अलकृत गन्धमादन तथा विद्युत्प्रभ नाम के दो दो लघु गजदन्त पर्वत है। पूर्व भद्रशाल वन मे इसी मेरु की ऐशान और आग्नेय विदिशाओ मे ५६९२५९ योजन लम्बे माल्यवान् और सौमनस नाम के दो वृहद् गजदन्त पर्वत है। धातकीखण्डस्थ देवकुरु उत्तरकुरु दोनो भोगभूमियो का विष्कम्भ कुलाचलो के समीप २२३१५८ योजन है। अर्थात् देवकुरु उत्तरकुरु (प्रत्येक) की जीवा २२३१५८ योजन है। कुलाचलो से मेरु पयन्त का वक्र आयाम (धनु पृष्ठ) ३९७८९७$\frac{92}{212}$ योजन है। अर्थात् प्रत्येक कुरुक्षेत्र का धनु पृष्ठ ३९७८९७$\frac{92}{212}$ योजन प्रमाण है। दोनो कुरुक्षेत्रो मे प्रत्येक क्षेत्र के अन्त से ऋजु आयाम अर्थात् कुरुक्षेत्र का ऋजुबाण ३६६६८० योजन प्रमाण है । पूर्व–

पश्चिम मेरुओं के पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वनो के अन्त तक (पूर्वमेरु के पूर्वभद्रशाल वन के अन्त से पश्चिममेरु के पश्चिम भद्रशाल के वन के अन्त तक अर्थात् पूर्वधातकी खण्ड के ३१२५७९ योजन+लवण समुद्र २०००००० यो०+जम्बूद्वीप १०००००० यो०+लवण समुद्र २०००००० यो० पश्चिम धातकी खण्ड के ३१२५७९ यो० =११२५१५८ यो०) के अन्तराल का (बाह्य) सूचीव्यास जम्बूद्वीप लवणसमुद्र आदि सहित ११२५१५८ योजन है। तथा इस सूची व्यास की परिधि ३५५८०६२ योजन प्रमाण है। पूर्व-पश्चिम मेरुओं के पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वनो के बिना, अन्तराल का (अभ्यंतर) सूची व्यास का प्रमाण ६७४८४२ योजन (पूर्वधातकीखण्ड के देवारण्य व विदेह क्षेत्र का प्रमाण ५८४४ +८१५७७=८७४२१ यो०+जम्बू०, लवण स० के ५०००००+पश्चिमविदेह के ८७४२१ यो०= ६७४८४२ यो०) है, और उस सूची व्यास की परिधि २१३४०३८ योजन प्रमाण है। (त्रि० सा० गाथा ९३०) मेरु पर्वत पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वन और देवारण्य, भूतारण्य वनो के व्यास बिना पूर्व-पश्चिम दोनों विदेहो मे प्रत्येक विदेह का व्यास ८१५७७ योजन प्रमाण है।

अब धातकी वृक्षों की अवस्थिति, विदेहक्षेत्र के विभाग एवं नाम कहते हैं :—

अत्र द्वौ धातकीवृक्षौ जम्बूशाल्मलि सन्निभौ ।
उच्चायामादिभिः स्यातां जिनालयाद्यलंकृतौ ॥१५१॥
मेरोः पूर्वदिशाभागे विदेहपूर्वसंज्ञकः ।
विभक्तः सीतया द्वेधा दक्षिणोत्तरनामभाक् ॥१५२॥
मेरोः पश्चिमदिग्भागे स्याद् विदेहोऽपराह्वयः ।
दक्षिणोत्तरनामाढ्य सीतोदया द्विधा कृतः ॥१५३॥

अर्थ:—जम्बू शाल्मलि वृक्षो की ऊँचाई एवं आयाम आदि से युक्त धातकीखण्ड मे दो मेरु सम्बन्धी दो दो धातकी (बहेडा) के वृक्ष अवस्थित है, जो जिनालय आदि से अलकृत है ॥१५१॥ मेरु की पूर्व दिशा मे पूर्व विदेह नाम का क्षेत्र है, जो सीतामहानदी के नाम से दक्षिण विदेह और उत्तर विदेह के नाम से दो भागो मे विभक्त किया गया है। इसी प्रकार मेरु को पश्चिम दिशा मे पश्चिम विदेह है, जो सीतोदा के द्वारा उत्तर दक्षिण नाम से दो भागो मे विभक्त किया गया है ॥१५२-१५३॥

अब देशों के खण्ड एवं कच्छादि देशों का विस्तार आदि कहते है :—

अत्र प्रागुक्तनामानो द्वात्रिंशद् विषया मताः ।
विजयार्ध द्विनदीभ्यां षट्खण्डान्वितभूतला ॥१५४॥
पूर्वस्मान्मन्दरात् पूर्व. कच्छाख्यो विषयो महान् ।
अपरादपरोन्त्यश्च देशः स्याद् गन्धमालिनी ॥१५५॥

योजनानां सहस्राणि नवत्यग्रशतानिषट् ।
सार्धक्रोश इति व्यासो देशानां स्यात् पृथक् पृथक् ।।१५६।।
विदेह विस्तरस्यार्धं नदीव्यासोनितं च यत् ।
क्षेत्रं स एव आयाम आदिमध्यान्त भेदतः ।।१५७।।
त्रिविधोऽखिलदेशानां प्रत्येकं वृद्धिह्लासभाक् ।
वक्षाराचलदेवारण्यादीनां कीर्तितो जिनैः ।।१५८।।
चतुःसहस्रसंख्यानि तथा पञ्चशतानि च ।
त्र्यशीतिर्योजनानां द्विशतद्वादशभागिनाम् ।।१५९।।
भागानां किल भागाः षण्णवत्यग्रशतप्रमाः ।
इत्यायामप्रवृद्धिः स्यात् कच्छादि विषयं प्रति ।।१६०।।

अर्थ.—धातकीखण्ड मे पूर्व कहे हुए नाम वाले बत्तीस देश है, जिनके एक एक विजयार्ध पर्वत और गगासिन्धु नाम की दो दो नदियो द्वारा छह छह खण्ड होते हैं ।।१५४।। मेरु पर्वत से पूर्व दिशा मे कच्छा नाम का महान देश है, और मेरु से पश्चिम दिशा मे गन्धमालिनी नाम का महान देश है। इन ३२ ही देशो मे से पृथक् पृथक् एक एक देश का व्यास ९६०३ $\frac{३}{८}$ योजन प्रमाण है ।।१५५-१५६।। विदेह क्षेत्र के विस्तार को आधा करके उसमे से नदी का व्यास घटा देने पर प्रत्येक क्षेत्र की लम्बाई का प्रमाण प्राप्त होता है। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बत्तीस देशो, वक्षार पर्वतो और देवारण्य आदि वनो का आयाम आदि, मध्य और अन्त मे वृद्धि–हानि को लिए हुये तीन तीन प्रकार का कहा गया है। अर्थात् आदि आयाम से मध्य मे और मध्य आयाम से अन्त मे, इस प्रकार प्रत्येक मे दो दो बार स्व वृद्धि का प्रमाण बढता है ।। १५७–१५८ ।। इनमे से देश आयाम की वृद्धि का प्रमाण ४५८३ $\frac{१९६}{२१२}$ योजन है ।।१५९–१६०।।

अब धातकीखण्ड विदेहस्थ वक्षार पर्वतों का आयाम आदि कहते हैं :—

सहस्रयोजनव्यासाद् द्व्यष्टवक्षारपर्वताः ।
भवन्ति विविधायामाः प्रागुक्तोत्सेधसम्मिताः ।।१६१।।
चतुःशतानि सप्ताग्रसप्ततिर्योजनानि च ।
षष्टिभागा इहायामवृद्धिर्वक्षारभूभृतः ।।१६२।।

अर्थः—सोलह वक्षार पर्वतो की ऊँचाई पूर्व कहे हुए जम्बूद्वीपस्थ वक्षार पर्वतो की ऊँचाई सदृश है। लम्बाई अनेक प्रकार की है, और चौडाई १००० योजन प्रमाण है। प्रत्येक वक्षार के आदि मध्य अन्तायाम मे वृद्धि का प्रमाण ४७७ $\frac{६०}{२१२}$ योजन है ।।१६१–१६२।।

अब देवारण्य–भूतारण्य वनों का आयाम आदि कहते हैं :—

प्रागुक्तद्विगुणव्यासे रम्ये द्वे भवतो वने ।
देवारण्याख्यभूतारण्याह्वये वेदिकाङ्किते ।।१६३।।

अनयोः प्रत्येकं विष्कम्भः पंचसहस्राष्टशतचतुश्चत्वारिंशद्योजनानि ।

योजनानां सहस्रे द्वे तथा सप्तशतानि च ।
एकोननवतिर्द्वानवतिकला जिनागमे ।।१६४।।
द्विषट्द्विशतसंख्यानां कलानामिति कीर्तिता ।
आयामवृद्धिरेतस्य द्विवनस्य पृथग्विधा ।।१६५।।

अर्थ —धातकीखण्डस्थ विदेह में वेदिका आदि से अलकृत तथा अत्यन्त रमणीक देवारण्य–भूतारण्य नाम के दो वन है। इनका व्यास जम्बूद्वीपस्थ वनों के व्यास के प्रमाण से दूना है ।।१६३।। इन दोनों वनों में से प्रत्येक वन का विष्कम्भ–५८४४ योजन प्रमाण है। जिनागम मे पृथक् पृथक दोनों वनों के आयामों में वृद्धि का प्रमाण २७८९ $\frac{१९२}{२१२}$ योजन कहा गया है ।।१६४–१६५।।

अब विभङ्गा नदियों के आयाम आदि को कहते है :—

नद्यो द्वादश विस्तीर्णाः सार्धद्विशतयोजनैः ।
विभङ्गाख्या भवेयुः प्राग् धातकीखण्डनामनि ।।१६६।।
कुण्डव्याससरिद् व्यासोनं विदेहस्य भूतलम् ।
यदर्धं स विभङ्गानामायामोऽस्ति पृथग्विधः ।।१६७।।
शतमेकोनविंशत्याधिकं च योजनान्यपि ।
द्विषड्द्विशतभागानां भागाः पञ्चाशदेव च ।।१६८।।
भागद्वयाधिका इत्यायामवृद्धिर्जिनैः स्मृता ।
प्रत्येकं बहुभेदोऽत्र विभङ्गासरितां क्रमात् ।।१६९।।

अर्थः—पूर्व धातकीखण्ड में २५० योजन विस्तार वाली, विभंगा नाम की बारह नदियाँ है। ।। १६६ ।। विदेह क्षेत्र के व्यास में से कुण्डव्यास और नदी का व्यास कम करके अवशेष को आधा करने पर विभङ्गा की लम्बाई प्राप्त हो जाती है। एक एक नदी का यह आयाम भिन्न भिन्न प्रकार का कहा गया है ।। १६७ ।। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा विभङ्गा नदियों का बहुत भेद वाला यह आयाम क्रम से ११९ $\frac{५२}{२१२}$ योजन वृद्धि के साथ कहा गया है। अर्थात् विभङ्गा का आद्यायाम ५२८८६१ $\frac{४४}{२१२}$ योजन प्रमाण है, इसमे वृद्धि प्रमाण ११९ $\frac{५२}{२१२}$ योजन मिला देने पर

विभङ्गा का मध्य आयाम ५२८६८०$\frac{११}{२१२}$ योजन होता है, और इसमे पुनः वृद्धि का प्रमाण मिला देने पर विभगा का अन्त आयाम ५२९९०९$\frac{१४६}{२१२}$ योजन-प्रमाण हो जाता है ॥१६८-१६९॥

अब कुण्डों, विजयार्ध पर्वतों, गंगादि ६४ नदियों एवं भद्रशालवनादिकों की वेदियों का विस्तार आदि कहते हैं :—

विभङ्गोत्पत्तिकुण्डानि सार्धद्विशतयोजनैः ।
विस्तीर्णानि च पूर्वोक्ता वगाहसदृशान्यपि ॥१७०॥

विजयार्धश्चतुस्त्रिंशत्प्रागुक्तोन्नतिसम्मिताः ।
शतयोजनविस्तीर्णा द्वीपेऽर्द्धेऽस्मिन्निरूपिताः ॥१७१॥

गङ्गाद्याः क्षुल्लकानद्यश्चतुःषष्टिप्रमाः शुभाः ।
प्राक्सरिद्द्विगुणव्यासाः प्राग्नद्यागाहसन्निभाः ॥१७२॥

गङ्गाद्युत्पत्तिकुण्डानि पादाग्रशतयोजनैः ।
विस्तृतानि चतुःषष्टिपूर्वागाहयुतानि च ॥१७३॥

क्रोशद्वयोन्नताः पञ्चशतचापसुविस्तृताः ।
भद्रशालवनादीनां सन्त्यष्टौवेदिकाः शुभाः ॥१७४॥

अर्थ —विभगा नदियो की उत्पत्ति जिन कुण्डो से होती है, उन कुण्डों का व्यास २५० योजन तथा अवगाह जम्बूद्वीपस्थ कुण्डो के अवगाह सदृश है। अर्ध द्वीप मे अर्थात् पूर्वधातकी खण्ड में पूर्व कथित (२५ योजन) उत्सेध वाले और १०० योजन विस्तृत चौंतीस विजयार्ध पर्वत है ॥१७१॥ जम्बूद्वीपस्थ विदेह क्षेत्र गत गगा आदि नदियो के अवगाह सदृश अवगाह वाली और वहाँ की नदियो के व्यास से दूने व्यास वाली गगा, सिन्धु, रोहित और रोहितास्या नाम की ६४ छोटी नदियाँ हैं ॥१७२॥ इन गगा आदि ६४ नदियों की उत्पत्ति के स्थान स्वरूप वहाँ ६४ गगादि कूट है, जो १२५ योजन विस्तृत और जम्बूद्वीपस्थ विदेह के कुण्डों की अवगाहना के सदृश अवगाहना वाले है ॥१७३॥ भद्रशाल आदि वनो की दो कोस ऊँची और ५०० धनुष चौडी अत्यन्त रमणीय आठ वेदियाँ है ॥१७४॥

इदानीं चतुर्लक्षयोजनप्रमो विदेहस्य विष्कम्भो यस्तस्य मेर्वादि विभागैः संख्या कथ्यते :—

मेरो व्यासः नवसहस्रचतुःशतयोजनानि । पूर्वापरभद्रशालवनयोर्द्वयोः पिण्डीकृतविस्तारः द्विलक्षपञ्चदशसहस्रसप्तशताष्ट पञ्चाशद्योजनानि षोडशदेशानामेकत्रीकृतो व्यासः एकलक्षत्रिपञ्चाशत्सहस्र षट्शतचतुःपञ्चाशद्योजनानि । अष्टवक्षारपर्वतानां पिण्डितो विस्तारः अष्टसहस्रयोजनानि ।

षड्विभङ्गानदीनां मेलितविष्कम्भः पञ्चदशशतयोजनानि । देवारण्यभूतारण्ययोरेकत्रीकृताविस्तृतिः एकादशसहस्रषट्शताष्टाशीति योजनानि, इत्येकत्रीकृतः सकलः विदेहस्य विष्कम्भः चतुर्लक्षयोजन प्रमाण स्यात् ।

अर्थ.—विदेहक्षेत्र का विस्तार चार लाख योजन प्रमाण कहा गया है, यहाँ मेरु पर्वत आदि के विष्कम्भ विभागो के द्वारा उसकी सख्या कही जाती है :—

मेरु पर्वत का व्यास ६४०० योजन है, पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल, इन दोनो के व्यास का योग २१५७५८ योजन है। कच्छादि १६ देशों का एकत्रित व्यास १५३६५४ योजन प्रमाण है। आठ वक्षार पर्वतों का एकत्रित व्यास ८००० योजन है। छह विभगा नदियों का एकत्रित व्यास १५०० योजन और देवारण्य-भूतारण्य का एकत्रित व्यास ११६८८ योजन है। इन सर्व विष्कम्भों की संख्या को एकत्रित कर देने पर विदेह क्षेत्र का (६४००+२१५७५८+१५३६५४+८०००+१५००+११६८८=) ४००००० योजन प्रमाण विष्कम्भ प्राप्त हो जाता है।

अब देश एवं नगरी आदि के नाम कह कर पश्चिम धातकी खण्ड की व्यवस्था दर्शाते है :—

जम्बूद्वीपविदेहे सन्नामान्युक्तानि यानि च ।
देशानां नगरीणां सुविभङ्गासरितां तथा ।।१७५।।
वक्षारपर्वतादीनां तान्येव निखिलान्यपि ।
ज्ञेयानि धातकीखण्डद्वीपेऽस्मिन् द्विविधेऽखिले ।।१७६।।
इत्येषा वर्णना सर्वा देशशैलादिगोचरा ।
पश्चिमे धातकीखण्डे ज्ञेयाक्षेत्रादिसंख्यया ।।१७७।।

अर्थः—पूर्व और पश्चिम धातकी खण्डो में स्थित विदेह क्षेत्रो के देशों के नाम, नगरियों के नाम, विभङ्गा नदियो के नाम और वक्षार पर्वत आदि अन्य सभी के नाम जम्बूद्वीपस्थ विदेह के देशों, नगरियों एवं नदी-पर्वतों के नाम के सदृश ही है। अर्थात् जो जो नाम जम्बूद्वीपस्थ विदेह मे है, वही वह नाम यहाँ है ।।१७५-१७६।। पूर्व धातकी खण्ड मे देश, पर्वत एव क्षेत्रादि की जो, जैसी तथा जितनी सख्या आदि कही है, एव जैसा जैसा वर्णन किया है, वैसा वैसा ही तथा उतनी ही सख्या प्रमाण में समस्त वर्णन पश्चिम धातकी खण्ड में जानना चाहिए ।।१७७।।

अब धातकीखण्डस्थ यमकगिरि आदि पर्वतों की संख्या कहते है :—

अष्टौ यमकशैला ये द्व्यष्टदिग्गजपर्वताः ।
अष्टौ नाभिनगा अष्टषष्टिर्वृषभपर्वताः ।।१७८।।

चतुःशतप्रमाणाये पिण्डिताः कनकाद्रय ।
उत्सेधविस्तराद्यैस्ते धातकीखण्डयोर्द्वयोः ॥१७९॥
सर्वे प्रथमद्वीपस्थ यमकाद्रयादिसम्मिताः ।
प्रागुक्तवर्णनोपेता वनवेद्याद्यलंकृताः ॥१८०॥

अर्थ.—पूर्व और पश्चिम दोनो धातकी खण्डो मे [मेरु पर्वत दो, विजयार्ध ६८] यमकगिरि ८, दिग्गज पर्वत १६, नाभि पर्वत ८, वृषभाचल ६८ और कञ्चनगिरि ४०० [१२ कुलाचल, ३२ वक्षार, ८ गजदन्त और दो इष्वारकार] ये सब ६२४ पर्वत है, इनका उत्सेध एव विस्तार आदि सब जम्बूद्वीपस्थ विदेह के पर्वतो सदृश है ॥१७८–१८०॥

अब धातकीखण्ड सम्बन्धी भोगभूमियों, कर्म भूमियों, पर्वतों, नदियों एवं द्रहादिकों की संख्या कह कर उसके अधिपति देवों के नाम आदि कहते है :—

द्विषट् भोगधरा अत्र स्युश्चषट्कर्मभूमयः ।
जम्बूद्वीपसमानाश्च सुखगत्यादि कारणैः ॥१८१॥
द्विमेरुप्रमुखाः सर्वे पिण्डिताः ख्यातपर्वताः ।
चतुर्विंशतिसंयुक्तषट्शतप्रमिता मताः ॥१८२॥
पंचत्रिंशच्च लक्षाणि ह्यशीतिश्चतुरुत्तराः ।
सहस्राणि शतैकं चाशीतिरित्युक्तसंख्यया ॥१८३॥
सर्वाः पिंडीकृता नद्यो गङ्गाद्याः कीर्तिता जिनैः ।
धातकीखण्डयोर्मूलपरिवाराह्वयाः श्रुते ॥१८४॥
चत्वारिंशद् द्रहाः सीतासीतोदामध्यसंस्थिताः ।
अत्रादिद्वीपतोऽन्ये द्विगुणा ह्रद–वनादयः ॥१८५॥
द्वीपस्यास्य पती स्यातां प्रभासप्रियदर्शिनौ ।
दक्षिणोत्तरभागस्थौ जिनबिम्बात्तशेखरौ ॥१८६॥

अर्थ —सम्पूर्ण धातकी खण्ड मे बारह भोगभूमियाँ और छह कर्मभूमियाँ हैं। इनमें सुख और गति-आगति आदि के समस्त कारण एव सम्पूर्ण वर्णन जम्बूद्वीप सम्बन्धी भोगभूमियो एव कर्मभूमियो के सदृश ही है ॥१८१॥ दोनो दिशा सम्बन्धी दो मेरु है प्रमुख जिनमे ऐसे सम्पूर्ण धातकी खण्ड सम्बधी पर्वतो का एकत्रित योग (२ मेरु + ६८ विजयार्ध + ६८ वृषभाचल + १६ दिग्गज + ८ नाभिगिरि + ४०० कञ्चनगिरि + ८ यमकगिरि + १२ कुलाचल + ३२ वक्षारगिरि + ८ गजदन्त और २ इष्वाकार) = ६२४ है ॥१८२॥ जिनेन्द्र भगवान के द्वारा आगम मे सम्पूर्ण धातकी खण्ड की गगा आदि मूल और

इनकी परिवार नदियों की समस्त संख्या ३५८४१८० कही गई है ।।१८३-१८४।। सीता-सीतोदा नदियों के मध्य में ४० द्रह स्थित है । यहाँ के अन्य ह्रद एवं वन आदिकों की संख्या जम्बूद्वीपस्थ द्रहादिकों की सख्या से दूनी दूनी है ।।१८५।। इस धातकी खण्ड के सरक्षक प्रभास और प्रियदर्शी नाम के दो अधिपति देव है, जो अपने मुकुटों की शिखरो पर जिनविम्ब को धारण करते हुए क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशा सम्बन्धी धातकी वृक्षों पर रहते है ।।१८६।।

अब कालोदधिसमुद्र का सविस्तर वर्णन करते हैं :—

तं द्वीपं धातकीखण्डमावेष्टयपरितिष्ठति ।
लक्षाष्टयोजनव्यासः कालोदवारिधिर्महान् ।।१८७।।
सर्वत्रास्यावगाहोऽस्ति सहस्रयोजनप्रमः ।
प्रागुक्तोत्सेधविस्तारः प्राकारो वेदिकाङ्कितः ।।१८८।।
चतुर्दिक्ष्वस्य शालस्य चत्वारि गोपुराणि च ।
गङ्गादि सरितां सन्ति द्वाराणि च चतुर्दश ।।१८९।।
द्वीपाः सन्त्यष्टचत्वारिंशत्कुमर्त्ययुगान्विताः ।
कालोदतटयोरन्तर्भागयोरुपरि स्थिताः ।।१९०।।
पातालानि न सन्त्यत्र नोर्मिवृद्धयादयः क्वचित् ।
टङ्कोत्कीर्ण इवास्त्येष सर्वत्र समगाहधृत् ।।१९१।।
कालाख्यो रक्षकोऽस्याब्धेः स्वामीदिग्भागदक्षिणे ।
व्यन्तरश्च महाकाल उत्तराख्य दिशि स्थितः ।।१९२।।

अर्थ—उस धातकी खण्ड द्वीप को परिवेष्ठित करके आठ लाख योजन विस्तार वाला कालोदधि नाम का महान् समुद्र अवस्थित है ।।१८७।। प्राकार एवं वेदिका आदि से अलंकृत इस समुद्र का अवगाह सर्वत्र १००० योजन प्रमाण है, तथा उत्सेध और विस्तार आदि का प्रमाण पूर्व कथित प्रमाण है । इसके कोट की चारो दिशाओं में चार गोपुर और गंगादि नदियों के समुद्र में प्रवेश करने के चौदह द्वार है ।।१८८-१८९।। कालोदधि समुद्र के दोनो तटो से भीतर की ओर जल के मध्यभाग में अडतालीस अडतालीस कुभोगभूमियाँ है, जिनमे युगल कुमानुष रहते है ।।१९०।। लवण समुद्र के समान इस समुद्र में न पाताल है, और न कभी लहरो की वृद्धि आदि ही होती है । यह समुद्र सर्वत्र समान गहराई को धारण करता हुआ टकोत्कीर्ण के सदृश अवस्थित है ।।१९१।। इस समुद्र का काल नाम का रक्षक देव समुद्र की दक्षिण दिशा मे और महाकाल नाम का अधिपति व्यन्तर देव समुद्र की उत्तर दिशा में निवास करते हुए समुद्र की रक्षा करते है ।।१९२।।

अब कालोदधि समुद्र की परिधि का प्रमाण और पुष्कर द्वीप का सविस्तर वर्णन करते है :—

एकानवति लक्षाणि सहस्राणि च सप्ततिः ।
पञ्चाग्रषट्शतानीति कृतयोजनसंख्यया ॥१९३॥
कालोदकसमुद्रस्य परिधिः श्रीजिनोदिता ।
ततो द्विगुणविस्तारो द्वीपोऽस्ति पुष्कराह्वयः ॥१९४॥
मध्येऽस्यैवाष्टलक्षाणि योजनानि विमुच्य च ।
नित्यः स्वर्णमयस्तिष्ठेन्मानुषोत्तरपर्वतः ॥१९५॥
ततः सार्थकनामासौ पुष्करार्ध इहोच्यते ।
विस्तृतो योजनैरष्टलक्षैः पुष्करवृक्षभृत् ॥१९६॥
इक्ष्वाकारनगौ स्तोऽस्य दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ।
द्वीपव्याससमायामौ दिव्यचैत्यालयाङ्कितौ ॥१९७॥
प्रागुक्तोन्नतिव्यासाढ्यौ चतुःकूटविराजितौ ।
ताभ्यां द्वीपः स संजातः पूर्वापरद्विधात्मकः ॥१९८॥
मध्ये प्राक् पुष्करार्धस्य मेरुर्मन्दरसंज्ञकः ।
व्यासोत्सेधपरिध्याद्यै र्धातकीखण्डमेरुवत् ॥१९९॥
तत्समः पुष्करार्धस्यापरस्य मध्यभूतले ।
विद्युन्मालाह्वयो मेरुः स्यात्पूर्ववर्णनायुतः ॥२००॥

अर्थ —श्री जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कालोदधि समुद्र की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण ९१७०६०५ योजन कहा गया है। इस कालोदधि समुद्र के आगे कालोदधि समुद्र से दूने (१६ लाख योजन) विस्तार वाला पुष्करवर द्वीप है ॥१९३-१९४॥ इस पुष्करवर द्वीप के मध्य मे आठ लाख योजन छोड कर शाश्वत और स्वर्णमय मानुषोत्तर नाम का पर्वत अवस्थित है ॥१९५॥ इस पर्वत से पुष्करवर द्वीप के दो भाग कर दिये गये हैं, इसीलिये इस द्वीप का सार्थक नाम पुष्करार्ध कहा जाता है। पुष्करार्ध द्वीप आठ लाख योजन विस्तृत और पुष्कर (ऐरण्ड) के वृक्ष को धारण करने वाला है ॥१९६॥ इस पुष्करार्ध द्वीप की उत्तर और दक्षिण दिशा मे दिव्य चैत्यालयो से अलकृत दो इष्वाकार पर्वत है, जिनका आयाम द्वीप के व्यास अर्थात् आठ-आठ लाख योजन प्रमाण है ॥१९७॥ ये दोनो इष्वाकार पर्वत पूर्वोक्त उत्सेध और व्यास से युक्त अर्थात् ४०० योजन ऊँचे और १००० योजन चौडे चार चार कूटो से सुशोभित है। इन्ही दोनो पर्वतो के कारण पुष्करार्ध द्वीप, पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम-पुष्करार्ध

के भेद से दो प्रकार का होता है ॥१९८॥ पूर्व पुष्करार्ध के मध्य में मन्दर नाम का मेरु पर्वत है, इसके व्यास, उत्सेध और परिधि आदि का प्रमाण धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वत सदृश है ॥१९९॥ पश्चिम पुष्करार्ध के मध्य भूतल पर मन्दर मेरु के सदृश विद्युन्माला नाम का मेरु पर्वत है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वत सदृश है ॥२००॥

अब पुष्करार्धद्वीप का सूची व्यास, परिधि और पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण कहते हैं :—

एतस्य मध्यसूचीस्यात् पुष्करार्धस्य मध्यगा ।
सप्तभिः संयुता त्रिंशल्लक्षयोजनसम्मिता ॥२०१॥

एकाकोटी च लक्षाणि सप्ताधिकदशस्फुटम् ।
चतुःशतानि सप्ताग्रविंशतिश्चेति योजनैः ॥२०२॥

तस्या मध्यम सूच्या हि परिधिर्वणितागमे ।
सूक्ष्मा सूक्ष्माखिलात्मादितत्वविद्भिर्न चेतरा ॥२०३॥

प्रोदिता पुष्करार्धस्य बाह्यसूची जिनादिभिः ।
पञ्चसंयुक्त चत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमा ॥२०४॥

एकाकोटीद्विचत्वारिंशल्लक्षास्त्रिशदेव हि ।
सहस्रे द्वे शते चैकोनपञ्चाशदिति स्फुटम् ॥२०५॥

योजनैर्बाह्यसूच्या हि परिधिः श्रीजिनैर्मता ।
क्रोशद्वयाधिका मानुषोत्तराभ्यन्तरावनौ ॥२०६॥

त्रिलक्षाः पंचपंचाशत्सहस्राणि शतानि षट् ।
तथा चतुरशीतिश्चतुःकलायोजनस्य च ॥२०७॥

एकोनविंशभागानामिति योजनसंख्यया ।
पुष्करार्धस्य संरुद्धक्षेत्रं चतुर्दशाचलैः ॥२०८॥

अर्थः—इस पुष्करार्ध द्वीप के मध्य मे मध्यम सूची व्यास ३७००००० लाख योजन प्रमाण है ॥२०१॥ समस्त सूक्ष्म आत्मतत्त्व आदि को जानने वाले गणधरादि देवो के द्वारा जिनागम में इस मध्यम सूची व्यास की सूक्ष्म परिधि ११७००४२७ योजन कही गई है। यह प्रमाण सूक्ष्म का है, स्थूल परिधि का नही ॥२०२-२०३॥ जिनेन्द्रों के द्वारा पुष्करार्ध का बाह्य सूची व्यास ४५००००० योजन

कहा गया है ॥२०४॥ मानुपोत्तर पर्वत की अभ्यन्तर भूमि पर्यन्त पुष्करार्ध के वाह्य सूची व्यास की सूक्ष्म परिधि जिनेन्द्रो के द्वारा १४२३०२४९ योजन और २ कोस प्रमाण कही गई है ॥२०५-२०६॥ पुष्करार्ध द्वीप के बारह कुलाचल और दो इष्वाकार पर्वतों से अवरुद्ध क्षेत्र ३५५६८४ योजन और एक योजन के १९ भागो मे से ४ भाग ($\frac{४}{१९}$ यो०) प्रमाण कहा गया है ॥२०७-२०८॥

अब पुष्करार्धस्थित बारह कुलाचलों के व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं :—

द्विषट्कुलाद्रयो जम्बूद्वीपस्थाद्रयुन्नतिप्रमाः ।
अष्टलक्षायता योजनानामत्र प्रकीर्तिताः ॥२०९॥
अस्त्ययं हिमवान् धातकीखण्डस्थहिमाचलात् ।
द्विगुणव्यास एतस्माच्चतुर्गुणोपरोगिरिः ॥२१०॥
ततश्चतुर्गुणो व्यासो निषधोऽन्ये त्रयोऽद्रयः ।
नीलाद्याः पर्वतैरेभिः क्रमहान्या समानकाः ॥२११॥

अर्थः—पुष्करार्ध द्वीप मे जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलो की ऊँचाई प्रमाण उत्सेध को लिये हुए आठ आठ लाख योजन लम्बे बारह कुलाचल पर्वत कहे गये है ॥२०९॥ यहाँ का हिमवान् पर्वत धातकी खण्डस्थ हिमवान् पर्वत के व्यास से दूने व्यास वाला है, इसके आगे आगे निषध पर्वत पर्यन्त का व्यास हिमवन् पर्वत से चौगुना चौगुना होता गया है । इसके बाद नील आदि तीन पर्वतो का व्यास समान क्रम हानि को लिए हुए है । नील-निषध, रुक्मी-महाहिमवन् और शिखरी-हिमवान् पर्वतो का व्यास समान प्रमाण को लिए हुए है ॥२१०-२११॥

अमीषां प्रत्येकं पृथक् विष्कम्भोन्नती—निगद्यंते :—

हिमवतः उत्सेध. शतयोजनानि । विष्कम्भश्च चतु सहस्रद्विशतयोजनानि, योजनस्यैकोनविंशतिभागाना कला दश । महाहिमवतः उदय द्विशतयोजनानि व्यास षोडशसहस्राष्टशतद्विचत्वारिंशद्योजनानि द्वे कले च । निषधस्योन्नति चतु शतयोजनानि व्यास सप्तषष्टिसहस्रत्रिशताष्टषष्टि योजनानि एकोनविंशतिभागानामष्टकला । नीलस्योत्सेधव्यासौ निषधेन समानौ स्तः । रुक्मिणः उन्नतिव्यासौ महाहिमवता तुल्यौ च । शिखरिण उदयविस्तारौ हिमवता समौ ।

(उपर्युक्त गद्य का अर्थ अगले पृष्ठ पर तालिका मे देखे)

उपर्युक्त गद्य का अर्थ निम्नलिखित तालिका में निहित है :—

पुष्करार्धस्थ हिमवन् आदि पर्वतों के उत्सेध आदि का प्रमाण :—

क्रमाक	नाम पर्वत	उत्सेध	विष्कम्भ
१	हिमवन्	१०० योजन	४२१०$\frac{१०}{१९}$ योजन
२	महाहिमवन्	२०० ,,	१६८४२$\frac{२}{१९}$,,
३	निषध	४०० ,,	६७३६८$\frac{८}{१९}$,,
४	नील	४०० ,,	६७३६८$\frac{८}{१९}$,,
५	रुक्मि	२०० ,,	१६८४२$\frac{२}{१९}$,,
६	शिखरिन्	१०० ,,	४२१०$\frac{१०}{१९}$,,

अब पुष्करार्धस्थ क्षेत्रों के आकार और उनका व्यास आदि कहते हैं :—

कुलाद्रयोऽत्र चक्रस्य भवन्त्यरैः समायताः ।
अराणां मध्यरन्ध्रैः समक्षेत्राणि चतुर्दश ॥२१२॥
आदिमध्यान्तविस्तारैः क्रमवृद्धियुतानि च ।
दीर्घाणि भरतादीनि किलाष्टलक्षयोजनैः ॥२१३॥
सहस्राण्येकचत्वारिंशत्पञ्चैव शतानि च ।
एकोनाशीति युक्तानिभागाः शतद्विसप्ततिः ॥२१४॥
इत्युक्तोऽभ्यन्तरे व्यासो भरतस्यैव योजनैः ।
त्रिपञ्चाशत्सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ॥२१५॥
द्विषड्नवनवत्यग्रशतभागा इति श्रुते ।
विष्कम्भो भरतस्योक्तो मध्ये योजनसंख्यया ॥२१६॥

पञ्चषष्टिसहस्राणि चत्वारि च शतान्यपि ।
षट्चत्वारिंशदेवाथ तथा भागास्त्रयोदश ॥२१७॥
इत्याम्नातोऽत्र विस्तारो बाह्ये स भरतस्य च ।
अस्माद् भरततस्त्रीणि क्षेत्राणि विस्तृतानि च ॥२१८॥
चतुश्चतुर्गुणैर्व्यासैस्ततस्त्रीण्यपराणि च ।
एभिस्त्रिभि. समानानि हीनव्यासानि पूर्ववत् ॥२१९॥

अर्थः—जिसप्रकार गाडी के पहिये मे आरा होते है, उसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में कुलाचल आदि पर्वत समान लम्बाई को लिए हुए लम्बे फैले है, तथा जिस प्रकार चक्रस्थित आरों के मध्य मे छिद्र होते है, उसी प्रकार आरो सदृश पर्वतो के मध्य मे जो छिद्र (स्थान) है, उसमे भरतादि चौदह क्षेत्र है ॥२१२॥ इन क्षेत्रों का विस्तार आदि, मध्य और अन्त मे अनुक्रम से वृद्धि को लिए हुये है, तथा इनकी लम्बाई द्वीप के सदृश आठ लाख योजन प्रमाण है ॥२१३॥ जिनागम मे भरत क्षेत्र का अभ्यतर व्यास ४१५७९ $\frac{७२}{२१२}$ योजन, मध्यम व्यास ५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$ योजन और बाह्य व्यास ६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ योजन प्रमाण कहा गया है। इस भरत क्षेत्र से आगे के तीन क्षेत्रो का विस्तार (भरत क्षेत्र से प्रारम्भ कर) क्रमशः चौगुना चौगुना है, और उसके आगे के तीन क्षेत्रो का विस्तार क्रमशः समान हानि को लिए हुए है ॥२१४–२१९॥

अमीषां पृथग्विषकम्भाः प्रोच्यन्ते :—

भरतस्याभ्यन्तरे विस्तारः एकचत्वारिंशत्सहस्रपञ्चशतैकोनाशीतियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना द्वासप्तत्यग्रशतभागाश्च । मध्यव्यासः त्रिपञ्चाशत्सहस्रपञ्चशतद्वादशयोजनानि नवनवत्यधिकशतभागाश्च । बाह्यविस्तृति पञ्चपष्टिसहस्रचतु शतषड्चत्वारिंशद्योजनानि भागास्त्रयोदश । हैमवतस्याभ्यन्तरविष्कम्भ एकलक्षषट्पष्टिसहस्रत्रिशतैकोनविंशतियोजनानि द्विशतद्वादशभागाना द्विपञ्चाशद्भागा । मध्यव्यास. द्विलक्षचतुर्दशसहस्रैक पञ्चाशद्योजनानि, षष्टियुतशतभागाश्च । बाह्यविस्तृतिः द्विलक्षैकषष्टिसहस्रसप्तशतचतुरशीतियोजनानिद्विपञ्चाशद्भागाश्च । हरिवर्षस्याभ्यन्तर-व्यास-षड्लक्षपञ्चपष्टिसहस्रद्विशतपट्सप्ततियोजनानि द्विशतद्वादशभागाना द्विशताष्टभागाश्च । मध्य-विष्कम्भ अष्टलक्षपट्पञ्चाशत्सहस्रद्विशतसप्तयोजनानि भागाश्चत्वारः । बाह्यविस्तार दशलक्षसप्तचत्वारिंशत्सहस्रैक शतषड्त्रिंशद्योजनानि द्विशताष्टभागाश्च । विदेहस्याभ्यन्तरव्यासः षड्विंशतिलक्षैकषष्टिसहस्रैकशतसप्तयोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना षण्णवत्यग्रशतभागा । मध्य-विष्कम्भः चतुस्त्रिंशल्लक्ष चतुर्विंशतिसहस्राष्टशताष्टाविंशतियोजनानि, भागा षोडशैव । बाह्यविस्तार एकचत्वारिंशल्लक्षाष्टाशीति सहस्रपञ्चशतसप्तचत्वारिंशद्योजनानि, षण्णवत्यधिकशतभागा ॥ रम्यका-न्तर्मध्यबाह्यव्यासैः हरिवर्षसम । हैरण्यवतश्चहैमवतसमान. । भरतैरावतसमौस्त ॥

नोट.—उपर्युक्त समस्त गद्य का अर्थ निम्नलिखित तालिका में समाहित किया गया है।

पुष्करार्धद्वीप में स्थित भरतादि सात क्षेत्रों का अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य विष्कम्भ :—

क्रमाक	क्षेत्र-नाम	अभ्यन्तर वि०	मध्य विष्कम्भ	बाह्य विष्कम्भ
१	भरत	$४१५७९\frac{१७३}{२१२}$ योजन	$५३५१२\frac{१९९}{२१२}$ योजन	$६५४४६\frac{१३}{२१२}$ योजन
२	हैमवत	$१६६३१९\frac{५२}{२१२}$,,	$२१४०५१\frac{११०}{२१२}$,,	$२६१७८४\frac{५२}{२१२}$,,
३	हरि	$६६५२७६\frac{२०८}{२१२}$,,	$८५६२०७\frac{४}{२१२}$,,	$१०४७१३६\frac{२०८}{२१२}$,,
४	विदेह	$२६६११०७\frac{११८}{२१२}$,,	$३४२४८२८\frac{१८}{२१२}$,,	$४१८८५४७\frac{११८}{२१२}$,,
५	रम्यक	$६६५२७६\frac{२०८}{२१२}$,,	$८५६२०७\frac{४}{२१२}$,,	$१०४७१३६\frac{२०८}{२१२}$,,
६	हैरण्यवत	$१६६३१९\frac{५२}{२१२}$,,	$२१४०५१\frac{११०}{२१२}$,,	$२६१७८४\frac{५२}{२१२}$,,
७	ऐरावत	$४१५७९\frac{१७३}{२१२}$,,	$५३५१२\frac{१९९}{२१२}$,,	$६५४४६\frac{१३}{२१२}$,,

अब पुष्करार्धस्थ पद्म आदि सरोवरों, गंगादि नदियों, कुण्डों, भद्रशाल वनों एवं गजदन्तों का व्यास आदि कहते हैं :—

चतुःसहस्रदीर्घो द्विसहस्रविस्तृतो द्रहः ।
पद्मः पद्मान्महापद्मो द्विगुणो योजनैःस्मृतः ॥२२०॥
महापद्मात्तिगिञ्छोऽपि द्विगुणायामविस्तृतः ।
तुल्या एभिस्त्रिभिः शेषाः क्रमह्रस्वाः त्रयो ह्रदाः ॥२२१॥
गंगासिन्ध्वोश्च विष्कम्भः पञ्चविंशतिसंख्यकः ।
आदावन्तेऽत्र सार्धद्विशतयोजनसंख्यया ॥२२२॥
आभ्यां द्वे द्वे महानद्यौ विदेहान्तं प्रवर्धिते ।
द्विगुणद्विगुणव्यासैर्हीयमानास्तथापराः ॥२२३॥

षड्भिश्च सरिदाद्याभिः षड्नद्यः समविस्तराः ।
द्विगुणद्विगुणैर्ह्रस्वा ऐरावतान्तमञ्जसा ॥२२४॥
गङ्गासिन्ध्वोश्च कुण्डे द्वे सार्धद्विशतविस्तृते ।
ततो द्विद्विमहानद्योविदेहान्तं सुविस्तृते ॥२२५॥
द्विगुणाद्विगुणव्यासैर्द्वे द्वे कुण्डे च योजनैः ।
तथान्ये द्विगुणह्रासे कुण्डे नद्योर्द्वयोर्द्वयोः ॥२२६॥
द्वौ लक्षौ योजनानां सहस्राः पंचदशप्रमाः ।
सप्तशतानि चाष्टा पञ्चाशदित्युक्तसंख्यया ॥२२७॥
आयामः पुष्करार्धे स्यात् प्रत्येकं भद्रशालयोः ।
रम्ययोश्चैत्यगेहाद्यैः पूर्वापरसमाह्वयोः ॥२२८॥
लक्षाणि विंशतिश्च द्विचत्वारिंशत्सहस्रकाः ।
द्वे शते योजनानां चैकोन विंशतिरित्यपि ॥२२९॥
द्वयोः प्रत्येकमायामो जेष्ठयोर्गजदन्तयोः ।
लक्षाणि षोडशैवाथ षड्विशतिसहस्रकाः ॥२३०॥
शतैकषोडशैवेति प्रोक्तयोजनसंख्यया ।
लघीयसोः समायाम प्रत्येकं गजदन्तयोः ॥२३१॥

अर्थ —पुष्करार्धस्थ पद्म सरोवर ४००० योजन लम्बा और २००० योजन चौडा है। पद्म सरोवर से महापद्म की लम्बाई चौडाई दुगनी अर्थात् लम्बाई आठ हजार योजन और चौडाई ४००० योजन है, इससे तिगिन्छ सरोवर की लम्वाई चौडाई दुगनी है, इसके आगे के केशरी आदि तीनो सरोवर अनुक्रम से ह्रस्व होते हुए दक्षिणगत सरोवरो की लम्वाई चौडाई के समान ही लम्वे एवं चौडे है। ॥२२०–२२१॥ गगा सिन्धु नदियो का आदि विष्कम्भ २५ योजन और अन्तिम विष्कम्भ २५० योजन प्रमाण है ॥२२२॥ इसके आगे विदेह तक वृद्धिगत होता हुआ दो दो महानदियो का यह विष्कम्भ दूना दूना है, इसके आगे ऐरावत क्षेत्र स्थित नदियो तक का विष्कम्भ क्रमशः दुगुण दुगुण हीन है। नारी–नरकान्ता, सुवर्णकूला–रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा का व्यास दक्षिणगत छह नदियो के समान है ॥२२३–२२४॥ गगा-सिन्धु सम्वन्धी दो कुण्डो का व्यास २५० योजन प्रमाण है। विदेह पर्यन्त दो दो महानदियो सम्वन्धी दो-दो कुण्डों का यह व्यास दूने दूने प्रमाण वाला प्राप्त होता है, और इसके आगे के दो दो नदियो सम्वन्धी दो दो कुण्डो का व्यास क्रमश दुगुण–दुगुण हीन है ॥२२५-२२६॥ पुष्करार्धस्थ चैत्यगृहो आदि से अलंकृत पूर्वभद्रशाल एव पश्चिम भद्रशाल वनो का भिन्न भिन्न आयाम २१५७५८ योजन प्रमाण है ॥२२७–२२८॥ वृहद् गजदन्तो मे प्रत्येक का भिन्न भिन्न व्यास

२०४२२१६ योजन प्रमाण और लघु गजदन्तों में प्रत्येक का भिन्न भिन्न व्यास १६२६११६ योजन प्रमाण कहा गया है ।।२२९-२३१।।

अब देवकुरु-उत्तरकुरु के वाण तथा उभय विदेह, वक्षार पर्वत, विभंगा नदी और देवारण्य-भूतारण्य के व्यास का प्रमाण कहते हैं :—

लक्षाः सप्तदशैवाथ सहस्राः सप्तसम्मिताः ।
शतानि सप्तसंख्यानि योजनानि चतुर्दश ।।२३२।।
इति प्रोक्तः पृथग्वाणो देवोत्तरकुरुद्वयोः ।
उत्कृष्टभोगभूम्योश्च प्रत्येकं श्रीगणाधिपैः ।।२३३।।
एकोनत्रिंशसहस्रास्तथासप्तशतानि च ।
चतुर्नवतिरेवैकं गव्यूतमिति योजनैः ।।२३४।।
प्रोक्तः पृथक् पृथक् व्यासो देशानां द्वि विदेहके ।
वक्षाराणां च विष्कम्भो द्विसहस्राङ्कयोजनैः ।।२३५।।
शतानि पंचविस्तारो विभङ्गासरितां पृथक् ।
सर्वासां योजनानां च पूर्वपश्चिमभागयोः ।।२३६।।
एकादशसहस्राणि योजनानां शतानि षट् ।
अष्टाशीतिरिति व्यासो देवभूतद्वचरण्ययोः ।।२३७।।

अर्थः—जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उत्तरकुरु देवकुरु नामक उत्तम भोगभूमियों का भिन्न भिन्न वाण १७०७७१४ योजन प्रमाण कहा गया है ।।२३२-२३३।। पूर्व विदेह एवं अपर विदेह का भिन्न भिन्न व्यास २९७९४ योजन १ कोस, वक्षार पर्वतों का व्यास २००० योजन और पूर्व-पश्चिम दोनो पुष्करार्धो मे स्थित समस्त विभगा नदियों का पृथक् पृथक् व्यास ५०० योजन प्रमाण दर्शाया गया है ।। २३४-२३६ ।। देवारण्य एवं भूतारण्य इन दोनों वनों का पृथक् पृथक् व्यास ११६८८ योजन प्रमाण है ।।२३७।।

अब वक्षार, देश, देवारण्य आदि वन तथा विभंगा नदियों के आयाम का और उस आयाम में हानि वृद्धि का प्रमाण कहते हैं :—

वक्षाराणां च देशानां देवाद्यरण्ययोर्द्वयोः ।
आयामः स विदेहस्य योऽर्धायामोऽप्यनेकधा ।।२३८।।
नदीव्यासोनितो वृद्धिह्रासयुक्तो मतः श्रुते ।
विभङ्गानां तथायामः कुण्डव्यासोनितो भवेत् ।।२३९।।

अर्थ —विदेह के आयाम मे से सीता वा सीतोदा नदी का व्यास घटा कर शेष का आधा करने पर वक्षार पर्वतो का, देशो का और दोनो देवारण्य वनो का आयाम प्राप्त हो जाता है। यह आयाम वृद्धि और ह्रास के कारण अनेक प्रकार हो जाता है ऐसा श्रुत मे कहा गया है। इस आयाम मे से कुण्ड का व्यास (५०० यो०) कम कर देने पर विभगा नदी का आयाम हो जाता है ।।२३८-२३९।।

अब पुष्करार्धस्थ समस्त विजयार्धो के व्यास आदि का प्रमाण एवं विदेहस्थ क्षेत्रों के छह खण्ड होने का कारण कहते है :—

योजनद्विशतव्यासाः सर्वे रूप्याचला मताः ।
देशव्याससमायामाः पूर्वोन्नतिसमोन्नताः ।।२४०।।
गङ्गासिन्धुनदीभ्यां च द्वाभ्यां रूप्याद्रिणाखिलाः ।
षट्खण्डीभागमापन्ना विदेहे विषयाः स्मृताः ।।२४१।।

अर्थ —पुष्करार्धस्थ समस्त विजयार्ध पर्वतो का आयाम (लम्बाई) अपने अपने देश की चौडाई के प्रमाण है। अर्थात् जितने योजन देश की चौडाई है, उतने ही योजन विजयार्ध की लम्बाई है। रूपाचलो का व्यास २०० योजन और ऊँचाई पूर्व कथित (२५ योजन) प्रमाण है ।।२४०।। विदेहस्थ समस्त देशो के गगा-सिन्धु इन दो दो नदियो और एक एक रूपाचल (विजयार्ध) पर्वतो से छह-छह खण्ड हुए है ।।२४१।।

अब गंगादि क्षुल्लक नदियों के और कुण्डों के व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं :—

विभङ्गोत्पत्ति कुण्डानि सर्वाणि विस्तृतानि च ।
द्वारतोरणयुक्तानि स्युः पञ्चशतयोजनैः ।।२४२।।
गंगादिक्षुल्लकाभ्यः प्राग् नदीभ्यः सरितोऽत्र च ।
गङ्गाद्या द्विगुणव्यासाः पूर्वावगाहसम्मिताः ।।२४३।।
गंगाद्युत्पत्ति कुण्डानि सार्धद्विशतयोजनैः ।
विस्तृतानि च पूर्वोक्तागाहवेदियुतान्यपि ।।२४४।।

अर्थः—विभंगा नदियो की जिनसे उत्पत्ति होती है ऐसे तोरण द्वार आदि से अलंकृत समस्त कुण्डो का विस्तार ५०० योजन प्रमाण है ।।२४२।। धातकीखण्डस्थ विदेह मे गगा आदि छोटी नदियो का जो व्यास कहा है उससे पुष्करार्धस्थ विदेह की गगादि क्षुल्लक नदियो का व्यास दूना और अवगाह जम्बूद्वीपस्थ विदेह की गगादि नदियो के अवगाह प्रमाण है ।।२४३।। गगादि क्षुल्लक नदियो की जिनसे उत्पत्ति होती है ऐसे वेदी एव तोरण आदि से युक्त समस्त कुण्डो का व्यास २५० योजन और अवगाह पूर्वोक्त प्रमाण (   ) है ।।२४४।।

इदानीं विषयादीनामायामवृद्धिः कथ्यते ।

देशाना प्रत्येकमायामवृद्धिः नवसहस्रचतु:शताष्टचत्वारिंशद्योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादश-भागानां षट्पञ्चाशद्भागा: । वक्षाराणां पृथगायाम वृद्धिः नवशतचतु: पञ्चाशद्योजनानि विंशत्यग्र-शतभागा । विभङ्गाना प्रत्येकमायामवृद्धिः द्विशतैकोनचत्वारिंशद्योजनानि, द्विशतद्वादशभागाना भागा-स्त्रयोदशदेवारण्यभूतारण्ययो: पृथगायामवृद्धि. पञ्चसहस्रपञ्चशताष्टासप्ततियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागाना चतुरशीत्यग्रशत भागाश्च ।

अब पुष्करार्धस्थ देशों आदि के आयाम की वृद्धि का प्रमाण कहते है :—

अर्थ.—कच्छादि भिन्न भिन्न देशो की लम्वाई मे वृद्धि का प्रमाण $९४४८\frac{५६}{२१२}$ योजन, वक्षार पर्वतो की पृथक् पृथक् लम्बाई मे वृद्धि का प्रमाण $९५४\frac{१२०}{२१२}$ योजन, प्रत्येक विभंगा नदियो की लम्बाई मे वृद्धि का प्रमाण $२३९\frac{१३}{२१२}$ योजन और प्रत्येक देवारण्य और भूतारण्य की लम्बाई मे वृद्धि का प्रमाण $५५७८\frac{१८४}{२१२}$ योजन प्रमाण है । अर्थात् कच्छादि देशो, वक्षार पर्वतो, विभंगा नदियों और देवारण्य भूतारण्य वनो की अपनी अपनी आदिम लम्बाई में उपर्युक्त अपनी अपनी वृद्धि का प्रमाण मिला देने पर उनकी मध्यम लम्बाई का प्रमाण, और मध्यम लम्वाई मे भी उसी स्व, स्व वृद्धि का प्रमाण मिला देने से उनकी अपनी अपनी अन्तिम लम्बाई का प्रमाण होता है ।

अधुना विदेहस्याष्टलक्षयोजनव्यासस्य मेर्वाद्यैर्व्याप्ता पृथग्गणना निगद्यते :—

मेरोर्व्यासः चतुर्नवतिशतयोजनानि । द्वयो: पूर्वापर भद्रशालवनयो: पिण्डीकृतो विस्तारः चतु-र्लक्षैकत्रिंशत्सहस्रपञ्चशतषोडशयोजनानि । षोडशविषयाणामेकत्रीकृतो विष्कम्भः त्रिलक्षषोडशसहस्र-सप्तशताष्टयोजनानि । अष्टवक्षाराणा पिण्डितो व्यासः षोडशसहस्रयोजनानि । षड्विभङ्गानदीना मेलिता विस्तृतिस्त्रिसहस्रयोजनानि । द्वयोर्देवारण्यभूतारण्ययोरेकत्रीकृतो व्यासः त्रयोविंशतिसहस्रत्रिशतषट्-सप्ततियोजनानि । इत्येव पिण्डीकृत. सकलविदेहस्य विष्कम्भ अष्टलक्षयोजनप्रमो मन्तव्यः ॥

अब विदेहक्षेत्र के आठ लाख योजन व्यास के मेरु आदि के द्वारा व्याप्त क्षेत्र के प्रमाण की पृथक् पृथक् गणना करते हैं :—

अर्थः—मेरु पर्वत का व्यास ९४०० योजन, पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वनों का एकत्रित व्यास ४३१५१६ योजन, कच्छादि १६ देशो का एकत्रित व्यास ३१६७०८ योजन, आठो वक्षार पर्वतो का एकत्रित व्यास १६००० योजन, छह विभंगा नदियों का एकत्रित व्यास ३००० योजन और देवारण्य-भूतारण्य का एकत्रित व्यास २३३७६ योजन प्रमाण है । इस प्रकार इन सब व्यासो का एकत्रित प्रमाण—(९४००+४३१५१६+३१६७०८+१६०००+३०००+२३३७६)=८००००० अर्थात् आठ लाख योजन (सम्पूर्ण विदेह क्षेत्र का प्रमाण) जानना चाहिए ।

अब पुष्करार्धद्वीपस्थ वृक्ष, पर्वत, वेदी, कुण्ड और द्वीप के रक्षक देवों का वर्णन करते है :—

जम्बूवृक्षसमोत्सेधव्यासचैत्यालयाङ्कितौ ।
प्रागुक्त परिवारौ स्तोऽत्रापि द्वौ पुष्करद्रुमौ ।।२४५।।
समस्ता नाभिशैलाश्च यमका वृषभाद्रयः ।
ह्रदा भोगधराः सर्वा दिग्गजाः कनकाद्रयः ।।२४६।।
वेदीकुण्डादयोऽन्ये च द्वीपेऽस्मिन् पुष्करार्धके ।
विज्ञेया धातकीखण्डद्वीपस्य गणनासमाः ।।२४७।।
यावन्तो धातकीखण्डे शैला मेर्वादयोऽखिलाः ।
तावन्तः पुष्करार्धे स्युर्वनवेद्याद्यलङ्कृताः ।।२४८।।
गङ्गादिप्रमुखाः सर्वा नद्योऽत्रापि भवन्ति च ।
धातकीखण्डसंख्याढ्या वनवेद्यादिशोभिताः ।।२४९।।
स्वामिनौ पुष्करार्धस्य तस्य श्रीजिनभक्तिकौ ।
स्तः पद्मपुण्डरीकाख्यौ दक्षिणोत्तरवासिनौ ।।२५०।।

अर्थः—जम्बूद्वीपस्थ जम्बूवृक्ष के उत्सेध और आयाम सदृश उत्सेध (१० योजन) एव व्यास (मध्यभाग की चौडाई ६ योजन और अग्रभाग की ४ योजन) से युक्त, चैत्यालय आदि से अलकृत तथा पूर्वोक्त परिवार (१४०१२०) वृक्षो से वेष्टित पूर्व-पश्चिम दोनो पुष्करार्धों में दो एरण्ड के वृक्ष स्थित है ।।२४५।। पुष्करार्धद्वीपस्थ समस्त नाभिगिरि, यमकगिरि, वृषभाचल, सरोवर, सर्व भोगभूमियाँ, दिग्गज पर्वत, काञ्चनपर्वत, वेदियाँ एव कुण्ड आदि और भी अन्य सभी की प्रमाण संख्या धातकीखण्डद्वीपस्थ नाभिगिरि आदि की प्रमाण सख्या के समान ही जानना चाहिए ।।२४६-२४७।। धातकी खण्ड मे मेरु आदि जितने पर्वत है, वनवेदियो आदि से अलकृत उतने ही पर्वत पुष्करार्धद्वीप में है ।।२४८।। गगादि प्रमुख नदियो सहित घातकी खण्ड मे जितनी नदियाँ है, वनवेद्यादि से सुशोभित उतनी ही नदियाँ पुष्करार्धद्वीप मे है ।। २४९ ।। श्री जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से युक्त, दक्षिण और उत्तर दिशा मे निवास करने वाले पद्म और पुण्डरीक नाम के दो व्यन्तर देव पुष्करार्ध द्वीप के अधिपति है ।।२५०।।

अब अढाई द्वीपस्थ पर्वतों और नदियों आदि की एकत्रित संख्या कहते हैं :—

एकोनषष्टिसंयुक्तसार्धसहस्रसम्मिताः ।
सार्धद्वीपद्वये सर्वे मेर्वादिप्रमुखाद्रयः ।।२५१।।

एकोननवतिर्लक्षाः सहस्राः षष्टिसंख्यकाः ।
चतुःशतानि पञ्चाशदित्यङ्कसंख्ययाखिलाः ॥२५२॥
गङ्गादिप्रमुखा नद्यो मूलोत्तरसमाह्वयाः ।
पिण्डीकृता भवन्त्यत्र नृक्षेत्रे च क्षयोज्झिताः ॥२५३॥
त्रिंशद्भोगधराः कर्मपृथ्व्यः पञ्चदशप्रमाः ।
शतसंख्या द्रहाःसीतासीतोदामध्यसंस्थिताः ॥२५४॥
कुलाद्रिमूर्धभागस्थास्त्रिशद्द्रहाश्चपिण्डिताः ।
गङ्गादिपातभूभागस्थानि कुण्डानि सप्ततिः ॥२५५॥
विभङ्गोत्पत्तिकुण्डानि सर्वाणि षष्टिरेव च ।
गङ्गादिसरितां लघ्वीनां सन्ति जनकानि च ॥२५६॥
शतानि त्रीणि विंशत्यग्राणि कुण्डानि चाञ्जसा ।
सप्तत्यग्रशतं देशानगर्योदेशसम्मिताः ॥२५७॥
कुरुवृक्षादशेत्येवं संख्यागणनयाखिलाः ।
सार्धद्वीपद्वये ज्ञेया अन्ये वा वेदिकादयः ॥२५८॥

अर्थः—ढाई द्वीप के मेरु आदि प्रमुख पर्वतो का कुल योग १५५६ है। अर्थात् ढाई द्वीप में कुल -पर्वत १५५६ है ॥२५१॥

नोट :—त्रिलोकसार गा० ७३१ मे जम्बूद्वीपस्थ प्रमुख पर्वतों की कुल संख्या "तिसदेक्कारस-सेले" [अर्थात् १ सुदर्शन मेरु+६ कुलाचल+४ यमकगिरि+२०० काञ्चन पर्वत+८ दिग्गज+१६ वक्षार पर्वत+४ गजदन्त+३४ विजयार्ध+३४ वृषभाचल और+४ नाभिगिरि है, इन सबका योग १+६+४+२००+८+१६+४+३४+३४+४=] ३११ कही गई है, जबकि एक मेरु सम्बंधी ३११ पर्वत है, तब पञ्चमेरु सम्बन्धी प्रमुख पर्वतों की सख्या (३११×५)=१५५५ प्राप्त होती है, किन्तु उपर्युक्त श्लोक मे १५५६ कही गई है, क्योकि इसमे ४ इष्वाकार पर्वत और लिये गये है।

मनुष्य लोक (ढाई द्वीप) मे अनाद्यनन्त गगादि ९० मूलनदियो और उनकी परिवार नदियों का कुल योग ८९६०४५० है। अर्थात् जम्बूद्वीपस्थ भरतैरावत की गगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार की परिवार नदियां (१४०००×४)=५६०००, हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्र की रोहित, रोहितास्या, स्वर्णकूला और रूप्यकूला की परिवार नदियाँ (२८०००×४)=११२०००, हरि-रम्यक क्षेत्र स्थित हरित्, हरिकान्ता, नारी और नरकान्ता की परिवार नदियाँ (५६०००×४)=२२४०००, देवकुरु-उत्तरकुरु गत सीता, सीतोदा की परिवार नदियाँ (८४०००×२)=१६८०००, बारह विभगा नदियों

की परिवार नदियाँ (२८०००×१२)=३३६००० और बत्तीस विदेहस्थ गगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन ६४ की परिवार नदियाँ (१४०००×६४)=८९६००० है। इन सम्पूर्ण मूल एव परिवार नदियो का कुल योग (४+४+४+२+१२+६४+५६०००+११२०००+२२४०००+१६८००० +३३६०००+८९६०००=१७९२०९० है। जबकि एक मेरु सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रमुख नदियाँ १७९२०९० है, तब पंचमेरु सम्बन्धी (१७९२०९०×५)=८९६०४५० नदियों का प्रमाण प्राप्त होता है ।।२५२-२५३।। अढाई द्वीप में तीस भोगभूमियाँ, पंच भरत, पंच ऐरावत और पंच विदेह इस प्रकार १५ कर्म भूमियाँ तथा सीता-सीतोदा के मध्य स्थित १०० द्रह है। पंच मेरु सम्बन्धी ३० कुलाचलों के ऊपर पद्म आदि ३० सरोवर है, इस प्रकार ढाई द्वीप मे कुल (१००+३०)=१३० सरोवर है। गगादि (१४×५)=७० महानदियो का भूमि पर जहाँ पतन होता है, वहाँ कुण्ड है, अतः ७० कुण्ड ये, (१२×५)=६० विभगा नदियों की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखने वाले कुण्ड ६० और गगादि क्षुल्लक (६४×५)=३२० नदियो की उत्पत्ति के ३२० कुण्ड है। इस प्रकार ढाई द्वीप मे कुल कुण्डों की सख्या (७०+६०+३२०)=४५० है। एक मेरु सम्बन्धी ३२ विदेह+१ भरत+१ ऐरावत क्षेत्र =३४ देश है, इसलिये पच मेरु सम्बन्धी (३४×५)=१७० देश है और १७० ही नगरियाँ है। ।।२५४-२५७।। पंच मेरु सम्बन्धी दश कुरु क्षेत्रों मे जम्बू आदि १० ही अनादि निधन वृक्ष है। इसी प्रकार वेदिकाएँ आदि भी जानना चाहिए। जैसे—जम्बूद्वीप मे एक मेरु सम्बन्धी (३११ पर्वतो की ३११ वेदियाँ+९० कुण्डो की ९० वेदियाँ+-२६ सरोवरो की २६ वेदियाँ+और १७९२०९० नदियो के दोनों तटो की ३५८४१८० वेदियाँ)=३५८४६०७ वेदियाँ है, इसलिये पच मेरु सम्बन्धी समस्त वेदियों का कुल योग (३५८४६०७×५)=१७९२३०३५ प्राप्त होता है। इस प्रकार यह अढाई द्वीप के कुछ पर्वतो आदि का एकत्रित योग कहा गया है, अन्य का भी इसी प्रकार जानना चाहिये ।।२५८।।

अब समस्त (पाँचों) विदेहस्थ आर्य खण्डों की धर्म को आदि लेकर अन्य अन्य विशेषताओं का प्रज्ञापन करते है :—

षष्टयग्रशतदेशस्थार्यखण्डेषु जिनोदिताः ।
श्रावकैर्यतिभिर्द्वेधा धर्मोऽक्षयः प्रवर्तते ।।२५९।।
हानिवृद्धयादिदूरस्थो ह्यहिंसालक्षणो महान् ।
स्वर्मुक्तिजनको नान्योऽङ्गिनो वेदादिजल्पितः ।।२६०।।
अर्हन्तश्च गणाधीशाः सूरिपाठकसाधवः ।
नृदेवसङ्घवन्द्यार्च्याः स्थविराश्च प्रवर्तकाः ।।२६१।।
धर्मोपदेशदातारो विहरन्ति निरन्तरम् ।
धर्मप्रवृत्तये केवलिनो न च कुलिङ्गिनः ।।२६२।।

पुरग्रामादिसर्वेषु सर्वत्र च वनादिषु ।
दीप्रा जिनालयास्तुङ्गा दृश्यन्ते जिनमूर्तयः ॥२६३॥
हेमरत्नमयाभव्यैः पूजिता वन्दिताः स्तुताः ।
न जातु नीचदेवानां गृहा वा मूर्तयोऽशुभाः ॥२६४॥
शाश्वतो मुक्तिमार्गोऽत्र वर्तते योगिनां सदा ।
स्वर्गो गृहाङ्गणोऽत्रस्थपुण्यभाजां सुखावहः ॥२६५॥
प्रजा वर्णत्रयोपेता जिनधर्मरताः शुभाः ।
व्रतशीलतपोदृष्टिभूषिता न द्विजाः क्वचित् ॥२६६॥
मिथ्यात्वपंचकं नात्र स्वप्नेऽपि जातु दृश्यते ।
द्रव्यभूतं न तद्वक्ता न वान्यच्च मतान्तरम् ॥२६७॥
किन्त्वेको जिनधर्मोऽत्र विलोक्यते गृहे गृहे ।
पुण्यभाजां तपोदानव्रतपूजोत्सवादिभिः ॥२६८॥
इति प्रवरदेशेषु लभन्ते जन्मसत्कुले ।
प्रागर्जितशुभा भव्याः सद्गत्याप्त्यै न चेतराः ॥२६९॥

अर्थ.—अढाई द्वीपस्थ विदेहो के एक सौ साठ आर्य खण्ड है, उन आर्य खण्डों के एक सौ साठ (१६०) देशों मे जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित श्रावक धर्म और मुनि धर्म के भेद से दो प्रकार के धर्म का एक सदृश प्रवर्तन निरन्तर होता रहता है। अहिंसा लक्षण से लक्षित और स्वर्ग-मुक्ति को देने वाला यह महान् धर्म हानि-वृद्धि से रहित है। वहाँ पर जिसमें जीवों का घात होता है, ऐसा वेद आदि के द्वारा कहा हुआ हिसामय धर्म नही है ॥२५९-२६०॥ वहाँ पर धर्म प्रवर्तन के लिये मनुष्यो, देवों और सघो से वन्दनीय एव पूजनीय केवलि भगवन्त, अरहन्त प्रभु, गणधर देव, आचार्य परमेष्ठी, उपाध्यायदेव, साधु परमेष्ठी, स्थविर (वृद्धाचार्य अर्थात् तपोभार से युक्त) मुनिराज, प्रवर्तक मुनिराज और धर्मोपदेश रूपी अमृत का पान कराने वाले धर्मोपदेश दाता मुनिराज निरन्तर विहार करते है। वहाँ कुलिङ्गी साधु नही है ॥२६१-२६२॥ वहाँ पर नगरो में, ग्रामो मे, वनो मे तथा और भी अन्य सभी स्थानो मे अत्यन्त देदीप्यमान और उत्तुङ्ग जिनालय ही दिखाई देते है, जिनमे स्थित स्वर्ण और रत्नमय जिनप्रतिमाएँ भव्य जीवो के द्वारा निरन्तर पूजित, वन्दित एव स्तुत होती है। अर्थात् भव्य-जीव उन प्रतिमाओं की निरन्तर पूजा करते है, दर्शन करके वन्दना करते है और अनेक प्रकार की स्तुति करते है। वहाँ पर कभी भी नीच देवों के मन्दिर और अशुभ प्रतिमाएँ दिखाई नही देती ॥२६३-२६४॥ यहाँ पर योगियो का अनाद्यनिधन निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग निरन्तर प्रवर्तित रहता है। यहाँ स्थित पुण्यशाली जीवो को सुख देने वाला यह क्षेत्र स्वर्ग के आंगन सदृश है ॥२६५॥ तीन वर्णो से युक्त एव

व्रत, शील, तप और सम्यग्दर्शन से विभूषित यहाँ की प्रजा हमेशा अत्यन्त शुभ जिनधर्म में ही रत रहती है। यहाँ ब्राह्मण वर्ण कही भी नही है ॥२६६॥ यहा स्वप्न मे भी कही पाच प्रकार का मिथ्यात्व दिखाई नही देता। न यहा मिथ्यात्व का उपदेश देने वाले उपदेशक ही होते है, और न कोई मतान्तर ही है, किन्तु पुण्यवान् जीवों के तप, दान, व्रत, पूजा और अनेक धार्मिक उत्सवो के द्वारा प्रत्येक गृहो मे मात्र एक जैनधर्म ही देखा जाता है ॥२६७-२६८॥ इस प्रकार के श्रेष्ठ देशो के उत्तम कुलो मे स्वर्ग और मोक्ष रूप उत्तम गतियो की प्राप्ति के लिए पूर्वोपार्जित पुण्य से युक्त भव्य जीव ही जन्म लेते हैं, अन्य अर्थात् क्षीण पुण्य वाले नही ॥२६९॥

अब मानुषोत्तर पर्वत का सविस्तर वर्णन करते है :—

अथास्य पुष्करार्धस्य मध्यभागे विराजते ।
शैलोऽर्हच्चैत्यगेहाद्यैः स श्रीमान्मानुषोत्तरः ॥२७०॥
चतुर्दशनदीनिर्गमनद्वारादिशालिनः ।
क्रमह्रस्वस्य चास्याद्रे रुदयो योजनैर्मतः ॥२७१॥
एकविंशतिसंयुक्तसप्ताग्रदशभिः शतैः ।
भूतले विस्तरो द्वाविंशतियुक्तसहस्रकः ॥२७२॥
मध्ये व्यासस्त्रयोविंशत्यग्रसप्तशतप्रमः ।
मूर्ध्नि व्यासश्चतुर्विंशाग्रचतुःशतमानकः ॥२७३॥
अवगाहो गव्यूत्यग्रत्रिंशच्चतुःशतप्रमः ।
क्रोशद्वयोन्नता दिव्यादीप्रास्ति मणिवेदिका ॥२७४॥
नैऋत्यवायुदिग्भागौ मुक्त्वा षड्दिग्विदिक्षु च ।
स्युस्त्रीणि त्रीणि कूटानि श्रेण्याः पृथग्विधान्यपि ॥२७५॥
अग्नीशानदिशोः षट्सु कूटेषु दिव्यधामसु ।
गरुडादिकुमाराश्च भूत्या वसन्ति निर्जराः ॥२७६॥
शेषद्वादशकूटेषु चतुर्दिक्षूच्चसद्मसु ।
वसन्ति दिक्कुमार्योऽस्य सुपर्णकुलसम्भवाः ॥२७७॥
तथाष्टदशकूटानां तेषामभ्यन्तरेऽस्य च ।
चत्वारि सन्ति कूटानि पूर्वादिदिक्चतुष्टये ॥२७८॥
एषां चतुःसुकूटानां मूर्ध्नि सन्ति जिनालयाः ।
स्वर्णरत्नमयास्तुङ्गाश्चत्वारः सुरपूजिताः ॥२७९॥

कूटानामुदयो योजनानां पञ्चशतप्रमः ।
मूले पञ्चशतव्यासश्चाग्रे सार्धशतद्वयः ॥२८०॥
कैवल्याख्यसमुद्घाताच्चोपपादाद्विनाङ्गिनाम् ।
अद्रिमुल्लंघ्यशक्ता नेमं गन्तुं तत्परां भुवम् ॥२८१॥
विद्येशाश्चारणा वान्ये प्राप्ताऽनेकर्द्धयः क्वचित् ।
ततोऽय पर्वतो मर्त्यलोकसीमाकरो भवेत् ॥२८२॥

अर्थ —इस पुष्करार्ध द्वीप के मध्यभाग में अरहन्त भगवान् के चैत्यालयो आदि से अलंकृत, श्रीमान् अर्थात् श्रेष्ठ मानुषोत्तर पर्वत शोभायमान होता है ॥२७०॥ चौदह महानदियों के निर्गमन चौदह द्वारो से सुशोभित और क्रमशः ह्रस्व होते हुये इस मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई जिनेन्द्र भगवान् ने १७२१ योजन दर्शाई है । भूतल अर्थात् मूल में इस पर्वत की चौडाई १०२२ योजन, मध्य में चौडाई ७२३ योजन और ऊपर की चौडाई ४२४ योजन प्रमाण है ॥२७१–२७३॥ मानुषोत्तर का अवगाह अर्थात् नीव का प्रमाण ४३० योजन और एक कोश है । इस पर्वत के शिखर पर दो कोस ऊँची (और ४००० धनुष चौडी) अत्यन्त देदीप्यमान और दिव्य मणिमय वेदी है ॥२७४॥ उस मानुषोत्तर पर्वत पर नैऋत्य और वायव्य इन दो दिशाओं को छोड कर अवशेष पूर्वादि छह दिशाओ मे पक्ति रूप से तीन तीन कूट अवस्थित है ॥२७५॥ आग्नेय और ईशान दिशा सम्बन्धी छह कूटो के दिव्य प्रासादो मे गरुड कुमार जाति के देव अपनी समस्त विभूति के साथ निवास करते है ॥२७६॥ दिशागत अवशेष बारह कूटो के प्रासादो की चारों दिशाओ मे सुपर्ण कुलोत्पन्न दिक्कुमारी देवागनाएँ निवास करती है ॥२७७॥ इन अठारह (१२+६) कूटों के अभ्यन्तर भाग में अर्थात् मनुष्य लोक की ओर पूर्वादि चारो दिशाओं में चार कूट है, जिनके शिखर पर देवताओ से पूज्य और उत्तुङ्ग स्वर्ण एव रत्नमय जिनालय है ॥२७८–२७९॥ इन समस्त कूटों की ऊँचाई ५०० योजन, मूल में व्यास ५०० योजन और शिखर पर व्यास का प्रमाण २५० योजन है ॥२८०॥ केवलिसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद जन्म वाले देवों के सिवाय अन्य कोई भी प्राणी इस मानुषोत्तर पर्वत से युक्त पृथ्वी को उल्लंघन करके नही जा सकता ॥२८१॥ विद्याधर, चारणऋद्धिधारी तथा अनेक प्रकार की और भी अनेक ऋद्धियों से युक्त जीव भी इस पर्वत का उल्लघन नही कर सकते, इसीलिये यह पर्वत मनुष्यलोक की सीमा का निर्धारण करने वाला है ॥२८२॥

अब यह बतलाते है कि ढ़ाई द्वीप के आगे मनुष्य नहीं हैं, केवल तिर्यञ्च हैं :—

यतो द्वीपद्वये सार्धे स्युस्तिर्यञ्चश्च मानवाः ।
ततोऽपरेष्वसंख्येषु द्वीपेषु सन्ति केवलम् ॥२८३॥

तिर्यञ्चो भद्रका नान्ये ततः स कथ्यते श्रुते ।
तिर्यग्लोकोऽप्यसंख्यातस्तिर्यग्भृतो नृदूरगः ॥२८४॥

अर्थः—मानुषोत्तर पर्वत ने मनुष्यो की सीमा का निरधारण कर दिया है, इसीलिये अढाई द्वीप में तो मनुष्य और तिर्यञ्च दोनो है, किन्तु इसके आगे असख्यात द्वोपों मे केवल भद्रपरिणामी तिर्यञ्च ही है, अन्य कोई नही है, इसीलिये आगम मे इसे तिर्यग्लोक कहा है । यह तिर्यग्लोक मनुष्यों से रहित है और असंख्याततिर्यंचो से भरा हुआ है ॥२८३-२८४॥

अब पुष्करवर द्वीप से आगे के द्वीप-समुद्रों के नाम और उनके स्वामी कहते हैं :-

पुष्करद्वीपमावेष्टय तं तिष्ठेत् पुष्करार्णवः ।
श्रीप्रभश्रीधरौ देवौ जलधेरस्य रक्षकौ ॥२८५॥
ततोऽस्ति वारुणीद्वीपोऽस्येमौ स्तो रक्षकौ सुरौ ।
वरुणो दक्षिणे भागे ह्यु त्तरे वरुणप्रभः ॥२८६॥
ततः स्यात्तद्बहिर्भागे वारुणीवरसागरः ।
मध्याख्यमध्यमाभिख्यौ भवतोऽस्य सुनायकौ ॥२८७॥
तस्मात् क्षीरवरद्वीपो भवेत् ख्यातोऽस्य रक्षकौ
व्यन्तरौ पाण्डुराभिख्यपुष्पदन्तौ स्त ऊर्जितौ ॥२८८॥
ततः क्षीरसमुद्रोऽस्ति जिनेन्द्रस्नानकारणः ।
अस्येमौ स्वामिनौ स्वातां विमलो विमलप्रभः ॥२८९॥
तस्माद् घृतवरद्वीपस्तस्यैतौ परिपालकौ ।
दक्षिणोत्तर भागस्थौ सुप्रभाख्य महाप्रभौ ॥२९०॥
तिष्ठत्यतस्तमावेष्टयाम्बुधिर्घृतवराह्वयः ।
अस्याब्धेः स्तः पती चैतौ कनकः कनकप्रभः ॥२९१॥
तत इक्षुवरद्वीपो भवत्यस्याभिरक्षकौ ।
भवतो व्यन्तरौ पूर्णपूर्णप्रभ समाह्वयौ ॥२९२॥
परितस्तं समावेष्टय तिष्ठतीक्षुवरार्णवः ।
स्यातां गन्धमहागन्धाख्यौ देवौ तस्य सत्पती ॥२९३॥

अर्थ.—पुष्करवरद्वीप को वेष्टित कर वलयाकार रूप से पुष्करवर समुद्र है, श्रीप्रभ और श्रीधर नाम के दो देव इस समुद्र को रक्षा करते है ॥२८५॥ इस समुद्र को वेष्टित कर वारुणीवर द्वीप है,

जिसका रक्षक वरुण देव दक्षिण भाग में और वरुणप्रभ उत्तर भाग मे निवास करते है ।।२८६।। इस द्वीप के आगे वारुणीवर समुद्र है, जिसके अधिनायक मध्य और मध्यम नाम के दो देव है ।।२८७।। इस समुद्र से आगे क्षीरवरद्वीप है, जिसके रक्षक पाण्डु और पुष्पदन्त नाम के दो देव है ।।२८८।। इस द्वीप को वेष्टित करके क्षीरवर समुद्र है, जो बाल तीर्थकर के स्नान का कारण है। इस समुद्र के अधिपति विमल और विमलप्रभ नाम के दो देव है ।।२८९।। क्षीरसमुद्र को वेष्टित कर घृतवरद्वीप है, जिसके दक्षिण-उत्तर भाग मे क्रम से सुप्रभ और महाप्रभ नाम के दो रक्षक देव निवास करते है ।।२९०।। घृतवर द्वीप को वेष्टित कर घृतवर नाम का समुद्र है, जिसके स्वामी कनक और कनकप्रभ नाम के दो देव है ।।२९१।। इसके आगे इक्षुवर नाम का द्वीप है, जिसके अधिनायक पूर्ण और पूर्णप्रभ नाम के दो देव है ।।२९२।। इस द्वीप को समावेष्टित कर इक्षुवर नाम का समुद्र है, जिसके अधिपति गन्ध और महागन्ध नाम के दो देव है ।।२९३।।

अब नन्दीश्वर नाम के अष्टम द्वीप की अवस्थिति और उसके सूची व्यास आदि का प्रमाण कहते है :--

त्रिषष्टयग्रशतकोटी लक्षाश्चतुरशीतिकाः ।
इत्यङ्कयोजनव्यासो द्वीपो नन्दीश्वरो भवेत् ।।२९४।।
कोटयः सप्तविंशत्यधिकत्रिशतसम्मिताः ।
पञ्चषष्टिप्रमालक्षा इति योजनसंख्यया ।।२९५।।
आदिसूची भवेदस्य द्वीपस्य धर्मधारिणः ।
द्विपञ्चाशन्महातुङ्गजिनालयादिशालिनः ।।२९६।।
योजनानां सहस्रैकं हि षड् त्रिंशच्च कोटयः ।
द्विषड्लक्षाः सहेस्रे द्वे तथा सप्तशतानि च ।।२९७।।
त्रिपंचाशदथ क्रोशौ द्वावित्यङ्कात्तयोजनैः ।
तस्या आदिलघु सूच्या आदिमा परिधिर्मता ।।२९८।।
षट्शतानि तथा पंचपंचाशत्कोटयः पुनः ।
त्रयस्त्रिंशच्च लक्षाणि चेति योजनसंख्यया ।।२९९।।
अन्तिमा महती सूची प्रोदिता श्रीगणाधिपैः ।
द्वीपस्यास्य जिनागारैःजगदानन्दकारिणः ।।३००।।
द्वासप्ततिसमायुक्तद्विसहस्राणि कोटयः ।
त्रयस्त्रिंशत् त्व लक्षाश्चतुः पञ्चाशत्सहस्रकाः ।।३०१।।

नवत्यग्रशतं क्रोश एक इत्यङ्कयोजनैः ।
अन्तिमा परिधिर्गुर्वी ह्यन्त्यसूच्या मतागमे ।।।।३०२।।

अर्थ —इक्षुवर समुद्र को वेष्टित किये हुए नन्दीश्वर नाम का आठवाँ द्वीप है, इसका व्यास १६३८४०००००० योजन प्रमाण है। अर्थात् जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर आठवे नन्दीश्वर द्वीप पर्यन्त का वलयव्यास एक सौ त्रेसठ करोड चौरासी लाख प्रमाण है ।।२६४।। धर्म को धारण करने वाले महा उत्तुङ्ग ५२ जिनालयो से सुशोभित नन्दीश्वर द्वीप को आदिम सूची व्यास का प्रमाण ३२७६५०००००० योजन है ।।२६५-२६६।। इस आदिम सूची व्यास की परिधि १०३६१२०२७५३ योजन और दो (२) कोस मानी गई है ।।२६७-२६८।। भव्य जिनालयो के द्वारा ससार को आनन्दित करने वाले इस नन्दीश्वर द्वीप की अन्तिम सूची व्यास का प्रमाण जिनेन्द्र भगवन्तो के द्वारा ६५५३३०००००० योजन कही गई है ।।२६६-३००।। जिनागम मे इस अन्तिम सूची व्यास की परिधि का प्रमाण २०७२३३५४१६० योजन और एक कोस कहा गया है ।।३०१-३०२।।

अब अञ्जनगिरि पर्वत और वापिकाओं का अवस्थान एवं उनका व्यास आदि कहते है :—

तस्य मध्ये चतुर्दिक्षु चत्वारोऽञ्जनपर्वताः ।
राजन्ते पटहाकारा इन्द्रनीलमणिप्रभाः ।।३०३।।
योजनानां सहस्रैश्चतुरग्राशीतिसंख्यकैः ।
उन्नता विस्तृता योजनसहस्रावगाहकाः ।।३०४।।
लक्षयोजनभूभागं मुक्त्वाद्रीणां पृथग्विधाः ।
प्रत्येकं च चतुर्दिक्षु चतस्रः सन्ति वापिकाः ।।३०५।।
लक्षयोजनविस्तीर्णा चतुरस्राः क्षयातिगाः ।
सहस्रयोजनागाहा रत्नसोपानराजिताः ।।३०६।।
निर्जन्तुजलसम्पूर्णाः पद्मवेदीतटाङ्किताः ।
हेमाम्बुजौघसंछन्ना महावीचीशताकुलाः ।।३०७।।

अर्थः—नन्दीश्वर द्वीप के मध्य मे चारों दिशाओ मे अञ्जनगिरि नाम के चार पर्वत है, जिनका आकार ढोल के समान और आभा इन्द्रनीलमणि के सदृश है ।।३०३।। प्रत्येक अञ्जनगिरि की ऊँचाई ८४००० योजन, चौड़ाई ८४००० योजन और अवगाह १००० योजन है ।।३०४।। प्रत्येक अञ्जनगिरि के चारो ओर एक एक लाख योजन भूमि को छोड कर भिन्न भिन्न चारों दिशाओ में चौकोर आकार

को धारण करने वाली चार चार वापिकाएँ है। अर्थात् एक एक अञ्जनगिरि के चारो ओर एक एक अर्थात् कुल सोलह वापिकाएँ है ॥३०५॥ ये प्रत्येक वापिकाएँ एक लाख योजन विस्तीर्ण, एक हजार योजन गहरी, चौकोर आकार वाली, अनादि-निधन, रत्नो की सीढियो से सुशोभित, जीव जन्तु रहित जल से परिपूर्ण, कमलो के समूह से आकीर्ण और सैकडो महा तरगो से व्याप्त है। इनके तट, पद्म-वेदिकाओ से अलकृत है ॥३०६-३०७॥

अब सोलह वापिकाओं के नाम, उनके स्वामियों एवं उनके अन्तरायामों का दिग्दर्शन कराते है :—

नन्दा नन्दवती संज्ञा वापी नन्दोत्तराह्वया ।
नन्दिषेणा च पूर्वाद्रेः पूर्वादि दिक्षु ताः स्थिताः ॥३०८॥
सौधर्मेन्द्रस्य भोग्याद्यैशानेन्द्रस्य द्वितीयका ।
तृतीया चमरेन्द्रस्यान्तिमा वैरोचनस्य सा ॥३०९॥
अरजा विरजाख्या गतशोका वीतशोकिका ।
दक्षिणाञ्जनशैलस्य पूर्वादिदिक्षु ताः क्रमात् ॥३१०॥
आद्येन्द्रलोकपालानां पूर्वा सा वरुणस्य च ।
भोग्या यमस्य सोमस्य क्रमाद् वैश्रवणस्य तु ॥३११॥
विजया वैजयन्ती च जयन्ती ह्यपराजिता ।
एताः पूर्वादि दिक्षु स्युः पश्चिमाञ्जनसद्गिरेः ॥३१२॥
वेणुदेवस्य भोग्याद्या वेणुतालेर्द्वितीयका ।
धरणस्य तृतीया स्याद् भूतानन्दस्य सान्तिमा ॥३१३॥
रम्याख्या रमणी सुप्रभोत्तराञ्जनभूभृतः ।
चरिमा सर्वतोभद्रा प्राच्यादिदिक्षु च क्रमात् ॥३१४॥
ऐशानलोकपालस्य वरुणस्य यमस्य सा ।
सोमस्यास्ति कुबेरस्यैकैकवापी च पूर्ववत् ॥३१५॥
पंचषष्टिसहस्राः पंचचत्वारिंशदित्यपि ।
योजनैर्द्व्यष्टवापीनां प्रत्येकमादिमान्तरम् ॥३१६॥
लक्षैकयोजनानां च चत्वारो हि सहस्रकाः ।
षट्शतानि द्व्याग्राणीति संख्यया परस्परम् ॥३१७॥

भवेन्मध्यान्तरं सर्व वापिकानां पृथक् पृथक् ।
लक्षौ द्वौ च त्रयो विंशति सहस्राः शतानि षट् ॥३१८॥

तथैकषष्टिरित्यङ्कानां च योजनसंख्यया ।
तासां षोडशवापीनां स्युर्बाह्येत्यान्तराणि वै ॥३१९॥

अर्थ—पूर्व दिशा स्थित अञ्जनगिरि की पूर्व आदि चारो दिशाओं मे क्रमश: नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा नाम की चार वापिकाएँ स्थित है ॥३०८॥ प्रथम वापिका सौधर्मेन्द्र के भोग्य है, दूसरी ऐशानेन्द्र के, तीसरी चमरेन्द्र के और चतुर्थ वापिका वैरोचन के भोग्य है, ॥३०९॥ दक्षिण-दिश स्थित अञ्जनगिरि की पूर्वादि चारो दिशाओ में क्रमशः अरजा, विरजा, गतशोका और वीतशोका नाम की चार वापिकाएँ है, इनमे प्रथम वापिका सौधर्मेन्द्र के लोकपालो मे से वरुण के भोग्य, द्वितीय वापिका यम के, तृतीय वापिका सोम के और चतुर्थ वापिका वैश्रवण लोकपाल के भोग्य है ॥३१०-३११॥ पश्चिम दिशागत अञ्जनगिरि की पूर्वादि चारो दिशाओ मे क्रमश विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता नाम की चार वापिकाएँ है, इनमे प्रथम वापिका वेणुदेव के, द्वितीय वेणुताल के, तृतीय धरणदेव के और चतुर्थ बापिका भूतानन्द देव के भोग्य है ॥ ३१२-३१३ ॥ उत्तर दिशा गत चतुर्थ अञ्जनगिरि की पूर्वादि चारो दिशाओ मे क्रमशः रम्या, रमणी, सुप्रभा और सर्वतोभद्र नाम की वापिकाएँ है, इनमे प्रथम वापिका ऐशानेन्द्र के लोकपालो मे से वरुण द्वारा भोग्य है, द्वितीय वापिका यम के, तृतीय सोम के और चतुर्थ वापिका कुवेर लोकपाल के द्वारा भोग्य है ॥३१४-३१५॥ इन सोलह वापियो मे से प्रत्येक का आदि (अभ्यन्तर) अन्तर ६५५०४५ योजन सर्व वापियो का पृथक् पृथक् मध्य अन्तर १०४६० योजन और इसी प्रकार सर्व वापियो का भिन्न भिन्न बाह्य अन्तर २२३६६१ योजन प्रमाण है ॥३१६-३१९॥

अब दधिमुख पर्वतों की संख्या, उनका अवस्थान, वर्ण और व्यास आदि कहते है :-

वापीनां मध्यभूदेशेषु सन्त्यासां दधिप्रभाः ।
रम्या दधिमुखाभिख्याः श्वेताः षोडशभूधराः ॥३२०॥

पटहाकारिणस्तुङ्गा विस्तृताश्च दशप्रमैः ।
सहस्रयोजनैर्योजनसहस्रावगाहिनः ॥३२१॥

अर्थ—इन सब वापियो के मध्य भूप्रदेशपर दधि की प्रभा युक्त, रमणीक और श्वेतवर्ण वाले दधिमुखनाम के १६ पर्वत है। इनका आकार ढोल सदृश, ऊँचाई दशहजार योजन, चौडाई दशहजार योजन और अवगाह (नीव) १००० योजन प्रमाण है ॥३२०-३२१॥

अब व्यास आदि से युक्त रतिकर पर्वतों और सर्व जिनालयों का वर्णन करते हैं :-

तासां समस्तवापीनां प्रत्येकं बाह्यकोणयोः ।
द्वौ द्वौ रतिकराभिख्यौ भवतः पर्वतौ शुभौ ।।३२२।।

द्वात्रिंशदद्रयोऽत्रैते तुङ्गाः सहस्रयोजनैः ।
विस्तृताः पटहाकाराः स्वोच्चतुर्यांशगाहकाः ।।३२३।।

सौवर्णाः शाश्वताः सर्वेऽत्राञ्जनाद्या महाचलाः ।
पिण्डीकृता द्विपञ्चाशद् भवन्त्यतिमनोहराः ।।३२४।।

एषां सर्वमहीन्द्राणां मूर्ध्न्येकैक जिनालयम् ।
शाश्वतं सुरपूजाढ्यं भवेत् त्यक्तोपमं परम् ।।३२५।।

सर्वे पिण्डीकृतास्ते द्विपंचाशच्छ्रीजिनालयाः ।
स्वर्णरत्नमया दिव्याः स्फुरद्दीप्रा मनोहराः ।।३२६।।

पूर्वोक्त वर्णनोपेताः सर्वज्येष्ठा विभान्त्यलम् ।
देवसंघैर्महाभूत्या धर्माकरा इवोर्जिताः ।।३२७।।

प्राङ्मुखाः सुरनाथादीनाह्वयन्तः इवानिशम् ।
जिनार्चायै शुभाप्त्यै च तुङ्गध्वजकरोत्करैः ।।३२८।।

अर्थः—उन समस्त वापियो मे से प्रत्येक वापी के दोनों बाह्य कोणो पर अतीव शुभ रतिकर नाम के दो दो पर्वत है, इस प्रकार १६ वापियो के दो दो कोणो पर ३२ रतिकर पर्वत है, इन सभी पर्वतो की भिन्न भिन्न ऊँचाई १००० योजन, चौडाई १००० योजन, अगाध (नीव) ऊँचाई का चतुर्थांश अर्थात् २५० योजन है, अनाद्यनिधन इन सब पर्वतो का आकार ढोल सदृश और वर्ण तपाये हुए स्वर्ण समान है । मन को हरण करने वाले अञ्जनादि सभी पर्वतों का योग (४+१६+३२)=५२ होता है ।।३२२-३२४।। इन सब ५२ पर्वतो के शिखर पर शाश्वत, देवेन्द्रो से पूज्य, उपमा रहित और परमोत्कृष्ट एक एक जिनालय है । अत्यन्त कान्तिमय है प्रकाश जिनका ऐसे दिव्य और मनोहर उन स्वर्ण और रत्नमय सब जिनालयों का कुल योग (४+१६+३२)=५२ है ।।३२५-३२६।। जो पूर्वोक्त वर्णन मे सहित है, उत्कृष्ट आयाम आदि युक्त है और धम की खान के समान है, ऐसे वे ५२ चैत्यालय महाविभूति युक्त देव समूहों के द्वारा अत्यन्त शोभायमान होते है ।।३२७।। वे समस्त चैत्यालय पूर्वाभिमुख है, और उत्तुङ्ग ध्वजाओ से ऐसे सुशोभित होते है मानो ये अपने ध्वजा रूपी हाथो से अहर्निश परमशुभ जिन पूजा के लिए सुरेन्द्र आदिको को ही बुला रहे हों ।।३२८।।

अब अशोक आदि वनों एवं चैत्यवृक्षों का अवधारण करते है :—

वापीनां पूर्वदिग्भागेऽत्राशोकं वनमुल्वणम् ।
एकैकं दक्षिणे भागे सप्तपर्णाह्वयं महत् ॥३२९॥
प्रदेशे पश्चिमे स्याच्च चाम्पकं सुवनं पृथक् ।
उत्तरायां दिशि प्रोच्चं वनमाम्राह्वयं परम् ॥३३०॥
वनान्येतानि सर्वाणि नित्यानि भान्ति भूतिभिः ।
मयूरैः कोकिलालापैः शुकाद्यैश्च द्रुमोत्करैः ॥३३१॥
सर्वर्तुफलपुष्पाद्यैश्चैत्यवृक्षैः सुरालयैः ।
लक्षयोजनदीर्घाणि दीर्घार्धविस्तृतानि च ॥३३२॥
वनानां मध्यदेशेषु तिस्रः स्युर्मणिपीठिकाः ।
त्रिमेखलाङ्किता दिव्याः प्रत्येकं तुङ्गविग्रहाः ॥३३३॥
तासां मूर्ध्नि विराजन्ते चैत्यवृक्षाः स्फुरद्रुचः ।
छत्रघण्टाजिनार्चाद्यैर्विचित्राः प्रोन्नताः शुभाः ॥३३४॥
तेषां मूले चतुर्दिक्षु महत्यो जिनमूर्तयः ।
दीप्राः शक्रादिवन्द्यार्च्याः स्युः पर्यङ्कासनस्थिताः ॥३३५॥

अर्थः—उन सोलह वापिकाओ की चारो दिशाओ मे एक एक वन है। पूर्वभाग मे अशोक नाम का वन है। दक्षिण दिशा मे सप्तपर्ण नाम का महान् वन है। पश्चिम दिशा मे चम्पक वन और उत्तर दिशा मे आम्र नामक उत्तम वन है ॥३२९-३३०॥ ये शाश्वत ६४ ही वन मयूरो, कोकिलाओ एव शुकादिको के सुन्दर आलापो से एव द्रुमसमूह आदि विभूति से शोभायमान है ॥३३१॥ सर्व ऋतुओ के फलो एव पुष्प आदि से, चैत्यवृक्षो से देवप्रासादो से सुशोभित उन सभी वनो का पृथक् पृथक् विस्तार पचास हजार योजन और दीर्घता (लम्बाई) एक लाख योजन प्रमाण है ॥३३२॥ उन सभी वनो के मध्यभाग मे मणिमय तीन तीन पीठिकाएँ है। प्रत्येक पीठिका तीन तीन दिव्य और उत्तुङ्ग मेखलाओ (कटनियो) से अलकृत है। उन पीठिकाओ के ऊपर नाना प्रकार के छत्र, घण्टा और जिनार्चा आदि से युक्त प्रोन्नत, शुभ और फैलती हुई द्युति से युक्त चैत्यवृक्ष सुशोभित होते है। ॥३३३-३३४॥ उन चैत्यवृक्षो के मूल मे पूर्वादि चारो दिशाओ मे कान्तिमान्, इन्द्रादि देवो से वदनीय एव अर्चनीय तथा पद्मासन स्थित प्रभावशाली जिनमूर्तियाँ है ॥३३५॥

अब वनों मे स्थित प्रासादों के आयाम आदि का तथा अष्टाह्निकी पूजा का वर्णन करते है :—

चतुःषष्टिवनानां च मध्ये सन्ति मनोहराः ।
सत्प्रासादाश्चतुःषष्ठिर्वननामसुराश्रिताः ॥३३६॥
द्विषष्टि योजनोत्सेधा आयामविस्तरान्विताः ।
एकत्रिंशत्प्रमाणैश्च योजनैर्द्वारभूषिताः ॥३३७॥
आषाढे कार्तिके मासे फाल्गुने च निरन्तरम् ।
प्रतिवर्षं सुरैः सार्धं चतुर्निकायवासवाः ॥३३८॥
स्वस्वसद्वाहनारूढाः सकलत्राः शुभाशयाः ।
विभूत्या परया भक्त्यागत्यारभ्याष्टमीदिनम् ॥३३९॥
आष्टाह्निकीं महापूजां कुर्वन्ति पुण्यमातृकाम् ।
त्रिजगन्नाथमूर्तिनां विश्वचैत्यालयेषु च ॥३४०॥
अभिषेकं महन्नित्य सुरनाथाः सुरैः समम् ।
द्विद्विप्रहरपर्यन्तमेकैकदिशि शान्तये ॥३४१॥
कनत्काञ्चनकुम्भास्यनिर्गतैर्निर्मलाम्बुभिः ।
महोत्सवशतैर्वाद्यैर्जयकोलाहलस्वनैः ॥३४२॥
नित्यं प्रकुर्वते भूत्या विश्वविघ्नहरं शुभम् ।
जिनेन्द्रदिव्यबिम्बानां गीतनृत्यस्तवैः सह ॥३४३॥

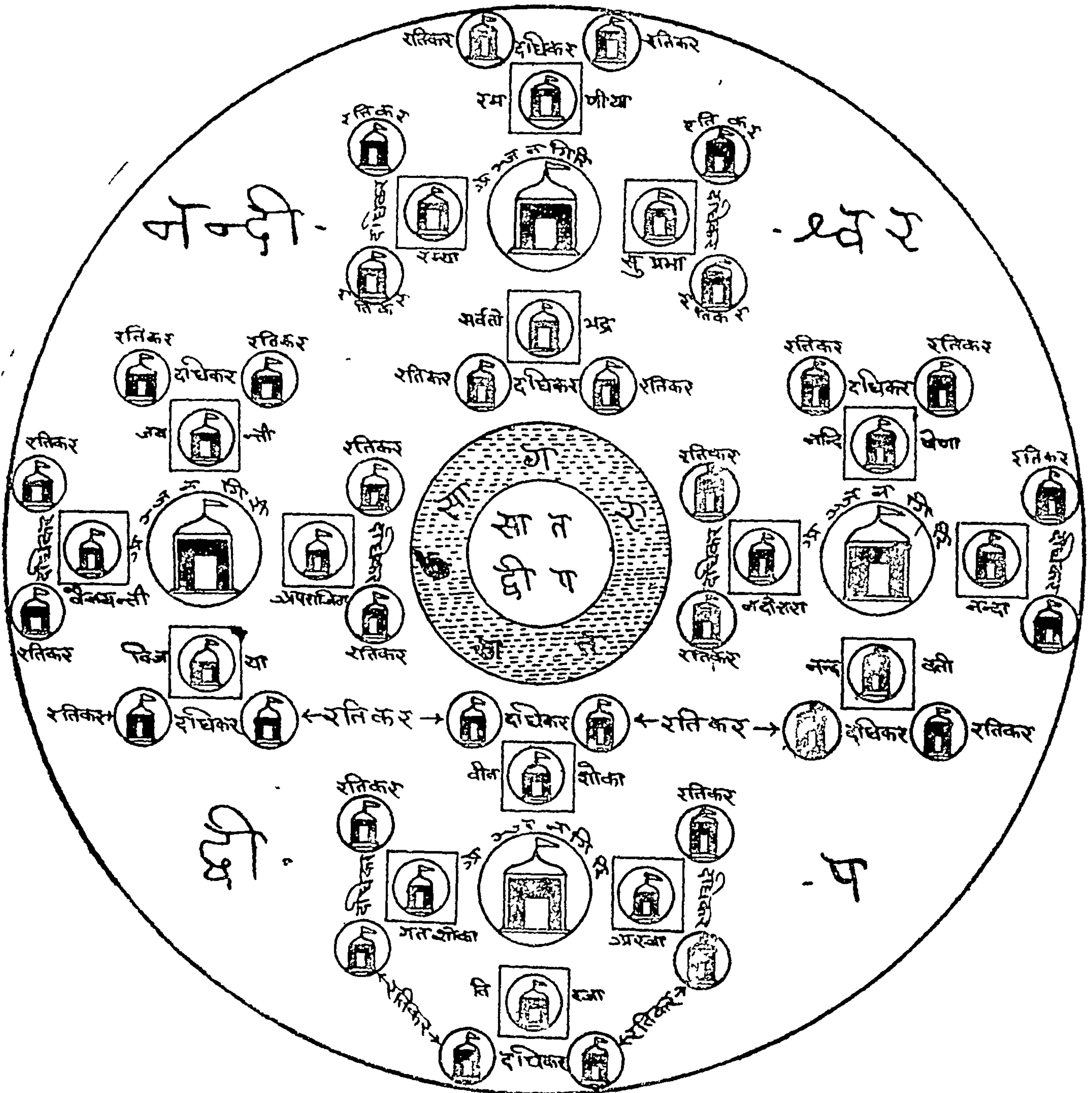
अर्थ —६४ वनो के मध्य मे वनो के सदृश नाम वाले देवो के अति मनोहर ६४ प्रासाद है। इन प्रासादो में से प्रत्येक प्रासाद ६२ योजन ऊँचे, ६२ योजन लम्बे, ३१ योजन चौडे और द्वार आदि से विभूषित है ॥३३६-३३७॥ प्रतिवर्ष निरन्तर आसाढ, कार्तिक और फाल्गुन मास में चतुर्निकाय के इन्द्र, देवो एव देवागनाओं के साथ अपने अपने उत्तम वाहनों पर चढ कर परम विभूति और परमोत्कृष्ट भक्ति से अष्टमी को नन्दीश्वर द्वीप जाकर सर्व चैत्यालयों में स्थित जिनबिम्बो की पुण्य की माता सदृश अष्टाह्निकी नाम की महापूजा करते है ॥३३८-३४०॥ महा महोत्सव पूर्वक सैकडों वाद्यों एव जयजयकार शब्दो के कोलाहल से युक्त, महाविभूति से, गीत, नृत्य और सहस्रों स्तुतियाँ गाते हुए, स्वर्ण और रत्नो के घडो से निकलती हुई निर्मल जल की धारा द्वारा, अन्य देव समूहों के साथ साथ सर्व इन्द्र, आत्म शान्ति के लिए नित्य ही प्रत्येक दिशा मे दो दो पहर जिनेन्द्रों की दिव्य प्रतिमाओं का सर्व विघ्न नाशक और कल्याणप्रद महा अभिषेक करते है ॥३४१-३४३॥

अब चारों प्रमुख इन्द्रों के द्वारा एक ही दिन में चारों दिशाओं की पूजन का विधान कहते है :—

इत्येकेन दिनेनात्र चतुर्दिग्जिनवेश्मसु ।
एका स्यान्महती पूजा सम्पूर्णा च सुरेशिनाम् ।।३४४।।
पूर्वाशायां जिनर्चानां सौधर्मेन्द्रो महामहम् ।
अष्टभेदं सुरैः सार्धं दिव्यार्चनैः करोति च ।।३४५।।
पश्चिमाशास्थगेहेषु प्रतिमानां जिनेशिनाम् ।
विधत्ते परमां पूजामैशानेन्द्रोऽमरावृतः ।।३४६।।
दक्षिणाशाप्रदेशस्थ चैत्यालयेषु भक्तितः ।
कुरुते जिनमूर्तीनां चमरेन्द्रो महार्चनम् ।।३४७।।
उत्तराशामहीभागे शक्रो वैरोचनो मुदा ।
चैत्यालयस्थचैत्यानां करोति पूजनं परम् ।।३४८।।
इत्यमी प्रत्यहं मुख्याश्चत्वारः सुरनायकाः ।
प्रदक्षिणाविधानेनात्रत्यश्रीजिनधामसु ।।३४९।।
त्रिजगद्देवदेवीभिः समं पूजामहोत्सवम् ।
कुर्वते जिनमूर्तीनां पूर्णमास्यन्तमञ्जसा ।।३५०।।

अर्थ—इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप स्थित जिन चैत्यालयों मे एक ही दिन मे चारो दिशाओ मे देवेन्द्र एक महान पूजा सम्पूर्ण करते है ।।३४४।। अन्य देव समूहो के साथ साथ सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र पूर्वदिशा मे स्थित जिनप्रतिमाओ की अष्ट प्रकार की महामह पूजा दिव्य द्रव्य के द्वारा करता है ।।३४५।। अनेक देवो से आवृत ऐशानेन्द्र पश्चिमदिशागत जिनालयो मे स्थित जिनेन्द्र बिम्बो की परम पुनीत पूजा करता है ।।३४६।। दक्षिण दिशागत क्षेत्र के चैत्यालयो मे स्थित जिनबिम्बो की महामह पूजा चमरेन्द्र महान् भक्तिभाव से करता है ।। ३४७ ।। इसी प्रकार उत्तर दिशा स्थित चैत्यालयो के जिन विम्बो की परमोत्कृष्ट पूजा वैरोचन इन्द्र अति प्रमोद पूर्वक करता है ।।३४८।। इस उपर्युक्त विधि के अनुसार ये चारो प्रधान इन्द्र त्रैलोक्य स्थित देव देवियो के साथ प्रदक्षिणा क्रम से नन्दीश्वरद्वीपस्थ जिनचैत्यालयो के जिनविम्बो को पूजा, महामहोत्सव के साथ पूर्णिमा पर्यन्त करते है । अर्थात् पूर्व-दिशा मे सौधर्मेन्द्र, दक्षिण मे ऐशानेन्द्र, पश्चिम मे चमरेन्द्र और उत्तर मे वैरोचन इन्द्र अपने सुरसमूह के साथ दो-दो पहर पूजन करते है । दोपहर बाद सौधर्मेन्द्र दक्षिण मे आ जाते है, तत्र दक्षिण वाले देव पश्चिम मे और पश्चिम वाले उत्तर मे तथा उत्तर दिशा वाले देव पूर्व मे आकर ऐन्द्रध्वज आदि महापूजा करते है । यह क्रम एक दिन का है, इम प्रकार अष्टमी मे प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त देवगण इसी क्रम से महामहोत्सव के साथ महामह आदि पूजन करते है ।।३४९-३५०।।

उपर्युक्त ५२ चैत्यालयो का चित्रण निम्न प्रकार है :—



अब नन्दीश्वरद्वीप के स्वामी कहते हैं :—

द्वीपस्य प्रवरस्यास्य स्यातां देवौ सुरक्षकौ ।

जिनभक्तिपरौ नित्यं शुद्धप्रभमहाप्रभौ ।।३५१।।

अर्थ —जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति मे परायण प्रभ और महाप्रभ नाम के दो देव इस महान नन्दीश्वर द्वीप की रक्षा करते है ।।३५१।।

अब नन्दीश्वर समुद्र की एवं दो द्वीपों की अवस्थिति कहते है :—

ततस्तं परिवेष्ट्यास्ति नन्दीश्वरवराम्बुधिः ।
ततः स्यादरुणो द्वीपोऽरुणप्रभसमाह्वयः ।।३५२।।

अर्थः—नन्दीश्वर द्वीप को परिवेष्टित करके नन्दीश्वर नामक महासमुद्र है, इसके आगे ९ वां अरुण द्वीप और १० वाँ अरुणप्रभ नाम के द्वीप है ।।३५२।।

अब कुण्डलद्वीपस्थ कुण्डलगिरि के व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं :—

अथैकादशमो द्वीपो विख्यातः कुण्डलाभिधः ।
कुण्डलाकारसंस्थानकुण्डलाचलभूषितः ।।३५३।।
योजनानां सहस्राणि पञ्चसप्ततिरुन्नतिः ।
सहस्रयोजनागाहोऽस्याद्रेर्मूले च विस्तरः ।।३५४।।
सहस्रदशसंख्यातविंशाग्रद्विशतप्रमः ।
मध्ये च द्विशतत्रिंशद्युक्तसप्तसहस्रकः ।।३५५।।
अग्रे व्यासः सहस्राणि चत्वारि द्वे शते तथा ।
योजनानि च चत्वारिंशत्कुण्डलमहीभृतः ।।३५६।।
इत्युक्तोत्सेधविस्तारः स्वर्णाभः कुण्डलाचलः ।
द्वीपस्य मध्यभागेऽस्ति कुण्डलाकृतिमाश्रितः ।।३५७।।

अर्थ—अरुणप्रभद्वीप के वाद ग्यारहवाँ कुण्डल नाम का विख्यात द्वीप है, जो कुण्डल के आकार वाले कुण्डलाचल पर्वत से विभूषित है ।।३५३।। यह पर्वत ७५००० योजन ऊँचा, १००० अवगाह (नीव) से युक्त, मूल विस्तार १०२२० योजन, मध्यविस्तार ७२३० योजन और शिखर विस्तार ४२४० योजन है ।।३५४–३५६।। कुण्डलद्वीप के मध्यभाग मे कुण्डलाकृति का धारक उपर्युक्त उत्सेध एव विस्तार से युक्त और स्वर्णाभा के सदृश कान्ति वाला कुण्डलाचल पर्वत है ।।३५७।।

अब कुण्डलगिरिस्थ कूटों का अवस्थान, संख्या एवं व्यास आदि के प्रमाण का दिग्दर्शन कराते है :—

अस्याद्रेर्मस्तके सन्ति कूटानि दिक्चतुष्टये ।
चत्वारि विदिशासु स्याद्रम्यं कूटचतुष्टयम् ।।३५८।।
तासामष्टदिशां मध्यान्तरेष्वष्टसु सन्ति च ।
अष्टौ महान्ति कूटानीमानि कूटानि षोडश ।।३५९।।

अमीषां द्व्यष्टकूटानां मूर्धस्थरत्नसद्मसु ।
पल्यैकजीविनो भूत्या नागदेवा वसन्ति च ॥३६०॥
तेषामभ्यन्तरे भागे चतुःपूर्वादिदिक्षु च ।
चत्वारि मणिकूटानि सन्ति सेव्यानि निर्जरैः ॥३६१॥
कूटानां मूर्ध्निराजन्ते चत्वारः श्रीजिनालयाः ।
देवसङ्घकृतैर्नित्यं पूजोत्सवशतादिभिः ॥३६२॥
एषां विंशतिकूटानामुदयो योजनानि च ।
शतानि पञ्चमूले स्वोत्सेधेन समविस्तरः ॥३६३॥
अग्रे व्यासो मतः सार्धद्विशतैर्योजनैरिति ।
वर्णनैः कुण्डलाद्रिः स्यात् सुरसङ्घोत्सवप्रदः ॥३६४॥

अर्थः—कुण्डलगिरि पर्वत पर पूर्वादि चारो दिशाओ मे चार कूट है, और चारों विदिशाओं मे भी रमणीक चार कूट है ॥३५८॥ इन आठो दिशाओ के मध्य आठ अन्तरालो मे आठ महान् कूट है। इस प्रकार आठ दिशाओ और आठो अन्तरालो मे कुल सोलह कूट है ॥३५९॥ इन सोलह कूटो के शिखर पर रत्नो के प्रासाद है, जिनमें एक पल्य की आयु वाले नागदेव महाविभूति के साथ रहते है। ॥३६०॥ इन दिशागत कूटो के अभ्यन्तर भाग मे पूर्वादि चारो दिशाओ मे देवों द्वारा सेव्यमान चार कूट है। इन कूटो के शिखर पर (प्रत्येक कूट पर एक) चार जिनालय है, जिनमें देव समूहो के द्वारा नित्य ही सहस्रो पूजा महोत्सव किये जाते है ॥३६१–३६२॥ ये बीसो कूट पाच-पाच सौ योजन ऊँचे हैं, इनका मूल विस्तार ५०० योजन और ऊर्ध्व–शिखर का विस्तार २५० योजन प्रमाण है। जहाँ नित्य देवो के द्वारा अनेक महोत्सव होते है ऐसे कुण्डलगिरि का वर्णन है ॥३६३–३६४॥

अब शङ्खवरद्वीप और रुचकद्वीप की अवस्थिति कह कर रुचकगिरि के व्यास आदि का प्रमाण कहते है :—

ततः शङ्खवरद्वीपस्तस्माच्च रुचकाह्वयः ।
राजतेऽद्रिर्जिनागारैस्त्रिदशानन्दकारकः ॥३६५॥
अस्य द्वीपस्य मध्येऽस्ति वलयाकार ऊर्जितः ।
अचलो रुचकाभिख्य पुण्यकर्मनिबन्धनः ॥३६६॥
आदौ मध्येऽचलस्याग्रे सर्वत्र समविस्तरः ।
प्रोक्तश्चतुरशीतिश्च सहस्रयोजनानि च ॥३६७॥

स्वव्यासेन समोत्सेधो मन्तव्योऽस्य महागिरेः ।
सहस्रयोजनागाहोऽग्रे स्युः कूटान्य मून्यपि ॥३६८॥

अर्थ :—११ वे कुण्डलवर द्वीप के बाद १२ वाँ शखवर द्वीप है, और शखवर द्वीप के आगे १३ वाँ रुचकवर द्वीप है, जो जिनेन्द्र भगवान के जिनालयों से देवो को आनन्द कारक है, ऐसे रुचकगिरि (पर्वत) से सुशोभित है ॥ ३६५ ॥ इस रुचकवर द्वीप के मध्य मे शाश्वत और वलयाकार पुण्यकर्म को आकर्षण करने वाला रुचक नाम का पर्वत है ॥ ३६६ ॥ इस पर्वत का आदि, मध्य और शिखर का सर्वत्र विस्तार समान है । अर्थात् सर्वत्र ८४००० योजन प्रमाण है ॥३६७॥ इस रुचक पर्वत की ऊँचाई भी अपने विस्तार के सदृश अर्थात् ८४००० योजन प्रमाण ही है, तथा अवगाह १००० योजन है । इस महागिरि के ऊपर अनेक कूट भी है ॥३६८॥

अब रुचकगिरि पर स्थित कूटो का अवस्थान, सख्या, स्वामी और उनके कार्यो एवं व्यास आदि के प्रमाण का निर्धारण करते हैं :—

पूर्वाद्यासु चतुर्दिक्ष्वष्टौ कूटानि पृथक् पृथक् ।
प्रत्येकं रुचकाख्याद्रेर्बहिर्भागे च मूर्धनि ॥३६९॥

पूर्वाशास्थाष्टकूटेषु दिक्कुमार्यो वसन्ति ताः ।
याः शृङ्गारविधायिन्यो जिनमातुर्भवन्ति च ॥३७०॥

दक्षिणाशाष्टकूटाग्रस्थ सौधेषु वसन्ति च ।
मणिदर्पणधारिण्योऽष्टौ तस्या दिक्कुमारिकाः ॥३७१॥

पश्चिमाशाष्ट कूटेषु तिष्ठन्ति दिक्कुमारिकाः ।
मूर्ध्न्यष्टौ छत्रधारिण्यो जिनाम्बाया मुदागताः ॥३७२॥

उत्तराशाष्टकूटेषु दिक्कुमार्यो वसन्ति ताः ।
जिनमातुरिहायाताश्चामराण्युत् क्षिपन्ति याः ॥३७३॥

तथास्याद्रेश्चतुर्दिक्षु पङ्क्त्या कूटानि सन्ति च ।
त्रीणि त्रीणि मनोज्ञानि प्रत्येकं हि ततोऽन्तरे ॥३७४॥

चतुःकूटेषु तिष्ठन्ति दिक्कुमार्यश्चतुःप्रमाः ।
ता या जिनजनन्याश्च निकटे सेवनोत्सुकाः ॥३७५॥

अमीषां मध्यभागेषु चतुःकूटस्थवेश्मसु ।
वसन्ति दिक्कुमारीणां सन्महत्तरिकाः पराः ॥३७६॥

तेषां मध्ये चतुःकूटेषु चतस्रो वसन्ति ताः ।
या महत्तरिकाश्चार्हज्जातकर्माणि कुर्वते ॥३७७॥

अमीषां सर्वकूटानामन्तर्भागे भवन्ति च ।
चत्वारि मणिकूटानि चतुर्दिक्षु महान्त्यपि ॥३७८॥

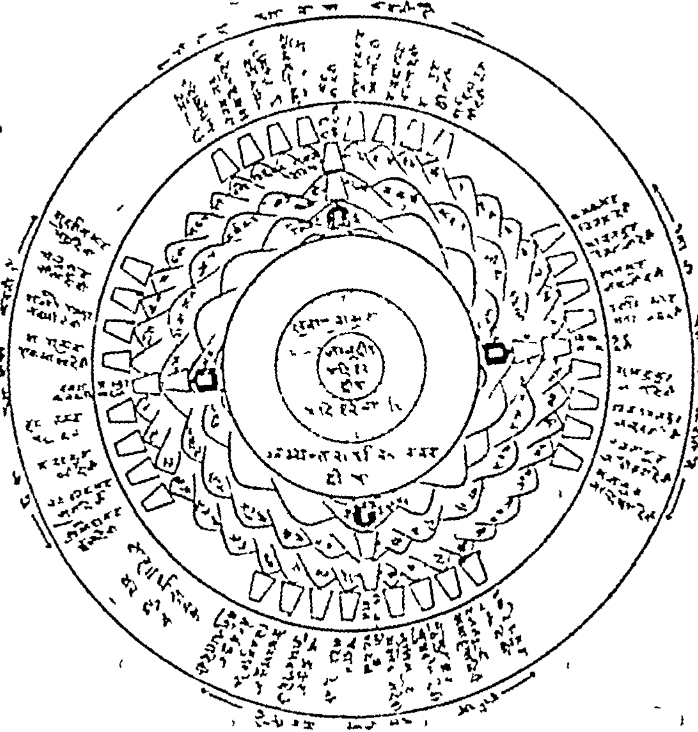
एतेषां मूर्ध्नि राजन्ते देवोत्थार्च्चोत्सवोत्करैः ।
चैत्यालया जिनेन्द्राणां चत्वारो मणिभास्वराः ॥३७९॥

एषां समस्तकूटानामुदयो विस्तरो द्विधा ।
मूलेऽग्रे च भवेत्कुण्डलस्थकूटैः समानकाः ॥३८०॥

अर्थः—रुचक नाम के इस पर्वत के ऊपर वहिर्भाग में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चारो दिशाओ मे से पृथक् पृथक् दिशा में आठ आठ कूट है। अर्थात् कुल ३२ कूट है ॥३६९॥ पूर्व दिशागत आठ कूटों में दिक्कुमारी देवियाँ रहती हैं, और ये जिनमाता के शृंगार आदि की क्रियाएँ करती है ॥३७०॥ दक्षिण दिशागत कूटों के ऊपर स्थित प्रासादों में मणिमय दर्पण धारण करने वालीं आठ दिक्कुमारियाँ निवास करती है ॥३७१॥ पश्चिम दिशागत कूटों के ऊपर स्थित प्रासादों में श्वेत छत्र धारण कर हर्षित मन से जिनमाता की सेवा करने वाली आठ दिक्कुमारियाँ रहती हैं ॥३७२॥ उत्तर दिशागत कूटों पर आठ दिक्कुमारियाँ रहती है, जो यहाँ जिनमाता के पास आकर चँवर ढोरतीं है ॥३७३॥ तथा इसी पर्वत पर पूर्व आदि चारों दिशाओं में से पृथक् पृथक् दिशा में (पूर्वोक्त कूटों के अभ्यन्तर की ओर) पंक्तिबद्ध अति मनोज्ञ तीन तीन कूट है ॥३७४॥ इनमें से चारों दिशाओं के चार कूटों (एक एक कूट) में चार दिक्कुमारियाँ रहती है, जो जिनमाता के निकट आकर हर्षोल्लास पूर्वक सेवा करती है ॥३७५॥ उपर्युक्त तीन तीन कूटों के मध्य मे स्थित चारों दिशाओं के चार कूटों पर जो प्रासाद है, उनमें अतिनिपुण महत्तरिका दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं ॥३७६॥ उन मध्य स्थित चार कूटों में जो चार महत्तरिका निवास करती हैं, वे तीर्थंकर के जन्म समय में जात कर्म करती हैं ॥३७७॥ इन सर्व कूटो के अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओ में जो रत्नमय चार महान कूट हैं, उनके शिखर पर देवो द्वारा किये हुए महान उत्सवो से युक्त और मणियों की प्रभा सदृश भास्वर जिनेन्द्र भगवान के चार कूट शोभायमान होते हैं ॥३७९॥ इन समस्त (३२+१२=४४) कूटों की ऊँचाई तथा मूल और शिखर भाग के विस्तार का प्रमाण कुण्डलगिरि स्थित कूटों के समान है। अर्थात् इन समस्त कूटों का मूल विस्तार ५०० योजन, शिखर विस्तार २५० योजन और उत्सेध भी ५०० योजन प्रमाण है ॥३८०॥

(रुचकगिरि के कूटो आदि का चित्रण अगले पृष्ठ पर देखे।)

रुचकगिरि के कूटो आदि का चित्रण निम्न प्रकार है :—



अब कुछ द्वीप समुद्रों के नाम और व्यास कह कर उनकी अकृत्रिमता बतलाते है :—

अथास्ति भुजगद्वीपस्ततः कुशवराभिधः ।
द्वीपः क्रौञ्चवराभिख्यो द्वीपो मनः शिलाख्यकः ।।३८१।।

हरितालाह्वयो द्वीपो द्वीपः सेन्दुरसंज्ञकः ।
श्यामाङ्कोऽञ्जनकद्वीपो हिङ्गुलाख्यश्च रूप्यकः ।।३८२।।

द्वीपः सुवर्णनामाथ द्वीपो वज्राभिधानकः ।
वैडूर्यसंज्ञको भूतवरो यक्षवराभिधः ।।।।३८३।।

देवद्वीपस्तथाप्यन्ये शुभनामान ऊर्जिताः ।
द्विगुणद्विगुणव्यासा द्वीपाः स्युः संख्यवर्जिताः ।।३८४।।

समस्तद्वीपराशीनां सर्वेषु चान्तरेषु वै ।
स्वस्वद्वीपोत्थनामानोऽसंख्येयाः सन्ति सागराः ।।३८५।।

एते द्वीपाब्धयोऽसंख्या न केनापि विनिर्मिताः ।
किन्त्वविनश्वरा विश्वे सन्त्यनाद्यमनोहराः ।।३८६।।

अर्थः—रुचकवर द्वीप के बाद भुजगद्वीप, पश्चात् कुशवर नामक द्वीप, पश्चात् क्रौंचवर द्वीप, पश्चात् मनःशिल द्वीप, पश्चात् हरिताल द्वीप, पश्चात् सेन्दुर द्वीप, श्यामाङ्क द्वीप, अञ्जन द्वीप, हिंगुल द्वीप, रूप्यक द्वीप, सुवर्ण द्वीप, वज्र नामक द्वीप, वैडूर्य द्वीप, भूतवर द्वीप, यक्ष द्वीप और देव द्वीप हैं, इस प्रकार आगे आगे शुभ नाम वाले और पूर्व पूर्व समुद्रों से दूने दूने विस्तार वाले असख्यात द्वीप हैं ।।३८२-३८४।। इन समस्त द्वीपों के अन्तरालों में अपने अपने द्वीप के नाम सदृश नाम वाले असंख्यात ही सागर है ।।३८५।। ये सर्व असंख्यात द्वीप समुद्र अकृत्रिम है, अर्थात् किन्ही के द्वारा बनाये नहीं गये, ये समस्त मनोहर द्वीप समुद्र शाश्वत अर्थात् अनाद्यनन्त है ।।३८६।।

अब अन्तिम द्वीप एवं समुद्र का नाम, अवस्थान तथा व्यास आदि कहते है :—

सर्वद्वीपाब्धि राशीनां द्वीपो ज्येष्ठोऽस्ति चान्तिमः ।
मध्यलोकस्य पर्यन्ते स्वयम्भूरमणाह्वयः ।।३८७।।
बहिर्भागे तमावेष्ट्य स्वयम्भूरमणार्णवः ।
असंख्ययोजनव्यासो रज्जुसूचीयुतोऽस्ति च ।।३८८।।

अर्थः—समस्त द्वीप समुद्रों में अर्थात् २५ कोडाकोडि पल्योपम रोम प्रमाण द्वीप समुद्रों में सबसे बड़ा अन्तिम स्वयम्भूरमण नाम का द्वीप है, यह मध्यलोक के अन्त में अवस्थित है। इस द्वीप के बहिर्भाग में स्वयम्भूरमण द्वीप को वेष्टित किये हुए असंख्यात योजन वाला स्वयम्भूरमण समुद्र है, इसका सूची व्यास एक राजू प्रमाण है ।।३८७-३८८।।

अब नागेन्द्र पर्वत, तिर्यग्लोक के अन्त में अवस्थित कर्मभूमि और उसमें रहने वाले तिर्यञ्चों का कथन करते हैं : —

स्वयम्भूरमणद्वीपस्यार्धेऽस्ति वलयाकृतिः ।
श्रीप्रभाख्यो महान् शैलो भोगभूमिधराङ्कितः ।।३८९।।
ततोऽचलाद्बहिर्भागे द्वीपार्धे सकलेऽम्बुधौ ।
वर्तते कर्मपृथ्व्येका चतुर्गतिकराङ्गिनाम् ।।३९०।।
यत्रोऽत्र सन्ति तिर्यञ्चः क्रूरा व्रतादिदूरगाः ।
संयतासंयताः केचित्पशवो व्रततत्पराः ।।३९१।।

अर्थ.—अर्धस्वयम्भूरमण द्वीप में अर्थात् स्वयम्भूरमण समुद्र के मध्य में, भोगभूमि की धरा से युक्त अर्थात् भोगभूमि में बलय के आकार को धारण करने वाला श्रीप्रभ (नागेन्द्र) नाम का महान् पर्वत है ।।३८९।। इस श्रीप्रभ नामक पर्वत के बाहर अर्ध स्वयम्भूरमण द्वीप और सम्पूर्ण स्वयम्भूरमण

समुद्र मे वहाँ स्थित जीवो को चारो गतियाँ प्रदान करने वाली एक कर्म भूमि है। यहाँ पर व्रत आदि से रहित और प्राय· क्रूर स्वभाव वाले तिर्यञ्च रहते है। इनमे कुछ तिर्यञ्च सयतासयत अर्थात् देशव्रती है, जो अपने व्रतो मे तत्पर रहते हे ॥३६०-३६१॥

अब बाह्य पुष्करार्ध के रक्षक देव और मानुषोत्तर पर्वत की परिधि का प्रमाण कहते है :—

चक्षुष्मान् हि सुचक्षुश्चेमौ देवौ परिरक्षकौ ।
मानुषोत्तरशैलस्य पुष्करार्धान्तिमस्य च ॥३६२॥
एकाकोटीद्विचत्वारिंशल्लक्षाणि सहस्रकाः ।
षड्त्रिंशच्च शतान्येव सप्त स्फुटं त्रयोदश ॥३६३ ।
योजनानां च गव्यूत्येकमिति प्रोक्तसंख्यया ।
परिधिः स्याद्बहिर्भागे मानुषोत्तरसद्गिरेः ॥३६४॥
तस्यैव परिधेर्बाह्यभागेषु शाश्वताः स्थिताः ।
स्वयं प्रभाद्रिपर्यन्ता ये द्वीपाः संख्यवर्जिताः ॥३६५॥

अर्थः—चक्षुष्मान् और सुचक्षुष्मान् ये दो देव बाह्य पुष्करार्ध द्वीप के अधिपति है। पुष्करार्ध के अन्त मे अवस्थित मानुषोत्तर पर्वत की परिधि १४२३६७१३ योजन और एक कोस प्रमाण कही गई है। परिधि का यह प्रमाण मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग का है। इस ही परिधि के बाह्यभाग से प्रारम्भ कर स्वयप्रभ (नागेन्द्र) पर्वत पर्यन्त असख्यात द्वीप है ॥३६२-३६५॥

तेषु द्वीपेष्वसंख्येषु जघन्याभोगभूमयः ।
सम्बन्धिन्यस्तिरश्चां स्युः केवलं संख्यदूरगाः ॥३६६॥
आसु सर्वासु तिर्यञ्चो गर्भजा भद्रकाः शुभाः ।
युग्मरूपाश्च जायन्ते पञ्चाक्षाः क्रूरतातिगाः ॥३६७॥
एकपल्योपमायुष्का मृगादि शुभजातिजाः ।
कल्पद्रुमसमुत्पन्नभोगिनो वैरवर्जिताः ॥३६८॥
मन्दकषायिणोऽप्येते मृत्वा यान्ति सुरालयम् ।
ज्योतिर्भावनभौमेषु न स्वर्ग दर्शनं विना ॥३६६॥
कुपात्रदानपुण्यांशात् कुत्सिताद्भोगकांक्षिणः ।
केवलं दृग्व्रतातीता जायन्तेऽत्राबुधाङ्गिनः ॥४००॥

न सन्त्यासु समस्तासु धरासु जन्तवः क्वचित् ।
कृमिकुन्थ्वादिदंशाद्याः क्रूरा वा विकलेन्द्रियाः ॥४०१॥

अर्थः—मानुषोत्तर पर्वत के वाह्य भाग से नागेन्द्र पर्वत पर्यन्त जो असंख्यात द्वीप है, उनमें जघन्य भोगभूमि की रचना है। इस जघन्य भोगभूमि में मात्र तिर्यच रहते है, उनकी सख्या असंख्यात है, अर्थात् असंख्यात तिर्यंच रहते है ॥३९६॥ इन द्वीपो मे रहने वाले सभी तिर्यंच गर्भज, भद्र, शुभ परिणति से युक्त, पचेन्द्रिय और क्रूरता रहित होते है। इनका जन्म युगल रूप से ही होता है ॥३९७॥ यहाँ जो तिर्यंच उत्पन्न होते है, वे मृग आदि शुभ जातियो में उत्पन्न होते है, एक पल्य की आयु के धारक एव वैर भाव से रहित होते है, तथा कल्पवृक्षो से उत्पन्न भोग भोगते है ॥३९८॥ ये जीव मन्द कषायी होते हैं अत मरकर स्वर्ग ही जाते है। जिन्हे सम्यग्दर्शन नही होता वे भवनत्रिक में उत्पन्न होते है ॥३९९॥ जो मूढ जीव सम्यग्दर्शन और व्रतो से रहित है, तथा कुपात्रदान से उत्पन्न कुछ पुण्य, उससे जो कुत्सित भोगो की वाछा करते है, वे जीव मरकर इस भोगभूमि में उत्पन्न होते है ॥४००॥ इस जघन्य भोगभूमि की समस्त धरा पर कृमि, कुन्थु एवं मच्छर आदि तुच्छ जन्तु, क्रूर परिणामी जीव एव विकलेन्द्रिय जीव कभी भी उत्पन्न नही होते ॥४०१॥

अब विकलेन्द्रिय जीवों के एवं मत्स्यों के उत्पत्ति स्थान बतलाकर तीनों समुद्रों में उत्पन्न होने वाले महामत्स्यों के व्यास आदि दर्शाते है :—

किन्तु ते विकलाक्षाः स्युर्द्वीपे सार्धद्वये सदा ।
स्वयम्भूरमणार्धे च स्वयम्भूरमणाद्बहिः ॥४०२॥

लवणोदे च कालोदे स्वयम्भूरमणार्णवे ।
मत्स्या जलचराश्चान्ये भवन्ति क्रूरमानसाः ॥४०३॥

शेषासंख्यसमुद्रेषु मत्स्याद्या जातु सन्ति न ।
भोगक्ष्मामध्यभागे स्थितेषु द्व्यक्षादयो न वा ॥४०४॥

स्वयम्भूरमणाम्भोधेस्तीरे पञ्चशतायताः ।
योजनानां महामत्स्याः सन्ति सम्मूर्च्छनोद्भवाः ॥४०५॥

सहस्रयोजनायामा अब्धेरभ्यन्तरे स्थिताः ।
मत्स्याः सम्मूर्च्छनोत्थास्तदर्धायामाश्च गर्भजाः ॥४०६॥

नद्यास्ये लवणाम्भोधौ मत्स्याः सम्मूर्च्छनोद्भवाः ।
नवयोजन दीर्घाङ्गास्तदर्धाङ्गाश्च गर्भजाः ॥४०७॥

अस्यैवाभ्यन्तरे तेऽष्टादशयोजनसम्मिताः ।
सम्मूर्च्छनभवा गर्भजा योजननवायताः ॥४०८॥
योजनाष्टादशायामाः कालोदस्य नदीमुखे ।
सम्मूर्च्छनजदेहास्ते गर्भजा नव योजनाः ॥४०९॥
कालोदाभ्यन्तरे मत्स्याः षट्त्रिंशद्योजनायताः ।
सन्मूर्च्छनोद्भवाश्चान्ये योजनाष्टादशायताः ॥४१०॥
सहस्रयोजनायामा ये पञ्चशतविस्तृताः ।
ते सार्धद्विशतोत्सेधाः स्युश्चेति सर्वमत्स्यकाः ॥४११॥
व्यासः स्यात् सर्वमत्स्यानां स्वाङ्गदीर्घार्द्धमेव च ।
व्यासाङ्गस्य यदर्धं स उत्सेधोऽन्यत्र चेत्यपि ॥४१२॥

अर्थ.—किन्तु वे विकलेन्द्रिय जीव जम्बूद्वीप आदि अढाई द्वीप मे, अर्धस्वयम्भूरमण द्वीप मे और स्वयम्भूरमण समुद्र के बाह्य प्रदेश मे होते है। लवणोदधि समुद्र मे, कालोदधि समुद्र मे और स्वयम्भूरमण समुद्र मे अन्य जलचर जीव और क्रूर मन वाले मत्स्य रहते हैं। शेष असख्यात समुद्रो मे मत्स्य आदि जीव कभी भी नही पाये जाते। भोगभूमि क्षेत्रो मे द्वीन्द्रिय आदि जीव पैदा नही होते ॥४०२-४०४॥ स्वयम्भूरमण समुद्र के किनारे पर सम्मूर्च्छन जन्म और ५०० योजन आयाम वाले महामत्स्य पाये जाते हैं ॥४०५॥ इसी समुद्र के मध्य मे सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न १००० योजन लम्बे मत्स्य रहते हैं, और गर्भज मत्स्य ५०० योजन लम्बाई वाले रहते हैं ॥४०६॥ लवणसमुद्र के नदी मुख पर ९ योजन लम्बे सम्मूर्च्छन जन्म वाले और ४½ योजन लम्बे गर्भजन्म वाले मत्स्य रहते हैं। ॥४०७॥ इसी समुद्र के मध्य मे १८ योजन लम्बे सम्मूर्छन जन्म वाले और ९ योजन गर्भ जन्म वाले मत्स्य रहते है ॥४०८॥ कालोदधि समुद्र के नदी मुख पर १८ योजन लम्बे सम्मूर्च्छन जन्म वाले और ९ योजन लम्बे गर्भ जन्म वाले मत्स्य रहते हैं ॥४०९॥ कालोदधि के मध्य मे ३६ योजन लम्बे सम्मूर्च्छन जन्म वाले और १८ योजन लम्बे गर्भ जन्म वाले मत्स्य रहते है ॥४१०॥

स्वयम्भूरमण समुद्र के महामत्स्यो का शरीर १००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौडा और २५० योजन ऊँचा है ॥४११॥ अन्य शेष समुद्रो के मत्स्यो के अपने अपने शरीर को जितनी लम्बाई होती है, व्यास उससे आधा होता है, तथा व्यास के अर्ध भाग प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है ॥४१२॥

अब एकेन्द्रिय (कमल) और विकलेन्द्रिय जीवों के शरीर का आयाम आदि कहते हैं :—

सहस्रयोजनैर्दीर्घा योजनव्याससंयुताः ।
पद्माः सन्ति महाम्भोधौ द्विक्रोशाग्रैः किलान्तिमे ॥४१३॥

योजनद्वादशायामा मुखे चतुष्कयोजनैः ।
व्यासान्विताः स्वदीर्घस्य पञ्चभागकृतात्मनाम् ।।४१४।।
भागैश्चतुर्भिरुत्सेधयुताः शङ्खा भवन्ति च ।
त्रिक्रोशायामसंयुक्तास्तदष्टमांशविस्तराः ।।४१५।।
व्यासस्याधांशकोत्सेधा गोभीनां सन्ति चोत्तमाः ।
भृङ्गा योजनदीर्घाङ्गाः क्रोशत्रितयविस्तृताः ।।४१६।।
क्रोशद्वयसमुत्तुङ्गा उत्कृष्टाङ्गा भवन्ति च ।
द्वीपार्धेऽन्तिमाब्धौ स्युर्विकलाख्या इमे त्रयः ।।४१७।।

शङ्खानामायामः द्वादशयोजनानि मुखे व्यासश्चत्वारि योजनानि, स्वायामस्य पञ्चभागानामुदयश्चत्वारो भागा। गोभीनामायामस्त्रयः क्रोशाः व्यासः क्रोशस्यष्टभागानां त्रयोभागाः, उदयः क्रोशाष्ट भागानां सार्धैकोभागः।

अर्थ—अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र में १००० योजन लम्बा, एक योजन व्यास वाला तथा दो कोस की कर्णिका से युक्त कमल है ।।४१३।। उत्कृष्ट अवगाहना वाले शंख की लम्बाई १२ योजन, मुख व्यास ४ योजन और १२ योजन आयाम के १२ भागों में से ५ भाग अर्थात् ५ योजन का चौथा भाग ($\frac{5}{4}$=१ योजन) ऊँचाई (उत्सेध) है। तेंद्रिय गोभी की उत्कृष्ट लम्बाई ३ कोस, चौडाई (३ × $\frac{1}{8}$ =) $\frac{3}{8}$ कोस तथा ऊँचाई व्यास ($\frac{3}{8}$) का आधा अर्थात् ($\frac{3}{8}$×$\frac{1}{2}$)=$\frac{3}{16}$ कोस प्रमाण है। चतुरिन्द्रिय भौरे की उत्कृष्ट लम्बाई एक योजन, चौडाई ३ कोस और ऊँचाई दो कोस प्रमाण है। स्वयम्भूरमण समुद्र के अन्तिम अर्ध भाग मे ये तीनों प्रकार के विकलेन्द्रिय जीव होते है ।।४१४–४१७।।

अब समुद्रों के जलों के स्वाद का निर्धारण करते हैं :—

लवणाब्धौ जलं क्षारं लवणस्वादमस्ति च ।
वारुणी वरवार्धौ स्यादुदकं मद्यसन्निभम् ।।४१८।।
क्षीराब्धौक्षीरसुस्वादसदृशाम्भो भवेन्महत् ।
घृतस्वादुसमं स्निग्धं जलं स्यात् घृतवारिधौ ।।४१९।।
कालोदे पुष्कराम्भोधौ स्वयम्भूरमणार्णवे ।
केवलं जलसुस्वादं जलौघं च भवेत्सदा ।।४२०।।
एतेभ्यः सप्तवार्द्धिभ्यो परेऽसंख्यातसागराः ।
भवन्तीक्षुरसस्वादसमानामधुराः शुभाः ।।४२१।।

अर्थ:—लवण समुद्र के जल का स्वाद नमक के सदृश खारा है। वारुणीवर समुद्र के जल का स्वाद मद्य के स्वाद सदृश है। क्षीरवर समुद्र के जल का स्वाद दूध के स्वाद समान है और घृत वर समुद्र के जल का स्वाद एवं स्निग्धता घी के सदृश है॥४१८–४१९॥ कालोदधि पुष्करवर समुद्र और स्वयम्भूरमण समुद्रो के जल का स्वाद सुमधुर जल के स्वाद सदृश है। इन सात समुद्रों को छोड कर अवशेष असंख्यात समुद्रो के जल का स्वाद अत्यन्त स्वादिष्ट इक्षुरस के सदृश मधुर और सुस्वादु है॥४२०–४२१॥

अब सर्व द्वीप समुद्रों के व्यास से स्वयम्भूरमण समुद्र के व्यास की अधिकता का प्रमाण कहते है :—

समस्तद्वीपवार्धीनां व्यासात् पिण्डीकृताद्भवेत् ।
स्वयम्भूरमणश्चाधिकव्यासो लक्षयोजनैः ॥४२२॥
इति प्राग्द्वीपवार्धिभ्योऽपरोद्वीपोऽथ चाम्बुधिः ।
भवेदधिकविष्कम्भो लक्षैकयोजनैः स्फुटम् ॥४२३॥

अर्थ.—समस्त द्वीप समुद्रो का व्यास एकत्रित करने पर जितना प्रमाण होता है, उससे स्वयम्भूरमण समुद्र का व्यास एक लाख योजन अधिक है। इसी प्रकार पूर्व पूर्व द्वीप और समुद्रों के व्यास से आगे आगे के द्वीप और समुद्रो का व्यास भी एक एक लाख योजन अधिक होता है॥४२२–४२३॥

अब मध्यलोक के वर्णन का उपसंहार एवं आचार्य अपनी लघुता प्रगट करते हैं :—

इत्येवं विविधं जिनेन्द्रगदितं श्रीमध्यलोकं परम्,
किञ्चिच्छास्त्रधिया मया च विधिना संवर्णितं मुक्तये ।
धर्मध्याननिबन्धनं सुनिपुणाः सद्धर्मसंसिद्धये,
सद्बुध्या वचसा पठन्तु विमलं कृत्वा च तन्निश्चयम् ॥४२४॥

अर्थ·—इस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ मध्य लोक का नाना प्रकार का उत्कृष्ट वर्णन मैंने मुक्ति की प्राप्ति के लिए आगमानुसार विधिपूर्वक किया है, यह वर्णन धर्मध्यान का निबधक है। इसमे यदि कही कुछ भूल हुई हो तो सज्जन पुरुष उत्तम धर्म (शिव) की प्राप्ति के लिए इसे अपनी बुद्धि से शुद्ध करके पढे॥४२४॥

अधिकारान्त मङ्गलाचरण :—

येऽस्मिन् सन्ति सुमध्यलोकसकले श्रीमज्जिनेन्द्रालयाः,
श्रीनिर्वाणसुभूमयो बुधनुताः श्रीधर्मतीर्थाधिपाः ।

अस्मात् सिद्धिपदं गता अवपुषोऽनन्तास्त्रिधा साधव-
स्तान् सर्वान् सुगुणैः स्तुवेऽहमनिशं वन्दे च तद्भूतये ।।४२५।।

इतिश्री सिद्धांतसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते मध्यलोक-वर्णनो नाम दशमोऽधिकारः ।

अर्थः—इस उत्तम मध्यलोक में श्री जिनेन्द्र भगवान् के जितने भी जिन मन्दिर है उन सबको, धर्म तीर्थ के अधिपति जहाँ से मोक्षपद को प्राप्त हुए है, ऐसे समस्त निर्वाण क्षेत्रों को और सिद्ध पद प्राप्त करने वाले अनन्त आचार्य उपाध्याय और सर्व साधुओं को मै उनके उत्तम गुणों के साथ साथ मोक्ष विभूति की प्राप्ति के लिए अहर्निश स्तुति करता हूँ, और नमस्कार करता हूँ ।।४२५।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नाम
महाग्रन्थ मे मध्यलोक का वर्णन करने वाला
दशवाॅ अधिकार समाप्त ।।



एकादशोऽधिकारः

मङ्गलाचरण :—

श्रीमतस्त्रिजगन्नाथान् स्वर्मुक्तिश्रीकरान्सताम् ।
वन्दे धर्माधिपान् पञ्चपरमेष्ठिन उत्तमान् ।।१।।

अर्थः—जो तीन जगत के नाथ हैं, सज्जन पुरुषो को स्वर्ग और मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करने वाले है तथा धर्म के अधिनायक है, ऐसे परमोत्कृष्ट पचपरमेष्ठियो को मै नमस्कार करता हूँ ।।१।।

अब वक्ष्यमाण विषय की प्रतिज्ञा करते है :—

अथ यैः पूरितो लोकः क्वचित्क्वचित्त्रसाङ्गिभिः ।
सर्वत्र स्थावरैर्जीवैर्नानाभेदैश्च भूरिभिः ।।२।।
आयुः कायाक्षसंस्थानजातिवेदकुलादिभिः ।
तांस्त्रसान् स्थावरान् सर्वान् वक्ष्ये सतां दयाप्तये ।।३।।

अर्थ —यह लोक कही कही त्रस जीवों से भरा हुआ है, किन्तु स्थावर जीवो से तो सर्वत्र भरा हुआ है, अतः सज्जन पुरुष दया पालन कर सके, इसलिए मैं सर्व त्रस और स्थावर जीवो के नाना प्रकार के भेद-प्रभेद, आयु, काय, इन्द्रियाँ, सस्थान, जाति, वेद और कुल आदि का विवेचन करूँगा ।।२-३।।

अब जीव के भेद और सिद्ध जीव का स्वरूप कहते है :—

सिद्धसंसारिभेदाभ्यां स्युर्द्विधा जीवराशयः ।
सिद्धाभेदादिनिष्क्रान्ता अनन्ता ज्ञानमूर्तयः ।।४।।

अर्थ —सम्पूर्ण जीव राशि सिद्ध और ससारी के भेद से दो प्रकार की है, जिसमे सिद्ध जीव भेद-प्रभेदो से रहित और अनन्त ज्ञान मूर्ति स्वरूप है ।।४।।

अब संसारी जीव के भेद कर स्थावर जीवों के प्रकार बतलाते है :—

त्रसस्थावरभेदाभ्यां द्विधा संसारिणोऽङ्गिनः ।
पृथिव्यादिप्रकारैश्च पञ्चधा स्थावरा मताः ।।५।।

अर्थः—त्रस और स्थावर के भेद से संसारी जीव दो प्रकार के है, उनमें से स्थावर जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक के भेद से पांच प्रकार के है ॥५॥

अब त्रस और स्थावर जीवों की पृथक् पृथक् संख्या कहते हैं :—

पृथ्व्यप्तेजोऽग्निमरुन्नित्येतरकायमयात्मनाम् ।
सप्तसप्तैव लक्षाणि प्रत्येकं सन्ति जातयः ॥६॥

जातयो दशलक्षाणि वनस्पतिशरीरिणाम् ।
प्रत्येकं द्विद्विलक्षाणि द्वित्रितुर्येन्द्रियात्मनाम् ॥७॥

तिर्यग्नारकदेवानां प्रत्येकं स्युश्च जातयः ।
चतुर्लक्षाणि लक्षाणि चतुर्दशनृजातयः ॥८॥

इत्थं चतुरशीतिश्च लक्षाणि जीवजातयः ।
अधुना विस्तरेणैषां काञ्चिज्जातिं ब्रुवे पृथक् ॥९॥

अर्थः—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद और इतरनिगोद इन छह प्रकार के जीवों में से प्रत्येक की सात-सात लाख जातियाँ (योनियाँ) होती है। वनस्पति कायिक जीवो की दश लाख, द्वीन्द्रिय जीवो की दो लाख, त्रेन्द्रिय की दो लाख, चतुरिन्द्रिय की दो लाख, पचेन्द्रिय तिर्यंचों की चार लाख, नारकियों की चार लाख, देवों की चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख जातियाँ होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण संसारी जीवों की कुल जातियाँ (७ ला० + ७ ला० + ७ ला० + ७ ला० + ७ ला० + ७ ला० + १० ला० + ६ ला० + ४ ला० + ४ ला० + ४ ला० + १४ ला०) = ८४००००० अर्थात् चौरासी लाख जातियाँ (योनियाँ) होती हैं। अब इन जातियों में से कुछ जातियों का पृथक् पृथक् विस्तार पूर्वक कथन करते है ॥६-९॥

अब पृथ्वी के चार भेद और उनके लक्षण कहते हैं :—

पृथिवी पृथिवीकायः पृथिवीकायिकस्तथा ।
पृथिवीजीव इति ख्याता पृथ्वीभेदाश्चतुर्विधाः ॥१०॥

मार्गोपमर्दिता धूलिः पृथिवी प्रोच्यते बुधैः ।
निर्जीव इष्टिकादिश्च पृथिवीकायो मतः श्रुते ॥११॥

सजीवा पृथिवी सर्वा पृथिवीकायिको भवेत् ।
विग्रहाध्वानमापन्नोऽङ्गी पृथ्वीजीव उच्यते ॥१२॥

अर्थ —पृथ्वी के चार भेद कहे गये है, पृथ्वी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक और पृथ्वीजीव ।।१०।। विद्वानो के द्वारा मार्ग की उपमर्दित धूल को पृथिवी कहा गया है । तथा आगम मे निर्जीव ईट आदि को पृथिवीकाय, सम्पूर्ण सजीव पृथ्वी को पृथिवीकायिक और पृथिवीकायिको मे जाते हुए, पृथिवीकायिक नामकर्म के उदय से युक्त विग्रहगति मे स्थित जीव को पृथिवी जीव कहा है ।।११-१२।।

नोट :—पृथ्वी और पृथ्वीकाय यद्यपि दोनो अचित्त है, तथापि पृथ्वी में पुनः जीव उत्पन्न हो सकता है किन्तु पृथ्वीकाय मे पुन पृथ्वी जीव उत्पन्न नही हो सकता ।

इसी प्रकार अब जल, अग्नि और वायु के चार-चार भेद और लक्षण कहते हैं :-

अप् तथैवाप्शरीरं चाऽप्कायिकोऽप्जीव इत्यपि ।
भेदाश्चत्वार आम्नाता जिनैरप्कायकात्मनाम् ।।१३।।
जलमान्दोलितं लोकैः सकर्दमं तथाप् भवेत् ।
उष्णोदकं च निर्जीवमन्यद्वाप्काय उच्यते ।।१४।।
जलकाययुतः प्राणी चाप्कायिको निगद्यते ।
अप्कायं नेतुमागच्छन् जीवोऽप्जीवो गतौ भवेत् ।।१५।।
पूर्वं तेजश्च तेजःकायस्तेजःकायिकस्तथा ।
तेजोजीव इमे भेदाश्चत्वारस्तेजसां मताः ।।१६।।
भस्मनाच्छादितं तेजो मात्र तेजः प्ररूप्यते ।
जीवोज्झितं च भस्मादि तेजःकाय इहोच्यते ।।१७।।
तेजःकायमयो देही तेजःकायिक इष्यते ।
तेजोऽङ्गार्थं व्रजन्मार्गे तेजोजीव मतो बुधैः ।।१८।।
वायुश्च वायुकायोऽथ तृतीयो वायुकायिकः ।
वायुजीव इमे भेदाश्चत्वारो वायुदेहिनाम् ।।१९।।
रज.पुञ्जमयो वायुर्भ्रमन् वायुर्जिनैः स्मृतः ।
जीवातीतो मरुत्पुद्गलो वायुकाय ईरितः ।।२०।।
वायुः प्राणमयः प्राणी प्रोदितो वायुकायिकः ।
वाताङ्गार्थं व्रजन्मार्गेऽङ्गी वायुजीव उच्यते ।।२१।।

अर्थः—जिनेन्द्र भगवान् ने जलकाय जीवो के जल, जलकाय, जलकायिक और जलजीव इस प्रकार चार भेद कहे है ।।१३।। लोगो के द्वारा आडोलित एव कीचड़ सहित जल को जल कहते है । उष्ण निर्जीव जल को जलकाय, जलकाय युक्त जीव को जलकायिक तथा जलकाय में जन्म लेने के

लिए जाते हुए विग्रहगति में स्थित जीव को जलजीव कहते है ।।१४-१५।। पूर्ववत् तेजकाय जीवों के तेज, तेजकाय, तेजकायिक और तेज जीव इस प्रकार चार भेद कहे है ।। १६ ।। भस्म से आच्छादित अग्नि को अर्थात् किञ्चित उष्ण भस्म को तेज कहते है। जिसमे से जीव निकलकर चला गया है, उस भस्मादि को तेज काय कहते है। तेजकाय सहित जीव को तेजकायिक और तेजनाम कर्म से युक्त जो जीव विग्रहगति में स्थित है उन्हें विद्वानो ने तेजजीव कहा है ।।१७-१८।। वायु जीवों के वायु, वायु-काय, वायुकायिक और वायुजीव इस प्रकार चार भेद होत है ।।१९।। धूलपुञ्ज से युक्त भ्रमण करती हुई वायु (आँधियो) को जिनेन्द्र देव ने वायु कहा है। जीव से रहित पखे आदि की पौद्गलिक वायु देह को वायुकाय कहते है। प्राण युक्त वायु को वायुकायिक और वायुगति मे आने वाले विग्रह गति स्थित जीव को वायु जीव कहते है ।।२०-२१।।

अब वनस्पति के चार भेद कह कर उनके भिन्न भिन्न लक्षण बतलाते है :—

आदौ वनस्पतिश्चाथ बनस्पतिवपुस्ततः ।
वनस्पत्यादिकः कायिको वनस्पतिजीववाक् ।।२२।।
वनस्पत्या अमी भेदाश्चत्वारः कीर्तिता जिनैः ।
अन्तर्जीवयुतोबाह्यात्यक्तजीवो वनस्पतिः ।।२३।।
वनस्पतिवपुः स्मृतः छिन्नभिन्नं तृणादिकम् ।
वनस्पत्यङ्गयुक्तोऽङ्गीस्याद्वनस्पतिकायिकः ।।२४।।
प्राक्शरीरपरित्यागे वनस्पत्यङ्गसिद्धये ।
प्राणान्तेऽङ्गी गतिं गच्छन् स्याद्वनस्पतिजीववाक् ।।२५।।

अर्थः—वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक और वनस्पति जीव ऐसे वनस्पति के चार भेद जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे गये है। अभ्यन्तर भाग जीव युक्त है और बाह्य भाग जीव रहित है, ऐसे वृक्ष आदि (कटे हुए हरे वृक्ष) को बनस्पति कहते है ।।२२-२३।। छिन्नभिन्न किये हुए तृणादिक को वनस्पति काय माना गया है, जोव सहित वनस्पति काय को वनस्पति कायिक कहते है, और आयु के अन्त मे पूर्व शरीर को त्याग कर जो जीव वनस्पति कायिकों मे उत्पन्न होने के लिये विग्रहगति मे जा रहा है, उसे वनस्पति जीव कहते है ।।२४-२५।।

अब इन पंच स्थावरों के चार चार भेदों में से कितने चेतन और कितने अचेतन है इसका निर्धारण करते हैं :—

एतेषां प्राक्तनो भेदःकिञ्चित्प्राणाश्रितो मतः ।
पृथ्व्यादीनां द्वितीयस्तु केवलं जीवदूरगः ।।२६।।

जीवयुक्तस्तृतीयश्चचतुर्थो भेद ईरितः ।
त्यक्तप्राग्वपुषां भाविपृथ्व्याद्यङ्गाय गच्छताम् ॥२७॥
एतान् भेदान् बुधैर्ज्ञात्वा सचेतनानचेतनान् ।
पृथ्व्यादीनां सुरक्षार्थं कर्तव्यं यत्नमञ्जसा ॥२८॥

अर्थः-इन पच स्थावरो के चार चार भेदो में से प्रथम भेद किचित् जीव युक्त होता है। द्वितीय भेद मात्र अजीव होता है, तृतीय भेद जीव सहित होता है, और चतुर्थ भेद में जीव पूर्व शरीर को छोड़ कर पृथ्वी आदि शरीर को धारण करने के लिये जाता है अत. यह चेतन ही है। इस प्रकार विद्वानो के द्वारा कहे हुये भेदो मे चेतन अचेतन भेदो को जान कर पृथ्वी आदि पंच स्थावरों की रक्षा के लिए यत्न करना चाहिए ॥२६-२८॥

अब पृथ्वीकायिक जीवों में से मृदुपृथ्वीकायिक जीवों के भेदों का निरूपण करते हैं :—

मृत्तिका वालुका लोहं लवणं सागरादिजम् ।
ताम्रं रूप्यं स्वर्णं च त्रिपुषः सीसकं तथा ॥२९॥
हिङ्गुलं हरितालं च मनःशिलाथ सस्यकम् ।
अञ्जनं ह्यभ्रकं चाभ्रवालुकामी हि षोडश ॥३०॥
भेदा मृदुपृथ्वीकायात्मनां प्रोक्ता जिनागमे ।
इदानीं खरपृथ्वीनां भेदान् मण्यादिकान् ब्रुवे ॥३१॥

अर्थः—मिट्टी, बालुका, लोहा, समुद्र आदि में उत्पन्न होने वाला नमक, ताम्र, चाँदी, स्वर्ण, त्रिपुष (कथीर या रागा), सीसा, हिंगुल, हरताल, मनःशिला, जस्ता, अञ्जन (नीलाथूथा या सुरमा), अभ्रक और भोडल ये सोलह भेद जिनागम में कोमल पृथ्वीकायिक जीवो के कहे गये है, अब खर पृथ्वी के मणि आदि भेदों को कहते है ॥२९-३१॥

अब खर पृथ्वी के भेदों का निरूपण करते है :—

प्रवालं शर्करा वज्रं शिलोपलं ततः परम् ।
कर्केतनमणिर्नाम्ना रजकाख्यो मणिस्ततः ॥३२॥
चन्द्रप्रभोऽथ वैडूर्यकोमणिः स्फटिको मणिः ।
जलकान्तो मणिःसूर्यकान्तश्च गैरिको मणिः ॥३३॥

चन्दनः पद्मरागाख्यो मणिर्मरकताह्वयः ।
वको मोचो मणिर्वैमसृणपाषाणसंज्ञकः ।।३४।।
एते विंशतिसद्भेदाः पृथ्वीकायमयात्मनाम् ।
खराख्याणां सुभव्यानां दयायैगणिभिर्मताः ।।३५।।

अर्थः—प्रवाल, शर्करा, हीरा, शिला, उपल (पत्थर), कर्केतनमणि, रजकमणि, चन्द्रप्रभमणि, वैडूर्यमणि, स्फटिकमणि, जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि, गैरिकमणि, चन्दनमणि, पद्मराग, मरकतमणि, वकमणि, मोचमणि, वैमसृण और पाषाण खर पृथ्वी स्वरूप पृथ्वीकायिक जीवों के ये वीस भेद भव्य जीवो के दया पालनार्थ गणधर देवो के द्वारा कहे गये है ।।३२–३५।।

अब पृथिवीकायिक पृथ्वी से बने हुए पर्वत एवं प्रासादों आदि का कथन करते हैं :–

रत्नप्रभादयः सप्तपृथ्व्यश्चैत्यद्रुमाखिलाः ।
मेर्वाद्याः पर्वताः सर्वे वेदिकातोरणादयः ।।३६।।
त्रिलोकस्थ विमानानि जम्वाद्याः सकलाद्रुमाः ।
नृविद्येशसुराणां च प्रासादाः कमलानि च ।।३७।।
स्तूपरत्नाकराद्याये पृथ्वीकायमयाश्च ते ।
सर्वे ह्यन्तर्भवन्त्येषु पृथ्वीभेदेषु नान्यथा ।।३८।।
एतान् पृथ्वीमयान् जीवान् पृथ्वीकायाश्रितान् बहून् ।
सम्यग्ज्ञात्वा प्रयत्नेन रक्षन्तु साधवोऽनिशम् ।।३६।।

अर्थः–रत्नप्रभा आदि सातो पृथिवियाँ, सम्पूर्ण चैत्यवृक्ष, मेरु आदि सर्व पर्वत, वेदिकाएँ एव तोरण आदि, त्रैलोक्यस्थित विमान, जम्वू आदि समस्त वृक्ष, मनुष्यो, विद्याधरो और देवों के प्रासाद, पद्म आदि सरोवरों मे स्थित कमल, स्तूप और रत्नाकर आदि ये सव पृथ्वीकायमय है, और इन सबका अन्तर्भाव पृथ्वीकाय के भेदों में ही होता है, अन्य मे नही। पृथ्वीकाय के आश्रित रहने वाले इन सव पृथ्वीमय जीवो को भली प्रकार जान कर सज्जन पुरुषो को अहर्निश इनकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए।।३६–३६।।

अब जलकायिक जीवों के भेदों का प्रतिपादन करते हैं :—

अवश्यायजलं रात्रिपश्चिमप्रहरोद्भवम् ।
हिमाख्यं जलकायं च जलवन्धनसम्भवम् ।।४०।।

महिकाख्यं जलं धूमाकाराम्बु च हरज्जलम् ।
स्थूलविन्दुजलं चाणुः सूक्ष्मविन्दुजलं तथा ॥४१॥
शुद्धाम्बुचन्द्रकान्तोत्थमुदकं निर्भरादिजम् ।
सामान्याम्बुघनाख्याम्भोऽब्धिद्रहमेघवातजम् ॥४२॥
सरित्कूपसरःकुण्डनिर्भराब्धिह्लदादयः ।
एष्वप्कायेषु सर्वेऽन्येऽन्तर्भवन्त्यम्बुकायिकाः ॥४३॥
एतानप्कायसद्भेदानप्कायाश्रितान् बहून् ।
जीवान् विज्ञाय यत्नेन पालयन्त्वात्मवत्सदा ॥४४॥

अर्थ.—रात्रि के पिछले पहर मे उत्पन्न होने वाला ओस जल, हिम नाम का जलकाय, मेघ जलकाय, कोहरे का जल, धूम आकार (धुन्ध) जल, डाभ की अणी पर स्थित जल, स्थूल विन्दु जल, जलकण, सूक्ष्मविन्दु जल, शुद्ध जल, चन्द्रकान्तमणि से उत्पन्न जल, झरनो आदि से उत्पन्न जल, सामान्य जल, घन जल (घनोदधि), द्रहजल, मेघ से उत्पन्न जल, घनवातज जल, नदी, कूप, तालाब, कुण्ड, झरना, समुद्र एव सरोवर आदि सर्व जल का जलकाय मे अन्तर्भाव होने से यह सब जलकायिक ही है। इन सब जलकाय के भेदो को तथा जलकाय के आश्रित रहने वाले असख्यात जीवो को अपनी आत्मा के सदृश जानकर प्रयत्न पूर्वक निरन्तर उनकी रक्षा करना चाहिए ॥४०–४४॥

अब अग्निकायिक जीवों का प्रतिपादन करते है :–

अङ्गाराणि ज्वलज्ज्वालाह्यर्चिर्दीपशिखादिका ।
मुर्मराख्यो हि कार्षाग्निः शुद्धाग्निर्बहुभेदभाक् ॥४५॥
विद्युत्पाताग्निवज्राग्निसूर्यकान्तादिगोचर. ।
अग्निसामान्यरूपाग्निनिर्धूमो वाडवादिजः ॥४६॥
नन्दीश्वरमहाधूमकुण्डिकामुकुटादिजाः ।
अग्निकाया अमीष्वन्तर्भवन्त्यनलयोनिषु ॥४७॥
इमांस्तेजो मयान् जीवांस्तेजःकायान् श्रितान् परान् ।
विदित्वा सर्वयत्नेन रक्षन्तु मुनयोऽनिशम् ॥४८॥

अर्थ —अगार रूप अग्नि, ज्वालाग्नि, अर्चि अग्नि, दीपशिखाग्नि, मुर्मराग्नि, कार्षाग्नि, और वहुत प्रकार की शुद्धाग्नि, विद्युत्पाताग्नि, वज्राग्नि, सूर्यकान्त आदि से उत्पन्न अग्नि, सामान्य अग्नि, निर्धूमाग्नि, वडवाग्नि, नन्दीश्वरद्वीपस्थ महाधूम कुण्डो की अग्नि तथा मुकुट आदि से उत्पन्न अग्नि,

अग्निकाय होने से इन सब अग्नियों का अनिलयोनियों में अन्तर्भाव हो जाता है। तेजकाय के आश्रित रहने वाले सर्व तेजकायिक जीवों को भली प्रकार जानकर मुनिजन इनकी अहर्निश प्रयत्न पूर्वक रक्षा करते है ॥४५-४८॥

अब वायुकायिक जीवों के स्थानों का वर्णन करते हैं :—

वातः सामान्यरूपश्चोद्भ्रमऊर्ध्वं भ्रमन् व्रजेत् ।
उत्कलिर्मण्डलिपृथ्वीलग्नो भ्रमन् प्रगच्छति ॥४९॥
गुञ्जावातो महावातो वृक्षादिभङ्गकारकः ।
घनोदधिश्च नाम्ना घनानिलस्तनुवातवाक् ॥५०॥
उदरस्थविमानाधारपृथ्व्यधस्तलाश्रिताः ।
त्रिलोकाच्छादका वाता अत्रैवान्तर्भवन्ति च ॥५१॥
एतान् वाताङ्गभेदांश्च जीवान् वातवपुः श्रितान् ।
ज्ञात्वा नित्यं प्रयत्नेन पालयन्तु स्ववद्विदः ॥५२॥

अर्थः—सामान्य रूप वायु, उद्भ्रम वायु, ऊपर भ्रमण करने वाली वायु, उत्कलि वायु, मण्डल वायु, पृथ्वी स्पर्श कर भ्रमण करने वाली वायु, गुञ्जावात, वृक्षों आदि को नष्ट करने वाली महावायु, घनोदधि वायु, घन वायु, तनुवायु, उदरस्थ वायु, विमान जिसके आधार है, वह वायु, पृथ्वीतल के आश्रित वायु और त्रैलोक्य आच्छादक वायु, ये सर्व वायु इन्ही पवनों में अन्तर्भूत होती है। ये सब भेद वायुकाय के कहे गये है। वायु कायिक जीव इसी वायुकाय के आश्रित रहते है, ऐसा जानकर विद्वज्जनों को इन्हे अपनी आत्मा के सदृश समझ कर नित्य ही इनकी दया का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए ॥४९-५२॥

अब वनस्पतिकायिक जीवों के भेद कहते है :—

असाधारणसाधारण भेदाभ्यां जिनागमे ।
कीर्तिता द्विविधाः संक्षेपाद्वनस्पतिकायिकाः ॥५३॥
प्रत्येकं द्विप्रकारास्ते साधारणेतराङ्गिनः ।
उदकाद्यैश्च जीवोत्थ सन्मूर्च्छिमद्विभेदतः ॥५४॥
मूलाग्रपोरकन्दस्कन्धवीजोद्भवदेहिनः ।
त्वक्पत्राणि प्रवालानि पुष्पाणि च फलान्यपि ॥५५॥
गुच्छागुल्मानि वल्ली च तृण पर्वादि कायिकाः ।
प्रत्येकादि चतुर्भेदानां सद्भेदा मता इमे ॥५६॥

अर्थ.—जिनागम में असाधारण (प्रत्येक) वनस्पतिकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक के भेद से वनस्पति कायिक जीवों के सक्षेप से दो भेद कहे गये हैं ॥५३॥ इनमे से असाधारण अर्थात् प्रत्येक वनस्पति सप्रतिष्ठित (साधारण सहित) और अप्रतिष्ठित (साधारण रहित) के भेद से दो प्रकार की है। (मिट्टी और) जल आदि के सम्बन्ध से होने वाली सम्मूर्च्छन जन्म वाली वनस्पतियाँ भी सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित के भेद से दो प्रकार की होती है। मूल, अग्र, पोर, कन्द, स्कन्ध और बीज से उत्पन्न होने वाले वनस्पतिकायिक जीव, तथा त्वक् पत्र, प्रवाल, पुष्प, फल, गुच्छा, गुल्म, बल्ली, तृण और पर्व आदि प्रत्येक के वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक और वनस्पति जीव ये चार भेद माने गये है ॥५४-५६॥

अमीषां सुखबोधाय व्याख्यानमाह :—

येषा मूल प्रादुर्भवति ते आर्द्रकहरिद्रादयः मूलजीवा'। येषामग्र प्ररोहति ते कोरन्टमल्लिकादय अग्रजीवाः। येषा पोरप्रदेश प्ररोहति ते इक्षुवेत्रादयः पोरजोवा । येषा कन्ददेश ;प्रादुर्भवति ते कदलिपिण्डालुकादय. कन्दजीवाः। येषा स्कन्धदेश' प्रारोहति ते शल्यकोपालिभद्रपलाशादय स्कन्धजीवा । येषा क्षेत्रजलादि सामग्र्या प्ररोहस्ते यवगोधूमादयः बीजजीवा'। त्वक् वृक्षादि बहिर्वल्कल सैवल युतकादिक। येषा पत्राण्येव भवन्ति न पुष्पाणि न फलानि तानि पत्राण्युच्यन्ते। पत्राणा पूर्वावस्था प्रवाल स्यात्। यासा वनस्पतीना पुष्पाण्येव सन्ति न फलादीनि ता. पुष्पाणि निगद्यन्ते। येषा पुष्पेभ्यो विना फलानि जायन्ते ते द्रुमाः फलानि कथ्यन्ते। गुच्छा वहूना समुदाया एककालोद्भवाः। जातिमल्लिकादयः गुल्मानि। करञ्ज कन्थारिकादीनि वल्लीस्यान्मालत्यादिका। तृणानि नानाप्रकाराणि। पर्वग्रन्थिकयोर्मध्यवेत्रादि।

अर्थ —इन वनस्पतियो के भेदो का सुख पूर्वक बोध प्राप्त करने को कहते हैं :—

जिनकी मूल से उत्पत्ति होती है, वे मूल जीव है, जसे:—अदरख, हल्दी आदि। जो अग्र (टहनी) से उत्पन्न होते है, वे अग्र जीव है। यथा-केतकी, गुलाब, आर्यका, मोगरा आदि। जो पर्व के प्रदेश (गांठ) से उत्पन्न होते है, वे पोर जीव है। यथा-ईख, वेत आदि। जो कन्द से उत्पन्न होते है, वे कन्द जीव हैं। यथा-सकरकन्दी, पिण्डालू (सूरण) आदि। जिनकी उत्पत्ति स्कन्ध से होती है, वे स्कन्ध जीव है, यथा-सल्लकी (साल), कटकी, बड, पीपल, पलाश, देवदारु आदि। जिन बीजो की भूमि एव जल आदि सामग्री के सहयोग से उत्पत्ति होती है, वे बीज जीव हैं। यथा-जव, गेहूँ आदि। वृक्ष आदि की बाह्य छाल को त्वक् और युतक (काई) आदि को सैवल कहते है। जिसमे केवल पत्ते ही होते है, पुष्प और फल नही होते, उसे पत्र वृक्ष कहते है। पत्तो की पूर्व अवस्था को प्रवाल कहते हैं। जिन वनस्पतियो मे मात्र पुष्प होते है, फल आदि नही होते, उसे पुष्प वनस्पति कहते है। पुष्प के विना जिसमें केवल फल उत्पन्न होते हैं, उन्हे फल वृक्ष कहते है। एक समय मे उत्पन्न

होने वाले बहुत के समुदाय को गुच्छा कहते है। मोगरा, मल्लिका आदि को गुल्म और केतकी, कचारी आदि को वल्जी कहते है। मालती आदिक नाना प्रकार के तृण है पर्व और ग्रन्थि के मध्य वेत आदि होते है।

अब साधारण वनस्पति कायिक जीवों के लक्षण आदि कहते हैं :—

एते प्रत्येककायाः स्युः केचिच्चानन्तकायिकाः ।
केचिद्बीजोद्भवाः केचित् सम्मूर्च्छिका हि देहिनः ।।५७।।
नित्येतरनिकोताभ्यां द्विधा साधारणामताः ।
अनन्तकायिका जीवा अनन्तैकाक्ष संकुलाः ।।५८।।
यत्रैकोम्रियते प्राणी तत्रैवानन्तजन्मिनाम् ।
मरणं चैककालेन तत्समं ह्येककायतः ।।५९।।
यत्रैको जायते जीवस्तत्रोत्पत्तिर्भवेत्स्फुटम् ।
अनन्तदेहिनां सार्ध तेन तत्क्षणमञ्जसा ।।६०।।
ततस्तेऽनन्तजीवास्ताः प्रोक्ता अनन्तकायिकाः ।
युगपन्मरणोत्पत्तेरनन्तैकेन्द्रियात्मनाम् ।।६१।।
तीव्रमिथ्यादियुक्तैर्यैर्भ्रमद्भिर्दुर्भवाटवीम् ।
अनन्तां प्राणिभिर्घोरदुःकर्मग्रसितात्मभिः ।।६२।।
अनन्तकायवर्गेषु न त्रसत्व कदाचन ।
प्राप्तं तेऽनन्तकायास्ताः मता नित्यनिकोतकाः ।।६३।।
अनन्तकायिका एते पञ्चभेदामता इति ।
जम्बूद्वीपादि दृष्टान्तैः स्कन्धा ऽडरादयो जिनैः ।।६४।।

अर्थः—ये पूर्व कथित जीव प्रत्येक काय है, इनमे कोई कोई अनन्तकाय है, कोई बीज से उत्पन्न होने वाले है, और कोई जीव सम्मूर्च्छन जन्म वाले है ।।५७।। साधारणवनस्पति कायिक जीवो के नित्य निगोद और इतरनिगोद ये दो भेद है। ये अनन्तकायिक अर्थात् साधारण अनन्त एकेन्द्रिय जीव एक साथ (संकुला) बधे हुये है ।। ५८ ।। साधारण जीवो मे जहाँ एक जीव का मरण होता है, वहाँ एक काय होने से एक ही समय मे एक साथ अनन्त जीवो का मरण होता है, और जहाँ एक जीव उत्पन्न होता है, वही उसी क्षण एक साथ अनन्त जीव जन्म लेते है ।।५९–६०।। इन अनन्त एकेन्द्रिय जीवों का एक ही साथ मरण और एक ही साथ जन्म होता है, इसीलिए उन अनन्त जीवो के समूह को अनन्त-कायिक कहते है ।।६१।। जो तीव्र मिथ्यात्व आदि से युक्त और घोर दुःकर्मो से ग्रसित है, ऐसे अनन्ता-

नन्त प्राणी भयावह ससार रूपी अटवी मे भ्रमण करते है ॥६२॥ अनन्तकाय जीवो के समूह मे जो जीव कभी भी त्रस पर्याय को प्राप्त नही करते उन्हे नित्यनिगोदिया कहते है। इन अनन्तकायिक जीवो के पाँच भेद माने गये है, जो जिनेन्द्र के द्वारा जम्बूद्वीप आदि के दृष्टान्तो से स्कन्ध, अडर, आवास पुलवि और शरीर आदि के रूप मे प्रतिपादन किये गये है ॥६३-६४॥

अब जम्बूद्वीप आदि के दृष्टान्तों द्वारा स्कन्ध, अण्डर आदि का प्रतिपादन करते है :–

जम्बूद्वीपे यथा क्षेत्रं भारतं भारतेऽस्ति च ।
कोशलः कोशले देशेऽयोध्यायां सौधपङ्क्तयः ॥६५॥

तथा स्कन्धा असंख्येयलोकप्रदेशमात्रकाः ।
एकैकस्मिन् पृथक् स्कन्धे ह्यण्डरा गदिता जिनै ॥६६॥

असंख्यलोकतुल्यान्दैकैकस्मिनण्डरे स्मृताः ।
आवासेभ्यो ह्यसंख्यातलोकमात्रा न संशयः ॥६७॥

एकैकस्मिन् तथावासे प्रोक्ता पुलवयोऽखिलाः ।
असख्यलोकमाना एकैकस्मिन् पुलवौ भवे ॥६८॥

असंख्यातशरीराणि लोकमानानि सन्ति च ।
एकैकस्मिन्निकोतानां शरीरे प्राणिनो ध्रुवम् ॥६९॥

अतीतानन्तकालोत्थानन्तसिद्धेभ्य एव च ।
सर्वेभ्य आगमे प्रोक्ता वाण्यानन्तगुणा जिनैः ॥७०॥

अर्थ —जैसे जम्बूद्वीप मे भरतक्षेत्र है, भरतक्षेत्र मे कोशल देश है, कोशल देश मे अयोध्या नगरी है और एक एक अयोध्या नगरी मे अनेक प्रासाद (महल) पक्तियाँ हैं, उसी प्रकार असख्यात लोक प्रमाण पुद्गल परमाणुओ का एक स्कन्ध और एक एक स्कन्ध मे असख्यात लोक, असख्यात लोक प्रमाण अण्डर जिनेन्द्र द्वारा कहे गये है ॥६५-६६॥ पृथक् पृथक् एक एक अण्डर मे असख्यात-असख्यात लोक प्रमाण आवास है, इसमे कोई सशय नही है ॥६७॥ पृथक् पृथक् एक एक आवास मे असख्यातलोक-असख्यातलोक प्रमाण पुलवियाँ है, एक एक पुलवि मे असख्यातलोक असख्यातलोक प्रमाण शरीर है और पृथक् पृथक् एक एक निगोद शरीर मे जिनेन्द्र भगवान के द्वारा आगम मे अतीत और आगामी अनन्तकाल मे होने वाले सर्व अनन्त सिद्धो के अनन्तगुणी जीव राशि कही गई है। अर्थात् अतीत और अनागत मे होने वाली सर्व सिद्ध राशि का जितना प्रमाण है, उससे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर मे रहते है ॥६८-७०॥

अब बादर अनन्तकाय जीवों का कथन करते हैं :—

शैवालं पणकंनाम केणुगः कवगस्तथा ।
पुष्पिकेत्यादयः सन्त्यनन्तकायाश्च वादराः ॥७१॥

अस्य भाष्यमाह :—

शैवालं जलगतहरितरूपं, पणक भूमिगत शैवालं, इष्टकादि प्रभवं च, केणुक, आलम्बक- छत्राणि शुक्लहरितनीलरूपाणि अपस्करोद्भवानि कवगः शृ गालबकछत्राणि । पुष्पिका आहारकञ्जि- कादि गताः । इत्याद्याः स्थूला अनन्तकायिकाः स्युः ॥

अर्थः—सैवाल, पणक, केणुग, कवग और पुष्पक इत्यादि ये सब वादर अनन्तकायिक वनस्पति है ॥७१॥

अब इसी को भाष्य रूप में कहते हैं :—

जल मे जो हरी हरी काई होती है, उसे सैवाल, भूमि में जो हरी हरी काई होती है उसे पणक, ईट आदि मे जो उत्पन्न होती है उसे केणुक, श्वेत, हरे और नील वर्ण के छत्र सदृश को आलम्बक (कुकुरमुत्ता), मल या कचरे मे उत्पन्न होने वाले को कवग, वक छत्र को शृ गाल कहते है (एक प्रकार का कुकुरमुत्ता जिसकी डठल टेडी होती है)। आहार काजी आदि के ऊपर उत्पन्न होने वाली फफू दी को पुष्पिका कहते है। इस प्रकार सैवालादि अनेक बादर अनन्तकायिक वनस्पतियाँ होती है ॥

अब साधारण, प्रत्येक, सूक्ष्म एवं वादर जीवों के लक्षण और उनके निवास क्षेत्र आदि का कथन करते है :—

गूढानि स्युः सिरासन्धि पर्वाणि जन्मिनां भुवि ।
येषां स्यात्समभङ्ग चाहीरुकं सूत्रसन्निभम् ॥७२॥

छिन्नभिन्नशरीराणि प्रारोहन्त्यप्यनन्ततः ।
तेऽत्र साधारणा जीवाः प्रत्येकास्तद्विपर्ययाः ॥७३॥

एते स्युर्वादराजीवाः क्वचिल्लोके क्वचिन्न च ।
पृथ्व्यादि कायमापन्नाः पञ्चधाः स्थावराः परे ॥७४॥

सूक्ष्माः पृथ्व्यादयः पञ्चस्थावरा दृष्टयगोचराः ।
एते तिष्ठन्ति सर्वत्र प्रपूर्य भुवनत्रयम् ॥७५॥

वनस्पत्यङ्गिनोऽन्ये च स्थावराः सूक्ष्मवादराः ।
अनन्ताविविधा एते रक्षणीयाः सदाबुधैः ।।७६।।

न प्रतिस्खलनं येषां गत्यादौ सूक्ष्मदेहिनाम् ।
पृथ्वीजलाग्निवाताद्यैर्जातु ते सूक्ष्मकायिकाः ।।७७।।

प्रतिस्खलन्ति ये स्थूलाः स्थावरा गमनादिषु ।
केचिद्दश्या अदृश्यास्ते वादराः श्रीजिनैर्मताः ।।७८।।

अर्थ —जिनकी शिरा-वहि स्नायु, सन्धि-रेखाबन्ध और पर्व-गाँठ अप्रगट हों और जिन वनस्पतियो का भग करने पर समान भंग हो, दोनों भंगो मे परस्पर सूत्र-तन्तु न लगा रहे तथा शरीरों को छिन्न भिन्न कर देने पर भी जो ऊग जाते है तथा वृद्धि आदि को प्राप्त होते है ऐसे अनन्तकायिक वे सव जीव यहाँ पर साधारण कहे गये है। जो जीव इन चिह्नों से रहित है, वे प्रत्येक (अप्रतिष्ठित) वनस्पतिकायिक है ।।७२-७३।। पृथ्वो आदिक पाच कायो को धारण करने वाले पाचो वादर स्थावर जीव इस लोक मे कही है और कही नही है, किन्तु दृष्टि अगोचर पृथ्वीकायादि पाचो सूक्ष्म स्थावर जीव तीनो लोको को परिपूर्ण करते हुए सर्वत्र रहते है ।।७४-७५।। विद्वानो को अन्य अनन्त प्रकार के सूक्ष्म और वादर वनस्पतिकायिक व स्थावर जीवो की रक्षा करना चाहिए ।।७६।। सूक्ष्मनामकर्म के उदय से युक्त पृथ्वी, जल अग्नि और वायु कायिक आदि के द्वारा जिन जीवो की गति आदि कभी भी रुकती नही है उसे सूक्ष्मकायिक कहते हैं ।।७७।। जिन स्थावर जीवो की गति आदि दूसरों से रुकती है और दूसरो को रोकती है, उन्हे जिनेन्द्र भगवान् ने वादर जीव कहा है इनमे कुछ जीव दृष्टि गोचर होते है कुछ दृष्टि अगोचर रहते है ।।७८।।

अब त्रस जीवों के भेद आदि कहते है :—

प्राणिनो विकलाक्षाश्च सकलाक्षास्ततः परे ।
इत्यमी द्विविधाः प्रोक्तास्त्रसा उद्वेगिनोऽसुखात् ।।७९।।
द्वित्रितुर्याख्यभेदाद्यैस्त्रिविधा विकलेन्द्रियाः ।
स्युः कृम्याद्या नृगीर्वाणतिर्यञ्चः सकलेन्द्रियाः ।।८०।।

कृमयः शुक्तिकाः शङ्खाः वालकाश्च कपर्द्दकाः ।
जलूकाद्या मताः शास्त्रे द्वीन्द्रिया द्वीन्द्रियाङ्किताः ।।८१।।
कुन्थवो मत्कुणा यूका वृश्चिकाश्च पिपीलिकाः ।
उद्देहिका हि गोम्याद्यास्त्रीन्द्रियास्त्र्यक्षसंयुताः ।।८२।।

मशका भ्रमरा दंशाः पतङ्गा मधुमक्षिकाः ।
मक्षिका कीटकाद्याः स्युश्चतुरिन्द्रियजातयः ।।८३।।
जलस्थलनभो गामिनस्तिर्यञ्चो नरामराः ।
नारकाः श्रीजिनैः प्रोक्ताः पञ्चाक्षाः सकलेन्द्रियाः ।।८४।।
एतांस्त्रसाङ्गिनः सम्यग्ज्ञात्वा गृहितपोधनाः ।
पालयन्तु समित्याद्यैः सर्वत्र स्वमिवान्वहम् ।।८५।।
इति पृथ्व्यादिकायानां जातिभेदान् जिनागमात् ।
आख्यायातः सतां वक्ष्ये कुलानि विविधानि च ।।८६।।

अर्थः—दुःख से उद्वेगित त्रस जीव विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय के भेद से दो प्रकार के होते है ।।७९।। इनमें से कृमि आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरीन्द्रिय के भेद से विकलेन्द्रिय जीव तीन प्रकार के होते है । मनुष्य, देव और तिर्यञ्च ये सकलेन्द्रिय त्रस है ।।८०।। कृमि, सीप, शख, वालुका, कौडी और जोंक आदि दो इन्द्रियों से चिह्नित इन जीवो को द्वीन्द्रिय जीव कहते है ।।८१।। कुन्थु, खटमल, जूँ, बिच्छू, चीटी, दीमक और कानखजूरे आदि तीन इन्द्रियो से युक्त जीवो को त्रेन्द्रिय जीव कहते है ।। ८२ ।। मच्छर, भौरा, डास, पतङ्गा, मधुमक्खी, मक्खी और कोटक आदि चतु-रिन्द्रिय जीव कहलाते है ।।८३।। जल-स्थल एव नभचर तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और नारकी ये जीव पंचेन्द्रिय होते है, इन्हें ही जिनेन्द्र भगवान ने सकलेन्द्रिय कहा है ।।८४।। इस प्रकार त्रस जोवों के भेद प्रभेदो को भली प्रकार जान कर श्रावकों एवं तपोधनों को समितियों आदि के द्वारा अपनी आत्मा के सदृश ही सर्वत्र त्रस जीवों की रक्षा करना चाहिए ।।८५।। इस प्रकार जिनागम से पृथ्वीकाय आदि छह काय के जीवो के जाति भेदों को कह कर अब अनेक प्रकार के कुल भेदो को कहूँगा ।।८६।।

अब भिन्न भिन्न जीवों की कुलकोटियाँ कहते है :—

द्वाविंशकोटिलक्षाणि पृथ्वोनां स्यु कुलानि च ।
अप्कायासु मतां सप्तकोटी लक्षाणि तेजसाम् ।।८७।।
कुलत्रिकोटिलक्षाणि वायूनां च कुलान्यपि ।
स्युः सप्तकोटिलक्षाणि वनस्पत्यङ्गिनां तथा ।।८८।।
कुलानि कोटिलक्षाणि ह्यष्टाविंशतिरेव हि ।
द्वीन्द्रियाणां तथा सप्तकोटीलक्षकुलानि च ।।८९।।
त्रीन्द्रियाणां भवन्त्यष्टकोटिलक्षकुलान्यपि ।
तुर्याक्षाणां नवैव स्युः कोटिलक्षकुलानि च ।।९०।।

अप्चराणां हि लक्षाणि सार्धद्वादशकोटयः ।
कुलानि पक्षिणां द्वादशकोटिलक्षकानि च ।।६१।।
दशैव कोटिलक्षाणि कुलानि स्युश्चतुष्पदाम् ।
नवैव कोटिलक्षाण्युरः सर्पाणां कुलानि च ।।६२।।
षड्विंशकोटिलक्षाणि कुलानि स्युः सुधाभुजाम् ।
पञ्चविंशतिकोटी लक्षाणि नारकजन्मिनाम् ।।६३।।
आर्यम्लेच्छ नभोगामिमनुष्याणां कुलानि च ।
द्विसप्तकोटिलक्षाणीति सर्वेषां च देहिनाम् ।।६४।।
एकैवकोटिकोटीनवतिः सार्धनवाधिका ।
कोटीलक्षाणि सिद्धान्ते कुलसंख्या जिनोदिता ।।६५।।
इत्यङ्गकुलजात्यादीन् सम्यग्ज्ञात्वा बुधोत्तमैः ।
षड्ङ्गिनां दया कार्या धर्मरत्नखनी सदा ।।६६।।

अर्थ —(शरीर के भेदो को कारणभूत नाना प्रकार की नोकर्म वर्गणाओ को कुल कहते हैं) पृथ्वीकायिक जीवो की बाईस लाख कोटि, जलकायिक जीवो की सात लाख कोटि, अग्निकायिक जीवो की तीन लाख कोटि, वायुकायिक जीवो की सात लाख कोटि, वनस्पतिकायिक जीवो की २८ लाख कोटि, द्वीन्द्रिय जीवो की सात लाख कोटि, त्रीन्द्रिय जीवो की आठ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय जीवों की ९ लाख कोटि, जलचर जीवो की साढे बारह लाख कोटि, पक्षियो की बारह लाख कोटि, चतुष्पद (पशुओ) की दश लाख कोटि, छाती के सहारे चलने वाले सर्प आदिको की नव लाख कोटि, देवो की २६ लाख कोटि, नारकी जीवो की २५ लाख कोटि तथा आर्य मनुष्य, म्लेच्छ मनुष्य और विद्याधरो (इन सब) की चौदह लाख कोटि, इस प्रकार सम्पूर्ण कुल कहे गये है ।।८७–९४।। जिनेन्द्र भगवान ने आगम मे पृथिवीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण ससारी जीवो के कुल कोटि की संख्या का योग एक करोड निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि (१९९५००००००००००००) कहा है ।।९५।। इस प्रकार विद्वानों को जीवो के कुल और जाति आदि के भेदो को भलीप्रकार जान कर धर्म रूपी रत्नो की खान के सदृश निरन्तर छह काय जीवो की दया में उपक्रम करना चाहिए ।।९६।।

अब योनियों के भेद, प्रभेद, आकार और स्वामी कहते है :—

सचित्ताचित्तमिश्राख्याः शीतोष्णमिश्रयोनयः ।
संवृता विवृता मिश्राश्चेत्येता नवयोनयः ।।६७।।

देवानां नारकाणां चाचित्तयोनिर्विचेतना ।
गर्भजानां सचित्ताचित्तयोनिश्चेतनेतरा ॥९८॥
एकाक्षद्वीन्द्रियाणां च त्र्यक्षतुर्येन्द्रियात्मनाम् ।
नानापञ्चाक्षसम्मूर्च्छकानां केषाञ्चिदेव च ॥९९॥
सचित्तैकास्तिकेषाञ्चिदचित्तायोनिरञ्जसा ।
केषाश्चिन्मिश्रयोनिश्चेति त्रिधा योनयो मताः ॥१००॥
देवानां नारकाणां च केषां चिच्छीत योनयः ।
उष्णयोनिश्च केषां चिदिति द्विविध योनयः ॥१०१॥
तेजसां उष्णयोनिः स्याच्छीतयोनिर्जलाङ्गिनाम् ।
शेषाणां पृथिवीवायुवनस्पतिशरीरिणाम् ॥१०२॥
एकद्वित्रिचतुः पञ्चाक्षगर्भेतरजन्मिनाम् ।
पृथगेकैक रूपेण शीताद्याःस्युस्त्रियोनयः ॥१०३॥
नारकैकाक्षदेवानां संवृत्तायोनिरस्ति च ।
विवृता विकलाक्षाणां मिश्रा सा गर्भजन्मिनाम् ॥१०४॥
पुनर्गर्भाङ्गियोनीनां शुभाशुभोभयात्मनाम् ।
सविशेषास्त्रिधा योनीर्वक्ष्ये योन्यघहानये ॥१०५॥
शङ्खावर्ताह्वया योनिः पराकूर्मोन्नताभिधा ।
तृतीया वंशपत्राख्यात्रेति त्रिविधयोनयः ॥१०६॥
तीर्थेशाश्चक्रिणो रामा वासुदेवाश्चतद्द्विषः ।
कूर्मोन्नतमहायोनौ जायन्ते स्फटिकोपमे ॥१०७॥
वंशपत्राख्य योनौ चोत्पद्यन्ते भोगभूमिजाः ।
द्वियोन्योः प्राणिनोऽन्ये शङ्खावर्तवंशपत्रयोः ॥१०८॥
शङ्खावर्तकुयोनौ च नियमेन विनश्यति ।
गर्भोऽशुभोऽङ्गिनामेतद्योनीनां लक्षणं भवेत् ॥१०९॥

अर्थः—सचित्त, अचित्त एव सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण एव शीतोष्ण, सवृत, विवृत एवं संवृत-विवृत (मिश्र) इस तरह योनियाँ नौ प्रकार की है ॥९७॥ देव और नारकियो की योनियाँ आत्मप्रदेशों से रहित अचित्त होती है, तथा गर्भज जीवो के सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि होती है ॥९८॥ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छन जन्म वाले पचेन्द्रिय जीवो मे से किन्ही जीवों की सचित्त

योनि है, किन्ही को अचित्त योनि है और किन्ही जीवो के सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि है। इस प्रकार-सम्मूर्च्छन जन्म वालो के तीनो प्रकार की योनियाँ मानी गई है ॥९९-१००॥ देव और नारकियों मे किन्ही की शीत योनियाँ, किन्ही की उष्ण योनियाँ और किन्ही की शीतोष्ण योनियाँ होती है ॥१०१॥ अग्निकायिक जीवो की उष्ण योनि, जलकायिक जीवो की शीत योनि होती है। शेष पृथ्वी, वायु और वनस्पतिकायिक जीवो के तथा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रेन्द्रिय और सम्मूर्च्छन जन्म वाले पचेन्द्रिय जीवो के पृथक् पृथक् एक एक रूप से शीत आदि तीनो योनियाँ होती हैं। अर्थात् किन्ही जीवो के शीत किन्ही के उष्ण और किन्ही के मिश्र इस प्रकार तीनो योनियाँ होती है ॥१०२-१०३॥ देव, नारकी और एकेन्द्रिय जीवो के सवृत योनि होती है। विकलेन्द्रिय जीवो के विवृत (प्रगट) योनि और गर्भज जीवो के नियम से सवृत-विवृत (मिश्र) योनि होती है ॥१०४॥ इसके पश्चात् योनि सम्बन्धी पाप नाश के लिए शुभ अशुभ कर्मोदय से युक्त गर्भज जीवो के विशेषता पूर्वक तीन प्रकार की योनियाँ कहूँगा ॥१०५॥ प्रथम शखावर्त, द्वितीय कूर्मोन्नत और तृतीय वशपत्र नामक तीन प्रकार की योनियाँ होती है ॥१०६॥ स्फटिक की उपमा को धारण करने वाली कूर्मोन्नत नाम की महायोनि मे तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव उत्पन्न होते है ॥ १०७ ॥ वशपत्र नाम की योनि मे भोग-भूमिज और शखावर्त एव वशपत्र इन दोनो मे कर्मभूमिज आदि अन्य साधारण मनुष्य जन्म लेते हैं, किन्तु शखावर्त नामक कुयोनि मे नियम से गर्भ का विनाश होता है क्योकि वह गर्भ अशुभ होता है। इस प्रकार जीवो की इन योनियो का लक्षण कहा है ॥१०८-१०९॥

अब जीवों के शरीरों की अवगाहना का प्रतिपादन करते है :—

पृथ्व्यप्तेजोमरुत्कायानां सूक्ष्मबादरात्मनाम् ।
अङ्गुलस्याप्यसंख्यातभागतुल्यं वपुर्भवेत् ॥११०॥
सूक्ष्मापर्याप्तजातस्य निकोतस्याङ्गिनो मतम् ।
तृतीये समये सर्वजघन्याङ्गं जगत्त्रये ॥१११॥
सर्वोत्कृष्टशरीरं स्यान्मत्स्यानां महतां भुवि ।
तयोर्मध्ये परेषां स्युर्नाना देहानि देहिनाम् ॥११२॥

अर्थ.—सूक्ष्म और बादर पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक जीवो के शरीर की अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण होती है ॥११०॥ त्रैलोक्य मे सर्व जघन्य अव-गाहना सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवो के उत्पन्न होने के तीसरे समय मे होती है और शरीर की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्यो के होती है। इन दोनो (जघन्योत्कृष्ट) के बीच मे अन्य जीवो के शरीर की मध्यम अवगाहना विविध प्रकार की होती है ॥१११-११२॥

अब जीवों के संस्थानों का कथन करते हैं :—

पृथ्व्यङ्गिनां च संस्थानं मसूरिकाकणाकृतिः ।
अप्कायानां हि संस्थानं दर्भाग्रविन्दुसन्निभम् ॥११३॥
तेजः कायात्मनां तत् स्यात् सूचीकलापसम्मितम् ।
संस्थानं वायुकायानां पताकाकारमेव च ॥११४॥
समादिचतुरस्रं च न्यग्रोधस्वातिकुब्जकाः ।
वामनाख्यं हि हुण्डाख्यं संस्थानानाति षड्भुवि ॥११५॥
मनुष्याणां च पञ्चाक्षतिरश्चां सन्ति तानि षट् ।
देवानामादिसंस्थान नारकाणां हि हुण्डकम् ॥११६॥
द्वित्रितुर्येन्द्रियाणां च सर्वेषां हरिताङ्गिनाम् ।
अनेकाकारसंस्थानं हुण्डाख्यं स्याद् विरूपकम् ॥११७॥

अर्थ –पृथिवीकायिक जीवों के शरीर का आकार मसूर के कण सदृश, जलकायिक जीवों के शरीर का आकार डाभ के अग्रभाग पर रखी हुई जलविन्दु के सदृश, अग्निकायिको का खड़ी सुइयों के समूह सदृश और वायुकायिक जीवों के शरीर का संस्थान ध्वजा के सदृश होता है ॥११३-११४॥ समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक ये छह सस्थान संसारी जीवों के होते है ॥११५॥ मनुष्यों और पचेन्द्रिय तिर्यचो के छहों संस्थान होते है। देवों के समचतुरस्र एव नारकियो के हुण्डक सस्थान ही होते है ॥११६॥ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के तथा सम्पूर्ण वनस्पतिकायिक जीवो के विविध आकारो को लिए हुए विरूप आकार वाला हुण्डक संस्थान होता है ॥११७॥

अब संसारी जीवों के संहननों का विवेचन करते है :—

म्लेच्छविद्येशमर्त्यानां संज्ञिपञ्चेन्द्रियात्मनाम् ।
कर्मभूजतिरश्चां च सन्ति संहनानि षट् ॥११८॥
असंज्ञिविकलाक्षाणां लब्ध्यपर्याप्तदेहिनाम् ।
अशुभं चान्तिमं हीनं षष्ठं संहननं भवेत् ॥११९॥
वज्रर्षभादिनाराच वज्रास्थिमयवेष्ठितम् ।
आद्यं च वज्रनाराचं वज्रास्थिजं द्वितीयकम् ॥१२०॥
नाराचं त्रीणि चेमानि सन्ति संहननानि च ।
परिहारविशुद्धयाख्यसंयमाप्तमुनीशिनाम् ॥१२१॥

चतुर्थमर्धनाराचं कीलिकाख्यं च पञ्चमम् ।
असम्प्राप्तासृपाद्यादिकं त्रिसंहननानि च ॥१२२॥
इमानि स्युः स्फुटं कर्मभूमिजद्रव्ययोषिताम् ।
भोगभूमिजनृस्त्रीणामाद्यं सहननं परम् ॥१२३॥
मिथ्यात्वाद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु सप्तसु ।
प्रवर्तमानजीवानां सन्ति संहननानि षट् ॥१२४॥
अपूर्वकरणाभिख्येऽनिवृत्तिकरणाह्वये ।
सूक्ष्मादिसाम्परायाख्ये ह्यु पशान्तकषायके ॥१२५॥
श्रेण्यामुपशमाख्यायां तिष्ठतां योगिनां पृथक् ।
त्रीणि संहननानि स्युरादिमानि दृढानि च ॥१२६॥
अपूर्वकरणाख्ये चानिवृत्तिकरणाभिधे ।
सूक्ष्मादिसाम्परायाख्ये क्षीणकषायनामनि ॥१२७॥
सयोगे च गुणस्थानेऽत्राद्यं संहननं भवेत् ।
केवलं क्षपकश्रेण्यारोहणकृतयोगिनाम् ॥१२८॥
अयोगिजिननाथानां देवानां नारकात्मनाम् ।
आहारकमहर्षीणामेकाक्षाणां वपूंषि च ॥१२९॥
यानि कार्मणकायानि व्रजतां परजन्मनि ।
तेषां सर्वशरीराणां नास्ति संहननं क्वचित् ॥१३०॥

अर्थ.—म्लेच्छ मनुष्यो, विद्याधरो, मनुष्यो, सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो और कर्मभूमिज तिर्यचो के छहो सहनन होते है ॥११८॥ असज्ञी तिर्यचो के, विकलेन्द्रिय जीवो के और लब्ध्यपर्याप्तक जीवो के अन्तिम असम्प्राप्तसृपाटिका नाम का छठवाँ अशुभ सहनन होता है ॥ ११९ ॥ वज्रमय वृषभ, कीले एव अस्थि से युक्त और वज्रमय वेष्टन से वेष्ठित पहिला वज्रर्षभनाराच सहनन, वज्रमय नाराच (कीलो) व अस्थियो से युक्त दूसरा वज्रनाराच सहनन है और तीसरा नाराच सहनन है । ये तीनो सहनन परिहार विशुद्धि सयम से युक्त मुनिराजो के होते है ॥१२०–१२१॥ चौथा अर्धनाराच, पाचवाँ कीलक और छठवां असम्प्राप्तसृपाटिका ये तीनो सहनन कर्मभूमिज द्रव्य वेदी स्त्रियो के होते है । भोगभूमिज मनुष्यो और स्त्रियो के आदि का एक उत्कृष्ट सहनन होता है ॥१२२–१२३॥ मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान पर्यन्त सात गुणस्थानो मे प्रवर्तमान जीवो के छहो सहनन होते हैं ॥१२४॥ उपशम श्रेणी गत अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसापराय और उपशान्तकषाय गुणस्थानो मे प्रवर्तमान मुनिराजों

के आदि के तीन दृढ संहननों मे से कोई एक होता है। क्षपक श्रेणीगत अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसापराय, क्षीणकषाय और सयोगकेवलि गुणस्थानों में प्रवर्तमान मुनिराजो के आदि का मात्र एक वज्रर्षभनाराच संहनन ही होता है ॥१२५-१२८॥ अयोगी जिनो के, देवो के, नारकियो के, आहारक शरीरी महा ऋषिओ के एकेन्द्रिय जीवों के और आगामी पर्याय मे जन्म लेने के लिए विग्रह गति में जाने वाले कार्मणकाय युक्त जीवों के सहनन नही होता। अर्थात् इन जीवों का शरीर छहों संहननों से रहित होता है ॥१२९-१३०॥

अब संसारी जीवों के वेदों का कथन करते हैं :—

एकाक्षविकलाक्षाणां सर्वेषां नारकात्मनाम् ।
सम्मूर्छनजपञ्चाक्षाणां वेदैको नपुंसकः ॥१३१॥
भोगभूमिभवार्याणां चतुर्विधसुधाभुजाम् ।
विश्वानां भवतो वेदौ द्वौ स्त्रीपुंसंज्ञकौ भुवि ॥१३२॥
शेषाणां गर्भजानां च तिरश्चां मनुजात्मनाम् ।
स्त्रीपुंनपुंसकाभिख्याः सन्ति वेदास्त्रयः पृथक् ॥१३३॥

अर्थः—सम्पूर्ण एकेन्द्रिय जीवो के, विकलेन्द्रिय जीवो के, नारकी जीवो के और सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय जीवो के एक नपुसक वेद ही होता है ॥१३१॥ भोगभूमिज आर्यो के तथा चारों निकायो के देवो के स्त्री और पु वेद नाम वाले दो ही वेद होते है ॥१३२॥ शेष सम्पूर्ण मनुष्यों एवं तिर्यच जीवों के पृथक् पृथक्, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुसकवेद नाम के तीनों वेद होते है ॥१३३॥

अब जीवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु का प्रतिपादन करते है :—

मृदुपृथ्वीशरीराणामुत्कृष्टमायुरञ्जसा ।
द्विषड्वर्षसहस्राणि खरपृथिवीमयात्मनाम् ॥१३४॥
द्वाविंशतिसहस्राणि वर्षाणां जीवितं परम् ।
सप्तसहस्रवर्षाण्यप्कायानां सुष्ठुजीवितम् ॥१३५॥
तेजोमयकुकायानामायुर्दिनत्रयं भवेत् ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि ह्यायुर्वाताङ्गिनां परम् ॥१३६॥
दशवर्षसहस्राण्यायुर्वनस्पति देहिनाम् ।
वर्षाणि द्वादशैवायुः प्रवरं द्वीन्द्रियाङ्गिनाम् ॥१३७॥
त्रीन्द्रियाणां तथैकोनपञ्चाशद्दिनजीवितम् ।
षण्मासप्रमितायुष्कं चतुरिन्द्रियजन्मिनाम् ॥१३८॥

मत्स्यानां परमायुः स्यात्पूर्वकोटिप्रमाणकम् ।
सरीसृपाङ्गिनामायुर्नवपूर्वाङ्गसम्मितम् ।।१३९।।
द्वासप्ततिसहस्राब्दप्रममायुश्चपक्षिणाम् ।
उरगाणां द्विचत्वारिंशत्सहस्राब्दजीवितम् ।।१४०।।
एकाक्षद्वित्रितुर्याक्षाणां जघन्यायुरिष्यते ।
कृताष्टादशभागानामुच्छ्वासस्यैक भागकः ।।१४१।।
संज्ञिनामल्पमृत्यादियुतापुण्यनृणां भवेत् ।
अन्तर्मुहूर्तमायुष्यं सर्वजघन्यमत्र च ।।१४२।।

अर्थ.—मृदु पृथ्वीकायिक जीवो की उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष की, खरपृथ्वीकायिक जीवों की बाईस हजार वर्ष की, जलकायिक जीवो की उत्कृष्टायु सात हजार वर्ष की, अग्निकायिक जीवो की तीन दिन की और वायुकायिक जीवो की तीन हजार वर्ष की उत्कृष्ट आयु है ।।१३४-१३६।। वनस्पतिकायिक जीवो की उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की, द्वीन्द्रिय जीवो की बारह वर्ष, त्रेन्द्रिय जीवो की उन्चास (४९) दिन की और चतुरिन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु छह मास प्रमाण होती है ।।१३७-१३८।। महामत्स्यो की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व की, सरीसृप जीवो की नवपूर्वाग अर्थात् सात करोड ५६ लाख वर्षो की, पक्षियो की बहत्तर हजार वर्षों की और सर्पो की व्यालीस हजार वर्षों की उत्कृष्ट आयु होती हैं ।।१३९-१४०।। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवो की जघन्य आयु स्वास के अठारह भागो मे से एक भाग प्रमाण होती है ।।१४१।। गर्भज सज्ञी जीवो की अल्पायु और पुन्य हीन गर्भज मनुष्यो की सर्व जघन्य आयु मात्र अन्तर्मुहूर्त प्रमाण को होती है ।।१४२।।

नोट :—लब्ध्यपर्याप्तक, सज्ञी, असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चों की तथा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यो की जघन्यायु श्वास के अठारहवे भाग होती है ।

अब स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों की आकृति दर्शाते है —

श्रोत्रेन्द्रियस्य संस्थानं यवनालसमाकृतिः ।
चक्षुरिन्द्रियसंस्थानं वृत्तं मसूरिकासमम् ।।१४३।।
संस्थानं घ्राणखस्यास्त्यतिमुक्तपुष्पसन्निभम् ।
जिह्वेन्द्रियस्य संस्थानमर्धचन्द्रसमानकम् ।।१४४।।
स्पर्शेन्द्रियसंस्थानमनेकाकारमस्ति च ।
समादिचतुरस्रादि भेदभिन्नं च षड्विधम ।।१४५।।

अर्थः—कर्णेन्द्रिय का आकार यव की नाली के सदृश, चक्षुरिन्द्रिय का आकार मसूर सदृश (गोल) घ्राणेन्द्रिय का आकार तिल के पुष्प सदृश और जिह्वा इन्द्रिय का आकार अर्ध चन्द्र सदृश कहा गया है ॥१४३-१४४॥ स्पर्शनेन्द्रिय का आकार अनेक प्रकार का होता है क्योंकि समचतुरस्र आदि के भेदों से संस्थान छह प्रकार के होते है ॥१४५॥

अब इन्द्रियों के भेद प्रभेद कहते हैं :—

द्रव्यभावविभेदाभ्यामिन्द्रियं द्विविधं स्मृतम् ।
अन्तर्निवृत्ति बाह्योपकरणाद्द्रव्यखं द्विधा ॥१४६॥
लब्ध्युपयोग भेदाभ्यां द्विधा भावेन्द्रियं मतम् ।
अन्तरात्मप्रदेशोत्थं कर्मक्षयसमुद्भवम् ॥१४७॥

अर्थः—द्रव्येन्द्रियो और भावेन्द्रियो के भेद से इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती है। इनमे अभ्यन्तर में रचना और बाह्य में उपकरणो के भेद से द्रव्येन्द्रियाँ दो प्रकार की तथा लब्धि एव उपयोग के भेद से कर्मो के क्षयोपशम से आत्म प्रदेशो मे उत्पन्न होने वाली भावेन्द्रियाँ भी दो प्रकार की है ॥१४६-१४७॥

अब पाँचों इन्द्रियों के विषयों का स्पर्श कहते है :—

पृथिव्यादिवनस्पत्यन्तैकाक्षाणां मतः श्रुते ।
स्पर्शाख्यो विषयो लोके धनुःशतचतुष्टयम् ॥१४८॥
द्वीन्द्रियाणां भवेत्स्पर्शविषयो दूरतो भजन् ।
स्पर्शाक्षेण विषयार्थान् धनुरष्टशतप्रमः ॥१४९॥
विषयो रसनाख्योऽत्थश्चतुः षष्टि धनुः प्रमः ।
त्रीन्द्रियासुमतां स्पर्श विषयः स्पर्शन क्षमः ॥१५०॥
स्पर्शार्थानां च चापानां स्यात्षोडशशतप्रमः ।
जिह्वाक्ष विषयश्चापशताष्टाविंशतिर्भवेत् ॥१५१॥
घ्राणाक्षविषयव्याप्तिर्धनुषां शतमानकः ।
चतुरिन्द्रियजीवानां विषयः स्पर्शनाक्षजः ॥१५२॥
द्वात्रिंशच्छतचापानि विषयो रसनाक्षजः ।
धनुषां द्विशते षट् पञ्चाशदग्ररसादिवित् ॥१५३॥
घ्राणाख्यविषयश्चापशतद्वयप्रमाणकः ।
विषयश्चक्षुरक्षोत्थो दूरार्थदर्शको भवेत् ॥१५४॥

चतुःपञ्चाशदग्रैकोनत्रिंशच्छतयोजनः ।
असंज्ञिपञ्चखानां च विषयः स्पर्शनप्रजः ॥१५५॥
चापानां हि चतुःषष्टिः शतानि रसनाक्षजः ।
विषयो धनुषां द्वादशाग्रपञ्चशतानि च ॥१५६॥
विषयो घ्राणखोत्पन्नो धनुः शतचतुः प्रमः ।
चक्षुरिन्द्रियसंजात विषयो रूपिदर्शकः ॥१५७॥
योजनानां किलाष्टाग्रैकोनषष्टिशतप्रमः ।
श्रोत्राक्ष विषयश्चापाष्टसहस्रप्रमाणकः ॥१५८॥
संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां च स्पर्शाक्षस्याखिलोत्तमः ।
रसनाक्षस्य हि घ्राणेन्द्रियस्य विषयो भुवि ॥१५९॥
प्रत्येकं वर्तते स्वस्वार्थेयोजननवप्रमः ।
सहस्राः सप्तचत्वारिंशत्त्रिषष्टयधिके शते ॥१६०॥
द्वे महायोजनानां चैकक्रोशो धनुषां तथा ।
दण्डपञ्चदशाग्राणि द्वादशैव शतानि च ॥१६१॥
हस्तैको यवतुर्याशाग्रेद्वेऽङ्गुलेऽखिलोत्तमाः ।
इत्यस्ति संज्ञिनां चक्षुर्विषयो दूरदर्शकः ॥१६२॥
श्रोत्रस्य विषयो ज्येष्टो योजनद्वादशप्रमः ।
पञ्चैते विषयोत्कृष्टा ज्ञेया महर्षिचक्रिणाम् ॥१६३॥

अर्थ—आगम मे पृथिवीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त एकेन्द्रिय जीवो के स्पर्श का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ४०० धनुष कहा है ॥ १४८ ॥ द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्श का विषय क्षेत्र ८०० धनुष है ॥१४९॥ और इन्ही द्वीन्द्रिय जीवो के रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ६४ धनुष प्रमाण है। त्रीन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र १६०० धनुष, रसनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र १२८ धनुष और घ्राणेन्द्रिय का विषय क्षेत्र १०० धनुष प्रमाण है। चतुरिन्द्रिय जीवो के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र ३२०० धनुष, रसनेन्द्रिय का विषयक्षेत्र २५६ धनुष, घ्राणेन्द्रिय का विषयक्षेत्र २०० धनुष और चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र २९५४ योजन प्रमाण होता है। असज्ञी पचेन्द्रिय जीवो का स्पर्शनेन्द्रिय का विषयक्षेत्र ६४०० धनुष, रसनेन्द्रिय का ५१२ धनुष, घ्राणेन्द्रिय का ४०० धनुष, चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र ५९०८ योजन और श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ८००० धनुष प्रमाण होता है। ॥१५०–१५८॥ सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र ९ योजन, रसनेन्द्रिय का ९

योजन, घ्राणेन्द्रिय का ६ योजन, चक्षुरिन्द्रिय का विषय क्षेत्र ४७२६३ योजन १ कोस, १२१५ धनुष, १¾ हाथ २ अंगुल और ¾ यव प्रमाण है, तथा श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र १२ योजन प्रमाण है, चक्षुरिन्द्रिय आदि का यह उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ऋद्धिवान् मुनिराजों एवं चक्रवर्तियों के ही होता है ॥१५९–१६३॥

अब एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या का प्रमाण कहते हैं :—

अथैकाक्षादिजीवानां प्रमाणं पृथगुच्यते ।
वनस्पतौ निकोताङ्गिनोऽनन्ताः प्रोदिता जिनैः ॥१६४॥
पृथिवीकायिका अप्कायिकास्तेजोमयाङ्गिनः ।
वायुकाया इमे सर्वे प्रत्येकं गदिता जिनैः ॥१६५॥
असंख्यलोकमात्राश्चासंख्यलोकस्य सन्त्यपि ।
यावन्तोऽत्रप्रदेशास्तावन्मात्राः सूक्ष्मकायिकाः ॥१६६॥
पुनस्ते पृथिवीकायाद्याश्चतुर्विध वादराः ।
पृथग् वासंख्यमात्रा अयं विशेषोऽस्ति चागमे ॥१६७॥
द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियास्तुर्येन्द्रियाः पञ्चेन्द्रिया मताः ।
प्रत्येकं चाप्यसंख्याताः श्रेण्यः परमागमे ॥१६८॥
प्रतराङ्गुलसंज्ञस्यासंख्येयभाग सम्मिताः ।
अथ वक्ष्ये गुणस्थानैः संख्याश्वभ्रादिजाङ्गिनाम् ॥१६९॥

अर्थः—अब एकेन्द्रिय आदि जीवो का पृथक् पृथक् प्रमाण कहते है। वनस्पतिकायिक जीवों में जिनेन्द्र भगवान् ने निगोद जीवों को अनन्तानन्त कहा है ।।१६४।। जिनेन्द्र देव के द्वारा बादर पृथ्वीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव असंख्यातलोक मात्र अर्थात् असंख्यातासख्यात कहे गये है, और असख्यातलोक के प्रदेशों का जितना प्रमाण है पृथक् पृथक् उतने ही प्रमाण सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिक तथा सूक्ष्म वायुकायिक जीव कहे गये है ।।१६५–१६६।। पुनः बादर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीव पृथक् पृथक् असख्यात-असख्यात ही है, आगम में यह विशेष है ।।१६७।। परमागम में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एव पचेन्द्रिय जीवों का पृथक् पृथक् प्रमाण असंख्यात श्रेणी कहा गया है। अर्थात् द्वीन्द्रिय जीव असख्यात श्रेणी प्रमाण है, त्रीन्द्रिय जीव असख्यात श्रेणी प्रमाण है, इत्यादि (परन्तु पूर्व पूर्व द्वीन्द्रियादिक की अपेक्षा उत्तरोत्तर त्रीन्द्रियादिक का प्रमाण क्रम से हीन हीन है और इसका प्रतिभागहार आवलि का असंख्यातवाँ भाग है)। असख्यात श्रेणी का प्रमाण प्रतरागुल का असंख्यातवाँ

भाग माना गया है। अब मै गुणस्थानो के माध्यम से नरकादि गतियो मे उत्पन्न जीवो की सख्या कहूँगा ।।१६८-१६९।।

अब प्रत्येक गतियों के गुणस्थानों में जीवों का प्रमाण कहा जाता है :--

नरकगतौ प्रथमपृथ्व्या मिथ्यादृष्टयः नारका-असख्याता श्रेणयः घनाङ्गुलस्य किञ्चिदून द्वितीयवर्गमूल मात्राः, द्वितीयादिषु सप्तमान्तेषु श्वभ्रेषु मिथ्यादृष्टयो नारकाः श्रेण्यसख्येय भागमात्रा, सर्वासु नरकभूमिषु सासादनसम्यग्मिथ्यादृष्टचसयत नारका पल्योपमासख्यातभागप्रमाः। तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टय. जीवाः अनन्ताः। सासादन सम्यग्मिथ्यादृष्टचसंयता देशसयतजीवाः पल्योपमा सख्येयभाग-मात्रा । मनुष्यगतौ मनुष्याः मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसख्येयभाग प्रमाणाः, स चासख्येयभागः असख्याता योजनकोटिकोटच ।

सासादनगुणस्थानवर्तिनः द्विपञ्चाशत्कोटिप्रमा स्यु.। तृतीयगुणस्थान वर्तिनः सम्यग्मिथ्या-दृष्टय चतुरधिकैकशतकोटिमात्रा । अविरतगुणस्थानस्थः अविरतसम्यग्दृष्टय. सप्तशतकोटी सम्मिता । देशविरतगुणस्थानाश्रिता । सयतासयता त्रयोदशकोटी मात्रा. उत्कर्षेण सन्ति। प्रमत्तगुणस्थानस्थाः प्रमत्तसयता पचकोटित्रिनवति लक्षाष्टनवतिसहस्रद्विशतषट्प्रमाणा उत्कृष्टेन सन्ति। अप्रमत्तगुणस्थानका अप्रमत्तसंयताद्विकोटिषणवतिलक्षनवनवति सहस्रैकशतत्रिसख्याना. भवति। अपूर्वकरणगुणस्थानस्थिता उपशमिकाः नवनवत्यधिकद्विशतप्रमा स्युः। क्षपकश्रेण्याश्रिताः क्षपका अष्टानवत्य धिकपञ्चशतप्रमा-णाश्च। अनिवृत्तिगुणस्थानवर्तिनः उपशमिका नवनवत्यग्रद्विशतप्रमा स्यु। क्षपका अष्टानवत्यधिक-पञ्चशतसम्मिताश्च। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानस्थिता उपशमश्रेण्यारोहिना उपशमिका मुनय नवनवत्य-धिकद्विशतमानाः भवन्ति। क्षपकश्रेण्यारोहिता क्षपकाः यतय अष्टानवत्यधिकपञ्चशतसख्यकाश्च। उप-शातकषाय गुणस्थान स्था उपशमिकाः नवनवतियुतद्विशतप्रमा स्युः। क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिन क्षपकाः अष्टानवतियुक्तपञ्चशतसम्मिताश्च। सयोगगुणस्थानाश्रिता सयोगिजिना अष्टलक्षाष्टानवति सहस्रपञ्च-शत द्विप्रमाणा. भवेयु। अयोगगुणस्थानस्थिताः अयोगिजिना अष्टानवतियुतपञ्चशत प्रमाः उत्कृष्टेन स्यु। एते सर्वे पिण्डीकृताः प्रमत्ताद्ययोगिगुणस्थानपर्यत वर्तिनस्तपोधना त्र्यूननवकोटिप्रमाः उत्कृष्टेन सार्धद्वीपद्वये चतुर्थकाले भवन्ति। देवगतौ मिथ्यादृष्टयो ज्योतिष्कव्यन्तरादेवा असख्याता श्रेणयः प्रतरासख्येयभागप्रमिता।। भवनवासिनः मिथ्यादृष्टयोऽमरा. असख्याता श्रेणय घनाङ्गुलप्रथमवर्ग-मूलप्रमाणाः स्यु। सौधर्मैशानवासिनो नाकिनः मिथ्यादृष्टय असख्याता. श्रेणय घनाङ्गुलतृतीयवर्ग-मूलप्रमिताः। सनत्कुमारादि कल्पकल्पातीत वासिनो मिथ्यादृष्टयोऽमरा श्रेण्यसख्येयभागप्रमिता अस-ख्यातयोजनकोटीप्रदेशमात्रा स्युः। ज्योतिष्कव्यन्तरा भवनवासिन सौधर्मैशाननाकिनः। सनत्कुमा-रादिकल्पकल्पातीतवासिन. सासादन सम्यग्मिथ्यादृष्टचविरता प्रत्येक पल्योपमासख्येयभागप्रमाणाः सन्ति।

अर्थ --नरकगतिगत प्रथमनरक मे मिथ्यादृष्टि नारकी जीव असख्यात श्रेणी प्रमाण है, जो घनागुल के कुछ कम द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है। द्वितीय पृथिवी से सप्तम पृथिवी पर्यन्त के छह नरको

में मिथ्यादृष्टि जीव श्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। सातों नरक भूमियों में सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि जीवों का पृथक् पृथक् प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवे भाग है। तिर्यंचगति मे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त है। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और देशसयत जीव पृथक् पृथक् पल्योपम के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। मनुष्यगति मे मिथ्यादृष्टि मनुष्य श्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण है, और वह श्रेणी का असख्यातवाँ भाग असंख्यात कोडाकोडी योजन प्रमाण है। सासादन गुणस्थानवर्ती जीव ५२ करोड प्रमाण है। तृतीय गुणस्थानवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य १०४ करोड़ प्रमाण, चतुर्थगुणस्थान में अविरतसम्यग्दृष्टि मनुष्य ७०० करोड़ प्रमाण, पचम गुणस्थान मे देशसंयत मनुष्य उत्कृष्टत. १३ करोड प्रमाण है। प्रमत्तगुणस्थान में प्रमत्तसयत मुनिराज उत्कृष्टतः ५६३६८२०६ है। अप्रमत्त गुणस्थान मे अप्रमत्तसयत मुनिराज २९६९९१०३ है। अपूर्वकरणगुणस्थान में उपशम श्रेणीगत योगी २९९ है और क्षपक श्रेणीगत क्षपक जीव ५९८ है। अनवृत्तिकरण गुणस्थान में उपशम श्रेणिगत जीव २९९ और क्षपक श्रेणिगत ५९८ है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में उपशम श्रेणि आरोहित मुनिराज २९९ है और क्षपकश्रेणिगत मुनिराज ५९८ है। उपशान्तकषाय गुणस्थान स्थित मुनिराजों का प्रमाण २९९ है तथा क्षीणकपाय गुणस्थानवर्ती योगियों का प्रमाण ५९८ है। सयोगगुणस्थान में सयोगिजिनों की सर्वोत्कृष्ट सख्या प्रमाण ८९८५०२ है। अयोगगुणस्थान स्थित अयोगिजिनों का प्रमाण उत्कृष्टतः ५९८ होता है। चतुर्थकाल मे अढ़ाई द्वीप स्थित छठवे गुणस्थान से १४ वे गुणस्थान पर्यन्त के सर्व योगिराजों का योग करने पर सर्व तपोधनों का उत्कृष्ट प्रमाण ८९९९९९९७ अर्थात् तीन कम नौ करोड़ प्राप्त होता है।

देवगति में ज्योतिष्क और व्यन्तर देवों का प्रमाण असंख्यात श्रेणी स्वरूप प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण और भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव असख्यात श्रेणी स्वरूप अर्थात् घनांगुल के प्रथम वर्गमूल प्रमाण श्रेणी है। सौधर्मैशान स्वर्गों में मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात श्रेणी स्वरूप अर्थात् घनांगुल के तृतीय वर्गमूल प्रमाण श्रेणियाँ है। सानत्कुमारादि कल्पों में और कल्पातीत स्वर्गो में मिथ्यादृष्टि देव श्रेणी के असख्यातवे भाग अर्थात् असंख्यात योजन करोड क्षेत्र के जितने प्रदेश है उतनी संख्या प्रमाण है। ज्योतिष्कों, व्यन्तरवासी देवों, सौधर्मैशान स्वर्गो, सानत्कुमारादि कल्पों और कल्पातीत विमानो मे सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि देवों का प्रत्येक स्थानों में पृथक् पृथक् प्रमाण पल्योपम के असख्यातवे भाग मात्र है।।

अब जीवों के प्रमाण का अल्पबहुत्व कहते हैं :—

चतुर्गतिषु संसारे मध्ये स्युः सकलाङ्गिनाम्।
अत्यल्पा मानवाः श्रेण्यसंख्येयभागमात्रकाः ।।१७०।।

मनुष्येभ्योऽप्यसंख्यातगुणानरकयोनिषु ।
नारकाः स्युरसंख्याताः श्रेणयो दुःखविह्वलाः ।।१७१।।

नारकेभ्योऽप्यसंख्यातगुणादेवाश्चतुर्विधाः ।
भवन्ति प्रतरासंख्येयभागसम्मिताः शुभाः ।।१७२।।

देवेभ्यः सिद्धनाथाः स्युरनन्तगुणमानकाः ।
सिद्धेभ्योऽखिलतिर्यञ्चः सन्त्यनन्तगुणप्रमाः ।।१७३।।

अर्थः—इस चतुर्गति ससार मे पचेन्द्रिय जीवो में मनुष्य सबसे स्तोक है, इनका प्रमाण श्रेणी के असख्यातव भाग मात्र है ।। १७० ।। नरक भूमियो मे दुःख से विह्वल नारकी जीव मनुष्यो से असंख्यातगुणे है, जो असख्यात श्रेणी प्रमाण है ।।१७१।। नारकियो से असंख्यातगुणे चतुर्निकाय के देव है, जो प्रतर के असख्यातवे भाग प्रमाण है ।। १७२ ।। देवो से अनन्तगुणे सिद्ध भगवान है, और सिद्धो से अनन्तगुणे तिर्यंच जीव है ।।१७३।।

अब नरकगति अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते है :—

सप्तमे नरके सन्ति सर्वस्तोकाश्च नारकाः ।
तेभ्योऽपि नारकेभ्यः स्युरुपर्युपरिवर्तिषु ।।१७४।।

षट्पृथिवी नरकेष्वत्र नारकाः सुखदूरगाः ।
असंख्यातगुणाः प्रत्येकं दुःखाम्बुधिमध्यगाः ।।१७५।।

अर्थ —सप्तम नरक मे नारको जीव सबसे स्तोक है। सप्तम नरक के नारकियो से ऊपर ऊपर की छहो नरक पृथिवियों मे दुःख रूपी समुद्र के मध्य डूबे हुए अत्यन्त दुःखी नारकी जीव असख्यातगुणे असख्यातगुणे अधिक अधिक है। अर्थात् सप्तम नरक के नारकियो से छठवे नरक के नारकी असख्यातगुणे, छठवे से पाँचवे मे असख्यातगुणे इत्यादि ।।१७४-१७५।।

अमीषां सप्तनरकपृथ्वीषु व्यासेन पृथक् पृथक् संख्यानिगद्यते :—

सप्तम्या पृथिव्या सर्वस्तोका नारकाः। श्रेण्यसख्येयभागप्रमाणाः श्रेणिद्वितीयवर्गमूलेन खण्डितश्रेणिमात्राः तेभ्य सप्तमपृथिवीनारकेभ्यः। षष्ठ्या पृथ्व्या नारकाः असख्यातगुणाः, श्रेणितृतीयवर्गमूलेनापहृत्य श्रेणि मात्रा स्यु, षष्टपृथ्वो नारकेभ्य । पञ्चम्या पृथ्व्या नारकाः असख्येयगुणा, श्रेणि षष्ट वर्गमूलापहृतस्य श्रेणिमात्राश्च पञ्चमपृथ्वीनारकेभ्यः। चतुर्थ्या पृथ्व्या नारकाः असख्यातगुणाः, श्रेण्यष्टमवर्गमूलापहृत श्रेणिसम्मिता चतुर्थपृथिवी नारकेभ्य.। तृतीयाया पृथिव्या नारका असख्येयगुणाः, श्रेणि दशमवर्गमूलापहृत श्रेणि लब्धमात्रा., तृतीयपृथिवी नारकेभ्यः। द्वितीयाया पृथ्व्या नारकाः

असंख्यातगुणा. श्रेणिद्वादशवर्गमूलखण्डित श्रेण्यैकभाग परिमिताः स्युः द्वितीय पृथिवी नारकेभ्यः प्रथमाया पृथिव्यां नारका असंख्यातगुणा, घनाङ्गुलवर्गमूलमात्रा. श्रेणयो भवन्ति ।

अर्थः—सप्तम पृथ्वी में नारकी जीव सबसे कम अर्थात् श्रेणी के असख्यातवे भाग प्रमाण है। (सात राजू की श्रेणी होती है) श्रेणी के दूसरे वर्गमूल से श्रेणी को भागित करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है, उतने प्रमाण सप्तम नरक के नारकी जीवो की संख्या है। सप्तम पृथ्वी से छठवी पृथ्वी में नारकी जीव असख्यात गुणे है। श्रेणी के तृतीय वर्गमूल से श्रेणी को अपहृत (भागित) करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतने प्रमाण नारकी जीव छठवी पृथ्वी में है। छठवी पृथ्वी से पाँचवी पृथ्वी के नारकी जीव असख्यातगुणे है। श्रेणी के छठवें वर्गमूल से श्रेणी को भागित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतने प्रमाण पाँचवे नरक के नारकी जीवों की सख्या है। पाँचवी पृथ्वी से चतुर्थ पृथ्वी में नारकी जीव असख्यातगुणे है। श्रेणी के अष्टम वर्गमूल से श्रेणी को भाजित करने पर जितना लब्ध प्राप्त होता है, उतने ही प्रमाण चतुर्थ पृथ्वी के नारकी जीवो का है। चतुर्थ पृथ्वी से तृतीय पृथ्वी के नारकी जीव असख्यात गुणे है। श्रेणी के दशवे वर्गमूल से श्रेणी को भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी संख्या प्रमाण जीव तृतीय पृथ्वी मे है। तृतीय पृथ्वी से द्वितीय पृथ्वी के नारकी जीव असंख्यात गुणे है। श्रेणी के बारहवे वर्गमूल से श्रेणी को भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, उतने प्रमाण जीव द्वितीय पृथ्वी मे है, वे श्रेणी के एक भाग प्रमाण प्राप्त होते हैं। द्वितीय पृथ्वी से प्रथम पृथ्वी के नारकी जीव असख्यात गुणे हैं, वे सख्या में घनांगुल के वर्गमूल प्रमाण श्रेणियों के बराबर है, अर्थात् श्रेणी को घनागुल के वर्गमूल से गुणित करने पर जो सख्या प्राप्त हो तत्प्रमाण (प्रथम पृथ्वी में नारकी) है।

अब तिर्यंचगति की अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते हैं :—

पञ्चेन्द्रिया हि तिर्यञ्चः सर्वस्तोका महीतले ।
भवन्ति प्रतरासंख्यातभाग प्रमितास्ततः ।।१७६।।

पञ्चाक्षेभ्यश्चतुर्यक्षाः स्युर्विशेषाधिका भुवि ।
स्वकीयराश्यसंख्यातभागमात्रेण दुःखिनः ।।१७७।।

तुर्यक्षेभ्यस्तथा द्वीन्द्रियाः विशेषाधिका मताः ।
विशेषाः स्वस्वराशेश्चासंख्यातभागमात्रकाः ।।१७८।।

द्वीन्द्रियेभ्यस्तथा त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः स्मृताः ।
विशेषः स्वस्वराशेरसंख्येयभागमात्रकाः ।।१७९।।

श्रीन्द्रियेभ्यस्तथैकाक्षा अनन्तगुणसम्मिताः ।
अथ वक्ष्ये नृणां संख्याल्पबहुत्वं यथागमम् ।।१८०।।

अर्थः—तिर्यंच राशि की अपेक्षा संसार मे पंचेन्द्रिय तिर्यंच जोव सर्व स्तोक अर्थात् प्रतर के असंख्यातवे भाग प्रमाण है । पचेन्द्रिय तिर्यंचो से अत्यन्त दु ख से युक्त चतुरिन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं । अर्थात् पचेन्द्रिय तिर्यंचो की राशि के असख्यातवे भाग प्रमाण अधिक है । चतुरिन्द्रिय जीवों से द्वीन्द्रिय जीव विशेष अधिक है । वह विशेष का प्रमाण अपनी अपनी राशि अर्थात् चतुरिन्द्रिय राशि का असंख्यातवाँ भाग है । द्वीन्द्रिय जीव राशि से त्रीन्द्रिय जीव विशेष अधिक है । विशेष का प्रमाण अपनी अपनी राशि अर्थात् द्वीन्द्रिय जीव राशि का असख्यातवाँ भाग मात्र है । त्रीन्द्रिय जीव राशि के प्रमाण से एकेन्द्रिय जीव राशि अनन्तगुणी अधिक है । अब मै आगम के अनुसार मनुष्यो की सख्या का अल्प-बहुत्व कहूँगा ।।१७९–१८०।।

अब मनुष्य गति में स्थित मनुष्यों का अल्पबहुत्व कहते है :—

भवन्ति नृगतौ सर्वस्तोकाः संख्यातमानवाः ।
अन्तर्द्वीपेषु विश्वेषु पिण्डितास्तेभ्य एव च ।।१८१।।

अन्तर्द्वीपमनुष्येभ्यः संख्यातगुणसम्मिताः ।
दशसूत्कृष्टसद्भोग भूमिषु प्रवरा नराः ।।१८२।।

तेभ्यो मर्त्याश्च सख्यातगुणाधिका जिनैः स्मृताः ।
हरिरम्यक वर्षेषु द्विपञ्चसु सुभोगिनः ।।१८३।।

तेभ्य आर्याश्च संख्यातगुणा दशसु सन्ति वै ।
सु हैमवतहैरण्यवतान्त भोगभूमिषु ।।१८४।।

तेभ्योऽपि भरतैरावतेषु द्विपञ्चसु स्फुटम् ।
कर्मभूमिषु संख्यातगुणा नरा. शुभाशुभाः ।।१८५।।

तेभ्यः पञ्चविदेहेषु संख्यातगुणमानवाः ।
तेभ्यः सन्मूर्च्छनोत्पन्ना असख्यातगुणा नराः ।।१८६।।

भवन्ति श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रका अपि ।
स च श्रेणेरसंख्यातभाग आख्यात आगमे ।।१८७।।

असख्ययोजनैः कोटीकोटिप्रदेशमात्रकाः ।
एते स्युर्लब्ध्यपर्याप्ता मर्त्याः सन्मूर्छनोद्भवाः ।।१८८।।

नाभौस्तनान्तरे योनौ कक्षायां च निसर्गतः ।
सूक्ष्मा नरा इमे स्त्रीणां जायन्ते दृष्टयगोचराः ॥१८९॥

शेषा ये गर्भजा मर्त्याः पर्याप्तास्ते न चेतराः ।
अथ देवगतौ वक्ष्येऽल्पबहुत्व जिनागमात् ॥१९०॥

अर्थ:—मनुष्यगति में लवणोदधि और कालोदधि समुद्रों में स्थित ९६ अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों का प्रमाण एकत्रित करने पर भी वे सर्व स्तोक है। अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों से पंचमेरु सम्बन्धी दश उत्कृष्ट भोगभूमियों के मनुष्य संख्यातगुणे है ॥१८१–१८२॥ उत्कृष्ट भोगभूमियों के मनुष्यों से पंचमेरु सम्बन्धी हरि-रम्यक नामक दश मध्यम भोगभूमियों के मनुष्य संख्यातगुणे है ॥१८३॥ मध्यम भोगभूमियो से हैमवत-हैरण्यवत नामक १० जघन्य भोगभूमियों के मनुष्य संख्यातगुणे है, और जघन्य भोगभूमियों के प्रमाण से पंच भरत, पच ऐरावत नामक दश कर्मभूमियो में शुभ अशुभ कर्मो से युक्त मनुष्य संख्यात-गुणे है ॥१८४–१८५॥ कर्मभूमिज मनुष्यों के प्रमाण से पचविदेह क्षेत्रो के मनुष्य सख्यातगुणे है और विदेहस्थ मनुष्यों के प्रमाण से सम्मूर्च्छन मनुष्यो का प्रमाण असंख्यात गुणा है ॥१८६॥ जो श्रेणी के असंख्यात भागो में से एक भाग मात्र है। आगम में उस श्रेणी के असख्यातवे भाग का प्रमाण असंख्यात कोटाकोटी योजन क्षेत्र के जितने प्रदेश होते है, उतने प्रमाण कहा है अतः सम्मूर्च्छन जन्म वाले लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का भी यही प्रमाण है ॥ १८७–१८८ ॥ दृष्टि अगोचर ये सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य कर्मभूमिज स्त्रियो की नाभि, योनि, स्तन और काख मे स्वभावतः उत्पन्न होते है ॥१८९॥ इन अपर्याप्तक मनुष्यो से अवशेष गर्भज मनुष्य पर्याप्त ही होते है, अपर्याप्तक नही। अब आगमानुसार देवगति में अल्पबहुत्व कहते है ॥१९०॥

अब देवगति अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते हैं :—

विमानवासिनः स्तोकादेवा देव्यो भवन्ति च ।
तेभ्योऽसंख्यगुणाः सन्ति दशधा भावनामराः ॥१९१॥

तेभ्योऽसंख्यगुणा देवा व्यन्तरा अष्टधा मताः ।
तेभ्यः पञ्चविधा ज्योतिष्काः संख्यातगुणाः स्मृताः ॥१९२॥

अर्थ:—देवगति में विमानवासी देव देवियों का प्रमाण सर्व स्तोक है। विमानवासी देवों के प्रमाण से दश प्रकार के भवनवासी देवों का प्रमाण असंख्यातगुणा है। भवनवासी देवो से आठ प्रकार के व्यन्तर देवों का प्रमाण असख्यातगुणा है और व्यन्तर देवों से पांच प्रकार के ज्योतिषी देवों का प्रमाण संख्यातगुणा है ॥१९१–१९२॥

पुनर्देवानां प्रत्येकमल्पबहुत्वमुच्यते :—

सर्वार्थसिद्धौ स्तोका अहमिन्द्रमरा स्यु.। तेभ्यो विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानवानुत्तरेषु अहमिन्द्रा असख्यातगुणा पल्योपमासख्यातभागप्रमिताश्च। तेभ्यो नवग्रैवेयकानतप्राणतारणाच्युतेषु देवा· असख्यातगुणाः पल्योपमासख्यातभागसम्मिता.। तेभ्य शतारसहस्रार कल्पयोर्नाकिन. असख्यातगुणा, श्रेणिचतुर्थवर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभाग प्रमा· तेभ्य शुक्रमहाशुक्रयोर्देवा असख्यातगुणाः, श्रेणि पञ्चमवर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागसम्मिताः। तेभ्य लान्तवकापिष्टयोर्गीर्वाणा असंख्यातगुणा, श्रेणि-सप्तमवर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागप्रमिताः। तेभ्यो ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोरमरा असख्यातगुणा, श्रेणिनवम-वर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागमात्राः। तेभ्य· सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा असख्यातगुणाः, श्रेण्येकादशम-वर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागमात्रा·। तेभ्यः सौधर्मैशानयो· गीर्वाणा असख्याता.। एते सर्वे सौधर्मादि सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तविमानवासिनोऽमरा. असख्यातश्रेणि मात्रा. घनाङ्गुलतृतीयवर्गमूल मात्रा. साधिका· श्रेणय। तेभ्य· असख्यातगुणा. दशविधा भवनवासिन. असख्यातश्रेणयः घनाङ्गुलप्रथम-वर्गमूलमात्रा श्रेणय। तेभ्य असंख्यातगुणा, अष्टप्रकारा व्यन्तरामरा· प्रतरासख्यातभागमात्राः सख्यातप्रतराङ्गुलै. श्रेणेर्भागे हृते यल्लब्धं तावन्मात्रा. श्रेणयो भवन्ति। तेभ्य· पञ्चविधा ज्योतिष्काः सख्यातप्रमा. प्रतरासंख्यातभागमात्राः 'पूर्वोक्त सख्यातगुणहीनसंख्येयप्रतराङ्गुलै श्रेणेर्भागे हृते तावन्मात्रा. श्रेणयो भवन्ति।

अब देवों का भिन्न भिन्न अल्पबहुत्व कहते हैं :—

देवगति गत सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र देव सबसे स्तोक है। इनसे विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित मे तथा नवोत्तर विमानों में स्थित सर्व अहमिन्द्र देव असख्यातगुणे अर्थात् पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण है। इनसे नवग्रैवेयक, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्गों के देव सख्यातगुणे अर्थात् पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण है। इनसे शतार-सहस्रार स्वर्ग के देव असख्यातगुणे अर्थात् श्रेणी के चतुर्थ वर्गमूल का श्रेणी मे भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसके एक भाग प्रमाण है। इनसे शुक्र-महाशुक्र कल्प के देव असख्यातगुणे अर्थात् श्रेणी के पचम वर्गमूल से भाजित श्रेणी के एक भाग प्रमाण है। इनसे लान्तव-कापिष्ट कल्प के देव असख्यातगुणे अर्थात् श्रेणी के सप्तम वर्गमूल से खण्डित श्रेणी के एक भाग प्रमाण है। इनसे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्प के देव श्रेणी के नवम वर्गमूल से खण्डित श्रेणी के एक भाग प्रमाण है। इनसे सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प के देव असख्यातगुणे अर्थात् श्रेणी के ग्यारहवे वर्गमूल से खण्डित श्रेणी के एक भाग प्रमाण है। इनसे सौधर्मैशान कल्प के देवो का प्रमाण असख्यातगुणा है। सौधर्म स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सर्व विमानवासी देव असख्यात श्रेणी प्रमाण है अर्थात् घनागुलके तृतीय वर्गमूल से कुछ अधिक प्रमाण श्रेणियाँ है। इनसे असख्यात गुणे दशप्रकार के भवनवासी देव है, जो असंख्यात श्रेणी प्रमाण अर्थात् घनागुल

के प्रथम वर्गमूल का जितना प्रमाण है, उतनी श्रेणियों के प्रमाण है। इनसे असंख्यातगुणे आठ प्रकार के व्यन्तरदेव है, वे जगत्प्रतर के असख्यातवे भाग प्रमाण अर्थात् संख्यात प्रतरांगुलों से श्रेणी को भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी श्रेणियों प्रमाण है। इनसे संख्यातगुणे पाँच प्रकार के ज्योतिषी देव है। वे ज्योतिष देव जगत्प्रतर के असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं। अर्थात् पूर्वोक्त संख्यात-प्रतरागुलों से सख्यातगुणे हीन प्रतरांगुलो द्वारा श्रेणी को खण्डित करने पर जो प्रमाण आवे उतनी श्रेणियाँ है।

अब जीवों की पर्याप्ति और प्राणों का कथन करते है :—

आहारोऽथ शरीरं चेन्द्रियानप्राणसंज्ञकौ।
भाषा मन इमाः षट्स्युः पर्याप्तयोऽत्र संज्ञिनाम् ॥१९३॥
असंज्ञिविकलाक्षाणां स्युस्ताः पञ्च मनो विना।
एकाक्षाणां चतस्रश्च पर्याप्तयो वचो विना ॥१९४॥
पञ्चेन्द्रियाह्वयाः प्राणा मनोवाक्कायजास्त्रयः।
आनप्राणस्तथायुश्चामी प्राणा दश संज्ञिनाम् ॥१९५॥
असंज्ञिनां नवप्राणास्ते भवन्ति मनो विना।
चतुरिन्द्रियजीवानामष्टौ श्रोत्रं विनापरे ॥१९६॥
त्रीन्द्रियाणां च ते प्राणाः सप्त चक्षुर्विना स्मृताः।
द्वीन्द्रियाणां च षट् प्राणाः सन्ति घ्राणेन्द्रियं विना ॥१९७॥
पृथिव्यादि वनस्पत्यन्तपञ्चस्थावरात्मनाम्।
एकाक्षाणां चतुःप्राणा रसनाक्ष वचोऽतिगाः ॥१९८॥
पञ्चेन्द्रियाह्वयाः प्राणा आयुः शरीरमित्यमी।
सप्तप्राणा अपर्याप्तसज्ञि पञ्चाक्षजन्मिनाम् ॥१९९॥
पञ्चाक्षायुः शरीराख्याः प्राणाः सप्तभवन्ति च।
असंज्ञिनामपर्याप्तपञ्चेन्द्रियात्तदेहिनाम् ॥२००॥
चत्वारइन्द्रियः प्राणा आयुः काय इमे मताः।
प्राणाः षट् भुव्यपर्याप्तचतुरिन्द्रिय जन्मिनाम् ॥२०१॥
स्पर्शाक्षरसनघ्राणाक्षायुः काया अपीत्यमी।
प्राणाः पञ्चह्यपर्याप्तत्रीन्द्रियासुमतां स्मृताः ॥२०२॥

स्पर्शजिह्वाक्षकायायुः प्राणाश्चत्वार एव हि ।
आगमे कीर्तिता द्वीन्द्रियापर्याप्ताङ्गिनां जिनैः ।।२०३।।
स्पर्शेन्द्रियशरीरायुः प्राणास्त्रयो मता जिनैः ।
अपर्याप्तपृथिव्यादिपञ्चस्थावर जन्मिनाम् ।।२०४।।

अर्थः—(गृहीत आहार वर्गणा को खल-रस आदि रूप परिणमाने की जीव की शक्ति के पूर्ण होने को पर्याप्ति कहते है ।) आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इस प्रकार पर्याप्ति के छह भेद है। सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के छहो पर्याप्तियाँ होती है ।।१९३।। असंज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के और विकलेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवो के मन पर्याप्ति के बिना पाँच तथा एकेन्द्रिय जीवो के मन और वचन के बिना चार पर्याप्तियाँ होती है ।।१९४।।

प्राण —(जिनके सद्भाव मे जीव मे जीवितपने का और वियोग होने पर मरणपने का व्यवहार हो उन्हे प्राण कहते है) । पाँच इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) प्राण, मनोबल, वचनबल और कायबल के भेद से तोन बल प्राण, एक श्वासोच्छ्वास और एक आयु इस प्रकार दश प्राण होते है ।।१९५।। असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के मनोबल को छोड कर शेष नव प्राण होते है । चतुरिन्द्रिय जीवो के श्रोत्रेन्द्रिय को छोड कर आठ प्राण, त्रीन्द्रिय जीवो के चक्षु को छोडकर सात प्राण और द्वीन्द्रिय जीवो के घ्राणेन्द्रिय को छोड कर शेष छह प्राण होते है ।।१९६–१९७।। पृथिवी कायिक से लेकर वनस्पति कायिक पर्यन्त पाँचो स्थावर जीवो के रसनेन्द्रिय और वचनबल को छोडकर शेष चार प्राण होते है ।।१९८।। सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवो के पाँच इन्द्रियाँ, कायबल और आयु इस प्रकार सात प्राण होते है ।।१९९।। असज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवो के पाच इन्द्रियाँ, कायबल और आयु ये ही सात प्राण होते है ।।२००।। अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवो के चार इन्द्रियाँ, आयु और काय बल ये छह प्राण होते है ।। २०१ ।। अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ, आयु और कायबल ये पाच प्राण होते हैं ।। २०२ ।। जिनेन्द्रो के द्वारा आगम मे अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवो के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, आयु और कायबल ये चार प्राण कहे गये है ।।२०३।। जिनेन्द्र के द्वारा स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल और आयु ये तीन प्राण अपर्याप्तक पृथिवो आदि पाच स्थावर जीवो के कहे गये है ।।२०४।।

अब जीवों की गति–आगति का प्रतिपादन करते हैं :—

ये पृथ्वीकायिकाप्कायिका वनस्पतिदेहिनः ।
द्वित्रितुर्याक्षपञ्चाक्षा लब्ध्यपर्याप्तकाश्च ये ।।२०५।।
पृथ्व्यादिकवनस्पत्यन्ताः सूक्ष्माः निखिलाश्च ये ।
जीवाः पर्याप्तकापर्याप्ताप्तेजोवायुकायिकाः ।।२०६।।

सूक्ष्मवादरपर्याप्तापर्याप्ताः सकलाश्च ये ।
असंज्ञिनश्च सर्वेषां तेषां मध्ये विधेर्वशात् ॥२०७॥
उत्पद्यन्ते व्रतातीतास्तिर्यञ्चो मानवाः अघात् ।
तस्मिन्नेव भवे मृत्वा स्वार्तध्यानकुलेश्यया ॥२०८॥
पृथ्वीकायास्तथाप्कायिका वनस्पतिकायिकाः ।
सूक्ष्मवादरपर्याप्तपर्याप्ताविकलेन्द्रियाः ॥२०९॥
एते कर्मलघुत्वेन जायन्ते तद्भवे मृताः ।
नृतिर्यग्भवयोर्मध्ये काललब्ध्या न संशयः ॥२१०॥
सूक्ष्मवादरपर्याप्ताऽपर्याप्तनलकायिकाः ।
सूक्ष्मवादरपर्याप्तपर्याप्तवायुकायिकाः ॥२११॥
न लभ्यन्ते मनुष्यत्वं मृत्वा तस्मिन् भवे क्वचित् ।
किन्त्वेते केवलं तिर्यग्योनिं यान्ति कुकर्मभिः ॥२१२॥
प्रत्येकाख्य वनपत्यङ्गिषु पृथ्व्यम्बुयोनिषु ।
वादरेषु च पर्याप्तेषु जायन्ते विधेर्वशात् ॥२१३॥
आर्तध्यानेन दुर्मृत्युं प्राप्य संक्लिष्टमानसाः ।
तिर्यञ्चो मानवा देवास्तस्मिन्भवे व्रतातिगाः ॥२१४॥
नृगतौ भोगभूम्यादि वर्जितायां सुरेषु च ।
भावनव्यन्तर ज्योतिष्कजेषु नरकादिमे ॥२१५॥
कर्मभूमिजतिर्यग्योनिषु सर्वासु तद्भवे ।
तिर्यञ्चोऽसंज्ञिपर्याप्ता उत्पद्यन्ते स्वकर्मणा ॥२१६॥
तिर्यञ्चो मानवा भोगभूजास्तद्भोगजास्तथा ।
यान्ति देवालयं सर्वे नूनं मन्दकषायिणः ॥२१७॥

अर्थः—पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय इन लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में पर्याप्त एव अपर्याप्तक सूक्ष्मकाय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीवों में, समस्त अग्निकायिक, वायुकायिक जीवो मे तथा सम्पूर्ण असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक जीवो मे पापकर्म के वशीभूत होते हुए व्रत रहित तिर्यच और मनुष्य उत्पन्न होते है तथा आर्तध्यान एवं कुलेश्याओं से युक्त सूक्ष्म-वादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथिवी कायिक, जल-कायिक, वनस्पतिकायिक जीव एव पर्याप्तक-अपर्याप्तक विकलेन्द्रिय जीव इन पर्यायो से मर कर कर्मो

के कुछ मदोदय से एवं काललब्धि से मनुष्यो तथा तिर्यंचो मे उत्पन्न होते है ।।२०५–२१०।। सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक अग्निकायिक जीव तथा सूक्ष्म-बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक वायु कायिक जीव इन भवो से मरकर कभी भी मनुष्य पर्याय प्राप्त नही करते, दुष्कर्मो के कारण मात्र तिर्यंच योनियो मे ही उत्पन्न होते है।२११-२१२। संक्लेश परिणामो से युक्त तथा व्रतरहित तिर्यंच, मनुष्य और देव आर्त्त ध्यान एव कर्मोदय के वश से दुर्मृत्यु को प्राप्त होकर बादर पर्याप्तक पृथिवीकायिक, जल-कायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवो मे उत्पन्न होते है ।।२१३–२१४।। अपने कर्मो के वशीभूत होते हुए असञ्ज्ञी पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यच मरकर भोगभूमिज मनुष्यो को छोड कर मनुष्यगति मे, भवन-वासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिष्क रूप देवगति मे, प्रथम नरक मे तथा कर्मभूमिज तिर्यंच योनि मे उत्पन्न होते है ।।२१५–२१६।। भोगभूमिज तिर्यच और मनुष्य नियम से देवो में ही उत्पन्न होते है, क्योकि वे स्वभाव से मन्दकषायी होते है ।।२१७।।

अब धर्म प्राप्ति के लिये जीव रक्षा का उपदेश देते है :—

इति विविध सुभेदैर्जीवयोनीर्विदित्वा
गतिकुलवपुरायुः स्थानसंख्याद्यनेकैः ।
स्वपरहित वृषाप्त्यै प्रोदिता ज्ञानदृष्ट्या,
सुचरणशिवकामाः स्वात्मवत्पालयन्तु ।।२१८।।

अर्थ —इस प्रकार उत्तम चारित्र के साथ साथ मोक्ष की इच्छा करने वाले सज्जन पुरुषो को स्वपर हितकारी धर्म की प्राप्ति के लिए जीवो की गति, कुल, शरीर, आयु सस्थान और सख्या आदि के द्वारा नाना प्रकार के भेदो को ज्ञान चक्षु से भलीप्रकार जानकर अपनी आत्मा के सदृश ही जीवो की रक्षा करना चाहिए ।।२१८।।

अधिकारान्त मङ्गल :—

यैर्जीवादिपदार्थधर्मसकलाः सम्यक् प्रणीता जिनै–
र्ये तत्पालनतो गताः शिवगतिं ये सूरयः प्रत्यहम् ।
तद्रक्षां भुवने वदन्ति सुविदो जीवादिरक्षाय ये,
तन्निष्ठा मुनयोऽखिला मम च ते दद्युः स्तुताः स्वान्गुणान् ।।२१९।।

इतिश्री सिद्धांतसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरच्यते जीवजातिकुल-कायायुः संख्यालपबहुत्वादि वर्णनोनामैकादशोऽधिकारः ।।

अर्थ — जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा सम्यक् प्रकार से कहे हुये जीवादि पदार्थों एवं सम्पूर्ण धर्मों का पालन करके जो जीव मोक्ष गये है, जो आचार्य आदि जीव रक्षा के लिए जीव रक्षा का उपदेश देते है और जो ज्ञानवान् समस्त मुनिजन उस उपदेश की परम श्रद्धा करते है, वे सब पूज्य पंचपरमेष्ठी मुझे अपने अपने गुण देवे। अर्थात् उनके गुण मुझे प्राप्त हो ॥२१९॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक
नाम महाग्रन्थ में जीवों की कुल-काय-आयु-
संख्या एव अल्पबहुत्व आदिका
वर्णन करने वाला
ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त ॥



द्वादशोऽधिकारः

मङ्गलाचरण :—

सद्द्वासप्ततिलक्षांश्च सप्तकोटिजिनालयान् ।
भावनामरवन्द्याचर्च्यान् वन्दे तत्प्रतिमाः स्तुवे ॥१॥

अर्थः—भवनवासी देवों के द्वारा वन्दनीय और पूजनीय सात करोड बहत्तर लाख जिनालयों को मै वन्दना करता हूँ, तथा उनमें स्थित प्रतिमाओं की स्तुति करता हूँ ॥१॥

प्रतिज्ञा सूत्र कहते है :—

अथ वक्ष्ये समासेन भावनादिपुरस्सरान् ।
देवांश्चतुर्विधान् नृणां सद्धर्मफलव्यक्तये ॥२॥

अर्थ:—प्राप्त किया है समीचीन धर्म का फल जिन्होने ऐसे मनुष्यों के लिये भवनवासी आदि है, आगे जिनके ऐसे चार प्रकार के देवों का संक्षेप से वर्णन करूँगा ॥२॥

अब देवों के मूल चार भेद और उन चारों के अवस्थान का स्थान कहते हैं :—

भावना व्यन्तरा ज्योतिष्काः कल्पवासिनोऽमराः ।
इमे चतुर्विधाः प्रोक्ताः प्राप्तधर्मफला जिनैः ॥३॥

भावनव्यन्तराणां चाधोलोके भवनानि वै ।
मध्यलोके गृहाः सन्ति यावत्सुदर्शनाग्रकम् ॥४॥

दशोनाष्टशतान्यूर्ध्वं गत्वा चित्रामहीतलात् ।
योजनानां विमानानि ज्योतिष्काणां भवन्ति च ॥५॥

चित्राभूमितलात्क्षेत्रं सौधर्मस्वर्गसश्रितम् ।
तदाश्रयान्मतास्तेऽपि स्वर्गलोकाश्रिताः सुराः ॥६॥

अथवा देवलोक[1]त्वादूर्ध्वलोकाश्रिताः स्मृताः ।
यथास्थानस्थितान् वक्ष्ये क्रमात् तान् सह नाकिभिः ।।७।।

अर्थ —जिनेन्द्र भगवान ने धर्म का फल प्राप्त करने वाले देव चार प्रकार के कहे है—१ भवन वासी, २ व्यन्तरवासी, ३ ज्योतिषी और ४ कल्पवासी (विमानवासी) ।।३।। भवनवासी और व्यतरो के भवन अधोलोक मे हैं किन्तु व्यन्तरो के गृह–आवास मध्यलोक मे मेरु पर्वत के अग्रभाग पर्यन्त भी है।

विशेषार्थः—त्रिलोकसार मे व्यन्तरों के निवास तीन प्रकार के कहे है–१ भवनपुर, २ आवास और ३ भवन। द्वीप समुद्रो मे जो स्थान है उन्हे भवनपुर कहते है। तालाब, पर्वत आदि पर जो निवास है उन्हे आवास कहते है और चित्रा पृथिवी के नीचे जो स्थित है उन्हे भवन कहते है ।।४।। ज्योतिषी देवो के विमान चित्रा पृथिवी के (ऊपरी) तल से ७९० योजन की ऊँचाई से लेकर ऊपर (नौ सौ योजन) तक है ।।५।। चित्रा पृथिवी के तल से सौधर्म आश्रित क्षेत्र है, उसके आश्रय से रहने वाले देव भी स्वर्ग लोक आश्रित जानना चाहिए। अथवा चित्रा पृथिवी तल पर देव रहते है इसलिए इसको ऊर्ध्वलोक आश्रित कहा गया है। देवो के स्थान कहा पर स्थित है उसका और उनके साथ देवो का यथा क्रम से वर्णन करूँगा ।।६–७।।

अब भवनवासी देवों के स्थान विशेष का वर्णन करते है :—

चित्राभूमिं विहायाधः खरांशे भवनेशिनाम् ।
नागादीनां नवानां स्युर्महान्ति भवनानि च ।।८।।
ततोऽसुरकुमाराणां स्फुरद्रत्नमयान्यपि ।
भवनान्येव विद्यन्ते पङ्कभागे द्वितीयके ।।९।।
चित्राभूमेरधो भागेऽल्पर्द्धियुक्त सुधाशिनाम् ।
योजनद्विसहस्रान्तं भवन्ति शाश्वता गृहाः ।।१०।।
योजनानां द्विचत्वारिंशत्सहस्रान्तभूतले ।
महर्द्धियुतदेवानां विद्यन्ते प्रवरा गृहाः ।।११।।
लक्षयोजनपर्यन्तं चित्राभूमेरधस्तले ।
मध्यमर्द्धियुतानां स्युर्देवानां विपुलालयाः ।।१२।।

अर्थ—चित्रा भूमि को छोड कर (चित्रा के) नीचे खर भाग मे नागकुमार आदि नव प्रकार के भवनवासी देवो के महान वैभवशाली (विमान) भवन है, और असुरकुमारजाति वाले भवनवासी देवो के रत्नमयी भवन दूसरे पङ्कभाग मे है ।।८–९।। चित्रा पृथ्वी के अधोभाग से दो हजार योजन नीचे

१. इमे देवा सन्ति तेन ऊर्द्ध्वाश्रिता भवन्तु ।

तक अल्पऋद्धि धारक भवनवासी देवो के शाश्वत भवन है ।।१०।। भूतल में बयालीस हजार तक महा-ऋद्धि धारक भवनवासी देवो के उत्तम भवन है, और चित्रा भूमि से नीचे एक लाख योजन तक मध्यम ऋद्धि धारक विमानवासी देवों के विपुल भवन हैं ।।११-१२।।

अब भवनवासी देवों का प्रमाण दर्शाते हैं :—

घनाङ्गुलस्य यन्मूलं प्रथमं श्रेणिसंगुणम् ।
तत्समा जातिभेदेन दशधा भावनामराः ।।१३।।

अर्थः—घनागुल के प्रथमवर्ग मूल को जगच्छ्रेणी से गुणित करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, उतने ही दश प्रकार की जाति भेद से युक्त भवनवासी देवो का प्रमाण है ।।१३।।

अब भवनवासियों के दश जातियों के नाम और उनकी कुमार संज्ञा की सार्थकता का दिग्दर्शन करते है :—

असुरानागदेवाः सुपर्णाद्वीपास्तथाब्धयः ।
विद्युतः स्तनिताख्या दिक्कुमारा अग्निसंज्ञकाः ।।१४।।
वाताभिधा इमे देवा दशभेदाः स्वजातितः ।
नाना सम्पद्युताः प्रोक्ता भावना आगमे जिनैः ।।१५।।
कुमारा इव सर्वत्र क्रीडन्त्येते ततो मताः ।
असुरादिकुमाराश्च सर्वे सार्थकनामकाः ।।१६।।

अर्थ —जिनेन्द्र भगवान ने आगम मे अनेक प्रकार की सम्पत्ति से युक्त भवनवासी देवो के असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युतकुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार नामक दश भेद कहे हैं ।।१४-१५।। ये सभी देव कुमारो के सदृश सर्वत्र क्रीडा करते हैं, इसलिये इनके असुर कुमार आदि दसो कुलो के अन्त मे कुमार शब्द सार्थक नाम-वाची है ।।१६।।

अब दसों कुलों में अवस्थित असुरकुमारादि देवों के वर्ण और चिह्न कहते हैं :-

असुराः कृष्णसद्वर्णा नागाब्धयश्च पाण्डुराः ।
स्तनिता दिक्कुमाराः स्युः सुपर्णाः काञ्चनप्रभाः ।।१७।।
विद्युद् द्वीपाग्नयो नीलवर्णा अत्यन्तसुन्दराः ।
अरुणा मरुतोऽत्रेति वर्णभेदान्विता इमे ।।१८।।

मणिर्नागस्ततो दीप्तो गरुडो गजसत्तमः ।
मकरः स्वस्तिकं वज्रं सिंहश्च कलशस्ततः ।।१९।।
तुरगोऽमूनि चिह्नानि राजन्ते मुकुटे क्रमात् ।
दशभेदानि दीप्राणि दशानां भावनात्मनाम् ।।२०।।

अर्थः—सभी असुरकुमार देव कृष्ण वर्ण के, नागकुमार और उदधिकुमार पाण्डु वर्ण के स्तनित कुमार, दिक्कुमार और सुपर्ण कुमार, काञ्चन वर्ण के, विद्युत्कुमार द्वीपकुमार एव अग्निकुमार ये सभी देव अत्यन्त सुन्दर नीलवर्ण के है और वायुकुमार के देव लालवर्ण के होते है इनमें इस प्रकार वर्ण भेद है ।।१७-१८।। दसों कुलों में उत्पन्न असुरकुमार आदि भवनवासी देवो के मुकुटों में क्रम से चूडामणि, नाग, गरुड, उत्तम हाथी, मगर, स्वस्तिक, वज्र, सिह, कलश और अश्व ये देदीप्यमान दश चिह्न सुशोभित होते है ।।१९-२०।।

अब भवनवासी देवों के भवनों की पृथक् पृथक् संख्या कहते हैं :—

असुराणां चतुःषष्टि लक्षाणि भवनानि च ।
नागानां चतुरग्राशीतिलक्षप्रमिता गृहाः ।।२१।।
द्वासप्ततिश्च लक्षाणि सुपर्णानां गृहास्ततः ।
द्वीपानामुदधीनां च विद्युतां स्तनितात्मनाम् ।।२२।।
दिगाख्यानां तथाग्नीनां प्रत्येकं भवनानि च ।
स्युः षट्सप्तति लक्षाणि वातानां गृहसत्तमाः ।।२३।।
स्युः षण्णवति लक्षाण्यमी सर्वे पिण्डिता गृहाः ।
द्वासप्ततिश्च लक्षाणि सप्तकोटियुतानि च ।।२४।।

अर्थः—असुरकुमार देवों के चौसठ लाख भवन है। नागकुमार देवो के चौरासी लाख, सुपर्णकुमार के बहत्तर लाख, द्वीपकुमार के ७६ लाख, उदधिकुमार के ७६ लाख, विद्युत्कुमार के ७६ लाख, स्तनितकुमार के ७६ लाख, दिक्कुमार के ७६ लाख, अग्निकुमार के ७६ लाख और वायुकुमार के ९६ लाख भवन है ।।२१-२३।। इन दस कुलों के सर्व भवनों का एकत्रित योग (६४ ला० + ८४ ला० + ७२ ला० + (७६ ला० × ६) + ९६ =) ७७२००००० अर्थात् सात करोड़ बहत्तर लाख है ।।२४।।

अब दश कुल सम्बन्धी बीस इन्द्रों के नाम, उनका दिशागत अवस्थान और प्रतीन्द्रों की संख्या कहते है :—

प्रथमश्चमरेन्द्राख्यो वैरोचनो द्वितीयकः ।
भूतानन्दस्तृतीयेन्द्रो धरणानन्दसंज्ञकः ।।२५।।

वेणुश्च वेणुधारी हि पूर्णो वशिष्ठनामकः ।
इन्द्रो जलप्रभाभिख्यो जलकान्त्यभिधानकः ॥२६॥

हरिषेणो हरित्कान्तोऽग्निशिखी चाग्निवाहनः ।
इन्द्रोऽमितगतिर्नाम्ना तथेन्द्रोऽमितवाहनः ॥२७॥

घोषाख्येन्द्रो महाघोषो वेलाञ्जनः प्रभञ्जनः ।
एतेऽखिलामराभ्यर्च्या दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥२८॥

असुरादिकुलानां च क्रमेण द्वि द्वि संख्यया ।
भवन्ति विंशतिश्चेन्द्राः स्त्रीमहर्द्धिसुरान्विताः ॥२६॥

दक्षिणायां दिशि स्वामी चमरेन्द्रो वसेन्महान् ।
उत्तरादिग्विभागे च वैरोचनोऽमरैः समम् ॥३०॥

एवं शेषौ पती द्वौ द्वौ दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ।
इन्द्रौ च भवतः छत्रसिंहासनाद्यलङ्कृतौ ॥३१॥

दशानामसुरादीनां द्वौ द्वौ चेन्द्रौ प्रतिस्फुटम् ।
स्यातां द्वौ द्वौ प्रतीन्द्रौ च दिव्यसम्पत्सुरावृतौ ॥३२॥

सर्वे पिण्डीकृता ज्ञेयाः प्रतीन्द्रा विंशतिप्रमाः ।
दिव्यरूपधरा दिव्याणिमाद्यष्टर्द्धिमण्डिताः ॥३३॥

अर्थ:—चमर-वैरोचन, भूतानन्द-धरणानन्द, वेणु-वेणुधारी, पूर्ण-वशिष्ठ, जलप्रभ-जलकान्त, हरिषेण-हरित्कान्त, अग्निशिखी-अग्निवाहन, अमितगति-अमितवाहन, घोष-महाघोष; वेलजन और प्रभजन ये क्रम से असुरकुमारादि दश कुलो के दो दो इन्द्र है । ये बीसो इन्द्र समस्त भवनवासी देवो से सम्मानित, दिव्य अलकारों से विभूषित, अनेक देवियो और महाऋद्धिधारी देवों से समन्वित रहते हैं ॥२५-२६॥ इनमे चमरेन्द्र दक्षिण दिशा का स्वामी होने से दक्षिण मे रहता है और वैरोचन उत्तर दिशा का स्वामी होने से अनेक देवो के साथ उत्तर मे निवास करता है ॥३०॥ इसी प्रकार छत्र, सिहासन आदि से अलकृत शेष नव कुलों के दो दो इन्द्र क्रमश: दक्षिण और उत्तर दिशा मे निवास करते है ॥३१॥ जिस प्रकार असुरकुमार आदि दश कुलों के दो दो इन्द्र होते है, उसी प्रकार दिव्य वैभव और अनेक देवो से परिवेष्ठित प्रत्येक कुल के दो दो प्रतीन्द्र होते है ॥३२॥ दिव्य रूप को धारण करने वाले और अणिमा आदि आठ दिव्य ऋद्धियो से मण्डित इन सर्व प्रतीन्द्रो की एकत्रित सख्या भी बीस ही है, ऐसा जानना चाहिए ॥३३॥

अब दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों के भवनों की भिन्न भिन्न संख्या कह कर उन भवनों का विशेष व्याख्यान करते हैं :—

प्रागुक्त भवनानां चासुरादिजाति भागिनाम् ।
मध्ये स्युश्चमरेन्द्रस्य रत्नोच्चभवनान्यपि ।।३४।।
चतुस्त्रिंशच्चलक्षाणि भूतानन्दस्य सद्गृहाः ।
सन्ति लक्षाश्चतुश्चत्वारिंशद्वेणोर्गृहाः परे ।।३५।।
अष्टात्रिंशच्च लक्षाणि पूर्णाख्यस्य सुरेशिनः ।
जलप्रभाख्यशक्रस्य हरिषेणामरेशिनः ।।३६।।
ततोऽग्निशिखिनश्चामितगतेस्त्रिदशेशिनः ।
घोषेन्द्रस्य पृथग्भूताः प्रत्येकं सन्ति सद्गृहाः ।।३७।।
चत्वारिंशच्च लक्षाणि वेलाञ्जनस्य सन्ति च ।
पञ्चाशल्लक्षसंख्यानि महान्ति भवनानि च ।।३८।।
वैरोचनस्य धामानि त्रिंशल्लक्षाणि सन्ति च ।
धरणानन्दनाम्नश्चत्वारिंशल्लक्षसद्गृहाः ।।३९।।
स्युर्वेणुदारिणो लक्षचतुस्त्रिंशत्प्रमा गृहाः ।
वशिष्ठाह्वयशक्रस्य जलकान्ति सुरेशिनः ।।४०।।
हरिकान्तामरेन्द्रस्याग्निवाहनामरेशिनः ।
तथैव ह्यमिताद्यन्तवाहनत्रिदशेशिनः ।।४१।।
महाघोषस्य विद्यन्ते प्रत्येकं भवनानि च ।
षड्त्रिंशल्लक्षसंख्यानि प्रभञ्जनामरेशिनः ।।४२।।
भवनानि च षड्चत्वारिंशल्लक्षाणि सन्ति वै ।
इत्युक्तसंख्ययुक्तानि नानारत्नमयानि च ।।४३।।
एकैकजिनचैत्यालयालङ्कृतोन्नतान्यपि ।
दिव्यैश्चैत्यद्रुमैर्मानस्तम्भैः कूटध्वजोत्करैः ।।४४।।
भूषितानि भृतानि स्त्रीवृन्दसैन्यामरादिभिः ।
गीतनर्तनवाद्यादि जिनार्चोत्सवकोटिभिः ।।४५।।
रम्याणि विस्फुरच्छुद्धमणिभित्तिमयान्यपि ।
दिव्यामोदप्रपूर्णानि सर्वाक्षसुखदानि वै ।।४६।।

इत्युक्तवर्णनैश्चान्यैरागमोक्तसुवर्णनैः ।
राजन्ते भवनान्युच्चैर्दिव्यसम्पत्समुच्चयैः ।।४७।।
सर्वाणि च समस्तानां दक्षिणाशामरेशिनाम् ।
दशानां चोत्तरेन्द्राणां भोग्यानि पुण्यपाकतः ।।४८।।

अर्थः—पूर्व मे असुरकुमार आदि दश कुलो के आश्रित भवनो की जो सख्या कही है, उन्ही के मध्य मे इन्द्रो के भवन अवस्थित हैं। रत्नो से निर्मित चमरेन्द्र के उच्च भवनों की संख्या ३४ लाख है। भूतानन्द के भवनो की सख्या ४४ लाख, वेणु के ३८ लाख, पूर्ण के ४० लाख, जलप्रभ इन्द्र के ४० लाख, हरिषेण के ४० लाख, अग्निशिखी के ४० लाख, अमितगति के ४० लाख और घोष नामक इन्द्र के भी ४० लाख भवन है, तथा वेलाञ्जन के उत्तम भवन ५० लाख है।।३४-३८।। उत्तरेन्द्रो मे वैरोचन के भवनो की सख्या ३० लाख, धरणानन्द के ४० लाख, वेणुधारी के ३४ लाख, वशिष्ठ इन्द्र क ३६ लाख, जलकान्त के ३६ लाख, हरिकान्त के ३६ लाख, अग्निवाहन के ३६ लाख, अमितवाहन के ३६ लाख, महाघोष इन्द्र के ३६ लाख और प्रभंजन इन्द्र के ४६ लाख भवन है। इस प्रकार उपर्युक्त (७७२ लाख) सख्या से युक्त ये सभी भवन रत्नमय है।।३९-४३।। ये प्रत्येक भवन उन्नत चैत्यालयों से अलकृत हैं, दिव्य चैत्यवृक्षों, मानस्तम्भो, कूटो और ध्वजा समूहो से विभूषित है, देवागनाओ के समूहो से एव देवो की सैन्य समूहो से भरे रहते है, गीत, नृत्य एव वाद्य आदि से और जिन पूजन के करोडो उत्सवो से रम्य हैं, देदीप्यमान उत्तम मणियो की भित्तियो से निर्मित है, दिव्य आमोदो से परिपूर्ण है और पाँचो इन्द्रिय के सम्पूर्ण सुखो को देने वाले हैं।।४४-४६।। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनो से, आगमोक्त एवं अन्य वर्णनो से तथा अति विशाल दिव्य सम्पत्ति समूहो से वे दक्षिणदिशागत सम्पूर्ण भवन अत्यन्त शोभायमान होते है।।४७।। यह सब वर्णन दक्षिण दिशागत समस्त (१०) इन्द्रो का है, उत्तर दिशागत दसो इन्द्रो के भी पूर्व पुण्य के फल से सर्व भोग्य पदार्थ इसी प्रकार जानना चाहिए।।४८।।

अब उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भवनों का प्रमाण तथा जिनेन्द्र प्रतिमा युक्त दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन करते है :—

जम्बूद्वीपप्रमव्यासा जघन्या सद्गृहा मताः ।
संख्ययोजनविस्ताराः केचिच्च मध्यमाः शुभाः ।।४९।।
असंख्ययोजनव्यासा उत्कृष्टा भवनोत्कराः ।
क्रमेणैतेऽसुरादीनां दशधा चैत्यपादपाः ।।५०।।
अश्वत्थः सप्तपर्णाख्यः शाश्वत. शाल्मली द्रुमः ।
जम्बूश्च वेतसोवृक्षोऽथप्रियङ्गुः पलाशकः ।।५१।।

शिरीषाख्यः कदम्बश्च राजद्रुम इमे शुभाः ।
रत्नपीठाश्रिता रत्नमया रत्नांशुदीपिताः ॥५२॥
असुरादिदशानां दशविधा चैत्यपादपाः ।
रत्नोपकरणोपेता दीप्ता भवन्ति शाश्वताः ॥५३॥
मूलेऽमीषां चतुर्दिक्षुप्रत्येकं सुरपूजिताः ।
पञ्च पञ्च प्रमाः सन्ति जिनेन्द्रप्रतिमाः पराः ॥५४॥

अर्थ:—भवनवासियो के जघन्य भवनों का व्यास जम्बूद्वीप प्रमाण अर्थात् एक लाख योजन है। मध्यम भवनों का व्यास संख्यात योजन और उत्कृष्ट भवनों का विस्तार असख्यात योजन प्रमाण है। असुरकुमार आदि दस कुलों के क्रम से अश्वत्थ-पीपल, सप्तपर्ण, शाल्मलि-सेमल, जम्बू-जामुन, वेतस-वेत का वृक्ष, प्रियंगु, पलाश-ढाक, शिरीष-सिरस, कदम्ब और राजद्रुम-कृतमाल ये दश चैत्यवृक्ष है। रत्नपीठ पर स्थित, रत्नमय, रत्नकिरणो से देदीप्यमान, प्रकाशमान रत्न के उपकरणों से युक्त, अत्यन्त रमणीक और शाश्वत ये दस प्रकार के चैत्यवृक्ष असुरकुमार आदि दस कुलो में से क्रमशः प्रत्येक के एक एक है ॥४९-५३॥ इन प्रत्येक चैत्यवृक्षो के मूल में चारो दिशाओ में से प्रत्येक दिशा मे देव समूहो से पूज्य परमोत्कृष्ट पाच पाच जिनेन्द्र प्रतिमाएँ है ॥५४॥

अब मानस्तम्भों का वर्णन करते है :—

पञ्चपञ्चप्रमाणाः स्युर्मानस्तम्भा महोन्नताः ।
रत्नपीठाश्रिता हेमघण्टाध्वजादि शोभिताः ॥५५॥
तीर्थेशप्रतिमासारैः शिरोभागविराजिताः ।
मणिदीप्ताश्च सर्वेषां भवनानां दिशं प्रति ॥५६॥

अर्थ:—सम्पूर्ण भवनों (चैत्यवृक्षों) को प्रत्येक दिशा में तीर्थंकरों की सर्वोत्कृष्ट प्रतिमाओं से जिनके शिरोभाग विभूषित है ऐसे देदीप्यमान मणियों से निर्मित, स्वर्णमय घण्टाओं एवं ध्वजाओं से सुशोभित, रत्नपीठ पर स्थित महा उन्नत पाँच पाँच मानस्तम्भ है ॥५५-५६॥

अब इन्द्रादिक के भेद कहते है :—

प्रतीन्द्रो लोकपालाश्च त्रायस्त्रिंशसुरास्ततः ।
सामान्यकाह्वया अङ्गरक्षाश्च परिषत्सुराः ॥५७॥
सप्तानीकामरा वै प्रकीर्णका आभियोगिकाः ।
किल्विषिका इति प्रोक्ता दशभेदाः परिच्छदाः ॥५८॥

अर्थः—प्रत्येक कुलो मे एक एक इन्द्र के परिवार मे प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंश, सामानिक, अंगरक्षक, तीन प्रकार के परिषद, अनीक देव, प्रकीर्णक देव आभियोग्य और किल्विषिक ये दस दस भेद होते है ।।५७–५८।।

अब इन्द्रादिक पदवियों के दृष्टांत कहते हैं :—

एकैकस्यापि शक्रस्य पृथग्भूताः स्वपुण्यजाः ।
इन्द्राः सर्वेऽमरैः सेव्या राजतुल्या महर्द्धिकाः ।।५९।।
युवराजसमा विश्वे प्रतीन्द्राः सुरसेविताः ।
स्वप्रधानसमा लोकपाला देवाः प्रकीर्तिताः ।।६०।।
पुत्रादिसमसस्नेहास्त्रायस्त्रिंशसुरा मताः ।
मान्यपात्रसमानाः स्युः सामान्यकाख्यनिर्जराः ।।६१।।
अङ्गरक्षसमा अङ्गरक्षा इन्द्रान्तर्वर्तिनः ।
अन्तर्मध्यान्तभेदेन त्रिविधाः परिषत्सुराः ।।६२।।
सेनातुल्या अनीकाः प्रकीर्णका नागरोपमाः ।
भृत्यवाहनसादृश्या आभियोगिक निर्जराः ।।६३।।
स्वपापपुण्यभोक्तारः किल्विषिका इवान्त्यजाः ।
इत्यमी कार्यकर्तार इन्द्राणां च पृथग्विधाः ।।६४।।

अर्थः—अपने अपने पुण्य कर्मोदय से एक एक इन्द्र के पृथक् पृथक् प्रतीन्द्र आदि दस दस प्रकार के देव होते हैं । इनमे सर्व देवो से सेव्यमान महाऋद्धि का धारक इन्द्र राजा सदृश होता है। सर्व प्रतीन्द्र युवराज सदृश, सर्व लोकपाल मन्त्री सदृश, सर्व त्रायस्त्रिंश देव स्नेह के भाजन स्वरूप पुत्र आदि के सदृश, सर्व सामानिक देव मान्यपात्र अर्थात् सम्माननीय व्यक्तियो सदृश, इन्द्र के समीप रहने वाले अगरक्षक देव राजाओ के अगरक्षक सदृश, तीनो प्रकार के पारिषद् देव, राजा की अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य सभा के सदृश, अनीक जाति के देव सेना सदृश, प्रकीर्णक देव नागरिक-प्रजा सदृश, आभियोग्य देव दास एव सवारी सदृश और किल्विषिक जाति के देव चाण्डालो आदि के सदृश होते हैं। अपने अपने पाप और पुण्य के फलो को भोगते हुये ये सभी देव इन्द्र का पृथक् पृथक् कार्य करते है ।।५९–६४।।

अब इन्द्रादिक पाँच प्रकार के देवों में विभूति आदि की समानता-असमानता दर्शाते हुये चारों लोकपालों का अवस्थान कहते हैं :—

इन्द्रतुल्यः प्रतीन्द्रः स्यात्त्रायस्त्रिंश सुरास्तथा ।
लोकपालाश्च सामान्यका इमे त्रिविधामराः ।।६५।।

विभूत्येन्द्र समानाः स्युः किञ्चिदूनातपत्रकाः ।
सोमः पूर्वदिशः स्वामी दक्षिणाशापतिर्यमः ।।६६।।

वरुणः पश्चिमाशास्थः कुवेर उत्तराधिपः ।
चत्वारोऽमी हि दिग्नाथा जिनाङ्घ्रिनम्रमौलयः ।।६७।।

अर्थः—त्रायस्त्रिंश देव, लोकपाल और सामानिक ये तीन प्रकार के देव विभूति (आयु, परिवार, ऋद्धि और विक्रिया) आदि में इन्द्र के सदृश ही होते है। केवल इनके छत्र नही होता, किन्तु प्रतीन्द्र इन्द्र तुल्य ही होते है। जिनेन्द्र प्रभु के चरणों में नम्र है मुकुट जिनके ऐसे चारों लोकपालो में से सोम पूर्वदिशा के, यम दक्षिण के, वरुण पश्चिम के और कुबेर उत्तर दिशा के स्वामी है।।६५–६७।।

अब प्रत्येक इन्द्रों के त्रायस्त्रिंश सामानिक और अंगरक्षक देवों की संख्या कहते हैं :—

सर्वेन्द्राणां त्रयस्त्रिंशत् त्रायस्त्रिंशसुराः पृथक् ।
सामानिकाश्चतुःषष्टिसहस्राश्चमरस्य च ।।६८।।

सन्ति वैरोचनेन्द्रस्य सहस्राः षष्टिसम्मिताः ।
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि भूतानन्दस्य सन्ति ते ।।६९।।

शेषसप्तदशानां धरणानन्दादिकात्मनाम् ।
प्रत्येकं सन्ति सामानिकाः पञ्चाशत्सहस्रकाः ।।७०।।

चमरेन्द्रस्य पार्श्वस्था विद्यन्ते तनुरक्षकाः ।
षट्पञ्चाशत्सहस्राग्रलक्षद्वय प्रमाणकाः ।।७१।।

भवन्त्येवाङ्गरक्षाश्च वैरोचनसुरेशिनः ।
चत्वारिंशत्सहस्राग्रद्विलक्षसंख्यसम्मिताः ।।७२।।

भूतानन्दसुरेन्द्रस्य भवन्ति चाङ्गरक्षकाः ।
चतुर्विंश सहस्राधिकलक्षद्वयसंख्यकाः ।।७३।।

धरणानन्दमुख्यानां शेषसप्तदशात्मनाम् ।
प्रत्येकमङ्गरक्षाः स्युर्द्विलक्षप्रमिताः पृथक् ।।७४।।

अर्थ —सभी इन्द्रो के त्रायस्त्रिंश देव पृथक् पृथक् तेतीस ही होते हैं। चमरेन्द्र की सभा मे सामानिक देवो की सख्या ६४००० है। वैरोचन के ६००००, भूतानन्द के ५६००० और धरणानन्द आदि अवशेप सत्रह इन्द्रो मे से प्रत्येक इन्द्र के सामानिक देवों की सख्या ५०, ५० हजार प्रमाण है। ॥६८-७०॥ चमरेन्द्र के अङ्गरक्षक देवो का प्रमाण दो लाख ५६ हजार, वैरोचन के दो लाख ४० हजार, भूतानन्द के दो लाख २४ हजार और धरणानन्द आदि सत्रह इन्द्रों के पृथक् पृथक् दो, दो लाख तनुरक्षक देव होते है ॥७१-७४॥

अब पारिषद देवों की संख्या कहते है :—

चमराख्यसुरेशस्य चान्तःपरिषदि स्फुटम् ।
भवन्ति परिषद्देवा अष्टाविंशसहस्रकाः ॥७५॥
मध्यपरिषदि प्रोक्ता स्त्रिंशत्सहस्रनिर्जराः ।
बाह्य परिषदिद्वात्रिंशत्सहस्रामरा मताः ॥७६॥
वैरोचनस्य चान्तः परिषदि प्रोदिताः सुराः ।
षड्विंशति सहस्राणि शक्राङ्घ्रिनम्रमस्तकाः ॥७७॥
मध्यपरिषदिख्यातास्तेऽष्टाविंशसहस्रकाः ।
बाह्य परिषदि प्रोक्तास्त्रिंशत्सहस्र निर्जराः ॥७८॥
भूतानन्दस्य चान्तः परिषदि श्रीजिनोदिताः ।
आद्यन्त परिषद्देवाः षट्सहस्रप्रमाणकाः ॥७९॥
सुरा अष्टसहस्राः स्युर्मध्यपरिषदिस्थिताः ।
सहस्रदशगीर्वाणा बाह्यापरिषदिस्थिताः ॥८०॥
शेषाणां धरणानन्दादि सप्तदशभागिनाम् ।
चतुःसहस्रदेवाः पृथगन्तः परिषत्स्थिताः ॥८१॥
षट्सहस्रप्रमा देवा मध्यपरिषदि स्मृताः ।
अष्टौ सहस्रगीर्वाणा बाह्यपरिषदि श्रिताः ॥८२॥
अन्तः परिषदो देव समित्याख्योऽस्ति नायकः ।
मध्यापरिषदः स्वामी चन्द्रदेवोऽमरावृतः ॥८३॥
बाह्या परिषदो मुख्यो यदुनामामरोत्तमः ।
इत्युक्ता परिषत्संख्या शक्राणामागमे जिनैः ॥८४॥

अर्थः—चमरेन्द्र की अन्तः परिषद् में पारिषद् देवों की सख्या २८ हजार, मध्य परिषद् मे ३० हजार और बाह्य परिषद् में ३२ हजार है ।।७५–७६।। वैरोचन के अन्तः परिषद् के देव २६ हजार, मध्य परिषद् के इन्द्र के चरणों में नतमस्तक होने वाले पारिषद देव २८ हजार और बाह्य परिषद् के देव ३० हजार कहे गये है ।।७७–७८।। भूतानन्द के अन्तः परिषद् के देव जिनेन्द्र भगवान् ने छह हजार मध्य परिषद् के पारिषद् देव आठ हजार और बाह्य परिषद् के दश हजार देव कहे है ।।७९–८०।। धरणानन्द आदि सत्रह इन्द्रो के पृथक् पृथक् अन्तः परिषद् के देव चार, चार हजार, मध्य परिषद् के छह, छह हजार और बाह्य परिषद के पारिषद देव आठ-आठ हजार है ।।८१–८२।। भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा आगम मे अन्तः परिषद् के अधिनायक देव का नाम समित्, मध्यपरिषद् के अधिप देव का नाम चन्द्र और बाह्य परिषद् के अधिनायक देव का नाम यदु कहा है । आगम मे प्रत्येक इन्द्रो के पारिषद देवों की संख्या भी पूर्वोक्त प्रकार ही कही गई है ।।८३–८४।।

अब अनीक देवों के भेद और चमरेन्द्र के महिषों की संख्या कहते हैं :—

महिषाः प्रवरा अश्वा रथा गजाः पदातयः ।
गन्धर्वा वरनर्तक्य इमे सप्तविधा मताः ।।८५।।

अनीकाः पुण्यजाः सप्त सप्तकक्षान्विताः पृथक् ।
प्रत्येकं प्रीतिदाः प्रीता असुरेन्द्रस्य सर्वदा ।।८६।।

नावश्च गरुडा हस्तिनो महामकरास्तथा ।
उष्ट्राश्च खड्गिनः सिंहाः शिविका तुरगा इमे ।।८७।।

नवभेदा अनीकाः प्रत्येकं सुरेन्द्रपुण्यजाः ।
सुरविक्रियजाः सप्त सप्तकक्षाङ्किताः शुभाः ।।८८।।

मुख्या आद्याश्च नागादीनां नवानां सुधाशिनाम् ।
अनुक्रमेण शेषाणां शक्रप्रीतिकराः पराः ।।८९।।

शेषा ये चासुरेन्द्रस्य प्रागुक्तास्तुरगादयः ।
षडनीकास्त एव स्युर्नागादीनां यथाक्रमम् ।।९०।।

चमरस्यादिमेऽनीके चतुःषष्टिसहस्रकाः ।
महिषाः सन्ति चोत्तुङ्गा दीप्ताङ्गाः सुरमण्डिताः ।।९१।।

तेभ्यः शेषेषु सर्वेषु महिषानीकषट्स्वपि ।
प्रत्येकं महिषाः सन्ति द्विगुणद्विगुणप्रमाः ।।९२।।

अर्थ —असुरेन्द्र के पूर्व पुण्य के फल से उत्पन्न होने वाली, प्रीति उत्पन्न कराने वाली और पृथक् पृथक् सात-सात कक्षाओ से युक्त महिष, श्रेष्ठ अश्व, रथ, गज, पदाति, गन्धर्व और नर्तकी ये सात अनीक-सेनाएँ (देव) होती है ।।८५-८६।। अवशेष नागकुमार आदि नव भवनवासी इन्द्रो के पुण्य फल स्वरूप, देवो की विक्रिया से उत्पन्न, इन्द्रों को प्रीति उत्पन्न कराने वाली और सात-सात कक्षाओ से युक्त अनीक (सेनाएँ) होती है । इन अनीको मे प्रत्येक इन्द्र के अनुक्रम से नाव, गरुड, गज, महामत्स्य, ऊँट, खड्गी (गेडा) सिंह, शिविका और घोडा ये प्रमुख होती है, शेष छह अनीके पूर्व में जैसे असुरेद्र के क्रमश 'घोडा, रथ, हाथो आदि कहे है उसी प्रकार नागकुमार आदि नव इन्द्रो के भी यथा क्रम से जानना चाहिए । यथा—

१ असुरकुमार—महिष, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
२. नागकुमार—नाव, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
३. सुपर्णकुमार—गरुड, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
४ द्वीपकुमार—हाथी, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
५ उदधिकुमार—मगर, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
६ विद्युत्कुमार—ऊँट, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
७. स्तनितकुमार—खड्गी, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धव और नर्तकी ।
८ दिक्कुमार—सिह, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
९ अग्निकुमार—शिविका, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।
१० वायुकुमार—अश्व, घोडा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।।८५-९०।।

(असुरकुमार के) चमरेन्द्र के प्रथम अनीक मे देदीप्यमान शरीर वाले, देवताओ से मण्डित और ऊँचे ऊँचे ६४ हजार महिष है । इन्ही चमरेन्द्र की शेष छह कक्षों मे से प्रत्येक कक्ष में महिषो की सख्या का प्रमाण दूना दूना होता गया है ।।९१-९२।।

एषां सप्तमहिषानीकेषु प्रत्येकं महिषाणां संख्या प्रोच्यते :—

चमरेन्द्रस्य प्रथमे अनीके महिषाश्चतु षष्टि सहस्राणि । द्वितीये चैकलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि । तृतीये द्विलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्राणि । चतुर्थे पञ्चलक्षद्वादशसहस्राणि । पञ्चमे दशलक्ष चतुर्विंशतिसहस्राणि । षष्ठे विंशतिलक्षाष्ट चत्वारिंशत्सहस्राणि । सप्तमे अनीके महिषाश्चत्वारिंशल्लक्षषण्णवति सहस्राणि । सर्वे अमी सप्तानीकाना पिण्डीकृता: महिषाः एकाशीतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि भवन्ति ।

अर्थः—अब सात कक्षो मे से प्रत्येक कक्ष के महिषो की पृथक् पृथक् सख्या कहते हैं :—

चमरेन्द्र की प्रथम कक्ष मे ६४ हजार महिष है । द्वितीय कक्ष मे एक लाख २८ हजार तृतीय कक्ष में दो लाख ५६ हजार, चतुर्थ कक्ष मे ५ लाख १२ हजार, पञ्चम कक्ष मे १० लाख २४ हजार,

षष्ठ कक्ष में २० लाख ४८ हजार और सप्तम कक्ष में महिषों की सख्या ४० लाख ९६ हजार है। इस प्रकार चमरेन्द्र के सातों अनीकों (कक्षाओं) के महिषों का एकत्रित योग ८१ लाख २८ हजार (८१२८०००) होता है ॥

अब चमरेन्द्र के अनीकों की सम्पूर्ण संख्या और वैरोचन के महिषों की संख्या कहते हैं :—

इत्येवं महिषानीक समानास्तुरगादयः ।
प्रोक्ता गणनयाशेषाः षडनीका पृथक् पृथक् ॥९३॥
पञ्चकोटयोऽष्टषष्टिश्च लक्षाः षण्णवतिस्तथा ।
सहस्रा इति संख्याङ्कैः प्रोदिता गणना जिनैः ॥९४॥
पिण्डिता चमरेन्द्रस्य सिद्धान्ते निखिला सताम् ।
महिषाश्वादि सप्तानामनीकानां शुभाप्तये ॥९५॥
वैरोचनस्य चानीके प्रथमे महिषा मताः ।
षष्टिसहस्रसंख्याश्च तेभ्योऽनीकेषु षट्स्वपि ॥९६॥
शेषेषु महिषाः प्रोक्ता द्विगुणाद्विगुणाः पृथक् ।
पूर्ववत्पुनरेतेषां संख्या व्यासेन चोच्यते ॥९७॥

अर्थ—इसप्रकार चमरेन्द्र की सातों कक्षाओं के महिषों की जितनी संख्या कही गई है, उतनी ही संख्या अश्व आदि अवशेष छह अनीकों की पृथक् पृथक् कही गई है ॥ ९३ ॥ जिनेन्द्र भगवान ने आगम मे सज्जनों को शुभ (कल्याण) की प्राप्ति के लिये चमरेन्द्र की महिष, अश्व आदि सातों अनीकों की एकत्रित संख्या का योग पाँच करोड ६८ लाख ९६ हजार (५६८९६०००) कहा है ॥९४–९५॥ वैरोचन की प्रथम अनीक में महिषों की संख्या ६० हजार है। इनके शेष छह कक्षों में महिषों की पृथक् पृथक् सख्या दुगनी दुगनी है, जो पृथक् पृथक् कही जाती है ॥९६–९७॥

अब वैरोचन की प्रत्येक कक्षाओं की भिन्न भिन्न संख्या कहते हैं :—

वैरोचनेन्द्रस्य प्रथमे अनीके महिषाः षष्टिसहस्राणि। द्वितीये चैकलक्षविंशतिसहस्राणि। तृतीये द्विलक्षचत्वारिंशत्सहस्राणि। चतुर्थे चतुर्लक्षाशीतिसहस्राणि। पञ्चमे नवलक्षषष्टिसहस्राणि। षष्ठे एकोनविंशतिलक्षविंशति सहस्राणि। सप्तमे अनीके महिषा. अष्टत्रिंशल्लक्ष चत्वारिंशत्सहस्राणि। सर्वे एकत्रीकृताः सप्तानीकाना महिषाः षट्सप्तति लक्षविंशति सहस्राणि भवेयुः।

अर्थः—वैरोचनेन्द्र की प्रथम अनीक में ६० हजार महिष, द्वितीय में एक लाख २० हजार, तृतीय में दो लाख ४० हजार, चतुर्थ में ४ लाख ८० हजार, पंचम में ९ लाख ६० हजार, षष्ठ में १९

लाख २० हजार और सप्तम अनीक मे ३८ लाख ४० हजार महिष है। इन सातो अनीकों के एकत्रित महिषों का योग ७६ लाख २० हजार (७६२००००) है।

इत्थंभूता बुधैर्ज्ञेया समाना गणनाखिला ।
सख्या च शेषषण्णां हयश्वाद्यनीकात्मनां पृथक् ॥६८॥
पञ्चकोटचस्त्रयस्त्रिशल्लक्षास्तथा सहस्रकाः ।
चत्वारिंशदिति ज्ञेया संख्या पिण्डीकृताखिला ॥६९॥
सप्तानां महिषादीनां सैन्यानां श्रीजिनागमे ।
पुण्योदयेन जातानां वैरोचनामरेशिनः ॥१००॥
भूतानन्दस्य नावः स्युरनीके प्रथमेऽपराः ।
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि ताभ्यः क्रमेण पूर्ववत् ॥१०१॥
द्विगुणा द्विगुणा नावः शेषानीकेषु षट्स्वपि ।
सुखबोधाय चैतेषां पृथक् संख्या निगद्यते ॥१०२॥

अर्थ.—इस प्रकार विद्वानो के द्वारा शेप अश्व आदि छह अनीको की पृथक् पृथक् सख्या महिषो की सख्या के सदृश ही जानना चाहिये ॥६८॥ जिनागम मे वैरोचन इन्द्र के पुण्योदय से उत्पन्न होने वाले महिष आदि सातो अनीको का एकत्रित प्रमाण पाँच करोड तेतीस लाख चालीस हजार (५३३४००००) जानना चाहिए ॥६९-१००॥ भूतानन्द इन्द्र के प्रथम अनीक में ५६००० नाव हैं, इसके बाद अवशेष छह कक्षो मे क्रम से यह सख्या दूनी दूनी होती गई है। सुख पूर्वक ज्ञान कराने के लिये यह सख्या पृथक् पृथक् कहते है ॥१०१-१०२॥

अब भूतानन्द की सातों अनीकों में नाव की संख्या पृथक् पृथक् कहते हैं :—

भूतानन्देन्द्रस्य प्रथमानीके नावः षट्पञ्चाशत्सहस्राणि। द्वितीयानीके चैकलक्षद्वादशसहस्राणि। तृतीये द्विलक्षचतुर्विंशतिसहस्राणि। चतुर्थे चतुर्लक्षाष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि। पञ्चमे अष्टलक्षषण्णवतिसहस्राणि। षष्ठे सप्तदशलक्षद्विनवतिसहस्राणि। सप्तमे सैन्ये नाव. पञ्चत्रिंशल्लक्षचतुरशीतिसहस्राणि एताः सप्तानीकाना सर्वा नाव एकत्रीकृताः एकसप्ततिलक्षद्वादशसहस्राणि भवन्ति।

अर्थ—भूतानंद की प्रथम कक्ष अनीक की प्रथम कक्ष मे ५६ हजार नाव है, द्वितीय मे एक लाख बारह हजार, तृतीय मे दो लाख २४ हजार, चतुर्थ मे ४ लाख ४८ हजार, पचम मे ८ लाख ९६ हजार, षष्ठ में १७ लाख ९२ हजार और सप्तम अनीक में ३५ लाख ८४ हजार नाव है। इन सातो कक्षों की सर्व नावो का एकत्रित योग ७१ लाख १२ हजार (७११२०००) है।

अब भूतानन्द की शेष अनीकों की एवं धरणानन्द की प्रथम अनीक की संख्या कहते हैं :—

षण्णामश्वादिसैन्यानां शेषाणां नौसमा मता ।
संख्या पृथक् पृथग् भूता नर्तक्यन्ता न संशयः ॥१०३॥
चतस्रः कोटयो लक्षाः सप्ताग्रनवतिप्रमाः ।
सहस्राश्चतुरग्राशीतिश्चैषां पिण्डिताखिला ॥१०४॥
सतां संख्या मता सप्तसैन्यानां श्रीजिनेशिना ।
पूर्वपुण्योदयोत्थानां भूतानन्दसुरेशिनः ॥१०५॥
शेषसप्तदशानां धरणानन्दादिकात्मनाम् ।
अनीके प्रथमे नौप्रमुखानि वाहनानि च ॥१०६॥
प्रागुक्तानि पृथक् पञ्चाशत्सहस्राणि सन्ति वै ।
तेभ्यः संख्यान्यसैन्यानां द्विगुणा द्विगुणा पृथक् ॥१०७॥

अर्थः—भूतानन्द इन्द्र की अश्व से लेकर नर्तकी पर्यन्त की शेष छह अनीकों का पृथक् पृथक् प्रमाण नाव के प्रमाण सदृश ही है, इसमे सशय नही ॥ १०३ ॥ जिनेन्द्र भगवान् ने भूतानन्द इन्द्र के पूर्व पुण्योदय से उत्पन्न सातों अनीको की एकत्रित सख्या चार करोड सतान्नवे लाख चौरासी हजार (४९७८४०००) प्रमाण कही है ॥१०४–१०५॥ धरणानन्द आदि अवशेष सत्रह इन्द्रों के पूर्व कही गई नौ पृथक् पृथक् प्रमुख अनीकों की प्रथम कक्ष में वाहनो की सख्या पचास हजार प्रमाण है, इनसे आगे आगे अवशेष छह कक्षों में दूनी दूनी कही गई है ॥१०६–१०७॥

अमीषां विस्तरेण बालावबोधाय व्याख्यानं क्रियते :—

धरणानन्दादि शेष सप्तदशेन्द्राणा नौगरुडादिप्रागुक्तवाहनानि क्रमात्-प्रथमे अनीके पञ्चाशत्-सहस्राणि । द्वितीये चैकोलक्षः । तृतीये द्वौ लक्षौ । चतुर्थे चत्वारो लक्षाः । पञ्चमे अष्टौ लक्षाः । षष्ठे षोडशलक्षाः । सप्तमे द्वात्रिंशल्लक्षाणि नौ गरुडादि वाहनानि सैन्ये भवन्ति । इमानि सर्वाणि नौ प्रमुखवाहनानि सप्तानीकानां पिण्डीकृतानि प्रतिशक्र त्रिषष्टिलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि भवेयुः ।

अब इनका पृथक् पृथक् प्रमाण कहते हैं :—

अर्थः—धरणानन्द आदि अवशेष सत्रह इन्द्रो के पूर्व कहे हुये नाव, गरुड़ आदि वाहन क्रम से प्रथम अनीक के प्रथम कक्ष मे ५० हजार, द्वितीय मे एक लाख, तृतीय में दो लाख, चतुर्थ में ४ लाख, पंचम में ८ लाख, षष्ठ में १६ लाख और सप्तम मे नाव एव गरुड आदि वाहनों की संख्या ३२ लाख

प्रमाण है। इस प्रकार एक एक इन्द्र के पास नाव है प्रमुख जिनमें ऐसे सातों वाहनो का एकत्रित प्रमाण त्रेसठ लाख पचास हजार (६३५००००) है।

अब प्रत्येक इन्द्र की अनीकों का एकत्रित योग और उनके महत्तर आदि कहते हैं:-

षट्शेषाश्वादिकानीकानां संख्यागणना समा ।
आद्यानीकेन विज्ञेया विशेषान्तरवर्जिता ॥१०८॥
चतुःकोटयश्चतुश्चत्वारिंशल्लक्षाः सहस्रकाः ।
पञ्चाशच्चेति विज्ञेया संख्या गणितकोविदैः ॥१०९॥
सर्वैकत्रीकृता सप्तानीकानां वासवं प्रति ।
सप्त सप्त पृथक् कक्षायुक्तानां प्रवरागमे ॥११०॥
षण्णां क्रमाद्यनीकानां स्वामी महत्तरोऽमरः ।
नर्तकोनामनीकेऽन्त्ये देवीमहत्तरी प्रभुः ॥१११॥
देवा· प्रकीर्णका आभियोग्याः किल्विषिकाः पृथक् ।
स्वल्पसम्पत्सुखोपेताः संख्यातीताः स्मृता जिनैः ॥११२॥

अर्थः—अश्व आदि छह अनीको की सख्या का प्रमाण प्रथम अनीक प्रमाण ही जानना चाहिए, इसमें कोई अन्तर नही है ॥ १०८ ॥ जिनागम मे गणितज्ञ पुरुषो के द्वारा सात सात कक्षाओ से युक्त सातों अनीको का पृथक् पृथक् एकत्रित योग चार करोड चवालीस लाख पचास हजार (४४४५००००) कहा गया है, यह प्रमाण एक एक इन्द्र का अलग अलग है ॥ १०९-११० ॥ क्रम से छह अनीकों के स्वामी महिष, घोडा, रथ, गज, पयादे और गन्धव महत्तर देव है, तथा नृत्यकी नामक सप्तम अनीक की स्वामी महत्तरी (प्रधान) देवी होती है ॥ १११ ॥ प्रत्येक इन्द्र के पास अल्प सम्पत्ति और अल्प सुख से युक्त प्रकीर्णक आभियोग्य और किल्विषिक जाति के पृथक् पृथक् असख्यात असख्यात देव होते हैं, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है ॥११२॥

अब असुरकुमारादि देवों की देवांगनाओं, वल्लभिकाओं और विक्रिया देवांगनाओं का प्रमाण कहते हैं :—

असुराणां च षट्पञ्चाशत्सहस्राणि योषितः ।
देव्यो वल्लभिकाः सन्ति सहस्रषोडशप्रमाः ॥११३॥
दिव्याः पञ्चमहादेव्यः पञ्चेन्द्रियसुखप्रदाः ।
नागानां च स्त्रियः पञ्चाशत्सहस्रप्रमास्तथा ॥११४॥

प्रीता वल्लभिकादेव्यः सहस्रदशसम्मिताः ।
दिव्यरूपा महादेव्यः पञ्चशर्मादिखानयः ॥११५॥
सुपर्णानां चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रदेवताः ।
देव्यो वल्लभिका रम्याश्चतुःसहस्रसम्मिताः ॥११६॥
सन्ति पञ्च महादेव्यो रूपादिरसखानयः ।
शेष द्वीपादिसप्तानामिन्द्रादीनां सुराङ्गनाः ॥११७॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि प्रत्येकं चारुमूर्तयः ।
तथा वल्लभिका देव्यो द्विसहस्रप्रमाः प्रियाः ॥११८॥
रम्याः पञ्चमहादेव्यो मनोनयनवल्लभाः ।
असुरादि त्रयाणामेकैका देवी निजेच्छया ॥११९॥
विक्रियर्द्ध्या सहस्राष्टदिव्यरूपाणि योषिताम् ।
विकरोति विनामूलशरीरं च पृथक् पृथक् ॥१२०॥
शेषद्वीपादि सप्तानामेकैका देवता क्षणात् ।
प्रत्येकं षट्सहस्राणि स्त्रीरूपाणि सृजेत्स्वयम् ॥१२१॥

अर्थः—असुरकुमारो के ५६००० देवांगनाएँ, १६००० वल्लभिकाएँ और पाँचों इन्द्रियो को सुख प्रदान करने वाली पाच महादेवियाँ होती है। नागकुमारों के ५०००० देवांगनाएँ, १०००० वल्लभिकाएँ और पंचेन्द्रियो के सुख की खान स्वरूप, दिव्यरूप धारण करने वाली पांच महादेवियाँ है ॥११३-११५॥ सुपर्णकुमार देवों के ४०००० देवांगनाएँ, अत्यन्त रम्य ४००० वल्लभिकाएँ और रूप एव रस की खान स्वरूप पाँच महादेवियाँ हैं। द्वीपकुमार आदि शेष सात इन्द्रों में से प्रत्येक इन्द्र की देवियाँ ३२०००; सुन्दर आकृति से युक्त वल्लभिकाएँ २००० और मन एवं नेत्रों को प्रिय लगने वाली अत्यन्त रम्य महादेवियाँ पाँच होती हैं। असुरकुमार, नागकुमार और सुपर्णकुमार इन्द्रो की एक एक देवी अपनी इच्छा से मूल शरीर को छोड कर पृथक् पृथक् दिव्य रूप को धारण करने वाली आठ-आठ हजार देवांगना रूप विक्रिया करती है। शेष द्वीपकुमार आदि सात इन्द्रो की एक एक देवी अपनी इच्छा से मूल शरीर को छोडकर पृथक् पृथक् छह छह हजार विक्रिया रूप का सृजन करती हैं ॥११६-१२१॥

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के पारिषद, अंगरक्षक और अनीक आदि देवांगनाओं का प्रमाण कहते हैं :—

चमरेन्द्रस्य चान्तःपरिषत्स्थित सुधाभुजः ।
एकैकस्य पृथक् सन्ति देव्यः सार्धशतद्वयम् ॥१२२॥

द्वितीया परिषद्देवस्य स्त्रियो द्विशतप्रमाः ।
तृतीया परिषद् गीर्वाणस्य सार्धशतस्त्रियः ॥१२३॥
वैरोचनस्य चान्तः परिषत्स्थितामृताशिनः ।
एकैकस्य पृथग्भूता देव्यस्त्रिशतसम्मिताः ॥१२४॥
द्वितीया परिषत्स्थस्य सार्धद्विशतयोषितः ।
तृतीया परिषत्स्थस्य शतद्वयसुराङ्गनाः ॥१२५॥
नागेन्द्रस्यादिमायां परिषद्यवस्थितस्य च ।
एकैक निर्जरस्य प्रत्येकं देव्यः शतद्वयम् ॥१२६॥
मध्यमायां सुरैकस्य षष्टयग्रशतयोषितः ।
अन्तिमायां च ताश्चत्वारिंशदग्रशतस्त्रियः ॥१२७॥
सुपर्णस्यादिमायां परिषद्यप्यमरस्य च ।
एकैकस्याङ्गनाः प्रत्येकं षष्टयग्रशतप्रमाः ॥१२८॥
मध्यमायां च चत्वारिंशद्युक्तशतयोषितः ।
अन्तिमायां सुरैकस्य विंशत्यग्रशतस्त्रियः ॥१२९॥
शेषद्वीपादिसप्तानामन्तः परिषदि स्फुटं ।
देवैकैकस्य चत्वारिंशत्संयुक्तशताङ्गनाः ॥१३०॥
मध्यमापरिषत्स्थस्य विंशत्यग्रशताङ्गनाः ।
अन्तिमा परिषद्देवैकस्य सन्ति शतस्त्रियः ॥१३१॥
सेनामहत्तराणां चाङ्गरक्षाणां सुराङ्गनाः ।
प्रत्येकं शतसंख्याः स्युः स्वपुण्यपरिपाकजाः ॥१३२॥
सैन्यकानां च पञ्चाशत्स्त्रियः प्रत्येकमञ्जसा ।
सर्वनिकृष्टदेवानां स्युर्द्वात्रिंशत्सुराङ्गनाः ॥१३३॥

अर्थः—चमरेन्द्र की अन्तः परिषद् में जितने देव है, उनमे एक एक देव की पृथक् पृथक् डेढ, डेढ सौ (१५०) देवियाँ है ॥१२२॥ द्वितीय परिषद् के देवो के दो, दो सौ (२००) और तृतीय परिषद के देवो के साढे तीन, साढे तीन (३५०) सौ देवियाँ है ॥ १२३ ॥ वैरोचन इन्द्र की अन्तः परिषद् मे जितने देव हैं, उनमे एक एक देव के पृथक् पृथक् तीन, तीन सौ (३००) देवियाँ हैं ॥१२४॥ द्वितीय परिषदस्थ देवों मे प्रत्येक के पास ढाई, ढाई सौ (२५०) देवियाँ हैं और तृतीय परिषद् के

पारिषदों के पास दो, दो सौ देवियाँ है ।।१२५।। नागेन्द्र की प्रथम परिषदस्थ पारिषद देवों में एक एक देव के अलग-अलग दो-दो सौ (२००) देवियाँ है । मध्यम परिषदस्थ देवों के पृथक् पृथक् एक सौ साठ, एक सौ साठ और अन्तिम परिषदस्थ पारिषदों के एक सौ चालीस (१४०) देवियाँ है ।।१२६-१२७।। सुपर्ण इन्द्र का प्रथम सभा के देवो मे एक एक के पृथक् पृथक् एक सौ साठ, एक सौ साठ देवियाँ हैं। मध्यम परिषद् के देवों की एक सौ चालीस, एक सौ चालीस और अन्तिम परिषदस्थ पारिषदों की पृथक् पृथक् एक सौ बीस, एक सौ बीस देवियाँ है ।१२८-१२९। अवशेष द्वीपकुमार आदि सातों प्रकार के इन्द्रों की अन्तः परिषदस्थ देवों में प्रत्येक देव के एक सौ चालीस (१४०) देवियाँ है ।।१३०।। मध्यम परिषदस्थ पारिषदों में प्रत्येक देव की एक सौ बीस, एक सौ बीस देवांगनाएँ है, तथा अन्तिम परिषदस्थ पारिषदों में प्रत्येक देव की सौ, सौ (१००) देवांगनाएँ है ।। १३१ ।। अनीक देवों के प्रत्येक सेना अधिनायकों (महत्तरों) में प्रत्येक सेनापति के और प्रत्येक अगरक्षक के अपने अपने पूर्व पुण्य के फल से उत्पन्न होने वाली सौ सौ देवांगनाएँ है ।।१३२।। प्रत्येक अनीक देवों के पचास, पचास और हीन से हीन देवो के बत्तीस बत्तीस देवागनाएँ होती है ।।१३३।।

अब असुरेन्द्र आदि दसों इन्द्रों की आयु का कथन करते हैं :—

असुराणां भवेदायुरुत्कृष्ट सागरोपमम् ।
दशवर्षसहस्राणि जघन्यायुर्न संशयः ।।१३४।।
नागानां परमायुः स्यात्पल्योपम त्रयप्रमम् ।
गरुडानां भवत्यायुः सार्धपल्यद्वयं परम् ।।१३५।।
द्वीपानामायुरुत्कृष्टं पल्यद्वयमखण्डितम् ।
शेषाब्ध्यादिकषण्णां स्यात्सार्ध पल्यैकजीवितम् ।।१३६।।

अर्थः— असुरकुमारो की उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम और जघन्यायु दश हजार वर्ष प्रमाण है। नागकुमारों को तीन पल्योपम और गरुडकुमारों की उत्कृष्ट आयु २½ पल्योपम प्रमाण है। द्वीपकुमारों की उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम तथा शेष छह उदधिकुमारादिकों की उत्कृष्ट आयु डेढ (१½) पल्योपम प्रमाण है (जघन्य आयु दश हजार वर्ष है) ।।१३४-१३६।।

अब इन्द्रादिकों की और उत्तरेन्द्रों की आयु आदि का निरूपण करते हैं :—

इन्द्राणां च प्रतीन्द्राणां लोकपालामृताशिनाम् ।
त्रायस्त्रिंशसुराणां च सामानिकसुधाभुजाम् ।।१३७।।
उत्कृष्टायुरिदं ख्यातं तेषां मध्ये सुधाभुजाम् ।
उत्तरेन्द्रस्य सिद्धान्ते तदायुः साधिकं मतम् ।।१३८।।

पूज्याः सर्वे प्रतीन्द्राश्च लोकपालामरास्तथा ।
त्रायस्त्रिंशसुराः सामानिका एते समानकाः ।।१३९।।
महान्तः स्वस्वशक्रेणायुः सम्पर्द्धिशर्मभिः ।
विक्रियाज्ञानदेवाद्यैः किंचिदूनातपत्रकाः ।।१४०।।

अर्थः—इन्द्रों की, प्रतीन्द्रों की, लोकपाल देवों की, त्रायस्त्रिंश देवों की और सामानिक दवों की उत्कृष्ट आयु समान होती है । इनमें उत्तरेन्द्रों की आयु सिद्धान्त मे (दक्षिणेन्द्रों से) कुछ अधिक कही गई है ।।१३७-१३८।। अन्य देवों द्वारा पूज्य समस्त प्रतीन्द्र तथा लोकपाल देव, त्रायस्त्रिंश देव और सामानिक देवों के छत्र इन्द्र के छत्र से कुछ छोटे होते हैं शेष आयु सम्पत्ति, ऋद्धि, सुख, विक्रिया शक्ति, ज्ञान और देवों के समूह आदि में ये सब अपने अपने इन्द्र के सदृश ही होते हैं ।।१३९-१४०।।

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों की देवांगनाओं की आयु का प्रतिपादन करते हैं :—

चमरेन्द्रस्य देवीनां सार्धपल्यद्विजीवितम् ।
वैरोचनस्य च स्त्रीणामायुः पल्यत्रयं महत् ।।१४१।।
नागेन्द्रस्यङ्गनानां हि पल्याष्टमांशजीवितम् ।
सुपर्णस्यामरस्त्रीणां त्रिकोटिपूर्वजीवितम् ।।१४२।।
द्वीपादिशेषसप्तानां पत्नीनामायुरुत्तमम् ।
अल्पमृत्युविनिःक्रान्तं त्रिकोटिवर्षसम्मितम् ।।१४३।।

अर्थः—चमरेन्द्र की देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु अढाई (२½) पल्य, वैरोचन की देवियों की तीन पल्य, नागकुमारेन्द्र की देवांगनाओ की पल्य के ८ वें भाग, सुपर्णकुमारेन्द्र की देवियों को आयु तीन पूर्व कोटि और अपघात मृत्यु से रहित द्वीपकुमार आदि शेष सात इन्द्रो की देवियो की उत्कृष्ट आयु तीन करोड (३०००००००) वर्ष की होती है ।।१४०-१४३।।

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के अंगरक्षकों, सेना महत्तरों और अनीक देवों की आयु कहते हैं :—

चमरस्याङ्गरक्षाणां सेनामहत्तरात्मनाम् ।
आयुः पल्यं तथा सैन्यकानां पल्यार्धजीवितम् ।।१४४।।
तथा वैरोचनस्याङ्गरक्षकाणां स्वजीवितम् ।
सेनामहत्तराणां हि स्वायुः पल्यं च साधिकम् ।।१४५।।

सैन्यकानां च पल्यार्धं साधिकं जीवितं मतम् ।
नागेन्द्रस्याङ्गरक्षाणां सेनामहत्तरात्मनाम् ॥१४६॥
पूर्वकोटिप्रमाणायुः सैन्यकानामखण्डितम् ।
वर्षकोटिप्रमं चायुस्ततोऽपि गरुडस्य वै ॥१४७॥
अङ्गरक्षकसेनानांमहत्तराणां च जीवितम् ।
कोटिवर्षप्रमं सैन्यकानां लक्षाब्दजीवितम् ॥१४८॥
शेषद्वीपादिसप्तानामङ्गमरक्षामृताशिनाम् ।
सेनामहत्तराणां चायुर्लक्षवर्षमानकम् ॥१४९॥
अनीकाह्वयदेवानामायुः खण्डविवर्जितम् ।
वर्षाणां प्रवरं पञ्चाशत्सहस्रप्रमाणकम् ॥१५०॥

अर्थः—चमरेन्द्र के अङ्गरक्षकों और सेनामहत्तरों की आयु एक पल्य प्रमाण तथा अनीक (सेना) देवों की आयु अर्ध पल्य प्रमाण है ॥१४४॥ वैरोचन इन्द्र के अगरक्षकों और सेना महत्तरों की आयु एक पल्य से कुछ अधिक तथा अनीक देवों की आयु अर्ध पल्य से कुछ अधिक है। नागकुमार इन्द्र के अगरक्षकों और सेनामहत्तरों की आयु एक कोटि पूर्व की और अनीक देवों की कोटि वर्ष प्रमाण आयु है। गरुडकुमार इन्द्रों के अंगरक्षको और सेनामहत्तरों की आयु कोटि वर्ष प्रमाण तथा सेन्यको की एक लाख वर्ष प्रमाण है ॥१४५-१४८॥ शेष द्वीपकुमार आदि सात इन्द्रों के अंगरक्षक देवों और सेना महत्तरों की उत्कृष्ट आयु एक लाख वर्ष प्रमाण तथा अनीक देवो की अपघात रहित उत्कृष्ट आयु पचास हजार (५००००) वर्ष प्रमाण है ॥१४९-१५०॥

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के पारिषद देवों की आयु का निरूपण कहते हैं :—

चमरस्य सुराणामाद्यायां परिषदि स्फुटम् ।
सार्धपल्यद्वयं चायुर्द्वितीयायां सुधाभुजाम् ॥१५१॥
पल्यद्वयं तृतीयायां तत्सार्धपल्यसम्मितम् ।
वैरोचनस्य देवानामाद्यायां परिषद्यपि ॥१५२॥
त्रिपल्यायुर्द्वितीयायां सार्धद्विपल्यजीवितम् ।
तृतीयायां सुराणां चायुर्द्विपल्योपमं मतम् ॥१५३॥
नागस्य निर्जराणां प्रथमायां परिषद्यपि ।
आयुः पल्याष्टमो भागो द्वितीयायां सुरात्मनाम् ॥१५४॥

पल्यषोडश भागानामेकोभागोऽस्ति जीवितम् ।
तृतीयापरिषत्स्थानां गीर्वाणानामखण्डितम् ।।१५५।।
द्वात्रिंशद्विहृतांशानां पल्यस्यैकांशजीवितम् ।
वैनतेयस्य चाद्यायां परिषद्यमृताशिनाम् ।।१५६।।
त्रिकोटिपूर्वमानायुर्द्वितीयायां च जीवितम् ।
द्विकोटिपूर्वमन्त्यायां कोटिपूर्वायुरिष्यते ।।१५७।।
द्वीपादिशेषसप्तानां देवानां परिषद्यपि ।
प्रथमायां भवेदायुस्त्रिकोटिवर्षसम्मितम् ।।१५८।।
द्वितीयायां सुराणां च द्विकोटिवर्षजीवितम् ।
तृतीयापरिषत्स्थानां कोटिवर्षायुरुत्तमम् ।।१५९।।

अर्थः—चमरेन्द्र की प्रथम परिपदस्थ पारिषदो की उत्कृष्ट आयु ढाई (२½) पल्य, द्वितीय परिषद् के पारिषदो की आयु दो पल्य की और तृतीय परिषद् के पारिषदो की आयु डेढ (१½) पल्य की होती है। वैरोचन इन्द्र की प्रथम परिपद् के पारिषदो की आयु तीन पल्य, द्वितीय परिषद् के पारिषदो की ढाई पल्य और तृतीय परिषद् के पारिषदो की आयु दो पल्य प्रमाण है ।।१५१-१५३।। नागकुमार इन्द्र की प्रथम परिषद् के पारिषदो की आयु पल्य के आठवे भाग, द्वितीय परिषद के पारिषदों की आयु पल्य के सोलहवे भाग और तृतीय सभा के देवो की आयु पल्य के बत्तीसवे भाग प्रमाण होती है। गरुणकुमार इन्द्र की प्रथम सभा के देवो की आयु तीन पूर्व कोटि की, द्वितोय सभा के देवो की दो पूर्व कोटि की और तृतीय सभा के देवो की एक पूर्व कोटि की आयु होती है ।। १५४–१५७ ।। द्वीपकुमार आदि शेष सात इन्द्रो की प्रथम परिषद् के पारिषदो की आयु तीन करोड (३०००००००) वर्ष, द्वितीय परिपद् के पारिषदो की दो करोड (२०००००००) वर्ष और तृतीय परिषद् के पारिषदो की उत्कृष्ट आयु एक करोड (१०००००००) वर्ष प्रमाण होती है ।।१५८-१५९।।

अब असुरकुमार आदि इन्द्रों के शरीर की ऊँचाई, उच्छ्वास एवं आहार के क्रम का निरूपण करते है —

असुराणां तनूत्सेधश्चापानि पञ्चविंशतिः ।
नागादिनवशेषाणां दशचापोच्चविग्रहः ।।१६०।।
असुराणां हृदाहारो गते वर्षसहस्रके ।
उच्छ्वासः स्याद् गते पक्षे नागानां गरुडात्मनाम् ।।१६१।।

द्वीपानां मानसाहारः सार्धद्वादशभिर्दिनैः ।
उच्छ्वासोऽपि मुहूर्तैश्च सार्धद्वादशसंख्यकैः ॥१६२॥
अब्धीनां विद्युदाख्यानां स्तनितानां सुधाभुजाम् ।
भवेच्च मानसाहारो गतैर्द्वादशभिर्दिनैः ॥१६३॥
दिव्यामोदमयोच्छ्वासो मुहूर्तैर्द्वादशप्रमैः ।
दिक्कुमारसुराणां चाग्नीनां वातामृताशिनाम् ॥१६४॥
मानसाहार एवस्ति सार्धसप्तदिनैर्गतैः ।
स्यादुच्छ्वासो मुहूर्तैश्च सार्धसप्तप्रमैर्गतैः ॥१६५॥

अर्थः—असुरकुमार इन्द्र के शरीर का उत्सेध पच्चीस धनुष प्रमाण और शेष नागकुमार आदि नव इन्द्रों के शरीर का उत्सेध दस, दस धनुष प्रमाण है ॥ १६० ॥ असुरकुमार देव एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर मनसा आहार करते हैं, और एक पक्ष व्यतीत हो जाने पर श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नागकुमार, गरुडकुमार और द्वीपकुमार १२½ दिनों में मानसिक आहार करते हैं और १२½ मुहूर्त में उच्छ्वास लेते हैं ॥१६०-१६२॥ उदधिकुमार, विद्युत्कुमार और स्तनितकुमार देव १२ दिन व्यतीत होने पर आहार ग्रहण करते हैं और १२ मुहूर्त व्यतीत होने पर दिव्य एवं सुगन्धमय उच्छ्वास लेते हैं। दिक्कुमार अग्निकुमार और वायुकुमार देव ७½ दिन व्यतीत हो जाने पर आहार ग्रहण करते हैं और ७½ मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं ॥१६३–१६५॥

अब भवनवासी देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र कहते हैं :—

असुराणामुत्कृष्टं चावधिज्ञानं भवोद्भवम् ।
योजनानामसंख्यातकोटयो भवान्तरादिवित् ॥१६६॥
नागादिनवशेषाणां चासंख्यातसहस्रकाः ।
योजनानि जघन्यं तत्सर्वेषां पञ्चविंशतिः ॥१६७॥
बहुः स्तोक इतिख्यातोऽवधिश्च दिक्चतुष्टये ।
श्वभ्रभूत्रयपर्यन्तमधोभागेऽवधिर्भवेत् ॥१६८॥
मेरोः शिखरपर्यन्तमूर्ध्वलोकेऽवधिर्मतः ।
भावनामरसर्वेषां लक्षयोजनसम्मितः ॥१६९॥

अर्थः—असुरकुमार देवों का अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात करोड़ योजन है। ये अपने भवान्तरों को भी जानते हैं ॥ १६६ ॥ अवशेष नागकुमार आदि नव इन्द्रों का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात

हजार योजन है। सभी इन्द्रो का जघन्य अवधिक्षेत्र २५ योजन प्रमाण है ॥१६७॥ चारों दिशाओं मे यह अवधि क्षेत्र अति अल्प कहा गया है, वैसे सभी भवनवासी देव अपने अवधिज्ञान से नीचे तीसरे नरक पर्यंत और ऊपर एक लाख योजनों से सम्मित मेरु पर्वत के शिखर पर्यंत जानते है ॥१६८-१६९॥

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के परस्पर स्पर्धा स्थानों का कथन करते है :—

सौधर्मेन्द्रेण चित्ते चमरेन्द्रःकुरुते वृथा ।
सहाकिञ्चित्करामीर्ष्यां क्षेत्रसद्भाववर्तनात् ॥१७०॥
तथैशानसुरेन्द्रेण सहेर्ष्या निःफलां मुधा ।
हृदि वैरोचनेन्द्रोऽपि करोति पापकारिणीम् ॥१७१॥

अर्थ:—क्षेत्रगत निमित्त कारण से चमरेन्द्र अपने चित्त मे सौधर्मेन्द्र से वृथा ही कुछ ईर्ष्या करता है ॥१७०॥ इसी प्रकार वैरोचन भी अपने हृदय मे ऐशानेन्द्र से पापोत्पादक और निष्फल ईर्ष्या करता है ॥१७१॥

अब इस सिद्धान्तसार रूप श्रुत को पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं :—

इत्येवं करणानुयोगकथकं सर्वज्ञवाण्युद्भवम्,
धर्मध्याननिबन्धनं शुभनिधिं व्यावर्णनोत्थं परम्,
श्रीमद्भावनसंज्ञकामृतभुजां सिद्धान्तसारं श्रुतम् ।
धर्मध्यानशुभाप्तये मुनिविदो यत्नात् पठन्त्वन्वहम् ॥१७२॥

अर्थः—इस प्रकार जो करणानुयोग को कहने वाला है, सर्वज्ञ की वाणी से निःसृत है, धर्मध्यान का हेतु है, शुभ का खजाना है तथा जिसमें भवनवासी देवो का महान् वर्णन है ऐसे इस सिद्धान्तसार ग्रन्थ का मुनिजन धर्मध्यान रूपी शुभ परिणामो की प्राप्ति के लिये प्रयत्नपूर्वक निरन्तर अध्ययन करे ॥१७२॥

अधिकारान्त मङ्गल :—

ये तीर्थेशजिनालया मणिमया नागामरैः पूजिताः
स्तुत्या भक्तिभरेण पुण्यनिधयो मेरोरधो भूतले,
या दिव्या जिनमूर्तयोऽति सुभगाश्चैत्यद्रुमेषु स्थिता-
स्तास्तानित्यसुखाप्तयेऽहमनिशं वन्दे स्तुवे भक्तितः ॥१७३॥

इतिश्री सिद्धांतसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते दशविधभवनवासिदेव वर्णनोनामद्वादशोऽधिकारः ॥

अर्थः—मेरु पर्वत के नीचे पृथ्वीतल पर नागकुमार आदि के द्वारा पूजित और भक्ति के भार से स्तुत्य जो जिनेन्द्र भगवान् के मणिमय जिनालय हैं, तथा जो चैत्य वृक्षों पर स्थित पुण्य की निधि स्वरूप, दिव्य और अति सुभग जिन प्रतिमाएँ स्थित हैं उन समस्त प्रतिमाओं की मै सुख प्राप्ति के लिये भक्ति भाव से अहर्निश वन्दना करता हूँ और स्तुति करता हूँ ॥१७३॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक
नाम महाग्रन्थ में दश प्रकार के भवनवासी देवों
का वर्णन करने वाला
बारहवाँ अधिकार समाप्त ॥



त्रयोदशोऽधिकारः

मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञा :—

असंख्यव्यन्तरावासस्थितान् सर्वान् जिनालयान् ।
व्यन्तरामरवन्द्याच्यर्यान् प्रतिमाभिः सह स्तुवे ॥१॥
अथ पञ्चगुरुन्नत्वा विश्वकल्याणसिद्धिदान् ।
करिष्ये वर्णनं सिद्धयै ह्यष्टधाव्यन्तरात्मनाम् ॥२॥

अर्थ—व्यन्तर देवो से वन्दनीय और पूजनीय व्यन्तर देवो के असख्यात आवासो मे स्थित प्रतिमाओ सहित सम्पूर्ण जिनालयो का मैं स्तवन करता हूँ ॥१॥ इसके बाद विश्व का कल्याण करने वाले और सिद्धि प्रदान करने वाले पचपरमेष्ठियो को नमस्कार करके अब मैं आत्म सिद्धि के लिये आठ प्रकार के व्यन्तर देवो का वर्णन करूंगा ॥२॥

व्यन्तर देवों के आठ भेद :—

आदिमाः किन्नरादेवाः किम्पुरुषा महोरगाः ।
गन्धर्वाख्यास्ततो यक्षा राक्षसा भूतनिर्जराः ॥३॥
पिशाचाश्च ह्यमी ज्ञेया अष्टधा व्यन्तरामराः ।
अमीषां वर्णभेदादीन् पृथग्वक्ष्येऽधुनाचिदे ॥४॥

अर्थः—किन्नरदेव, किम्पुरुषदेव, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये आठ प्रकार के व्यन्तर देव है। अब ज्ञान प्राप्ति के लिये इनके शरीर का वर्ण और इनके भेद अलग अलग कहता हूँ ॥३-४॥

अब व्यन्तर देवों के शरीर का वर्ण कहते है :—

प्रियङ्गुफलभाः किन्नराश्च किम्पुरुषाः सिताः ।
महोरगा हि कृष्णाङ्गा गन्धर्वयक्षराक्षसाः ॥५॥
हेमप्रभास्त्रयो भूताः कृष्णवर्णाः पिशाचकाः ।
बहुलप्रभसद्गात्रा अमीषां भेद उच्यते ॥६॥

अर्थः—किन्नर देवों के शरीर का वर्ण प्रियंगुफल सदृश नील वर्ण, किम्पुरुषों का धवल वर्ण, महोरगो का कृष्ण वर्ण, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों का स्वर्ण सदृश वर्ण, भूतों का कृष्ण वर्ण और पिशाच जाति के देवों का पंक सदृश वर्ण होता है। अब इन आठों देवों के भिन्न भिन्न भेद कहते हैं ।।५-६।।

अब व्यन्तर देवों के मुख्य आठ कुलों के अवान्तर भेद कहते हैं :—

किन्नरा दशभेदा हि किम्पुरुषा द्विपञ्चधा ।
महोरगाश्च तावन्तो गन्धर्वाः स्युर्दशात्मकाः ।।७।।
प्रोक्ता द्वादशधा यक्षाः सप्तप्रकारराक्षसाः ।
भूताः सप्तविधाश्च द्विसप्तभेदाः पिशाचकाः ।।८।।

अर्थः—किन्नर देवों के दश भेद, किम्पुरुषों के दश भेद, महोरगों के दश भेद गन्धर्वो के दश भेद, यक्षों के बारह, राक्षसो के सात, भूतों के सात और पिशाचों के चौदह भेद होते है ।।७-८।।

अब किन्नर और किम्पुरुष कुलों के अवान्तर भेदों के नाम कहते हैं :—

आदिमाः किन्नरादेवाः किम्पुरुषास्ततोऽमराः ।
हृदयङ्गमगीर्वाणाः स्वरूपाः पालकामराः ।।९।।
किन्नरकिन्नराः किन्नरनिन्द्याभिधनिर्जराः ।
ततः किन्नरमान्याः किन्नरादिरम्यसंज्ञकाः ।।१०।।
किन्नरोत्तमसंज्ञाश्चैते किन्नरा द्विपञ्चधाः ।
आद्याः सत्पुरुषा देवा महापुरुषसंज्ञकाः ।।११।।
देवाः पुरुषनामानः पुरुषोत्तमनिर्जराः ।
पुरुषप्रभगीर्वाणास्तथातिपुरुषामराः ।।१२।।
वायवो मरुदेवाख्या मरुत्प्रभाभिधानकाः ।
यशोमन्त इमे किम्पुरुषा दशविधा मताः ।।१३।।

अर्थ—प्रथम किन्नर नाम के व्यन्तर देवों में किन्नर और किम्पुरुष ये दो इन्द्र, हृदयङ्गम और स्वरूप ये प्रतीन्द्र है, शेष पालक किन्नरकिन्नर, किन्नरनिन्द्य, किन्नरमान्य, किन्नररम्य और किन्नरोत्तम ये दश प्रकार के किन्नर देव है। सत्पुरुष (इन्द्र), महापुरुष (इन्द्र), पुरुषनाम (प्रतीन्द्र), पुरुषोत्तम (प्रतीन्द्र), पुरुषप्रभ, अतिपुरुष, मरुत, मरुदेव, मरुत्प्रभ और यशोमन्त नाम के दश प्रकार के किम्पुरुष व्यन्तर देव होते है ।।९-१३।।

अब महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच व्यन्तर देवों के अवान्तर नाम आदि कहते है :—

अतिकाया महाकाया भुजगाभिधनिर्जराः ।
ततो भुजगशाल्याख्याः स्कन्धशाल्यभिधानकाः ॥१४॥
मनोहराश्च अशिनाख्या महासुराह्वयामराः ।
गम्भीराः प्रियदर्शाख्या दशधैते महोरगाः ॥१५॥
आद्यो गीतरतिर्नाम्ना गीतकीर्तिसमाह्वयः ।
हाहाख्यकोऽथ हूहूसंज्ञो नारदश्च तुम्बुरः ॥१६॥
कन्दवो वासवाभिख्यो महास्वरोऽथ धैवतः ।
गन्धर्वकुलनामानि दशधेमानि सन्ति च ॥१७॥
आदिमो मणिभद्रस्तु पूर्णभद्राह्वयस्ततः ।
शैलभद्रो मनोभद्रो भद्रकाख्यः सुभद्रकः ॥१८॥
सर्वभद्रो मनुष्योऽथ धनपालः स्वरूपकः ।
यक्षोत्तमो मनोहारी यक्षा द्वादशधा ह्यमी ॥१९॥
आद्यो भीमो महाभीमो विघ्नहारि समाह्वयः ।
उदङ्को राक्षसाभिख्यो महाराक्षसनामकः ॥२०॥
ब्रह्मराक्षसनामामी सप्तधा राक्षसा मताः ।
स्वरूपः प्रतिरूपाख्यो भूतोत्तमाभिधोमरः ॥२१॥
प्रतिभूतो महाभूतस्ततः प्रच्छन्नसंज्ञकः ।
आकाशभूत इत्येते सप्तधा भूतजातयः ॥२२॥
कालाख्योऽथ महाकालः कूष्माण्डो राक्षसोऽमर ।
यक्षः सम्मोहकाभिख्य स्तारकश्चाशुचिः शुचिः ॥२३॥
सतालो देहनामाथ महादेहाभिधानकः ।
पूर्णः प्रवचनाख्योऽमी पिशाचाश्च द्विसप्तधा ॥२४॥

अर्थः—अतिकाय (इन्द्र), महाकाय (इन्द्र), भुजगा (प्रतीन्द्र), भुजगशाल्य (प्रतीन्द्र), स्कध-शाल्य, मनोहर, अशनि, महासुर, गम्भीर और प्रियदर्शी ये दस प्रकार के महोरग व्यन्तर देव हैं ॥१४-१५॥ गीतरति (इन्द्र), गीतकीर्ति (इन्द्र), हा हा (प्रतीन्द्र), हू हू (प्रतीन्द्र), नारद, तुम्बुर, कन्दव, वासव, महास्वर और धैवत ये दस प्रकार के गन्धर्व कुल के व्यन्तर देव है ॥१६–१७॥ मणिभद्र (इन्द्र),

ंभद्र (इन्द्र), शैलभद्र (प्रतीन्द्र), मनोभद्र (प्रतीन्द्र), भद्रक, सुभद्रक, सर्वभद्र, मनुष्य, धनपाल, रूपक, यक्षोत्तम और मनोहारी ये बारह प्रकार के यक्ष कुल के व्यन्तर देव हैं ॥ १८–१९ ॥ भीम न्द्र), महाभीम (इन्द्र), विघ्नहारी (प्रतीन्द्र), उदङ्क (प्रतीन्द्र), राक्षस, महाराक्षस और ब्रह्म-क्षस ये सात प्रकार के राक्षस व्यन्तर देव है । स्वरूप (इन्द्र), प्रतिरूप (इन्द्र), भूतोत्तम (प्रतीन्द्र), तभूत (प्रतीन्द्र), महाभूत, प्रच्छन्न और आकाशभूत ये सात प्रकार के भूत जाति के व्यन्तर देव ॥२०–२२॥ काल (इन्द्र), महाकाल (इन्द्र), कूष्माण्ड (प्रतीन्द्र), राक्षस (प्रतीन्द्र), यक्ष, सम्मो-, तारक, अशुचि, शुचि, सताल, देह, महादेह, पूर्ण और प्रवचन ये चौदह प्रकार के पिशाच जाति व्यन्तर देव हैं ॥२३–२४॥

अब प्रत्येक कुलों के इन्द्रों के नाम, प्रतीन्द्रों की संख्या और दो दो वल्लभिकाओं ं नाम कहते हैं :—

आद्यौ द्वौ द्वाविमाविन्द्रौ पूज्यावेकं कुलं प्रति ।
पृथग्भूतौ प्रतीन्द्रौ च द्वौ द्वौ देवार्चितौ परौ ॥२५॥
आद्येन्द्रः किन्नरो नाम्ना किम्पुरुषो द्वितीयकः ।
ततः सत्पुरुषेन्द्रोऽथ महापुरुषदेवराट् ॥२६॥
अतिकायो महाकायः शक्रो गीतरविस्ततः ।
गीतकीर्ति समाख्यो माणिभद्रः पूर्णभद्रकः ॥२७॥
भीम इन्द्रो महाभीमः स्वरूपः प्रतिरूपकः ।
कालेन्द्रोऽथ महाकाल इमे षोडश वासवाः ॥२८॥
षोडशैव प्रतीन्द्राः स्युः षोडशानां सुरेशिनाम् ।
द्वे द्वे तथा सहस्रे स्युर्देव्यः प्रत्येकमूर्जिताः ॥२९॥
किन्नरस्या वंतसाख्या देवी केतुमती भवेत् ।
शची किम्पुरुषस्यास्ति रतिसेना रतिप्रिया ॥३०॥
स्यातां सत्पुरुषेन्द्रस्य रोहिणी नवमीस्त्रियौ ।
हरिता पुष्पवत्यौ स्तो महापुरुषनायिके ॥३१॥
प्रतिकायस्य चेन्द्राणी भोगा भोगवती भवेत् ।
महाकायस्य देवी चानिन्दिता पुष्पगन्धिनी ॥३२॥
शची गीतरतीन्द्रस्य स्वरसेना सरस्वती ।
नन्दिनी प्रियदर्शा स्याद् गीतकीर्तेश्च वल्लभा ॥३३॥

माणिभद्रस्य देवी स्यात्कुन्दाख्या बहुरूपिणी ।
पूर्णभद्रस्य सद्देवी तारका चोत्तमा भवेत् ।।३४।।
भीमस्य वसुमित्रास्ति सुपद्मा प्राणवल्लभा ।
रत्नप्रभा सुवर्णाभा महाभीमस्य चाङ्गना ।।३५।।
स्वरूपस्य महादेवी स्वरूपा बहुरूपिणी ।
प्रतिरूपस्य चेन्द्राणी सुसीमास्ति शुभानना ।।३६।।
कालस्य कमलादेवी भवेच्च कमलप्रभा ।
महाकालस्य देवी स्यादुत्पला च सुदर्शना ।।३७।।
एते द्वे द्वे महादेव्यौ रूपसौभाग्यभूषिते ।
प्रत्येकं वासवानां स्तो द्वात्रिंशत्ताश्च पिण्डिताः ।।३८।।

अर्थ —एक एक कुल मे अन्य देवों से पूज्य दो दो इन्द्र होते है और प्रत्येक कुल मे देवो से पूजित दो दो प्रतीन्द्र होते है ।।२५।। प्रथम कुल मे किन्नर और किम्पुरुष दो इन्द्र है । द्वितीय किम्पुरुषों के कुल मे सत्पुरुष और महापुरुष ये दो इन्द्र है ।।२५–२६।। इसके आगे तृतीय आदि कुलो मे अतिकाय, महाकाय, गीतरव, गीतकीर्ति, मणिभद्र, पूर्णभद्र, भीम, महाभीम, स्वरूप, प्रतिरूपक, काल और महाकाल ये सोलह इन्द्र होते है । सोलहों इन्द्रो के सोलह ही प्रतीन्द्र होते है । इन सभी इन्द्रो और प्रतीन्द्रो मे से प्रत्येक के भिन्न भिन्न दो-दो हजार देवागनाएँ होती हैं ।।२७–२६।। किन्नर इन्द्र के अवतन्स और केतुमती दो शची हैं । किम्पुरुष के रतिसेना और रतिप्रिया ये दो शची है ।।३०।। सत्पुरुष के रोहणी और नवमी तथा महापुरुष के हरित और पुष्पवती ये शची है ।।३१।। अतिकाय इन्द्र के भोगा और भोगवती तथा महाकाय इन्द्र के अनिन्दिता और पुष्पगन्धिनी ये दो दो इन्द्राणियाँ है ।।३२।। गीतरति इन्द्र के स्वरसेना और सरस्वती तथा गीतकीर्ति के नन्दिनी और प्रियदर्शा नाम की दो दो इन्द्राणियाँ हैं ।। ३३ ।। मणिभद्र देव के कुन्दा और बहुरूपिणी एव पूर्णभद्र के तारका और उत्तमा ये दो दो वल्लभिकाएँ हैं ।।३४।। भीम इन्द्र के वसुमित्रा तथा सुपद्मा और महाभीम के रत्नप्रभा एवं सुवर्णाभा ये दो दो इन्द्राणियाँ हैं ।।३५।। स्वरूप इन्द्र के स्वरूपा, बहुरूपिणी तथा प्रतिरूप के सुसीमा और शुभानना ये दो दो इन्द्राणियाँ हैं ।। ३६ ।। काल इन्द्र के कमलादेवी, कमलप्रभा तथा महाकाल इन्द्र के उत्पला और सुदर्शना ये दो दो महादेवियाँ है ।।३७।। इस प्रकार रूप एव सौभाग्य से विभूषित दो, दो महा इन्द्राणिया प्रत्येक इन्द्रो के भिन्न भिन्न है । इस प्रकार सोलह इन्द्रों के बत्तीस इन्द्राणिया हैं ।।३८।।

अब व्यन्तर देवों के निवास का एव उनके पुरों (नगरों) आदि का वर्णन करते हैं :—

रत्नप्रभाक्षितेः सन्ति खरभागे महागृहाः ।
चतुर्दशसहस्राणि भूतानामविनश्वराः ॥३९॥
रत्नप्रभावनेः पङ्कभागे रत्नमयाः शुभाः ।
आवासा राक्षसानां स्युः सहस्रषोडशप्रमाः ॥४०॥
शेषव्यन्तरदेवानां मध्यलोकेऽचलादिषु ।
सर्वतः सन्ति चावासाश्चैत्यालयविराजिताः ॥४१॥
अञ्जनो वज्रधातुश्च द्वीपः सुवर्णनामकः ।
द्वीपो मनःशिलाभिख्यो द्वीपो वज्रसमाह्वयः ॥४२॥
रजतो हिङ्गुलद्वीपो हरितालाभिधानकः ।
अष्टद्वीपेषु चैतेषु समभागे समावनौ ॥४३॥
अष्टानां व्यन्तरेन्द्राणां प्रत्येकं शाश्वतानि च ।
जम्बूद्वीपसमानानि पञ्चपञ्चपुराण्यपि ॥४४॥
पूर्वादिदिक्षु विद्यन्ते मानस्तम्भजिनालयैः ।
चैत्यवृक्षैश्च युक्तानि स्वस्वेन्द्रनामभिः स्फुटम् ॥४५॥
अमीषां मध्यभागस्थं स्वेन्द्रनामयुतं पुरम् ।
प्रभं चावर्तकं कान्तं मध्यमं चेति दिक्ष्वपि ॥४६॥

अर्थः—रत्नप्रभा पृथिवीके खरभाग मे भूतनामक व्यन्तर देवों के शाश्वत चौदह हजार महागृह है ॥३९॥ रत्नप्रभा पृथिवी के पक भाग मे राक्षस कुल व्यन्तरों के रत्नमयी और अत्यन्त रमणीक सोलह हजार प्रमाण आवास है ॥४०॥ शेष व्यन्तर देवो के चैत्यालयों से विभूषित आवास तिर्यग्लोक के पर्वतों पर सर्वत्र है ॥४१॥ अजन, वज्रधातु, सुवर्ण, द्वीप, मनः शिल द्वीप, वज्र द्वीप, रजत द्वीप, हिगुल द्वीप और हरिताल द्वीप, इन आठ द्वीपो मे चित्रा भूमि पर समभाग मे अर्थात् भूमि के नीचे या पर्वतों के ऊपर नही जम्बूद्वीप सदृश समतल भूमि पर आठ प्रकार के व्यन्तर देवों में से प्रत्येक इन्द्र के जम्बूद्वीप सदृग प्रमाण वाले पाच-पाच नगर है ॥ ४२–४४ ॥ ये नगर मानस्तम्भों, जिनालयों और चैत्यवृक्षो से युक्त तथा अपने अपने इन्द्रो के नाम से सयुक्त पूर्वादि चारों दिशाओं में है । इन नगरों में से अपने अपने इन्द्रो के नाम से युक्त पुर नाम का नगर मध्य में स्थित है, अवशेष किन्नरप्रभ, किन्नरावर्त, किन्नरकान्त और किन्नरमध्य ये चारों नगर क्रमश. पूर्व आदि चारों दिशाओं में अवस्थित है ॥४५–४६॥

एतेषां पृथग्नामानि प्रोच्यंते :—

एषां पुराणां मध्यस्थपुरस्य किन्नरपुराख्यं नाम स्यात्। पूर्वभागस्थितपुरस्य किन्नरप्रभाह्वयं ामास्ति। दक्षिणदिग् भागस्थपुरस्य किन्नरावर्तपुराभिध नाम स्यात्। पश्चिमाशास्थपुरस्य किन्नर-ान्तपुरसञ्ज्ञं नामास्ति। उत्तरादिग् स्थितपुरस्य किन्नर मध्यमाह्वय नाम भवेत्। तथा अन्येषां सप्त-ीपस्थ सर्वपुराणा अनया रीत्या स्व स्वेन्द्रनामपूर्वाणि प्रभावर्तकान्त मध्यमान्तानि नामानि भवन्ति।

अब इन नगरों के पृथक् पृथक् नाम कहते हैं :—

अर्थः—अजन द्वीप के मध्य स्थित नगर का नाम किन्नरपुर है। पूर्व दिशा स्थित नगर का ाम किन्नरप्रभ है। दक्षिणदिग् स्थित नगर का नाम किन्नरावर्त है। पश्चिम दिश् स्थित नगर का ाम किन्नरकान्त है और उत्तर दिश् स्थित नगर का नाम किन्नरमध्य है। इसी प्रकार सातों द्वीपो में प्रपने अपने इन्द्रो के नाम है पूर्व में जिनके ऐसे पुर, प्रभ, आवर्त, कान्त और मध्य नाम के नगर इसी ीति से पूर्वादि दिशाओ मे अवस्थित है।

अब प्राकार, द्वार, प्रासाद, सभामण्डप एवं चैत्यवृक्षों आदि का प्रमाण पूर्वक वर्णन करते हैं :—

प्राकारा नगरेषु स्युः शाश्वताः प्रोन्नताः शुभाः।
द्विक्रोशाधिकसप्तत्रिंशद्योजनैश्च विस्तृताः ॥४७॥
मूले क्रोशद्वयाग्रद्वादशसंख्यैश्च योजनैः।
सार्धद्वियोजन व्यामा मूर्ध्नि द्वारादिभूषिताः ॥॥४८॥
द्वाराणामुदयोऽमीषां सार्धद्विषष्टियोजनः।
विस्तारः क्रोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनप्रमः ॥४९॥
द्वाराणां मस्तकेऽमीषां प्रासादामणिसङ्कुलाः।
विद्यन्ते प्रोन्नता रम्याः पञ्चसप्ततियोजनैः ॥५०॥
विस्तृताः क्रोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनैः शुभाः।
तेषां मध्ये सुधर्माख्यो राजते मणिमण्डपः ॥५१॥
योजनानां नवोत्तुङ्गः सार्धद्वादशयोजनैः।
आयतो विस्तृतः क्रोशाधिकषड्भिश्च योजनैः ॥५२॥
तस्य द्वाराणि रम्याणि द्वियोजनोन्नतानि च।
योजनव्यासयुक्तानि मण्डपस्य भवन्त्यपि ॥५३॥
इत्येवं वर्णना ज्ञेया सर्वेन्द्राणां पुरेषु च।
नगराणां चतुर्दिक्षु चत्वारश्चैत्यपादपाः ॥५४॥

रत्नपीठाश्रिता मूले चतुर्दिक्षु विराजिताः ।
भौमेन्द्र पूजिताभिः स्युर्जिनेन्द्रदिव्यमूर्तिभिः ॥५५॥
मानस्तम्भाश्च चत्वारो मणिपीठत्रिकोर्ध्वगाः ।
शालत्रय युताः सन्ति सिद्धबिम्बाढ्यशेखराः ॥५६॥

अर्थः—उन प्रत्येक नगरों में ३७ योजन २ कोस ऊँचे, मूल में १२½ योजन चौड़े, ऊपर २½ योजन चौड़े, शाश्वत, शुभ और द्वारों आदि से विभूषित प्राकार है ॥४७-४८॥ इन प्राकारों में स्थित द्वारों में से प्रत्येक द्वार की ऊँचाई ६२½ योजन तथा चौड़ाई ३१¼ योजन प्रमाण है ॥४६॥ इन द्वारों के ऊपर ७५ योजन ऊँचे और ३१¼ योजन चौड़े मणिमय प्रासाद है। जिनके मध्य में सुधर्मा नाम के मणिमय मण्डप सुशोभित होते हैं ॥ ५०-५१ ॥ जो ६ योजन ऊँचे, १२½ योजन चौड़े और ६¼ योजन चौड़े हैं ॥५२॥ उस सभा मण्डप के द्वार अत्यन्त रमणीक, दो योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े हैं। ॥५३॥ इसी प्रकार का वर्णन सर्व इन्द्रों (दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों) के नगरों में जानना चाहिए। नगरों की चारों दिशाओं में (एक एक) चार चैत्य वृक्ष हैं। जिनके मूल में चारो दिशाओं में रत्नपीठ के आश्रित, व्यन्तर देवों से पूजित जिनेन्द्र भगवान के दिव्य मूर्तियाँ है ॥ ५४-५५ ॥ इन्ही चारों वृक्षों के सामने तीन तीन मणिमय पीठ के ऊपर, तीन कोट से युक्त चार मानस्तम्भ है, जिनके शिखर सिद्ध भगवान के बिम्बों से युक्त है ॥५६॥

अब पिशाचादि व्यन्तर देवों के चैत्य वृक्षों के भिन्न भिन्न नाम, उनमें स्थित प्रतिबिम्ब एवं मानस्तम्भों का वर्णन करते हैं :—

अशोकश्चम्पको नागस्तुम्बुरुश्च वटद्रुमः ।
बदरी तुलसी वृक्षः कदम्बोऽष्टांह्रिपा इमे ॥५७॥
मणिपीठाग्रभागस्थाः पृथ्वीसारमयोन्नताः ।
भवनेषु क्रमात्सन्ति ह्यष्टानां व्यन्तरात्मनाम् ॥५८॥
तेषां मूले चतुर्दिक्षु चतस्रः प्रतिमाः पृथक् ।
चतुस्तोरणसंयुक्ता दीप्ता दिव्या जिनेशिनाम् ॥५६॥
मानस्तम्भोऽस्ति चैकैकः एकैकां प्रतिमां प्रति ।
मुक्तास्रग्मणिघण्टाढ्यस्त्रिपीठशालभूषितः ॥६०॥

अर्थः—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इन आठों व्यन्तर देवों के क्रम से अशोक, चम्पक, नाग (केसर), तुम्बरु, वट, वदरी, तुलसी और कदम्ब नाम वाले चैत्यवृक्ष होते हैं। ये ऊँचे ऊँचे वृक्ष पृथ्वी के सारमय (पृथ्वीकायिक) और मणिपीठ के अग्रभाग पर

स्थित होते हैं। इन वृक्षो के मूल मे चारो दिशाओं में जिनेन्द्र भगवान की चार चार तोरण द्वारों से युक्त, देदीप्यमान और दिव्य पृथक् पृथक् चार प्रतिमाएँ है। तथा एक एक प्रतिमा के प्रति मुक्तादामों एवं मणिमय घण्टाओं से युक्त, मणिमय तीन तीन पीठ और प्राकार से युक्त एक एक मानस्तम्भ है ।।५७-५८।।

अब नगरों की चारों दिशाओं में स्थित वनों एवं विदिशाओं में स्थित नगरों का कथन करते है :—

पुराणां च चतुर्दिक्षु त्यक्त्वा द्वे च सहस्रके ।
योजनानां हि चत्वारि वनानि शाश्वतान्यपि ।।६१।।
लक्षयोजनदीर्घाणि लक्षार्धविस्तृतानि वै ।
अशोकसप्तपर्णाम्र-चम्पकाढ्यानि सन्ति च ।।६२।।
मध्येऽमीषां हि चत्वारो राजन्ते चैत्यपादपाः ।
अशोक-सप्तपर्णाम्र-चम्पकाख्या जिनार्चनैः ।।६३।।
विदिक्षु नगराणि स्युर्गणिकानां पुराणि च ।
सहस्रचतुरशीतियोजनैर्विस्तृतानि वै ।।६४।।
वृत्ताकाराणि नित्यानि प्राकारादियुतान्यपि ।
पुराणि शेष भौमानामनेकद्वीपवार्धिषु ।।६५।।

अर्थ:—नगरों की चारो दिशाओं मे दो-दो हजार योजन छोडकर अशोक, सप्तपर्ण, आम्र और चम्पक नाम के चार चार शाश्वत वन है, जो एक एक लाख योजन लम्बे तथा पचास-पचास हजार योजन चौडे हैं। इन वनो के मध्य में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमाओ से युक्त अशोक, सप्तपर्ण आम्र और चम्पक नाम के चार-चार चैत्य वृक्ष शोभायमान होते हैं ।।६१-६३।। नगरों की चारो विदिशाओ मे गणिकाओ के वलयाकार, शाश्वत और प्राकार आदि से युक्त नगर है, जो ८४००० योजन लम्बे और ८४००० योजन ही चौडे हैं। शेष व्यन्तर देवो के नगर अनेक द्वीपों एव अनेक समुद्रो मे हैं ।।६४-६५।।

अब किन्नर आदि सोलह इन्द्रों की ३२ गणिका महत्तरों के नाम कहते हैं :—

इन्द्रं प्रति त्विमे स्तो महत्तरिके सुराङ्गने ।
गणिकासंज्ञिके द्वे द्वे पृथक् पल्यैकजीविते ।।६६।।
माधुरी मधुरालापा देवी च मधुरस्वरा ।
पुरुषादिप्रियाख्या पृथुका सोमाह्वया ततः ।।६७।।

प्रदर्शनी हि भोगाख्या भोगावती भुजङ्गिनी ।
नागप्रिया सुतोषाथ घोषाख्या विमलप्रिया ॥६८॥
सुस्वरानिन्दितादेवी देवी भद्रा सुभद्रका ।
मालिनी पद्ममालाख्या सर्वश्री सर्वसैनिका ॥६९॥
रुद्राथ रुद्रदर्शाख्या भूतकान्ता समाह्वया ।
भूतभूतप्रिया देवी दत्ता महाभुजङ्गिनी ॥७०॥
अम्बिकाथ करालाख्या सुरसेना सुदर्शना ।
इन्द्राणां स्युरिमा देव्यो द्वात्रिंशद्विश्वपिण्डिताः ॥७१॥

अर्थः—सोलह इन्द्रो में से प्रत्येक की गणिका नाम की दो दो प्रधान देवांगनाएँ हैं, इनमें से प्रत्येक की आयु एक-एक पल्य प्रमाण है ॥६६॥ माधुरी, मधुरालाप, मधुरस्वरा, पुरुषप्रिया, पृथुका, सोमा, प्रदर्शनी, भोगा, भोगवती, भुजङ्गिनी, नागप्रिया, सुतोषा, घोपा, विमलप्रिया, सुस्वरा, अनिंदिता, भद्रा, सुभद्रका, मालिनी, पद्ममाला, सर्वश्री, सर्वसैनिका, रुद्रा, रुद्रदर्शा, भूतकान्ता, भूतप्रिया, दत्ता, महाभुजङ्गिनी, अम्बिका, कराला, सुरसेना और सुदर्शना ये ३२ गणिका महत्तरिकाएँ व्यन्तरवासी इन्द्रों की हैं॥६७–७१॥

अब व्यन्तर देवों के तीन प्रकार के निवास स्थानों का अवस्थान सूचित कर उनके नगरों एवं कूटों का प्रमाण कहते हैं :—

अष्टानां व्यन्तराणां स्युः पुराणि भवनानि च ।
आवासा इति विज्ञेयास्त्रिविधाः स्थानकाः शुभाः ॥७२॥
मध्यलोकस्थद्वीपाब्धिमहीषु स्यु पुराणि च ।
खरांशे पङ्कभागे चाधोलोके भवनान्यपि ॥७३॥
आवासाः सन्ति चैतेषामूर्ध्वलोके क्षयोज्झिताः ।
पर्वताग्रेषु कूटेषु वृक्षाग्रेषु ह्रदादिषु ॥७४॥
वृत्तोत्कृष्टपुराणां स्याद् व्यासो लक्षैकयोजनः ।
जघन्यनगराणां किलैकयोजनविस्तरः ॥७५॥
उत्कृष्टभवनानां हि सकलोत्कृष्टविस्तरः ।
योजनद्विशताग्रस्थसहस्रद्वादशप्रमः ॥७६॥
जघन्यभवनानां स्याद् विस्तरोऽतिजघन्यकः ।
योजनानामधोलोके पञ्चविंशतिमानकः ॥७७॥

विष्कम्भो निखिलोत्कृष्टावासानां श्रीजिनागमे ।
योजनानां जिनैः प्रोक्तः सहस्रद्वादशप्रमः ॥७८॥
आवासानां जघन्यानां व्यासः क्रोशत्रयं भवेत् ।
उत्कृष्टभवनादीनां मध्ये कूटोऽस्ति भास्वरः ॥७९॥
योजनत्रिशतव्यासः शतैकयोजनोन्नतः ।
जघन्यभवनादीनां मध्ये कूटो जघन्यकः ॥८०॥
एकगव्यूतिविस्तारो हेमरत्नमयोऽक्षयः ।
क्रोशैकस्य त्रिभागानामेकभागसमुन्नतः ॥८१॥

अर्थः—आठो प्रकार के व्यन्तर देवो के रहने के शुभ स्थान पुर, भवन और आवास के भेद से तीन प्रकार के जानना चाहिए ॥७२॥ मध्यलोक मे (सम) पृथ्वी पर स्थित द्वीप-समुद्रो में व्यन्तर देवों के जो निवास स्थान हैं उन्हे पुर कहते है । अधोलोक मे खर और पङ्क भाग में जो स्थान है उन्हे भवन कहते हैं, तथा ऊर्ध्वलोक मे अर्थात् पृथ्वीतल से ऊपरी भागो मे पर्वतो के अग्रभागो पर, कूटो पर, वृक्षो के अग्रभागो पर, और पर्वतस्थ सरोवरो आदि मे जो स्थान हैं उन्हे आवास कहते हैं । ये तीनो प्रकार के निवास स्थान हानि-क्षय से रहित अर्थात् शाश्वत है ॥ ७३–७४ ॥ उत्कृष्टपुर वृत्ताकार और एक लाख योजन विस्तार वाले है तथा जघन्य पुर एक योजन विस्तार वाले हैं ॥७५॥ समस्त उत्कृष्ट भवनो का उत्कृष्ट विस्तार १२२०० योजन प्रमाण है ॥७६॥ अधोलोक स्थित जघन्य भवनो का जघन्य विस्तार २५ योजन प्रमाण है ।७७। जिनागम मे जिनेन्द्र भगवान के द्वारा सम्पूर्ण उत्कृष्ट आवासो का विष्कम्भ १२००० योजन कहा गया है, तथा जघन्य आवासों का व्यास तीन कोस कहा गया है । उत्कृष्ट भवन आदि के मध्य में देदीप्यमान कूट हैं, जो ३०० योजन चौडे और १०० योजन ऊँचे है । जघन्य भवनों आदि के मध्य मे जघन्य कूट है, जो स्वर्ण और रत्नमय है, शाश्वत हैं तथा एक कोस चौडे और $\frac{1}{3}$ कोस ऊँचे है ॥७८–८१॥

अब कूटों का अवशेष वर्णन करते हुए व्यन्तर देवों के निवास (आवासों आदि का) स्थानों का विभाग दर्शाते है :—

अमीषां सर्वकूटानां मध्यभागे च मूर्धनि ।
स्फुरद्रत्नमयस्तुङ्ग एकैकः श्रीजिनालयः ॥८२॥
ज्येष्ठानां भवनादीनामुत्कृष्टा वेदिका मता ।
प्रतोलीतोरणाद्याढ्या क्रोशद्वयोच्छ्रितोर्जिता ॥८३॥
लघूनां भवनादीनां लघ्वी सद्वेदिका भवेत् ।
पञ्चविंशतिचापोच्चा गोपुरादिविभूषिता ॥८४॥

केषाञ्चिद् भौमदेवानामावासाः सन्ति केवलम् ।
केषाञ्चिद् भवनैः सार्धमावासाः स्युः सुधाभुजाम् ।।८५।।
पुराणि भवनान्युच्चावासा एते त्रयः शुभाः ।
भवन्ति वसतिस्थानाः केषाञ्चित्पुण्यपाकतः ।।८६।।
तथेतित्रिविधस्थानानि स्युर्भवनवासिनाम् ।
नवानामसुराणां च केवलं भवनान्यपि ।।८७।।

अर्थः—इन उत्कृष्ट एवं जघन्य सर्व कूटों के ऊपर मध्य भाग में देदीप्यमान रत्नमय एक एक उत्तुङ्ग जिनालय हैं ।।८२।। उत्कृष्ट भवनों आदि की उत्कृष्ट वेदियाँ प्रतोली तथा तोरणों आदि से युक्त दो कोस ऊँची है, तथा जघन्य भवनो आदि की जघन्य वेदियाँ गोपुर आदि से विभूषित और २५ धनुष ऊँची है ।।८३-८४।। पूर्व पुण्योदय से किन्ही किन्ही व्यन्तर देवों के मात्र आवास ही है, किन्हीं के आवास और भवन दोनों हैं ।।८५।। तथा किन्ही किन्ही व्यन्तर देवों के आवास, भवन और पुर ये तीनों प्रकार के अत्यन्त शुभ निवास स्थान होते हैं ।। ८६ ।। भवनवासी देवो में असुरकुमारों के मात्र भवन होते हैं, अन्य शेष भवनवासियों के तीनों प्रकार के निवास स्थान होते हैं ।।८७।।

अब व्यन्तरेन्द्रों के परिवार देवों का विवेचन करते हैं :—

प्रतिशक्रं भवेदेकैकः प्रतीन्द्रोऽमरावृतः ।
प्रत्येकं किन्नरादीनां सर्वेन्द्राणां भवन्ति च ।।८८।।
चत्वार्येव सहस्राणि देवाः सामानिकाह्वयाः ।
अङ्गरक्षामराः सन्ति सहस्रषोडशप्रमाः ।।८९।।
आदिमापरिषत्स्थाः स्युर्देवा अष्टशतानि च ।
मध्यमापरिषद्देवाः सहस्रप्रमिता मताः ।।९०।।
अन्तिमापरिषत्स्थामरा द्वादशशतप्रमाः ।
गजा अश्वा रथास्तुङ्गा वृषभाश्च पदातयः ।।९१।।
गन्धर्वाः सुरनर्तक्यः सप्तानीकान्यमूनि च ।
प्रत्येकं सर्वयुक्तानि कक्षाभिः सप्तसप्तभिः ।।९२।।
गजानां प्रथमेऽनीकेऽष्टाविंशति सहस्रकाः ।
गजाश्च द्वितीये षट्पञ्चाशत्सहस्रहस्तिनः ।।९३।।
इत्येवं च तृतीयाद्यनीकेषु द्विगुणोत्तराः ।
सप्तमानीकपर्यन्तं विद्यन्ते हस्तिनः क्रमात् ।।९४।।

सप्तानीकगजाः सर्वे सन्ति पिण्डीकृता बुधैः ।
पञ्चत्रिंशच्चलक्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकाः ॥६५॥
इत्थं गणनया ज्ञेया ह्यश्वसंख्यागजप्रमा ।
तथारथाद्यनीकानि गजसंख्यासमानि च ॥६६॥
द्वे कोटयौ चाष्टचत्वारिंशल्लक्षाणि सहस्रकाः ।
द्व्यधिका नवतिश्चेति संख्यासर्वाजिनैर्मता ॥६७॥
पिण्डीकृताऽप्यनीकानां सप्तानां श्रीजिनागमे ।
सप्तसप्तप्रकाराणां गजादीनां सुरेशिनाम् ॥६८॥
प्रकीर्णकाह्वया देवा आभियोगिकसंज्ञकाः ।
किल्विषिकास्त्रयोऽत्रैते ह्यसंख्याता भवन्ति च ॥६९॥
त्रायस्त्रिंशसुरा लोकपालाः सन्ति न जातुचित् ।
ततोऽस्ति व्यन्तरेन्द्राणां परिवारोऽखिलोऽष्टधा ॥१००॥

अर्थ.—किन्नर, किम्पुरुष आदि प्रत्येक इन्द्र के परिवार में देवों से वेष्टित एक एक प्रतीन्द्र देव होते हैं। सामानिक देव चार (४०००) हजार और अगरक्षक देव १६००० हजार होते है ॥८८-८९॥ अभ्यन्तर परिषद् के देव ८०० मध्यम परिषद् के १००० और बाह्य परिषद् के देव १२०० होते हैं। प्रत्येक इन्द्र के हाथी, घोडा, उत्तुङ्ग रथ, वृषभ, पदाति, गन्धर्व और नर्तकी ये सात अनीक सात सात कक्षाओ से युक्त होती हैं ॥९०-९२॥ सातो अनीको मे से हाथियो की अनीक की प्रथम कक्ष में २८००० हाथी, द्वितीय मे ५६००० हाथी होते है। इस प्रकार तृतीय कक्ष से सप्तम कक्ष पर्यन्त क्रम से दूने दूने संख्या प्रमाण हाथी होते हैं ॥ ९३-९४ ॥ गणधर देवो के द्वारा सातो कक्षों के हाथियों का एकत्रित योग ३५५६००० कहा गया है ॥९५॥ इसी प्रकार सातो कक्षो के घोडो की सख्या तथा रथ आदि शेष पाँचो की सख्या गजो की सख्या के प्रमाण ही जानना चाहिए।९६। जिनेद्र भगवान के द्वारा सात सात कक्षाओं से युक्त सातों अनीको की सम्पूर्ण सख्या का योग (३५५६०००×७)=२४८९२००० कहा गया है ॥९७॥ जिनागम मे सात सात कक्षाओ से युक्त गज आदि सातो अनीकों के देवो का एकत्रित २४८९२००० योग प्रत्येक व्यन्तरेन्द्रो के पृथक् पृथक् कहा गया है ॥९८॥ प्रत्येक इन्द्र के परिवार मे प्रकीर्णक, आभियोगिक और किल्विषिक नामक तीनो प्रकार के देव असख्याते होते हैं। व्यतरेन्द्रो के परिवार मे त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देव कभी नही होते, इसलिये इन सभी इन्द्रों का परिवार प्रतीन्द्र, सामानिक, अंगरक्षक, पारिषद्, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोगिक और किल्विष के भेद से आठ प्रकार का होता है ॥९९-१००॥

अब नित्योपपादादि वानव्यन्तर देवों का निवास क्षेत्र कहते हैं :—

एकं हस्तान्तरं त्यक्त्वा ह्याद्यचित्रामहीतले ।
नित्योत्पादक नामानो वसन्ति व्यन्तरामराः ॥१०१॥

ततो दशसहस्राणि हस्तानां च विहाय च ।
सन्ति दिग्वासिनस्त्यक्त्वा स्मादोर्दशसहस्रकान् ॥१०२॥

वसन्त्यन्तरवासाख्याः पुनर्दशसहस्रकान् ।
करांस्त्यक्त्वा च कूष्माण्डास्तिष्ठन्त्यतो विमुच्य च ॥१०३॥

हस्तविंशसहस्राणि वसन्त्युत्पन्न निर्जराः ।
ततो विंशसहस्राणि कराणां प्रविहाय च ॥१०४॥

सन्त्यनुत्पन्नगीर्वाणास्तस्माद् विंशसहस्रकान् ।
करान् मुक्त्वा वसन्त्येव प्रमाणकाभिधाः सुराः ॥१०५॥

ततो विंशसहस्राणि हस्तानां परिमुच्य च ।
तिष्ठन्ति गन्धगीर्वाणास्तस्माद् विंशसहस्रकान् ॥१०६॥

हस्तांस्त्यक्त्वा महागन्धाः पुनर्विमुच्य विंशति ।
सहस्राणि कराणां स्युर्भुजगाख्या विहाय च ॥१०७॥

पुनर्विंशसहस्राणि हस्तानां निवसन्ति च ।
प्रीतिङ्करास्ततस्त्यक्त्वा करविंशसहस्रकान् ॥१०८॥

आकाशोत्पन्ननामानो देवा वसन्ति भूतले ।
एते द्वादशधा देवा विज्ञेया वानव्यन्तराः ॥१०९॥

अर्थः—चित्रा पृथ्वी के ऊपर एक हाथ का अन्तराल छोड कर नित्योत्पादक नाम के व्यन्तर देव रहते है ॥ १०१ ॥ इनसे १०००० हाथ छोड कर दिग्वासी देव, इनसे १०००० हाथ छोड कर अन्तरवासी नाम के देव रहते है। इनसे १०००० हाथ छोड़कर कूष्माण्ड देव रहते है। इनसे २०००० हाथ छोड़ कर उत्पन्न देव तथा इनसे २०००० हाथ छोड कर अनुत्पन्न देव रहते है। इनसे २०००० हाथ छोड़ कर प्रमाणक देव, इनसे २०००० हाथ छोड़ कर गन्ध देव, इनसे २० हजार हाथ छोड़ कर महागन्ध नाम के देव, इनसे २० हजार हाथ छोड़ कर भुजग नामक देव, इनसे २० हजार हाथ छोड़-कर प्रीतिङ्कर और इनसे २० हजार हाथ छोड़ कर आकाशोत्पन्न नाम के देव निवास करते हैं। इस प्रकार भूतल पर इन बारह प्रकार के व्यन्तर देवों का निवास जानना चाहिए ॥१०२-१०९॥

नित्योत्पादकदेवानामखण्डायुर्जिनैर्मतम् ।
दशवर्षसहस्राणि दिग्वासिनां च जीवितम् ।।११०।।

विंशत्यब्दसहस्राण्यन्तरवासिसुधाभुजाम् ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि कूष्माण्डानां च जीवितम् ।।१११।।

चत्वारिंशत्सहस्राब्दमुत्पन्नाख्यामृताशिनाम् ।
परमायुर्भवेत् पञ्चाशत्सहस्राब्दमानकम् ।।११२।।

अनुत्पन्नात्मनां षष्टिसहस्रवर्षजीवितम् ।
प्रमाणकात्मनां सप्ततिसहस्राब्दसंस्थितिः ।।११३।।

गन्धाख्यानां तथाशीतिसहस्रवर्षजीवितम् ।
महागन्धाख्यदेवानां श्रुते चायुर्मतं जिनैः ।।११४।।

वर्षाणां चतुरग्राशीतिसहस्रप्रमाणकम् ।
भुजगानां भवेदायुः पल्यैकस्याष्टमांशकः ।।११५।।

प्रीतिङ्करात्मनां पल्यस्य चतुर्थांशजीवितम् ।
आकाशोत्पन्नदेवानामायुः पल्यार्धसम्मितम् ।।११६।।

अर्थः—जिनेन्द्र भगवान के द्वारा नित्योत्पादक देवो की अखण्ड आयु दश हजार वर्ष दिग्वासियों की २० हजार वर्ष, अन्तरवासी देवो की ३० हजार वर्ष, कूष्माण्ड देवों की ४० हजार वर्ष, उत्पन्न देवों की ५० हजार वर्ष, अनुत्पन्न देवो की ६० हजार वर्ष, प्रमाणक देवों की ७० हजार वर्ष, गन्ध देवो की ८० हजार वर्ष और महागन्ध देवो की उत्कृष्ट आयु ८४ हजार वर्ष कही गई है, तथा जिनागम में भुजग देवो की आयु पल्य का ८ वाँ भाग, प्रीतिङ्कर देवों की पल्य का चौथाई भाग और आकाशोत्पन्न देवों की आयु अर्ध पल्य प्रमाण कही गई है ।।११०–११६।।

अब व्यन्तर देवों की जघन्योत्कृष्ट आयु, अवगाहना, आहार, श्वासोच्छ्वास और अवधिज्ञान के विषय का प्रमाण कहते है :—

उत्कृष्टं व्यन्तराणां स्यादायुः पल्योपमं क्रमात् ।
दशवर्षसहस्राणि सर्वजघन्यजीवितम् ।।११७।।

दशचापोन्नतः कायः समस्त व्यन्तरात्मनाम् ।
मानसाहार एवास्ति सार्धपञ्चदिनैर्गतैः ।।११८।।

सार्धपञ्चमुहूर्तैर्निःक्रान्तैरुच्छ्वास एव च ।
व्यन्तराणामसंख्यातयोजनान्यवधिर्मतः ।।११९।।
उत्कृष्टोहि जघन्यश्च पञ्चविंशतियोजनः ।
ऊर्ध्वाधोऽपि कियन्मात्रो भवप्रत्ययसम्भवः ।।१२०।।

अर्थः—व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण और जघन्य आयु दश हजार वर्ष प्रमाण होती है ।।११७।। समस्त व्यन्तर देवों के शरीर की ऊँचाई दश धनुष प्रमाण है । ५½ दिन व्यतीत हो जाने के बाद व्यन्तर देव मनसा आहार करते हैं और ५½ मुहूर्त व्यतीत हो जाने के बाद श्वासोच्छ्वास लेते हैं । व्यन्तर देवों का उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र असंख्यात योजन प्रमाण और जघन्य अवधिक्षेत्र २५ योजन प्रमाण है । ये ऊर्ध्व और अधः कुछ भवों को भी यथा सम्भव जानते हैं ।।११८-१२०।।

अब आचार्य करणानुयोग पढ़ने की प्रेरणा देते हैं :—

एतद् व्यन्तरजातिभेदविभवस्थित्यादिसंसूचकम् ।
धर्मध्याननिबन्धनं ह्यघहरं चार्हन्मुखाब्जोद्‌भवम् ।।
सिद्धान्तं करणानुयोगममलं चित्ताक्षदन्त्यङ्कुशम् ।
सद्धयानाय सुयोगिनः सुविधिना नित्यं पठन्त्वादरात् ।।१२१।।

अर्थः—इस प्रकार व्यन्तर देवो के जाति, भेद, वैभव और स्थिति आदि को संसूचन करने वाला, धर्मध्यान का हेतु, पापनाशक, अर्हन्त भगवान् के मुख रूपी कमल से उत्पन्न तथा मन और इन्द्रिय रूपी हाथी को वश करने के लिये अंकुश के सदृश इस सिद्धान्तसार रूप निर्मल करणानुयोग को उत्तम ध्यान की सिद्धि के लिये उत्तम योगीजन विधिविधान से आदर (विनय) पूर्वक नित्य ही पढो ।।१२१।।

अधिकारान्त मङ्गल :—

ये श्रीमद्‌भवनेषु विश्वनगरेष्वावास सर्वेषु चा-
धो मध्योर्ध्वसुभूमिसर्वगिरिषु श्रीमज्जिनेन्द्रालयाः ।
तत्रस्था जिनमूर्तयोऽतिसुभगाश्चैत्यद्रुमादिस्थिता
या स्तास्ताः शिवशर्म्मभूतिजननीर्वन्दे स्तुवे मुक्तये ।।१२२।।

इतिश्री सिद्धांतसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते व्यन्तरदेवस्थिति-भेदभूत्पादिवर्णनोनामत्रयोदशमोऽधिकारः ।।

अर्थः—समस्त भवनों, नगरो एवं आवासों मे, अधो, मध्य और ऊर्ध्व लोकों में, सर्व सुदर्शन मेरु आदि पर्वतों पर तथा अत्यन्त शोभा युक्त चैत्य आदि वृक्षो पर स्थित वैभव युक्त जितने जिन मन्दिर हैं, उन मन्दिरों मे स्थित कल्याण और सुख को उत्पन्न करने के लिये माता के सदृश जो जिन प्रतिमाएँ हैं, उन सबका मैं मुक्ति प्राप्ति के लिये स्तवन करता हूँ, वन्दना करता हूँ ॥१२२॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक
नाम महाग्रन्थ में आठ प्रकार के भेद वाले व्यन्तर देवों की
स्थिति आदि का प्ररूपण करने वाला
तेरहवाँ अधिकार समाप्त ॥



चतुर्दशोऽधिकारः

मङ्गलाचरण :—

ज्योतिर्देवविमानस्थासंख्यातश्रीजिनालयान् ।
जिनबिम्बान्वितान् वन्दे स्तुवे नित्यान् शिवाय च ।।१।।

अर्थः—ज्योतिर्देवों के विमानों में स्थित जो असंख्यात जिनालय हैं, उन जिनालयों में स्थित जिन प्रतिमाओं के समूह की मैं मोक्ष प्राप्ति के हेतु नित्य ही वन्दना करता हूँ और उनका स्तव करता हूँ ।।१।।

अब ज्योतिषी देवों के भेदों का प्ररूपण करते हैं :—

चन्द्राः सूर्या ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्णतारकाः ।
एते पञ्चविधाः प्रोक्ता ज्योतिष्कदेवतागणाः ।।२।।

अर्थः—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इस प्रकार ज्योतिषदेवों के समूह पाँच प्रकार के कहे गये हैं ।।२।।

अब तारा आदि ज्योतिर्देवों के स्थान का निर्देश करते हैं :—

दशोनाष्टशतान्यस्माद्योजनानि महीतलात् ।
त्यक्त्वा सन्ति विमानानि तारकाणां नभोंगणे ।।३।।
ततोऽप्यूर्ध्वनभो मुक्त्वा दशयोजनसम्मितम् ।
आदित्यानां विमानानि विद्यन्ते शाश्वतान्यपि ।।४।।
अशीतियोजनान्यूर्ध्वं पुनस्त्यक्त्वा भवन्ति खे ।
चन्द्राणां सद्विमानान्यतो योजनचतुष्टयम् ।।५।।
मुक्त्वा नक्षत्रदेवानां विमानानि च सन्त्यनु ।
त्यक्त्वा योजनचत्वारि बुधानां स्युर्विमानकाः ।।६।।

मुक्त्वातोयोजनत्रीणि शुक्राणां स्युर्विमानकाः ।
त्यक्त्वाथ योजनत्रीणि बृहस्पतिविमानकाः ॥७॥
मुक्त्वानु योजनत्रीणि मङ्गलानां विमानकाः ।
त्यक्त्वातो योजनत्रीणि शनैश्चरविमानकाः ॥८॥
ज्योतिः पटलबाहुल्यमित्थं दशोत्तरं शतम् ।
योजनानां भवेत्सर्वं विमानव्याप्तखाङ्गणे ॥६॥
चित्रामहीतलाद्योजनानां नवशतान्तरे ।
सर्वज्योतिष्कदेवानां विद्यन्ते हि विमानकाः ॥१०॥

अर्थः—चित्रा पृथ्वी से ७६० योजन ऊपर जाकर आकाश मे ताराओं के विमान हैं ॥३॥ नभ में तारागणों से दश योजन ऊपर सूर्य के शाश्वत विमान हैं, इनसे ८० योजन ऊपर आकाश मे चन्द्र विमान है। चन्द्र से चार योजन ऊपर नक्षत्र विमान, इससे चार योजन ऊपर बुध विमान, इससे ३ योजन ऊपर शुक्र विमान, इससे तीन योजन ऊपर गुरु विमान, इससे तीन योजन ऊपर मंगल विमान और मंगल से तीन योजन ऊपर शनि का विमान है ॥ ४-८ ॥ इस प्रकार ज्योतिर्पटल के सर्व विमान आकाश में पिण्ड रूप से ११० योजन क्षेत्र को व्याप्त करके रहते हैं ॥६॥ समस्त ज्योतिषी देव चित्रा पृथ्वी के तल से (७६० योजन की ऊँचाई से प्रारम्भ कर) ६०० योजन (७६०+११०=६००) की ऊँचाई तक स्थित हैं ॥१०॥

चित्रा पृथ्वी से ज्योतिर्बिम्बों की ऊँचाई की तालिका :—

क्रम	ज्योतिर्बिम्बो के नाम	पृथ्वी से योजनो मे ऊँचाई	मीलों मे ऊँचाई
१	तारागण	चित्रा पृथ्वी से ७६० योजन ऊपर	३१६०००० मील ऊपर
२	सूर्य	७६०+१०=८०० " "	३२००००० " "
३	चन्द्र	८००+८०=८८० " "	३५२०००० " "
४	नक्षत्र	८८०+४ =८८४ " "	३५३६००० " "
५	बुध	८८४+४ =८८८ " "	३५५२००० " "
६	शुक्र	८८८+३ =८९१ " "	३५६४००० " "
७	गुरु	८९१+ ३=८९४ " "	३५७६००० " "
८	मंगल	८९४+ ३=८९७ " "	३५८८००० " "
९	शनि	८९७+ ३=९०० " "	३६००००० " "

अब ज्योतिर्विमानों का स्वरूप कहते हैं :—

उत्तानगोलकार्धेन समानाकृतयः शुभाः ।
वृत्ताकाराविमानाः स्युः श्वेतरत्नमयोन्नताः ॥११॥
मध्येऽमीषां पुराणि स्युर्भूषितानि जिनालयैः ।
देवीदेवभृतानि श्रीसौधानीकाङ्कितानि च ॥१२॥

अर्थः—ऊर्ध्वमुख अर्ध गोल (गेद) के आकार सदृश शुभ आकृति वाले सर्व ज्योतिर्विमान गोलाकार, श्वेतरत्नमय और उन्नत हैं ॥ ११ ॥ इन विमानों के मध्य में जिनालयों से विभूषित, देव देवियों से भरी हुई और लक्ष्मी युक्त प्रासादों से अलङ्कृत रमणीक नगरियाँ है ॥१२॥

सूर्य, चन्द्र विमानो की आकृतियों का चित्रण :—





अब सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिर्विमानों के व्यास का प्रमाण कहते हैं :—

कृतैकषष्टिभागानां योजनस्य विमानकम् ।
निशाकरस्य षट् पञ्चाशद्भागविस्तरं भवेत् ॥१३॥
त्रयः क्रोशाश्चतुश्चत्वारिंशदग्रशतानि च ।
त्रयोदशैव चापानामिति किञ्चित्तथाधिकम् ॥१४॥
व्यासं चन्द्रविमानस्य प्रोक्तं जैनागमे जिनैः ।
कृतैकषष्टिभागानां योजनस्य विमानकम् ॥१५॥
स्यात्सूर्यस्याष्ट चत्वारिंशद्भागविस्तरान्वितम् ।
विमानं शुक्रदेवस्य क्रोशैकविस्तृतं भवेत् ॥१६॥
बृहस्पतिविमानं स्यात् पादोनक्रोशविस्तरम् ।
मङ्गलस्य बुधस्यैव शनैश्चरस्य कोविदैः ॥१७॥
प्रत्येकं सद्विमानस्य मतार्धक्रोशविस्तृतिः ।
तारकाणां विमानाश्च केचित्सर्वजघन्यकाः ॥१८॥

क्रोशैकस्य चतुर्भागविस्तरा मध्यमा क्रमात् ।
क्रोशार्ध विस्तृताः केचित् पादोनक्रोशविस्तराः ।।१९।।
केचिच्च सकलोत्कृष्टाः क्रोशव्यासविमानकाः ।
इति ताराविमानानां त्रिधाविष्कम्भ उच्यते ।।२०।।
नक्षत्राणां विमानाः स्युः सर्वे क्रोशैकविस्तृताः ।
सर्वं ज्योतिर्विमानानां व्यासार्धं स्थूलता भवेत् ।।२१।।

अर्थ —चन्द्र विमान का विस्तार एक योजन के ६१ भागो मे से ५६ भाग प्रमाण अर्थात् $\frac{५६}{६१}$ योजन प्रमाण है ।।१३।। जिनागम मे जिनेन्द्र भगवान् द्वारा चन्द्र विमान का व्यास तीन कोस और १३४४ धनुष से कुछ ($\frac{२१५}{६१}$ धनुष) अधिक कहा गया है । सूर्य के विमान का विस्तार एक योजन के ६१ भागो मे से ४८ भाग अर्थात् $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण और शुक्रदेव के विमान का विस्तार एक कोस प्रमाण है ।। १४–१६ ।। बृहस्पति देव के विमान का विस्तार पौन कोश तथा मङ्गल, बुध और शनि देवो के विमानो का विस्तार विद्वानो के द्वारा अर्ध अर्ध कोस प्रमाण कहा गया है । तारागणों के कुछ विमान जघन्य है, जिनका विस्तार एक कोश का चतुर्थ भाग अर्थात् $\frac{१}{४}$ कोश है, मध्यम विमानो में किन्ही का प्रमाण अर्ध ($\frac{१}{२}$) कोश और किन्ही का पौन कोश ($\frac{३}{४}$) है । उत्कृष्ट विमानो का प्रमाण एक कोश है, इस प्रकार तारागणो के विमानो का विष्कम्भ तीन प्रकार का कहा गया है । सर्व नक्षत्रो के विमानों का व्यास एक एक कोश है । सर्व ज्योतिर्विमानो की मोटाई अपने अपने विस्तार के अर्धभाग प्रमाण है ।।१७–२१।।

अमीषां विस्तरेण व्याख्यानं प्रोच्यते :—

चन्द्रविमानस्य स्थौल्य योजनस्यैक षष्टिभागाना अष्टाविंशतिभागप्रमाण स्यात् । सूर्यविमानस्य योजनैकषष्टिभागानां चतुर्विंशतिभागप्रमबाहुल्यं भवेत् । शुक्रविमानस्य क्रोशार्धं स्थूलतास्ति । वृहस्पति-विमानस्य क्रोशाष्टभागाना त्रिभागसम्मित बाहुल्य स्यात् । मङ्गलबुधशनैश्चरविमानाना प्रत्येक क्रोश-चतुर्थांशस्थूलता भवेत् । तारकविमानाना जघन्य स्थौल्य क्रोशस्याष्टमो भाग. स्यात् । मध्यम च क्रोश-चतुर्थांशः क्रोशाष्टभागाना त्रिभागप्रम स्यात् । उत्कृष्टं क्रोशार्धं च । नक्षत्रविमानाना स्थौल्य क्रोशार्धं भवति ।

अब ज्योतिर्विमानों के बाहल्य (मोटाई) का व्याख्यान विस्तार से करते हैं :—

चन्द्र विमान की मोटाई $\frac{२८}{६१}$ योजन, सूर्य विमान की $\frac{२४}{६१}$ योजन, शुक्र विमान की $\frac{१}{२}$ कोश, गुरु के विमान की $\frac{३}{८}$ कोश तथा मगल, बुध और शनि के विमानो की मोटाई पृथक् पृथक् पाव ($\frac{१}{४}$) कोश प्रमाण है ।।तारागणों के जघन्य विमानो की मोटाई $\frac{१}{८}$ कोश, मध्यम विमानो में से किन्ही

की मोटाई $\frac{१}{४}$ कोश और किन्हीं की $\frac{३}{८}$ कोश, उत्कृष्ट विमानों की मोटाई और नक्षत्रों के विमानों की मोटाई अर्ध-अर्ध कोश प्रमाण है ॥

सर्व ज्योतिर्विमानों का एकत्रित व्यास एवं बाहल्य निम्न प्रकार है :—

क्रम	ज्योतिर्बिम्बों के नाम	व्यास (विस्तार) योजनों में	व्यास (विस्तार) मीलों में	बाहल्य (मोटाई) योजनों में	बाहल्य (मोटाई) मीलों में
१	चन्द्र विमान	$\frac{५६}{६१}$ योजन	३६७२$\frac{८}{६१}$ मील	$\frac{२८}{६१}$ योजन	१८३६$\frac{४}{६१}$ मील
२	सूर्य विमान	$\frac{४८}{६१}$ योजन	३१४७$\frac{३३}{६१}$ मील	$\frac{२४}{६१}$ योजन	१५७३$\frac{४७}{६१}$ मील
३	शुक्र विमान	१ कोश	१००० मील	$\frac{१}{२}$ कोश	५०० मील
४	गुरु विमान	$\frac{३}{४}$ कोश	७५० मील	$\frac{३}{८}$ कोश	३७५ मील
५	बुध विमान	$\frac{१}{२}$ कोश	५०० मील	$\frac{१}{४}$ कोश	२५० मील
६	मंगल विमान	$\frac{१}{२}$ कोश	५०० मील	$\frac{१}{४}$ कोश	२५० मील
७	शनि विमान	$\frac{१}{२}$ कोश	५०० मील	$\frac{१}{४}$ कोश	२५० मील
८	तारागणों का जघ०	$\frac{१}{४}$ कोश	२५० मील	$\frac{१}{८}$ कोश	१२५ मील
९	,, ,, मध्यम	$\frac{१}{२}$ कोश व $\frac{३}{४}$ कोश	५०० व ७५० मी०	$\frac{१}{४}$ व $\frac{३}{८}$ कोश	२५० व ३७५ मी०
१०	,, ,, उत्कृष्ट	१ कोश	१००० मील	$\frac{१}{२}$ कोश	५०० मील
११	नक्षत्र विमान	१ कोश	१००० मील		
१२	राहु विमान				
१३	केतु विमान				

अब सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की किरणों का प्रमाण एवं उनका स्वरूप कहते हैं :—

सूर्यस्य सूर्यकान्ताश्मविमानस्य महान्ति च ।
द्वादशैव सहस्राणि सन्त्युष्णकिरणान्यपि ॥२२॥
चन्द्रस्य चन्द्रकान्ताश्मविमानस्य भवन्त्यपि ।
द्विषदसहस्रसंख्यानि सच्छीतकिरणानि च ॥२३॥

स्युः शुक्रस्य विमानस्य पञ्चविंशशतांशवः ।
अन्ये ज्योतिष्कदेवानां विमाना मन्दरोचिषः ॥२४॥

अर्थः—सूर्य का विमान सूर्य कान्त मणि से निर्मित है। सूर्य की १२००० किरणें हैं जो उष्ण हैं ॥२२॥ चन्द्रमा का विमान चन्द्रकान्त पत्थर (मणि) से निर्मित है। इसकी भी किरणें १२००० ही है किन्तु वे शीतल हैं ॥२३॥ शुक्र के विमान की २५०० किरणें हैं। (जो प्रकाश से उज्ज्वल है) शेष अन्य ज्योतिष्क देवो के विमानो की किरणें मन्द प्रकाशवाली हैं ॥२४॥

अब तारागणों का तिर्यग् अन्तर चन्द्र-सूर्य के ग्रहण का कारण एवं चन्द्रकलाओं में हानि वृद्धि का कारण कहते हैं :—

तारकाणां जघन्यं स्यात्तिर्यगन्तरमेव च ।
क्रोशस्य सप्तमो भागः पञ्चाशद्योजनप्रमम् ॥२५॥
मध्यमं सकलोत्कृष्टं सहस्रयोजनप्रमम् ।
निशाकरविमानस्य किञ्चिदूनैकयोजनम् ॥२६॥
अन्तरं प्रविधायाधो भागे राहुविमानकम् ।
गच्छद्गतैश्च षण्मासैः पर्वान्ते चन्द्रमण्डलम् ॥२७॥
आच्छादयति चेत्येवं ख्यातं तद्ग्रहणं भुवि ।
तथा सूर्यविमानस्य किञ्चिद्धीनैकयोजनम् ॥२८॥
कृत्वान्तरमधोभागे कृष्णं केतुविमानकम् ।
व्रजन्निःक्रान्तषण्मासैः पर्वान्ते भानुमण्डलम् ॥२९॥
आच्छादयति चात्रैतत्सूर्यग्रहणमुच्यते ।
राहुश्यामविमानस्य ध्वजोपरि विहाय खे ॥३०॥
चतुरङ्गुष्ठविमानान्तरं स्याच्चन्द्रविमानकम् ।
अरिष्टस्य विमानस्य केतूपरि विमुच्य खे ॥३१॥
चतुरङ्गुष्ठमात्रान्तरं स्याद् भानुविमानकम् ।
चन्द्रमण्डलपूर्णस्य कृष्णपक्षे दिनं प्रति ॥३२॥
कृतषोडशभागानामेकैकांशः प्रहीयते ।
प्रतिपद्दिनमारभ्याधःस्थराहुगतेर्वशात् ॥३३॥
तथा चन्द्रविमानस्य शुक्लपक्षे दिनं प्रति ।
वर्धते भागएकैकः पूर्णमास्यन्तमञ्जसा ॥३४॥

अर्थः—एक तारा से दूसरी तारा का तिर्यग् जघन्य अन्तर एक कोश का सातवाँ भाग अर्थात् ⅐ कोश (१४२⅐ मील) है। तिर्यग् मध्यम अन्तर ५० योजन (दो लाख मील) और उत्कृष्ट अन्तर १०० योजन (४ लाख मील है।) कुछ कम एक योजन व्यास वाला राहु का विमान चन्द्र विमान के अधोभाग में कुछ अन्तराल से गमन करता हुआ प्रत्येक छह मास बाद पर्व (पूर्णिमा) के अन्त में चन्द्र के विमान को आच्छादित कर लेता है। लोक में यही आच्छादन क्रिया चन्द्र ग्रहण के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार कुछ कम एक योजन व्यास वाला कृष्णवर्ण केतु का विमान सूर्य विमान के अधोभाग में कुछ अन्तराल से गमन करता हुआ प्रत्येक छह मास बाद पर्व (अमावस्या) के अन्त में सूर्य के विमान को आच्छादित कर लेता है, लोक में इसी को सूर्य ग्रहण कहते है। श्यामवर्ण राहु विमान की ध्वजा दण्ड से चार प्रमाणांगुल ऊपर आकाश में चन्द्र विमान अवस्थित है, इसी प्रकार श्यामवर्ण केतु विमान को ध्वजा दण्ड से चार प्रमाणागुल ऊपर आकाश में सूर्य विमान अवस्थित है। चन्द्र विमान के नीचे स्थित अंजन वर्ण राहु के गमन विशेष के वश से कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ कर अमावस्या पर्यन्त चन्द्र की सोलह कलाओं मे से एक एक अंश प्रतिदिन घटता जाता है। अर्थात् कृष्ण रूप होता जाता है। उसी प्रकार शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त एक एक अश प्रतिदिन वृद्धिगत होता जाता है। अर्थात् शुक्लरूप होता जाता है ।।२५–३४।।

अब अन्य प्रकार से चन्द्र कलाओं की हानि वृद्धि का कथन करते हैं :—

शुक्लपक्षे सदा राहुः स्वयं मन्दगतिर्भवेत् ।
चन्द्रस्यैव निसर्गेण शीघ्रा गतिश्च सत्यपि ।।३५।।

कृष्णपक्षे सदा राहोर्मता शीघ्र गतिर्बुधैः ।
स्वभावेन च चन्द्रस्य मन्दागतिर्दिनं प्रति ।।३६।।

एवं गतिवशाच्चन्द्र कलानां प्रत्यहं भवेत् ।
षोडशानां कलैकैका हानिर्वृद्धिर्द्विपक्षयोः ।।३७।।

अर्थः—शुक्लपक्ष मे राहु की गति हमेशा स्वभाव से ही मन्द होती जाती है और स्वभावतः ही चन्द्र की गति तेज होती जाती है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन राहु की स्वभावतः शीघ्र गति हो जाती है और चन्द्र की मन्दगति होती जाती है, ऐसा विद्वज्जनों के द्वारा कहा गया है ।।३५–३६।। इस प्रकार गति विशेष के वश से दोनो पक्षों में प्रतिदिन चन्द्र की सोलह कलाओ में हानि-वृद्धि होती है ।।३७।।

अब चन्द्रादिक ज्योतिषी देवों के विमान वाहक देवों के आकार और संख्या का विवेचन करते हैं :—

सिंहरूपधरा देवाः चतुःसहस्रसम्मिताः ।
लगित्वा पूर्वदिग्भागे नयन्तीन्दुविमानकम् ।।३८।।
गजवेषधरास्तुङ्गास्तावन्तो वाहनामराः ।
तद्दक्षिणदिशि स्थित्वा व्योम्नि तच्चालयन्ति च ।।३९।।
सुरा वृषभरूपेण चतुःसहस्रमानकाः ।
पश्चिमाशां सदाश्रित्य नयन्ति चन्द्रमण्डलम् ।।४०।।
दिव्याश्वविक्रिया पन्नाश्चतुः सहस्रनिर्जराः ।
लगित्वोत्तरदिग्भागे सविमाना व्रजन्ति खे ।।४१।।
एवं सूर्यविमानेऽपि सिंहादिवेषधारिणः ।
सन्ति वाहनगीर्वाणाः सहस्रषोडशप्रमाः ।।४२।।
तथाशेषग्रहाणां स्युर्विमानवाहकाः सुराः ।
प्रत्येकं च चतुर्दिक्षु लग्ना द्विद्विसहस्रकाः ।।४३।।
पिण्डीकृता इमे सर्वे ज्ञेया वाहननिर्जराः ।
एकैकस्य ग्रहस्यापि पृथक् चाष्टसहस्रकाः ।।४४।।
सहस्रसम्मिताः सिंहास्तावन्तो गजसत्तमाः ।
सहस्रवृषभास्तावन्तोऽश्वाश्चवाहनामराः ।।४५।।
एते पिण्डीकृताः सर्वे चतुःसहस्रमानकः ।
नक्षत्राणां विमानेषु चतुर्दिक्षु पृथक् पृथक् ।।४६।।
तारकाणां विमानेषु सिंहाः पञ्चशतप्रमाः ।
तावन्तो दन्तिनः पञ्चशतानि वृषभामराः ।।४७।।
तावन्तोऽश्वा इमे सर्वेऽल्पपुण्या वाहनामराः ।
सिंहादिविक्रियापन्ना ज्ञेया विमानवाहकाः ।।४८।।

अर्थः—पूर्व दिशा में सिंह के आकार को धारण करने वाले ४००० देव चन्द्र विमान में लग कर उसे चलाते है ।।३८।। उन्नत गज आकार को धारण करने वाले वाहन जाति के ४००० देव दक्षिण दिशा में स्थित होकर चन्द्र विमान को आकाश में चलाते है ।। ३९ ।। पश्चिम दिशा में वृषभ आकार को धारण करने वाले ४००० देव चन्द्र विमान मे जुत कर उसे चलाते हैं, तथा उत्तर दिशा मे विक्रिया युक्त ४००० देव दिव्य अश्व के रूप को धारण और उसमें जुत कर विमान को चलाते हैं।

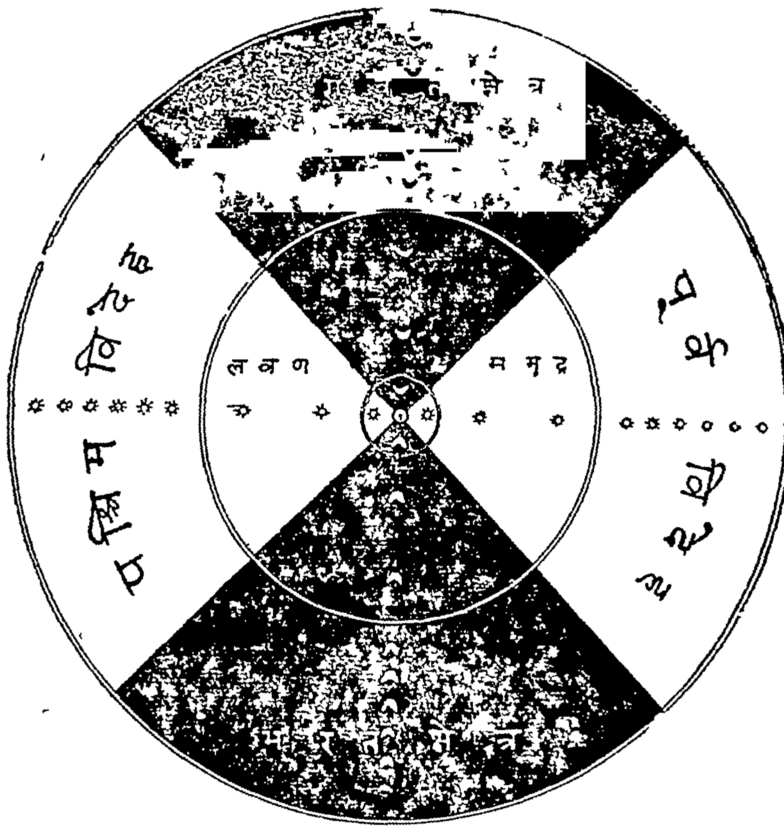
॥४०-४१॥ इसी प्रकार सिंह, हाथी, वृषभ और अश्व रूप को धारण करने वाले १६००० वाहन जाति के देव सूर्य विमान में भी होते हैं॥४२॥ इसी प्रकार अवशेष शुक्र, गुरु, बुध, शनि और मंगल के विमानों में प्रत्येक विमानों की चारों दिशाओं में दो-दो हजार वाहन जाति के देव जुतते हैं॥४३॥ इन सबका योग करने पर प्रत्येक ग्रह के पृथक् पृथक् वाहन जाति के देव आठ-आठ हजार है॥४४॥ वाहन जाति के १००० सिंह रूप धारी देव, १००० गज रूप धारी, १००० वृषभ रूप धारी और १००० अश्व रूप धारी देव प्रत्येक नक्षत्र विमानों की चारो दिशाओं मे पृथक् पृथक् होते हैं, और इनका योग करने पर एक एक नक्षत्र विमान के सर्व देव चार चार हजार होते है॥४५-४६॥ तारागणों के प्रत्येक विमानों की चारो दिशाओं में क्रमशः ५०० सिंह, ५०० हाथी, ५०० बैल और ५०० घोड़े होते हैं, इन प्रत्येक विमानो के देवों का एकत्रित प्रमाण दो-दो हजार होता है। सिंहादिक की विक्रिया युक्त, विमान वाहक इन वाहन जाति के देवों को अल्प पुण्याधिकारी जानना चाहिए॥४७-४८॥

अब मनुष्य लोक में स्थित चन्द्र-सूर्यों की संख्या का निरूपण करते हैं :—

जम्बूद्वीपे पृथक् स्यातां द्वौ चन्द्रौ द्वौ दिवाकरौ।
लवणोदे च चतुश्चन्द्राश्चत्वारो भानवो मताः॥४९॥
स्युर्द्वीपे धातकीखण्डे चन्द्राद्वादशसंख्यकाः।
तावन्तो भानवः कालोदधौ चन्द्रमसः स्मृताः॥५०॥
द्विचत्वारिंशदादित्यास्तावन्तः पुष्करार्धके।
द्विसप्ततिप्रमाश्चन्द्रास्तावन्तः स्युर्दिवाकराः॥५१॥
इमे पिण्डीकृताः सर्वे द्वात्रिंशदधिकं शतम्।
चन्द्राः सूर्याश्च तावन्तो नृक्षेत्रे सकले मताः॥५२॥

अर्थः—जम्बूद्वीप में पृथक् पृथक् दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। लवणोदधि में चार चन्द्र एवं चार सूर्य है॥४९॥ धातकी खण्ड मे १२ चन्द्र तथा १२ ही सूर्य है। कालोदधि में ४२ चन्द्र और ४२ ही सूर्य हैं, इसी प्रकार पुष्करार्धवर द्वीप में ७२ चन्द्र एवं ७२ सूर्य है॥५०-५१॥ इन सबका एकत्रित योग करने पर सम्पूर्ण मनुष्य क्षेत्र में (२+४+१२+४२+७२=) १३२ सूर्य और १३२ ही चन्द्रमा हैं। ॥५२)॥ जैसेः—

(चित्रण अगले पृष्ठ पर देखें।)



(चित्रण मे जिस प्रकार जम्बूद्वीप लवण समुद्र और धातकी खण्ड के चन्द्र सूर्य दर्शाये गये हैं उसी प्रकार कालोदक एवं पुष्करार्ध क्षेत्र मे भी जानना चाहिए ।

अब एक चन्द्र के परिवार का निरूपण करते है :—

चन्द्रेन्द्रस्य भवेत्सूर्यः प्रतीन्द्रो मिलिता ग्रहाः ।
अष्टाशीतिश्च नक्षत्राण्यष्टाविंशतिरेव च ।।५३।।
षट्षष्टिश्च सहस्राणि तथा नवशतान्यपि ।
पञ्चसप्ततिसंख्यानाः कोटीकोटचो हि तारकाः ।।५४।।

अर्थ·—चन्द्रमा इन्द्र है। इसके परिवार मे सूर्य प्रतीन्द्र (एक), ग्रह ८८, अभिजित् सहित अश्विनी आदि नक्षत्र २८ एवं छयासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोडाकोड़ी अर्थात् ६६९७५००००००-०००००००० तारागण हैं ।।५३–५४।।

अब जम्बूद्वीपस्थ भरतादि क्षेत्रों और कुलाचलों की ताराओं का विभाजन दर्शाते हैं :—

तेभ्यो हिमवदाद्यद्रिवर्षेषु द्विगुणोत्तराः ।
भवन्ति तारका यावद्विदेहक्षेत्रमुत्तमम् ।।५६।।
विदेहक्षेत्रतोऽर्धार्धास्तारकाः सन्त्यनुक्रमात् ।
ऐरावतान्तमेवाद्रि नीलाख्य रम्यकादिषु ।।५७।।

(जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र से विदेह क्षेत्र पर्यन्त की शलाकाएँ क्रमशः दुगुनी-दुगुनी होती गई है और विदेह से आगे क्रमश· दुगुण हीन होती गई है, तथा इन सर्व शलाकाओं का कुल योग (१+२+४+८+१६+३२+६४+३२+१६+८+४+२+१) =१९० है, इसलिए श्लोक में १९० का भाग देने को कहा गया है ।)

अर्थः—छ्यासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारागणो के प्रमाण को १९० से भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतनी ताराएँ भरतक्षेत्र के ऊपर है, उनसे हिमवन् आदि कुलाचलों एव विदेह पर्यंत के क्षेत्रों पर तारागणों का प्रमाण क्रमशः दुगुना दुगुना होता गया है, तथा विदेह क्षेत्र से, ऐरावत है अन्त मे जिसके ऐसे रम्यक आदि क्षेत्रों पर और नील आदि कुलाचलों के ऊपर इन तारागणों का प्रमाण क्रमशः अर्ध अर्ध हीन होता गया है ।।५५-५७।।

तारकाणां विवरणं क्रियते :—

भरतक्षेत्रस्योपरि तारा. सप्तशतपञ्चोत्तर कोटीकोटचः भवन्ति । हिमवतः उपरिदशाधिक चतुर्दशशतकोटीकोटचश्च हैमवतवर्षस्योपरि ताराः विंशत्यग्राष्टाविंशतिकोटीकोटचः । महाहिमवतः उपरि पञ्चसहस्रषट्शतचत्वारिंशत्कोटीकोटचश्च । हरिवर्षस्योपरितारा एकादशसहस्रद्विशताशीति कोटीकोटच निषधस्योपरि तारा द्वाविंशतिसहस्र पंचशतषष्टिकोटीकोटचः । विदेहक्षेत्रस्योपरि ताराः पञ्चचत्वारिंशत्सहस्रैक शतविंशति कोटीकोटचः भवेयुः । नीलस्योपरि तारा द्वाविंशतिसहस्रपञ्चशतषष्टिकोटीकोटच. । रम्यकस्योपरि तारा एकादशसहस्रद्विशताशीतिकोटीकोटचः सन्ति । रुक्मिणः उपरितारा· पञ्चसहस्रषट्शतश्चत्वारिंशत्कोटीकोटचः सन्ति । हैरण्यवतस्योपरि द्विसहस्राष्टशतविंशति कोटीकोटचश्च । शिखरिणः उपरि एकसहस्रचतुःशतदशोत्तरकोटीकोटचश्च ।ऐरावतस्योपरि ताराः पञ्चोत्तरसप्तशतकोटीकोटच. सन्ति । एव पिण्डीकृताः जम्बूद्वीपे सर्वे तारकाः एकलक्षत्रयस्त्रिशत्सहस्रनवशतपञ्चाशत्कोटीकोटचो भवन्ति ।

(उपर्युक्त गद्य का अर्थ तालिका में अगले पृष्ठ पर दिया गया है ।)

गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नाकित तालिका में निहित है :—

क्रम	क्षेत्र और पर्वतों के नाम	तारागणों का प्रमाण	क्रम	क्षेत्र और पर्वतों के नाम	तारागणों का प्रमाण
१	भरतक्षेत्र के ऊपर	७०५ कोड़ाकोड़ी	८	नील पर्वत के ऊपर	२२५६० कोड़ाकोड़ी
२	हिमवन् पर्वत के ऊपर	१४१० " "	९	रम्यक क्षेत्र के ऊपर	११२८० " "
३	हैमवत क्षेत्र के ऊपर	२८२० " "	१०	रुक्मि पर्वत के ऊपर	५६४० " "
४	महाहिमवन् पर्वत के ऊपर	५६४० " "	११	हैरण्यवत क्षेत्र के ऊपर	२८२० " "
५	हरिक्षेत्र के ऊपर	११२८० " "	१२	शिखरी पर्वत के ऊपर	१४१० " "
६	निषध पर्वत के ऊपर	२२५६० " "	१३	ऐरावत क्षेत्र के ऊपर	७०५ " "
७	विदेह क्षेत्र के ऊपर	४५१२० " "			
	योग— ८६५३५			योग— ४४४१५	

कुल योग :—जम्बूद्वीप में कुल तारागण ८६५३५+४४४१५=१३३९५० हैं।

अब अढ़ाईद्वीपस्थ प्रत्येक द्वीप के ज्योतिर्विमानों की पृथक् पृथक् संख्या दर्शाते हैं :—

सार्धद्वीपद्वयोश्चाब्ध्योर्द्वयोर्ज्योतिष्कनिर्जराः ।
प्रागुक्तक्रमवृद्धया प्रवर्धन्ते निखिला अपि ॥५८॥

अर्थ :—अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में समस्त ज्योतिष्क देव पूर्वोक्त क्रम वृद्धि से ही वृद्धिगत होते हैं :—

अमीषां विस्तरः निगद्यते :—

जम्बूद्वीपे द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ, ग्रहा षट्सप्तत्यधिकशतम् । नक्षत्राणि षट्पञ्चाशत्, ताराः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रनवशतपञ्चाशत्कोटीकोटयः । लवणसमुद्रे चन्द्राश्चत्वारः । सूर्याश्चत्वारः, ग्रहा द्विपञ्चाशदधिकत्रिशतानि । नक्षत्राणि द्वादशाधिकशतम् । ताराः द्विलक्षसप्तषष्टिसहस्रनवशतकोटीकोटयः । धातकीखण्डे द्वादशचन्द्राः । द्वादशादित्याः । दशशतषट्पञ्चाशद् ग्रहाः । त्रिशतषट्त्रिंशन्नक्षत्राणि । अष्टलक्षत्र्यधिकसप्तशतकोटीकोटयः तारकाः स्युः । कालोदसमुद्रे द्विचत्वारिंशच्चन्द्राः, [illegible] । ग्रहाः [illegible] । नक्षत्राणि [illegible] । ताराः

अष्टाविंशतिलक्षद्वादशसहस्र नवशतपञ्चाशत्कोटीकोटयः। पुष्करार्धद्वीपे चन्द्राः द्वासप्ततिः। भानवः द्वासप्ततिः। ग्रहाः षट्सहस्रत्रिशतषड्त्रिंशत्। नक्षत्राणि षोडशाग्रविंशतिशतानि। ताराः अष्टचत्वारिंशल्लक्ष द्वाविंशतिसहस्रद्विशतकोटीकोटयः सन्ति।

अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों के ऊपर निवास करने वाले समस्त ज्योतिष्क देवों का प्रमाण भिन्न भिन्न दर्शाते हैं :—

नोट:—उपर्युक्त गद्य का अर्थ निम्नांकित तालिका में अवधारित किया गया है।

क्रम	द्वीप एवं समुद्रों के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारागण
१	जम्बूद्वीप	२	२	१७६	५६	१३३९५० कोडाकोडी
२	लवणसमुद्र	४	४	३५२	११२	२६७९०० ,, ,,
३	धातकीखण्डद्वीप	१२	१२	१०५६	३३६	८०३७०० ,, ,,
४	कालोदधि समुद्र	४२	४२	३६९६	११७६	२८१२९५० ,, ,,
५	पुष्करार्ध द्वीप	७२	७२	६३३६	२०१६	४८२२२०० ,, ,,
	योग	१३२	१३२	११६१६	३६९६	८८४०७०० कोडाकोडी

अब चन्द्रमा के अवशेष परिवार देवों के नाम, नृलोक में ज्योतिर्देवों का गमन क्रम और मानुषोत्तर के आगे ज्योतिर्देवों की अवस्थिति कहते हैं :—

विधोः शेषपरिवारसुराः सामान्यकादयः।
अष्टभेदा हि पूर्वोक्ताः प्रतीन्द्रप्रमुखाः सदा ॥५९॥
त्रायस्त्रिंशसुरैर्लोकपालैर्विना भवन्ति च।
सार्धद्वीपद्वये पङ्क्त्या ज्योतिर्देवा भ्रमन्त्यमी ॥६०॥
मानुषोत्तरतो बाह्ये तिष्ठन्ति ज्योतिषां गणाः।
ये संख्यवर्जितास्तेषामचलत्वं भवेत्सदा ॥६१॥

अर्थः—पूर्वोक्त दश भेदो मे से त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देवो के विना, प्रतीन्द्र है प्रमुख जिनमें ऐसे सामानिक आदि आठ भेद वाले देव चन्द्र के अवशेष परिवार में होते है। अर्थात् ज्योतिष्क देवों

का इन्द्र चन्द्रमा है, इसके परिवार में प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्षक, पारिषद्, अनीक, प्रकीर्णक आभियोग्य और किल्विषिक जाति के देव होते है। अढाई द्वीप मे ज्योतिर्देवो का गमन पक्ति पूर्वक होता है ॥५९-६०॥ मानुषोत्तर पर्वत के आगे असख्यात ज्योतिष्क देवो के समूह है, जो निरन्तर अचल ही रहते है, अर्थात् कभी गमन नही करते ॥६१॥

अब मनुष्यलोक की ध्रुव ताराओं का प्रमाण कहते हैं :—

जम्बूद्वीपे च षट्त्रिंशत्प्रमाणास्तारका ध्रुवाः ।
लवणाब्धौ तथैको न चत्वारिंशद्युतं शतम् ॥६२॥
तारकाः धातकीखण्डे सहस्रं दशसंयुतम् ।
कालोदेचैक चत्वारिंशत्सहस्रास्तथा शतम् ॥६३॥
विंशत्यग्रं ध्रुवाः सन्ति तारकाः पुष्करार्धके ।
त्रिपञ्चाशत् सहस्राणि त्रिंशदग्रं शतद्वयम् ॥६४॥
ध्रुवाः स्युस्तारका एषां चलनं जातु नास्त्यपि ।
तिर्यग्लोके समस्ताश्च ध्रुवाज्योतिष्कनिर्जराः ॥६५॥

अर्थः—जम्बूद्वीप में ३६ ध्रुव ताराएँ है। लवण समुद्र में १३९ धातकी खण्ड मे १०१०, कालोदधि के ऊपर ४११२० और पुष्करार्ध के ऊपर ५३२३० ध्रुवताराएँ हैं ॥६२-६४॥ इसप्रकार अढाई द्वीप मे (३६+१३९+१०१०+४११२०+५३२३०=) ९५५३५ ध्रुवताराएँ हैं, ये कभी भी चलायमान नही होती। अर्थात् गमन नही करती। तिर्यग्लोक में अर्थात् अढाई द्वीप से बाहर के सभी ज्योतिर्देव ध्रुव हैं। अर्थात् कभी गमन नही करते ॥६५॥

अब मेरु से ज्योतिष्क देवों की दूरी का प्रमाण, उनके गमन का क्रम और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का एवं सूर्य से वेदी के अन्तर का प्रमाण कहते है :—

एकः विंशाधिकैकादश शतैर्योजनैश्च खे ।
तिर्यग्मेरुं विहायैते परिभ्रमन्ति सर्वतः ॥६६॥
सर्वज्योतिष्कवृन्दार्धाः स्वस्वद्वीपाम्बुधिं श्रिताः ।
ज्योतिष्का मर्त्यलोकस्यैकस्मिन् भागे चलन्ति च ॥६७॥
अन्ये ज्योतिर्गणार्धा ज्योतिष्कामराभ्रमन्त्यपि ।
खे स्वस्वसद्विमानस्था भागेऽन्यस्मिन्निरन्तरम् ॥६८॥

लवणाद्याः स्वविष्कम्भाः सूर्यार्धमण्डलोनिताः ।
स्वसूर्यार्धेन संभक्तास्तदन्तरं द्विसूर्ययोः ॥६९॥
सूर्यान्तरं यदेवात्र तस्यार्धमन्तरं हि तत् ।
वेदिकासन्नमार्गस्य दिवाकरस्य जायते ॥७०॥

अर्थः–सर्व ज्योतिर्गण सुदर्शन मेरु को तिर्यग् रूप से ११२१ योजन (४४८४००० मील) छोड़ कर प्रदक्षिणा रूप से मेरु के चारो ओर आकाश में परिभ्रमण करते है ॥ ६६ ॥ मनुष्यक्षेत्रस्थ द्वीप समुद्रो मे से अपने अपने द्वीप समुद्रो के ऊपर ज्योतिष्क देवों के जो देव समूह अवस्थित हैं, उनका अर्ध अर्ध भाग अपने अपने द्वीप समुद्र के एक भाग में और अन्य दूसरा अर्ध भाग दूसरे एक भाग में संचार (गमन) करता है ॥६७-६८॥ लवण समुद्र एव धातकी खण्ड आदि स्थानो में जितने जितने सूर्य है, उनके अर्ध अर्ध सूर्य बिम्बो के विष्कम्भ को लवण समुद्रादि के स्व स्व विष्कम्भों में से घटाकर अवशेष में स्वकीय सूर्यों के अर्धभाग का भाग देने पर एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर प्राप्त होता है, तथा वेदी से निकटवर्ती सूर्य का अतर उपर्युक्त अन्तर का अर्ध प्रमाण होता है । अर्थात् लवण समुद्र में चार सूर्य है, इनके अर्ध (२) सूर्यो के विष्कम्भ का प्रमाण ($\frac{४८}{६१}$ × २ =) $\frac{९६}{६१}$ योजन हुआ, इसे लवण समुद्र के २००००० योजन मे से घटाने पर ($\frac{२०००००}{१}$ — $\frac{९६}{६१}$) = $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ योजन अवशेष बचता है। इसमे लवण समुद्र के सूर्यों (४) के अर्ध भाग (२) का भाग देने पर ($\frac{१२१९९९०४}{६१ × २}$) ९९९९९$\frac{१३}{६१}$ योजन लब्ध प्राप्त होता है । यही एक सूर्य से दूसरे सूर्य के अन्तर का प्रमाण है, और वेदी से निकटवर्ती सूर्य का अन्तर उपर्युक्त अन्तर का अर्ध (४९९९९$\frac{३७}{६१}$ योजन) प्रमाण है । अर्थात् लवण समुद्र की अभ्यतर वेदी से प्रथम सूर्य ४९९९९$\frac{३७}{६१}$ योजन (१९९९९८४२६$\frac{१४}{६१}$ मील) दूर रहता है । इस सूर्य से दूसरा सूर्य ९९९९९$\frac{१३}{६१}$ यो० (३९९९९६८५२$\frac{२८}{६१}$ मील) दूर है, और इस सूर्य से लवण समुद्र की बाह्य वेदी ४९९९९$\frac{३७}{६१}$ यो० दूर है ॥६९–७०॥

अस्य व्यक्तं व्याख्यानं क्रियते :—

लवणाब्धौ सूर्ययोरन्तर नवनवतिसहस्र नवशत नवनवतियोजनानि योजनस्यैक षष्टिभागानां त्रयोदशभागाः । धातकोखण्डे सूर्ययोरन्तर षट्षष्टिसहस्रषट्शतपञ्चषष्टि योजनानि योजनस्य त्र्यशीत्यग्रशतभागाना एकषष्ट्यधिकशतभागाः ॥ कालोदधौ सूर्ययोरन्तरं अष्टत्रिशत्सहस्र चतुर्णवति योजनानि, योजनस्यैकाशीति युत द्वादशशतभागाना अष्टसप्तत्यग्रपञ्चशतभागा. । पुष्करार्धे सूर्ययोरन्तरं द्वाविंशतिसहस्रद्विशतैकविंशतियोजनानि । योजनस्य षण्णवत्यग्रैक विशतिशत भागानां षट्पञ्चाशदधिकनवशतभागाः ।

अब इन अन्तरालों का स्पष्ट व्याख्यान करते हैं :—

लवरण समुद्र में एक सूर्य से दूसरे सर्य के अन्तर का प्रमाण ९९९९९ १३/६१ योजन है। घातकी-खण्ड में एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर ६६६६५ १११/१८३ योजन है। कालोदधि समुद्र में सूर्य से सूर्य का अन्तर ३८०९४ ५७८/१२८१ योजन है, और पुष्करार्ध द्वीप मे सूर्य से सूर्य का अन्तराल २२२२१ ९५५/२१९६ या २३९/५४९ योजन प्रमाण है।

अब मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग में सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों के अवस्थान का निरधारण करते है :—

मानुषोत्तरतो बाह्य भागे लक्षार्धयोजनान् ।
मुक्त्वा ज्योतिष्कदेवानां प्रथमं वलयं भवेत् ॥७१॥

वलयेऽस्मिश्चतुश्चत्वारिंशदग्रशत प्रमाः ।
स्युश्चन्द्रांस्तत्समाः सूर्याः सर्वे ग्रहादयः क्रमात् ॥७२॥

ततो हि योजनानां च लक्षे लक्षे गते सति ।
ज्योतिषां पुष्करार्धे च वलयं स्यात्पृथक् पृथक् ॥७३॥

किन्तु चन्द्राश्च चत्वारो वलये वलये क्रमात् ।
वर्धन्ते भानवो यावद्वलयं सप्तमं भवेत् ॥७४॥

पिण्डीकृतानि सर्वाणि सन्त्यष्टौ वलयान्यपि ।
मानुषोत्तरशैलाद्रेर्बाह्यस्थ पुष्करार्धके ॥७५॥

ततो योजनलक्षार्ध प्रविश्य पुष्करास्बुधौ ।
तद्वेदीमूलतस्तेषां नवमं वलयं भवेत् ॥७६॥

वलयेऽस्मिन् भवन्त्यष्टाशीत्यग्रद्विशतप्रमाः ।
चन्द्रास्तावन्त आदित्याः समभागे व्यवस्थिताः ॥७७॥

ततोऽत्र योजनानां च लक्षे लक्षे गते क्रमात् ।
पूर्वक्षेत्रं समावेष्टयास्त्येकैकं वलयं पृथक् ॥७८॥

अत्रापि पूर्ववच्चन्द्राश्चत्वारो भानवस्तथा ।
वर्धन्तेऽमीग्रहाद्यैश्च वलयं वलयं प्रति ॥७९॥

अनेन विधिना सन्त्यसंख्यद्वीपाब्धिषु स्फुटम् ।
असंख्यवलयान्येव चन्द्रादिज्योतिषां क्रमात् ॥८०॥

योजनानां तथैकैकलक्षान्तरान्वितान्यपि ।
मध्यलोकान्तपर्यन्तं चान्तिमाब्ध्यन्तमञ्जसा ।।८१।।
एषु द्वीपाब्ध्यसंख्येषु तारेशा भानवस्तथा ।
वर्धन्तेऽन्योऽन्य चत्वारएकैकं वलयं प्रति ।।८२।।
अत्रस्था भास्कराः पुष्यनक्षत्रेषु प्रतिष्ठिताः ।
सर्वे चन्द्राश्च तिष्ठन्त्यभिजित्सुसंख्य वर्जिताः ।।८३।।
स्वकीयस्य स्वकीयस्य स्वस्वेन्दुभानुसंख्यकैः ।
वलयस्य विभक्तस्य यदन्तरं परस्परम् ।।८४।।
तदेवान्तरमेव स्याच्चन्द्राच्चन्द्रमसः पृथक् ।
सूर्यात्सूर्यस्य चान्यस्मात्सर्वत्रैषान्तरस्थितिः ।।८५।।

अर्थः—मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग में पर्वत से पचास हजार योजन आगे जाकर सूर्य-चन्द्र आदि ज्योतिष्क देवों का प्रथम वलय है ।।७१।। इस प्रथम वलय में १४४ चन्द्र एवं १४४ सूर्य है, अन्य ग्रहों की अवस्थिति भी इसी क्रम से जानना चाहिए ।।७२।। इस प्रथम वलय से एक एक लाख योजन क्रम से आगे जाते हुए पुष्करार्ध द्वीप में ज्योतिष्क देवों का पृथक् पृथक् एक एक वलय है, तथा प्रत्येक वलय में क्रम से चार चार चन्द्र और चार चार सूर्यो की अपने अपने परिवार देवों के साथ जब तक सातवाँ वलय प्राप्त नही होता, तब तक अभिवृद्धि होती रहती है। इस प्रकार मानुषोत्तर के बाह्य भाग से पुष्करार्ध पर्यन्त के सर्व वलयों का एकत्रित योग आठ है ।।७३-७५।। इसके आगे पुष्करार्ध द्वीप की अन्तिम वेदी से प्रारम्भ कर पुष्करवर समुद्र में पचास हजार योजन भीतर जाकर ९ वाँ वलय है ।।७६।। इस ९ वे वलय में २८८ चन्द्र और २८८ सूर्य समान भाग में अवस्थित हैं ।।७७।। यहाँ से क्रमशः एक एक लाख योजन आगे आगे पुष्करार्ध द्वीप को समावेष्टित करते हुये पृथक् पृथक् एक एक वलय है ।।७८।। यहाँ भी पूर्व के ही सदृश अपने अपने ग्रह आदि परिवार देवों के साथ प्रत्येक वलय में चार चार चन्द्र और चार चार सूर्यो की वृद्धि होती है।। ७९ ।। इसी विधि से असंख्यातद्वीप समुद्रो में क्रमशः चन्द्र आदि ज्योतिष्क देवों के असंख्यात वलय हैं।।८०।। ये वलय मध्यलोक के अन्त मे अवस्थित स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त हैं, तथा इन सभी में एक एक लाख योजन का अन्तर है ।।८१।। इन असख्यात द्वीप समुद्रों में अवस्थित असंख्यात वलयों में से प्रत्येक वलय में अपने अपने परिवार सहित चार–चार चन्द्रों और चार-चार सूर्यों की अभिवृद्धि होती है (किन्तु इस वृद्धि का सम्बन्ध अपने अपने द्वीप समुद्र पर्यन्त ही होता है, अन्य द्वीप समुद्रों से नही। अन्य द्वीप समुद्रों के प्रथम वलय में तो इनकी संख्या पूर्व द्वीप समुद्र के प्रथम वलय से नियमतः दुगुणी हो जाती है । जैसेः–बाह्य पुष्करार्ध द्वीप में कुल आठ वलय है। प्रथम वलय में १४४ चन्द्र हैं, इसके आगे प्रत्येक वलय में चार चार की

वृद्धि होते हुए १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८ और ८ वे वलय में १७२ चन्द्रो की प्राप्ति हुई, किन्तु पुष्करवर समुद्र मे अवस्थित ६वे वलय मे चन्द्रो की संख्या २८८ है, जो पुष्करार्ध द्वीप स्थित प्रथम वलय से दूनी है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना।) ॥८२॥ इन असख्यात वलय मे अवस्थित असख्यात सूर्य स्व स्व परिवार सम्बन्धी पुष्य नक्षत्रो पर अवस्थित है और असख्यात चन्द्र अभिजित् नक्षत्रों पर अवस्थित है ॥ ८३ ॥ अपने अपने वलय (की परिधि के प्रमाण) को स्व स्व वलय स्थित सूर्य चन्द्रो की सख्या से भाजित करने पर जो अन्तर प्राप्त होता है वही अन्तर अपने वलय मे एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का होता है [यथा— मानुषोत्तर पर्वत का सूची व्यास ($\frac{१}{२}$ + २ + ४ + ८ + ८ = २२$\frac{१}{२}$ × २ =) ४५ लाख योजन है, इसमे बाह्य पुष्करार्ध के दोनो ओर का पचास-पचास हजार मिला देने से बाह्य पुष्करार्ध के प्रथम वलय के सूची व्यास का प्रमाण (४५ + १) = ४६ लाख योजन और इसकी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण १४५४६४७७ योजन हुआ, इसमें प्रथम वलय मे अवस्थित १४४ चन्द्रो का भाग देने पर एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर प्रमाण (१४५४६४७७ ÷ १४४) = १०१०१७$\frac{२९}{१४४}$ योजन प्राप्त हुआ। इसी प्रकार सर्वत्र ज्ञातव्य है] अन्य सर्वत्र भी परस्पर का अन्तर निकालने की यही प्रक्रिया है अर्थात् अन्तर की अवस्थिति इसी प्रकार है ॥८४-८५॥

अत्र व्यासेन वलयेषु परिधिश्चन्द्रान्तरादीनां व्याख्यानं क्रियते :—

मानुषोत्तराद्रे. पुष्करार्धस्य प्रथमे वलये परिधिः एका कोटी पञ्चचत्वारिंशल्लक्षषट्चत्वारिंशत्सहस्रचतुःशतसप्तसप्ततियोजनानि। चतुश्चत्वारिंशदधिकशतचन्द्राः तावन्त आदित्याः स्युः। द्वयोश्चन्द्रयोः सूर्ययोश्चान्तर एकलक्षैकसहस्रसप्तदशयोजनानि, योजनस्य चतुश्चत्वारिंशदग्रशतभागाना एकोनत्रिंशद्भागाश्च। द्वितीये वलये परिधि एका कोट्यैकपञ्चाशल्लक्षाष्टसप्ततिसहस्रनवशतद्वात्रिंशद्योजनानि। अष्टचत्वारिंशदधिकशतनिशाकरा.। तावन्तो दिवाकराश्च। चन्द्रयो. सूर्ययोश्चान्तर एकलक्षद्विसहस्रपञ्चशतषष्टि योजनानि योजनस्य सप्तत्रिंशद्भागाना त्रयोभागाः। तृतीये वलये परिधि एकाकोट्यष्टपञ्चाशल्लक्षैकादशसहस्रत्रिशताष्टाशीति योजनानि। द्विपञ्चाशदधिकशतेन्दवः स्यु। तावन्तो दिनकराश्च। चन्द्रयो सूर्ययोर्द्वयोश्चान्तर एकलक्षचतुःसहस्रद्वाविंशतियोजनानि। योजनस्याष्टादशभागाना एकादशभागाः। चतुर्थे वलये परिधिः एककोटीचतु षष्टि लक्षत्रिचत्वारिंशत्सहस्राष्टशतत्रिचत्वारिंशद्योजनानि। षट्पञ्चाशदग्रशतचन्द्रमस। तत्प्रमा आदित्याश्चचन्द्रयो. सूर्ययोर्द्वयोरन्तर एकलक्षपञ्चसहस्र चतु शतनवयोजनानि क्रोशैकश्च। अनया गणनयापरेष्वसख्य बलयेषु चन्द्रयो सूर्ययोरन्तरमानेतव्य॥

अब व्यास के द्वारा वलय में परिधि व चन्द्रमा का अन्तर आदि कहते है :—

मानुषोत्तर पर्वत से आगे बाह्य पुष्करार्ध द्वीप के प्रथम वलय की परिधि का प्रमाण १४५४६-४७७ योजन है। उस वलय में चन्द्रों की संख्या १४४ और सूर्यों की संख्या भी १४४ है। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर १०१०१७ २९/१४४ योजन है। दूसरे वलय की परिधि का प्रमाण १५१७८६३२ योजन है। चन्द्र संख्या १४८ और सूर्य संख्या १४८ है। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर १०२५६० ३/३७ योजन है। तीसरे वलय की परिधि का प्रमाण १५८११३८८ योजन है। चन्द्र १५२ और सूर्य १५२ है। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर १०४०२२ योजन और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अंतर १०४०२२ योजन है। चतुर्थ वलय की परिधि का प्रमाण १६४४३८४३ योजन है। इस वलय में चन्द्र संख्या १५६ और सूर्य सख्या १५६ है। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर १०-५४०९ योजन एवं एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर १०५४०९ योजन एक कोस प्रमाण है। इसी प्रकार की गणना से आगे के असख्यात वलयों में अवस्थित एक एक चन्द्र से दूसरे चन्द्रों के एवं एक एक सूर्य से दूसरे सूर्यों के अन्तर का प्रमाण निकाल लेना चाहिए।

अब प्रत्येक द्वीप समुद्रों में वलयों का प्रमाण पृथक् पृथक् कहते हैं :—

पुष्करद्वीपशेषार्धेऽष्टौ सन्ति वलयानि च।
पुष्कराब्धौ क्रमेणैव द्वात्रिंशद् वलयान्यपि ॥८६॥

वलया वारुणीद्वीपे चतुःषष्टिप्रमाणकाः।
वरुणाब्धौ तथाष्टाविंशत्यग्रशतसंख्यकाः ॥८७॥

इत्येवं द्वीपसर्वेषु चासंख्येऽब्धिषु क्रमात्।
द्विगुणा द्विगुणा ज्ञेया वलयासंख्यवर्जिताः ॥८८॥

अर्थः—बाह्य पुष्करार्धद्वीप में ८ वलय है। पुष्करवर समुद्र में ३२, वारुणीवर द्वीप में ६४ और वारुणीवर समुद्र में १२८ वलय है। इसी प्रकार असंख्यात द्वीप समुद्रों में असंख्यात वलय हैं, जिनका प्रमाण क्रमशः दुगुणा दुगुणा जानना चाहिए ॥८६–८८॥

अब सूर्य चन्द्र के चार क्षेत्रों का प्रमाण, उनका विभाग एवं उनकी वीथियों का प्रमाण कहते हैं :—

प्रचारक्षेत्रमेवैकं सूर्यस्य योजनानि च।
सूर्यस्य विम्बयुक्तं दशाग्रपञ्चशतान्यपि ॥८९॥

प्रचारक्षेत्रमिन्दोश्च चन्द्रविम्बयुतं भुवि।
योजनानां जिनोक्तं दशाग्रपञ्चशतप्रमम् ॥९०॥

तन्मध्ये योजनानां चाशीत्यग्रशतसम्मितम् ।
इन्दोर्भानोस्तथा चारक्षेत्रं द्वीपादिमे पृथक् ॥६१॥
तथाब्धौ योजनानां स्यात्त्रिंशदग्रशतत्रयम् ।
दिवाकरस्य चन्द्रस्य चारक्षेत्रं किलादिमे ॥६२॥
सूर्यचन्द्राविमौ चाद्यद्वीपाब्ध्यो भ्रंमतोऽन्वहम् ।
नरक्षेत्रे भ्रमन्त्यन्ये स्वस्वद्वीपाब्धिगोचराः ॥६३॥
शतं चतुरशीत्यग्रं मार्गाः सूर्यस्य सन्ति च ।
चारक्षेत्रेऽखिला इन्दोर्मार्गाः पञ्चदशप्रमाः ॥६४॥
एषां मध्ये व्रजेदेकं मार्गं दिनं दिनं प्रति ।
दिननाथस्तथा चन्द्रः क्रमेणैषां सदागतिः ॥६५॥

अर्थ—(सूर्य-चन्द्र के गमन करने की क्षेत्र गली को चार क्षेत्र कहते है। दो चन्द्रो और दो सूर्यो के प्रति एक एक चार क्षेत्र होते हैं।) सूर्य बिम्ब के विस्तार ($\frac{४८}{६१}$) प्रमाण से अधिक ५१० योजन अर्थात् ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन (२०४३१४७$\frac{३३}{६१}$ मील) विस्तार वाला एक चारक्षेत्र सूर्य का है ॥८९॥ तथा जिनेन्द्र द्वारा चन्द्र विम्ब के विस्तार ($\frac{५६}{६१}$ यो०) से अधिक ५१० योजन अर्थात् ५१०$\frac{५६}{६१}$ योजन (२०४३६७२$\frac{८}{६१}$ मील) विस्तार वाला एक चारक्षेत्र चन्द्र का है।। ९० ॥ चन्द्र-सूर्यों के अपने अपने चारक्षेत्रो के विस्तार में से जम्बूद्वीप मे इनके चार क्षेत्र का प्रमाण मात्र १८० योजन (७२०००० मील) है। अवशेष ३३० योजन प्रमाण वाला चार क्षेत्र लवणसमुद्र में है। अर्थात् जम्बूद्वीपस्थ चन्द्र-सूर्य जम्बूद्वीप के भीतर १८० योजन मे ही विचरते है। शेष ३३० योजन लवण समुद्र मे विचरण करते हैं ॥९१-९२॥ इस प्रकार मनुष्यक्षेत्र मे जम्बूद्वीप सम्बन्धी चन्द्र सूर्य जम्बूद्वीप और लवण समुद्र इन दोनों मे भ्रमण करते हैं, किन्तु अवशेष धातकीखण्ड को आदि कर पुष्करार्ध पर्यन्त द्वीप समुद्र सम्बन्धी चन्द्र सूर्यो का भ्रमण अपने अपने द्वीप समुद्रो मे ही होता है, उसके बाहर नही। अर्थात् वहाँ के चन्द्र सूर्यों के चारक्षेत्र अपने अपने द्वीप समुद्रो में ही हैं ॥९३॥ अपने अपने प्रमाण वाले चारक्षेत्रो मे चन्द्र की १५ गलियाँ तथा सूर्य की १८४ गलियाँ है ॥९४॥ इन अपनी अपनी गलियो के मध्य अनुक्रम से निरन्तर गमन करते हुए प्रतिदिन दो-दो सूर्य और दो-दो चन्द्र सचार करते हैं। अर्थात् आमने सामने रहते हुए दो सूर्य प्रतिदिन एक गली को पूर्ण कर लेते है ॥९५॥

अधुना बालावबोधाय संस्कृतभाषयादित्यस्य किञ्चिद्विवरणं विधीयते :—

तेषा मार्गाणा मध्ये जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे श्रावणकृष्णपक्षादिदिने कर्कटसक्रान्ति दिवसे दक्षिणायन प्रारम्भे निषधकुलपर्वतस्योपरिप्रथममार्गेरविः प्रथमोदय करोति। तदादित्यविमानध्वजस्तम्भाग्र-

स्थितां स्फुरद्रत्नमयीं महतीं जिनेश्वरप्रतिमां वीक्ष्य प्रत्यक्षेणायोध्या नगरस्थचक्री निर्मलसम्यक्त्वानुरागेण जिनभक्त्या च पुष्पाञ्जलिमुत्क्षिप्य नुतिपूर्वकमर्घ ददाति। अभिजित्नक्षत्रचन्द्रयोः संयोगे श्रावणे मासि कृष्णपक्षस्य प्रतिपद्दिने युगस्यादिः स्यात्। आगमोक्त दिनानयन विधिना वर्षस्य षट्षष्ट्यधिकत्रिशतदिवसाः भवन्ति तस्य दिनसमूहार्धस्य यदा जम्बूद्वीपाभ्यन्तराद्दक्षिणेन बहिर्भागेषु भास्करो गच्छति तदा तस्य दक्षिणायन संज्ञा। यदा पुनर्लवणसमुद्रात्सकाशादुत्तरेणाभ्यन्तरमार्गेषु भानुरायाति तदास्योत्तरायण संज्ञेति तत्र यदा जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे प्रथममार्गे परिधौ कर्कट संक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे दिनकरस्तिष्ठति तथा चतुर्नवतिसहस्र पञ्चशतपञ्चविंशतियोजनप्रमाणः उत्कर्षेणादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातप विस्तारः प्रसर्पति। शतयोजनप्रम ऊर्ध्वातपश्च। अधस्तापोऽष्टादश शतप्रमाणो जायते। अष्टादशमुहूर्तैर्दिवसो भवति। द्वादशमुहूर्तै रात्रिश्च ततः क्रमेणातपहानौ सत्यां मुहूर्तद्वयस्यैक षष्टि भागकृतस्यैको भागो दिवस मध्ये दिनं दिनं प्रति हीयते। यावल्लवणाब्धौ अवसानमार्गे माघमासे मकरसंक्रान्तौ उत्तरायणदिने षोडशाधिक त्रिषष्टिसहस्र योजनप्रमो जघन्येन सूर्यविमानस्यातपो विस्तरति। द्वादशमुहूर्तैर्दिवसो भवेत्। अष्टादशमुहूर्तैरात्रिश्च।

अब मन्द बुद्धि जनों को ज्ञान कराने के लिये सूर्य का कुछ विवरण करते हैं :—

उन १८४ गलियों में से जम्बूद्वीप की अभ्यन्तर (प्रथम) वीथि (मार्ग) में प्रवेश करते हुए श्रावण मास, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को कर्क संक्रान्ति के दिन दक्षिणायण के प्रारम्भ में निषध कुलाचल पर्वत के तट से (१४६२१ $\frac{४७}{३६०}$ योजन) ऊपर आने पर सूर्य प्रथम मार्ग में प्रथम उदय करता है। (अर्थात् पंचवर्षीय युग की समाप्ति के बाद दूसरे युग के प्रारम्भिक सूर्य उदय को प्रथम उदय कहते हैं।) उस समय सूर्यविमानस्थ ध्वजस्तम्भ के अग्रभाग पर स्थित देदीप्यमान रत्नमयी जिनेन्द्र भगवान् की महान प्रतिमा को प्रत्यक्ष देख कर अयोध्या (नगरस्थ अपने ८४ खण्ड के महल के ऊपर) स्थित प्रथम चक्रवर्ती क्षायिक सम्यक्त्व के अनुराग से तथा जिनेन्द्र भक्ति से पुष्पाञ्जलि देकर नमस्कार पूर्वक (भगवान को) अर्घ चढाता है। अभिजित् नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का संयोग होने पर श्रावण मास, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन पचवर्षीय युग का प्रारम्भ होता है। आगम (त्रिलोकसार गाथा ४०८-४०९) में कही हुई दिनानयन विधि के अनुसार एक वर्ष में ३६६ दिन होते है। एक अनयन में इस दिन समूह का अर्धभाग अर्थात् १८३ दिन होते है। जम्बूद्वीप की अभ्यतर वीथी से प्रारम्भ कर जब सूर्य दक्षिण की ओर बाह्य भागों में गमन करता है, तब उसकी दक्षिणायन सज्ञा है और जब सूर्य लवणसमुद्र से उत्तर की ओर अभ्यतर की ओर आता है तब उसकी उत्तरायण सज्ञा है, इस प्रकार जब सूर्य जम्बूद्वीप के भीतर प्रथम मार्ग की परिधि मे कर्क संक्रान्ति के दिन दक्षिणायन का प्रारम्भ करता हुआ ठहरता है, तब उत्कृष्ट रूप से सूर्य, विमान के आगे (पूर्व में) और पीछे (पश्चिम मे) ताप क्षेत्र ९४५२५ योजन (३७८१००००० मील) पर्यन्त फैलाता है। (तथा उत्तर में ४९८२० योजन और दक्षिण में ३३५-

१३ योजन तक फैलाता है) इसीप्रकार ऊपर की ओर आतप का विस्तार १०० योजन (४००००० मील) पर्यन्त है (क्योकि सूर्य बिम्ब से ऊपर १०० योजन पर्यन्त हो ज्योतिर्लोक है और नीचे की ओर आतप का प्रमाण १८०० योजन (७२००००० मील) पर्यन्त है [क्योकि सूर्य बिम्ब से चित्रा पृथ्वी ८०० योजन (३२००००० मील) नीचे है और १००० योजन चित्रा की जड है, अत: योग (१०००+८००)=१८०० योजन होता है।] उस समय अर्थात् दक्षिणायन के प्रारम्भ मे १८ मुहूर्त (१४ घं० २४ मिनिट) का दिन और १२ मुहूर्त (९ घ० ३६ मि०) की रात्रि होती है। प्रथम वीथी से जब सूर्य आगे बढता है तब क्रम से आतप के प्रमाण मे हानि होती जाती है और इसीलिये प्रत्येक दिन $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त (१$\frac{३५}{६१}$ मि०) की हानि होने लगती है। अर्थात् युग के प्रारम्भ मे श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन सूर्य प्रथम वीथी मे था, उस दिन १८ मुहूर्त का दिन और १२ मुहूर्त की रात्रि थी, किन्तु दोज के दिन जब सूर्य दूसरी गली मे पहुँचा तब $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त कम हो गये और दोज को ($\frac{१८}{१}$—$\frac{२}{६१}$=) १७$\frac{५९}{६१}$ मुहूर्त का दिन होगा। इसी प्रकार आतप की हानि के साथ साथ $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त हानि होते हुए जब सूर्य लवणसमुद्र की अन्तिम वीथी मे पहुँच कर माघ मास मे मकर सक्रान्ति के दिन उत्तरायण का प्रारम्भ करता है, तब जघन्य से सूर्य के आतप का विस्तार ६३०१६ योजन होता है और उस दिन १२ मुहूर्त का दिन तथा १८ मुहूर्त की रात्रि होती है। (यही से प्रतिदिन $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त की वृद्धि प्रारम्भ हो जायगी)।

अब रवि शशि के गमन प्रकार को दृष्टान्त द्वारा कह कर एक वीथी से दूसरी वीथी के अन्तर प्रमाण आदि के जानने का साधन बतलाते हैं :—

आदिमार्गाश्रितौ मन्दौ बहिः शीघ्रौ च निर्गमे ।
तौ मार्गान् समकालेन सर्वान् साधयतः क्रमात् ।।९६।।
आदिमार्गे गजाकारा गतिर्मध्याध्वनि स्मृताः ।
अश्ववद्गतिरन्ताध्वनि सिंहाभा गतिस्तयोः ।।९७।।
सूर्यचन्द्रमसोश्चान्यद्वीथी वीथ्यन्तरादिकम् ।
लोकानुयोगसिद्धान्ते ज्ञेयं परिधिलक्षणम् ।।९८।।

अर्थ.—सूर्य एव चन्द्र प्रथम (अभ्यन्तर) वीथी मे मन्द गति से गमन करते है, किन्तु वे जैसे जैसे बाहर (द्वितीयादि गलियो मे) की ओर बढते जाते है वैसे ही उनकी गति क्रमश. तेज होती जाती है। वे दोनो समकाल (६० मुहूर्त) मे ही हीनाधिक प्रमाण वाली सर्व गलियो को पूरा कर लेते हैं। प्रथम आदि गलियो में उन दोनो की चाल हाथी सदृश, मध्यम वीथी मे अश्व सदृश और अन्तिम वीथी मे सिंह के सदृश है ।।९६–९७।। चन्द्र और सूर्यों की वीथियों का पारस्परिक अन्तर तथा इनकी

परिधियों का प्रमाण आदि करणानुयोग (त्रिलोकसार गा० ३७७-३७८-३८५-३८६-३८७ आदि) से ज्ञात कर लेना चाहिये ॥९८॥

अब २८ नक्षत्रों के नामों का दिग्दर्शन कराते हैं :—

कृतिकारोहणीनाम ततो मृगशिरस्तथा ।
आर्द्रा पुनर्वसुर्नाम्ना पुष्याश्लेषा मघाह्वयाः ॥९९॥
पूर्वादि फाल्गुनी चोत्तरफाल्गुनी समाह्वयम् ।
हस्ता चित्रा तथा स्वाति विशाखाभिधमेव च ॥१००॥
अनुराधाख्यकं ज्येष्ठा नक्षत्रं मूलसंज्ञकम् ।
पूर्वाषाढाभिधं चोत्तराषाढाख्योऽभिजित्ततः ॥१०१॥
श्रवणाख्यं धनिष्ठा शतभिषा नामकं ततः ।
पूर्वाभाद्रपदाख्यं चोत्तरभाद्रपदाख्यकम् ॥१०२॥
रेवतीसंज्ञनक्षत्रमश्विनी भरणीति च ।
अष्टाविंशति नामानि नक्षत्राणामनुक्रमात् ॥१०३॥

अर्थः—१ कृतिका, २ रोहणी, ३ मृगशीर्षा, ४ आर्द्रा, ५ पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७ आश्लेषा, ८ मघा, ९ पूर्वाफाल्गुनी, १० उत्तराफाल्गुनी, ११ हस्त, १२ चित्रा, १३ स्वाति, १४ विशाखा, १५ अनुराधा, १६ ज्येष्ठा, १७ मूल, १८ पूर्वाषाढा, १९ उत्तराषाढा, २० अभिजित्, २१ श्रवण, २२ धनिष्ठा, २३ शतभिषा, २४ पूर्वाभाद्रपद, २५ उत्तराभाद्रपद, २६ रेवती, २७ अश्वनी और २८ भरणी नाम वाले ये २८ नक्षत्र अनुक्रम से है ॥९९–१०३॥

अब प्रत्येक नक्षत्र के ताराओं की संख्या और कृतिका आदि नक्षत्रों की परिवार ताराओं का प्रमाण प्राप्त करने की विधि कहते हैं :—

ताराः षट्पञ्चतिस्रस्तु ह्येकाषट्तिस्र ईरिताः ।
षट्चतस्रोऽपि कथ्यन्ते द्वे द्वे पञ्च ततः परम् ॥१०४॥
एकैकाथ चतस्रोपि षट्तिस्रो नवतारकाः ।
चतस्रस्तु चतस्रोपि तिस्रस्त्रिस्त्रस्तु पञ्च च ॥१०५॥
शतकमेकादशाग्रे च द्वे द्वे द्वात्रिंशदीरिताः ।
पञ्च तिस्रोप्यमूस्तारासंख्यभानां क्रमाद्विदुः ॥१०६॥

एकादशसहस्राणि स्वस्वताराहतानि च ।
स्मृतं परिजनस्येदं संख्यानं कृतिकादिषु ॥१०७॥

अर्थः—कृतिका आदि २८ नक्षत्रों के ताराओं की संख्या क्रमश' छह, पाँच, तीन, एक, छह, तीन, छह, चार, दो, दो, पाँच, एक, एक, चार, छह, तीन, नौ, चार, चार, तीन, तीन, पाँच, एक सौ ग्यारह, दो, दो, बत्तीस, पाँच और तीन है ॥१०४-१०६॥ एक हजार एक सौ ग्यारह को अपने अपने ताराओं के प्रमाण से गुणित करने पर कृतिका आदि नक्षत्रो के परिवार ताराओ का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥१०७॥

विशेषार्थः—११११ को अपने अपने ताराओ के प्रमाण से गुणा करने पर परिवार ताराओ का प्रमाण प्राप्त होता है । जैसे :—

नक्षत्र	परिवार ताराओ की सख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओ की सख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओ की सख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओ की सख्या
कृ०	११११×६=६६६६	मघा	११११×४=४४४४	अनु०	११११×६=६६६६	धनि०	११११×५=५५५५
रो०	११११×५=५५५५	पूर्वा फा०	११११×२=२२२२	ज्येष्ठा	११११×३=३३३३	शत०	११११×१११ १२३३२१
मृग०	११११×३=३३३३	उ फा०	११११×२=२२२२	मूल	११११×९=९९९९	पू.भा.	११११×२=२२२२
आर्द्रा	११११×१=११११	हस्त	११११×५=५५५५	पू षा	११११×४=४४४४	उ भा.	११११×२=२२२२
पुन०	११११×६=६६६६	चित्रा	११११×१=११११	उ षा	११११×४=४४४४	रेवती	११११×३२= ३५५५२
पुष्य	११११×३=३३३३	स्वाति	११११×१=११११	अभि	११११×३=३३३३	अश्वि.	११११×५=५५५५
आ०	११११×६=६६६६	विशा.	११११×४=४४४४	श्रव	११११×३=३३३३	भरणी	११११×३=३३३३

नोट :—इस प्रकार प्रत्येक नक्षत्र सम्बन्धी ताराओ का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

अब जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रों के नाम एवं संख्या कहते हैं :—

पुनर्वसुविशाखारोहिणीचोत्तरफाल्गुनी ।
उत्तराषाढसंज्ञं चोत्तरभाद्रपदाह्वयम् ॥१०८॥
एतानि षड् जघन्यानि नक्षत्राणि भवन्त्यपि ।
आश्लेषा भरणी चार्द्रा स्वातिर्ज्येष्ठाभिधानकम् ॥१०९॥
ततः शतभिषैतानि षडुत्तमानि सन्ति च ।
शेष षोडशनक्षत्राणि मध्यमानि निश्चितम् ॥११०॥

अर्थः—पुनर्वसु, विशाखा, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ये ६ नक्षत्र जघन्य संज्ञक है। आश्लेषा, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, ज्येष्ठा और शतभिषक् नाम वाले ये छह नक्षत्र उत्कृष्ट संज्ञक हैं, तथा शेष अश्वनी, कृतिका, मृगशीर्षा, पुष्य, मघा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नाम वाले ये पन्द्रह नक्षत्र मध्यम संज्ञक है॥१०८-११०॥

अब कृतिका आदि ताराओं के आकार विशेष कहते हैं :—

व्यञ्जनं शकटाकारं मृगशीर्षा हि दीपिका ।
तोरणाभं सितच्छत्रं वल्मीकसन्निभं तथा ॥१११॥
रेखा गोमूत्रजा हारो युगहस्तोऽम्बुजं ततः ।
द्वीपस्त्वैरिणिकाहारो वीणाशृङ्गं हि वृश्चिकः ॥११२॥
भग्नवापीनिभं सिंहो गजकुम्भस्थलोपमः ।
मृदङ्गाभं पतत्पक्षी सेनेभ-गात्रसञ्चयः ॥११३॥
नौः पाषाणस्तथा चुल्ली चेत्याकारा इमे क्रमात् ।
प्रोदिताः कृत्तिकादीनां नक्षत्राणां जिनेश्वरैः ॥११४॥

अर्थः—कृतिका आदि नक्षत्रों की ताराएँ क्रमशः वीजना सदृश, गाड़ी की उद्धिका सदृश, मृग के शिर सदृश, दीपक, तोरण, छत्र वलमीक (बाँबी) गोमूत्र, हार, युग, हाथ, उत्पल (नील कमल), दीप, धोंकनी, वरहार, वीणाशृङ्ग, वृश्चिक (बिच्छू), नष्टवापी, सिंह, कुम्भ, गज कुम्भ, मुरज (मृदङ्ग), गिरते हुए पक्षी, सेना, हाथी के पूर्व शरीर, हाथी के उत्तर शरीर, नाव, पत्थर और चूल्हे के सदृश आकार वाली होती है ॥१११-११४॥

विशेषार्थ :—कृतिका आदि २८ नक्षत्रों के ताराओं की संख्या और उन ताराओं के आकार निम्न प्रकार हैं :—

क्रमांक		ताराओ की सख्या	ताराओ के आक ा	क्रमांक	नक्षत्र	ताराओ की ख्या	ताराओ के आकार
१	कृतिका	६ तारा	वीजना सदृश	१५	अनुराधा	६	वर (उत्कृष्ट) हार सदृश
२	रोहणी	५ ,,	गाडी की उद्धिका	१६	ज्येष्ठा	३	वीणाशृङ्ग सदृश
३	मृगशीर्षा	३ ,,	मृग के शिर सदृश	१७	मूल	९	वृश्चिक (बिच्छु) सदृश
४	आर्द्रा	१ ,,	दीपक सदृश	१८	पूर्वाषाढ़ा	४	नष्ट वापी सदृश
५	पुनर्वसु	६ ,,	तोरण	१९	उत्तराषाढ़ा	४	सिंह कुम्भ ,,
६	पुष्य	३ ,,	छत्र	२०	अभिजित्	३	गज कुम्भ ,,
७	आश्लेषा	६ ,,	वल्मीक (बाँवी)	२१	श्रवण	३	मुरज (मृदङ्ग) सदृश
८	मघा	४ ,,	गौमूत्र रेखा सदृश	२२	धनिष्ठा	५	गिरते हुए पक्षी ,,
९	पूर्वा फाल्गुनी	२ ,,	हार ,,	२३	शतभिषा	१११	सैन्य (सेना)
१०	उत्तरा ,,	२ ,,	युग ,,	२४	पूर्वाभाद्र०	२	हाथी के पूर्व शरीर सदृश
११	हस्त	५ ,,	हाथ ,,	२५	उत्तराभाद्र०	२	,, ,, उत्तर ,, ,,
१२	चित्रा	१ ,,	उत्पल (नील कमल	२६	रेवती	३२	नाव ,,
१३	स्वाति	१ ,,	दीप सदृश	२७	अश्विनी	५	पत्थर ,,
१४	विशाखा	४ ,,	पटेरा या धौकनी	२८	भरणी	३	चूल्हे के ,,

अब ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु का कथन करते हैं :—

लक्षवर्षाधिकं पल्यमायुश्चन्द्रस्य कीर्तितम् ।
सहस्रवर्षसंयुक्तं पल्यं सूर्यस्य जीवितम् ।।११५।।
शुक्रस्यायुश्च पल्यैकं शतवर्षाधिकं मतम् ।
बृहस्पतेश्च पल्यैकमखण्डं जीवितम् भवेत् ।।११६।।
मङ्गलस्य बुधस्यापि शनैश्चरस्य जीवितम् ।
स्यात्प्रत्येकं च पल्यार्धं तारकाणां तथोत्तमम् ।।११७।।
आयुः पल्यचतुर्थांशः सर्वजघन्यमेव तत् ।
पल्यैकस्याष्टमोभागः सर्वनीचामृताशिनाम् ।।११८।।

अर्थः—चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु एक पल्य और एक लाख वर्ष, सूर्य की एक पल्य और एक हजार वर्ष, शुक्र की एक पल्य और १०० वर्ष तथा वृहस्पति की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण है। ।।११५-११६।। मङ्गल, बुध और शनिश्चर में प्रत्येक की उत्कृष्ट आयु अर्ध-अर्ध पल्य प्रमाण है। तारागणों की उत्कृष्ट आयु पाव ($\frac{1}{4}$) पल्य है। सूर्यादि ग्रहों की जघन्य आयु पाव ($\frac{1}{4}$) पल्य प्रमाण है। सर्व नीच देवों की आयु पल्य के आठवें भाग अर्थात् $\frac{1}{8}$ पल्य प्रमाण होती है ।।११७-११८।।

अब सूर्यचन्द्र की पट्टदेवियों एवं परिवार देविय की संख्या कह कर देवियों को आयु का प्रमाण बतलाते हैं :—

चन्द्रप्रभा सुसीमाख्या प्रभावत्यर्चिमालिनी ।
चन्द्रस्येमाश्चतस्रः स्युर्महादेव्यो मनःप्रियाः ।।११९।।
देवी इन्द्रप्रभा सूर्यप्रभाघनकराह्वया ।
तथार्चिमालिनी भानोश्चतस्रो बल्लभा इमाः ।।१२०।।
आसामष्टमहादेवीनां प्रत्येकं पृथक् पृथक् ।
देव्यो द्वि द्वि सहस्राणि स्युः परिवारसंज्ञिकाः ।।१२१।।
स्वकीयानां स्वकीयानां देवानामायुरस्ति यत् ।
तस्यार्ध स्वस्वदेवीनां ज्योतिष्काणां च जीवितम् ।।१२२।।

अर्थः—चन्द्रप्रभा, सुसीमा, प्रभावती और अर्चिमालनी ये चारों मन को प्रिय लगने वाली चन्द्रमा की महादेवियाँ है ।।११९।। इन्द्रप्रभा, सूर्यप्रभा, घनकरा (प्रभङ्करा) और अर्चिमालनी ये चार महादेवियाँ सूर्य की हैं ।। १२० ।। इन आठो महादेवियों में से प्रत्येक महादेवी की पृथक् पृथक् दो दो

हजार परिवार देवियाँ हैं ॥१२१॥ पाँचों ज्योतिष देवों के समुदाय में अपने अपने देवों की आयु का जो प्रमाण है, उनकी देवियों की आयु का प्रमाण उनसे (अपने अपने देवो से) आधा-आधा है ॥१२२॥

अब ज्योतिष्क देवों के अवधिक्षेत्र और भवनत्रिक देवों के गमन क्षेत्र का कथन करते हैं:—

संख्यातीतसहस्राणि योजनानां परोऽवधिः ।
ज्योतिष्काणां जघन्यश्च तिर्यक् संख्यातयोजनः ॥१२३॥
कियन्मात्रोऽवधिस्तेषामधोलोकेऽपि जायते ।
भावना व्यन्तरा ज्योतिष्का गच्छन्ति स्वयं क्वचित् ॥१२४॥
तृतीयक्षितिपर्यन्तमधोलोके स्वकार्यतः ।
सौधर्मैशानकल्पान्तमूर्ध्वलोके निजेच्छया ॥१२५॥
तेऽपि सर्वे सुरैर्नीता भावनाद्यास्त्रयोऽमराः ।
षोडशस्वर्गपर्यन्तं प्रीत्या यान्ति सुखाप्तये ॥१२६॥

अर्थः—ज्योतिष्क देवो का उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र असंख्यात योजन प्रमाण है। तिर्यग् रूप से जघन्य क्षेत्र सख्यात योजन प्रमाण है और इन देवो का अधोलोक मे भी कुछ मात्रा तक अवधि क्षेत्र है। भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देव अपने कार्य वशात् अधोलोक मे तीसरी पृथ्वी पर्यन्त जाते है। ऊर्ध्वलोक मे स्व इच्छा से तो सौधर्म-ऐशान स्वर्ग तक ही जाते है, किन्तु सुख प्राप्ति के लिए मित्र आदि अन्य महर्द्धिक देवो द्वारा प्रीति पूर्वक सोलह स्वर्ग पर्यन्त ले जाये जाते हैं ॥१२३-१२६॥

अब ज्योतिष्क देवों के शरीर का उत्सेध, निःकृष्ट देवों की देवांगनाओं का प्रमाण और भवनत्रय में जन्म लेने वाले जीवों के आचरण का विवेचन करते है :—

सप्तचापतनूत्सेधः सर्वज्योतिःसुधाभुजाम् ।
सर्वनिकृष्टदेवानां स्युर्द्वात्रिंशत्प्रमाङ्गनाः ॥१२७॥
उन्मार्गचारिणो येऽत्र विराधितसुदर्शनाः ।
अकामनिर्जरायुक्ता बाला बालतपोऽन्विताः ॥१२८॥
शिथिलाधर्मचारित्रे मिथ्यासंयमधारिणः ।
पञ्चाग्निसाधने निष्ठाः सनिदानाश्च तापसाः ॥१२९॥
अज्ञानक्लेशिनः शैवलिङ्गिनो ये नरादयः ।
भावनादि त्रयाणां ते यान्ति नीचगति त्रयम् ॥१३०॥

ये नीचदेव संशक्ता नीचा नीचगुरुं श्रिताः ।
नीचधर्मरता नीचपाखण्डिभाक्तिकाः शठाः ॥१३१॥
नीचसंयमदुर्वेषा नीचशास्त्रतपोन्विताः ।
तेऽहो सर्वत्र नीचाः स्युर्देवत्वेऽन्यत्र वा सदा ॥१३२॥
मत्वेति जैनसन्मार्गं स्वर्मोक्षदं सुखार्थिभिः ।
विमुच्य श्रेयसे जातु न ग्राह्यं दुःपथं खलम् ॥१३३॥

अर्थः—सर्व ज्योतिष्क देवों (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु, नक्षत्र और तारागणों) के शरीर की ऊचाई सात धनुष प्रमाण है। सर्व निःकृष्ट अर्थात् पुण्य हीन देवों में से प्रत्येक के ३२-३२ ही देवांगनाएँ होती है ॥१२७॥ जो जीव यहाँ उन्मार्ग का आचरण करते हैं, सम्यग्-दर्शन के विराधक है, अकाम निर्जरा से युक्त हैं, अज्ञानी हैं, बाल अर्थात् अज्ञान तप को तपने वाले हैं, धर्माचरण में शिथिल है, खोटे संयम के धारी है, पञ्चाग्नि आदि तपों में श्रद्धा रखते है, निदान सहित तप तपते हैं, अज्ञान तप से शरीर को कष्ट देते हैं तथा शिवलिंग आदि के उपासक हैं वे मनुष्य आदि मर कर भवनत्रय में जन्म लेते हैं एवं अन्य भी तीन नीच गतियों में जन्म लेते हैं ॥१२८-१३०॥ जो कुदेवों में सशक्त है, खोटे गुरुओं का आश्रय ग्रहण करते हैं, खोटे धर्मो में संलग्न रहते हैं, नीच और पाखण्डी गुरुओं के भक्त हैं, मूर्ख हैं, खोटे संयम को धारण कर नाना प्रकार के खोटे वेष बनाते हैं, खोटे शास्त्र और खोटे तप से युक्त है, खेद है कि वे सब नीच देवों (भवनत्रिक आदि) में उत्पन्न होते हैं, तथा अन्यत्र भी नीच गतियों में ही निरन्तर उत्पन्न होते है ॥ १३१-१३२ ॥ ऐसा मान कर सुखार्थी जीवों को स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाले जैन धर्म स्वरूप समीचीन मार्ग को छोड़ कर दुःख देने वाले खोटे मार्ग का आश्रय कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥१३३॥

करणानुयोग शास्त्रों के अध्ययन की प्रेरणाः—

एतत्पुण्यनिधानक जिनमुखोद्‌भूतं सुधर्माकरम्,
धर्मध्यान निबन्धनं ह्यघहरं लोकानुयोगश्रुतम् ।
ज्योतिष्कामरभूतिवर्णनकरं भव्यात्मनां बोधकम्
सारं ज्ञानशिवार्थिनोप्यनुदिनं सिद्धयै पठन्त्वादरात् ॥१३४॥

अर्थः—इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के मुखारविन्द से उद्‌भूत, पुण्य का निधान, समीचीन धर्म का आकर, धर्मध्यान का निबन्धक, पाप का नाशक, भव्य जीवों को बोध देने वाले, सारभूत और ज्योतिष्क देवो की विभूति आदि के वर्णन से युक्त इस करणानुयोग शास्त्र को केवल ज्ञान एवं मोक्ष के

अर्थी भव्यजन आत्म सिद्धि के लिये प्रतिदिन आदर पूर्वक पढ़े। अर्थात् प्रतिदिन इसका स्वाध्याय करना चाहिये ॥१३४॥

धिकारान्त ङ्गलाचरण :—

ज्योतिर्भावन भौमनाकभवनेष्वेव त्रिलोके च ये।
श्रीमच्चैत्यगृहा नृदेवमहिता नित्येतराः पुण्यदाः।
श्रीतीर्थेश्वर मूर्तयोऽति सुभगा याः श्री जिनाद्याश्च ये।
तान् सर्वान् परमेष्ठिनः सुविधिना वन्देऽर्चयेऽर्चाश्च ताः ॥१३५॥

इति श्रीसिद्धांतसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते ज्योतिर्लोक-वर्णनो नाम चतुर्दशोऽधिकारः ॥

अर्थः—भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिषी और कल्पवासी देवों के भवनो में तथा तीन लोक में मनुष्य और देवो द्वारा पूजित, पुण्य प्रदान करने वाले अकृत्रिम और कृत्रिम जिन चैत्यालयो की, अत्यन्त सुभग तीर्थंकरो की प्रतिमाओ की तथा साक्षात् जिनेन्द्र देव आदि पंच परमेष्ठियों की और उन सब प्रतिमाओ की मैं विधि पूर्वक पूजन करता हूँ, वन्दना करता हूँ और अर्चना करता हूँ ॥१३५॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक
नाम महाग्रन्थ मे ज्योतिर्लोक का प्ररूपण करने वाला
चौदहवाँ अधिकार समाप्त ॥



पञ्चदशोऽधिकारः

मङ्गलाचरण :—

त्रिसहस्रोनपञ्चाशीति लक्षश्रीजिनालयान् ।
त्रयोविंशतिसंयुक्तान् वन्दे वन्द्यान्नरामरैः ॥१॥

अर्थः—मनुष्यों और देवों के द्वारा वन्दनीक चौरासी लाख सत्यान्नवे हजार तेईस जिनालयों को मैं (सकलकीर्त्याचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

प्रतिज्ञा :—

अथोर्ध्वलोकभागस्थान् स्वर्गग्रैवेयकादिकान् ।
इन्द्रादिनाकिनां भूतिस्थितियुक्त्यादिकान् ब्रुवे ॥२॥

अर्थः—अब ऊर्ध्वलोक में स्थित सौधर्मादि स्वर्ग और ग्रैवेयक आदि की स्थिति आदि को तथा इन्द्रादिक देवों की विभूति एवं स्थिति आदि को कहता हूँ ॥२॥

अब सोलह स्वर्गों के नाम और उनका अवस्थान कहते हैं :—

सौधर्मैशानकल्पौ द्वौ दक्षिणोत्तरयोः स्थितौ ।
सनत्कुमारमाहेन्द्रौ ब्रह्मब्रह्मोत्तराह्वयौ ॥३॥
स्वर्गौ लान्तवकापिष्टौ दक्षिणोत्तरदिक्श्रितौ ।
द्वौ च शुक्रमहाशुक्रौ युग्मरूपव्यवस्थितौ ॥४॥
द्वौ शतारसहस्रारावानतप्राणताभिधौ ।
आरणाच्युतनामानौ चैते स्वर्गाश्च षोडश ॥५॥

अर्थः—सौधर्म और ऐशान कल्प, क्रमशः दक्षिण और उत्तर में अवस्थित हैं, सनत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर तथा लान्तव और कापिष्ट ये स्वर्ग भी दक्षिण-उत्तर दिशाओं के आश्रित अवस्थित हैं। शुक्र और महाशुक्र ये युग्म रूप अवस्थित है ॥ ३-४ ॥ शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत तथा आरण और अच्युत ये भी एक के बाद एक युग्म रूप से अवस्थित है, इस प्रकार ये सोलह स्वर्ग ऊर्ध्व-लोक में अवस्थित हैं ॥५॥

अब इन्द्रों का प्रमाण दर्शाते है :—

चतुर्णामाद्यनाकानां चत्वारो वासवा पृथक् ।
चतुः स्वर्मध्ययुग्मानां चत्वारः स्वर्गनायकाः ।।६।।
चतुस्तदग्रनाकानामिन्द्राश्चत्वार ऊर्जिताः ।
इतीन्द्रसंख्यया कल्पाः कथ्यन्ते द्वादशागमे ।।७।।

अर्थ :—आदि के चार स्वर्गो के पृथक् पृथक् चार इन्द्र है । अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों मे से प्रत्येक मे एक एक इन्द्र है । मध्य के चार युगलों (आठ स्वर्गो) के चार इन्द्र है । अर्थात् ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र और सहस्रार स्वर्गो मे से प्रत्येक मे एक एक इन्द्र है । ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, शुक्र और शतार स्वर्गो मे इन्द्र नही है । शेष ऊपर के आनत, प्राणत, आरण और अच्युत मे से प्रत्येक मे एक एक इन्द्र है । इस प्रकार आगम मे बारह इन्द्र और बारह ही कल्प कहे गये है ।६-७।

अब इन्द्रों के नाम और उनकी दक्षिणेन्द्र संज्ञा आदि का विवेचन करते हैं:—

सौधर्मेन्द्राह्वय शक्रः सनत्कुमारदेवराट् ।
ब्रह्मेन्द्रो लान्तवेन्द्रश्चानतेन्द्र आरणाधिपः ।।८।।
षडेते दक्षिणेन्द्राः स्युर्नूनमेकावतारिणः ।
पूर्वार्जितमहापुण्यजिनभक्तिभराङ्किताः ।।९।।
ईशानेन्द्रो हि माहेन्द्रः शुक्रेन्द्रः शुक्रनाकभाक् ।
शतारेन्द्रस्ततः प्राणतेन्द्रोऽच्युतेन्द्र उत्तमः ।।१०।
एते षडुत्तरेन्द्राः स्युर्जिनपूजापरायणाः ।
सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः सर्वामरनतक्रमाः ।।११।।

अर्थ :—सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्म, लान्तव, आनत और आरण नाम के ये छह इन्द्र दक्षिणेन्द्र है । ये छहो एक भवातारी, पूर्वोपार्जित महापुण्य से युक्त और जिनेन्द्र भगवान की अपूर्व भक्ति के रस से सहित होते हैं ।।८–९।। सर्व देवो से नमस्कृत, सम्यग्दर्शन से शुद्ध और जिनेन्द्र की पूजा मे तल्लीन रहने वाले ईशान, माहेन्द्र, शुक्र स्वर्ग का शुक्र, शतार प्राणत और अच्युत नाम के ये छह इन्द्र उत्तरेन्द्र हैं ।।१०–११।।

अब कल्प-कल्पातीत विमानों का और सिद्ध शिला का अवस्थान बतलाते है :-

उपर्युपरि सन्त्येते स्वर्गाः षोडशसम्मिताः ।
दक्षिणोत्तरदिग्भागस्था युग्मरूपिणः शुभाः ।।१२।।

स्वर्गाणामुपरि स्युश्चाद्याधोग्रैवेयकास्त्रयः ।
तेषामुपरिसन्त्येव मध्यग्रैवेयकास्त्रयः ।।१३।।
एषामुपरि तिष्ठन्ति चोर्ध्वग्रैवेयकास्त्रयः ।
अमीषामुपरि स्याच्च नवानुदिशनामकम् ।।१४।।
तस्य सन्ति चतुर्दिक्षु चत्वारश्च विमानकाः ।
विदिक्षु तेऽपितावन्तो मध्ये ह्येकं विमानकम् ।।१५।।
तस्योपरि च पञ्चानुत्तराख्यं पटलं भवेत् ।
तच्चतुर्दिक्षु चत्वारि विमानानि भवन्ति वै ।।१६।।
मध्ये सर्वार्थसिद्ध्याख्यं स्याद्विमानं च्युतोपमम् ।
ततो मुक्तिशिलादिव्या गत्वा द्वादशयोजनान् ।।१७।।

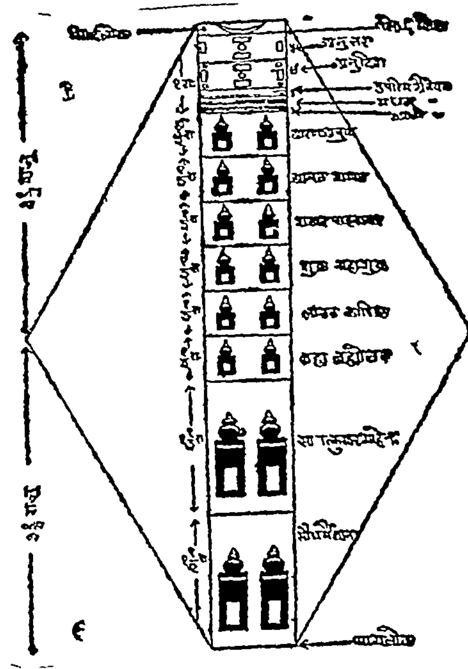
अर्थः—दक्षिण और उत्तर दिशाओ में षोडश स्वर्ग युग्म रूप से ऊपर ऊपर अवस्थित है, अर्थात् एक युगल के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा इत्यादि ।।१२।। सोलह स्वर्गो के ऊपर तीन अधोग्रैवेयको की (एक के ऊपर एक) अवस्थिति है । इनके ऊपर तीन मध्यम ग्रैवेयक और उनके ऊपर तीन ऊर्ध्वग्रैवेयक स्थित है । इन ग्रैवेयको के ऊपर चार दिशाओं में चार, चार विदिशाओं में चार और एक मध्य में इस प्रकार नव अनुदिशों की अवस्थिति है ।।१३-१५।। नव अनुदिशों के ऊपर पाँच अनुत्तर विमान है, जो चार दिशाओ मे चार है और मध्य में उपमा रहित सवार्थसिद्धि नामक विमान अवस्थित है । सवार्थ सिद्धि विमान से बारह योजन ऊपर जाकर दिव्य रूप वाली सिद्धशिला अवस्थित है ।।१६-१७।।

अब मेरु तल से कल्प और कल्पातीत विमानों के अवस्थान का प्रमाण कहते हैं:—

मेरोस्तलाच्च सार्धैका रज्जुपर्यन्तमादिमौ ।
स्यातां स्वर्गौ ततोऽन्यौ द्वौ सार्धरज्ज्वन्तमञ्जसा ।।१८।।
अर्धार्धरज्जुपर्यन्तं शेषषट्स्वर्गयुग्मकाः ।
प्रत्येकं स्युः पृथग्भूतास्ततो ग्रैवेयकादयः ।।१९।।
सर्वार्थसिद्धिमोक्षान्ता एक रज्ज्वन्तमाश्रिताः ।
इत्यूद्र्ध्व लोककल्पाद्याः स्युः सप्तरज्जुमध्यगाः ।।२०।।

अर्थः—मेरुतल से डेढ राजू में सौधर्मैशान स्वर्ग है, इसके ऊपर डेढ राजू में सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग है, इसके ऊपर ऊपर प्रत्येक अर्ध अर्ध राजू की ऊँचाई में क्रम से अन्य छह युगल अवस्थित

है। इस प्रकार छह राजू में सोलह स्वर्ग स्थित है। इनके ऊपर एक राजू में नौ ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पाँच अनुत्तर और सिद्ध शिला अवस्थित है। इस प्रकार मेरु तल सें ऊर्ध्वलोक के सात राजू क्षेत्र मे स्वर्गादिक है ॥१८-२०॥ यथा—



अब पटलों का प्रमाण कहते हैं:—

आद्ये स्वर्युगले चैक त्रिंशत्स्युः पटलान्यपि ।
द्वितीये तानि सप्तैव चत्वारि तृतीये ततः ॥२१॥
चतुर्थे युगले द्वे स्तः पटले पञ्चमे भवेत् ।
पटलैकं युगे षष्ठे ह्येकं सत्पटलं मतम् ॥२२॥
सप्तमे युगले त्रीण्यष्टमे त्रिपटलान्यपि ।
त्रीण्येव पटलानि स्युरधोग्रैवेयकत्रये ॥२३॥
सन्ति त्रिपटलान्येव मध्यग्रैवेयकत्रये ।
ततस्त्रिपटलानि स्युरूर्ध्वग्रैवेयकत्रिके ॥२४॥
नवानुदिशसञ्ज्ञं स्यात्पटलैकं ततः परम् ।
पञ्चानुत्तरनामैकं पटलं चेति तान्यपि ॥२५॥
पिण्डीकृतानि सर्वाणि त्रिषष्टि पटलानि वै ।
स्युरुपर्युपरिस्थानि कल्पकल्पातिगानि च ॥२६॥

अर्थ·—सौधर्म नामक प्रथम युगल में ३१ पटल हैं। दूसरे सानत्कुमार युगल में सात, तीसरे ब्रह्म युगल में चार, चौथे लान्तव युगल में दो, पाँचवे शुक्र युगल में एक, छठवें शतार युगल में एक, सातवे आनत युगल मे तीन, आठवे आरण युगल में तीन, अधोग्रैवेयक मे तीन, मध्यम ग्रैवेयक में तीन, ऊर्ध्व ग्रैवेयक मे तीन, नव अनुदिशों मे एक और पांच अनुत्तरों में एक पटल है। इस प्रकार सौधर्म स्वर्ग से ऊपर ऊपर कल्प और कल्पातीत सर्व स्वर्गों के पटलों की संख्या एकत्रित करने पर (३१+७+४+२+१+१+३+३+३+३+३+१+१=) ६३ होती है। अर्थात् कुल ६३ पटल हैं ॥२१–२६॥

अब सौधर्मादि स्वर्गों के विमानों का प्रमाण कहते हैं:—

सौधर्मे स्युर्विमानानि लक्षा द्वात्रिंशदेव च ।
ऐशाने सद्विमाना लक्षा अष्टाविंशति प्रमाः ॥२७॥
सनत्कुमारकल्पे द्वादशलक्षविमानका: ।
विमाना: सन्ति माहेन्द्रे चाष्टलक्षप्रमाणका: ॥२८॥
ब्रह्मकल्पे द्विलक्षेमा षणवत्या सहस्रकैः ।
ब्रह्मोत्तरे च ते लक्षैकं सहस्रचतुर्युतम् ॥२९॥
लान्तवे सद्विमानानि द्विचत्वारिंशता समम् ।
पञ्चविंशति संख्यानि सहस्राणि भवन्ति च ॥३०॥
कापिष्टे स्युर्विमानानि ह्यष्टपञ्चाशता सह ।
नवसंख्यशतैर्युक्ताश्चतुर्विंशसहस्रका: ॥३१॥
शुक्रेविंशतियुक्तानि सहस्राणि तु विंशतिः ।
विमानानि महाशुक्रेऽशीत्यानवशतैर्युताः ॥३२॥
एकोनविंशसंख्यानसहस्रा: स्युः शतारके ।
एकोनविंशसंयुक्तत्रिसहस्रा विमानका: ॥३३॥
सहस्रारे तथैकोनविंशोनत्रिसहस्रका: ।
आनतप्राणताभिख्यकल्पद्वयोर्विमानका: ॥३४॥
चतुःशतानि चत्वारिंशद् युतान्यारणाच्युते ।
विमाना: षष्टि संयुक्त शतद्वयप्रमाणका: ॥३५॥

ततः सन्ति विमानानि ह्यधोग्रैवेयकत्रिके ।
एकादशोत्तरं चैक शतं ततो विमानकाः ।।३६।।
शतैकं सप्तसंयुक्तं मध्यग्रैवेयकत्रिके ।
एकानवतिसंख्याना ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिके ।।३७।।
ततो नवविमानानि नवानुदिशसंज्ञके ।
पञ्चदिव्यविमानानि पञ्चानुत्तर नामके ।।३८।।

अर्थः—उपर्युक्त १२ श्लोकों का समस्त अर्थ निम्नाङ्कित तालिका में निहित है ।

क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानो की संख्या	क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानो की सख्या
१	सौधर्म	३२ लाख (३२०००००)	११	शतार	३०१९ } (६ हजार)
२	ऐशान	२८ लाख (२८०००००)	१२	सहस्रार	२९८१
३	सानत्कुमार	१२ लाख (१२०००००)	१३	आनत प्राणत	४४० } (७००)
४	माहेन्द्र	८ लाख (८०००००)	१४	आरण अच्युत	२६०
५	ब्रह्म	२९६००० } (४ लाख)	१५	३ अधस्तन ग्रैवेयक	१११
६	ब्रह्मोत्तर	१०४०००	१६	३ मध्यम ,,	१०७
७	लान्तव	२५०४२ } (५० हजार)	१७	३ उपरिम ,,	९१
८	कापिष्ठ	२४९५८	१८	अनुदिश	९
९	शुक्र	२००२० } (४० हजार)	१९	अनुत्तर	५
१०	महाशुक्र	१९९८०		योगफल—	८४९७०२३ है।

अब सोलह स्वर्गों के इन्द्रक विमानों के नाम कहते हैं:—

आद्यस्वर्गयुगे चाद्यमुड्वाख्यं विमलाभिधम् ।
चन्द्रं वल्गु च वीराख्यमरुणं नन्दनाह्वयम् ।।३९।।
नलिनं काञ्चनं रोहिच्चञ्चाख्यं मरुदाख्यकम् ।
ऋद्दिशं ह्यथवैडूर्यं ततो रुचकनामकम् ।।४०।।

रुचिराभिधमङ्काख्यं स्फाटिकं तपनीयकम् ।
मेघमभ्रं तु हारिद्रं पद्माभिधानकं ततः ॥४१॥
लोहिताख्यं ततो वज्रं नन्द्यावर्तं प्रभाकरम् ।
पिष्टकं च गजाभासं मित्राख्यं प्रभसंज्ञकम् ॥४२॥
इत्युक्तशुभनामान एकत्रिंशत्प्रमेन्द्रकाः ।
मध्यस्थाः पटलानां स्युः सौधर्मैशान कल्पयोः ॥४३॥
अञ्जनं वनमालाख्यं नागं च गरुडाह्वयम् ।
लाङ्गलं बलभद्राख्यं चक्रं सप्तेन्द्रका अमी ॥४४॥
सनत्कुमार माहेन्द्र कल्पयोः श्रेणिमध्यगाः ।
अरिष्टं देवसौमाख्यं ब्रह्मब्रह्मोत्तराख्यकम् ॥४५॥
ब्रह्मब्रह्मोत्तरे सन्ति चत्वार इन्द्रका इमे ।
ब्रह्मादिहृदयाभिख्यं लान्तवं चेन्द्रकाविमौ ॥४६॥
द्वौ स्तो लान्तवकापिष्टे शुक्राख्यैकोऽस्ति चेन्द्रकः ।
शुक्रद्वये शताराख्येन्द्रकः शतारकद्वये ॥४७॥
आनतं प्राणतं पुष्पमिमे स्युरिन्द्रकास्त्रयः ।
उपर्युपरिभागेष्वानतप्राणतयोर्द्वयोः ॥४८॥
सातकं चारणाभिख्यमच्युताख्यमिमे त्रयः ।
इन्द्रकाः क्रमतः सन्त्यारणाच्युतद्विकल्पयोः ॥४९॥

अर्थः—सौधर्मैशान नामक प्रथम युगल में १ ऋतु, २ विमल, ३ चन्द्र, ४ वल्गु, ५ वीर, ६ अरुण, ७ नन्दन, ८ नलिन, ९ काञ्चन, १० रोहित, ११ चञ्च, १२ मरुत्, १३ ऋद्धीश, १४ वैडूर्य १५ रुचक, १६ रुचिर, १७ अङ्क, १८ स्फटिक, १९ तपनीय, २० मेघ, २१ अभ्र, २२ हारिद्र, २३ पद्म, २४ लोहित, २५ वज्र, २६ नन्द्यावर्त, २७ प्रभाकर, २८ पृष्ठक, २९ गज, ३० मित्र और ३१ प्रभ ये शुभ नाम वाले ३१ इन्द्रक विमान पटलो के मध्य में अवस्थित है ॥३९–४२॥ १ अञ्जन, २ वनमाल, ३ नाग, ४ गरुड़, ५ लाङ्गल, ६ बलभद्र और ७ चक्र ये सात इन्द्रक विमान सनत्कुमार–माहेन्द्र कल्प मे स्थित श्रेणीबद्ध विमानो के मध्य में अवस्थित है। अरिष्ट, देवसौम, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर नाम के ये चार इन्द्रक ब्रह्म युगल में, ब्रह्महृदय और लान्तव ये दो इन्द्रक लान्तवकापिष्ट युगल में, शुक्र नामक इन्द्रक शुक्र–महाशुक्र युगल मे, शतार नामक इन्द्रक शतार–सहस्रार युगल में आनत, प्राणत और

पुष्पक ये तीन इन्द्रक आनत प्राणत स्वर्गो के उपरिम भागो में तथा शातक, आरण और अच्युत ये तोन इन्द्रक आरण-अच्युत इन दो कल्पो मे अवस्थित है ।।४३-४६।।

सुदर्शनममोघाख्यं सुप्रबुद्धं यशोधरम् ।
सुभद्रं सुविशाल तु सुमनस्काभिधानकम् ।।५०।।

सौमनस्काह्वयं प्रीतिङ्करमेते नवेन्द्रकाः ।
नवग्रैवेयकेष्वेव सन्त्युपर्युपरि क्रमात् ।।५१।।

प्राच्यामर्चिविमान दक्षिणदिश्यर्चिमालिनी ।
वैरोचनमपाच्यां चोत्तराशायां प्रभासकम् ।।५२।।

आग्नेयदिशि सौमाख्यं नैऋत्यां सौम्यरूपकम् ।
वायव्यामङ्कनामैशानकोणे स्फाटिकाभिधम् ।।५३।।

एषां मध्येऽस्ति चादित्यमालिन्याख्य विमानकम् ।
विमानानि नवैतानि स्युर्नवानुदिशाभिधे ।।५४।।

विजयं पूर्वदिग्भागे वैजयन्तं च दक्षिणे ।
जयन्तं पश्चिमाशायामुत्तरेऽस्त्यपराजितम् ।।५५।।

अमीषां मध्यभागे स्यात्सर्वार्थसिद्धिनामकम् ।
एते पञ्चविमानाः स्युः पञ्चानुत्तरसंज्ञके ।।५६।।

अर्थ:—नवग्रैवेयको मे क्रमशः ऊपर ऊपर सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिङ्कर नाम के ये नव इन्द्रक विमान हैं ।।५०-५१।। नव अनुदिशो की पूर्व दिशा मे अर्चि विमान, दक्षिण में अर्चिमालिनी, पश्चिम मे वैरोचन, उत्तर मे प्रभास. आग्नेय दिशा मे सौम, नैऋत्य मे सौम्य रूप, वायव्य मे अङ्क और ईशान कोण मे स्फटिक नामक विमान है, इन आठो विमानो के मध्य मे आदित्य मालिनी नामक इन्द्रक विमान है। इस प्रकार नवअनुदिशो मे नव विमान हैं ।।५२-५४।। पञ्चानुत्तर की पूर्व दिशा में विजय, दक्षिण मे वैजयन्त, पश्चिम में जयन्त और उत्तर दिशा मे अपराजित नामक विमान हैं। इन सबके मध्य में सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान है। इस प्रकार पञ्चानुत्तर मे पांच विमान है ।।५५-५६।।

अब ऋतु इन्द्रक की अवस्थिति एवं इन्द्रों के स्वामित्व की सीमा का विवेचन करते हैं:—

सुदर्शनमहामेरोश्चूलिकोद्ध्र्वनभस्तले ।
रोममात्रान्तरं मुक्त्वा तिष्ठेदृत्वाख्य इन्द्रकः ॥५७॥

स्वस्वान्त्यपटलेष्वन्त्य स्वस्वेन्द्रकस्य यच्च यत् ।
ध्वजाग्रं तत्र तत्र स्थितेन्द्रस्य स्वामिता भवेत् ॥५८॥

अर्थ:—सुदर्शन मेरु की चूलिका के ऊपर आकाश में बाल के अग्रभाग प्रमाण अन्तर छोड़कर ऋतु नाम का प्रथम इन्द्रक विमान है ॥५७॥ अपने अपने अन्तिम पटल के अन्तिम इन्द्रक के ध्वजा-दण्ड पर्यन्त वहाँ स्थित अपने अपने इन्द्रो का स्वामित्व है। जैसे—सौधर्म इन्द्र का स्वामित्व प्रभा नामक अन्तिम इन्द्रक के ध्वजदण्ड पर्यन्त है। इसी प्रकार आगे भी जानना ॥५८॥

अब इन्द्रक विमानों का प्रमाण कहते हैं:—

नरक्षेत्रप्रमाणं स्यादृत्वाख्यं प्रथमेन्द्रकम् ।
सर्वार्थसिद्धिनामान्त्यं जम्बूद्वीपसमानकम् ॥५९॥

शेषाणामिन्द्रकाणां स्यादेकोनेन्द्रकसंख्यया ।
विभक्तैर्योजनैः शेषैः क्रमह्रासो हि विस्तरः ॥६०॥

अर्थ:—प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान का विस्तार मनुष्य क्षेत्र (ढाई द्वीप) के बराबर और सर्वार्थसिद्धि नामक अन्तिम इन्द्रक का प्रमाण जम्बूद्वीप के बराबर है। उन दोनों के प्रमाण को परस्पर घटा कर शेष में एक कम इन्द्रक प्रमाण का भाग देने पर हानि–वृद्धि चय का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे:—ऋतु नामक प्रथम इन्द्रक का प्रमाण ४५००००० योजन और सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक का प्रमाण १००००० योजन है। इन दोनों को परस्पर में घटा कर एक कम इन्द्रक का भाग देने से ($\frac{४५००००० - १०००००}{६३ - १} =$) ७०९६७$\frac{२३}{३१}$ योजन हानि चय का प्रमाण है ॥५९–६०॥

६३ इन्द्रक विमानों के विस्तार का प्रमाण निम्न प्रकार है:—

क्रमांक	इन्द्रको के नाम	विमानो का विस्तार	क्रमांक	इन्द्रको के नाम	इन्द्रक विमानो का विस्तार	क्रमांक	इन्द्रको के नाम	इन्द्रक विमानो का विस्तार
१	ऋतु	४५००००० यो	२२	हारिद्र	३००९६७७$\frac{१३}{३१}$ यो०	४३	ब्रह्महृदय	१५१९३५४$\frac{२६}{३१}$ यो०
२	चन्द्र	४४२९०३२$\frac{८}{३१}$,,	२३	पद्म	२९३८७०९$\frac{२१}{३१}$,,	४४	लान्तव	१४४८३८७$\frac{३}{३१}$,,
३	विमल	४३५८०६४$\frac{१६}{३१}$,,	२४	लोहित	२८६७७४१$\frac{२९}{३१}$,,	४५	शुक्र	१३७७४१९$\frac{११}{३१}$,,
४	वल्गु	४२८७०९६$\frac{२४}{३१}$,,	२५	वज्र	२७९६७७४$\frac{६}{३१}$,,	४६	शतार	१३०६४५१$\frac{१९}{३१}$,,
५	वीर	४२१६१२९$\frac{१}{३१}$,,	२६	नन्द्या०	२७२५८०६$\frac{१४}{३१}$,,	४७	आनत	१२३५४८३$\frac{२७}{३१}$,,
६	अरुण	४१४५१६१$\frac{९}{३१}$,,	२७	प्रभाकर	२६५४८३८$\frac{२२}{३१}$,,	४८	प्राणत	११६४५१६$\frac{४}{३१}$,,
७	नन्दन	४०७४१९३$\frac{१७}{३१}$,,	२८	पृष्ठक	२५८३८७०$\frac{३०}{३१}$,,	४९	पुष्पक	१०९३५४८$\frac{१२}{३१}$,,
८	नलिन	४००३२२५$\frac{२५}{३१}$,,	२९	गज	२५१२९०३$\frac{७}{३१}$,,	५०	शातक	१०२२५८०$\frac{२०}{३१}$,,
९	काञ्चन	३९३२२५८$\frac{२}{३१}$,,	३०	मित्र	२४४१९३५$\frac{१५}{३१}$,,	५१	आरण	९५१६१२$\frac{२८}{३१}$,,
१०	रोहित	३८६१२९०$\frac{१०}{३१}$,,	३१	प्रभा	२३७०९६७$\frac{२३}{३१}$,,	५२	अच्युत	८८०६४५$\frac{५}{३१}$,,
११	चञ्च	३७९०३२२$\frac{१८}{३१}$,,	३२	अञ्जन	२३००००० ,,	५३	सुदर्शन	८०९६७७$\frac{१३}{३१}$,,
१२	मरुत्	३७१९३५४$\frac{२६}{३१}$,,	३३	वनमाल	२२२९०३२$\frac{८}{३१}$,,	५४	अमोघ	७३८७०९$\frac{२१}{३१}$,,
१३	ऋद्धीश	३६४८३८७$\frac{३}{३१}$,,	३४	नाग	२१५८०६४$\frac{१६}{३१}$,,	५५	सुप्रबुद्ध	६६७७४१$\frac{२९}{३१}$,,
१४	वैडूर्य	३५७७४१९$\frac{११}{३३}$,,	३५	गरुड	२०८७०९६$\frac{२४}{३१}$,,	५६	यशोधर	५९६७७४$\frac{६}{३१}$,,
१५	रुचक	३५०६४५१$\frac{१९}{३१}$,,	३६	लाङ्गल	२०१६१२९$\frac{१}{३१}$,,	५७	सुभद्र	५२५८०६$\frac{१४}{३१}$,,
१६	रुचिर	३४३५४८३$\frac{२७}{३१}$,,	३७	बलभद्र	१९४५१६१$\frac{९}{३१}$,,	५८	सुविशाल	४५४८३८$\frac{२२}{३१}$,,
१७	अक	३३६४५१६$\frac{४}{३१}$,,	३८	चक्र	१८७४१९३$\frac{१७}{३१}$,,	५९	सुमनस्	३८३८७०$\frac{३०}{३१}$,,
१८	स्फटिक	३२९३५४८$\frac{१२}{३१}$,,	३९	अरिष्ट	१८०३२२५$\frac{२५}{३१}$,,	६०	सौमनस्	३१२९०३$\frac{७}{३१}$,,
१९	तपनीय	३२२२५८०$\frac{२०}{३१}$,,	४०	सुरस	१७३२२५८$\frac{२}{३१}$,,	६१	प्रीतिंकर	२४१९३५$\frac{१५}{३१}$,,
२०	मेघ	३१५१६१२$\frac{२८}{३१}$,,	४१	ब्रह्म	१६६१२९०$\frac{१०}{३१}$,,	६२	आदित्य	१७०९६७$\frac{२३}{३१}$,,
२१	अभ्र	३०८०६४५$\frac{५}{३१}$,,	४२	ब्रह्मोत्तर	१५९०३२२$\frac{१८}{३१}$,,	६३	सर्वार्थसिद्धि	१००००० योजन

अब श्रेणीबद्ध विमानों के अवस्थान का स्वरूप कहते हैं:—

आद्येन्द्रकस्य विद्यन्ते चतुर्दिक्षु विमानकाः ।
श्रेणीबद्धा द्विषष्टिस्तु महान्तोऽनुक्रमात् पृथक् ।।६१।।

आद्येन्द्रकाच्चतुर्दिक्षु सर्वोर्ध्वपटलेष्वपि ।
श्रेणीबद्धाः प्रहीयन्ते चतुश्चतुप्रमाः क्रमात् ।।६२।।

यावच्चानुदिशाभिख्ये पटले दिक्चतुष्टये ।
श्रेणीबद्धा हि तिष्ठन्ति प्रान्त्याश्चत्वारइन्द्रकाः ।।६३।।

अर्थः—प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान की चारों दिशाओ में अनुक्रम से पृथक् पृथक् बासठ-बासठ श्रेणीबद्ध विमान अवस्थित है। इसके ऊपर द्वितोयादि पटलों के इन्द्रकों की चारों दिशाओं में क्रम से प्रथम इन्द्रक के श्रेणीबद्धों के प्रमाण से चार-चार श्रेणीबद्ध तब तक हीन हीन होते जाते हैं, जब तक अन्तिम पटल की प्राप्ति नही हो जाती। इसीलिये अनुदिश (और अनुत्तर) इन्द्रक की चारों दिशाओं में (प्रत्येक दिशा में एक एक) चार ही श्रेणीबद्ध विमान हैं ।।६१-६३।।

प्रत्येक स्वर्ग के श्रेणीबद्ध विमानों का प्रमाण निम्न प्रकार है:—

$\frac{३१-१}{२}$ × ३ = ४५; (१८६—४५) × ३१ = ४३७१ सौधर्म स्वर्ग के श्रेणी० का प्रमाण है।

$\frac{३१-१}{२}$ × १ = १५; (६२—१५) × ३१ = १४५७ ऐशान स्वर्ग के श्रेणी० का प्रमाण है।

$\frac{७-१}{२}$ × ३ = ९; (९३—९) × ७ = ५८८ सानत्कुमार स्वर्ग के श्रेणीबद्धों का प्रमाण है।

$\frac{७-१}{२}$ × १ = ३; (३१—३) × ७ = १९६ माहेन्द्र ,, ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{४-१}{२}$ × ४ = ६; (९६—६) × ४ = ३६० ब्रह्मब्रह्मोत्तर ,, ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{२-१}{२}$ × ४ = २; (८०—२) × २ = १५६ लान्तव कापिष्ठ ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{१-१}{२}$ × ४ = ०; (७२—०) × १ = ७२ शुक्रमहाशुक्र ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{१-१}{२}$ × ४ = ०; (६८—०) × १ = ६८ शतार सह० ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{१-१}{२}$ × ४ = १०; (६४—१०) × ६ = ३२४ आनतादि ४ ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{3-1}{2}$ ×४=४, (४०—४)×३=१०८ अधोग्रैवेयक „ „ „ „ „

$\frac{3-1}{2}$ ×४=४, (२८—४)×३=७२ मध्य „ „ „ „ „ „

$\frac{3-1}{2}$ ×४=४, (१६—४)×३=३६ उपरिम „ „ „ „ „ „

$\frac{1-1}{2}$ ×४=०, (४—०)×१=४ अनुदिशों „ „ „ „ „

अब प्रकीर्णक विमानों का स्वरूप और अवस्थान कहते हैं:—

श्रेणीबद्धान्तरेषु स्युश्चतुर्विदिक्षु सर्वतः ।
इन्द्रकाः श्रेणिसम्बन्धक्रमहीना इतोऽमुतः ।।६४।।

प्रकीर्णक विमानाश्च पुष्पप्रकीर्णका इव ।
पञ्चानुत्तरसंज्ञे तथाधोग्रैवेयकत्रये ।।६५।।

प्रकीर्णक विमानानि न सन्त्यन्येषु सन्ति च ।
एकोनषष्टिसंख्येषु पटलेषु प्रकीर्णकाः ।।६६।।

अर्थ.—अहो ! श्रेणीबद्ध के अन्तरालो की चारो विदिशाओ मे सब ओर इन्द्रक और श्रेणीबद्ध के सदृश क्रम से रहित पुष्पो के सदृश यत्र तत्र स्थित विमानो को प्रकीर्णक विमान कहते है। पाँच अनुत्तर (के एक पटल) मे और अधोग्रैवेयक (के सुदर्शन, अमोघ और सुप्रबुद्ध इन तीन पटलो मे प्रकीर्णक विमान नही होते । शेष [६३—(३+१)]=५९ पटलो मे प्रकीर्णक विमान होते है ।।६४-६६।।

पुनरमीषां इन्द्रकश्रेणीबद्ध प्रकीर्णक विमानानां पृथक् पृथक् संख्या निगद्यते:—

सख्यासंख्यविष्कम्भाश्च सौधर्मेन्द्रका एकत्रिशत् । श्रेणीबद्धा एक सप्तत्यग्रत्रिचत्वारिशच्छतानि । प्रकीर्णका: एकत्रिंशल्लक्ष पश्चनवतिसहस्र पश्चशताष्टानवति प्रमाः स्यु' । ऐशानस्वर्गे इन्द्रकाः शून्य । श्रेणीबद्धा सप्तपश्चाशदधिक चतुर्दशशतानि । प्रकीर्णका: सप्तविंशतिलक्षाष्टानवतिसहस्रपश्चशतत्रिचत्वारिशत् प्रमाणा: सन्ति । सनत्कुमारे इन्द्रका सप्त । श्रेणीबद्धाः अष्टाशीत्यग्रपश्चशतानि । प्रकीर्णका. एकादशलक्षनवनवति सहस्रचतु.शतपश्चसख्या: भवन्ति । माहेन्द्रे इन्द्रकाः शून्यं (नास्ति) । श्रेणीबद्धाः षण्णवत्यग्रशतप्रमाश्च । प्रकीर्णका सप्तलक्षनवनवति सहस्राष्टशतचतु: प्रमाणाः सन्ति । ब्रह्मस्वर्गे इन्द्रकाश्चत्वार: श्रेणीबद्धा सप्तत्यग्रे द्वे शते । प्रकीर्णका: द्विलक्षपश्चनवति सहस्रसप्तशत षड्विंशतिसंख्या. स्युः ब्रह्मोत्तरे श्रेणीबद्धाः नवतिरेव । प्रकीर्णकाः एकलक्ष-

त्रिसहस्रनवशतदश प्रमिताः भवेयु । लान्तवे इन्द्रको द्वौ । श्रेणीबद्धा सप्तदशाग्रं शतं । प्रकीर्णकाः चतुर्विंशति सहस्रनवशत त्रयोत्रिंशति संख्याः स्युः। कापिष्टे श्रेणीबद्धाः एकोनचत्वारिंशत् । प्रकीर्णकाः चतुर्विंशति सहस्रनवशतैकोनविंशति प्रमाः सन्ति । शुक्रे इन्द्रक एकोस्ति । श्रेणीबद्धाः चतुःपञ्चाशत् प्रकीर्णकाः एकोनविंशतिसहस्रनवशतपञ्चषष्टि संख्या सन्ति । महाशुक्रे श्रेणीबद्धा अष्टादश । प्रकीर्णकाः एकोनविंशतिसहस्रनवशतद्विषष्टि प्रमाणा स्युः । शतारस्वर्गे इन्द्रकः एकः । श्रेणीबद्धाः एकपञ्चाशत् । प्रकीर्णकाः द्विसहस्रनवशतषट्षष्टिप्रमिताः भवन्ति । सहस्रारे श्रेणीबद्धाः सप्तदश । प्रकीर्णकाः द्विसहस्र-नवशतपञ्चषष्टिसम्मिताः स्युः । आनतप्राणतयोः इन्द्रकाः त्रयः । श्रेणीबद्धाः अशीत्यधिकशतं । प्रकीर्णकाः सप्तपञ्चादग्रे द्वे शते । आरणाच्युतयोः इन्द्रकास्त्रय. । श्रेणीबद्धाः चतुश्चत्वारिंशद्युतं शतं । प्रकीर्णका त्रयोदशाग्रशतं । अधोग्रैवेयकत्रिषु इन्द्रकास्त्रयः । श्रेणीबद्धाः अष्टोत्तर शतं । प्रकीर्णकाः शून्य । मध्यग्रैवेयकत्रिषु इन्द्रकास्त्रयः । श्रेणीबद्धाः द्वासप्तति: । प्रकीर्णकाः द्वात्रिंशत् । ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिषु इन्द्रकास्त्रयः । श्रेणीबद्धाः षट्त्रिंशत् । प्रकीर्णकाः द्विपञ्चाशत् । नवानुदिशे एकेन्द्रकः । श्रेणीबद्धाश्चत्वारः । प्रकीर्णकाश्चत्वारः । पञ्चानुत्तरेन्द्रक एकः । श्रेणीबद्धाश्चत्वारः ।

अर्थः—प्रत्येक स्वर्ग के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों की पृथक् पृथक् संख्या कहते हैं।

(अङ्क तालिका अगले पृष्ठ पर देखें)

उपर्युक्त संस्कृत गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नाङ्कित तालिका मे निहित है।

क्रमांक	स्वर्गो के नाम	विमानो की सख्या	इन्द्रक सं०	श्रेणीवद्धो की सं०	प्रकीर्णको की स०
१	सौधर्म	३२००००० —	३१ +	४३७१ =	३१९५५९८
२	ऐशान	२८००००० —	० +	१४५७ =	२७९८५४३
३	सानत्कुमार	१२००००० —	७ +	५८८ =	११९९४०५
४	माहेन्द्र	८००००० —	० +	१९६ =	७९८०४
५	ब्रह्म	२९६००० —	४ +	२९० =	२९५७२६
६	ब्रह्मोत्तर	१०४००० —	० +	९० =	१०३९१०
७	लांतव	२५०४२ —	२ +	११७ =	२४९२३
८	कापिष्ट	२४९५८ —	० +	३६ =	२४९११
९	शुक्र	२००२० —	१ +	५४ =	१९९६५
१०	महाशुक्र	१९९८० —	० +	१८ =	१९९६२
११	शतार	३०१९ —	१ +	५१ =	२९६६
१२	सहस्रार	२९८१ —	० +	१७ =	२९६५
१३	आनत-प्राणत	४४० —	३ +	१८० =	२५७
१४	आरण-अच्युत	२६० —	३ +	१४४ =	११३
१५	अधोग्रैवेयक	१११ —	३ +	१०८ =	०
१६	मध्यग्रैवेयक	१०७ —	३ +	७२ =	३२
१७	ऊर्ध्वग्रैवेयक	९१ —	३ +	३६ =	५२
१८	अनुदिश	९ —	१ +	४ =	४
१९	अनुत्तर	५ —	१ +	४ =	०

अब इन्द्रक श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों के प्रमाण का कथन करते हैं:—

संख्ययोजनविस्तारा इन्द्रकाः सकला मताः ।
श्रेणीबद्धा असख्यातकोटीयोजन विस्तराः ।।६७।।
केचित्प्रकीर्णकासंख्य कोटीयोजन विस्तृताः ।
केचिदसंख्यकोटीनां योजनैर्विस्तरान्विताः ।।६८।।
अच्युतान्तस्थ सर्वेषां विमानानां हि पञ्चमः ।
भागः संख्येय कोटिप्रमाणयोजनविस्तृतः ।।६९।।
ततः शेषा हि चत्वारो भागाः सर्वेषु सन्ति च ।
विमानानामसंख्यातकोटीयोजनविस्तराः ।।७०।।
संख्यातयोजनव्यासा अधोग्रैवेयक त्रये ।
सन्तीन्द्रक विमानास्त्रयः श्रेणीमध्यभागगाः ।।७१।।
अष्टादशविमानाः स्युर्मध्यग्रैवेयक त्रिके ।
संख्ययोजनविष्कम्भाः प्रकीर्णकेन्द्रकोभयोः ।।७२।।
संख्येययोजनव्यासाः ऊर्ध्वग्रैवेयक त्रये ।
स्युः सप्तदशसंख्याना विमानारत्नशालिनः ।।७३।।
नवानुदिशसञ्ज्ञे च पञ्चानुत्तरनामनि ।
संख्ययोजनविस्तार एकैक इन्द्रकः पृथक् ।।७४।।
एतेभ्यो ये परे सन्ति श्रेणीबद्ध प्रकीर्णकाः ।
ते सर्वे स्युरसंख्यातकोटीयोजन विस्तृताः ।।७५।।

अर्थ:—समस्त इन्द्रक विमान सख्यात योजन विस्तार वाले और श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन कोटि विस्तार वाले है ।।६७।। प्रकीर्णक विमानो मे से कुछ प्रकीर्णक संख्यात करोड़ योजन विस्तार वाले और कुछ प्रकीर्णक असंख्यात कोटि योजन विस्तार वाले है ।।६८।। सौधर्म स्वर्ग से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त के कल्पो मे अपनी अपनी विमान राशि के पाँचवे भाग प्रमाण विमान सख्यात करोड़ योजन विस्तार वाले है, इनसे अवशेष विमान असख्यात करोड योजन विस्तार वाले है। अथवा अपनी अपनी राशि के $\frac{4}{5}$ वे भाग प्रमाण विमान असख्यात करोड़ योजन विस्तार वाले हैं। जैसे—सौधर्म कल्प की कुल विमान राशि ३२०००००—६४०००० संख्यात योजन व्यास वाले=

२५६०००० असख्यात यो० व्यास वाले है । अथवा $\frac{३२०००००}{५} \times ४$ = २५६०००० विमान असंख्यात यो० व्यास वाले है ॥७०॥ तीनो अधोग्रैवेयको मे श्रेणीवद्ध विमानो के मध्य अवस्थित रहने वाले तीन इन्द्रक विमान सख्यात योजन विस्तार वाले है ॥७१॥ तीनो मध्यम ग्रैवेयकों मे इन्द्रक और प्रकीर्णक दोनो मिला कर १८ विमान सख्यात योजन विस्तार वाले है ॥७२॥ तीनों ऊर्ध्व ग्रैवेयको मे रत्नमई १७ विमान सख्यात योजन विस्तार वाले हैं ॥७३॥ नव अनुदिशों और पञ्चानुत्तरों मे जो एक-एक इन्द्रक है, वे ही सख्यात योजन विस्तार वाले हैं ॥७४॥ संख्यात योजन व्यास वाले प्रकीर्णकों से रहित अन्य प्रकीर्णक और सर्व श्रेणीवद्ध विमान असख्यात कोटि योजन विस्तार वाले है ॥७५॥

अब इसी अर्थ को विशेष रूप से पृथक् पृथक् दर्शाते हैः—

सौधर्मे विमाना षड्लक्षचत्वारिंशत् सहस्रा सख्येय योजनविस्तारा । पञ्चविंशतिलक्षषष्टिसहस्रा. असख्येय कोटीयोजनव्यासाश्च । ईशानकल्पे विमाना. पञ्चलक्षषष्टिसहस्राः सख्यात योजनविष्कम्भा । द्वाविंशतिलक्षचत्वारिंशत्सहस्रा असख्यात कोटियोजनविष्कम्भा. । सनत्कुमारे विमानाः द्विलक्षचत्वारिंशत्सहस्रा सख्यात योजन विस्तृताः । नवलक्षषष्टिसहस्रा. असख्यातयोजनकोटिविस्तृताश्च । माहेन्द्रे विमाना. एकलक्षषष्टिसहस्राः संख्यातयोजनविस्ताराः । षड्लक्षचत्वारिंशत्सहस्रा असख्यातकोटियोजनविस्तारा । ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्विमाना अशीतिसहस्रा. सख्ययोजनव्यासा. । त्रिलक्षविंशतिसहस्रा असख्यकोटीयोजनव्यासाः । लान्तवकापिष्टयोर्दशसहस्रविमानाः सख्यातयोजनविष्कम्भा । चत्वारिंशत्सहस्रविमानाः असंख्यातकोटियोजनविष्कम्भाः । शुक्रमहाशुक्रयोः अष्टसहस्रविमाना सख्येययोजनविस्तारा. । द्वात्रिंशत्सहस्रविमानाः असंख्येयकोटीयोजनविस्ताराः । शतारसहस्रारयो द्वादशशतविमानाः सख्ययोजनव्यासा । अष्टचत्वारिंशच्छतविमानाः असख्ययोजनकोटिव्यासाः । आनतप्राणतयो अष्टाशीतिविमाना सख्यातयोजनविष्कम्भा । त्रिशतद्विपञ्चाशद्विमाना असख्यातकोटीयोजनविष्कम्भा. । आरणाच्युतयो. द्विपञ्चाशद्विमानाः सख्यातयोजनव्यासा । अष्टाग्रद्विशतविमाना असख्यकोटीयोजनव्यासाः । अधोग्रैवेयकत्रिके विमानास्त्रय संख्येययोजनविस्तारा. । अष्टोत्तरशत असख्येययोजनकोटिविस्ताराः । मध्यग्रैवेयकत्रये अष्टादशविमाना सख्यातयोजनविस्ताराः नवाशीतिविमानाः असख्यातयोजनकोटिविस्ताराः । ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकेसप्तदशविमानाः संख्ययोजनविष्कम्भाः । चतुःसप्ततिविमाना असंख्यकोटीयोजनविष्कम्भा. । नवानुदिशपटले विमानैकः संख्ययोजनविस्तारः । अष्टौविमाना असंख्ययोजनकोटीविस्तारा । पञ्चानुत्तरे एको विमानः संख्यातयोजनविष्कम्भः । चत्वारो विमानाः असंख्यातकोटियोजनविष्कम्भा ।

उपर्युक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नलिखित तालिका में निहित है:—

स्थान संख्या	क्रमांक	स्वर्ग पटल	इन्द्रक+संख्यात० वाले प्रकीर्णक=सख्यात कोटि योजन वाले विमानों का कुल प्रमाण	श्रेणीबद्ध+असंख्यात० वाले प्रकीर्णक=असंख्यात कोटि योजन वाले विमानों का कुल प्रमाण
१	१	सौधर्म	३१+६३९९६९=६४००००	४३७१+२५५५६२९=२५६००००
	२	ऐशान	५६०००० प्रकीर्णक	(१४५७+२२३८५४३)=२२४००००
२	३	सानत्कुमार	७+२३९९९३=२४००००	(५८८+९५९४१२)=९६००००
	४	माहेन्द्र	१६०००० प्रकीर्णक	(१९६+६३९८०४)=६४००००
३	५	ब्रह्म ब्रह्मोत्तर	४+७९९९६=८००००	(३६०+३१९६४०)=३२००००
४	६	लान्तव कापिष्ठ	२+९९९८=१००००	(१५६+३९८४४)=४००००
५	७	शुक्र महाशुक्र	१+७९९९=८०००	(७२+३१९२८)=३२०००
६	८	शतार–सह०	१+११९९=१२००	(६८+४७३२)=४८००
७	९	आनतादि २	३+८५=८८	(१८०+१७२)=३५२
	१०	आरण–अच्युत	३+४९=५२	(१४४+६४)=२०८
८	११	तीनों अधोग्रैवे०	३+०=३	(१०८+०)=१०८
९	१२	तीनों मध्य ,,	३+१५=१८	(७२+१७)=८९
१०	१३	तीनों उपरि ,,	३+१४=१७	(३६+३८)=७४
११	१४	नव अनुदिश	१+०=१	(४+४)=८
	१५	पंच अनुत्तर	१+०=१	(४+०)=४

अब विमानों के आधार-स्थान का निरूपण करते हैं:—

सौधर्मैशानयोः षष्टिलक्षसंख्याविमानकाः ।
जलाधारेण तिष्ठन्ति शाश्वता नभसि स्वयम् ॥७६॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्विमाना दिवौकसाम् ।
सन्ति-विंशतिलक्षाः खे वाताधारेण केवलम् ॥७७॥
ब्रह्मादिकसहस्रारान्ताष्टानां स्युर्विमानकाः ।
षण्णवतिसहस्राग्र चतुर्लक्षप्रमाणकाः ॥७८॥
जलवातद्वयाधारेणैव व्योम्नि मनोहराः ।
शेषानतादिकल्पानां चतुर्णां च विमानकाः ॥७९॥
ग्रैवेयकादिपञ्चानुत्तरान्तानां भवन्ति खे ।
निराधारास्त्रयो विंशाग्रसहस्रप्रमाः स्वयम् ॥८०॥

अर्थ.—सौधर्मैशान कल्प के (३२ लाख+२८ लाख)=६० लाख विमान आकाश में स्वयमेव जल के आधार अवस्थित हैं ॥७६॥ सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गस्थ देवो के (१२ लाख+८ लाख) =२० लाख विमान आकाश मे मात्र वायु के आधार अवस्थित है ॥७७॥ ब्रह्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त अर्थात् आठ स्वर्गो के अति मनोज्ञ (४०००००+५००००+४००००+६०००) =४९६००० विमान आकाश में जल-वायु (उभयाधार) के आधार अवस्थित है । शेष आनतादि चार कल्पो के, नवग्रैवेयको के नव अनुदिशो के और पाँच अनुत्तर विमानों के (७००+१११+१०७ +९१+९+५)=१०२३ विमान निराधार है। अर्थात् शुद्ध आकाश के आधार ही अवस्थित है ॥७८-८०॥

अब स्वर्गस्थ विमानों के वर्ण का विवेचन करते है:—

कृष्णनीलास्तथा रक्ताः पीताः शुक्ला इति द्वयोः ।
सौधर्मैशानयो. पञ्चवर्णा विमानतद्गृहाः ॥८१॥
नीला रक्तास्तथा पीताः शुक्ला इमे विमानकाः ।
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोश्चतुर्वर्णभूषिताः ॥८२॥
रक्ता पीताः सिता एते त्रिवर्णाश्च विमानकाः ।
ब्रह्मादिकचतुर्णांस्युर्दिव्याः प्रासादपङ्क्तयः ॥८३॥

शुक्रादीनां चतुर्णां स्युः पीताः शुक्ला विमानकाः ।
शेषानतादि कल्पेषु सर्वग्रैवेयकादिषु ॥८४॥
केवलं शुक्ल वर्णा विमानप्रासादपङ्क्तयः ।
स्फुरद् रत्नांशुसंघातैरुद्योतितदिशाम्बराः ॥८५॥

अर्थः—सौधर्मैशान इन दो स्वर्गों के विमान एवं उनमें स्थित गृह काले, नीले, लाल, पीले और श्वेत अर्थात् पञ्च वर्ण वाले है ॥८१॥ सनत्कुमार माहेन्द्र कल्प के विमान कृष्ण के विना चार वर्ण के अर्थात् नीले, लाल, पीले और श्वेत वर्ण के हैं ॥८२॥ ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लांतव और कापिष्ट स्वर्ग के विमान एवं दिव्य प्रासाद पक्तियाँ लाल, पीले और श्वेत इस प्रकार तीन वर्ण वाले है ॥८३॥ शुक्र-महाशुक्र, शतार और सहस्रार इन चार स्वर्गों के विमान पीत और शुक्ल वर्ण के हैं। इसके आगे शेष आनत आदि कल्पों मे, सर्व ग्रैवेयकों में, नव अनुदिशो में और पांच अनुत्तरों में देदीप्यमान रत्नों की किरणों के समूह से नभमण्डलस्थ दिशाओं को प्रकाशित करने वाली विमान एवं प्रासाद पंक्तियाँ मात्र शुक्ल वर्ण की है ॥८३-८५॥

अब प्रथम इन्द्रक के एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों का अवस्थान कहते हैं:—

सर्व श्रेणिविमानार्धं स्वयम्भूरमणोपरि ।
द्वीपाब्धीनां ततोऽन्येषामर्धार्धमुपरिस्थितम् ॥८६॥

अर्थः—सर्व श्रेणीबद्ध (ऋतु इन्द्रक की एक दिशा गत ६२ श्रेणीबद्ध) विमानों का अर्ध भाग (३१) स्वयम्भूरमण समुद्र के ऊपर अवस्थित है। तथा शेष अर्ध (३१) भाग का अर्ध अर्ध भाग स्वयम्भूरमण समुद्र से अर्वाचीन द्वीप समुद्रों के ऊपर अवस्थित है ॥८६॥

अस्यविस्तारमाहः—

एकत्रिंशच्छ्रेणीबद्धविमानानि स्वयम्भूरमणाम्बुधेरुपरि तिष्ठन्ति। षोडशविमानानि स्वयम्भू-द्वीपस्योपरि सन्ति । अष्टौविमानास्ततोऽभ्यन्तरस्थवारिधेरुपरिभवन्ति । चत्वारो विमानास्तदन्तः स्थित द्वीपस्योपरि स्युः । द्वे विमाने तदभ्यन्तरभागस्थाम्बुधेरुपरि तिष्ठतः । विमानैकमसंख्यद्वीप-वार्धीनामुपरि तिष्ठति । ऋजुविमानं नरक्षेत्रस्योपरि तिष्ठेत् ।

अर्थ:—ऋतु इन्द्रक विमान की एक दिशा में ६२ श्रेणीबद्ध विमान है, इनके आधे (३१) श्रेणीबद्ध विमान स्वयम्भूरमण समुद्र के उपरिम भाग में अवस्थित है । १६ श्रेणीबद्ध बिमान

स्वयम्भूरमण द्वीप के ऊपर स्थित है। ८ श्रेणीबद्ध स्वयम्भूरमणद्वीप के अभ्यन्तर भाग में स्थित अहीन्द्रवर समुद्र के ऊपर अवस्थित है। ४ श्रेणीबद्ध उस समुद्र के अभ्यन्तर भाग में स्थित अहीन्द्रवर द्वीप के ऊपर है। दो श्रेणीबद्ध अहीन्द्रवर द्वीप के अभ्यन्तर भाग मे स्थित देववर समुद्र के ऊपर हैं, और अवशेष एक श्रेणीबद्ध विमान [देववर द्वीप से लेकर बाह्यपुष्करार्ध द्वीप पर्यन्त] असंख्यात द्वीप-समुद्रो के ऊपर अवस्थित है, तथा प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान मनुष्य क्षेत्र अर्थात् जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकी खण्ड, कालोदधि समुद्र और मानुषोत्तर के पूर्व अर्ध पुष्कर वर द्वीप के ऊपर अवस्थित है यथा—

स्वयं० समुद्र के ऊपर	स्वय० द्वीप के ऊपर	अहीन्द्रवर समुद्र के ऊपर	अहीन्द्रवर द्वीप के ऊपर	देववर समुद्र के ऊपर	असख्यात द्वीप+समुद्र	नर क्षेत्र-अढाई द्वीप के ऊ०
३१ श्रेणीबद्ध	१६ श्रेणीबद्ध	८ श्रेणीबद्ध	४ श्रेणीबद्ध	दो श्रेणीबद्ध	१ श्रेणीबद्ध	ऋतु इन्द्रक

अब दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमानों का विभाग दर्शाते हैः—

स्वामी च दक्षिणाशायाः पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः।
श्रेणीबद्ध विमानेषु ह्यग्निनैॠत्यकोणयोः ॥८७॥
प्रकीर्णकविमानेषु सौधर्मेन्द्रो महान् भवेत्।
सर्वेषु पटलेष्वेवं सौधर्मैशानकल्पयोः ॥८८॥
पतिरस्त्युत्तरश्रेण्या वायव्यैशानयोर्दिशोः।
श्रेणीबद्धप्रकीर्णेषु चैशानेन्द्रोऽमरावृतः ॥८९॥
इत्येवं स्याद्विमानानां स्वामित्वं च पृथक् पृथक्।
सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पनायकयोर्द्वयोः ॥९०॥
ब्रह्मेन्द्राद्याश्चत्वारश्चतुर्युग्मेषु नायकाः।
चतुःश्रेणिविदिक् सर्वविमानानां भवन्ति च ॥९१॥

आनतेन्द्रादयः शेषाश्चतुः कल्पेषु नायकाः ।
त्र्येक श्रेणिविदिग् द्वि द्वि विमानानां च पूर्ववत् ।।६२।।

अर्थः—सौधर्मैशान कल्प के सर्व पटलों सर्व इन्द्रक (३१), पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशा, आग्नेय एवं वायव्य विदिशा सम्बन्धी सर्व (४३७१) श्रेणीबद्ध विमानों एवं सर्व प्रकीर्णक विमानों में सौधर्मेन्द्र का ही स्वामित्व है। अर्थात् इनमें सौधर्म इन्द्र की आज्ञा का प्रवर्तन होता है ।।८७–८८।। उत्तर दिशा सम्बन्धी और वायव्य एवं ईशान कोण सम्बन्धी श्रेणीबद्धो एवं प्रकीर्णक विमानों में ईशान इन्द्र का स्वामित्व है ।।८९।। इसी प्रकार सानत्कुमार–माहेन्द्र कल्पस्थ विमानों में सनत्कुमार माहेन्द्र इन्द्रों का पृथक् पृथक् स्वामित्व है ।।९०।। ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर, लान्तव–कापिष्ठ, शुक्र–महाशुक्र और शतार–सहस्रार इन चार युगल सम्बन्धी इन्द्रक, चारो दिशा विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धों और प्रकीर्णक विमानों के स्वामी ब्रह्म, लान्तव, शुक्र और शतार नाम के चार इन्द्र हैं ।।९१।। आनत आदि दो कल्पों में पूर्व, दक्षिण और पश्चिम इन तीन दिशाओं के आग्नेय और वायव्य इन दो विदिशाओं के श्रेणीबद्धो एवं प्रकीर्णक विमानों का स्वामी प्राणत इन्द्र है, तथा उत्तर दिशागत, वायव्य ईशान कोण गत श्रेणीबद्धो एव सर्व प्रकीर्णक विमानों का स्वामी आनत नाम का इन्द्र है । अर्थात् स्वामित्व की जो व्यवस्था प्रथम युगल मे है, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए ।।९२।।

अब इन्द्र स्थित श्रेणीबद्ध विमानों का कथन करते हैं:—

वसतश्चादिकल्पेशावन्तिमे पटले निजे ।
अष्टादशे विमाने हि दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ।।९३।।
सनत्कुमारमाहेन्द्रौ तिष्ठतः पटलेऽन्तिमे ।
विमाने षोडशे श्रेण्योर्दक्षिणोत्तर भागयोः ।।९४।।
ब्रह्मेन्द्रो दक्षिणाशायां चरमे पटले वसेत् ।
मुदा चतुर्दशे दिव्ये श्रेणीबद्ध विमानके ।।९५।।
तिष्ठेद्दक्षिणदिग्भागे द्वितीये पटलेऽनिशम् ।
लान्तवेन्द्रो विमाने द्वादशमे स्त्रीसुरावृतः ।।९६।।
शुक्रेन्द्रो दशमे रम्ये विमाने वसति स्वयम् ।
दक्षिणश्रेणिभागस्थ पटलस्यामरैः समम् ।।९७।।
शतारेन्द्रो वसेत्सार्धं देव्याद्यैः पटले निजे ।
दक्षिणश्रेणि सम्बन्ध विमाने प्रवरेऽष्टमे ।।९८।।

आनतेन्द्रादयः शेषाश्चत्वारः पटलेन्तिमे ।
दक्षिणोत्तरदिक् श्रेण्योः सन्ति षष्ठे विमानके ।।९९।।
अच्युतस्वर्गपर्यन्तमिन्द्राः सन्ति पृथक् पृथक् ।
अहमिन्द्रस्ततोऽप्यूर्ध्वे सर्वेग्रैवेयकादिषु ।।१००।।

अर्थः—प्रथम युगल के प्रभ नामक अन्तिम पटल की दक्षिण दिशा मे स्थित १८ वें श्रेणीबद्ध विमान मे सौधर्म इन्द्र रहता है, और इसी पटल की उत्तर दिशा गत १८ वे श्रेणीबद्ध विमान में ईशान इन्द्र निवास करता है ।।९३।। द्वितीय युगल के चक्र नामक अन्तिम पटल की दक्षिण दिशा गत १६ वें श्रेणीबद्ध मे सनत्कुमार इन्द्र और इसी पटल की उतर दिशा गत १६ वें श्रेणीबद्ध में माहेन्द्र इन्द्र निवास करता है ।।९४।। तृतीय युगल के ब्रह्मोत्तर नामक अन्तिम पटल की दक्षिण दिशा गत १४ वे श्रेणीबद्ध विमान मे ब्रह्मोत्तर नाम इन्द्र का अवस्थान है ।।९५।। चतुर्थ युगल के लान्तव नामक द्वितीय (अन्तिम) पटल की दक्षिण दिशागत १२ वे श्रेणीबद्ध विमान मे लान्तव इन्द्र अपनी देवागनाओ और अन्य देवो से वेष्टित लान्तव इन्द्र निरन्तर निवास करता है ।।९६।। पचम युगल के शुक्र नामक पटल की दक्षिणदिशागत १० वे श्रेणीबद्ध विमान मे अन्य देव गणो के साथ शुक्र इन्द्र निवास करता है ।।९७।। षष्ठ युगल के शतार पटल की दक्षिण दिशागत ८ वे श्रेणीबद्ध विमान मे अनेक देव देवियो के साथ शतार इन्द्र निवास करता है ।।९८।। सप्तम और अष्टम युगल के आनत पटल की दक्षिण दिशागत ६ वे श्रेणीबद्ध मे आनत इन्द्र और उत्तर दिशागत ६ वे श्रेणीबद्ध मे प्राणत इन्द्र रहता है, तथा आरण पटल की दक्षिण दिशागत ६ वे श्रेणीबद्ध में आरण इन्द्र और इसी पटल की उत्तर दिशागत ६ वे श्रेणीबद्ध विमान मे अच्युत इन्द्र निवास करता है ।।९९।। अच्युत स्वर्ग पर्यन्त ही पृथक् पृथक् इन्द्र है । इन कल्पो के ऊपर ग्रैवेयक आदि सर्व विमानो मे सभी अहमिन्द्र है ।।१००।।

अब सौधर्मादि देवों के मुकुट चिन्हों का निरूपण करते हैं:—

अधुना मौलिचिह्नानि प्रवक्ष्यामि पृथक् पृथक् ।
सौधर्ममुख्यकल्पस्थेन्द्रादिसर्वसुधाभुजाम् ।।१०१।।
सौधर्मे मुकुटे चिन्हं वराहोऽस्ति दिवौकसाम् ।
ऐशाने मकरो मौलि चिन्हं च विस्फुरत्प्रभम् ।।१०२।।
सनत्कुमारनाके स्यान्महिषो मौलिलाञ्छनम् ।
माहेन्द्रेऽस्ति शक्रादीनां मत्स्यचिन्हं च शेखरे ।।१०३।।

ब्रह्मस्वर्गेऽमरेशादीनां कच्छपोऽस्ति लाञ्छनम् ।
ब्रह्मोत्तरे भवेच्चिन्हं मुकुटे दर्द्दुरो महान् ॥१०४॥
लान्तवे तुरगचिन्हं कापिष्टे च गजः शुभः ।
शुक्रेऽस्ति चन्द्रमा नागो महाशुक्रेऽस्ति लाञ्छनम् ॥१०५॥
शतारे लाञ्छनं खड्गी स्यादिन्द्राद्यमृताशिनाम् ।
सहस्रारे भवेच्छागो मौलि चिन्हं दिवौकसाम् ॥१०६॥
आनतप्राणतस्वर्गयोश्चिन्हं वृषभोस्ति च ।
आरणाच्युतयोश्चिन्हं कल्पवृक्षः सुधाभुजाम् ॥१०७॥
अहमिन्द्रसमस्तानां मौलि चिन्हानि जातु न ।
वक्ष्येऽथात्रामरेशानां वाहनानि पृथक् पृथक् ॥१०८॥

अर्थः—अब मै (आचार्य) सौधर्मादि कल्पस्थित सर्व देवो के मुकुट स्थित चिन्हो को पृथक् पृथक् कहूँगा ॥१०१ । सौधर्म स्वर्गस्थ देवो के मुकुटो मे वराह का चिन्ह तथा ऐशान स्वर्गस्थ देवों के मुकुटो में मगर का चिन्ह है ॥१०२॥ सनत्कुमार स्वर्ग के देवो के मुकुटों मे महिष का चिन्ह और माहेन्द्र स्वर्ग स्थित इन्द्रादि देवो के मुकुटो मे मत्स्य का लाञ्छन है ॥१०३॥ ब्रह्म स्वर्ग स्थित देवों के मुकुटों में कछुए (कच्छप) का तथा ब्रह्मोत्तर स्वर्ग स्थित देवो के मुकुटों मे मेढक का चिन्ह है ॥१०४॥ लान्तव स्वर्ग स्थित देवो के घोडे का, कापिष्ट स्वर्ग में हाथी का, शुक्र स्वर्ग मे चन्द्रमा का और महाशुक्र स्थित देवो के मुकुटो का चिन्ह सर्प है ॥१०५॥ शतार स्वर्ग स्थित इन्द्रादि सर्व देवों के मुकुटो में खड्गी का और सहस्रार स्वर्ग स्थित देवो के मुकुटो में बकरी का चिन्ह है ॥१०६॥ आनत–प्राणत स्वर्ग स्थित देवो के मुकुटो में बैल का तथा आरण–अच्युत स्वर्ग स्थित देवों के मुकुटों मे कल्पवृक्ष का चिन्ह है ॥१०७॥ कल्पातीत स्वर्गों में स्थित सर्व अहमिन्द्रों के मुकुटों में कोई भी चिन्ह नही है । अब मै (आचार्य) सौधर्म आदि इन्द्रो के वाहनों का कथन करूँगा ॥१०८॥

अब इन्द्रों के वाहनों का निरूपण करते हैः—

सौधर्मे देवराजस्य गजेन्द्रो वाहनं महत् ।
ईशाने तुरगः स्यात्सनत्कुमारे मृगाधिपः ॥१०९॥
माहेन्द्रे वृषभो ब्रह्मस्वर्गे सारसवाहनम् ।
ब्रह्मोत्तरे पिकः प्रोक्तो लान्तवे हंसवाहनम् ॥११०॥

कापिष्टे कोक एवास्ति शुक्रे गरुडवाहनम् ।
महाशुक्रे च देवानां मकरो वाहनं भवेत् ॥१११॥
शतारे च मयूरः स्यात्सहस्रारेऽम्बुजं भवेत् ।
आनतादिचतुष्केषु विमानं पुष्पकाह्वयम् ॥११२॥

अर्थ.—सौधर्म स्वर्ग मे इन्द्र का वाहन गजेन्द्र है, ईशान स्वर्ग मे घोटा, सनत्कुमार स्वर्ग में सिंह, माहेन्द्र मे बैल, ब्रह्म स्वर्ग मे सारस, ब्रह्मोत्तर मे कोयल, लान्तव में हंस, कापिष्ट मे चक्रवाल, शुक्र मे गरुड़, महाशुक्र मे मगर, शतार मे मयूर, सहस्रार मे कमल और आनतादि चार स्वर्गों मे कल्पवृक्ष का वाहन है ॥१०९–११२॥

अब दक्षिणेन्द्र-उत्तरेन्द्र के प्रमुख विमानों की चारो दिशाओ मे स्थित विमानों के नामों का निरूपण करते हैं:—

स्वस्वेन्द्रविमानस्य स्वस्वकल्पाह्वयस्य च ।
स्युश्चत्वारि विमानानि पूर्वादि दिक् चतुष्टये ॥११३॥
आद्यं वैडूर्य साराख्यं रौप्यसाराभिधं ततः ।
अशोकसारसंज्ञं च मिश्रसारमिमान्यपि ॥११४॥
पूर्वाद्यासु चतुर्दिक्षु चत्वारः स्युर्विमानकाः ।
सर्वेषां दक्षिणेन्द्राणां विमानानामनुक्रमात् ॥११५॥
रुचकं मन्दराभिख्यमशोकं सप्तपर्णकम् ।
चत्वारोऽमी विमानाः स्युः प्राच्यादि दिक् चतुष्टये ॥११६॥
ईशानेन्द्रादि सर्वोत्तरेन्द्राणां क्रमतः परे ।
विमानानामयं ज्ञेयः क्रमोऽच्युतान्तमञ्जसा ॥११७॥

अर्थ:—अपने अपने कल्प का नाम ही अपने अपने इन्द्र स्थित विमान का नाम है । इन्द्र स्थित विमान की पूर्व दक्षिण आदि चारो दिशाओ में क्रम से वैडूर्य सार, रौप्य सार (रजत), अशोक सार और मिश्र सार (मृपत्कसार) नाम वाले चार विमान अवस्थित हैं ॥११३–११४॥ सर्व दक्षिणेन्द्रों के विमानो की पूर्वादि चारो दिशाओ मे अनुक्रम से उपर्युक्त नाम वाले चार चार विमान हैं ॥११५॥ ईशान इन्द्र आदि सर्व उत्तरेन्द्रो के विमानो की पूर्वादि चारो दिशाओ मे अनुक्रम से रुचक,

मन्दर, अशोक और सप्तपर्ण नाम के चार चार विमान है। दक्षिणेन्द्रों-उत्तरेन्द्रों के विमानों की यह व्यवस्था क्रमशः अच्युत कल्प पर्यन्त जानना चाहिए ।।११६-११७।।

अब विमानों के तल बाहुल्य (मोटाई) का निरूपण करते हैं:—

षट् युग्मशेषकल्पेषु ग्रैवेयकत्रिक त्रिषु ।
शेषेषु च विमानानां तलबाहुल्यमुच्यते ।।११८।।
योजनान्येकविंशाग्रशतान्येकादशक्रमात् ।
ततो नवनवत्या हीनान्युपर्युपरिस्फुटम् ।।११९।।

अर्थः—सौधर्मादि छह कल्पों में, अवशेष आनतादि चार कल्पों में, अधो आदि तीन-तीन ग्रैवेयकों मे तथा अन्य शेष अनुदिशों आदि मे स्थित विमानों का तल बाहुल्य कहते है ।।११८।। सौधर्म स्वर्ग स्थित विमानों का तल बाहुल्य ११२१ योजन प्रमाण है, इसके बाद ऊपर-ऊपर क्रमशः ९९, ९९ योजन हीन होता गया है ।।११९।।

अस्य विशेषव्याख्यानमाह:—

सौधर्मैशानयोर्विमानाना तलबाहुल्य योजनानामेकविंशत्यधिकैकादशशतानि । सनत्कुमार-माहेन्द्रयोश्च द्वाविंशाग्रदशशतानि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोस्त्रयो विंशाग्रनवशतानि । लान्तवकापिष्टयोश्चतुर्विंशत्यधिकाष्टयोजनशतानि । शुक्रमहाशुक्रयो: पञ्चविंशत्यग्रसप्तशतानि । शतारसहस्रारयो: षड्विंशतियुतषट्शतानि । आनतप्राणतारणाच्युताना विमानानामधस्तलबाहुल्य सप्तविंशत्यग्रपञ्चशत-योजनानि । अधोग्रैवेयक त्रिषु विमानानां तलपिण्डबाहुल्य योजनानामष्टाविंशत्यधिकचतु: शतानि । मध्यग्रैवेयक त्रिषु एकोनत्रिंशदधिकत्रिशतानि च । ऊर्ध्वग्रैवेयक त्रिषु त्रिंशदग्रे द्वे शते । नवानुदिश-पञ्चानुत्तरयोर्विमानाना तलस्थूलता एक त्रिंशदग्रशतयोजनानि ।

अर्थः—उसी बाहुल्य का विशेष कथन करते है:—सौधर्मैशान स्वर्ग स्थित विमानों के तल भागों की मोटाई ११२१ योजन, सानत्कुमार-माहेन्द्र स्थित विमानों के तल की मोटाई १०२२ योजन ब्रह्मब्रह्मोत्तर की ९२३ योजन, लान्तव-कापिष्ट की ८२४ योजन, शुक्र-महाशुक्र की ७२५ योजन, शतार-सहस्रार की ६२६ योजन, आनत-प्राणत-आरण और अच्युत स्वर्गो की ५२७ योजन, तीन अधोग्रैवेयक स्थित विमानो की तल मोटाई ४२८ योजन, तीन मध्य ग्रैवेयको की ३२९ योजन, तीन ऊर्ध्वग्रैवेयको के विमानो की तल मोटाई २३० योजन तथा नव अनुदिशों एवं पञ्चोत्तर स्वर्ग स्थित विमानो के तल भागों की मोटाई १३१ योजन प्रमाण है ।

अब सौधर्मादि इन्द्रों के नगरों के विस्तार का कथन करते हैं:—

सौधर्मादि चतुःस्वर्गे चतुर्युग्मेष्वतोऽग्रतः ।
शेषेषु चतुरस्राणां पुराणां वच्मि विस्तरम् ।।१२०।।
अशीतिश्चतुरग्रा स्यात्सहस्राणामथोनता ।
चत्वार्यष्टौ सहस्राणि योजनानामनुक्रमात् ।।१२१।।
द्वे सहस्रे ततोऽप्यूने शेषेषु च दशोनता ।
अमीषां सुखबोधाय व्याख्यानं पुनरुच्यते ।।१२२।।

अर्थ.—सौधर्मादि चार स्वर्गों मे, इनसे आगे के चार युगलो मे और इसके आगे शेष आनतादि स्वर्गों मे स्थित इन्द्रो के समचतुरस्र नगरो का विस्तार कहता हूँ ।।१२०।। सौधर्मादि कल्पो मे नगरों का विस्तार क्रमश. ८४ हजार योजन, चार हीन अर्थात् ८० हजार योजन, आठ हजार योजन हीन अर्थात् ७२ हजार योजन, दो हजार हीन अर्थात् ७० हजार योजन, शेष चार स्वर्गों मे दश-दश हजार हीन अर्थात् ६० हजार योजन, ५० हजार योजन, ४० हजार योजन और ३० हजार योजन है। शेष स्वर्गों में नगरों का विस्तार २०-२० हजार योजन प्रमाण है। सुगमता पूर्वक समझने के लिए अब इसी विषय का व्याख्यान पुन· किया जाता है ।।१२०-१२२।।

सौधर्मे नगराणां समचतुरस्राणा विष्कम्भः योजनाना चतुरशीति सहस्राणि । ऐशाने चाशीतिसहस्राणि । सनत्कुमारे द्वासप्ततिसहस्राणि । माहेन्द्रे सप्तति सहस्राणि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः पुराणा विस्तार. योजनाना षष्टिसहस्राणि । लान्तवकापिष्टयोश्च पञ्चाशत्सहस्राणि । शुक्रमहाशुक्रयोश्चत्वारिंशत्सहस्राणि । शतारसहस्रारयोस्त्रिंशत्सहस्राणि । आनतप्राणतारणाच्युतेषु समचतुरस्रपुराणा व्यास: विंशति सहस्र योजनानि ।

अर्थ:—सौधर्म स्वर्ग स्थित चतुरस्र नगरो का विष्कम्भ ८४ हजार योजन, ऐशान स्वर्ग मे ८० हजार योजन, सनत्कुमार स्वर्ग मे ७२ हजार योजन और माहेन्द्र स्वर्ग मे ७० हजार योजन है। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल में स्थित नगरों का विस्तार ६० हजार योजन, लान्तव-कापिष्ट युगल मे ५० हजार योजन, शुक्र-महाशुक्र युगल में ४० हजार योजन और शतार-सहस्रार युगल मे ३० हजार योजन है। आनत-प्राणत-आरण और अच्युत स्वर्गों के चतुरस्र नगरों का व्यास २०-२० हजार योजन है।

अब उक्त नगरों के प्राकारों की ऊँचाई का प्रमाण कहते हैं:--

त्रिशतान्याद्ययुग्मे तत्प्राकाराणां समुच्छ्रयः ।
योजनानां त्रियुग्मेषु पञ्चाशत् पृथगूनता ।।१२३।।
ततस्त्रिंशद्विहीनानि योजनानि च पञ्चमे ।
षष्ठे युग्मे च शेषेषु हीनानि विंशतिः पृथक् ।।१२४।।

अर्थः—प्रथम युगल में प्राकारों की ऊँचाई ३०० योजन है, आगे के तीन युगलों में पृथक्-पृथक् ५०-५० योजन हीन है, पाचवें युगल में ३० योजन हीन, छठवे युगल में और शेष आनतादि स्वर्गो में पृथक् पृथक् २०-२० योजन हीन है ।।१२३-१२४।।

अब इसी ऊँचाई को विस्तार पूर्वक कहते हैं:—

अस्य विस्तरमाह:--

सौधर्मैशानयो· नगरस्थ प्राकाराणामुत्सेध. त्रिशतयोजनानि । सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सार्ध-द्विशतयोजनानि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्योजना द्वे शते । लान्तवकापिष्ठयोश्च सार्धशत । शुक्रमहाशुक्रयोः विंशाग्र शतं । शतारसहस्रारयोः प्राकारोदयः शतयोजनानि । आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु नगराणां प्राकारोत्सेध. अशीतियोजनानि ।

अर्थ:—सौधर्मैशान कल्प मे स्थित नगरों के प्राकारों की ऊँचाई ३०० योजन, सानत्कुमार माहेन्द्र कल्प स्थित प्राकारों की २५० योजन, ब्रह्मब्रह्मोत्तर में २०० योजन, लान्तव-कापिष्ट में १५० योजन, शुक्र-महाशुक्र मे १२० योजन, शतार-सहस्रार के प्राकारो की १०० योजन और आनत-प्राणत-आरण और अच्युत स्वर्गो मे स्थित नगरो के प्राकारो की ऊँचाई ८०-८० योजन प्रमाण है ।

अब उन्ही प्राकारों के गाध (नींव) और व्यास का प्रमाण कहते हैं:--

षट्सु युग्मेषु शेषेषु सप्तस्थानेष्वितिक्रमात् ।
प्राकाराणां पृथग्व्यासोऽवगाहश्चाभिधीयते ।।१२५।।
योजनानां च पञ्चाशत्ततोऽर्धार्धं पृथक् त्रिषु ।
ततः क्रमेण चत्वारि त्रीणि सार्धे द्वि योजने ।।१२६।।

चतुस्त्रिद्वयसंगुण्यं शतषष्ट्यधिकं शतम् ।
विंशत्या त्रिषु तद्धीन गोपुराणां समुन्नतिः ।।१२७।।
योजनानां शतं व्यासस्ततो दशोनता पृथक् ।
विंशोनं पञ्चमे स्थाने दशोनं च पृथक् द्वये ।।१२८।।

अर्थ —छह युगलो के छह स्थान और अवशेष आनतादि स्वर्गो का एक स्थान इस प्रकार ७ स्थानो मे उपर्युक्त प्राकारो के पृथक् पृथक् व्यास और अवगाह का प्रमाण कहते है ।।१२५।। प्रथम युगल मे प्राकारो की नीव और व्यास का प्रमाण ५० योजन प्रमाण है, उसके आगे तीन स्थानो मे क्रमशः इसका आधा आधा है । पाँचवे स्थान का ४ योजन, छठवे स्थान का ३ योजन और सातवे स्थान का प्रमाण २½ योजन है ।।१२६।। सातो स्थानो के प्राकारो की चारो दिशाओ मे उनकी ऊँचाई का प्रमाण क्रमश ४०० योजन, ३०० योजन, २०० योजन, १६० योजन, १४० योजन, १२० योजन और १०० योजन है ।।१२७।। इन्ही सातो स्थानो के गोपुरो का विस्तार क्रमश· १०० योजन, ९० योजन, ८० योजन, ७० योजन, ५० योजन, ४० योजन और ३० योजन प्रमाण है।।१२८।।

अमीषां विशेषव्याख्यानमाहः—

सौधर्मैशानयोः प्राकाराणा विष्कम्भोवगाहश्च पञ्चाशद्योजनानि । प्राकारस्थ गोपुराणामुत्सेधश्चतु शतयोजनानि विष्कम्भः शतयोजनानि । सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः प्राकाराणा व्यासोऽवगाहश्चपञ्चविंशतियोजनानि । तद्गोपुराणामुदय त्रिशतयोजनानि । विस्तार. नवतियोजनानि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो. प्राकाराणां विस्तृति· अवगाहश्च सार्धद्वादशयोजनानि । तत्प्रतोलीना उत्सेधः द्विशतयोजनानि । विस्तृतिरशीतियोजनानि । लान्तवकापिष्टयोः प्राकाराणा विस्तारावगाहौ क्रोशाग्रषट्योजनानि । तद्गोपुराणामुदयः षष्ट्यग्रशतयोजनानि । विस्तार. सप्ततियोजनानि । शुक्रमहाशुक्रयोः प्राकाराणा व्यासोऽवगाहत्व च चत्वारियोजनानि । तद्गोपुराणामुच्छ्रायः चत्वारिंशदधिकशतयोजनानि । व्यास पञ्चाशद्योजनानि । शतारसहस्रारयो प्राकाराणां विष्कम्भावगाहौ त्रीणियोजनानि । तद्गोपुराणामुदय. विंशत्यग्रशतयोजनानि । विष्कम्भः चत्वारिंशद्योजनानि । आनतप्राणतारणाच्युतेषु प्राकाराणा विस्तारः गाहत्व च सार्धयोजन द्वे प्राकारस्थप्रतोलीनामुत्सेध शतयोजनानि । व्यास त्रिंशद्योजनानि ।

अर्थ.—अब इसी को विशेषता से कहते है—

उपर्युक्त गद्य का अर्थ निम्नाङ्कित तालिका में निहित है। प्राकारों एवं गोपुरों का प्रमाण योजनों और मीलों में दर्शाया गया है।

प्राकारो (कोट) का विवरण								गोपुर द्वारो का प्रमाणादि			
क्रमांक	सात स्थान	ऊँचाई		बाहुल्य		गाध (नींव) की गहराई		उत्सेध		व्यास	
		योजनो मे	मीलो मे	योजनो मे	मीलो मे	योजनो मे	मीलो मे	योजनो मे	मीलो मे	योजनो मे	मीलो मे
१	सौधर्मेशान	३०० यो०	२४००	५०	४००	५०	४००	४००	३२००	१००	८००
२	सा०, मा०	२५० ,,	२०००	२५	२००	२५	२००	३००	२४००	९०	७२०
३	ब्रह्म-ब्रह्मो०	२०० ,,	१६००	१२½	१००	१२½	१००	२००	१६००	८०	६४०
४	ला०, का०	१५० ,,	१२००	६¼	५०	६¼	५०	१६०	१२८०	७०	५६०
५	शुक्र-म०	१२० ,,	९६०	४	३२	४	३२	१४०	११२०	५०	४००
६	शतार-सह०	१०० ,,	८००	३	२४	३	२४	१२०	९६०	४०	३२०
७	आनतादि	८० ,,	६४०	२½	२०	२½	२०	१००	८००	३०	२४०

अब सौधर्मादि बारह स्थानों में गृहों की ऊँचाई, लम्बाई एवं चौड़ाई का प्रतिपादन करते हैं:—

षट्सु युग्मेषु शेषेषु ग्रैवेयकत्रिक त्रिषु।
नवानुदिशिपञ्चानुत्तरे पृथग्गृहोदयः ॥१२९॥
योजनां शतान्येव षट् ततः शतपञ्चकम्।
शतार्ध तद्दणं शेषाणामन्ते पञ्चविंशतिः ॥१३०॥
हर्म्याणामुदयस्यास्यायामोऽस्ति पञ्चमांशकः।
विष्कम्भो दशमो भागः सर्वत्रैवं व्यवस्थितिः ॥१३१॥

अर्थः—सौधर्मादि छह युगलो में अवशेष आनतादि स्वर्गो मे, अधो, मध्य एवं उपरिम इन नव अनुदिशों मे एवं पंचानुत्तरों में अर्थात् (६+१+३+१+१=) १२ स्थानों में गृहों की पृथक्

पृथक् ऊँचाई कहते है ॥१२९॥ प्रथम युगल मे गृहो की ऊँचाई ६०० योजन और दूसरे युगल में ५०० योजन हैं। इसके आगे ११ वे स्थान तक ५०-५० कम होते हुये क्रमशः ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १०० और ५० योजन है। अन्तिम स्थान के गृहो की ऊँचाई २५ योजन है ॥१३०॥ प्रत्येक स्थानो के गृहो की लम्बाई अपनी अपनी ऊँचाई का पाँचवाँ (६००/५ = १२०) भाग है और प्रत्येक स्थानो के गृहो की चौडाई अपनी अपनी ऊँचाई का १० वाँ (६००/१० = ६०) भाग प्रमाण है ॥१३१॥ जैसे —लम्वाई क्रमश १२० योजन, १००, ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४०, ३०, २०, १०, और ५ योजन प्रमाण है। इसी प्रकार चौड़ाई क्रमश ६०, ५०, ४५, ४०, ३५, ३०, २५, २०, १५, १०, ५, और २½ योजन प्रमाण है।

एतेषां उत्सेधायामविष्कम्भाः पृथक् पृथक् व्यासेन प्रोच्यन्तेः——

सौधर्मेशानयो प्रासादानामुत्सेध. षट्शतयोजनानि । आयाम: विशत्यग्र शतयोजनानि, विष्कम्भ. षष्टियोजनानि । सानत्कुमारमाहेन्द्रयो गृहाणामुदयः पञ्चशतयोजनानि, दीर्घता शतयोजनानि, व्यास. पञ्चाशद्योजनानि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो सौधानामुन्नति: सार्धचतु:शतयोजनानि, आयाम नवति योजनानि, विस्तृति. पञ्चचत्वारिंशद्योजनानि । लान्तवकापिष्टयो. प्रासादानामुत्सेध: चतु शतयोजनानि, आयामः अशीतियोजनानि, विस्तार चत्वारिंशद्योजनानि । शुक्रमहाशुक्रयो: गृहाणामुन्नति. सार्धत्रिशतयोजनानि, दीर्घता सप्तति योजनानि, विष्कम्भ: पञ्चत्रिंशद्योजनानि । शतारसहस्रारयो. प्रासादानामुदय: त्रिशतयोजनानि, आयाम षष्टि योजनानि, व्यास: त्रिंशद्योजनानि आनतप्राणतारणाच्युतेषु हर्म्याणामुत्सेध सार्धद्विशतयोजनानि, आयाम· पञ्चाशद्योजनानि, विस्तारः पञ्चविंशतियोजनानि । अधोग्रैवेयक त्रिषु प्रासादानामुदय द्विशतयोजनानि, दीर्घता चत्वारिंशद्योजनानि, विष्कम्भ विंशति योजनानि । मध्यग्रैवेयक त्रिषु गृहाणामुत्सेध: सार्धशतयोजनानि, दीर्घता त्रिंशद्योजनानि, व्यासः पञ्चदशयोजनानि । ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिषु सौधानामुच्छ्य. शतयोजनानि, आयाम विंशतियोजनानि, विस्तार दशयोजनानि । नवानुदिशे प्रासादानामुत्सेध· पञ्चाशद्योजनानि, आयाम दशयोजनानि, व्यासः पञ्चयोजनानि पञ्चानुत्तरे प्रासादानामुत्सेधः पञ्चविंशतियोजनानि । आयामः पञ्चयोजनानि, व्यास. सार्धे द्वे योजने ।

(तालिका अगले पेज पर देखे)

गद्य का अर्थः—

क्रमाक	स्थान	देवो के गृहो का					
		उत्सेध		लम्बाई		चौडाई	
		योजनो मे	मीलो मे	योजनो मे	मीलो मे	योजनो मे	मीलो मे
१	सौधर्मेशान	६००	४८००	१२०	९६०	६०	४८०
२	सानत्कु०–माहेन्द्र	५००	४०००	१००	८००	५०	४००
३	ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	४५०	३६००	९०	७२०	४५	३६०
४	लान्तव–कापिष्ट	४००	३२००	८०	६४०	४०	३२०
५	शुक्र–महाशुक्र	३५०	२८००	७०	५६०	३५	२८०
६	शतार–सहस्रार	३००	२४००	६०	४८०	३०	२४०
७	आनतादि चार	२५०	२०००	५०	४००	२५	२००
८	अधो ग्रैवेयक	२००	१६००	४०	३२०	२०	१६०
९	मध्य ,,	१५०	१२००	३०	२४०	१५	१२०
१०	उपरिम ,,	१००	८००	२०	१६०	१०	८०
११	अनुदिश	५०	४००	१०	८०	५	४०
१२	अनुत्तर	२५	२००	५	४०	२½	२०

अब इन्द्र के नगर सम्बन्धी प्राकारों की संख्या और उनके पारस्परिक अन्तर का प्रमाण कहते हैः—

इन्द्रक्रीडानिवासस्य प्राकारात्प्रथमाद्बहिः ।
आदिशालसमव्यासोत्सेधाश्चत्वार ऊर्जिताः ॥१३२॥
महान्तोऽन्ये च विद्यन्ते प्राकारा अन्तरान्तरे ।
प्राकारस्यादिमस्यैव योजनानां किलान्तरम् ॥१३३॥

त्रयोदशैव लक्षाणि द्वितीयस्यास्य चान्तरम् ।
त्रिषष्टिरेव लक्षाणि तृतीयस्य तथान्तरम् ।।१३४।।
चतुःषष्टिस्तु लक्षाणि तुर्यशालस्य चान्तरम् ।
लक्षाणि योजनानां चतुरशीतिप्रमाणि वै ।।१३५।।

अर्थ —इन्द्र के क्रीडा निवास (अर्थात् नगर) के प्रथम प्राकार से बाहर समुन्नत (व्यास के समान उन्नत) एवं महान् एक दूसरे के अन्तराल से, चार प्राकार और है। जिनका व्यास एवं उत्सेध प्रथम प्राकार के सदृश है। प्रथम कोट (प्राकार) से दूसरे कोट का अन्तर १३ लाख योजन (१०४००००० मील) है। दूसरे कोट से तोसरे कोट का अन्तर ६३ लाख योजन (५०४००००० मील) है। तीसरे कोट से चौथे कोट का अन्तर ६४ लाख योजन (५१२००००० मील) है, और चौथे कोट से पाचवे कोट का अन्तराल ८४ लाख योजन (६७२००००० मील) प्रमाण है ।।१३२-१३५।।

अब कोटों के अन्तरालों में स्थित देवों के भेद कहते हैं:—

आद्यप्राकारभूमध्ये सैन्यनाथा वसन्ति च ।
शालान्तरे द्वितीयस्याङ्गरक्षकसुधाभुजः ।।१३६।।
तृतीयशालभूभागे निर्जराः परिषत्स्थिताः ।
अन्तरे तुर्यशालस्य सामानिका वसन्ति च ।।१३७।।

अर्थः—प्रथम कोट के मध्य में सेनापति और दूसरे कोट के मध्य मे अङ्गरक्षक देव रहते है ।।१३६।। तोसरे कोट के मध्य मे परिषद् देव तथा चौथे कोट के अन्तराल मे सामानिक देव निवास करते है ।।१३६-१३७।।

अब सामानिक, तनुरक्षक और अनीक देवों का प्रमाण कहते हैं:—

चतुर्णामाद्य नाकानामशीतिश्चतुरुत्तरा ।
सहस्राणामशीतिश्च द्विसप्ततिस्तुसप्ततिः ।।१३८।।
चतुर्णामूर्ध्वयुग्मानां सहस्राण्ययुतं विना ।
शेषाणां स्युः सहस्राविंशतिः सामान्यकामराः ।।१३९।।
तेभ्यश्चतुर्गुणाः सन्ति ह्यङ्गरक्षकनाकिनः ।
वृषभाद्याः पृथक् सप्तसप्तानीकाः क्रमादिमे ।।१४०।।

वृषभाः प्रवरा अश्वा रथा गजाः पदातयः ।
गन्धर्वा देवनर्तक्यः सप्तानीका अमी पृथक् ॥१४१॥
सप्त नामादिमं सैन्यं स्वस्वसामानिकैः समम् ।
स्युः शेषाः षड्वरानीका द्विगुणा द्विगुणाः पृथक् ॥१४२॥

अर्थः—आदि चार अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गो मे सामानिक देवों का प्रमाण क्रमशः ८४०००, ८००००, ७२००० और ७०००० है ॥१३८॥ इनके ऊपर के चार युगलों मे दश-दश हजार हीन है । अर्थात् तृतीय युगल मे ६००००, चतुर्थ युगल में ५००००, पंचम युगल में ४०००० और षष्ठ युगल मे ३०००० सामानिक देव है, तथा शेष आनतादि चार कल्पों के एक स्थान २०००० सामानिक देव है ॥१३९॥ प्रत्येक स्थान मे अङ्गरक्षक देवो का प्रमाण सामानिक देवो के प्रमाण से चतुर्गुणा है । जैसे—सौधर्म स्वर्ग मे ८४०००×४=३३६००० अङ्गरक्षक, ऐशान मे ८००००×४=३२०००० अङ्गरक्षक इत्यादि । प्रथम आदि स्वर्गो मे वृषभ को आदि लेकर क्रमशः पृथक् पृथक् सात-सात अनीक सेनाएँ होती है ॥१४०॥ श्रेष्ठ एव अनुपम वृषभ, अश्व, रथ, हाथी, पदाति, गन्धर्व और नर्तकी, ये पृथक् पृथक् सात अनीक सेनाएँ नव स्थानों में होती है ॥१४१॥ इन सातों सेनाओं मे से जो वृषभ नाम की सात प्रकार की आद्य सेना है, उसमें वृषभों का प्रमाण अपने अपने सामानिक देवो के प्रमाण सदृश है तथा अवशेष छह अनीको मे वृषभों का प्रमाण पृथक् पृथक् क्रमशः दूना-दूना होता गया है ॥१४२॥

अब दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के अनीक नायकों के नाम कहते हैः—

दामाख्यो हरिदासाख्यो मातलिनामकस्ततः ।
ऐरावताह्वयो वायुनामारिष्टयशोभिधः ॥१४३॥
नीलाञ्जनामरी चैते सप्तसेनमहत्तराः ।
षण्णां स्युर्दक्षिणेन्द्राणां सप्तसैन्याग्रिमाः पृथक् ॥१४४॥
महादामाभिधः स्वेच्छगामी च रथमन्थनः ।
पुष्पदन्तो महावीर्यो गीतप्रीतिर्महामतिः ॥१४५॥
इमे महत्तराः सप्त सन्ति स्वसैनिकाग्रिमाः ।
क्रमेण सप्त सैन्यानामुत्तरेन्द्रा खिलात्मनाम् ॥१४६॥

अर्थः—छह दक्षिणेन्द्रो के सात अनीक सेनाओ के आगे आगे चलने वाले पृथक् पृथक् दाम, हरिदाम, मातलि, ऐरावत, वायु, अरिष्टयशा और नीलाञ्जना नाम छह दक्षिणेन्द्रो के ये सात सात

प्रधान हैं ।।१४३-१४४।। इसी प्रकार छह उत्तरेन्द्र अपनी अपनी सेनाओं के आगे आगे चलने वाले क्रमशः महादाम, स्वेच्छगामी (अमितगति), रथमन्थन, पुष्प दन्त, महावीर्य, गीतप्रीति और महापति नाम के ये सात-सात प्रधान छहो उत्तरेन्द्रो के पृथक् पृथक् है ।।१४५-१४६।।

अब नवों स्थानों में तीनों परिषदों का पृथक् पृथक् प्रमाण कहते हैः--

क्रमात् परिषदा संख्येय द्वादश चतुर्दश ।
षोडशैव सहस्राणि नवानां प्रथमे पदे ।।१४७।।
ततो द्वि द्वि सहस्रोनं यावत् षष्ठं पद ततः ।
अर्धार्धक्रमतो हीनं स्याद्यावन्नवमं पदम् ।।१४८ ।

अर्थः—सौधर्म स्वर्ग आदि के नव स्थानो मे से प्रथम स्थान मे अभ्यन्तर परिषद् मे देवो की सख्या १२०००, मध्य परिषद् मे १४००० और बाह्य परिषद् मे १६००० है ।।१४७।। इसके आगे छह पदो तक इस प्रमाण मे क्रमश. दो-दो हजार की हानि होती गई है, तथा इसके आगे नवम पद पर्यन्त यह सख्या क्रमशः अर्ध-अर्ध प्रमाण हीन होती गई है ।।१४८।।

अथामीषां सुखबोधाय विशेषव्याख्यानमाहः—

सौधर्मेन्द्रस्य सामान्यकामरा चतुरशीतिसहस्राणि । अङ्गरक्षाः त्रिलक्षषड्त्रिंशतसहस्राणि । वृषभाना प्रथमे अनीके वृषभाश्चतुरशीति सहस्राणि । द्वितीये च एकलक्षाष्टषष्टिसहस्राणि । तृतीये त्रिलक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि । चतुर्थे षड्लक्षद्वासप्ततिसहस्राणि पञ्चमे त्रयोदशलक्ष चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि षष्ठे षड्विंशतिलक्षाष्टाशीति सहस्राणि । सप्तमे अनीके वृषभा त्रिपञ्चाशल्लक्षषट्सप्ततिसहस्राणि । सप्तानीकस्था. पिण्डीकृता. सर्वे वृषभा एकाकोटीषड्लक्षाष्टषष्टिसहस्राणि भवन्ति । शेषाः अश्वाद्याः सप्त सप्तभेदाः । षडनीकाः वृषभानीक समानाः विज्ञेयाः । अमीषा वृषभादि सप्तानीकाना एकत्रीकृता' समस्तवृषभादि नर्तक्यन्ताः सप्तकोटिषट्चत्वारिंशल्लक्षषट् सप्ततिसहस्राणि स्यु । आदिपरिषदि देवा द्वादशसहस्राणि । मध्यपरिषदि, सुराः चतुर्दशसहस्राणि । बाह्यपरिषदिगीर्वाणाः षोडशसहस्राणि ।। ऐशानेन्द्रस्य सामान्यकाः अशीतिसहस्राणि । अङ्गरक्षा' त्रिलक्षविंशतिसहस्राणि । वृषभाणां प्रथमानीके वृषभा अशीतिसहस्राणि ततः पूर्ववत् शेषषडनीकेषु द्विगुणा द्विगुणा वृषभाः विज्ञेया. । सप्तानीकाना सर्वे पिण्डीकृता वृषभाः एकाकोट्येकलक्षषष्टि सहस्राणि । शेषा' अश्वादय. षट्वृषभगणनासमानाः स्यु । एते सर्वे सप्तानीकाना पिण्डीकृता वृषभादयः नर्तक्यन्ताः सप्तकोट्येकादशलक्षविंशतिसहस्राणि भवेयु । आदिपरिषदि देवा दशसहस्राणि। मध्यपरिषदि द्वादशसहस्राणि।

बाह्य परिषदि सुराः चतुर्दशसहस्राणि ।। सनत्कुमारेन्द्रस्य सामानिकाः द्विसप्ततिसहस्राणि अङ्गरक्षाः द्विलक्षाष्टाशीतिसहस्राणि । प्रथमे वृषभानीके वृषभा द्वासप्ततिसहस्राणि ततः शेषषट्सैन्येषु द्विगुणा द्विगुणा वृषभा. सन्ति । सप्तानीकस्थाःसर्वे पिण्डीकृताः वृषभाः एकनवतिलक्षचतुश्चत्वारिशत्सहस्राणि भवन्ति । शेषाः अश्वादयः षट् वृषभसमाः मन्तव्या । अमी सप्तानीकाना पिण्डीकृताः सर्वे वृषभादयः षट्कोटि चत्वारिंशल्लक्षाष्टसहस्राणि भवन्ति । आदि परिषदिगीर्वाणा अष्टसहस्राणि । मध्यपरिषदि देवा दशसहस्राणि । बाह्यपरिषदि त्रिदशाः द्वादशसहस्राणि ।। माहेन्द्रस्य सामानिकाः सप्ततिसहस्राणि । अङ्गरक्षाः द्विलक्षाशीतिसहस्राणि । प्रथमे वृषभानीके वृषभा. सप्ततिसहस्राणि । ततो द्विगुण द्विगुण वृद्धया सप्तानीकानां विश्वे पिण्डीकृताः वृषभा. अष्टाशीतिलक्षनवतिसहस्राणि भवन्ति । अश्वादयः प्रत्येक तावन्त एव विज्ञेया. । सप्तानीकाना सर्वे पिण्डीकृता वृषभादय. षट्कोटिद्वाविशति-लक्षत्रिशत्सहस्राणि विद्यन्ते । आदिपरिषदि निर्जरा. षट्सहस्राणि, मध्यपरिषदि, देवा. अष्टसहस्राणि, बाह्यपरिषदि सुरा दशसहस्राणि ।। ब्रह्मेन्द्रस्य सामानिका· षष्टिसहस्राणि, अङ्गरक्षा द्विलक्षचत्वारि-शत्सहस्राणि । आद्ये वृषभानीके वृषभाः षष्टिसहस्राणि । ततो द्विगुण द्विगुण वर्द्धिताः सर्वे सप्तानी-कस्थाः पिण्डीकृताः वृषभाः षट्सप्ततिलक्षविंशत्ति सहस्राणि स्युः । अश्वादयः शेषाः पृथग्भूता वृषभतुल्याज्ञातव्याः । सप्तानीकानामेकत्रीकृताः सर्वे वृषभादय पञ्चकोटि त्रयस्त्रिशल्लक्षचत्वारि-शत्सहस्राणि । आदिपरिषदिदेवा. चत्वारि सहस्राणि । मध्यपरिषदिगीर्वाणाः षट्सहस्राणि, बाह्य-परिषदि सुरा अष्टसहस्राणि ।। लान्तवेन्द्रस्य सामानिका. पञ्चाशत्सहस्राणि । अङ्गरक्षाः द्वे लक्षे । वृषभाणा प्रथमानीके वृषभा· पञ्चाशत्सहस्राणि, ततो द्विगुण द्विगुण वृद्धया वर्धिताः वृषभाः एकत्रीकृताः त्रिषष्टिलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि स्यु । अश्वादयोऽपि समस्तास्तत्समा विज्ञया. । सप्तानी-काना सर्वे पिण्डीकृताः वृषभादय· चतु कोटिचतुश्चत्वारिशल्लक्षपञ्चाशत् सहस्राणि भवन्ति । आदि परिषदि देवा द्वे सहस्रे, मध्यपरिषदि सुरा· चत्वारिशत्सहस्राणि, बाह्यपरिषदिगीर्वाणा षट्सह-स्राणि ।। शुक्रेन्द्रस्य सामानिका. चत्वारिशत्सहस्राणि । अङ्गरक्षा एकलक्षषष्टिसहस्राणि । वृषभाणां प्रथमानीके वृषभाः चत्वारिशत्सहस्राणि । ततो द्विगुण द्विगुण वृद्धया क्रमेण वर्धिताः । सप्तानीक-वृषभा पिण्डिता. पञ्चाशल्लक्षाशीति सहस्राणि भवेयु· । तावन्तः पृथक् पृथक् अश्वादयो (वृषभादयः इति पाठः) ज्ञातव्याः । सर्वे सप्तानीकाना पिण्डीकृताः वृषभादय. त्रिकोटिपञ्चपञ्चाशल्लक्षषष्टि-सहस्राणि भवन्ति । आदि परिषदिदेवा. सहस्र मध्यपरिषदि सुराः द्वे सहस्रे, बाह्यपरिषदिगीर्वाणाः चत्वारि सहस्राणि ।। शतारेन्द्रस्य सामानिकास्त्रिशशत् सहस्राणि अङ्गरक्षा एकलक्षविशतिसह-स्राणि । वृषभाणां प्रथमानीके वृषभा. त्रिशत्सहस्राणि । ततो द्विगुण द्विगुण वृद्धिक्रमेण वर्द्धमाना। विश्वे वृषभा. अष्टत्रिशल्लक्षदशसहस्राणि भवन्ति । अश्वादयः षट्सख्यया वृषभसमानाः ज्ञातव्याः। सप्तानीकानां विश्वे वृषभादय. पिण्डीकृताः द्विकोटिषट्षष्टिलक्षसप्तत्ति सहस्राणि भवन्ति । आदि परिषदिदेवाः पञ्चशतानि । मध्यपरिषदिसुराः सहस्रैकं च । बाह्यपरिषदि अमरा. द्वे सहस्रे ।।

आनतप्राणतारणाच्युतेन्द्राणां प्रत्येक सामानिकाः विंशतिसहस्राणि । अङ्गरक्षा अशीतिसहस्राणि। वृषभाणा प्रथमे अनीके वृषभा विंशतिसहस्राणि । द्वितीये चत्वारिंशत्सहस्राणि । इत्यादि द्विगुण द्विगुण वृद्धया वर्धिताः विश्वे सप्तानीकस्था वृषभा एकत्रीकृताः पञ्चविंशतिलक्षचत्वारिंशत्सहस्राणि। शेषा. अश्वादय. (वृषभादयः अपि पाठ.) षडनीका पृथक् भूता वृषभसमाना. वेदितव्याः। वृषभादिसप्तानीकाना सर्वे पिण्डीकृता। वृषभादिनर्तक्यन्ताः एकाकोटिसप्तसप्ततिलक्षाशीतिसहस्राणि, आदिपरिषदिदेवा सार्धद्विशते । मध्यपरिषदित्रिदशा पञ्चशतानि, वाह्यपरिषदि अमराः सहस्रं कं ।

अर्थः—सौधर्म आदि नव स्थानो के सामानिक देव, अग रक्षक, अनीक और अभ्यन्तर आदि परिषदो के देवो का प्रमाण विस्तार रूप से कहते हैं —सौधर्म स्वर्ग मे सामानिक देवो का प्रमाण ८४०००, अगरक्षको का तीन लाख छत्तीस हजार (३३६०००), वृषभो की प्रथम अनीक में बैलों का प्रमाण ८४०००, दूसरी कक्ष मे १६८०००, तीसरी कक्ष मे ३३६०००, चतुर्थ कक्ष मे ६७२०००, पाचवी कक्ष मे १३४४०००, छठवी कक्ष मे २६८८००० और सातवी कक्ष मे ५३७६००० बैलों का प्रमाण है। इन सातो कक्षाओ के समस्त बैलो को एकत्रित करने से १०६६८००० प्रमाण (मात्र बैलो का) होता है। शेष अश्व, गज आदि अनीको के भी सात-सात भेद है, जिनकी अनीको का प्रमाण वृषभ अनीको के सदृश ही जानना चाहिये। इन वृषभ आदि सातो अनीको मे वृषभ से लेकर नर्तकी पर्यन्त का सर्व प्रमाण एकत्रित करने पर ७४६७६००० होता है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना चाहिये। उपर्युक्त सम्पूर्ण गद्य का अर्थ निम्नलिखित तालिका मे निहित किया गया है । अन्तर केवल इतना है विस्तार भय से तालिका मे सातो कक्षाओ का पृथक् पृथक् प्रमाण नही दिया गया, प्रत्येक स्थान की केवल प्रथम कक्ष का प्रमाण दिया गया है। इसी प्रमाण को दूना, दूना करके अन्य कक्षाओ का प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिए।

(तालिका अगले पेज पर देखे)

नव स्थानों में—सामानिक—तनुरक्षक—सातों अनीक—एवं तीनों परिषदों—का प्रमाण

क्रमांक	नव स्थान	सामानिक देवों का प्रमाण	तनुरक्षक देवों का प्रमाण	अनीक सेनाओ का प्रमाण			परिषदों का प्रमाण		
				वृषभो की प्रथम कक्ष मे	एक अनीक की सम्पूर्ण सख्या	सातो अनीको की सम्पूर्ण सख्या	अभ्यन्तर परिषद्	मध्य परि०	बाह्य परि०
					(प्रथम कक्ष की सख्या से १२७ गुणी है।)				
१	सौधर्म	८४०००	३३६०००[तीन ला.३६ह]	८४०००	१०६६८०००	७४६७६०००	१२०००	१४०००	१६०००
२	ईशान	८००००	३२००००[३ ला. २० ह.]	८००००	१०१६००००	७११२००००	१००००	१२०००	१४०००
३	सानत्कुमार	७२०००	२८८०००[२ ला. ८८ ह.]	७२०००	९१४४०००	६४००८०००	८०००	१००००	१२०००
४	माहेन्द्र	७००००	२८००००[२ ला. ८० ह.]	७००००	८८९००००	६२२३००००	६०००	८०००	१००००
५	ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	६००००	२४००००[२ ला. ४० ह.]	६००००	७६२००००	५३३४००००	४०००	६०००	८०००
६	लान्तव–कापिष्ट	५००००	२००००० [दो लाख]	५००००	६३५००००	४४४५००००	२०००	४०००	६०००
७	शुक्र–महाशुक्र	४००००	१६००००[१ ला ६० ह.]	४००००	५०८००००	३५५६००००	१०००	२०००	४०००
८	शतार–सहस्रार	३००००	१२००००[१ ला. २० ह.]	३००००	३८१००००	२६६७००००	५००	१०००	२०००
९	आनतादि चार	२००००	८०००० [८० हजार]	२००००	२५४००००	१७७८००००	२५०	५००	१०००

अब वनों का नाम, प्रमाण, चैत्यवृक्षों के स्वरूप एवं उनमें स्थित जिन बिम्बों का अवस्थान कहते हैं:—

तत इन्द्रपुराद्बाह्ये चतुर्दिक्षु विमुच्य च ।
लक्षार्धं योजनानां स्युश्चत्वारिंशद्वनान्यपि ।।१४६।।
अशोकं सप्तपर्णाख्यं चम्पकाह्वयमाम्रकम् ।
इति नामाङ्कितान्येव शाश्वतानि वनान्यपि ।।१५०।।
योजनानां सहस्रेणायतानि विस्तृतानि च ।
सहस्रार्धेन रम्याणि भवन्ति सफलानि वै ।।१५१।।
अमीषां मध्यभागेषु चत्वारश्चैत्यपादपाः ।
जम्बूद्रुमसमानाः स्युरशोकाद्या मनोहराः ।।१५२।।
एषां मूले चतुर्दिक्षु जिनेन्द्रप्रतिमाः शुभाः ।
देवाच्यर्या बद्धपर्यङ्काः सन्ति भास्वरमूर्तयः ।।१५३।।
एषु वनेषु सर्वेषु सन्त्यावासा मनोहराः ।
वाहनादिक देवानां योषिद्वृन्दसमाश्रिताः ।।१५४।।

अर्थ.—इन्द्रो के नगरो से बाहर पूर्वादि चारो दिशाओ मे पचास-पचास हजार योजन छोड कर अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के शाश्वत चार वन है ।।१४६-१५०।। उत्तम फलो से युक्त इन प्रत्येक रमणीक वनो की लम्बाई एक हजार योजन और चौडाई पाँच सौ योजन प्रमाण है ।।१५१।। इन चारो वनो के मध्य भाग मे जम्बू वृक्ष सदृश प्रमाण वाले, अत्यन्त मनोहर अशोक आदि चार चैत्य वृक्ष है ।।१५२।। इन चारो वृक्षो मे से प्रत्येक वृक्ष के मूल मे चारो दिशाओ में, देव समूहो से पूज्य, पद्मासन एवं देदीप्यमान शरीर की कान्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान् की एक-एक प्रतिमाएँ है ।।१५३।। इन चारो वनो मे देवाङ्गनाओ के समूह से युक्त वाहन आदि जाति के देवो के मनोहारी आवास है ।।१५४।।

अब लोकपालों के नगरों का स्वरूप एवं प्रमाण कह कर लोकपालों के नामों का उल्लेख करते है:—

ततो मुक्त्वा चतुर्दिक्षु बहूनि योजनानि च ।
चतुर्णा लोकपालानां प्रासादाः सन्ति शाश्वताः ।।१५५।।

पञ्चविंशसहस्राग्रलक्षयोजन विस्तृताः ।
इन्द्रस्याथ यमस्यैव वरुणाख्यकुबेरयोः ॥१५६॥

अर्थः—चारों दिशाओ मे उन वन खण्डो को बहुत दूर छोड कर अर्थात् वनों से बहुत योजन आगे जाकर इन्द्र (सोम), यम, वरुण और कुवेर इन चारों लोकपालो के शाश्वत प्रासाद है, जिनका विस्तार १२५०००० (साढ़े बारह लाख) योजन प्रमाण है ॥१५५-१५६॥

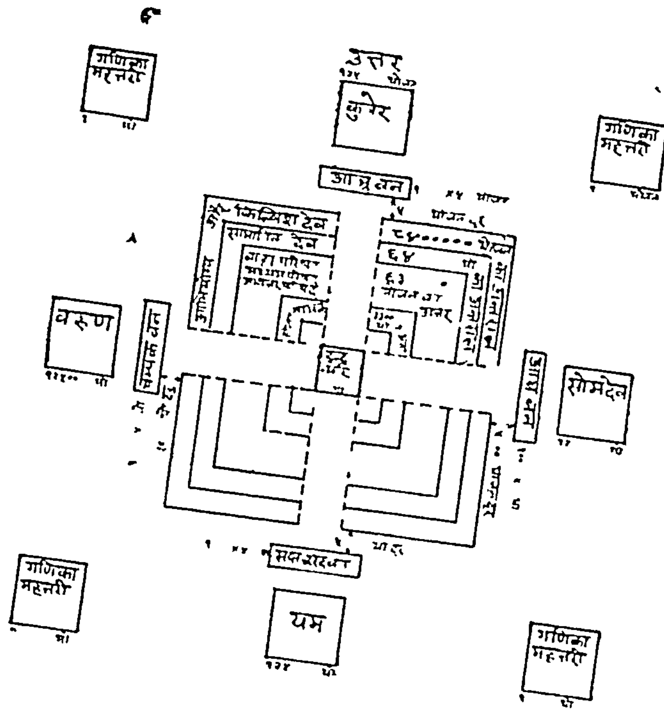
अब गणिका महत्तरियों के नाम एवं उनके आवासों के प्रमाण आदि कहते हैं:—

आग्नेयादिविदिक्षुस्युरावासाः काञ्चनोद्भवाः ।
गणिकामहत्तरीणां विस्तारायामसंयुताः ॥१५७॥
लक्षैकं योजनैर्दीप्रा देवीनिकर संश्रिताः ।
कामाख्या प्रथमादेवी कामिनी पद्मगन्धिनी ॥१५८॥
अलम्बुषेति नामान्यासां चतुर्मुख्य योषिताम् ।
एष एव क्रमोज्ञेयः सर्वेन्द्राणां पुरादिषु ॥१५९॥

अर्थः—जहाँ लोकपाल देवों के नगर है, वही आग्नेय आदि चारों विदिशाओं में गणिका महत्तरियो के स्वर्णमय आवास (नगर) है, जो एक-एक लाख योजन लम्बे, एक-एक लाख योजन चौडे, देदीप्यमान एवं देवियो के समूहो से युक्त है। इन चारो चारो विदिशाओं मे स्थित चार प्रधान गणिका महत्तरियो के नाम कामा, कामिनी, पद्मगन्धिनी एव अलम्वुषा है । सर्व इन्द्रो के नगरों आदि का क्रम इसी प्रकार जानना चाहिए ॥१५७-१५९॥

इन्द्र नगर के चारों ओर स्थित पांच प्राकारों, अशोक आदि चार वनों, सोम आदि चार लोकपालों एवं गणिका महत्तरियों के नगरों की अवस्थिति का चित्रण निम्न प्रकार है:—

(चित्र अगले पेज पर देखे)



अब प्रत्येक स्थानों के इन्द्रों की वल्लभाओं का प्रमाण एवं उनके प्रासादों की ऊँचाई आदि का प्रमाण कहते हैं:—

षड् युग्मेष्वानताद्येषु सप्तस्थानेष्विति क्रमात् ।
एकैकस्य सुरेन्द्रस्य देवी संख्योच्यते पृथक् ॥१६०॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि ततोऽष्टौ द्वे सहस्रके ।
सहस्रार्धं तदर्धार्धं त्रिषष्टि वल्लभास्त्रियः ॥१६१॥
विद्यन्ते पूर्वदिग्भागे देवेन्द्रस्तम्भसद्मनः ।
वल्लभानां मनोज्ञाः सत्प्रासादा मणिमूर्तयः ॥१६२॥
तत्प्रासादोदयः पूर्वो योजनैः शतपञ्चभिः ।
तद्धीनश्च शतार्धेन व्यासायामौ हि पूर्ववत् ॥१६३॥

अर्थ:—सौधर्मादि छह एवं आनतादि का एक, इस प्रकार सातों स्थानों में स्थित एक एक इन्द्र की वल्लभादेवाङ्गनाओं का पृथक् पृथक् प्रमाण क्रमशः कहते हैं ॥१६०॥ प्रत्येक स्थान की संख्या क्रमशः ३२०००, ८०००, २०००, ५००, २५०, १२५ और ६३ है ॥१६१॥ प्रत्येक इन्द्रों के स्तम्भ मन्दिरो (प्रासादो) की पूर्व दिशा में वल्भभदेवागनाओं के अति मनोज्ञ मणिमय प्रासाद. हैं

।।१६२।। इनमें प्रथम स्थान के प्रासाद की ऊँचाई ५०० योजन है, इसके आगे क्रमशः पचास-पचास योजन हीन होती गई है । इन प्रासादो का व्यास और आयाम भी पूर्ववत् जानना चाहिए ।।१६३।।

अब प्रत्येक इन्द्रों की वल्लभाओं के और उनके प्रासादों की ऊँचाई आदि के प्रमाणों का पृथक् पृथक् व्याख्यान करते हैं:—

आसां विशेषव्याख्यानमुच्यतेः—

सौधर्मैशानेन्द्रयोः प्रत्येक वल्लभा देव्यः द्वात्रिंशत्सहस्राणि । वल्लभाना प्रासादानामुदयः पञ्चशतयोजनानि । आयामः शतयोजनानि । विष्कम्भ. पञ्चाशत् योजनानि । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पृथग् वल्लभाङ्गनाः अष्टसहस्राणि । तत्प्रासादानामुत्सेधः सार्धचतु.शतयोजनानि, दीर्घता नवतियोजनानि, व्यासः पञ्चचत्वारिंशद्योजनानि । ब्रह्मेन्द्रस्य वल्लभा देव्यः द्वे सहस्रे तासा भवनानामुन्नतिः चतु.शत.योजनानि, आयामः अशीतियोजनानि, विस्तारः चत्वारिंशद्योजनानि । लान्तवेन्द्रस्य वल्लभाङ्गनाः पञ्चशतानि, आसां प्रासादानामुदयः सार्धत्रिशतयोजनानि । आयामः सप्तति योजनानि । विस्तारः पञ्चत्रिंशद्योजनानि । शुक्रेन्द्रस्य वल्लभा योषितः सार्धे द्वे शते । तत्प्रासादानामुच्छ्रायः त्रिशत.योजनानि, दीर्घता षष्टियोजनानि, विस्तृतिस्त्रिंशद्योजनानि । शतारेन्द्रस्य वल्लभाङ्गनाः पञ्चविंशत्यग्र शतं, तासा भवनानामुत्सेधः सार्धद्विशतयोजनानि । आयामः पञ्चाशद्योजनानि, विष्कम्भः पञ्चविंशतियोजनानि । आनतप्राणतारणाच्युतेन्द्राणां प्रत्येक वल्लभा देव्यः त्रिषष्टिरेव वल्लभा प्रासादानामुदयः योजनानां द्वे शते । आयामः चत्वारिंशद्योजनानि, विस्तारः विंशतियोजनानि ।

अर्थः—उपर्युक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नलिखित तालिका में निहित है । विशेष इतना है कि प्रत्येक स्थानों में जो प्रमाण दर्शाया जा रहा है, वह प्रमाण सौधर्मादि प्रत्येक इन्द्रों का पृथक् पृथक् समझना चाहिए ।

(तालिका अगले पेज पर देखें)

क्रमांक	इन्द्र	वल्लभाओं का प्रमाण	देवांगनाओं के गृहों का					
			उत्सेध		लम्बाई		चौड़ाई	
			योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	सौधर्मैशानेन्द्र	३२०००	५००	४०००	१००	८००	५०	४००
२	सानत्कु०-माहेन्द्र	८०००	४५०	३६००	९०	७२०	४५	३६०
३	ब्रह्मेन्द्र	२०००	४००	३२००	८०	६४०	४०	३२०
४	लान्तवेन्द्र	५००	३५०	२८००	७०	५६०	३५	२८०
५	शुक्रेन्द्र	२५०	३००	२४००	६०	४८०	३०	२४०
६	शतारेन्द्र	१२५	२५०	२०००	५०	४००	२५	२००
७	आनतादि ४ इन्द्रों की	६३	२००	१६००	४०	३२०	२०	१६०

अब प्रत्येक इन्द्र की आठ-आठ महादेवांगनाओं के नाम कह कर उनकी विक्रिया-गत देवांगनाओं का और परिवार देवांगनाओं का प्रमाण दिखाते हैं:—

सप्तस्थानेषु सर्वेषामिन्द्राणां दिव्यमूर्तयः ।
प्रत्येकं स्युर्महादेव्योऽष्टौ विश्वाक्षसुखप्रदाः ॥१६४॥

शची पद्मा शिवा श्यामा कालिंदी सुलसार्जुना ।
भानेति दक्षिणेन्द्राणां देवीनामानि सर्वतः ॥१६५॥

श्रीमती संज्ञिका रामा सुसीमा विजयावती ।
जयसेना सुषेणाख्या सुमित्राथ वसुन्धरा ॥१६६॥

सर्वत्रैवोत्तरेन्द्राणां देवीनामान्यमून्यपि ।
एकैका च महादेवी विक्रियर्धि प्रभावतः ॥१६७॥

विना मूलशरीरं चाद्ये युग्मे विकरोत्यपि ।
स्वसमानि सहस्राणि विक्रियाङ्गानि षोडश ॥१६८॥

तेभ्य ऊर्ध्वेषु षट्स्थानेष्वैकैकावासवाङ्गना ।
द्विगुण द्विगुणान्याशु कुर्याद् रूपाणि योषिताम् ॥१६९॥
एकैकस्या महादेव्याः परिवारवरस्त्रियः ।
स्युः षोडशसहस्राणि प्रीता प्रथम युग्मके ॥१७०॥
ततः स्थानेषु शेषेषु परिवारसुराङ्गनाः ।
अर्धार्धाः स्युः क्रमादेकैक शच्या विनयाङ्किताः ॥१७१॥

अर्थः—सातों स्थानों में प्रत्येक इन्द्रों के दिव्य मूर्ति को धारण करने वाली एवं समस्त इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाली आठ-आठ महा देवियाँ है ॥१६४॥ समस्त दक्षिणेन्द्रों की आठ-आठ महादेवियो के नाम शची, पद्मा, शिवा, श्यामा, कालिदी, सुलसा, अर्जुना और भान है ॥१६५॥ तथा सर्व उत्तरेन्द्रों की महादेवियो के नाम श्रीमती, रामा, सुसीमा, विजयावती, जयसेना, सुषेणा, सुमित्रा और वसुन्धरा है । प्रथम युगल मे पृथक् पृथक् एक एक महादेवी विक्रिया ऋद्धि के प्रभाव से मूल शरीर के विना अपने समान सोलह सोलह हजार विक्रिया शरीर को धारण करने वाली है ॥१६६–१६८॥ प्रथम युगल से ऊपर छह स्थानो मे प्रत्येक इन्द्र की एक एक महादेवी दूनी दूनी विक्रिया धारण करती है ॥१६९॥ प्रथम युगल मे एक एक महादेवी की सोलह-सोलह हजार परिवार देवियाँ है। तथा शेष छह स्थानों में क्रम से एक एक महादेवी की विनय से युक्त परिवार देवांगनाओं का प्रमाण क्रमशः अर्ध-अर्ध होता गया है ॥१७०–१७१॥

आसां विस्तारमाहः—

सौधर्मैशानेन्द्राष्टमहादेवीनां पृथग्विक्रियाङ्गानि षोडश सहस्राणि । परिवारदेव्यः षोडशसहस्राणि । सनत्कुमारमाहेन्द्रमहादेवीना विक्रियाशरीराणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि । परिवारदेव्योऽष्टसहस्राणि । ब्रह्मेन्द्राष्टमहादेवीना प्रत्येक विक्रियारूपाणि चतु षष्टिसहस्राणि परिवारदेव्यः चतुःसहस्राणि। लान्तवेन्द्रमहादेवीना विक्रियाशरीराणि एकलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि । परिवारदेव्यः द्वे सहस्रे । शुक्रेन्द्रस्य शचीना विक्रियाङ्गानि द्विलक्ष षट् पञ्चाशत्सहस्राणि, परिवारदेव्यः सहस्रैकं । शतारेन्द्राणीना विक्रिया स्त्रीरूपाणि पञ्चलक्षद्वादशसहस्राणि, परिवारसुराङ्गनाः पञ्चशतानि । आनतप्राणतारणाच्युतेन्द्रैकैकमहादेवीना विक्रियादेवीशरीराणि पृथग्भूतानि स्वशरीरसमानानि दशलक्षचतुर्विंशतिसहस्राणि, परिवारदेव्यः सार्धे द्वे शते ।

अर्थः—प्रत्येक स्थानों में स्थित विक्रिया धारी एवं परिवार देवांगनाओं का पृथक् पृथक् प्रमाण कहते हैः—

उपर्युक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नाङ्कित तालिका में निहित है। विशेष इतना है कि एक एक महादेवियों की परिवार आदि देवाङ्गनाओं का एकत्रित प्रमाण भी दर्शा दिया है।

क्रमांक	इन्द्र	महादेवियों का प्रमाण	वैक्रियिक शरीर		परिवार देवाङ्गनाएँ	
			एक महा देवी का	आठों महा देवी का	एक महा-देवी की	आठों महा देवा-ङ्गनाओं की
१	सौधर्मेशानेन्द्र	८,८	मूल शरीर सहित १६०००	१२८०००	१६०००	१२८०००
२	सा०—मा०	८,८	,, ,, ,, ३२०००	२५६०००	८०००	६४०००
३	ब्रह्मेन्द्र	८	,, ,, ,, ६४०००	५१२०००	४०००	३२०००
४	लान्तवेन्द्र	८	,, ,, ,, १२८०००	१०२४०००	२०००	१६०००
५	शुक्रेन्द्र	८	,, ,, ,, २५६०००	२०४८०००	१०००	८०००
६	शतारेन्द्र	८	,, ,, ,, ५१२०००	४०९६०००	५००	४०००
७	आनतादि ४ इन्द्र	८	,, ,, ,, १०२४०००	८१९२०००	२५०	२०००

अब समस्त महादेवियों के प्रासादों की ऊँचाई आदि का प्रमाण कहते हैं.—

महादेवीसमस्तप्रासादानामुदयोऽधिकः।
विंशत्यायोजनानां स्याद्वल्लभाभवनोदयात् ।।१७२।।
प्रासादानां तथायामः स्वोत्सेधात् पञ्चमांशकः।
पूर्ववद्दशमो भागो विष्कम्भः सर्वतो भवेत् ।।१७३।।

अर्थ.—समस्त महादेवियों के प्रासादों की ऊँचाई वल्लभा देवाङ्गनाओं के प्रासादों की ऊँचाई से बीस-बीस योजन अधिक है, आयाम अपनी अपनी ऊँचाई का पांचवाँ भाग और विष्कम्भ पूर्व के सदृश अपनी अपनी ऊँचाई के दशवें भाग प्रमाण है ।।१७२-१७३।।

(तालिका अगले पेज पर देखें)

विशेष विवरण—

स्थान	प्रासादो की ऊँचाई	लम्बाई	चौड़ाई
१	५२० योजन	१०४ योजन	५२ योजन
२	४७० ,,	९८ ,,	४७ ,,
३	४२० ,,	८४ ,,	४२ ,,
४	३७० ,,	७४ ,,	३७ ,,
५	३२० ,,	६४ ,,	३२ ,,
६	२७० ,,	५४ ,,	२७ ,,
७	२२० ,,	४४ ,,	२२ ,,

अब इन्द्र के आस्थान मण्डप का अवस्थान एवं प्रमाण कहते हैं:—

मध्येऽमरावतीसंज्ञे पुरस्यैशानतद्दिशि ।
इन्द्रस्तम्भगृहस्यास्ति सभास्थानसुमण्डपः ॥१७४॥
सुधर्मसंज्ञकस्तुङ्गः पञ्चसप्ततियोजनैः ।
शतैकयोजनायामः पञ्चाशद्विस्तरान्वितः ॥१७५॥

अर्थ:—अमरावती नामक नगर के मध्य में इन्द्रस्तम्भ प्रासाद की ईशान दिशा में सभा स्थान नामक सुन्दर मण्डप है, जिसका नाम सुधर्म सभा है। इस सुधर्म सभा की ऊँचाई ७५ योजन (६०० मील), लम्बाई १०० योजन (८०० मील) और चौड़ाई ५० योजन (४०० मील) प्रमाण है ॥१७४–१७५॥

अब आस्थान मण्डप के द्वार, उनका प्रमाण एवं इन्द्र के सिंहासन का अवस्थान कहते हैं:—

पूर्वोत्तरदिशोर्दक्षिणाशायां तस्य सन्ति च ।
द्व्यष्टयोजनतुङ्गानि विस्तृतान्यष्टयोजनैः ॥१७६॥

रत्नद्वाराणि देव्योघैर्दुर्गमाणि सुरोत्करैः ।
तन्मध्ये स्वर्गनाथस्य दिव्यं स्याद्धरिविष्टरम् ॥१७७॥

अर्थ —आस्थान मण्डप की पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में १६ योजन ऊँचे और ८ योजन चौडाई के प्रमाण को लिए हुए, एक एक दरवाजा है। ये द्वार रत्नों से निर्मित और देव देवियों के समूह से अलङ्घनीय है। मण्डप के मध्य भाग में इन्द्र का एक दिव्य सिंहासन है ॥१७६-१७७॥

अब महादेवियों के, लोकपालो के और अन्य देवों के सिंहासनों का अवस्थान कहते हैं:—

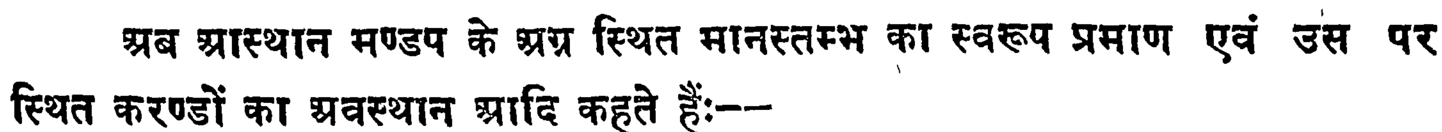
तस्य सिंहासनस्यात्र तिष्ठन्ति सन्मुखानि च ।
अष्टानां तन्महादेवीना महान्त्यासनान्यपि ॥१७८॥

पूर्वादिदिक्षु तिष्ठन्ति लोकपालासनानि च ।
अन्येषां देवसङ्घानां यथार्हमासनान्यपि ॥१७९॥

अर्थ —उस सिंहासन के सम्मुख (आगे) अष्ट महादेवाङ्गनाओं के महान आसन अवस्थित हैं ॥१७८॥ महादेवियों के आसनों से बाहर पूर्वादि दिशाओं में चारों लोकपालों के आसन हैं, तथा दक्षिण आदि दिशाओं में अन्य देवों के योग्य आसन है। अर्थात् इन्द्र के सिंहासन की आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य में अभ्यन्तर आदि परिषदों के, नैऋत्य में त्रायस्त्रिंश देवों के, पश्चिम में सेना नायकों के, वायव्य एवं ईशान में सामानिक देवों के तथा पूर्वादि चारों दिशाओं में अङ्गरक्षक देवों के आसन हैं ॥१७९॥ इनका चित्रण निम्न प्रकार है—

(चित्र अगले पेज पर देखें)

२० योजन
पश्चिम
अगरक्षको के
८४००० आसन
सेनानायक के
७ आसन
वरुण
सौधर्मेन्द्र का आसन
यम
उत्तर
१०० योजन
शची पद्मा शिवा श्यामा कालिंदी सुलसा अज्जुका भानु
सोम
अङ्गरक्षकों के
८४००० आसन
पूर्व



अब आस्थान मण्डप के अग्र स्थित मानस्तम्भ का स्वरूप प्रमाण एवं उस पर स्थित करण्डों का अवस्थान आदि कहते हैं:—

तस्याग्रे रत्नपीठस्थो मानस्तम्भोऽस्ति मानहृत् ।
षड्त्रिंशद्योजनोत्तुङ्गो योजनव्यास ऊर्जितः ॥१८०॥

वज्रकायः स्फुरत्कान्तिर्महाध्वजविभूषितः ।
मस्तके जिनबिम्बाढ्यः स्वांशूद्द्योतित दिग्मुखः ॥१८१॥

क्रोशैकक्रमविस्तीर्ण कोटिद्वादशराजितः ।
अधोभागे विहायास्य क्रोशोन योजनानि षट् ॥१८२॥

ऊर्ध्वभागे परित्यज्य क्रोशाग्रयोजनानि षट् ।
तिष्ठन्ति मणिमञ्जूषा रत्नरज्जु विलम्बिता: ॥१८३॥

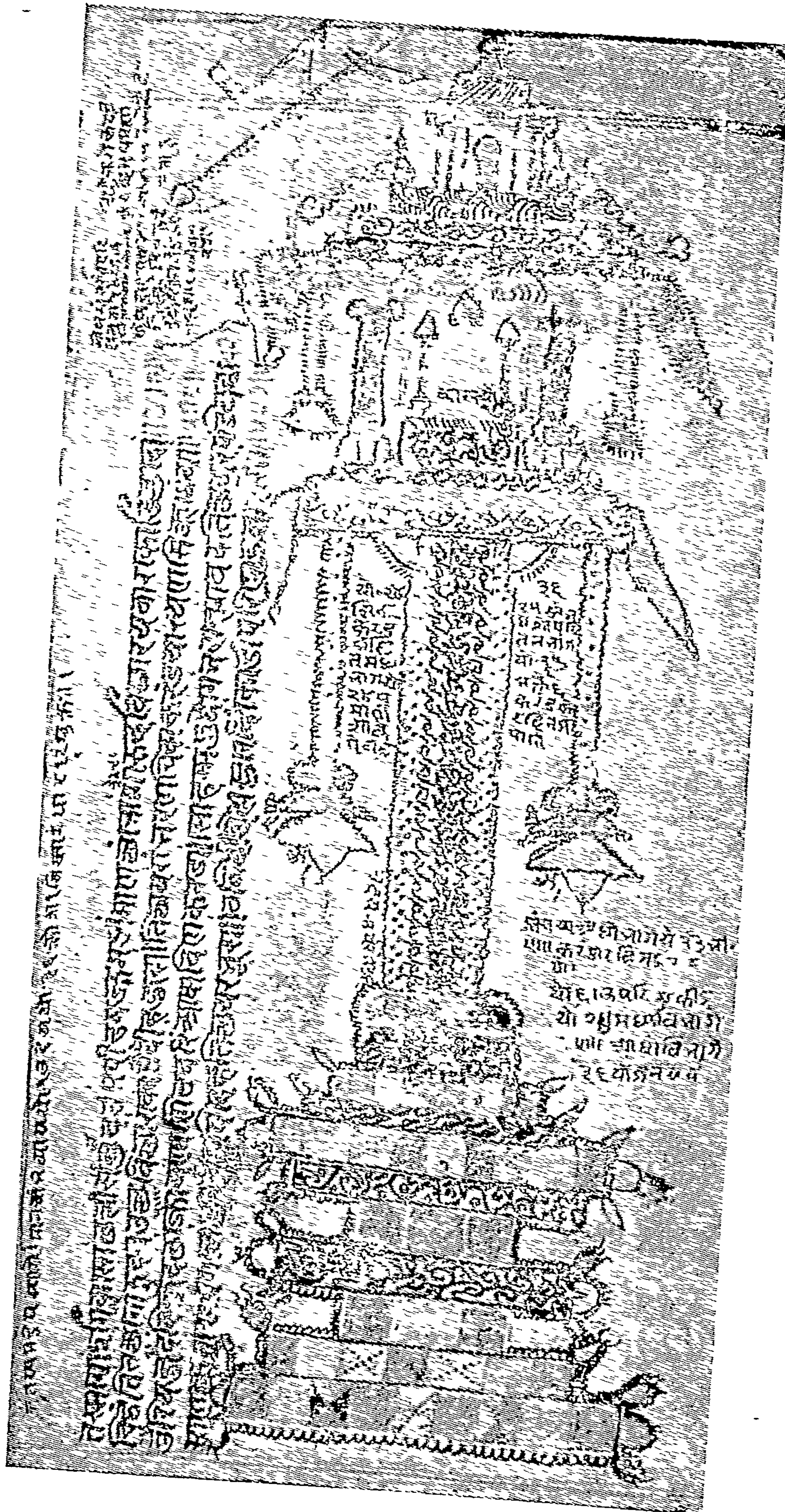
क्रोशायाम युताः क्रोशचतुर्थभागविस्तृताः ।
सुभूषणा जिनेन्द्राणां विद्यन्ते तासु सञ्चिताः ॥१८४॥

भरतैरावतोत्पन्नानां सुरत्नमयाः परे ।
निरौपम्या क्रमायाताः सौधर्मैशानकल्पयोः ॥१८५॥

पूर्वापरविदेहोत्थार्हतां विभूषणा इति ।
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सन्ति रत्नशालिनः ॥१८६॥

अर्थः—उस सभामण्डप के आगे रत्नमयी पीठ पर मान को हरण करने वाला, ३६ योजन (२८८ मील) ऊँचा, एक योजन (८ मील) चौड़ा, वज्रमयी देदीप्यमान कान्ति वाली महाध्वजा से विभूषित, शिखर (मस्तक) पर जिन बिम्बों से युक्त एवं अपनी किरणों से दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला एक मानस्तम्भ है ॥१८०-१८१॥ इसमें क्रमशः एक एक कोश विस्तार वाली सूर्य सदृश प्रकाशमान बारह धाराएँ हैं। इन ३६ योजन ऊँचाई वाले मानस्तम्भों के अधोभाग में पौने छह योजन और उपरिम भाग में सवा छह योजन छोड़ कर शेष मध्य भाग में रत्नमयी रस्सियों के सहारे लटकते हुए मणिमय करण्ड (पिटारे) हैं ॥१८२-१८३॥ इन पिटारों की लम्बाई एक कोश एवं चौड़ाई पाव कोश प्रमाण है। इन करण्डों में जिनेन्द्रदेवों (तीर्थंकरों) के पहिनने योग्य अनेक प्रकार के आभरण आदि संचित रहते हैं ॥१८४॥ भरत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों के उत्तम रत्नमयी एवं उपमा रहित आभूषण सौधर्म स्वर्गस्थ मानस्तम्भ पर, ऐरावत क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के, ऐशान स्वर्गस्थ मानस्तम्भों पर, पूर्व विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के सानत्कुमार स्वर्गस्थ मानस्तम्भ पर एवं पश्चिम विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के रत्नमयी आभूषण माहेन्द्र स्वर्गस्थ मानस्तम्भों पर स्थित मञ्जूषाओं में अवस्थित रहते हैं ॥१८५-१८६॥ जिसका चित्रण निम्न प्रकार है।

(चित्र अगले पेज पर देखें)



अब इन्द्रों की उत्पत्ति गृह का अवस्थान एवं प्रमाण आदि कहते हैं:—

तस्य पार्श्वेऽस्ति शक्रस्योपपादगृहमूर्जितम् ।
अष्टयोजनविस्तारायामोन्नति युतं परम् ॥१८७॥
तस्मिन्गृहान्तरे रत्नशिलायुग्मं च विद्यते ।
शिलासम्पुटयोर्गर्भे रत्नशय्यातिकोमला ॥१८८॥
कृतपुण्यस्य शक्रस्य तस्यां जन्मसुखाब्धिगम् ।
सुखेन जायतेऽङ्गं सम्पूर्णमन्तर्मुहूर्ततः ॥१८९॥

अर्थ —मानस्तम्भ के पार्श्वभाग में ८ योजन चौडा, ८ योजन लम्बा, ८ योजन ऊँचा एव अति श्रेष्ठ इन्द्र का उपपाद गृह है ॥१८७॥ उस उपपाद गृह के भीतर रत्नो की दो शिलायें है, तथा उन शिलाओ के मध्य मे अत्यन्त कोमल रत्न शय्याएँ हैं। उन शय्याओ पर पूर्व भव मे किया है पुण्य जिन्होने ऐसे इन्द्रो की उत्पत्ति सुख पूर्वक होती है, तथा उनका सुख समुद्र सदृश सम्पूर्ण शरीर अन्तर्मुहूर्त मे पूर्ण हो जाता है ॥१८८-१८९॥

अब कल्पवासी देवांगनाओं के उत्पत्ति स्थान कहते हैं:—

षड्लक्षसद्विमानानि सौधर्मे सन्ति केवलम् ।
स्वर्गदेवीसमुत्पादस्थानानि शाश्वतानि च ॥१९०॥
ईशाने स्युश्चतुर्लक्ष विमानाः सुरयोषिताम् ।
लभन्ते केवल येषु जन्म देव्यो न चामराः ॥१९१॥
एभ्य स्ताः स्वस्वसम्बंधिनीर्देवीश्च समुद्भवाः ।
सनत्कुमारकल्पाद्यच्युतान्तवासिनोऽमराः ॥१९२॥
स्वस्वास्थानं नयन्त्याशु विज्ञायावधिना निजाः ।
शेष कल्पेषु देवीनामुत्पादो नास्तिजातुचित् ॥१९३॥
सौधर्मैशानयोः शेषा ये विमाना हि तेषु च ।
प्राप्नुवन्ति निजं जन्म देवा देव्यः शुभोदयात् ॥१९४॥

अर्थ:—सौधर्म स्वर्ग मे उत्तम और शाश्वत छह लाख विमान शुद्ध है, जिनमें (अच्युत स्वर्ग पर्यन्त के दक्षिण कल्पों की) मात्र देवागनाओ की उत्पत्ति होती है, तथा ईशान स्वर्ग में चार लाख

विमान शुद्ध हैं, जिनमे (उत्तर कल्पों की) मात्र देवांगनाओ का जन्म होता है, इन (दश लाख) विमानों में देवों की उत्पत्ति नही होती ।।१९०-१९१।। उत्पत्ति के तुरन्त बाद ही सनत्कुमार कल्प से अच्युत कल्प पर्यन्त के देव अपनी अपनी नियोगिनी देवांगनाओं को अवधिज्ञान से जान कर अपने अपने स्थानों पर ले जाते है। सौधर्मैशान स्वर्गो को छोड़ कर शेष स्वर्गों में देवांगनाओं की उत्पत्ति कदापि नही है ।।१९२-१९३।। सौधर्म स्वर्गस्थ अवशेष (३२ लाख—६ लाख=२६ लाख) विमानों में तथा ऐशान स्वर्गस्थ अवशेष (२८ लाख—४ लाख=२४ लाख) विमानों में शुभ कर्मोदय से युक्त देव एवं देवांगनाओं-दोनों की उत्पत्ति होती है ।।१९४।।

अब कल्पवासी देवों के प्रवीचार का कथन करते हैं:—

सौधर्मैशानयोर्ज्योतिष्कभौमभावनेषु च ।
सुखं कायप्रवीचारं देवा देव्यो भजन्ति च ।।१९५।।
सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिदेवस्त्रियां भवेत् ।
सुखं स्पर्शप्रवीचारमालिङ्गनादिजं महत् ।।१९६।।
स्याद्ब्रह्मादिचतुःस्वर्गस्थ देववरयोषिताम् ।
सुखं रूपप्रवीचारं रूपादिदर्शनोद्भवम् ।।१९७।।
ततः शुक्रादिकल्पेषु चतुर्षु सुरयोषिताम् ।
सुखं शब्दप्रवीचारं भवेद् गीतस्वरादिजम् ।।१९८।।
आनतादिचतुःस्वर्गवासिदेवी दिवौकसाम् ।
सुखं मनःप्रवीचारं स्याद्देवी स्मरणोद्भवम् ।।१९९।।
अहमिन्द्राः परे विश्वे प्रवीचार सुखातिगाः ।
कामदाहोज्झिताः सन्ति महाशर्माब्धिमध्यगाः ।।२००।।

अर्थः—[काम सेवन को प्रवीचार कहते है] सौधर्मैशान कल्पों, ज्योतिष्कों, भवनवासियों और व्यन्तरवासियो में देव एवं देवागनाएँ काय (शरीर) प्रवीचार पूर्वक सुख भोगते है। अर्थात् देव अपनी देवागनाओ के साथ मनुष्यों के सदृश काम सेवन करते है किन्तु उनके वीर्य स्खलन नही होता क्योकि उनका शरीर सप्त धातुओ से रहित है ।।१९५।। सानत्कुमार माहेन्द्र कल्पों के देव अपनी देवांगनाओ के आलिगन आदि से उत्पन्न होने वाले स्पर्शप्रवीचार रूप सुख का अनुभव करते है ।।१९६।। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लांतव-कापिष्ठ कल्पो के देव अपनी देवागनाओं के रूपादिक के अवलोकन से उत्पन्न होने वाले रूप प्रवीचार रूप सुख का अनुभव करते हैं ।।१९७।। शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार

स्वर्गों के देव अपनी देवागनाओं के गीत एव स्वर आदि के सुनने से उत्पन्न होने वाला शब्द प्रवीचार रूप सुख भोगते है ॥१९८॥ तथा आनतादि चार कल्पों के देव देवियो के स्मरण मात्र से उत्पन्न होने वाले मन प्रवीचार रूप सुख का अनुभव करते है ॥१९९॥ इसके आगे नवग्रैवेयकों से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सभी देव अहमिन्द्र है। ये प्रवीचार (काम वासना) से रहित, कामदाह से रहित एव अप्रवीचार जन्य महासुखसमुद्र के मध्य अवगाहन करते है ॥२००॥

अब वैमानिक देवों के अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र एवं विक्रिया शक्ति में प्रमाण का कथन करते हैं:—

सौधर्मैशानकल्पस्था देवाः पश्यन्ति चावधेः ।
प्रथमक्षितिपर्यन्तान् रूपिद्रव्यांश्चराचरान् ॥२०१॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिनोऽवधिना स्वयम् ।
लोकयन्ति द्वितीया क्ष्मा पर्यन्तवस्तुसञ्चयान् ॥२०२॥
ब्रह्माख्यादिचतुःस्वर्गस्थाः प्रपश्यन्ति निर्जराः ।
तृतीयभूमिपर्यन्तस्थितद्रव्याणि चावधेः ॥२०३॥
शुक्रादिक चतुःस्वर्गवासिनोऽवधिनेत्रतः ।
चतुर्थी क्षिति सीमान्ताल्लोकन्ते द्रव्यसञ्चयान् ॥२०४॥
आनतादिचतुःकल्प वासिनः स्वावधेर्बलात् ।
पञ्चमीक्ष्मान्तगान् रूपिद्रव्यान् पश्यन्ति चाखिलान् ॥२०५॥
नवग्रैवेयकस्थाहमिन्द्रा आलोकयन्ति च ।
पदार्थान् रूपिणः षष्ठीधरान्तस्थान् निजावधेः ॥२०६॥
नवानुदिशपञ्चानुत्तरवास्यहमिन्द्रकाः ।
रूपिद्रव्यान् प्रपश्यन्ति सप्तमी क्ष्मान्तमञ्जसा ॥२०७॥
लोकनाडीगतान् विश्वान् रूपिद्रव्यांश्चराचरान् ।
लोकन्तेऽवधिनेत्रेण पञ्चानुत्तरवासिनः ॥२०८॥
सौधर्ममुख्य पञ्चानुत्तरवासि सुधाभुजाम् ।
प्रथमापृथिवीमुख्यलोकनाड्यन्तमध्यगाः ॥२०९॥
अवधिज्ञानतुल्यास्तिविक्रियर्द्धिरनेकधा ।
सप्तमी क्षितिपर्यन्तगमनागमन क्षमा ॥२१०॥
मतिश्रुतावधिज्ञानानि सद्दृष्टिदिवौकसाम् ।
सम्यग्भवन्ति रूप्यर्थप्रत्यक्षज्ञायकान्यपि ॥२११॥

मिथ्यादृष्टिकुदेवानां विपरीतानि तानि च ।
कुज्ञानानि प्रजायन्ते विपरीतार्थ वेदनात् ॥२१२॥

अर्थः—सौधर्मैशान कल्प स्थित देव अपने अवधि ज्ञान से नरक की प्रथम पृथ्वी पर्यन्त के रूपी द्रव्यो को चराचर दखते है ॥२०१॥ सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प स्थित देव अपने अवधि नेत्र से दूसरी वशा पृथ्वी पर्यन्त के समस्त रूपी द्रव्यो को जानते है ॥२०२॥ ब्रह्मादि चार स्वर्गस्थ देव तीसरी मेघा पृथ्वी पर्यन्त के रूपी द्रव्यो को अवधि द्वारा जानते है ॥२०३॥ शुक्रादि चार स्वर्गस्थ देव अपने अवधि नेत्र से चौथी अञ्जना पृथ्वी पर्यन्त के सकल रूपी द्रव्यों को जानते है ॥२०४॥ आनतादि चार स्वर्गस्थ देव अपने अवधिज्ञान के बल से पाचवी अरिष्टा पृथ्वी पर्यन्त के समस्त रूपी द्रव्यो को देखते है ॥२०५॥ नवग्रैवेयक स्वर्गो मे स्थित देव छठवी मघवी पृथ्वी पर्यन्त के सकल रूपी द्रव्यो को अपने अवधिज्ञान से जानते है ॥२०६॥ नव अनुदिश एव पाच अनुत्तर अर्थात् चौदह विमानो मे स्थित अहमिन्द्र सातवी माघवी पृथ्वी पर्यन्त के रूपी द्रव्यों को जानते है ॥२०७॥ और पाच अनुत्तर विमानवासी देव अपने अवधि नेत्र से लोकनाड़ी पर्यन्त के सर्व रूपी द्रव्यों को अपने अवधि नेत्र से चराचर देखते है ॥२०८॥ सौधर्म स्वर्ग से लेकर पाच अनुत्तर पर्यन्त के देव क्रमशः नरक की प्रथम पृथ्वी से लोकनाड़ी के भीतर सप्तम पृथ्वी पर्यन्त अवधिज्ञान के सदृश ही अनेक प्रकार की विक्रिया करने की शक्ति से सम्पन्न होते है, तथा इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी पर्यन्त गमनागमन की शक्ति से भी सयुक्त होते है ॥२०९–२१०॥ स्वर्गों मे सम्यग्दृष्टि देवों के मति, श्रुत एवं अवधिज्ञान समीचीन होते है, जिससे ये रूपी पदार्थो को प्रत्यक्ष जानते है ॥२११॥ किन्तु मिथ्यादृष्टि देवो के ये तीनो ज्ञान मिथ्या होते है, क्योकि वे (कारणादि विपर्यास के कारण) पदार्थों (तत्वों) को विपरीत जानते है अतः उनका ज्ञान कुज्ञान कहलाता है ॥२१२॥

अब वैमानिक देवों के जन्ममरण के अन्तर का निरूपण करते हैं:—

सौधर्मैशानयोः प्रोक्तमुत्पत्तौ मरणेऽन्तरम् ।
उत्कृष्टेन च देवानां दिनानि सप्त नान्यथा ॥२१३॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिनां कर्मपाकतः ।
सम्भवे मरणेख्यातं पक्षैकमन्तरं परम् ॥२१४॥
अन्तरं ब्रह्मनाकादि चतुःस्वर्ग निवासिनाम् ।
उत्पत्तौ च्यवने स्याच्च महन्मासैकमेवहि ॥२१५॥
अन्तरं मरणोत्पत्तौ भवेच्च नाकिनां विधेः ।
मासौ द्वौ परमं शुक्रादिकस्वर्ग चतुष्टये ॥२१६॥

आनतादि चतुःस्वर्गवासिनामुत्तमान्तरम् ।
चतुर्मासावधिर्ज्ञेयं मरणे सम्भवे तथा ।।२१७।।
नवग्रैवेयकाद्येषु मरणे च समुद्भवे ।
सर्वेषामहमिन्द्राणां मासषट्कं परान्तरम् ।।२१८।।

अर्थः—[उत्कृष्टता से जितने काल तक किसी भी जीव का जन्म न हो उसे जन्मान्तर और मरण न हो उसे मरणान्तर कहते हैं] सौधर्मैशान इन कल्पो मे यदि कोई भी जीव जन्म न ले तो अधिक से अधिक सात दिन पर्यन्त न ले । इसी प्रकार मरण न करे तो सात दिन पर्यन्त न करे, इसलिये वहाँ देवों के जन्म-मरण का अन्तर सात दिन कहा गया है ।।२१३।। सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पवासी देवो के कर्म उदयानुसार जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर एक पक्ष है ।।२१४।। ब्रह्म आदि चार स्वर्गो के देवो के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर एक माह है ।।२१५।। शुक्र आदि चार स्वर्गो के देवो के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर दो मास है ।।२१६।। आनतादि चार स्वर्गों में निवास करने वाले देवो के जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर चार माह का जानना चाहिये ।।२१७।। नवग्रैवेयक आदि उपरिम सर्व विमानो मे उत्पन्न होने वाले सर्व अहमिन्द्रो का उत्कृष्ट जन्मान्तर एव मरणान्तर छह माह का है ।।२१८।।

अब इन्द्रादिकों के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैः—

इन्द्रस्य च महादेव्या लोकपालस्य दुस्सहः ।
जायते विरहो मासषट्कं हि च्यवने महान् ।।२१९।।

त्रायस्त्रिंशसुराणां च सामानिकसुधाशिनाम् ।
अङ्गरक्षकदेवानां च्यवने सति दुस्सहम् ।।२२०।।

परिषत्त्रयदेवानां वियोगोद्भवमन्तरे ।
मानसं जायते दुःखं चतुर्मासान्तमुत्तमम् ।।२२१।।

अर्थः—इन्द्र, इन्द्र की महादेवी और लोकपाल इनका दुस्सह उत्कृष्ट विरहकाल छह माह प्रमाण है । अर्थात् इनका मरण होने पर कोई अन्य जीव उस स्थान पर अधिक से अधिक छह माह तक जन्म नही लेगा ।।२१९।। त्रायस्त्रिंश, सामानिक, अङ्ग रक्षक और पारिषद देवो का मरण होने के बाद उनके दुस्सह वियोग से उत्पन्न होने वाला मानसिक दु ख उत्कृष्ट रूप से चार माह पर्यन्त होता है । अर्थात् इनका उत्कृष्ट विरह काल चार माह है ।।२२०-२२१।।

अब देव विशेषों के अन्तिम उत्पत्ति स्थानों का प्रतिपादन करते हैं:--

ईशानान्तं प्रजायन्ते कन्दर्पाः कुत्सिताः सुराः ।
लान्तवस्वर्गपर्यन्तं नीचा किल्विषिकामराः ।।२२२।।

अच्युतान्तेषु कल्पेषूत्पद्यन्ते वाहनामराः ।
आभियोगिकसंज्ञाश्च स्वपापपुण्यपाकतः ।।२२३।।

अर्थः—(कान्दर्प परिणामी मनुष्य) अपने अपने पाप एव पुण्योदय से कुत्सित परिणामी कन्दर्प जाति के देवों में ईशान कल्प पर्यन्त, (कैल्विषिक परिणामी मनुष्य) नीच परिणामी किल्विष जाति के देवो मे लान्तव कल्प पर्यन्त और (अभियोग्य भावना से युक्त मनुष्य) आभियोगिक है नाम जिनका ऐसे वाहन जाति के देवो मे अच्युत कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नही (इनकी उत्पत्ति क्षेत्र सम्बन्धी जघन्यायु होती है) ।।२२२-२२३।।

अब प्रथमादि युगलों में स्थित देवों की स्थिति विशेष कहते हैं:—

आयुः पल्यं जघन्यं स्यादुत्कृष्टं सागरार्धकम् ।
सौधर्मस्यादिमेऽन्ते पटले सार्धौ द्विसागरौ ।।२२४।।

सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सार्धसप्तसागराः ।
ब्रह्मब्रह्मोत्तरे चायुर्महत्सार्धदशाब्धयः ।।२२५।।

आयुर्लान्तवकापिष्टे सार्धद्विसप्तवार्धयः ।
तथा शुक्रमहाशुक्रयोः सार्धषोडशाब्धयः ।।२२६।।

शतारादिद्वये चायुः सार्धाष्टादशसागराः ।
आनतप्राणतस्वर्गे प्रोत्कृष्टं विंशवार्धयः ।।२२७।।

आरणाच्युतयोर्देवानां तद् द्वाविंशसागराः ।
ततः सागर एकैक आदिग्रैवेयकादिषु ।।२२८।।

वर्धते चाहमिन्द्राणां यावद् ग्रैवेयकान्तिमे ।
आयुस्तिष्ठति वार्धीनामेकत्रिंशन्मितं परम् ।।२२९।।

नवानुदिशदेवानामायुर्द्वात्रिंशदब्धयः ।
पञ्चानुत्तरदेवानां त्रयस्त्रिंशच्च सागराः ।।२३०।।

इत्युत्कृष्टं पृथक् प्रोक्तमायुश्च नाकिनां क्रमात् ।
अधःस्थे पटले ज्येष्ठ यत्तदूर्ध्वंजघन्यकम् ।।२३१।।

अर्थः—सौधर्मेशान कल्प के प्रथम पटल मे जघन्य आयु एक पल्य और उत्कृष्ट आयु अर्ध-सागर प्रमाण तथा अन्तिम पटल मे उत्कृष्ट आयु २½ सागर प्रमाण है ।।२२४।। सनत्कुमार-माहेन्द्र की उत्कृष्ट आयु ७½ सागर तथा ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर की १०½ सागर प्रमाण है ।।२२५।। लान्तव-कापिष्ट कल्पो की १४½ सागर एव शुक्र-महाशुक्र युगल की उत्कृष्ट आयु १६½ सागर प्रमाण है ।।२२६।। शतार-सहस्रार की १८½ सागर और आनत-प्राणत युगल की उत्कृष्ट आयु २० सागर प्रमाण है ।।२२७।। आरण-अच्युत स्वर्गो की उत्कृष्ट आयु २२ सागर प्रमाण है । इसके आगे प्रथमादि नवग्रैवेयको मे स्थित अहमिन्द्रो की आयु मे क्रमश. एक-एक सागर की वृद्धि (२३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० सागर) होते हुये अन्तिम ग्रवेयक की उत्कृष्ट आयु ३१ सागर प्रमाण है ।।२२८-२२९।। नव अनुदिश स्थित देवो की आयु ३२ सागर, तथा पच अनुत्तरो मे स्थित देवो की उत्कृष्ट आयु ३३ सागर प्रमाण है ।।२३०।। इस प्रकार देवो की पृथक् पृथक् उत्कृष्ट आयु क्रमशः कही गई है । नीचे नीचे के पटलो (कल्पो) की जो उत्कृष्ट आयु होती है, ऊपर ऊपर के पटलो की वही जघन्य आयु कही जाती है ।।२३१।। (नोट—१२ वे स्वर्ग तक की आयु मे जो आधा आधा सागर अधिक कहा है, वह घाता-युष्क की अपेक्षा कहा है ।

अब प्रत्येक पटलों में स्थित देवों की आयु पृथक् पृथक् कहते हैं:—

पुनर्विस्तरेण पटलं पटलं प्रति देवानां पृथगायुरुच्यतेः—

सौधर्मेशानयो प्रथमे पटले देवाना जघन्यायु· पल्योपम, उत्कृष्ट अर्धसागरः द्वितीये चोत्कृष्ट-मायु: सागरस्त्रिशद् भागाना सप्तदशभागा । तृतीये त्रिशद् भागाना एकोनविंशतिभागाश्च । चतुर्थे आयुस्त्रिशद् भागाना एकविशतिभागाः । पञ्चमे चायु: त्रिशद् भागाना त्रयोविशतिभागा । षष्ठे त्रिशद् भागाना पञ्चविशति भागाश्च सप्तमे त्रिशद्भागाना सप्तविशतिभागा· । अष्टमे सागरत्रिशद्-भागाना एकोनत्रिशद् भागा. । नवमे चायु· सागरंक , सागरस्य त्रिशद्भागानामेकोभागः । दशमे सागरैकः सागरत्रिशद् भागाना त्रयो भागा । एकदशमे आयुः सागरैक सागरत्रिशद्भागाना पञ्च-भागाः। द्वादशमे सागरैक· सागरत्रिशद् भागाना सप्तभागाश्च त्रयोदशमे सागरैक सागरत्रिशद् भागाना नवभागाः । चतुर्दशमे सागरैकः सागर त्रिशद्भागाना एकादशभागाः । पञ्चदशे आयु सागरैक. सागर त्रिशद्भागाना त्रयोदशभागाः । षोडशे सागरैक सागरत्रिशद्भागाना पञ्चदश-भागाः । सप्तदशे सागरैकः सागरत्रिशद्भागाना सप्तदशभागाः। अष्टादशे सागरंक सागरत्रिशद्भागाना एकोनविशतिभागाः । एकोनविंशे सागरैक सागरत्रिशद्भागाना एकत्रिशति भागा· । विंशे सागरैकः सागरत्रिशद् भागाना त्रयोविशतिभागाः। एकविंशे सागरैक सागरत्रिशद् भागाना पञ्चविशतिभागा.।

द्वाविंशे सागरैक सागरत्रिशद् भागानां सप्तविंशति भागा. । त्रयोविंशे सागरैक. सागरत्रिशद्भागानां एकोनत्रिशद्भागा: । चतुर्विंशे आयु: सागरौ द्वौ सागरत्रिशद्भागानामेको भाग: । पञ्चविंशे द्वौ सागरौ सागरत्रिशद्भागाना त्रयोभागा: । षड्विंशे द्वौ सागरौ सागरत्रिशद्भागानां पञ्चभागा: । सप्तविंशे द्वौ सागरौ सागरत्रिशद् भागाना सप्तभागाश्च । अष्टाविंशे द्वौ सागरौ सागरत्रिशद्भागानां नवभागाश्च । एकोनत्रिशत्पटले द्वौ सागरौ सागरत्रिशद्भागानां एकादशभागा: । त्रिंशत्संख्यके द्वौ सागरौ सागरत्रिशद्भागाना त्रयोदशभागा: । अन्तिमे पटले देवानामुत्कृष्टमायुश्च साधौं द्वौ सागरौ। सनत्कुमारमाहेन्द्रयो: नाकिनामादिमे पटले आयुरुत्कृष्टं त्रयोऽब्धय:,अब्धि चतुर्दशभागानां त्रयोभागा: । द्वितीये चायु: सामरास्त्रय. सागरचतुर्दशभागाना त्रयोदशभागा: । तृतीये आयुश्चत्वार: सागरा: सागरचतुर्दशभागाना नवभागा: । चतुर्थे पञ्चसागरा: सागरचतुर्दशभागानां पञ्चभागा: । पञ्चमे षट् सागरा: सागर चतुर्दशभागानामेको भाग: । षष्ठे षट्सागरा: सागरचतुर्दशभागाना एकादशभागा:। सप्तमे पटले देवानां परमायु: सार्धसप्तसागरा: । ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो. प्रथमे पटले देवानामुत्कृष्टमायु: सपादा अष्टौ सागरा· । द्वितीये चायुर्नवसागरा । तृतीये पादोन दशसागरा: । चतुर्थे पटले नाकिनामुत्कृष्टा-स्थिति. सार्धदशसागरोपमानि । लान्तव-कापिष्टयोरमराणामुत्कृष्टमायु: प्रथमे पटले सार्धद्वादशाब्धय: । द्वितीये चायु: सार्धचतुर्दशसागरोपमानि । शुक्रमहाशुक्रयो. पटलैकस्मिन् नाकिनां परमायु: सार्धषोडश-सागरोपमाणि । शतारसहस्रारयोरेकस्मिन् पटले देवानां ज्येष्ठमायु सार्धाष्टादशसागरोपमाणि । आनतप्राणतयो प्रथमे पटले देवानां परास्थितिरेकोन विंशतिवार्धय: । द्वितीये च सार्धैकोनविंशति-सागरा: । तृतीये नाकिना परमायु. विंशतिसागरोपमानि । आरणाच्युतयोरुत्कृष्टमायु: स्वर्गिणां प्रथमे पटले सागरा: विंशति. सागरत्रिभागीकृतस्य द्वौ भागौ । द्वितीये चायुरेकविंशतिसागरा: सागरस्य तृतीयो भाग । तृतीये पटले देवाना परास्थिति द्वाविंशतिसागरोपमाणि । तत: अध: प्रथम-ग्रैवेयके अहमिन्द्राणां परमायुस्त्रयो विंशतिवार्धय: अधो द्वितीयग्रैवेयके चायुश्चतुर्विंशतिसागरा: । अधस्तृतीयग्रैवेयके परास्थिति: पञ्चविंशति जलधय: । मध्यप्रथमग्रैवेयके चायु: षड्विंशतिवार्धय: । मध्य द्वितीयग्रैवेयके चायु: सप्तविंशतिसागरा , मध्यतृतीयग्रैवेयके परास्थितिरष्टाविंशतिसागरोप-माणि । ऊर्ध्वप्रथमग्रैवेयके परमायुरेकोनत्रिंशद्वार्धय: । ऊर्ध्वद्वितीयग्रैवेयके चायुस्त्रिंशत्सागरा: । ऊर्ध्वतृतीयग्रैवेयके अहमिन्द्राणा परा स्थिति: एकत्रिंशत्सागरोपमाणि । नवानुदिशे अहमिन्द्राणां परमायुर्द्वात्रिंशत्सागरोपमाणि । पञ्चानुत्तरे अहमिन्द्राणां परास्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अध:स्थ पटले यदुत्कृष्टायु: तदूर्ध्वपटले सर्वत्र देवाना जघन्य ज्ञातव्यं ।

अर्थ.—उपर्युक्त सस्कृत गद्य मे प्रत्येक कल्पो के प्रत्येक पटलो की उत्कृष्ट आयु का पृथक् पृथक् दिग्दर्शन कराया गया है, जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नाङ्कित तालिका में निहित है—

(तालिका अगले पेज पर देखे)

एकत्रित दिग्दर्शन —

क्रमांक	पटल नाम	उत्कृष्टायु	क्रमांक	पटल नाम	उत्कृष्टायु	क्रमांक	पटल नाम	उत्कृष्टायु
१	ऋतु	$\frac{१}{२}$ सा० + $\frac{२}{३०}$ =	२१	अभ्र	१$\frac{२५}{३०}$	३	ब्रह्म	९$\frac{३}{४}$ सा
२	विमल	$\frac{१७}{३०}$,,	२२	हरित	१$\frac{२७}{३०}$	४	ब्रह्मोत्तर	१०$\frac{१}{२}$ सा. + २ =
३	चन्द्र	$\frac{१९}{३०}$,,	२३	पद्म	१$\frac{२९}{३०}$	१	ब्रह्म हृदय	१२$\frac{१}{२}$ सा.
४	वल्गु	$\frac{२१}{३०}$,,	२४	लोहित	२$\frac{१}{३०}$	२	लान्तव	१४$\frac{१}{२}$,, + २ =
५	वीर	$\frac{२३}{३०}$,,	२५	वज्र	२$\frac{३}{३०}$	१	शुक्र	१६$\frac{१}{२}$,, + २ =
६	अरुण	$\frac{२५}{३०}$,,	२६	नन्द्या०	२$\frac{५}{३०}$	१	शतार	१८$\frac{१}{२}$,, + $\frac{१}{२}$ =
७	नन्दन	$\frac{२७}{३०}$,,	२७	प्रभङ्कर	२$\frac{७}{३०}$	१	आनत	१९ सा
८	नलिन	$\frac{२९}{३०}$,,	२८	पृष्टक	२$\frac{९}{३०}$	२	प्राणत	१९$\frac{१}{२}$,,
९	काञ्चन	१$\frac{१}{३०}$,,	२९	गज	२$\frac{११}{३०}$	३	पुष्पक	२० ,, + $\frac{२}{३}$ =
१०	रोहित	१$\frac{३}{३०}$,,	३०	मित्र	२$\frac{१३}{३०}$	१	सातक	२०$\frac{२}{३}$,,
११	चञ्चत्	१$\frac{५}{३०}$,,	३१	प्रभ	२$\frac{१५}{३०}$ या २$\frac{१}{२}$ सा + $\frac{१०}{१४}$ =	२	आरण	२१$\frac{१}{३}$,,
१२	मरुत्	१$\frac{७}{३०}$,,	१	अञ्जन	३$\frac{३}{१४}$	३	अच्युत	२२ सा.
१३	ऋद्धीश	१$\frac{९}{३०}$,,	२	वनमाल	३$\frac{१३}{१४}$	१	सुदर्शन	२३ ,,
१४	वैडूर्य	१$\frac{११}{३०}$,,	३	नाग	४$\frac{९}{१४}$	२	अमोघ	२४ ,,
१५	रुचक	१$\frac{१३}{३०}$,,	४	गरुड	५$\frac{५}{१४}$	३	सुप्रबुद्ध	२५ ,,
१६	रुचिर	१$\frac{१५}{३०}$,,	५	लाङ्गल	६$\frac{१}{१४}$	१	यशोधर	२६ ,,
१७	अङ्क	१$\frac{१७}{३०}$,,	६	वलभद्र	६$\frac{११}{१४}$	२	सुभद्र	२७ ,,
१८	स्फटिक	१$\frac{१९}{३०}$,,	७	चक्र	७$\frac{१}{२}$ सा + $\frac{३}{४}$ =	३	सुविशाल	२८ ,,
१९	तपनीय	१$\frac{२१}{३०}$,,	१	अरिष्ट	८$\frac{१}{४}$	१	सुमनस	२९ ,,
२०	मेघ	१$\frac{२३}{३०}$,,	२	सुरस	९ सा०	२	सौमनस	३० ,,
						३	प्रीतिकर	३१ ,,

अवशेष अर्थ:—नव अनुदिशों में स्थित अहमिन्द्रों की उत्कृष्ट आयु ३२ सागर प्रमाण एवं पांच अनुत्तरों में स्थित अहमिन्द्रों की उत्कृष्ट आयु ३३ सागर प्रमाण होती है।

सौधर्मैशान कल्प के प्रथम पटल में स्थित देवों की जघन्यायु एक पल्योपम प्रमाण होती है। इसके आगे नीचे नीचे के पटलों की जो उत्कृष्ट आयु होती है, वही ऊर्ध्व-ऊर्ध्व पटलों में स्थित देवों की जघन्यायु जानना चाहिए।

अब देवों में आयु की हानि एवं वृद्धि के कारण तथा उसके प्रमाण का दिग्दर्शन कराते हैं:—

ससम्यक्त्वस्य देवस्य सागरार्धं हि वर्धते ।
आयुर्यावत्सहस्रारं मिथ्यात्वारिविघातनात् ॥२३२॥
मिथ्यात्वागत देवस्य सम्यक्त्वरत्ननाशनात् ।
हीयते सागरार्धायुरिति स्थितिश्च नाकिनाम् ॥२३३॥
ज्योतिर्भावनभौमेषु सम्यक्त्वाप्राप्तितोऽङ्गिनः ।
किञ्चिद् व्रततपः पुण्यादुत्पद्यन्ते भवाध्वगाः ॥२३४॥
सम्यक्त्वप्राप्तिधर्मेण स्वायुर्भवनवासिनाम् ।
सागरार्धं प्रवर्द्धेत मिथ्यात्वशत्रुघातनात् ॥२३५॥
ज्योतिष्कव्यन्तराणां चायुः पल्यार्धं प्रवर्धते ।
मिथ्यात्वारिविनाशेन सम्यक्त्वमणिलाभतः ॥२३६॥
सर्वत्र विश्वदेवानां मिथ्यात्वदुर्विषोज्झनात् ।
सम्यक्त्वामृत पानेन स्वायुः सम्वर्धतेतराम् ॥२३७॥
पल्यैकस्याप्यसंख्यातभागप्रममिति स्फुटम् ।
स्थितिं वदन्ति देवानामागमे स्थितिवेदिनः ॥२३८॥

अर्थ:—सौधर्म स्वर्ग से सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त मिथ्यात्व रूपी शत्रु का नाश करने वाले सम्यग्दृष्टि देवों की आयु में अर्ध सागर की वृद्धि होती है ॥२३२॥ तथा सम्यक्त्व रूपी रत्न का नाश होने से मिथ्यात्व को प्राप्त हुए देवों की आयु में से यह अर्ध सागर हीन हो जाती है ॥२३३॥ जिन मनुष्यों को सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई, वे किञ्चित् व्रत एवं तप आदि से उपार्जित पुण्योदय से ज्योतिषी, भवनवासी एव व्यन्तर वासी देवों में उत्पन्न होते हैं, और पुनः संसाररूपी मार्ग में भ्रमण

करते है।।२३४।। मिथ्यात्व रूपी शत्रु के नाश से तथा सम्यक्त्व प्राप्ति रूप धर्म से भवनवासी देवो की अपनी अपनी आयु मे अर्ध सागर की वृद्धि होती है, तथा मिथ्यात्व रूपी शत्रु के विनाश एवं सम्यक्त्व मणि के लाभ से ज्योतिष्क तथा व्यन्तर वासी देवो को आयु मे अध पल्य की वृद्धि होती है ।।२३५-२३६।। स्थिति आदि को जानने वाले गणधरादि देवो ने आगम मे मिथ्यात्व रूपी विष को छोड़ने और सम्यक्त्व रूपी अमृत के पान से युक्त सर्वत्र अर्थात् बारहवे स्वर्ग पर्यन्त समस्त देवो की अपनी अपनी (घात) आयु मे पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण (जघन्य) वृद्धि कही है ।।२३७-२३८।।

अब कल्पवासी देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहते हैः—

सौधर्मे च जघन्यायुः पादाग्रपल्यसख्यकम् ।
देवीनामायुरुत्कृष्टं पञ्चपल्योपमानि च ।।२३९।।

ईशाने सप्तपल्यानि ज्येष्ठायुर्देवयोषिताम् ।
सनत्कुमारकल्पे च नवपल्योपमान्यपि ।।२४०।।

माहेन्द्रे योषितामायुः पल्यैकादशसम्मितम् ।
ब्रह्मकल्पे परायुश्च पल्योपमास्त्रयोदश ।।२४१।।

ब्रह्मोत्तरे स्थितिः स्त्रीणां पल्यपञ्चदशप्रमा ।
लान्तवे च परायुष्कं पल्यं सप्तदशप्रमम् ।।२४२।।

कापिष्टे जीवितं पल्योपमान्येकोनविंशति. ।
शुक्रे स्त्रीणां परायुश्च पल्यानि ह्येकविंशतिः ।।२४३।।

महाशुक्रे स्थिति. पल्यत्रयोविंशतिसम्मिता ।
शतारे योषितामायुः पल्यानि पञ्चविंशतिः ।।२४४।।

सहस्रारे स्थितिः स्त्रीणां पल्यानि सप्तविंशतिः ।
आनते जीवितं पल्यचतुस्त्रिंशत्प्रमं भवेद् ।।२४५।।

प्राणते जीवितं पल्यैकचत्वारिंशदुत्तमम् ।
आरणे योषितां पल्याष्टचत्वारिंशदूर्जितम् ।।२४६।।

अच्युते पञ्चपञ्चाशत्पल्यान्यायुश्च योषिताम् ।
पुनराभां ब्रुवेऽप्यायुरन्यशास्त्रोक्तमञ्जसा ।।२४७।।

अर्थः—सौधर्म स्वर्ग मे स्थित देवियों की जघन्य आयु १¼ पल्य एव उत्कृष्ट आयु पाँच पल्य प्रमाण होती है ।।२३९।। ईशान स्वगस्थ देवियो की आयु सात पल्य एवं सनत्कुमार कल्प स्थित

देवियों की उत्कृष्ट आयु नव पल्य होती है ।।२४०।। माहेन्द्र स्वर्गस्थ देवियों की आयु ग्यारह पल्य तथा ब्रह्मकल्प स्थित देवियो की उत्कृष्ट आयु तेरह पल्य प्रमाण होती है ।।२४१।। ब्रह्मोत्तर स्वर्ग स्थित देवागनाओ की उत्कृष्ट आयु पन्द्रह पल्य प्रमाण होती है तथा लान्तव स्वर्गस्थ देवागनाओं की आयु सत्रह पल्य होती है ।।२४२।। कापिष्ठ कल्प स्थित देवागनाओ की उत्कृष्ट आयु उन्नीस पल्य एवं शुक्र कल्प में इक्कीस पल्य प्रमाण होती है ।।२४३।। महाशुक्र स्थित की तेईस पल्य तथा शतार कल्प स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु पच्चीस पल्य प्रमाण होती है ।।२४४।। सहस्रार कल्प मे स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु २७ पल्य, तथा आनत कल्प स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ३४ पल्य प्रमाण है ।।२४५।। प्राणत कल्प स्थित देवागनाओं को उत्कृष्ट आयु ४१ पल्य, तथा आरण स्वर्ग स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ४८ पल्य प्रमाण है ।।२४६।। और अच्युत कल्प स्थित देवांगनाओं का उत्कृष्ट आयु ५५ पल्य प्रमाण होती है ।

वैमानिक देवांगनाओं की जघन्य-उत्कृष्ट आयु का चार्टः—

कल्प	सौधर्म	ऐशान	सा.	मा.	ब्रह्म	ब्रह्मो.	ला.	का.	शु	म	श.	स.	आ.	प्रा.	आ.	अ०
जघन्यायु	सवा पल्य	१$\frac{१}{४}$ पल्य	७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८ पल्य
उत्कृष्टायु	५ पल्य	७ पल्य	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८	५५ पल्य

इन वैमानिक देवांगनाओ की उत्कृष्ट आयु, अन्य शास्त्रों के अनुसार पुनः कहते हैं ।।२४७।।

अब देवांगनाओं की अन्य शास्त्रोक्त उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहते हैं:—

सौधर्मैशानयोश्चायुर्देवीनां पल्यपञ्चकम् ।
द्वितीये युगले चायुः पल्यसप्तदशप्रमम् ।।२४८।।

स्थितिर्युग्मे तृतीये च पल्यानि पञ्चविंशतिः ।
चतुर्थे योषितां पल्याः पञ्चत्रिंशच्च जीवितम् ।।२४९।।

पञ्चमे जीवितं चत्वारिंशत्पल्यानि योषिताम् ।
षष्ठे पल्योपमाः पञ्चचत्वारिंशत् स्थितिः परा ।।२५०।।

सप्तमे युगले स्त्रीणां पञ्चाशत्पल्यजीवितम् ।
अष्टमे पञ्चपञ्चाशत्पल्यायुर्देवयोषिताम् ॥२५१॥
ग्राह्य एकोपदेशो मध्येऽनोयरुपदेशयोः ।
प्रमाणीकृत्य तीर्थेशवचः छद्मस्थयोगिभिः ॥२५२॥

अर्थः—सौधर्मैशान नामक प्रथम युगल मे देवियो की उत्कृष्ट आयु पाच पल्य, एवं द्वितीय युगल मे सात पल्य प्रमाण होती है ॥२४८॥ तृतीय युगल मे २५ पल्य, तथा चतुर्थ युगल में देवागनाओ की उत्कृष्ट आयु ३५ पल्य प्रमाण होती है ॥२४६॥ पचम युगल मे ४० पल्य और षष्ठ युगल में देवागनाओ की उत्कृष्ट आयु ४५ पल्य प्रमाण होती है ॥२५०॥ सप्तम युगल मे देवांगनाओं की आयु ५० पल्य एव अष्टम युगल मे देवियो की उत्कृष्ट आयु ५५ पल्य प्रमाण होती है ॥२५१॥ तीर्थंकर देव के वचनो को प्रमाण करके छद्मस्थ योगिराजो के द्वारा उपर्युक्त दोनो उपदेशो मे से एक उपदेश ही ग्रहण करना चाहिये ॥२५२॥

अब देवों के शरीर का उत्सेध कहते हैः—

सौधर्मैशानयोर्देवदेह सप्तकरोन्नतः ।
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानां च षट्करः ॥२५३॥
स्याद् ब्रह्मादि चतुःस्वर्गे कायः पञ्चकरोच्छ्रितः ।
शुक्रादिकचतुर्नाके देवाङ्गोच्चः चतु करैः ॥२५४॥
आनतप्राणते देवाङ्गः सार्धत्रिकरोदयः ।
आरणाच्युतयोः कायो देवानां त्रिकरोन्नतः ॥२५५॥
सार्धद्विकरदेहोच्चोऽस्त्यधोग्रैवेयकत्रिषु ।
देवानां द्विकराङ्गोच्चो मध्यग्रैवेयकत्रिषु ॥२५६॥
सार्धैकहस्तदेहोच्च ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिषु ।
नवानुदिशसंज्ञेऽङ्गं सपादैक करोन्नतम् ॥२५७॥
पञ्चानुत्तरसंज्ञेऽहमिन्द्राणां विस्फुरत्प्रभः ।
एकहस्तोन्नतो दिव्यः कायोवैक्रियिको भवेत् ॥२५८॥

अर्थ—सौधर्मेशान कल्प स्थित देवो के शरीर की ऊँचाई सात (७) हस्त प्रमाण एवं सानत्कुमार-माहेन्द्र मे ६ हस्त प्रमाण है ॥२५३॥ ब्रह्मादि चार स्वर्गो मे ऊँचाई ५ हस्त एवं शुक्रादि

चार स्वर्गों में देवों के शरीर की ऊँचाई ४ हस्त प्रमाण होती है ।।२५४।। आनत-प्राणत कल्प में शरीर का उत्सेध ३½ हस्त प्रमाण तथा आरण-अच्युत स्वर्ग में देवो के शरीर का उत्सेध ३ हस्त प्रमाण है ।।२५५।। तीनों अधो ग्रैवेयकों में उत्सेध २½ हस्त तथा तीनों मध्य ग्रैवेयकों में देवों के शरीर का उत्सेध २ हस्त प्रमाण है ।।२५६।। तीनों ऊर्ध्व ग्रैवेयको में देह का उत्सेध १½ हस्त एवं नव अनुदिशों में काय उत्सेध १¼ हस्त प्रमाण है ।।२५७।। पंच अनुत्तरो में अहमिन्द्रों के तेजोमय, दिव्य वैक्रियक शरीर का उत्सेध एक हस्त प्रमाण होता है ।।२५८।।

अब वैमानिक देवों के आहार एवं उच्छ्‌वास के समय का निर्धारण करते हैं:—

सौधर्मादियुगे देवानां द्विसहस्रवत्सरैः ।
गतैराहारउच्छ्‌वासो भवेत्पक्षद्वये गते ।।२५९।।

द्वितीये युगले सप्तसहस्राब्दैर्विनिर्गतैः ।
देवानां मानमाहार उच्छ्‌वासः पक्षसप्तके ।।२६०।।

तृतीयेऽब्दसहस्राणां नाकिनां दशभिर्गतैः ।
सुधाहारोऽस्ति चोच्छ्‌वासो मनाक् पक्षदशातिगैः ।।२६१।।

चतुर्थे युगले वर्षचतुर्दशसहस्रकैः ।
गतैराहार उच्छ्‌वासो द्विसप्तपक्षनिर्गमैः ।।२६२।।

पञ्चमे वत्सराणां गतैः षोडशसहस्रकैः ।
सुधाहारो वरोच्छ्‌वासः पक्षैः षोडशभिर्गतैः ।।२६३।।

षष्ठेऽतिगैश्च वर्षाणामष्टादशसहस्रकैः ।
मानसाहार उच्छ्‌वासः पक्षैरष्टादशैर्गतैः ।।२६४।।

सप्तमे युगले वर्षैर्गतैर्विंशसहस्रकैः ।
सुधाहारो लघूच्छ्‌वासो विंशपक्षैर्विनिर्गतैः ।।२६५।।

अष्टमे नाकिनां चाहारो द्वाविंशसहस्रकैः ।
वर्षैर्गतैः शुभोच्छ्‌वासः पक्षद्वाविंशनिर्गमैः ।।२६६।।

आद्ये ग्रैवेयकेऽतीतैस्त्रयोविंशसहस्रकैः ।
वर्षैराहार उच्छ्‌वासः पक्षोनवर्षनिर्गमे ।।२६७।।

द्वितीये चाहमिन्द्राणां चतुर्विंशसहस्रकैः ।
अब्दैराहार उच्छ्वासो गतैर्वर्षैर्मनागपि ॥२६८॥

तृतीये स्यात् सुधाहारः पञ्चविंशसहस्रकैः ।
गतैर्वर्षैः शुभोच्छ्वासः पक्षाग्रवत्सरे गते ॥२६९॥

चतुर्थे मानसाहारोऽब्दषड्विंशसहस्रकैः ।
गतैःसुगन्धिरुच्छ्वासः पक्षैः षड्विंशतिप्रमैः ॥२७०॥

पञ्चमे वत्सराणां च सप्तविंशसहस्रकैः ।
गतैराहार उच्छ्वासस्त्रिपक्षाग्राब्दानगमे ॥२७१॥

षष्ठे ग्रैवेयकेऽष्टाविंशाब्दसहस्रनिर्गतैः ।
दिव्याहारो लघूच्छ्वासो मासैश्चतुर्दशप्रमैः ॥२७२॥

सप्तमेऽमृतनाहार एकोनत्रिंशदब्दकैः ।
सहस्राणां शुभोच्छ्वासो मासैः सार्धचतुर्दशैः ॥२७३॥

अष्टमेऽस्ति हृदाहारस्त्रिंशद्वर्षसहस्रकैः ।
गतैश्च वर उच्छ्वासस्त्रिंशत्पक्षातिगैर्मनाक् ॥२७४॥

ग्रैवेयकेऽन्तिमे चाहारो ह्येकत्रिंशदब्दकैः ।
सहस्राणां सदुच्छ्वासस्तावत्पक्षैश्च निर्गतैः ॥२७५॥

नवानुदिशदेवानां स्याद्द्वात्रिंशत् सहस्रकैः ।
वर्षैराहार उच्छ्वासो गतैर्मासैश्च षोडशैः ॥२७६॥

पञ्चानुत्तरदेवानां त्रयस्त्रिंशत्सहस्रकैः ।
वर्षैश्चाहार उच्छ्वासो मासानां सार्धषोडशैः ॥२७७॥

अर्थ.—सौधर्मैशान नामक प्रथम युगल मे देवों का आहार २००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास दो पक्ष बाद होता है ॥२५९॥ द्वितीय युगल मे देवो का मानसिक आहार ७००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास सप्त पक्ष बाद होता है ॥२६०॥ तृतीय युगल मे देवों का अमृतमय आहार १०००० वर्ष बाद और उच्छ्वास दस पक्ष बाद होता है ॥२६१॥ चतुर्थ युगल मे आहार १४००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास १४ पक्ष बाद होता है ॥२६२॥ पंचम युगल मे देवो का सुधामय आहार १६००० वर्ष बाद और

उच्छ्वास १६ पक्ष बाद होता है ।।२६३।। षष्ठ युगल में मानसिक आहार १८००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास १८ पक्ष (९ माह) बाद होता है ।।२६४।। सप्तम युगल मे देवों का आहार २०००० वर्ष बाद एवं लघु उच्छ्वास २० पक्ष (१० माह) बाद होता है ।।२६५।। अष्टम युगल में देवो का आहार २२००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास २२ पक्ष एव (११ माह) बाद होता है ।।२६६।। प्रथम ग्रैवेयक स्थित अहमिन्द्रों के मानसिक आहार २३००० वर्ष बाद एव उच्छ्वास ११½ माह बाद होता है ।।२६७।। द्वितीय ग्रैवेयक में आहार २४००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास एक वर्ष बाद होता है ।।२६८।। तृतीय ग्रैवेयक मे देवो का आहार २५००० वर्ष बाद एव उच्छ्वास एक वर्ष, १ पक्ष बाद होता है ।।२६९।। चतुर्थ ग्रैवेयक मे अहमिन्द्रो का आहार २६००० वर्ष बाद और सुगन्धित उच्छ्वास एक वर्ष १ माह बाद होता है ।।२७०।। पचम ग्रैवेयक मे अहमिन्द्रो का आहार २७००० वर्ष बाद एव उच्छ्वास एक वर्ष १½ माह बाद होता है ।।२७१।। षष्ठ ग्रैवेयक में आहार २८००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास एक वर्ष दो माह बाद होता है ।।२७२।। सप्तम ग्रैवेयक मे अमृतमय आहार २९००० वर्ष बाद एव उच्छ्वास एक वर्ष २½ माह बाद होता है ।।२७३।। अष्टम ग्रैवेयक मे अमृताहार ३०००० वर्ष बाद और किंचित् उच्छ्वास एक वर्ष ३ माह (१¼ वर्ष) बाद होता है ।।२७४।। अन्तिम नवम ग्रैवेयक मे सुधाहार ३१००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास ३१ पक्ष अर्थात् एक वर्ष ३½ माह बाद होता है ।।२७५।। नव अनुदिशो मे अहमिन्द्रो का आहार ३२००० वर्ष बाद और उच्छ्वास एक वर्ष ४ माह बाद होता है ।।२७६।। तथा पञ्च अनुत्तरवासी अहमिन्द्रों का आहार ३३००० वर्ष बाद एव उच्छ्वास ३३ पक्ष–एक वर्ष ४½ माह बाद होता है ।।२७७।।

अब लौकान्तिक देवों के अवस्थान का स्थान एवं उनकी संख्या का प्रतिपादन करते हैं:—

वसन्ति ब्रह्मलोकान्ते ये लौकान्तिकनाकिनः ।
तेषां नामानि दिक् संख्या वक्ष्ये संक्षेपतः क्रमात् ।।२७८।।

सारस्वतास्तथादित्या वह्न्योऽरुणसंज्ञकाः ।
ईशानादि विदिक्स्थ प्रकीर्णेषु वसन्त्यमी ।।२७९।।

प्राच्यादौ गर्दतोयाश्च वसन्ति तुषिताह्वयाः ।
अव्याबाधास्ततोऽरिष्टाः श्रेणीबद्धेष्वनुक्रमात् ।।२८०।।

द्विर्द्वयोः सप्तयुक्सप्तशतानि तु सहस्रकाः ।
ततो द्वयोर्द्वयोर्वृद्धि द्वौ सहस्रौ द्वयाधिकौ ।।२८१।।

अर्थः—ब्रह्मलोक के अन्त में जो लौकान्तिक देव निवास करते है उनके नाम, अवस्थान की दिशाएँ एवं उनकी सख्या का प्रमाण मैं (आचार्य) सक्षेप से किन्तु क्रमशः कहूँगा ।।२७८।। सारस्वत, आदित्य, वह्नि और अरुण नाम के लौकान्तिक देव क्रमशः ईशान, आग्नेय, नैऋत्य एवं वायव्य विदिशाओ मे स्थित प्रकीर्णक विमानो मे रहते है ।।२७९।। तथा गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध एवं अरिष्ट नाम के लौकान्तिक देव क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा गत श्रेणीबद्ध विमानों में रहते हैं ।।२८०।। इनमे से सारस्वत देवों का प्रमाण ७०७, आदित्य लौकान्तिको का ७०७, वह्नि देवो का ७००७ तथा अरुण लौकान्तिक देवों का प्रमाण ७००७ है। इसके आगे क्रमशः दो-दो हजार दो की वृद्धि होती गई है। यथागर्दतोय लौकान्तिको का प्रमाण ९००९, तुषितो का ९००९, अव्याबाध देवो का ११००११ एव अरिष्ट नामक लौकान्तिक देवो का प्रमाण ११००११ है ।।२८१।।

अब सारस्वतादि दो दो कुलों के अन्तरालों में स्थित लौकान्तिक देवों के कुलों के नाम एवं उनकी संख्या के प्रमाण का दिग्दर्शन कराते है:—

अग्निसूर्येन्दु सत्याभादेवाः श्रेयस्कराभिधाः ।
क्षेमङ्करा वशिष्ठाख्या देवाः कामधराख्यकाः ।।२८२।।

निर्वाणरजसो नाम्ना दिगन्तरक्षतोऽमराः ।
आत्मरक्षकनामानः सर्वरक्षाश्च वायवः ।।२८३।।

वसवोऽश्चाह्वया विश्वाः षोडशैते सुराः क्रमात् ।
द्वौ द्वौ सारस्वतादीनां तिष्ठतश्चान्तराष्टसु ।।२८४।।

संख्यामीषां पृथक् सप्ताधिक सप्तसहस्रकाः ।
ततो ह्यग्रे सहस्रे द्वे प्रवर्धेते क्रमात् पृथक् ।।२८५।।

चतुर्लक्षास्तथा सप्तसहस्राश्च शताष्टकम् ।
विंशतिर्मेलिता एते सर्वे लौकान्तिकामताः ।।२८६।।

अर्थः—अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमङ्कर, वशिष्ठ, कामधर, निर्वाण रजस्, दिगन्तरक्षक, आत्मरक्षक, सर्वरक्षक, मरुत्, वसव, अश्व एव विश्व नाम के ये सोलह प्रकार के लौकान्तिक देव क्रमश: सारस्वतादि दो दो देवो के अन्तरालो मे रहते है ।।२८२-२८४।। इनमे से अग्न्याभ देवो की संख्या ७००७ प्रमाण है। इसके आगे पृथक् पृथक् क्रमशः २००२ की वृद्धि होती गई है। इस प्रकार सब लौकान्तिको की एकत्रित संख्या ४०७८२० प्रमाण मानी गई है ।।२८५-२८६।।

अब लौकान्तिक देवों के विशेष स्वरूप का एवं उनकी आयु का प्रतिपादन करते हैं:—

नाधिका न च हीनास्ते स्वात्मध्यानपरायणाः ।
विरक्ताः कामभोगेषु निसर्गब्रह्मचारिणः ।।२८७।।

चतुर्दशमहापूर्वसमुद्रपारगा विदः ।
सम्बोधनविधातारो दीक्षा कल्याणकेऽर्हताम् ।।२८८।।

देवर्षयः स्तुता वन्द्याः पूज्याश्चेन्द्रादिनाकिभिः ।
एकावतारिणोऽत्यन्त स्वल्पमोहाः शुभाशयाः ।।२८९।।

विरागा जिनदीक्षादानेऽति प्रमोदकारिणः ।
केवलं ब्रह्मकल्पान्ते सन्ति लौकान्तिकामराः ।।२९०।।

अत्यन्त स्त्रीविरक्ता ये तपस्यन्ति विरागिणः ।
मुनयः प्राग् भवे ते स्युर्लौकान्तिकाः स्त्रियोऽतिगाः ।।२९१।।

सारस्वतादि सप्तानां देवर्षीणां परा स्थितिः ।
अखण्डाः सागरा अष्टौ संसाराब्ध्यन्तगामिनाम् ।।२९२।।

आयुश्चारिष्टदेवानां नवैव सागरोपमाः ।
पुनरेषां ब्रुवे किञ्चित् सुखबोधाय वर्णनम् ।।२९३।।

अर्थ:—ये सभी लौकान्तिक देव परस्पर में ऋद्धि आदि से हीनाधिक नही होते, ये आत्मध्यान परायण, काम एव भोगो से विरक्त तथा निसर्गत ब्रह्मचारी होते है ।।२८७।। चतुर्दशमहापूर्व रूपी समुद्र के पारगामी, विद्वान एव दीक्षा कल्याणक के समय अर्हन्तो को सम्बोधन करने वाले होते हैं ।।२८८।। इन्द्रादि समस्त देवों द्वारा पूजनीय, वन्दनीय एवं स्तुत्य ये सर्व देवर्षि संज्ञा वाले देव एकभवावतारी, अत्यन्त अल्पमोह युक्त एव शुभ भावनाओ से युक्त होते है ।।२८९।। राग से रहित जिनेन्द्र भगवान की दीक्षा के समय अत्यन्त प्रमोद को धारण करने वाले ये लौकान्तिक देव ब्रह्मकल्प के अन्त मे निवास करते है ।।२९०।। पूर्वभव में जो मुनि स्त्री जन्य राग से अत्यन्त विरक्त होते है, तथा राग रहित अत्यन्त उग्र तप करते हैं, वे स्वर्ग मे आकर स्त्रियों के राग से रहित लौकान्तिक देव होते है ।।२९१।। संसार रूपी समुद्र के अन्त को प्राप्त होने वाले सारस्वतादि सात देवर्षिओं की उत्कृष्ट अखण्ड आयु आठ सागर प्रमाण होती है ।।२९२।। अरिष्ट नामक लौकान्तिक देवों की उत्कृष्ट आयु

९ सागर प्रमाण होती है। अब इनके भेद प्रभेदों के प्रमाण का सुख पूर्वक वोध कराने के लिए उसी प्रमाण को पुन: कहते है ॥२९३॥

अब प्रत्येक कुलों का पृथक् पृथक् प्रमाण कहते है:—

सप्ताधिकसप्तशतप्रमा' सारस्वतदेवा' ब्रह्मकल्पान्तस्यैशानदिक्स्थ प्रकीर्णकेषु वसन्ति। सप्ताग्रसप्तशतसख्या आदित्याश्चाग्निदिशास्थ प्रकीर्णक विमानेषु तिष्ठन्ति। सप्ताग्रसप्तसहस्रमिता वह्नयः नैऋत्यदिक्स्थित प्रकीर्णेषु वसन्ति। सप्ताग्र सप्तसहस्र प्रमा: अरुणा' वायुकोणस्थ प्रकीर्णकेषु भवन्ति। नवाग्रनवसहस्रा: गर्दतोया' पूर्वदिक् श्रेणीबद्धेषु वसन्ति। नवाधिक नवसहस्रमानास्तुषितामराः दक्षिणाशास्थ श्रेणीबद्ध विमानेषु तिठन्ति एकादशाग्रैकादशसहस्रा अव्यावाधा: पश्चिमदिक् श्रेणीबद्धेषु सन्ति। एकादशयुतैकादशसहस्रमिता अरिष्टा उत्तराशाश्रेणीबद्धेषु निवसन्ति। सप्ताग्रसप्तसहस्रा अग्न्याभा, नवाग्रनव सहस्राश्च सूर्याभा सारस्वतगर्दतोययोरन्तरे तिष्ठन्ति। एकादशाग्रैकादश सहस्राश्चन्द्राभा., त्रयोदशाग्रत्रयोदशसहस्रा सत्याभाश्च गर्दतोयादित्ययोरन्तरे वसन्ति पञ्चदशाधिकपञ्चदशसहस्रा: श्रेयस्करा , सप्तदशाग्रसप्तदशसहस्राः क्षेमङ्कराश्चादित्यतुषितयोरन्तरे सन्ति। एकोनविंशत्यग्रैकोनविंशतिसहस्रा वशिष्ठा , एकविंशत्यधिकैकविंशतिसहस्रा. कामधराश्च तुषितवह्नयोरन्तरे स्थु। त्रयोविंशत्यग्रत्रयोविंशतिसहस्रा' निर्वाणरजस , पञ्चविंशत्यग्रपञ्चविंशतिसहस्राः दिगन्तरक्षित' वह्नयव्यावाधयोरन्तरे च वसन्ति। सप्तविंशत्यग्रसप्तविंशतिसहस्रा आत्मरक्षका:, एकोनत्रिंशदग्रैकोनत्रिंशत्सहस्रा. सर्वरक्षकाश्चाव्यावाधारुणयोरन्तरेतिष्ठन्ति। एकत्रिंशदग्रैकत्रिंशत्सहस्राः मरुत , त्रयस्त्रिंशदधिक त्रयस्त्रिंशत्सहस्राः वसवश्चारुणारिष्टयोरन्तरे सन्ति। पञ्चत्रिंशदग्रपञ्चत्रिंशत्सहस्राः अश्वा मरा., सप्तत्रिंशदग्रसप्तत्रिंशत्सहस्रा. विश्वाख्याश्चारिष्ट सारस्वतयोरन्तरे निवसन्ति। एते सर्वे एकत्रीकृताः लौकान्तिकामरा. चतुर्लक्षसप्तसहस्राष्टशतविंशतिप्रमा भवन्ति।

अर्थ:—सारस्वत नामक लौकान्तिक देवों का प्रमाण ७०७ है ये ब्रह्मलोक के अन्त मे ईशान दिशास्थित प्रकीर्णक विमानो मे रहते है। ७०७ है प्रमाण जिनका ऐसे आदित्य देव आग्नेय दिशागत प्रकीर्णक विमानो में रहते है। वह्नि देवो का प्रमाण ७००७ है, ये नैऋत्य दिशागत प्रकीर्णको मे रहते है। अरुण देवो का प्रमाण भी ७००७ है, ये वायव्य कोण स्थित प्रकीर्णको मे रहते है। पूर्व दिशागत श्रेणीबद्धो मे निवास करने वाले गर्दतोय देवो का प्रमाण ९००९ है। दक्षिण दिशागत श्रेणीबद्धो मे निवास करने वाले तुषित देवो का प्रमाण ९००९ है। पश्चिम दिशागत श्रेणीबद्धो में निवास करने वाले अव्यावाध देवों का प्रमाण ११०११ है। उत्तर दिशागत श्रेणीबद्ध विमानो में निवास करने वाले अरिष्ट देवो का प्रमाण ११०११ है। ७००७ अग्न्याभ देव और ९००९ सूर्याभदेव, सारस्वत एव गर्दतोय इन दोनो के मध्य मे रहते है। ११०११ चन्द्राभ तथा १३०१३ सत्याभ देव,

गर्दतोय एवं आदित्य इन दोनों के मध्य में रहते है। १५०१५ श्रेयस्कर तथा १७०१७ क्षेमङ्कर देव, आदित्य एव तुषित इन दोनों के मध्य में रहते है। १९०१९ वशिष्ट तथा २१०२१ कामधर देव, तुषित एवं वह्नि इन दोनों के मध्य में रहते है। २३०२३ निर्वाणरजस् तथा २५०२५ दिगन्तरक्षित देव, वह्नि एवं अव्यावाध देवों के मध्य में निवास करते हैं। २७०२७ आत्मरक्षक और २९०२९ सर्व-रक्षक देव, अव्यावाध एव अरुण इन दोनों के मध्य में निवास करते है। ३१०३१ मरुत् तथा ३३०३३ वसव देव, अरुण और अरिष्ट के मध्य में रहते है। ३५०३५ अश्व देव एवं ३७०३७ विश्व देव अरिष्ट और सारस्वत इन दोनों के मध्य में रहते हैं। इन सब लौकान्तिक देवों का एकत्रित प्रमाण ४०७८२० होता है।

अब किस किस संहनन वाले जीव कहाँ तक उत्पन्न होते हैं ? इसका दिग्दर्शन कराते हैः—

सौधर्माद्यष्टनाकेषु षट्संहननसंयुताः ।
यान्ति शुक्रादिकल्पेषु चतुर्षु चान्तिमं विना ॥२९४॥
पञ्चसंहनना आनताद्येष्वन्य चतुर्षु च ।
चतुः संहनना जीवा गच्छन्ति पुण्यपाकतः ॥२९५॥
नवग्रैवेयकेषु त्र्युत्तमसंहननान्विताः ।
जायन्ते मुनयो दक्षा नवानुदिशनामनि २९६॥
अन्त्य द्विसंहननाढ्या यान्ति रत्नत्रयार्जिताः ।
पञ्चानुत्तरसंज्ञे चादिसंहननभूषिताः ॥२९७॥

अर्थः—सौधर्मादि आठ कल्पों में छहों संहनन वाले जीव उत्पन्न होते हैं। शुक्रादि चार कल्पों मे अन्तिम (असम्प्राप्तसृपाटिका) संहनन को छोड़ कर पाँच संहनन वाले जीव तथा आनतादि चार कल्पो मे असम्प्राप्त और कीलक सहनन को छोड़ कर शेष चार संहनन वाले जीव पुण्योदय से उत्पन्न होते है ॥२९४–२९५॥ नवग्रैवेयको मे तीन उत्तम संहननधारी मुनिराज, नव अनुदिशों में आदि के दो सहननों से युक्त रत्नत्रयधारी मुनिराज एव पाच अनुत्तरो में मात्र वज्रवृषभनाराच संहनन वाले मुनिराज उत्पन्न होते है और इसी सहनन से मोक्ष भी जाते है ॥२९६–२९७॥

अब वैमानिक देवों की लेश्या का विभाग दर्शाते हैंः—

तेजोलेश्या जघन्यास्ति भावनादित्रयेषु च ।
सौधर्मैशानयोर्नित्यं तेजोलेश्या हि मध्यमा ॥२९८॥

सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानां शुभाशये ।
तेजोलेश्याखिलोत्कृष्टा पद्मांशोऽतिजघन्यकः ।।२९९।।

ब्रह्मादिषट् सुदेवानां पद्मलेश्यास्ति मध्यमा ।
शतारादिद्वये पद्मोत्कृष्टा शुक्ला जघन्यवाक् ।।३००।।

आनतादिचतुःकल्प नवग्रैवेयकेषु च ।
देवानामहमिन्द्राणां शुक्ललेश्यास्ति मध्यमा ।।३०१।।

नवानुदिशसंज्ञे च पञ्चानुत्तरनामके ।
शुक्ललेश्यामहोत्कृष्टाहमिन्द्राणां भवेत्सदा ।।३०२।।

अर्थः—भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देवो मे जघन्य पीत लेश्या होती है । एवं सौधर्मैशान कल्प मे मध्यम पीत लेश्या होती है ।।२९८।। सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पो (के अधस्तन बहुभाग) मे उत्कृष्ट पीत लेश्या एव (उपरिम एक भाग मे) अति जघन्य पद्म लेश्या के अश होते है ।।२९९।। ब्रह्मादि छह कल्पो मे देवो के मध्यम पद्म लेश्या होती है, एव शतार-सहस्रार कल्पो के देवों मे पद्म लेश्या उत्कृष्ट तथा उपरिम एक भाग मे जघन्य शुक्ल लेश्या होती है ।।३००।। आनतादि चार कल्पों मे स्थित देवो मे तथा नवग्रैवेयकवासी अहमिन्द्रो मे मध्यम शुक्ल लेश्या होती है ।।३०१।। नव अनुदिश तथा पच अनुत्तरवासी अहमिन्द्रो के निरन्तर उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है ।।३०२।।

अब वैमानिक देवों के संस्थान एवं शरीर की विशेषता दर्शाते हैं:—

संस्थानं प्रथमं दिव्यं दिव्याकारं जगत्प्रियम् ।
वपुर्वैक्रियिकं रम्यं सप्तधातुमलोज्झितम् ।।३०३।।

सुगन्धीकृतदिग्भागं शुभस्निग्धाणु निर्मितम् ।
निरौपम्यं च देवानां निसर्गेणास्ति सुन्दरम् ।।३०४।।

अर्थः—वैमानिक देवो के जगत् प्रिय एव दिव्य समचतुरस्र नामक प्रथम संस्थान होता है। इनका वैक्रियक शरीर होता है, जो दिव्याकार वाला, अत्यन्त रमणीक, सप्त धातु रहित तथा मल से रहित होता है ।।३०३।। देवों का शरीर स्वभावतः अति सुन्दर, उपमा रहित तथा दशो दिशाओं को सुगन्धित कर देने वाले सौरभ युक्त, शुभ एव स्निग्ध परमाणुओं से निर्मित तथा उपमा रहित होता है ।।३०४।।

[illegible] :-

[illegible] ।
[illegible] ॥३०५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३०६॥

अर्थः—[illegible] ॥३०५॥ [illegible] ॥३०६॥

अब वैमानिक देवों का विशेष स्वरूप एवं उनके सुख का कथन करते हैं :-

नेत्रस्पन्दो न जात्वेषां न स्वेदो न मलादि च ।
नखकेशादिकं नैव न वार्धक्यं न रोगिता ॥३०७॥
निशादिनविभागो न विद्यते त्रिदशास्पदे ।
केवलं रत्नरश्म्योघैरुद्योतो वर्ततेतराम् ॥३०८॥
वर्षादिदुःखकृत्कालो नात्र नैवर्तु संक्रमः ।
नानिष्टसंगमोऽमीषां नाल्पमृत्युर्न दीनता ॥३०९॥
किन्तु शर्मप्रदोऽस्त्येकः साम्यकालः सुधाभुजाम् ।
सम्पदो विविधा बह्व्यः सुखं वाचामगोचरम् ॥३१०॥

अर्थः—स्वर्गों मे देवो के नेत्रों का परिस्पन्दन नहीं होता । उनके न पसीना आता है, न मल मूत्र आदि होता है, न नख केश आदि बढ़ते है, न बुढ़ापा आता है और न किसी प्रकार के रोग होते हैं ॥३०७॥ स्वर्गो मे रात्रि दिन का विभाग नहीं है, वहाँ निरन्तर केवल रत्न की किरणों के समूहो का उद्योत होता रहता है ॥३०८॥ वहाँ पर वर्षा, आतप आदि दुःख के कारणभूत काल एव ऋतु आदि का परिवर्तन नही होता । वहाँ न अनिष्ट वस्तुओं का संयोग होता है, न अल्पमृत्यु होती है और न दीनता है ॥३०९॥ किन्तु देवों के निरन्तर सुख प्रदान करने वाले काल का एक सदृश वर्तन होता है । वहाँ पर विविध प्रकार की विपुल सम्पदाएँ है, एवं वहाँ का सुख वचन अगोचर है ॥३१०॥

अब उत्पन्न होने के बाद देवगण क्या क्या विचार करते हैं, इसका प्रतिपादन करते हैः—

तत्रोपपाददेशान्तर्मरिणशय्यातले मृदौ ।
प्रागर्जितमहापुण्याल्लभन्ते जन्म वासवाः ।।३११।।

ततोऽप्यन्तर्मुहूर्तेन प्राप्य सम्पूर्णयौवनम् ।
दिव्यमुत्थाय शय्यायाः सुप्तोत्थिता इवात्र ते ।।३१२।।

विलोक्य तन्महाभूतीः प्रणतामरमण्डलीः ।
साश्चर्यमानसाश्चित्ते चिन्तयन्तीति चात्मगम् ।।३१३।।

अहो ! केऽमी महादेशाः सुखसम्पत् कुलालयाः ।
के वयं केन पुण्येनानीता वात्र सुरास्पदे ।।३१४।।

विनीता के इमे देवा देव्य एता जगत्प्रियाः ।
कस्येमाः सम्पदः सारा विमानान्तर्गताः पराः ।।३१५।।

इत्यादि चिन्तमानानां तेषां साश्चर्यचेतसाम् ।
आगत्य सचिवा नत्वा पादाब्जान् ज्ञानचक्षुषः ।।३१६।।

पूर्वापर सुसम्बन्धं निगदन्ति मनोगतम् ।
तत्पूर्वार्जित पुण्यं च स्वर्लोकस्थितिमञ्जसा ।।३१७।।

अर्थः—वहाँ पर इन्द्र आदि देव पूर्वोजित महा पुण्योदय से उपपाद स्थानों मे मणिमय कोमल उपपाद शय्या पर जन्म लेते है ।।३११।। तथा जन्म लेने के अन्तर्मुहूर्त बाद ही पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त कर वे उस दिव्य शय्या पर से ऐसे उठते है जैसे मानो सो कर ही उठे हो ।।३१२।। शय्या से उठते ही नम्रीभूत होती हुई देव मण्डली को और वहाँ की महाविभूति को देखकर मन मे आश्चर्यान्वित होते हुये वे अपने मन मे ऐसा चिन्तन करते है कि अहो ! सुख सम्पत्ति से युक्त यह कौनसा देश है ? मैं कौन हूँ, तथा किस पुण्योदय से मैं यहाँ स्वर्ग लोक मे उत्पन्न हुआ हूँ । अर्थात् यहाँ लाया गया हूँ ।।३१३–३१४।। नम्रीभूत होने वाले, जगत्प्रिय ये सब देव देवियाँ कौन है, एव विमान स्थित यह समस्त विपुल तथा उत्कृष्ट सम्पत्ति किसकी है ? ।।३१५।। इत्यादि अनेक प्रकार का चिन्तन करने वाले और आश्चर्य युक्त चित्त वाले उन नवीन देवो के मनोगत भावो को अपने अवधिनेत्र से जान कर वहाँ स्थित प्रधान-मन्त्री आदि देव उनके समीप आकर तथा उनके चरणकमलो को नमस्कार

करके पूर्वोपार्जित पुण्य से स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने की स्थिति एवं अन्य पूर्वापर सम्बन्ध आदि कह कर उन नवीन देवों के मनोगत सन्देह को दूर करते है ।।३१६-३१७।।

अब उत्पन्न होने वाले इन्द्रादि देव पूर्व भव में किये हुए धार्मिक अनुष्ठान आदि का और धर्म के फल का जो चिन्तन करते हैं, उसे कहते हैं:—

ततः तत्क्षणसञ्जातावधिज्ञानेन तेऽखिलम् ।
ज्ञात्वा प्राग्जन्मधर्मस्य फलं चेति वदन्त्यपि ।।३१८।।
अहो ! पूर्वभवेऽस्माभिः कृतं घोरं महत्तपः ।
हता पञ्चाक्षचौराश्च स्मरवैरी निपातितः ।।३१९।।
मनो ध्यानेन संरुद्धं प्रमादा निर्जिता हृदि ।
कषायविषवृक्षाश्च छिन्नाः क्षमायुधेन च ।।३२०।।
जगत्सारा महादीक्षा पालिता जिनपुङ्गवाः ।
आराधिता जगन्नाथास्तद्वाक्ये निश्चयं कृतम् ।।३२१।।
सर्व यत्नेन सद्धर्मो जिनोक्तो विश्वशर्मदः ।
अहिंसा लक्षणः सारैः क्षमादिलक्षणैर्धृतः ।।३२२।।
इत्याद्यैः परमाचारैः सद्धर्मो यः पुरार्जितः ।
तेनोद्वृत्याप्यधःपाताद्वयं संस्थापिता इह ।।३२३।।
अतो धर्माद्विना नान्योऽत्रामुत्र सुहितं करः ।
किन्तु सद्धर्म एकोऽहो ! स्वर्गमुक्तिसुखप्रदः ।।३२४।।
नरकाद् धर्म उद्धृत्य नयेद्विधर्मिणो दिवम् ।
सहगामी सतां धर्मो धर्मोऽचिन्त्यविभूतिदः ।।३२५।।
धर्मः कल्पद्रुमो विश्वसंकल्पितसुखप्रदः ।
धर्मश्चिन्तामणिश्चिन्तितार्थदो विश्वतर्पकः ।।३२६।।
धर्मो निधिर्जगत्सारो धर्मः कामदुघा नृणाम् ।
धर्मोऽसमगुणग्रामो धर्मः सर्वार्थसिद्धिदः ।।३२७।।
ईदृशोऽहो ! महान् धर्मो येन वृत्तेन चार्ज्यते ।
तत्रात्र सुलभं जातु स्वर्गिणां सुखभोगिनाम् ।।३२८।।

किन्तु स्वर्गे तपो वान्यो व्रतांशो नास्ति जातुचित् ।
केवलं दर्शनं स्याच्च पूजाभक्तिर्जिनेशिनाम् ।।३२९।।

अतस्तत्त्वार्थश्रद्धास्तु श्रेयसे नो जगद्धिता ।
धर्ममूलार्हतां पूजाभक्तिस्तुतिः परा रुचिः ।।३३०।।

विचिन्त्येति ततः शक्रा ज्ञातधर्मफलोदयाः ।
धर्मसिद्ध्यै समुद्युक्ता व्रजन्ति स्नानवापिकाम् ।।३३१।।

अर्थ —अन्य देवो के द्वारा सम्बोधित किये जाने के क्षण (समय) ही उन्हें अवधि ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, जिससे वे अपने समस्त पूर्व जन्म को जान कर धर्म का फल विचार करते हुये, इस प्रकार कहते है कि—अहो ! हमने पूर्व भव में महान एव घोर तप किया । पचेन्द्रिय रूपी चोरो को मारा है, तथा काम रूपी शत्रु को परास्त किया है ।।३१८-३१९।। शुभ ध्यान के अवलम्बन से मन को हृदय मे रोक कर प्रमाद को जर्जरित किया है । एव क्षमा रूपी आयुध से कषाय रूपी विष वृक्ष को छिन्न किया है ।।३२०।। जगत् मे सारभूत महादीक्षा का यत्न पूर्वक पालन किया है, जिनेन्द्र भगवानो की आराधना की है और तीन लोक मे सर्व श्रेष्ठ तीर्थंकरो के वचनो का श्रद्धान किया है ।।३२१।। अहिसा है लक्षण जिसका, जो सम्पूर्ण सुखो को देने वाला है ऐसे जिनेन्द्र द्वारा कथित समीचीन धर्म का मैंने पूर्ण प्रयत्न से उत्तम क्षमादि सारभूत लक्षणो द्वारा धारण किया है ।।३२२।। इत्यादि प्रकार से परमोत्कृष्ट चारित्र आदि के द्वारा पूर्व भव मे मैने जो धर्म उपार्जन किया था, उसने मुझे दुर्गति के पतन से रोक कर इस देव लोक मे स्थापित कर दिया है ।।३२३।। इस लोक और परलोक मे धर्म के बिना उत्तम हितकारी अन्य और कोई नही है । अहो ! एक समीचीन धर्म ही स्वर्ग एव मोक्ष के सुखो को देने वाला है ।।३२४।। विधर्मियो को भी यह धर्म नरक से निकाल कर स्वर्ग ले जाता है । सज्जनो के लिए धर्म ही सहयोगी है । धर्म अचिन्त्य विभूति देने वाला है ।।३२५।। सम्पूर्ण वाञ्छित सुखो को प्रदान करने के लिए धर्म कल्पवृक्ष है, तथा सम्पूर्ण चिन्तित पदार्थों को प्रदान करने से धर्म ही चिन्तामणि रत्न है ।।३२६।। जगत् मे सारभूत निधि धर्म ही है । मनुष्यो के लिए धर्म ही कामधेनु है, धर्म ही अतुलगुणो का समूह है तथा सर्व अर्थों की सिद्धि प्रदान करने वाला एक धर्म ही है ।।३२७।। अहो ! मनुष्य लोक मे जिस उत्तम चारित्र से यह महान् धर्म उपार्जित किया था वह चारित्र सुख भोगने वाले इन स्वर्ग वासियो को कभी सुलभ नही है ।।३२८।। किन्तु स्वर्गो मे कदाचिद् भी तप व व्रतो का अश नही है, यहा तो केवल सम्यग्दर्शन और जिनेन्द्र देवो की पूजा भक्ति मात्र है ।।३२९।। इसलिए स्वर्गो मे कल्याण का हेतु जगत् की हितकारक एक तत्त्वार्थ की श्रद्धा एव धम का मूल अर्हन्तो की पूजा, भक्ति तथा स्तुति ही है ।।३३०।। इस प्रकार चिन्तन करके

एवं इन्द्र आदि पदों को धर्म का फल जान कर धर्म सिद्धि के लिये उद्यत होते हुए स्नानवापिका की ओर स्नान हेतु जाते है ।।३३१।।

अब इन्द्रादि देवों के द्वारा की जाने वाली जिनेन्द्र पूजन का व्याख्यान करते हैं:—

तस्यां स्नात्वामरैः सार्धमुत्तमं श्रीजिनालयम् ।
स्फुरन्मणिमयं यान्ति धर्मरागरसोत्कटाः ।।३३२।।
तत्र नत्वोत्तमाङ्गेनार्हन्मूर्तीर्धर्मसत्खनीः ।
अर्चयन्ति महाभूत्या महाभक्त्या महोत्सवैः ।।३३३।।
मणिभृङ्गारनालान्तर्निर्गताच्छजलोत्करैः ।
दिव्यामोदनभोव्याप्तैर्जगत्सारैर्विलेपनैः ।।३३४।।
पुण्याङ्कुरसमैर्दीर्घैर्मुक्ताफलमयाक्षतैः ।
कल्पवृक्षोद्भवैः दिव्यैर्नानाकुसुमदामभिः ।।३३५।।
सुधापिण्डसुनैवेद्यै रत्नपात्रार्पितैः शुभैः ।
मणिदीपैर्हतध्वान्तैः सुगन्धिधूपसञ्चयैः ।।३३६।।
कल्पद्रुमफलैः सारैर्महापुण्यफलप्रदैः ।
दिव्यैश्चूर्णैश्च सद्गीतैर्नर्तनैः पुष्पवर्षणैः ।।३३७।।
ततः प्रस्तुत्य तीर्थेशान् सार्थैस्तद्गुणभूरिभिः ।
अर्जयित्वा परं पुण्यं ते गत्वा पूजयन्ति च ।।३३८।।
वनस्थचैत्यवृक्षेषु जिनेन्द्रप्रतिमाः पराः ।
स्नपयन्ति स्तुवन्त्येव प्रणमन्ति वृषाप्तये ।।३३९।।

अर्थः—वापिकाओ मे स्नान करके, धर्मराग रूपी उत्कट रस से भरे हुए वे इन्द्रादि देव अन्य देव समूहो के साथ देदीप्यमान मणिमय उत्तम जिनालयो मे जाते है ।।३३२।। वहाँ जाकर धर्म की खान स्वरूप अर्हन्त प्रतिमाओ को उत्तमाङ्ग (सिर) से नमस्कार करके महाविभूति और अपूर्व भक्ति से महामहोत्सवो के द्वारा पूजा करते है ।।३३३।। मणिमय भृङ्गार की नाल के मुख से निकलते हुये स्वच्छ जल समूह से, अपनी सुवास से आकाश को व्याप्त करने वाले, तथा जगत् के सार स्वरूप दिव्य चन्दन के विलेपन से, पुण्य के अङ्कुर सदृश और दीर्घ मुक्ता फल सदृश उत्तम अक्षतो से, कल्पवृक्षो से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के फूलो की मालाओ से, रत्नपात्रों मे रखे हुए, कल्पवृक्षों से

उत्पन्न और अत्यन्त शुभ नैवेद्य से, अन्धकार को नष्ट करने वाले मणिमय दीपो से, सुगन्धित धूप समूह से, महापुण्य फल प्रदान करने वाले कल्पवृक्षों के सारभूत उत्तम फलो से, दिव्य चूर्ण से, उत्तम गीत, उत्तम नृत्य और पुष्पवृष्टि आदि से जिनेन्द्र देव की पूजा भक्ति करते है ।।३३४-३३७।। इसके वाद वे इन्द्र, देव समूहो के साथ तीर्थकरो की स्तुति, पूजन द्वारा उत्कृष्ट पुण्य उपार्जन करके वहाँ से जाते हैं और वनो के मध्य चैत्यवृक्षो मे स्थित उत्कृष्ट जिनेन्द्र प्रतिमाओ का धर्म प्राप्ति के लिये अभिषेक करते हैं, पूजन करते हैं स्तुति करते है और नमस्कार करते है ।।३३८-३३९।।

अब मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्दृष्टि की पूजन के अभिप्राय का अन्तर दर्शा कर सम्यक्त्व प्राप्ति का हेतु कहते हैं:—

तत्रोत्पन्नाः सुरा दृष्टिहीनादेवैः प्रवोधिताः ।
जिनागारे जिनेन्द्रार्चां कुर्वन्ति शुभकांक्षिणः ।।३४०।।
सम्यग्दृष्टयमरा भक्त्या जिनेन्द्रगुणरञ्जिताः ।
अर्चयन्ति जिनार्चादीन् कर्मक्षयाय केवलम् ।।३४१।।
निर्दर्शनाः सुराश्चित्ते मत्वा स्वकुलदेवताः ।
जिनमूर्तीर्विमानस्थाः पूजयन्ति शुभाप्तये ।।३४२।।
ततोत्पन्नामरांश्चान्ये बोधयन्ति सुदृष्टयः ।
धर्मोपदेशतत्त्वादि भाषणैर्दर्शनाप्तये ।।३४३।।
केचित्तद् बोधनाच्छीघ्रं काललब्ध्या शुभाशयाः ।
गृह्णन्ति त्रिजगत्सारं सम्यक्त्वं भक्तिपूर्वकम् ।।३४४।।

अर्थः—स्वर्गो में उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवो द्वारा समझाये जाने पर पुण्य की वाञ्छा से जिन मन्दिरो मे जाकर जिनेन्द्र भगवान की पूजन करते है ।।३४०।। किन्तु जो सम्यग्दृष्टि देव वहाँ उत्पन्न होते है वे जिनेन्द्र भगवान् के गुणो मे रञ्जायमान होते हुए कर्म क्षय के लिए भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देव की पूजा करते है ।।३४१।। मिथ्या दृष्टि देव अपने विमानो मे स्थित जिनप्रतिमाओ को अपने मन में उन्हे कुलदेवता मान कर पुण्य की प्राप्ति के लिये पूजते है ।।३४२।। वहाँ उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टि देवो को अन्य सम्यग्दृष्टि देव सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु तत्त्व आदि के प्रतिपादन रूप धर्मोपदेश देते हैं, उनमे से कितने ही देव देशना प्राप्त करते ही काललब्धि से प्रेरित होकर शुद्ध चित्त होते हुए, त्रैलोक्य मे सारभूत सम्यक्त्व को भक्ति पूर्वक शीघ्र ही ग्रहण कर लेते है ।।३४३-३४४।।

अब अकृत्रिम-कृत्रिम जिन बिम्बों के पूजन-अर्चन का वर्णन करते हैः—

नन्दीश्वरमहाद्वीपे नियमेन सुराधिपाः ।
वर्षमध्ये त्रिवारं च दिनाष्टावधिमूर्जितम् ।।३४५।।
महामहं प्रकुर्वन्ति भूत्या स्नानार्चनादिभिः ।
जिनालयेषु सर्वेषु प्रतिमारोपितार्हताम् ।।३४६।।
मेर्वादिविश्वशैलस्थाऽर्हन्मूर्तीस्तेऽर्चयन्ति च ।
गत्वा विमानमारुह्य चापराः कृत्रिमेतराः ।।३४७।।
पञ्चकल्याणकालेषु महापूजां जिनेशिनाम् ।
विभूत्या परया गत्वा भक्त्या कुर्वन्ति नाकिनः ।।३४८।।
स्थानस्था अहमिन्द्राश्च कल्याणपञ्चकेऽनिशम् ।
भक्त्यार्हतः शिवप्राप्त्यै प्रणमन्ति स्तुवन्ति च ।।३४९।।
गणेशादीन् मुनीन् सर्वान् नमन्ति शिरसा सदा ।
निर्वाणक्षेत्रपूजादीन् भजन्तीन्द्राश्च सामराः ।।३५०।।
जिनेन्द्र श्री मुखोत्पन्नां वाणीं शृण्वन्ति ते सदा ।
तत्त्वगर्भा सुधर्माय परिवारविराजिताः ।।३५१।।

अर्थः—सर्व देव समूहों से युक्त होकर इन्द्र नियम से वर्ष में तीन वार (आसाढ़, कार्तिक, फाल्गुन) नन्दीश्वर द्वीप जाते है और वहाँ के सर्व जिनालयो में स्थित अर्हन्त प्रतिमाओं की महाविभूति अष्ट-अष्ट दिन पर्यन्त अभिषेक आदि क्रियाओ के साथ साथ महामह पूजा करते है ।।३४५–३४६।। अपने अपने विमानो पर आरोहण कर इन्द्र आदि देव मेरु आदि सर्व पर्वतो पर जाते है और वहां स्थित अकृत्रिम तथा कृत्रिम सर्व प्रतिमाओ की पूजा करते है ।।३४७।। सर्व देव पञ्चकल्याणको के समय जाते है, और वहाँ पर जाकर विपुल विभूति के साथ भक्ति से जिनेन्द्र देवों की पूजा करते है ।।३४८।। पञ्चकल्याणको के समय सर्व अहमिन्द्र अपने स्थानो पर स्थित रह कर ही कल्याण प्राप्ति के लिये अर्हन्त भगवान को भक्ति से प्रणाम करते है और अहर्निश उनकी स्तुति करते हैं ।।३४९।। सर्व देवो के साथ इन्द्र, सर्व गणधरों को और मुनीश्वरों को निरन्तर सिर झुका कर नमस्कार करते है तथा निर्वाण आदि क्षेत्रो की पूजा करते है ।।३५०।। इन्द्र सपरिवार समोशरण मे जाकर उत्तम धर्म धारण हेतु श्री जिनेन्द्र भगवान के मुख से उत्पन्न तत्त्व और अर्थ से भरी हुई वाणी को निरन्तर सुनते है ।।३५१।।

अब उन इन्द्रादि देवों के इन्द्रिय जन्य सुखों का वर्णन करते हैं:—

इत्यादिविविधाचारैः शुभैः पुण्यं परं समम् ।
देवैः शक्राश्च देवीभिरर्जयन्ति सुखाकरम् ।।३५२।।
तत्पुण्यजनितान् भोगान् निरौपम्यान्निरन्तरम् ।
भुञ्जन्ति सहदेवीभिः समस्तेन्द्रियतृप्तिदान् ।।३५३।।
व्रजन्ति स्वेच्छया देवा असंख्यद्वीपवार्धिषु ।
सद् विमानं मुदारुह्य क्रीडाकामसुखाप्तये ।।३५४।।
देवोद्यानेषु सौधेषु नदीक्रीडाचलेषु च ।
स्वेच्छया स्वस्वदेवीभिः क्रीडां कुर्वन्ति नाकिनः ।।३५५।।
शृण्वन्ति मधुरं गीतं पश्यन्ति नर्तनं महत् ।
सुश्रृङ्गारं विलासं चाप्सरसां ते रसावहम् ।।३५६।।
इति नाना विनोदाद्यैः परमाह्लादकारणम् ।
प्रतिक्षणं परं सौख्य लभन्ते नाकिनोऽनिशम् ।।३५७।।
दीर्घकालं निराबाधं यत्सुखं स्वर्गिणां भवेत् ।
केवलं तच्च तेषां स्यान्नान्येषां हि च्युतोपमम् ।।३५८।।

अर्थः—इस प्रकार स्वर्ग स्थित इन्द्र अनेक देव और देवियो के साथ अनेक प्रकार के शुभ आचरणों द्वारा सुख की खान स्वरूप उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन करते है ।।३५२।। उस पुण्य फल से उत्पन्न समस्त इन्द्रियो को तृप्त करने वाले अनुपम भोगो को देवियो के साथ साथ निरन्तर भोगते हैं ।।३५३।। सभी देव अपनी इच्छा से उत्तम विमानो मे आरूढ होकर काम क्रीडा रूप सुख प्राप्ति के लिए असख्यात द्वीप समुद्रो मे जाते है ।।३५४।। स्वर्ग स्थित देव अपनी अपनी देवागनाओ के साथ स्वइच्छानुसार उद्यानो मे, महलो मे, नदियो मे एव कुलाचलो पर क्रीड़ा करते है ।।३५५।। एवं वे देव कभी अप्सराओ के मधुर गीत सुनते है, कभी सुन्दर नृत्य देखते है, और काम रस को उत्पन्न करने वाली नाना प्रकार के शृङ्गार एव विलास पूर्ण क्रियाएँ करते है ।।३५६।। इस प्रकार देव परम आल्हाद उत्पन्न करने वाली नाना प्रकार की विनोद पूर्ण क्रियाओं द्वारा प्रतिक्षण निरन्तर परम सुखों को भोगते है ।।३५७।। दीर्घ काल तक निराबाध और अनुपम, जो सुख स्वर्गवासी देवो को प्राप्त होता है, वह सुख मात्र उन्ही देवो को ही है, वैसा सुख अन्य किसी को भी प्राप्त नही है ।।३५८।।

अब उत्तम मनुष्य किन किन क्रियाओं के द्वारा स्वर्ग आदि सुखों को प्राप्त करते हैं, उसका वर्णन किया जाता है:—

ये तपश्चरणोद्युक्ता रत्नत्रयधनेश्वराः ।
व्रतशीलमहाभूषाः सदाचाराः शुभाशयाः ।।३५९।।
जिनधर्मरता नित्यं जिनधर्मप्रभावकाः ।
जिनधर्मकरा ये च जिनधर्मोपदेशकाः ।।३६०।।
जिनाङ्घ्रिपूजका येऽत्र जिनभक्ता विवेकिनः ।
जिनवाणीसमासक्ता जिनसद्गुणरञ्जिताः ।।३६१।।
धर्मिणां वत्सला दक्षा धर्मवात्सल्यकारिणः ।
धर्मे साहाय्यकर्तारोऽन्येषां धर्मे च प्रेरकाः ।।३६२।।
धर्मकार्योद्यता ये च पापकार्ये पराङ्मुखाः ।
भवभीताः शुभध्याना जितेन्द्रिया जिताशयाः ।।३६३।।
निर्मदा निरहङ्कारा बुधा मन्दकषायिणः ।
निर्लोभाः शुभलेश्याढ्या विचारचतुराश्च ये ।।३६४।।
धर्मशुक्लशुभध्यान परा दुर्ध्यान दूरगाः ।
अग्रगा धर्मकार्ये च ये सर्वत्र हितोद्यताः ।।३६५।।
इत्याद्यन्यैः शुभाचारैर्भूषिता ये नरोत्तमाः ।
ते सर्वे धर्मपाकेन प्राणान्मुक्त्वा समाधिना ।।३६६।।
सौधर्ममुख्यसर्वार्थसिद्धिपर्यन्तमञ्जसा ।
व्रजन्ति स्वतपो योग्यं लभन्ते चेन्द्रसत्पदम् ।।३६७।।

अर्थः—जो निरन्तर दुद्धर तप तपते है, रत्नत्रय धन के स्वामी है, व्रत एवं शील से विभूषित है, सदाचारी है, जिनके चित्त शुभाशय से युक्त है, निरन्तर जिनधर्म मे रत रहते है, जिनधर्म की प्रभावना करने वाले है, जिन धर्म का उद्योत करने वाले हैं और जो जिन धर्म के उपदेशक है ।।३५९-३६०।। जो यहा जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलो की पूजा करते है, जिन भक्त है, विवेकी हैं, जिन-वाणी मे जिनका चित्त आसक्त रहता है, जिनका मन जिनेन्द्र के गुणो मे रञ्जायमान रहता है, जो धर्मात्माओं से अत्यन्त प्रीति रखते है, धर्म कार्यो मे दक्ष है, धर्म एव धर्मात्माओ में वात्सल्य भाव

रखते हैं, धर्म कार्यों मे निरन्तर सहायता करते रहते है और अन्य जीवो को भी धर्म कार्यों की प्रेरणा देते रहते हैं ।।३६१-३६२।। जो मनुष्य निरन्तर धर्मकार्य मे उद्यत रहते है और पाप कार्यों से पराङ्मुख है, संसार से भयभीत, शुभ ध्यानो मे तत्पर, जितेन्द्रिय, विषय कषायो को जीतने वाले, गर्व रहित, अहंकार रहित, ज्ञानी, मन्दकषायी, निर्लोभी, शुभलेश्याओ से युक्त और सद् विचारो मे चतुर होते हैं ।।३६३-३६४।। धर्म शुक्ल रूप उत्कृष्ट शुभ ध्यानो मे तत्पर, खोटे ध्यानों से दूर रहते हैं, धर्म कार्यो मे अग्रसर एव सर्वत्र सर्व जीवो के हित मे उद्यत रहते हैं । इत्यादि प्रकार से तथा और भी अन्य शुभाचारो से जो मनुष्य विभूषित है, वे सब नरोत्तम समाधिपूर्वक प्राणों को छोडकर धर्म के फल से सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थ सिद्धि पर्यन्त जाते है तथा अपने अपने तप की योग्यता के बल से इन्द्रादि के उत्कृष्ट पदो को प्राप्त करते है ।।३६५-३६७।।

अब कौन कौन से जीव किन किन स्वर्गो तक उत्पन्न होते हैं, इसका विवेचन करते हैः—

भोगभूमिभवा आर्याः सम्यक्त्वधारिणो हि ये ।
सौधर्मैशानकल्पौ ते यान्ति दृष्टिवृषोदयात् ।।३६८।।
भोगभूमिसमुत्पन्ना ये दृष्टिविकला नराः ।
भावनादित्रये तेऽतः व्रजन्ति भोगकांक्षिणः ।।३६९।।
अज्ञानकष्टपाकेन भद्रा गच्छन्ति तापसाः ।
आज्योतिर्लोक पर्यन्तं न स्वर्गं स्वल्पपुण्यतः ।।३७०।।
ये परिव्राजकास्तेऽत्र स्वोत्कृष्टाचरणेन च ।
यान्ति ब्रह्मोत्तरं स्वर्गं यावद् भौमादिपूर्वकम् ।।३७१।।
भद्रा आजीवका दीर्घायुषः कुवेषधारिणः ।
उत्कृष्टेन सहस्रारपर्यन्तं यान्ति तद् व्रतैः ।।३७२।।
इतः परं भवेज्जातु गमनं नान्यलिङ्गिनाम् ।
श्रावका आर्यिका नार्यस्तिर्यञ्चो व्रतभूषिताः ।।३७३।।
उत्कृष्टेन च गच्छन्ति स्वोत्कृष्टाचरणोद्यताः ।
अच्युतस्वर्गपर्यन्तमुत्कृष्टश्रावकव्रतैः ।।३७४।।
उत्कृष्टेन तपोवृत्तैरभव्या द्रव्यलिङ्गिनः ।
चिरायुषो व्रजन्त्यूर्ध्वं यावद्ग्रैवेयकान्तिमम् ।।३७५।।

ततः परं प्रगच्छन्ति स्वोत्कृष्टमत्तपोयमैः ।
सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं मुनयो भावलिङ्गिनः ॥३७६॥

अर्थः—भोगभूमि मे उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि आर्य मरण कर सम्यग्दर्शन एव धर्म के प्रसाद से सौधर्मैशान कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते है ॥३६८॥ तथा भोगभूमि में उत्पन्न एव भोगों की आकांक्षा रखने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य, भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देवो में उत्पन्न होते है ॥३६९॥ अज्ञान से अनेक प्रकार के कष्ट जिसमे है ऐसा तप तपने वाले भद्र तापसी मरण कर भवनत्रिक में उत्पन्न होते है । अल्प पुण्य के कारण स्वर्ग नही जाते ॥३७०॥ जो परिव्राजक है, वे अपने उत्कृष्ट तपश्चरण द्वारा भवनत्रिक से ब्रह्मोत्तर स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते है ॥३७१॥ भद्र, दीर्घायु और कुवेषधारी आजीवक नाम के तापसी काय क्लेश आदि तपों के द्वारा उत्कृष्ट से सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जाते है ॥३७२॥ सहस्रार स्वर्ग से ऊपर कुलिंगवेषधारी जीवो की उत्पत्ति नही होती । अपने अपने उत्कृष्ट चारित्र मे उद्यम करने वाले श्रावक, आर्यिकाएँ व्रती स्त्रियाँ और व्रत से विभूषित तिर्यञ्च उत्कृष्ट श्रावक व्रतो के द्वारा उत्कृष्टतः सोलह स्वर्ग पर्यन्त जाते है ॥३७३–३७४॥ दीर्घायु द्रव्यलिङ्गी मुनि और अभव्य जीव उत्कृष्ट रीति से पालन किये हुए तप और व्रताचरण के द्वारा नवग्रैवेयक पर्यन्त जाते है ॥३७५॥ सर्वोत्कृष्ट व्रत और तपश्चरण के द्वारा भावलिङ्गी मुनिराज सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जाते है ॥३७६॥

अब स्वर्गों से च्युत होने वाले देवों की प्राप्त गति का निर्धारण करते हैं:—

सौधर्मेन्द्रस्य दृष्टयाप्ता महादेव्यो दिवश्च्युताः ।
सर्वे च दक्षिणेन्द्रा हि चत्वारो लोकपालकाः ॥३७७॥

सर्वे लौकान्तिका विश्वे सर्वार्थसिद्धिजामराः ।
निर्वाण तपसा यान्ति संप्राप्य नृभवं शुभम् ॥३७८॥

नवानुत्तरजा देवाः पञ्चानुत्तरवासिनः ।
ततश्च्युत्वा न जायन्ते वासुदेवा न तद् द्विषः ॥३७९॥

तिर्यञ्चो मानवाः सर्वे भावनादि त्रिजामराः ।
शलाकापुरुषा जातु न भवन्त्यमरार्चिताः ॥३८०॥

विजयादिविमानेभ्योऽहमिन्द्रा एत्य भूतलम् ।
मर्त्यजन्मद्वयं प्राप्य ध्रुवं गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥३८१॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन को धारण करने वाली सौधर्म इन्द्र की महादेवी, सर्व दक्षिणेन्द्र, चारों लोकपाल, सर्व लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि के सर्व देव स्वर्ग पर्याय से च्युत होकर उत्तम मनुष्य भव प्राप्त करते है और फिर उत्कृष्ट तप से विभूषित होते हुए नियम पूर्वक उसी भव से मोक्ष जाते है।।३७७–३७८।। (सर्वार्थसिद्धि को छोड़ कर) पञ्चपंचोत्तर और नव अनुदिश वासी देव स्वर्ग से च्युत होकर नारायण एव प्रतिनारायण नही होते ।।३७९।। सर्व मनुष्य, सर्व तिर्यञ्च और सर्व भवनत्रिकवासी देव अपनी अपनी पर्यायो से मरण कर देवों द्वारा पूजित शलाका पुरुषों में कभी भी उत्पन्न नही होते ।।३८०।। विजयादि विमानो से च्युत होकर भूतल पर आये हुए अहमिन्द्र मनुष्य के दो भव लेकर नियम से मोक्ष पद प्राप्त करते है ।।३८१।।

अब स्वर्ग स्थित मिथ्यादृष्टि देवों के मरण चिह्न, उससे होने वाला आर्त्तध्यान और उस आर्त्तध्यान के फल का निरूपण करते हैः—

यदावतिष्ठतेऽल्पायुः शेषं षण्मासगोचरम् ।
देवानां च तदा स्वाङ्गकान्तिर्गच्छति मन्दताम् ।।३८२।।

उरःस्थपुष्पसन्माला म्लानतां यान्ति दुर्विधेः ।
मणयो भूषणानां हि तेजसा मन्दतां तथा ।।३८३।।

एतानि मृत्युचिह्नानि वीक्ष्य कुदृष्टि निर्जराः ।
इति शोकं प्रकुर्वन्तोष्टवियोगार्तमानसाः ।।३८४।।

हा ! ईदृशीर्जगत्सारा विमुच्य स्वर्गसम्पदः ।
नोऽवतारोऽशुभे निन्द्ये स्त्रीदुर्गर्भे भविष्यति ।।३८५।।

अधोमुखेन तत्राहो ! गर्भेविष्टाकृमाकुले ।
दुस्सहा वेदना स्माभिः सोढव्या सुचिरं कथम् ।।३८६।।

इत्यार्तध्यानपापेन दिवश्च्युत्वा कुदृष्टयः ।
भावनादित्रयस्थाश्च सौधर्मैशानवासिनः ।।३८७।।

भवन्ति वादराः पर्याप्ताः पृथ्व्यप्कायिका भुवि ।
तथा वनस्पतिप्रत्येककायिकाः सुखातिगाः ।।३८८।।

आसहस्रारकल्पस्थाः केचित्प्रच्युत्य नाकतः ।
आर्त्तध्यानेन जायन्ते दुःखिनः कर्मभूमिषु ।।३८९।।

पञ्चेन्द्रियाश्च पर्याप्तास्तिर्यञ्चो वा नरोऽपरे ।
ततः परं दिवश्च्युत्वानतकल्पादिवासिनः ॥३९०॥
कर्मभूमौ मनुष्यत्वं लभन्ते केवलं शुभम् ।
तिर्यक्त्वं जातु नामीषां तीव्रार्त्ताद्यभावतः ॥३९१॥

अर्थ:—जब सर्व देवों की छह मास पर्यन्त की अल्पायु अवशेष रह जाती है, तब उनके शरीर की कान्ति मन्द हो जाती है। दुर्विपाक से गले में स्थित उत्तम पुष्पों की माला म्लान हो जाती है और मणिमय आभूषणों का तेज मन्द हो जाता है ॥३८२–३८३॥ इस प्रकार के मृत्यु चिह्न देख कर मिथ्यादृष्टि देव अपने मन मे इष्ट वियोग आर्त्तध्यान रूप इस प्रकार का शोक करते है कि—हाय ! ससार की सारभूत स्वर्ग की इस प्रकार की सम्पत्ति छोड कर अब हमारा अवतरण स्त्री के अशुभ, निन्द्यनीय और कुत्सित गर्भ मे होगा ? ॥३८४–३८५॥ अहो ! विष्टा और कृमि आदि से व्याप्त उस गर्भ में दीर्घ काल तक अधोमुख पड़े रहने की वह दुस्सह वेदना हमारे द्वारा कैसे सहन की जायगी ? ॥३८६॥ इस प्रकार के आर्त्तध्यान रूप पाप से भवनत्रिक और सौधर्मैशान कल्प मे स्थित मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से च्युत होकर तिर्यग्लोक मे दुःखो से युक्त वादर, पर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, और प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों में जन्म लेते है (जहा गर्भ का दुःख नही होता) ॥३८७–३८८॥ सहस्रार कल्प पर्यन्त के मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से च्युत होकर आर्त्तध्यान के कारण पन्द्रह कर्मभूमियों में, दुःखों से युक्त पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक तिर्यञ्च एव मनुष्यो मे उत्पन्न होते है। आनत आदि चार कल्पों के एवं नवग्रैवेयकों के मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से च्युत होकर कर्मभूमियों मे उत्तम मनुष्यों मे उत्पन्न होते हैं। इन स्वर्गो मे तीव्र आर्त्तध्यान का अभाव है, अतः यहां के मिथ्यादृष्टि देव तिर्यञ्च योनि में कभी भी उत्पन्न नही होते ॥३८९–३९१॥

अब मरण चिह्नों को देख कर सम्यग्दृष्टि देव क्या चिन्तन करते हैं, और उसका उन्हें क्या फल मिलता है ? इसे कहते हैं:—

मृत्युचिन्हानि वीक्ष्यान्ते सम्यग्दृष्टिसुरोत्तमाः ।
दक्षाः कालुष्यनाशायेमं विचारं प्रकुर्वते ॥३९२॥
शक्राणामपि चात्राहो न मनाग्नियम व्रतम् ।
न तपो न च सद्दानं न शिवं शाश्वतं सुखम् ॥३९३॥
किन्तु मर्त्यभवेनृणां तपोरत्नत्रयादयः ।
व्रतशीलानि सर्वाणि जायन्ते च शिवादिकाः ॥३९४॥

अतोऽद्यादद्भुतपुण्येन नृभवं प्राप्य सत्कुलम् ।
साधनीयं किलास्माभिर्मोक्षोऽनन्तसुखाकरः ॥३९५॥

इत्थं विचार्य सद्देवा विधाय विविधार्चनाम् ।
अर्हतां मरणान्ते च चित्तं कृत्वाति निश्चलम् ॥३९६॥

ध्यायन्तः कुड्मलीकृत्य स्वकरौ परमेष्ठिनाम् ।
नमस्कारान् परान् पञ्चेहामुत्र स्वेष्टसिद्धिदान् ॥३९७॥

तिष्ठन्ति पुण्यसत्क्षेत्रे तदामीषां वपूंषि च ।
अभ्राणीव विलीयन्ते सहसा स्वायुषि क्षये ॥३९८॥

ततस्ते दृग्विशुद्धयाप्ता देवास्तत्पुण्यपाकतः ।
तीर्थेशविभवं केचिल्लभन्ते विश्ववन्दितम् ॥३९९॥

केचिच्चक्रिपदं चान्ये बल-कामादिसत्पदम् ।
नृभवे सुकुलं केचिद्धनाढ्यं धर्मकारणम् ॥४००॥

अर्थः—हिताहित के विचार मे दक्ष सम्यग्दृष्टि उत्तम देव मानसिक कलुषता को दूर करने के लिए इस प्रकार विचार करते हैं कि—अहो ! यहाँ स्वर्गो मे इन्द्रो के भी न किञ्चित यम, नियम है और न तप है और न दान आदि है, और तप आदि के बिना मोक्ष रूप शाश्वत सुख की प्राप्ति हो नही सकती, किन्तु मनुष्य भव मे मनुष्यो को मोक्ष के साधन भूत तप, रत्नत्रय, व्रत एवं शील आदि सभी प्राप्त हो जाते हैं, अतः आज अद्भुत पुण्यपरिपाक से हम लोगो को मनुष्य भव और उत्तम कुल की प्राप्ति हो रही है, उसे प्राप्त कर हम लोग अनन्त सुख की खान स्वरूप मोक्ष का साधन करेंगे ॥३९२–३९५॥ इस प्रकार के विचार कर उत्तम देव नाना प्रकार से अर्हन्त देव की पूजन करके मरण के अन्तिम समय मे अपने चित्त को अत्यन्त निश्चल करते हुए अपने दोनो हाथ जोड़ कर पंच परमेष्ठियो का ध्यान करते है तथा इस लोक और परलोक मे आत्म सिद्धि देने वाला नमस्कार करते है ॥३९६–३९७॥ मरण वेला मे किसी पुण्य रूप उत्तम क्षेत्र मे जाकर बैठ जाते हैं, वहां आयु क्षय होते ही उन देवो का शरीर मेघो के सदृश शीघ्र ही विलीन हो जाता है ॥३९८॥ शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने वाले वे उत्तम देव वहा से चय कर कोई तो पुण्य प्रभाव से विश्ववन्दनीय तीर्थंकर के वैभव को प्राप्त करते है, कोई चक्रवर्ती पद को कोई बलदेव पद और कोई कामदेव आदि के उत्तम पद प्राप्त करते हैं, एव कोई कोई देव मनुष्य भव तथा उत्तम कुल में धर्म के कारणभूत अति धनाढ्य होते है ॥३९९–४००॥

अब धर्म के फल का प्रतिपादन करते हुए आचार्य व्रत तप आदि धारण करने की प्रेरणा देते हैं:—

इत्थं धर्मविपाकतश्च विबुधाः स्वर्गेषु नानाविधं।
सत्सौख्यं चिरकालमक्षजमहो ! भुञ्जंति बाधातिगम्।
ज्ञात्वेतीह बुधाः प्रयत्नमनसा सारैस्तपः सद्व्रतै-
र्धर्मैकं चरतानिशं किमपरैर्व्यर्थैश्चवाग्डम्बरैः ॥४०१॥

अर्थः—अहो ! इस प्रकार विवेकी जीव धर्म के फल से स्वर्गों में चिरकाल तक नाना प्रकार के वाधा रहित इन्द्रिय जन्य उत्तम सुख भोगते है। ऐसा जान कर विद्वानो को, मनुष्य भव में सार भूत उत्तम तप और उत्तम व्रतों के द्वारा निरन्तर मनोयोग पूर्वक एक धर्म के आचरण में ही प्रयत्न करना चाहिये, व्यर्थ क अन्य वचन आडम्बरों से क्या ? ॥४०१॥

धर्म की महिमाः—

धर्मः स्वर्गगृहाङ्गणः सुखनिधिर्धर्मः शिवश्रीप्रदो।
धर्मःस्वेष्टसमीहितार्थजनको धर्मोगुणाब्धिर्महान् ॥
धर्मो धर्मविधायिनां द्विसुगतौ नाना सुभोगप्रद-
स्तत्किं यन्न ददाति किं तु कुरुते स्वस्थांस्त्रिलोकीपतीन् ॥४०२॥

अर्थः—धर्म से स्वर्ग लोक गृह का आंगन हो जाता है, धर्म सुख की निधि और मोक्ष लक्ष्मी को देने वाला है, धर्म अपने इष्ट एवं चिन्तित पदार्थो का जनक है धर्म गुणों का सागर है, धर्म धारण करने वाले जीवों को धर्म उत्तम भोग प्रदायी स्वर्ग और मनुष्य गति देता है, धर्म केवल इतना ही नही देता किन्तु अष्ट कर्मों को नष्ट करके धर्म त्रैलोक्य पति पद अर्थात् मोक्ष पद को भी दे देता है ॥४०२॥

अधिकारान्त मङ्गलाचरणः—

धर्मं येऽत्र सृजन्ति तीर्थपतयो धर्माच्छिवं ये गताः।
धर्मे ये गणिनो विदश्च मुनयस्तिष्ठन्ति धर्माप्तये ॥
ये स्वर्गादिजगत्सुचैत्यनिलया धर्मस्य सद्धेतवः
तीर्थेशप्रतिमादयः प्रतिदिनं वन्देऽखिलांस्तान् स्तुवे ॥४०३॥

षोडशोऽधिकारः



मङ्गलाचरणः—

अथ सिद्धव्रजान्नत्वा त्रिजगन्मूर्द्धिनसंस्थितम् ।
सिद्धक्षेत्रं प्रवक्ष्यामि सतां वन्द्यं तदाप्तये ॥१॥

अर्थः—अब सिद्धों के समूह को नमस्कार कर तीनो लोकों के मस्तक पर स्थित तथा सज्जनों के वन्दनीक सिद्ध क्षेत्र का कथन उसकी प्राप्ति के हेतु करूँगा ॥१॥

अब अष्टम पृथिवी की अवस्थिति और उसका प्रमाण कहते हैं:—

सर्वार्थसिद्धितो गत्वाप्यूर्ध्वद्वादशयोजनैः ।
त्रैलोक्यमस्तके तिष्ठेत् महती वसुधाष्टमी ॥२॥
दक्षिणोत्तरदीर्घाङ्गा सप्तरज्जुभिरूर्जिता ।
पूर्वापरेण रज्ज्वेकव्यासा स्थूलाष्टयोजनैः ॥३॥

अर्थः—सर्वार्थसिद्धि से बारह योजन (४८००० मील) ऊपर जाकर त्रैलोक्य के मस्तक पर ईषत्प्राग्भार नामकी श्रेष्ठ अष्टमी पृथ्वी अवस्थित है ॥२॥ उस अष्टम पृथिवी की दक्षिणोत्तर लम्बाई सात राजू प्रमाण, पूर्व पश्चिम चौड़ाई एक राजू एवं मोटाई आठ योजन प्रमाण है ॥३॥

अब सिद्ध शिला की अवस्थिति, आकार एवं उसका प्रमाण आदि कहते हैं:—

तन्मध्ये रजतच्छाया दिव्या मोक्षशिला शुभा ।
उत्तानगोलकार्धेन समाना दीप्तिशालिनी ॥४॥
नृक्षेत्रसमविस्तीर्णा छत्राकारा विभात्यलम् ।
मध्येऽष्टयोजनस्थूला कृशान्ते क्रमहानितः ॥५॥

अर्थः—ईषत्-प्राग्भार पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय, दिव्य, सुन्दर, देदीप्यमान और ऊँचे रखे हुए अर्ध गोले के सदृश मोक्षशिला है। यह अत्यन्त प्रभायुक्त छत्राकार और मनुष्य लोक के सदृश

(४५ लाख योजन) विस्तार वाली है । इस शिला की मध्य की मोटाई आठ योजन है आगे अन्त पर्यन्त क्रमशः हीन होती गई है ।।४-५।।

अब सिद्ध भगवान् का स्वरूप कहते हैं:—

तस्यां सिद्धा जगद्वन्द्यास्तनुवातान्तमस्तकाः ।
अनन्तसुखसंलीना नित्याष्टगुणभूषिताः ।।६।।
कायोत्सर्गसमाः केचित् पर्यङ्कासन सन्निभाः ।
केचिच्च विविधाकारा अमूर्ता ज्ञानदेहिनः ।।७।।
गतसिक्थकमूषायां आकाशाकारधारिणः ।
प्राक्कायायामविस्तार त्रिभागोनप्रदेशकाः ।।८।।
लोकोत्तमाः शरण्याश्च मङ्गलविश्वकारकाः ।
अनन्तकालमात्माप्तास्तिष्ठन्त्यन्तातिगाः सदा ।।९।।
इमे सिद्धा मया ध्येया वन्द्या विश्वमुनीश्वरैः ।
स्तुताश्च मम कुर्वन्तु स्वगतिं स्वगुणैः समम् ।।१०।।

अर्थः—तनुवातवलय के अन्त मे है मस्तक जिनके ऐसे त्रिजगद्वन्दनीय, अनन्त सुख में निमग्न और नित्य ही अष्ट गुणों से विभूषित सिद्ध परमेष्ठी उस सिद्ध शिला से ऊपर अवस्थित हैं ।।६।। ज्ञान ही है शरीर जिनका ऐसे वे अमूर्तिक सिद्ध कोई कायोत्सर्ग से और कोई पद्मासन से नाना प्रकार के आकारो से अवस्थित है ।।७।। पुरुषाकार मोम रहित साचे मे जिस प्रकार आकाश पुरुषाकार को धारण करके रहता है, उसी प्रकार पूर्व शरीर के आयाम एव विस्तार मे से एक त्रिभाग कम पुरुषाकार प्रदेशो से युक्त, लोकोत्तम स्वरूप, शरण स्वरूप और समस्त विश्व को मगल स्वरूप सिद्ध भगवान् अन्तरहित अनन्तकाल पर्यन्त अपनी आत्मा मे ही रहते है ।।८-९।। इस प्रकार के सिद्ध भगवान् विश्व के समस्त अरहतो और मुनीश्वरो के द्वारा वन्द्य तथा स्तुत्य है, मैं भी उनका ध्यान करता हूँ, वे मुझे अपने गुणो के सदृश अपनी सिद्ध गति प्रदान करे ।।१०।।

अब सिद्धों के सुखों का वर्णन करते है—

इन्द्राहमिन्द्रदेवानां चक्रवर्त्यादिभूभुजाम् ।
भोगभूमिभवार्याणां सर्वेषां व्योमगामिनाम् ।।११।।

भूतं भावि सुखं सर्वं वर्तमानं जगत्त्रये ।
यदेकत्रीकृतं स्याच्च विषयोत्थत्रिकालजम् ॥१२॥

तस्मादक्षसुखात्कृत्स्नादनन्तगुणितं सुखम् ।
एकेन समयेनैव सिद्धा भुञ्जन्ति शाश्वतम् ॥१३॥

स्वात्मोपादानसञ्जातं वृद्धिह्रासोज्झितं परम् ।
परद्रव्य निरपेक्षं समस्तोत्कृष्टमञ्जसा ॥१४॥

निराबाधं निरौपम्यं दुःखदूरं सुखोद्भवम् ।
अत्यक्षमतुलं सारं विश्वशर्माग्रसंस्थितम् ॥१५॥

अर्थः—तीनो लोकों में चतुर्निकाय के सर्व देवो, इन्द्रों, अहमिन्द्रों, पदवीधारी चक्रवर्ती आदि सर्व राजाओ, भोगभूमिज युगलों और सर्व विद्याधरों के भूत, भविष्यत, वर्तमान के सर्व सुख को एकत्र कर लेने पर भी त्रिकालज विषयों से उत्पन्न होने वाले इस इन्द्रिय जन्य समस्त सुखों से (विभिन्न जाति का) अनन्तानन्त गुणा शाश्वत एवं अतीन्द्रिय सुख सिद्ध परमेष्ठी एक समय में भोगते है ॥११-१३॥ लोक के अग्र भाग में स्थित सिद्ध परमेष्ठी अपनी आत्मा के उपादान से उत्पन्न, वृद्धिह्रास से रहित, पर द्रव्यो से निरपेक्ष, सर्व सुखो मे सर्वोत्कृष्ट, बाधा रहित, उपमा रहित, दुःख रहित, अतीन्द्रिय, अनुपम सुख से उत्पन्न और समस्त सुखो मे जो सारभूत है, ऐसे सुख का उपभोग निरन्तर करते है ॥१४-१५॥

अब अधोलोक जन्य प्रत्येक भूमियों का भिन्न भिन्न घन फल कहते हैं:—

अथ पूर्वोक्तलोकस्य घनाकारेण रज्जुभिः ।
अधोमध्योर्ध्वभागेषु पृथक् संख्या निगद्यते ॥१६॥

रत्नप्रभामहीभागे रज्जवो दशसम्मिताः ।
शर्कराश्वभ्रभूदेशे रज्जवः षोडशप्रमाः ॥१७॥

वालुका भूतलेद्वाविंशति संख्याश्च रज्जवः ।
पङ्कप्रभावनिक्षेत्रे ह्यष्टाविंशति रज्जवः ॥१८॥

धूमप्रभाक्षितौ रज्जवः चतुस्त्रिंशदञ्जसा ।
तमःप्रभाखिलेक्षेत्रे चत्वारिंशच्च रज्जवः ॥१९॥

महातमः प्रभान्ते षड्चत्वारिंशच्च रज्जवः ।
इत्यधोलोकरज्जूनां षण्णवत्यधिकं शतम् ॥२०॥

अर्थ:—अब सिद्धो के सुखों का वर्णन करने के बाद पूर्व मे जो लोक का ३४३ घन राजू क्षेत्र-फल कहा गया था, उसी को अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक इन तीन भागों मे विभाजित करके अधोलोक सम्बन्धी प्रत्येक पृथ्वी के घनफल की पृथक् पृथक् सख्या कहते है ॥१६॥ रत्नप्रभा पृथिवी (उपरिम प्रथम भाग) का घन फल १० घन राजू प्रमाण है । शर्करा पृथ्वी (द्वितीय भाग) का १६ घन राजू प्रमाण, बालुका प्रभा (तृतीय भाग) का २२ घन राजू, पङ्क प्रभा (चतुर्थ भाग) का २८ घन राजू, धूम प्रभा (पचम भाग) का ३४ घन राजू, तम. प्रभा (षष्ठ भाग) का ४० घन राजू और महातम प्रभा पृथ्वी (सप्तम भाग) का घन फल ४६ घन राजू प्रमाण है । इस प्रकार अधोलोक का सर्व घन फल (१०+१६+२२+२८+३४+४०+४६=) १९६ घन राजू प्रमाण है॥१६–२०॥

विशेष:—किसी भी क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई या मोटाई का परस्पर में गुणा करने से उस क्षेत्र का घनफल प्राप्त होता है । अथवा—मुख और भूमि को जोड़कर उसका आधा करके मोटाई एव ऊँचाई से गुणा करने पर घनफल प्राप्त होता है । यथा:—प्रथम पृथ्वी (उपरिम भाग) का पूर्व–पश्चिम व्यास $\frac{१३}{७}$ राजू है, जो भूमि स्वरूप हुआ । मुख १ राजू है, $\frac{१}{१}+\frac{१३}{७}=\frac{२०}{७}\times\frac{१}{२}=\frac{१०}{७}\times\frac{७}{१}\times\frac{७}{१}=$ १० घन राजू । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए ।

अब प्रत्येक स्वर्गो का भिन्न भिन्न घनफल कहते हैः—

सौधर्मयुगले रज्जवः सार्धैकोनविंशतिः ।
द्वितीयेयुगले सार्धसप्तत्रिंशच्च रज्जवः ॥२१॥

ब्रह्मादिद्वययुग्मे च त्रयस्त्रिंशच्च रज्जवः ।
शुक्रादियुगले सन्ति सार्धद्विसप्तरज्जवः ॥२२॥

शतारयुगलेसार्धद्वादशप्रमरज्जवः ।
आनतप्राणते सार्धदशरज्जव एव हि ॥२३॥

आरणाच्युतभूक्षेत्रे सार्धाष्ट रज्जवो मताः ।
ग्रैवेयकादिलोकान्ते ह्येकादशैव रज्जवः ॥२४॥

इति त्रिविधलोकस्य घनाकारेण पिण्डिताः ।
रज्जवः स्युस्त्रिचत्वारिंशदग्रत्रिशतप्रमाः ॥२५॥

अर्थः—सौधर्म युगल का घनफल १९½ घन राजू प्रमाण है। दूसरे युगल का ३७½ घनराजू, ब्रह्मादि दो युगलों का घनफल ३३–३३ घन राजू, शुक्र-महाशुक्र युगल का १४½ घन राजू, शतार युगल का १२½ घन राजू, आनत्त-प्राणत स्वर्ग का १०½ राजू, आरण-अच्युत युगल का ८½ घन राजू तथा ग्रैवेयकों से लेकर लोक के अन्त पर्यन्त का घनफल ११ घन राजू प्रमाण है। इस प्रकार ऊर्ध्व लोक का सर्व घनफल (१९½+३७½+३३+१४½+१२½+१०½+८½+११=) १४७ घन राजू प्रमाण है, और तीनों लोकों का एकत्र घन फल (१९६+१४७) = ३४३ घन राजू प्रमाण है ॥२१-२५॥

विशेष:—ऊर्ध्व और अधोलोक के घनफल में ही मध्यलोक गर्भित है। यह लोक का ३४३ घनराजू घनफल वातवलयों सहित है।

अब लोक और लोकोत्तर मानों का वर्णन करते हैं:—

अथ मानं प्रवक्ष्यामि नानाभेदं जिनागमात् ।
व्यासोत्सेधादिसंख्यार्थं त्रिधालोकस्य सर्वतः ॥२६॥
मानं लौकिकलोकोत्तर भेदाभ्यां मतं द्विधा ।
लोकशास्त्रानुसारेण लौकिकं विविधं भवेत् ॥२७॥
एको दश शतं तस्मात्सहस्रमयुतं ततः ।
लक्ष तथा प्रयुक्तं च कोटिर्दशगुणाः क्रमात् ॥२८॥
इत्यङ्को वर्धते युक्त्योत्तरोत्तरादिसंख्यया ।
तथा प्रस्थतुलादीनि मानानि विविधानि च ॥२९॥
कीर्तितानि बुधैर्लोके व्यवहारप्रसिद्धये ।
अन्यलोकोत्तरं मानं चतुर्भेदमिति ब्रुवे ॥३०॥
आदिमं द्रव्यमानं च द्वितीयं क्षेत्रमानकम् ।
तृतीयं कालमानं स्याच्चतुर्थं भावमानकम् ॥३१॥

अर्थ:—अब मै जिनागम से तीन प्रकार के लोक का व्यास, उत्सेध एव आयाम आदि की संख्या का निरूपण करने के हेतु नाना प्रकार के मान को कहूँगा ॥२६॥ लौकिक और लोकोत्तर के भेद से मान दो प्रकार का है। लोकशास्त्र के अनुसार (लोक व्यवहार में) लौकिक मान अनेक प्रकार का होता है ॥२७॥ यह लौकिक मानक्रम से एक, दश, सौ, हजार, दश हजार, लाख, दस लाख करोड़ और दस करोड़ आदि अको के भेद से उत्तरोत्तर सख्या रूप से वृद्धिगत होता जाता है। तथा लोकव्यवहार की सिद्धि के लिए विद्वानो द्वारा प्रस्थ एव तुला आदि नाना प्रकार के मान कहे गये है,

एवं अन्य अर्थात् लोकोत्तर मान चार प्रकार का कहा गया है ॥२८-३०॥ चार प्रकार के लोकोत्तर मानो में प्रथम द्रव्यमान, द्वितीय क्षेत्रमान, तृतीय कालमान और चतुर्थ भावमान है ॥३१॥

अब द्रव्यमान के भेद प्रभेदों को कहते हैः—

संख्योपमादि भेदाभ्यां द्रव्यमानं द्विधास्मृतम् ।
संख्यामानं त्रिधाख्यातं उपमामानमष्टधा ॥३२॥

तत्संख्यातमसंख्यातमनन्तं च भवेत् त्रिधा ।
जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदैः संख्यातकं त्रिधा ॥३३॥

परीतासंख्यनामाद्यं युक्तासंख्यं द्वितीयकम् ।
असंख्यासंख्यकं चेत्यसंख्यातं त्रिविधं मतम् ॥३४॥

जघन्यमध्यमोत्कृष्टप्रकारैस्तत्पृथग्विधम् ।
प्रत्येकं त्रिविधं स्यादसंख्यातं नवधेत्यपि ॥३५॥

परीतानन्तनामाथ युक्तानन्ताह्वयं ततः ।
अनन्तानन्तसंज्ञ चेत्यनन्तं त्रिविधं भवेत् ॥३६॥

प्रत्येकं त्रिविधं तच्च जघन्यं मध्यमाभिधम् ।
उत्कृष्टमित्यनंतस्य स्युर्भेदा नवपिण्डिताः ॥३७॥

एते पिण्डीकृता सर्वे भेदाः स्युरेकविंशतिः ।
संख्यासंख्यात्मकानन्तानां नामभिः पृथग्विधः ॥३८॥

अर्थ.—संख्या और उपमा के भेद से द्रव्यमान दो प्रकार का कहा गया है। इसमें संख्या मान तीन प्रकार का और उपमा मान अष्ट प्रकार का है ॥३२॥ सख्यात, असख्यात और अनन्त के भेद से सख्या मान तीन प्रकार का है। तथा सख्यात भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से तीन प्रकार का है ॥३३॥ परीतासख्यात, युक्तासख्यात और असख्यातासख्यात के भेद से असंख्यात तीन प्रकार का है ॥३४॥ इनमे जघन्य परीतासख्यात, मध्यम परीतासख्यात, उत्कृष्ट परीतासख्यात, जघन्ययुक्तासख्यात, मध्यम युक्तासख्यात, उत्कृष्ट युक्तासख्यात, जघन्य असख्यातासख्यात, मध्यम असख्यातासख्यात और उत्कृष्ट असख्यातासख्यात के भेद से असख्यात नौ प्रकार का है ॥३५॥ परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त के भेद से अनन्त तीन प्रकार का है ॥३६॥ तथा इन तीनो के भी भिन्न भिन्न जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से तीन तीन प्रकार होते है, इन सबको मिला देने से अनन्तानन्त के भी नौ भेद होते है ॥३७॥ संख्यात, असख्यात और अनन्त इन तीनों के पृथक् पृथक् सर्व भेदों को जोड़ देने से सख्या प्रमाण के सर्व भेद (३+९+९)=२१ होते है ॥३८॥

अब इसी संख्या प्रमाण का सविस्तार वर्णन करते हैं:—

अमीषां सुखबोधाय संस्कृतभाषया पृथक् व्याख्यानं क्रियते:—

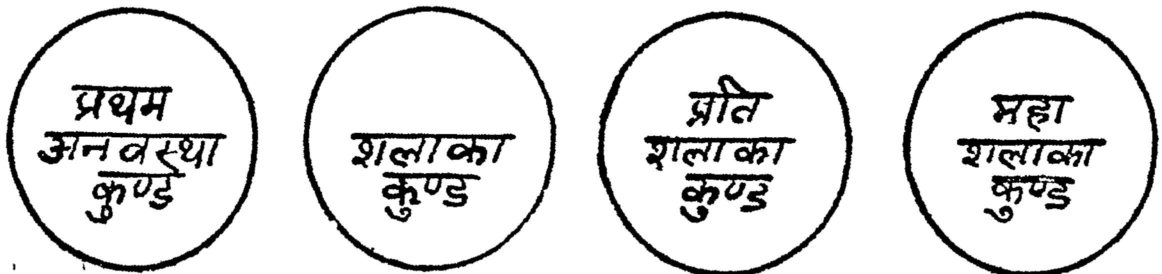
अनवस्था-शलाका-प्रतिशलाका महाशलाका नामानि लक्षयोजनवृत्त विस्ताराणि सहस्र-योजनावगाहानि चत्वारि कुण्डानि कारयेत् । ततः कश्चिद्देवो दानवो वा वृत्तसर्षपैरनवस्थाकुण्डं प्रपूरयेत् । तदनन्तरं कुण्डसर्षपान् तान् गृहीत्वा स एकं सर्षपं शलाकाकुण्डे प्रक्षिप्य शेषान् सर्षपान् एकैक रूपेण द्वीपसागरेषु प्रक्षिपेत् । एवं कृते यस्मिन् द्वीपे समुद्रे वा अन्तिमः सर्षपोनिक्षिप्तः तावन्मात्र सूच्यात्मक अनवस्थाकुण्ड कृत्वा सर्षपैः प्रपूर्य तान् सर्षपानादाय पूर्ववदेकं सर्षप शलाकाकुण्डे निक्षिप्य शेषान् सर्षपान् द्वीपवार्धिषु निक्षिपेत् । पुनः यस्मिन् द्वीपे वार्धौ वान्त्यः सर्षपो भवति तत्रैव तावन्मात्रं कुण्ड विधाय सर्षपपूर्णं कृत्वा प्राग्वदेक शलाकाकुण्डे क्षिप्त्वा शेषान् गृहीत्वा तान् सर्षपान् एकैक रूपेण द्वीपसागरेषु क्षिपेत् । अनेन विधिना अनवस्थाकुण्ड वारं वारं तावद्विवर्धयेत् यावत् शलाकाकुण्डं सर्षपैः पूर्णं भवति । पुनस्तदन्तिम द्वीपवार्धिस्थं अनवस्था कुण्ड सर्षपपूर्णं कृत्वा पूर्ववत्तान् सर्षपानादायैक सर्षप प्रतिशलाकाकुण्डे प्रक्षिप्य शेषाँस्तान् एकैक रूपेण क्रमेण द्वीपवार्द्धिषु क्षिपेत् । अनेन विधिना मुहुर्मुहुरनवस्था कुण्ड तावद्वर्धयेत् यावत् प्रतिशलाकाकुण्डं सर्षपैः पूर्णं स्यात् । ततः पूर्ववत् तदन्तिमं वर्धमानमऽनवस्थाकुण्ड सर्षपैः पूरयेत् । पुनस्तान् सर्षपान् गृहीत्वा एक सर्षप महाशलाकाकुण्डे क्षिप्त्वा शेषान् सर्षपान् एकैक रूपेण द्वीपाम्बुधिषु क्षिपेत् । एवमनवस्थाकुण्ड तावद्वर्धयेत् यावन्महाशलाका कुण्ड सर्षपै पूर्णता याति । एव कुण्डत्रये पूर्णे सति प्रवर्द्धिते द्वीपसागरस्थे अनवस्था कुण्डे यावन्तः सर्षपा. सन्ति तावन्मात्र जघन्यपरीतासख्यातं कथ्यते । जघन्यपरीता संख्यातादेकस्मिन् सर्षपेऽपनीते सर्वोत्कृष्ट सख्यातं जायते । यद् रूपद्वयं तज्जघन्य संख्यात । जघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये मध्यमं सख्यात नानाभेद स्यात् । तानि जघन्यपरीतासंख्यातरूपाणि अन्य जघन्यपरोतासख्यातरूपैर्गुणितानि कृत्वा यावत्प्रमाणानि रूपाणि तावन्मात्र जघन्ययुक्तासंख्यात-मुत्पद्यते । जघन्ययुक्तासख्यातादेकरूपेऽपनीते परीतासंख्यातमुत्कृष्टं भवति । जघन्यपरीतासख्यातोत्कृष्ट-परोतासख्यातयोर्मध्ये मध्यमपरीतासख्यातं नानाप्रकारं स्यात् । तज्जघन्ययुक्तासख्यातं अपरेण युक्तासख्यातजघन्येन गुणित्वा तत्र यावन्मात्राणि रूपाणि तावन्मात्र जघन्यासख्यातासख्यातं स्यात् । जघन्यासख्यातासंख्यातादेकस्मिन् रूपेऽपनीते उत्कृष्टयुक्तासख्यात जायते । जघन्योत्कृष्टयोर्युक्तासंख्या-तयोर्मध्ये मध्यमयुक्तासख्यातं बहुभेदभिन्नं भवति ।

तज्जघन्यासख्यातासख्यातं त्रीन् वारान् वर्गित संवर्गित च कृत्वा धर्माधर्मैकजीवलोकाकाश-प्रदेश प्रत्येकशरीर-बादर-प्रतिष्ठितवनस्पति कायिकेषु सयुक्त कृत्वा पुनरपि त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं विधाय स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानानुभागाध्यवसानोत्कृष्ट योगाविभागप्रतिच्छेदोत्सर्पिण्यव-

सर्पिणी समयान्वितं कृत्वा जघन्यपरीतानन्तं भवति। जघन्यपरीतानन्तादेकरूपेऽपनीते असंख्याता-सख्यातमुत्कृष्ट जायते । तयोर्जघन्योत्कृष्टासख्यातासख्यातयोर्मध्ये मध्यमासख्यातासख्यात नानाभेद स्यात्। जघन्यपरीतानन्तरूपाणि जघन्य परीतानन्तरूपमात्राणि परस्पर प्रगुण्य यत्प्रमाणं भवति तज्जघन्य युक्तानन्तं स्यात्। जघन्ययुक्तानन्ताद् रूपैकस्मिन्नपनीते उत्कृष्टपरीतानन्त जायते । जघन्यो-त्कृष्टयो. परीतानन्तयोर्मध्ये मध्यमपरीतानन्त नाना प्रकार स्यात् । तज्जघन्ययुक्तानन्त अपरेण जघन्ययुक्तानन्तेन गुणित जघन्यानन्तानन्त भवति । जघन्यानन्तानन्तादेकरूपेऽपनीते उत्कृष्टयुक्तानन्त-मुत्पद्यते। जघन्योत्कृष्टयुक्तानन्तयोर्मध्ये मध्यम युक्तानन्त बहुभेदमस्ति। जघन्यानन्तानन्तं त्रीन् वरान् वर्गितं सवर्गित च विधाय सिद्ध-निकोतजीव-वनस्पतिकायिक-काल-पुद्गलद्रव्याणु सर्वलोकाकाश-प्रदेशान् तन्मध्ये प्रक्षिप्य पुनरपि त्रीन् वारान् वर्गित संवर्गितं च धर्मास्तिकाया गुरुलघुगुणान् प्रक्षिप्य पुनः त्रीन् वारान् वर्गित सवर्गित च विधाय केवलज्ञानकेवलदर्शने प्रक्षिप्ते सति उत्कृष्टानन्तानन्त भवति। जघन्योत्कृष्टयोरनन्तानन्तयोर्मध्ये मध्यमानन्तानन्त विचित्रभेद स्यात्। यत्र भव्याना सख्या स्यात्। यत्र यत्रानन्तप्रमाण प्रोच्यते तत्र तत्राजघन्योत्कृष्टानन्तानन्तं ग्राह्यं । यत्राभव्याना संख्या कथ्यते तत्र जघन्ययुक्तानन्त ज्ञातव्यं । यत्रावलिका दयः समयाः प्रोच्यन्ते तत्र जघन्ययुक्तासख्यात स्यात्। सख्यातं श्रुतज्ञानस्य विषय भवति। असख्यातं अवधिज्ञानस्य प्रत्यक्ष स्यात्। अनन्त केवल-ज्ञानस्य युगपत्सकलप्रत्यक्ष सदास्ति।

अब संख्या प्रमाण का सुख से बोध कराने हेतु पृथक् पृथक् व्याख्यान करते हैं:—

एक लाख योजन व्यास और एक हजार योजन उत्सेध वाले अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका नाम के चार कुण्डो का स्थापन करना चाहिये। यथा—



इसके बाद कोई देव अथवा असुर इन्हे गोल सरसो से भरे। उसके बाद उस कुण्ड के सरसो को ग्रहण कर वह एक सरसो शलाका कुण्ड मे डाल कर शेष सरसो को एक एक द्वीप समुद्र मे डालता जावे, जिस द्वीप या समुद्र मे अन्तिम सरसो डाली जाय, उतने प्रमाण का एक दूसरा अनवस्था कुण्ड तैयार करके उसे पुन: सरसो से भरे और उन सरसो को ग्रहण कर पूर्ववत् एक सरसों शलाका कुण्ड मे डाल कर शेष सरसो को आगे आगे के द्वीप समुद्रो मे एक एक कर डाले, और जिस द्वीप या

समुद्र में अन्तिम सरसो पड़े, उतने मात्र सूची व्यास और एक हजार योजन उत्सेध वाला पुनः एक अनवस्था कुण्ड बना कर उसे सरसो से भरे, और पूर्ववत् एक सरसों शलाका कुण्ड में डाल कर शेष सरसों को एक एक कर आगे के एक एक द्वीप समुद्रो मे डालता जावे। इसी प्रकार की विधि से बार बार अनवस्था कुण्डो की वृद्धि तब तक करता जावे, जब तक कि एक लाख योजन व्यास और एक हजार योजन उत्सेध वाला शलाका कुण्ड, सरसो से पूर्ण न भर चुके। शलाका कुण्ड भरते समय जिस द्वीप या समुद्र मे अन्तिम सरसो डाली जाय, उतने क्षेत्र प्रमाण पुनः अनवस्था कुण्ड बना कर उसे सरसो से भरे और फिर उन सरसो को लेकर एक दाना प्रति शलाका कुण्ड मे डाल कर शेष को आगे के एक एक द्वीप समुद्र में डाले। इस प्रकार पुनः पुनः अनवस्था कुण्ड को तब तक बढाता जावे जब तक कि प्रति शलाका कुण्ड सरसों से पूर्ण न भर जाय। इसके बाद वृद्धिगत अन्तिम अनवस्था कुण्ड को सरसो से भरे और उन सरसों को लेकर एक दाना महा शलाका कुण्ड मे डाल कर शेष सरसो को एक एक द्वीप समुद्र मे डाले। इस प्रकार अनवस्था कुण्ड तव तक बढावे जब तक कि महाशलाका कुण्ड सरसों से पूर्ण न भर जावे। इसी क्रम से तीनो कुण्ड भर जाने पर बढते हुए जिस द्वीप या सागर पर्यन्त जो अन्तिम अनवस्था कुण्ड बना कर सरसों भरी गई है, वह सरसों जितने सख्या प्रमाण है, उतनी ही संख्या जघन्यपरीतासख्यात की कही गई है। जघन्यपरीतासख्यात के प्रमाण में से एक सरसों निकाल लेने पर जो प्रमाण बचता है वही उत्कृष्ट सख्यात का प्रमाण है, तथा दो की संख्या जघन्य संख्यात है। इन जघन्य और उत्कृष्ट संख्यात के मध्य मे मध्यम सख्यात नाना भेद वाला है। उस जघन्य परीतासख्यात के प्रमाण को जघन्यपरोतासख्यात वार जघन्य परीतासख्यात के ही प्रमाण से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है उतने प्रमाण सख्या को जघन्ययुक्तासख्यात कहते है। जघन्ययुक्तासंख्यात के प्रमाण मे से एक अक कम कर देने पर उत्कृष्ट परीतासख्यात होता है। जघन्यपरीतासख्यात और उत्कृष्ट परीतासख्यात के मध्य मे मध्यम परीतासख्यात नाना प्रकार का होता है। जघन्ययुक्तासंख्यात को एक अन्य जघन्ययुक्तासंख्यात से गुणित करने पर जितना प्रमाण प्राप्त होता है, उतना ही प्रमाण जघन्य असंख्यातासख्यात का होता है। जघन्य असख्यातासख्यात के प्रमाण मे से एक अक कम करने पर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है। जघन्य और उत्कृष्ट युक्तासंख्यात के मध्य मे मध्यमयुक्तासंख्यात अनेक भेदो वाला होता है।

जघन्य असख्यातासख्यात को तीन बार वर्गित सर्वागित करके अर्थात् शलाकात्रय की परिसमाप्ति होने पर (इसकी प्रक्रिया त्रिलोकसार गाथा न० ३८, ३९, ४० की टीका में देखना चाहिए) जो मध्यम असख्यातासंख्यात स्वरूप राशि उत्पन्न हो उसको (१) धर्म द्रव्य (२) अधर्म द्रव्य (३) एक जीव द्रव्य (४) लोकाकाश के प्रदेश (५) अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पति और (६) बादर प्रतिष्ठित वनस्पति जीवों के प्रमाण से मिलाकर पुनः पूर्वोक्त रीत्या तीन बार वर्गित-

संवर्गित करने पर मध्यम असख्यातासंख्यात रूप जो महाराशि उत्पन्न हो उसमे (१) स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान (जो कल्पकाल के समयों से असख्यातगुणे है) (२) अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान (३) योग के उत्कृष्ट अविभाग-प्रतिच्छेद और (४) उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी स्वरूप कल्प काल के समयो का प्रमाण मिलाने पर (पुन पूर्वोक्त रीत्या तीन बार वर्गित-संवर्गित करने पर) जो राशि उत्पन्न हो वह जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है। जघन्य परीतानन्त के प्रमाण में से एक अंक निकाल लेने पर उत्कृष्ट असख्यातासख्यात का प्रमाण होता है। जघन्य परीतानन्त के प्रमाण को जघन्य परीतानन्त वार जघन्य परीतानन्त के प्रमाण से गुणित करने पर जो लब्ध उत्पन्न होता है, वह जघन्ययुक्तानन्त का प्रमाण है। जघन्य युक्तानन्त के प्रमाण मे से एक अङ्क कम कर देने पर उत्कृष्ट परीतानन्त का प्रमाण होता है। जघन्य परीतानन्त और उत्कृष्ट परीतानन्त के मध्य में मध्यम परीतानन्त अनेकानेक प्रकार वाला है। जघन्ययुक्तानन्त के प्रमाण को एक अन्य जघन्य युक्तानन्त के प्रमाण से गुणित कर देने पर जघन्य अनन्तानन्त होता है जघन्य अनन्तानन्त के प्रमाण मे से एक अंक निकाल लेने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त का प्रमाण उत्पन्न होता है। जघन्य और उत्कृष्ट युक्तानन्त के मध्य मे मध्यम युक्तानन्त अनेकानेक भेद वाला होता है। जघन्य अनन्तानन्त रूप महाराशि को तीन बार वर्गित-सर्वगित करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसमे (१) सिद्ध राशि (२) निगोद राशि (३) वनस्पतिकायिक राशि (४) सम्पूर्ण काल के समयो स्वरूप काल राशि (५) पुद्गलद्रव्य रूप सम्पूर्ण अणुओं की राशि और सम्पूर्ण अलोकाकाश के प्रदेशो का क्षेपण करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे पुन: तीन बार [1]वर्गित-सर्वगित करना चाहिए। इस प्रक्रिया से जो महाराशि उत्पन्न हो उसमे धर्म द्रव्य (और अधर्म द्रव्य) के अगुरुलघु गुण के अविभागी-प्रतिच्छेदों को मिला कर पुन:

---

१ जिस राशि को वर्गित-सवर्गित करना हो उसे शलाका, विरलन और देय रूप से तीन जगह स्थापित कर लेना चाहिये। पश्चात् विरलन राशि का एक एक अक विरलन कर, उस प्रत्येक अक पर देय राशि रख कर परस्पर गुणा करके शलाका राशि मे से एक घटा देना चाहिए। परस्पर के गुणन से उत्पन्न हुई राशि का पुन विरलन कर और उसी राशि का देय देकर परस्पर गुणा करने के बाद शलाका राशि मे से दूसरी वार एक अक और घटा देना चाहिए। इसी प्रकार पुन: पुन: विरलन, देय, गुणन और ऋण रूप क्रिया तव तक करना चाहिए जब तक कि शलाका राशि समाप्त न हो जाय (यह एक बार वर्गित सवर्गित हुआ)। इतनी प्रक्रिया बाद जो महाराशि उत्पन्न हो उसे पूर्वोक्त प्रकार विरलन, देय और शलाका रूप से तीन जगह स्थापित कर, विरलन राशि का विरलन कर उस पर देय राशि देय रूप रख कर परस्पर मे गुणा कर शलाका राशि मे से एक अक घटा देना चाहिए। यह प्रक्रिया पुन: पुन तव तक करना चाहिए जब तक शलाका राशि समाप्त न हो जाय (यह दूसरी बार वर्गित सवर्गित हुआ)। इस द्वितीय शलाका राशि के समाप्त होने पर जो महाराशि उत्पन्न हो उसकी पुन पुन. उपर्युक्त प्रक्रिया तब तक करना चाहिए, जब तक कि एक एक अक घटाते हुए महाराशि रूप शलाका राशि की परिसमाप्ति न हो जाय (यह तृतीय बार वर्गित-सवर्गित हुआ)।

तीन बार वर्गित-संवर्गित करना चाहिए। इस बार की प्रक्रिया से जो विशद् महाराशि उत्पन्न हो [उसे केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेदों मे से घटा देना चाहिए, तथा जो अवशेष रहे, उस शेष को उसी उत्पन्न हुई विशद् महाराशि मे मिला देने से केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद प्रमाण उत्कृष्ट अनन्तानन्त होता है] उसे केवलज्ञान और केवलदर्शन के अविभागी प्रतिच्छेदो मे मिला देने पर उत्कृष्ट अनन्तानन्त का प्रमाण होता है। [किन्तु यह प्रमाण केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेदों से वृद्धिगत (बढ़ जाने) हो जाने के कारण उत्कृष्ट अनन्तानन्त के प्रमाण को पार कर जायगा, जो आगम विरुद्ध होगा] जघन्य अनन्तानंत और उत्कृष्ट अनन्तानन्त के मध्य में मध्यम अनन्तानन्त होता है, जो अनन्तो प्रकार का है। भव्यों की सख्या इसी मध्यम अनन्तानन्त प्रमाण है। जहाँ जहाँ अनन्त का प्रमाण कहा जाता है, वहाँ वहाँ अजघन्य एवं अनुत्कृष्ट अनन्तानन्त ही ग्राह्य है। जहाँ अभव्यो की सख्या कही गई है वहाँ जघन्य युक्तानन्त जानना चाहिए। अर्थात् अभव्य राशि जघन्य युक्तानन्त प्रमाण है। जहाँ आवली आदि के समय कहे गये है, वहाँ जघन्य युक्तासंख्यात जानना चाहिए।

सख्यात का विषय (प्रमाण) श्रुतज्ञान गम्य है, असख्यात का विषय अवधिज्ञान गम्य है और अनन्त (युक्तानन्त आदि) का विषय सकल प्रत्यक्ष स्वरूप केवलज्ञान का विषय है। अर्थात् मात्र केवलज्ञान गम्य है।

अब उपमा मान के आठ भेदों के नाम कहते हैं:—

पल्योऽथ सागरः सूच्यङ्गुलं च प्रतराङ्गुलम्।
घनाङ्गुलं जगच्छ्रेणिर्लोकप्रतर एव हि ॥३९॥
लोकोऽमी चोपमामानभेदा अष्टौ मताः श्रुते।
अमीषां विस्तराख्यानं सुखबोधाय कथ्यते ॥४०॥

अर्थः—पल्य, सागर, सूच्यङ्गुल. प्रतराङ्गुल, घनाङ्गुल, जगच्छ्रेणी जगत्प्रतर और लोक उपमा मान के ये आठ भेद आगम मे कहे गये है। सुख पूर्वक बोध प्राप्त करने के लिए अब इन आठों का विस्तार से वर्णन करते है ॥३९-४०॥

अब व्यवहार पल्य और उसके रोमों की संख्या कहते हैं:—

सर्वत्र योजनव्यासो योजनैकावगाहकः।
समवृत्तो महान् कूपः खन्यते पल्य सिद्धये ॥४१॥

सप्ताहोरात्रजातानां मेषबालकजन्मिनाम् ।
रोमखण्डैरखण्डैस्तं पूरयेत्सूक्ष्मखण्डितैः ॥४२॥

एकैकं रोमखण्डं तद्वर्षाणां च शते शते ।
गते सति ततः कूपान्निः सार्यते विचक्षणैः ॥४३॥

यदा स जायते रिक्तः कालेन महता तदा ।
तत्कालस्य प्रमाणं यत्स पल्यो व्यावहारिकः ॥४४॥

चतुरेकत्रिचत्वारः पञ्चद्विषट्त्रिशून्यकाः ।
त्रिशून्याष्टद्विशून्यं त्र्येकसप्तसप्त सप्तकाः ॥४५॥

चतुर्नवाङ्कपञ्चैक द्वयाङ्कैक नवद्वयाः ।
सप्तविंशतिरेतेऽङ्काः शून्यान्यष्टादशास्फुटम् ॥४६॥

अमीभिः पञ्चचत्वारिंशदङ्कैः श्रीजिनाधिपैः ।
तद् व्यवहारपल्यस्य रोमाणां गणनोदिता ॥४७॥

अर्थः—पल्य की सिद्धि के लिए एक योजन (चार प्रमाण कोस) चौड़ा और एक योजन गहरा एक गोल गड्ढा खोदना चाहिए ॥४१॥ तथा उसे (उत्तम भोगभूमि में) सात दिन रात के भेड़-बच्चों के रोमो को ग्रहण कर जिसका दूसरा खण्ड न हो सके ऐसे अखण्ड और सूक्ष्म रोम खण्डो के द्वारा उस गड्ढे को भरे तथा प्रत्येक सौ वर्ष व्यतीत होने पर एक-एक रोम खण्ड निकाले इस प्रकार सौ सौ वर्ष मे एक-एक रोम निकालते हुए जितने काल में वह गड्ढा खाली हो जाय उतने काल (के समयो की सख्या) को विद्वानो ने व्यवहार पल्य कहा है ॥४२-४४॥ ४१३४५२६३०३०८२०३ १७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००० इस प्रकार २७ अको को १८ शून्यों से युक्त करने पर ४५ अङ्क प्रमाण व्यवहार पल्य के रोमो की सख्या श्री जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कही गई है अर्थात् प्रत्येक सौ वर्ष बाद एक एक रोम के निकाले जाने पर जितने काल मे समस्त रोम समाप्त हो, उतने काल के समय ही व्यवहार पल्य के समयो की सख्या है ॥४६-४७॥

अब उद्धार पल्य और द्वीप समुद्रों का प्रमाण कहते हैं:—

असंख्यकोटिवर्षाणां समयैर्गुणिताश्च ते ।
रोमांशावर्धिताः सर्वे भवन्ति सख्यवर्जिताः ॥४८॥

वर्षैकैकशतेनैव रोमराशेः पृथक् क्रमात् ।
एकैकं ह्रियते रोमं तदन्तं यावदञ्जसा ॥४९॥

एवं कृते भवेद्यावत्कालः केवलिगोचरः ।
तावत्कालप्रमाणं यदुद्धारपल्य एव सः ॥५०॥

गतासूद्धारपल्यानां द्विपञ्चकोटिकोटिषु ।
द्वीपाब्धिसंख्य हेतुश्च जायेतोद्धारसागरः ॥५१॥

अर्थः—व्यवहार पल्य के वे रोमांश असख्यात कोटि वर्षो के समयों द्वारा गुणित होकर वृद्धि को प्राप्त हुये असंख्यात हो जाते है अर्थात् उन रोमांशो को असख्यात कोटि वर्षो के समयों से गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, वह असख्यात होता है ॥४८॥ उस असंख्यात रोमों की राशि में से क्रम से प्रत्येक सौ वर्ष बाद एक एक रोम निकालने पर जितना काल होता है, केवलि गोचर उतना ही काल उद्धार पल्य के काल का प्रमाण है ॥४९-५०॥ इसी प्रकार के २५ कोटाकोटी उद्धार पल्यो अर्थात् २½ उद्धार सागरो के जितने समय है, उतनी ही द्वीप समुद्रो की सख्या है। द्वीप समुद्रों की संख्या बतलाने के लिए उद्धार पल्य का कथन किया गया है ॥५१॥

अब आधार (अद्धा) पल्य एवं आधार सागर का प्रमाण कहते हैं:—

उद्धारपल्यएवासौ शताब्दसमयैः पुनः ।
गुणितो जायते विद्भिराधारपल्य उत्तमः ॥५२॥

दशस्वाधारपल्यानां गतासु कोटिकोटिषु ।
जायते सकलोत्कृष्ट आधारसागरोपमः ॥५३॥

कालायुः कर्मणां यत्र वर्ण्यन्ते स्थितयो बुधैः ।
तत्रैतौ पल्यवार्धीस्त आधाराधारनामकौ ॥६४।

अर्थः—एक उद्धार पल्य के सम्पूर्ण रोमों को १०० (असंख्यात) वर्षों के समयों से गुणित करने पर जो संख्या प्राप्त हो वही संख्या विद्वज्जनो ने उत्कृष्ट आधार (अद्धा) पल्य की कही है ॥५२॥ १० कोटाकोटी आधार पल्यो का एक उत्कृष्ट आधार (अद्धा) सागर होता है ॥५३॥ विद्वानो के द्वारा उत्सर्पिणी आदि कालों का प्रमाण, आयु एवं कर्मों की स्थिति का प्रमाण इन्हीं आधार पल्य तथा आधार सागर से किया गया है ॥५४॥

अब सूच्यङ्गुल से लेकर लोक पर्यन्त का प्रमाण या लक्षण कहते हैः—

सूच्यङ्गुलमुच्यतेः—

आधारपल्योपममार्धार्धेन तावत्प्रकर्तव्य यावद् रोमैक तिष्ठेत् । तत्र यावन्त्यर्धच्छेदनानि आधारपल्योपमस्य तावन्मात्राधारपल्यानि परस्परगुणितानि यत्प्रमाणं भवति तावन्मात्रा आकाश-प्रदेशाः ऊर्ध्वमावल्याकारेण रचिताः, तेषां नभ प्रदेशाना यत्प्रमाण तत्सूच्यङ्गुल स्यात् । तत्सूच्यङ्गु-लमपरेण सूच्यङ्गुलेन गुणित प्रतराङ्गुल भवति । प्रतराङ्गुल अपरेण सूच्यङ्गुलेन गुणितं घना-ङ्गुलं कथ्यते । पञ्चविंशतिकोटीकोटीनामुद्धार पल्याना यावन्ति रूपाणि लक्षयोजनार्धच्छेदनानि च रूपाधिकानि । एकैक द्विगुणीकृतानि अन्योन्याभ्यस्तानि यत्प्रमाण सा रज्जुः । सप्तभिर्गुणिता रज्जू जगच्छ्रेणिरुच्यते । जगच्छ्रेणिरपरया जगच्छ्रेण्या गुणिता लोकप्रतर स्यात् । लोकप्रतरं जगच्छ्रेण्या गुणित लोकः कथ्यते ।

अर्थः—आधार पल्योपम के इस रीति से अर्ध अर्ध भाग करना चाहिए कि अन्त में मात्र एक रोम रहे । यहाँ आधार पल्य के जितने अर्धच्छेद प्राप्त हो उतनी सख्या बार आधार पल्यो का परस्पर मे गुणा करने से जो लब्ध आवे, उतनी सख्या प्रमाण आकाश प्रदेशो की ऊर्ध्व पक्ति के आकार रचना करना चाहिए । उन आकाश प्रदेशो की जितनी सख्या है, वही सूच्यगुल का प्रमाण है । इस सूच्यङ्गुल को अन्य सूच्यङ्गुल से गुणित करने पर प्रतराङ्गुल होता है और प्रतराङ्गुल सूच्यगुल से गुणित करने पर घनाङ्गुल की प्राप्ति होती है ।

२५ कोटाकोटी उद्धार पल्य के जितने समय है, उनमे एक लाख योजन के अर्धच्छेदों को जोड कर अन्य एक अङ्क और मिला देने से जो प्रमाण आवे उतनी बार दो दो रख कर उन दो दो को परस्पर मे गुणित करने पर जो राशि उत्पन्न होती है, वही राजू का प्रमाण है ।

विशेषार्थ —मध्यलोक पूर्व-पश्चिम एक राजू है । उस एक राजू मे समस्त द्वीप समुद्र है, जिनका प्रमाण २५ कोटाकोटी उद्धार पल्य के समयो के बराबर है, किन्तु प्रत्येक द्वीप व समुद्र परस्पर मे एक दूसरे से दुगुणे दुगुणे होते गये है, अत द्वीप समुद्रो की जो सख्या है, वह एक राजू के अर्धच्छेदो से कम है, क्योकि प्रारम्भ मे एक लाख योजन व्यास वाला जम्बूद्वीप है, अतः इस एक लाख योजन के अर्धच्छेद द्वीप-समुद्रो की सख्या मे जोड देना चाहिए । लवण समुद्र मे दो अर्धच्छेद पड़ते हैं, इसलिए एक अङ्क और मिलाया गया है । इस प्रकार द्वीप-समुद्रो की सख्या (२५ कोटाकोटी उद्धार पल्य के समयो) मे एक लाख योजन के अर्धच्छेद व एक अङ्क और मिलाने से एक राजू के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं । जितने अर्धच्छेद है उतने दो दो के अङ्क रख कर परस्पर गुणा करने से राजू का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

रज्जू को ७ से गुणित करने पर जगच्छ्रेणी होती है। जगच्छ्रेणी को अन्य जगच्छ्रेणी से गुणित करने पर जगत् प्रतर और जगतप्रतर को जगच्छ्रेणी से गुणित करने पर लोक का प्रमाण होता है।

अब अणु का लक्षण कह कर अंगुल पर्यन्त मापों का प्रमाण कहते हैं:—

स प्रदेशोऽप्यभेद्यस्तु मूर्तोनेन्द्रियगोचरः।
स्पर्शादिगुणसंयुक्तः पुद्गलाणुरिहोच्यते ॥५५॥
उत्संज्ञासंज्ञकस्कन्धोऽनन्तानन्ताणुभिर्भवेत्।
संज्ञासंज्ञात्मकस्कन्धोऽष्टभिस्तैः कीर्तितो जिनैः ॥५६॥
स्कन्धैस्तैरष्टभिः प्रोक्तो व्यवहाराणुरागमे।
अष्टभिर्व्यवहाराणुभिस्त्रसरेणुरुच्यते ॥५७॥
रथरेणुरिहाख्यातोऽप्यष्टभिस्त्रसरेणुभिः।
रथरेण्वष्टभिः प्रोक्तो बालैकः आर्यदेहिनाम् ॥५८॥
उत्कृष्टभोगभूजातानां तैरष्टशिरोरुहैः।
केशैको मध्यमाभोगभूमिभवार्यजन्मिनाम् ॥५९॥
एतैर्बालाष्टभिः ख्यातो वालैकः पिण्डितैर्बुधैः।
जघन्यभोगभूभागोत्पन्नार्याणां शिरोरुहैः ॥६०॥
तैरष्टभिश्च बालैकः कर्मभूमिजदेहिनाम्।
कर्मभूमिनृबालाष्टकैर्लिक्षैका निगद्यते ॥६१॥
लिक्षाष्टभिस्तुयूकैका यूकोष्टभिर्यवो मतः।
यवोदराष्टकः प्रोक्तं पर्वमानं गणाधिपैः ॥६२॥

अर्थः—जो पुद्गल द्रव्य एक प्रदेशी हो, मूर्तिक हो, इन्द्रियों से अग्राह्य हो तथा स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से युक्त हो उसे पुद्गल अणु कहते है ॥५५॥ ऐसे अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं से एक उत्सज्ञासंज्ञक स्कन्ध उत्पन्न होता है। जिनेन्द्र भगवान ने आठ उत्सज्ञासज्ञकों का एक संज्ञासंज्ञात्मक स्कन्ध कहा है ॥५६॥ आगम मे आठ सज्ञासज्ञात्मक स्कन्ध का एक व्यवहाराणु (त्रुटिरेणु) और आठ त्रुटिरेणुओं का एक त्रसरेणु कहा गया है ॥५७॥ आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु, और आठ रथरेणुओं का उत्तम भोगभूमिज मनुष्यों का एक बाल होता है ॥५८॥ उत्कृष्ट भोगभूमिज

मनुष्यो के आठ वालो का मध्यम भोगभूमिज मनुष्यों का एक बाल होता है ।।५९।। मध्यम भोगभूमिज आठ वालों का जघन्य भोगभूमिज मनुष्यो का एक वाल होता है ।।६०।। जघन्य भोगभूमिज आठ वालो का कर्मभूमिज मनुष्यो का एक वाल होता है, कर्मभूमिज मनुष्यो के आठ बालों की एक लिक्षा होती है ।।६१।। आठ लिक्षाओ की एक जूँ, आठ जूँ का एक यव और आठ यवो का एक अंगुल होता है, ऐसा गणधरादि देवो द्वारा कहा गया है ।।६२।।

अब अंगुलों के भेद और उनका प्रमाण दर्शाते हैः—

उत्सेधाङ्गुलमेवाद्यं प्रमाणाङ्गुलसंज्ञकम् ।
आत्माङ्गुलमिति प्रोक्तमङ्गुलं त्रिविधं जिनैः ।।६३।।
प्रागुक्तमादिमं पञ्चशताभ्यस्तं मनीषिभिः ।
उत्सेधाङ्गुलमेवैतत्प्रमाणाङ्गुलमुच्यते ।।६४।।
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः षट्कालोत्पन्नजन्मिनाम् ।
वृद्धिह्रासशरीराणां बहुधात्माङ्गुलं भवेत् ।।६५।।

अर्थः—आठ जौ (यव) से जो अंगुल उत्पन्न होता है उसके श्री जिनेन्द्र देव ने उत्सेधाङ्गुल, प्रमाणाङ्गुल और आत्माङ्गुल के भेद से तीन प्रकार कहे हैं ।।६३।। ऊपर जो ८ जौ का एक अगुल कहा गया है, वही उत्सेधागुल या व्यवहारागुल कहलाता है। उस उत्सेधागुल मे ५०० का गुणा करने से प्रमाणागुल होता है, ऐसा विद्वानो ने कहा है ।।६४।। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी सम्बन्धी छह कालो मे ह्रस्व, दीर्घ अवगाहना को धारण कर जन्म लेने वाले मनुष्यो के अंगुल को आत्माङ्गुल कहते है ।।६५।।

अब किन अंगुलों से किन किन पदार्थो का माप किया जाता है, इसका व्याख्यान करते हैः—

चतुर्गतिसमुद्भूतप्राणिनां वपुषां बुधैः ।
उत्सेधाद्या निरूप्यन्ते उत्सेधाङ्गुलमानकैः ।।६६।।
द्वीपाब्धिक्षेत्रदेशानां नदीद्रहादिभूभृताम् ।
अकृत्रिमजिनागारादीनां व्यासोदयादयः ।।६७।।
प्रमाणाङ्गुलमानैश्च कीर्तिताः श्रीगणाग्रगैः ।
ध्वजच्छत्ररथावासघटशय्यासनादिषु ।।६८।।

प्रमाणं देहिनां ख्यातमात्माङ्गुलैरनेककैः ।
चतुर्विंशाङ्गुलैरेको हस्तो जायेत जन्मिनाम् ॥६९॥

अर्थ—चारों गतियों में उत्पन्न होने वाले जीवो के शरीर का उत्सेध उत्सेधांगुल के द्वारा किया जाता है, ऐसा विद्वानो ने कहा है ॥६६॥ द्वीप, समुद्र, क्षेत्र, देश, नदी, द्रह आदि, कुलाचल और अकृत्रिम जिन चैत्यालयों आदि का उत्सेध, आयाम एवं व्यास आदि प्रमाणांगुल से किया जाता है, ऐसा गणधर देवों के द्वारा कहा गया है। ध्वज, छत्र, रथ, प्राणियो के आवास, घट और शय्या आदि का प्रमाण आत्मांगुल से किया जाता है। मनुष्यो के २४ अगुलो का एक हाथ होता है ॥६७-६९॥

अब क्षेत्रमान का ज्ञापन कराने के लिए माप का प्रमाण कहते हैं:—

चतुःकरैर्धनुः प्रोक्तं धनुषां द्विसहस्रकैः ।
क्रोश एक इहाम्नातश्चतुःक्रोशैश्च योजनम् ॥७०॥
तस्मात्साध्यं च पल्याद्यमुपसामानमञ्जसा ।
क्षेत्रमानमिति प्रोक्तं पूर्वशास्त्रानुसारतः ॥७१॥

अर्थः—२४ अंगुलों का एक हाथ और चार हाथ का एक धनुष होता है । दो हजार धनुष का एक कोश और चार कोश का एक योजन होता है ॥७०॥ इन पल्य, सागर, सूच्यङ्गुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक का साधन इन्ही योजन आदि से होता है। इसप्रकार परम्परागत शास्त्रानुसार क्षेत्रमान का प्रमाण कहा गया है ॥७१॥

अब काल मान के प्रमाण का दिग्दर्शन कराते हैः—

कालमानमतो वक्ष्ये यथाम्नातं जिनाधिपैः ।
लोकाकाशप्रदेशेषु कालाणवः पृथक् पृथक् ॥७२॥
तिष्ठन्त्येकैक रूपेणा संख्याता रत्नराशिवत् ।
वर्तनालक्ष णंयेषां जीवपुद्गलयोर्द्वयो. ॥७३॥
तं कालाणुं लघूल्लंघ्य पुद्गलाणुं प्रयात्यपि ।
यावत् कालप्रमाणेन स कालः समयाह्वयः ॥७४॥
असंख्यसमयैरेकावलिः प्रोक्ता जिनागमे ।
संख्यावलिभिरुच्छ्वासः स्तोक उच्छ्वास सप्तभिः ॥७५॥

सप्तस्तोकैर्लवैका सार्धाष्टत्रिंशत्प्रमाणकैः ।
लवानां घटिकैका च मुहूर्तो द्विघटीभवः ॥७६॥

क्षणैकोनो मुहूर्तः स्याद् भिन्नमुहूर्तनामकः ।
तस्मादावल्यसंख्येयभागो यावच्च हानितः ॥७७॥

तावदन्तर्मुहूर्तोऽत्र नानाभेदो निगद्यते ।
त्रिंशन्मुहूर्तकैः सद्भिरहोरात्रं मतं श्रुते ॥७८॥

त्रिंशद्दिनैर्भवेन्मासः षण्मासैरयनं स्मृतम् ।
द्व्ययनाभ्यां भवेद् वर्षं पञ्चवर्षैर्युगं मतम् ॥७९॥

अर्थः—जिनेन्द्रो के द्वारा जैसा कहा गया है, काल मान का वैसा ही वर्णन मैं करता हूँ। लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर रत्नो की राशि के सदृश एक एक काल द्रव्य के अणु पृथक् पृथक् स्थित है और वे असंख्यात है ॥७२॥ उन कालाणुओ अर्थात् काल द्रव्य का वर्तना लक्षण है, इसी के निमित्त से जीव और पुद्गल मे परिणमन अर्थात् नई पुरानी आदि अवस्थाएँ होती हैं । पुद्गल का सबसे छोटा अणु उस कालाणु को जितने काल मे उल्लघन करता है, उतने काल प्रमाण को समय कहते है ॥७३–७४॥ जिनागम मे ऐसे ही असख्यात (जघन्ययुक्तासख्यात) समयों की एक आवली कही गई है । सख्यात आवलियो का एक उच्छ्वास और सात उच्छ्वासो का एक स्तोक होता है ॥७५॥ सप्त स्तोको का एक लव, ३८½ लवो की एक घडी और दो घडी का एक मुहूर्त होता है ॥७६॥ एक क्षण (१८ निमेषो की एक काष्टा, ३० काष्टा की एक कला और ३० कला का एक क्षण होता है) कम मुहूर्त (१२ क्षणो का एक मुहूर्त) को भिन्न मुहूर्त कहते है । इससे कम अर्थात् आवली के असख्यातवें भाग पर्यन्त अन्तर्मुहूर्त कहलाता है । यह अन्तर्मुहूर्त अनेक भेदों वाला कहा गया है ॥ आगम मे ३० मुहूर्त का एक दिन कहा गया है । ३० दिनो का एक मास, ६ मासो का एक अयन, दो अयनो का एक वर्ष और ५ वर्षों का एक युग होता है ॥७७–७९॥

अब व्यवहार काल के भेदों में से पूर्वांग आदि के लक्षण कहते हैं:—

अथ पूर्वाङ्गपूर्वादीनां प्रमाणं निरूप्यते ।
स्यात् पूर्वाङ्गैकमब्दानां लक्षैश्चतुरशीतिकैः ॥८०॥

पूर्वाङ्गं गुणितं पूर्वं लक्षैश्चतुरशीतिकैः ।
पूर्वं चतुरशीतिघ्नं पर्वाङ्गमुच्यते बुधैः ॥८१॥

लक्षैश्चतुरशीत्या तद् वर्गितं पर्वमिष्यते।
पर्वं चतुरशीत्या नयुताङ्गं गुणितं भवेत् ॥८२॥
नयुतं ताडितं तत् स्याल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
हतं चतुरशीत्या तत् कुमुदाङ्गं निरूपितम् ॥८३॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद् गुणितं कुमुदं भवेत्।
मतं चतुरशीत्या हि पद्माङ्गं तच्च ताडितम् ॥८४॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद्धतं पद्मं जिनागमे।
तद्धतं नलिनाङ्गं स्यात्संख्यैश्चतुरशीतिकैः ॥८५॥
गुणितं नलिनं तत्स्याल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
हतं चतुरशीत्या तत्कमलाङ्गं स्मृतं बुधैः ॥८६॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद् वर्गितं कमलं भवेत्।
हतं चतुरशीत्या तत् त्रुटिताङ्गं निगद्यते ॥८७॥
लक्षैश्चतुरशीत्यैतद् गुणितं त्रुटितं मतम्।
हतं चतुरशीत्या तदटटाङ्गाभिधं भवेत् ॥८८॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद् गुणितं वाटटाख्यकम्।
हतं चतुरशीत्यैत दममाङ्गाभिधं स्मृतम् ॥८९॥
अममं गुणितं तत् स्याल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
तस्याच्चतुरशीत्या गुणितं हाहाङ्गसंज्ञकम् ॥९०॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद् हतं हाहाख्यमुच्यते।
भवेच्चतुरशीत्यां तद् हूहांगं गुणितं बुधैः ॥९१॥
लक्षैश्चतुरशीत्यां तद्धतं हूहू समाह्वयम्।
भवेच्चतुरशीत्या वर्गितं विन्दुलताङ्गकम् ॥९२॥
हतं विन्दुलताख्यं तल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
हतं चतुरशीत्या तन्महालताङ्गमुच्यते ॥९३॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद्धतं महालताह्वयम्।
लक्षैश्चतुरशीत्या तद्धतं शिरः प्रकम्पितम् ॥९४॥

शिरः प्रकम्पितं नूनं लक्षैश्चतुरशीतिकैः ।
वर्गितं जायते चैव हस्तप्रहेलिकाभिधम् ।।९५।।

लक्षैश्चतुरशीत्या च हस्तप्रहेलिकाभिधम् ।
गुणितं श्रीजिनैः प्रोक्तामचलात्मकसंज्ञकम् ।।९६।।

पिण्डीकृता इमे सर्वेऽङ्का एकत्रिंशदञ्जसा ।
पदानां संख्यया प्रोक्ता अन्योन्यगुणनोद्भवा ।।९७।।

षष्ट्यङ्का निखिलाः सन्ति शून्यानि नवतिः स्फुटम् ।
सर्वैकत्रीकृताः अङ्काः सार्धशतं च संख्यया ।।९८।।

अर्थः—अब पूर्वांग एव पूर्व आदि का प्रमाण कहते हैं। चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है ।।८०।। पूर्वांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक पूर्व (७०५६०००००००००० वर्ष) होता है। पूर्व मे ८४ का गुणा करने से एक पर्वाङ्ग होता है ऐसा विद्वानो ने कहा है ।।८१।। पर्वाङ्ग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक पर्व और पर्व को ८४ से गुणित करने पर एक नयुताङ्ग होता है ।।८२।। नयुताङ्ग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक नयुत और नयुत को ८४ से गुणित करने पर एक कुमुदाङ्ग कहा गया है ।।८३।। कुमुदाङ्ग को ाख से गुणित करने पर एक कुमुद और कुमुद को ८४ से गुणित करने पर एक पद्माङ्ग होता है ।।८४।। पद्माङ्ग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक पद्म और पद्म को ८४ से गुणित करने पर एक नलिनाङ्ग होता है, ऐसा जिनागम मे कहा है ।।८५।। नलिनाङ्ग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक नलिन और नलिन को ८४ से गुणित करने पर एक कमलाग होता है, ऐसा विद्वानो के द्वारा कहा गया है ।।८६।। कमलाग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक कमल और कमल को ८४ से गुणित करने पर एक त्रुटिताग होता है ।।८७।। त्रुटिताग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक त्रुटित और त्रुटित को ८४ से गुणित करने पर अटटाग होता है ।।८८।। अटटाग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक अटट और अटट को ८४ से गुणित करने पर एक अममाग होता है ।।८९।। अममाग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक अमम और अमम को ८४ से गुणित करने पर एक हाहाग होता है ।।९०।। विद्वानो ने कहा है कि हाहांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक हाहा और हाहा को ८४ से गुणित करने पर एक हूहाग होता है ।।९१।। हूहाग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक हूहू और हूहू को ८४ से गुणित करने पर एक विन्दुलताग होता है ।।९२।। विन्दुलताग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक विन्दुलता और विन्दुलता को ८४ से गुणित करने पर एक महालताग होता है ।।९३।। महालताग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक महालता और महालता को ८४ लाख से गुणित करने पर एक शिर. प्रकम्पित होता

है ।।९४।। शिरः प्रकम्पित को ८४ लाख से गुणित करने पर हस्तप्रहेलिका और हस्तप्रहेलिक को ८४ लाख से गुणित करने पर एक अचलात्म होता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।।९५-९६।।

इन सब अङ्कों को एकत्रित करने पर ३१ पद होते है, पदों की उक्त संख्या को परस्पर गुणित करने पर कुल साठ अंक और ९० शून्य होते है, तथा इन सर्व अङ्कों और शून्यों को एकत्रित करने पर एक सौ पचास (१५०) अङ्कों की संख्या होती है ।।९६-९७।।

अब भाव मान का वर्णन करते है:—

अपर्याप्तनिकोतानां ज्ञानमात्रं यदस्ति तत् ।
जघन्यं सर्वथोत्कृष्टं ज्ञानं केवलिनां परम् ।।९९।।

मध्यमं बहुधा ज्ञानं स्याच्चतुर्गति जन्मिनाम् ।
भावमानमिति ज्ञेयं ज्ञानादिगुणसम्भवम् ।।१००।।

एते लोकोत्तरस्यैव भेदाश्चत्वार ईरिताः ।
सिद्धान्तार्थं परिज्ञाय श्रीतीर्थेशमुखोद्भवाः ।।१०१।।

अर्थः—सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव को जो ज्ञान है वह सर्व जघन्य भाव मान है, तथा केवली भगवान का केवलज्ञान सर्वोत्कृष्ट भाव मान है ।।९९।। चारों गतियों मे स्थित जीवों का ज्ञान मध्यम भाव मान है जो अनेक प्रकार का है । इस प्रकार ज्ञानादि गुणो से सम्भवित भाव मान जानना चाहिए ।।१००।। श्री तीर्थंकर देव के मुख से उत्पन्न सिद्धान्त के अर्थ को जानने के लिए ये लोकोत्तर चार मान कहे गये है ।।१०१।।

आगे इस ग्रन्थ रचना का आधार कहते हैं:—

एष ग्रन्थवरो जिनेन्द्रमुखजः सिद्धान्तसारादिक—
दीपोऽनेकविधस्त्रिलोकसकल प्रद्योतने दीपकः ।
नानाशास्त्रपरान् विलोक्य रचितस्त्रैलोक्यसारादिकान्
भक्त्या श्रीसकलादि कीर्तिगणिना संघैगुणैर्नन्दतु ।।१०२।।

न कीर्तिपूजाप्रवरेच्छयायं न वा कवित्वाद्यभिमानयोगात् ।
किन्त्वात्मशुद्ध्यै परमार्थबुद्ध्या ग्रन्थः कृतः स्वान्यहिताय मुक्त्यै ।।१०३।।

अस्मिन् सिद्धान्तसारे त्रिभुवनकथके ज्ञानगूढार्थ पूर्णे ।
यत् किञ्चित् सन्धिमात्राक्षरपदरहितं प्रोदितं स्वल्पबुद्धया ।
अज्ञानाच्च प्रमादादशुभविधिवशादागमे वा विरुद्धम् ।
तत् सर्वं शारदेऽमा विशदमुनिगणैः प्रार्थिता मे क्षमस्व ।।१०४।।

श्रुतसकलसुवेत्तारो हिता भव्य पुंसाम्
निहितनिखिलदोषालोभगर्वादि दूराः ।
विशदनिपुणबुद्धया सूरयः शोधयन्तु
श्रुतमिदमिहचाल्पज्ञानिना सूरिणोक्तम् ।।१०५।।

अर्थः—यह सिद्धान्तसार दीपक नाम का उत्कृष्ट ग्रन्थ जिनेन्द्र के मुख से उद्‌भूत है, स्वर्ग, नरक आदि के भेद से अनेक प्रकार के समस्त त्रैलोक्य को उद्योत करने में दीपक के समान है। त्रैलोक्य सार आदि अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थो का आडोलन कर भक्ति से मुझ सकलकीर्ति मुनि द्वारा रचा गया है। अनेक गुण समूहो से यह ग्रन्थ सदा समृद्धिमान् हो ।।१०२।।

मैने यह ग्रन्थ ख्याति-पूजा-लाभ की इच्छा से अथवा कवित्व आदि के अभिमान से नही लिखा, किन्तु यह ग्रन्थ आत्म विशुद्धि के लिए, स्व-पर हित के लिए एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए परमार्थ बुद्धि से लिखा है ।।१०३।। तीन लोक के कथन मे और ज्ञान के गूढ अर्थों से परिपूर्ण इस सिद्धान्त-सार दीपक महाग्रन्थ मे बुद्धि की स्वल्पता से, अज्ञान से, प्रमाद से अथवा अशुभ कर्म के उदय से यदि किंचित् भी अक्षर, मात्रा, सन्धि एव पद आदि की हीनता हो अथवा आगम के विरुद्ध कुछ लिखा गया हो तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि जिनवाणी माता और विशिष्ट ज्ञानी मुनिजन मुझे क्षमा प्रदान करे ।।१०४।। मुझ अल्प बुद्धि के द्वारा लिखे गये इस शास्त्र का सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता, भव्य जीवो के हितकारी, समस्त दोषो से रहित लोभ एव गर्व आदि से दूर रहने वाले तथा निर्मल (समीचीन) एव निपुण बुद्धि से युक्त आचार्य शोधन करे ।।१०५।।

ग्रन्थ के प्रति आशीर्वचनः—

सिद्धान्तसारार्थनिरूपणाच्छ्री सिद्धान्तसारार्थ भृतो हि सार्थः ।
सिद्धान्तसारादिकदीपकोऽयं ग्रन्थो धरित्र्यां जयतात् स्वसंघैः ।।१०६।।

अर्थः—जिनागम के सिद्धान्त के सारभूत अर्थ का निरूपण करने वाला, सिद्धान्त के सारभूत

अर्थ से भरा हुआ एवं सार्थक नाम को धारण करने वाला यह सिद्धान्तसार दीपक नामका ग्रन्थ अपने संघों द्वारा पृथिवी पर जयवन्त हो ॥१०६॥

इस ग्रन्थ के पठन से किन किन फलों की प्राप्ति होगी ? उसे कहते हैं:—

ये पठन्ति वरशास्त्रमिदं सद्धीधनाः सुमुनयो गुणरागात् ।
ज्ञाननेत्रमचिरादिह लब्ध्वा लोकयन्ति जगतां त्रितयं ते ॥१०७॥

तेन हस्ततलसंस्थित रेखावद् विलोक्य नरकादि समस्तम् ।
यान्ति भीतिमशुभाच्च चरन्ति सत्तपश्चरणमञ्जसा विदः ॥१०८॥

तेन वृत्तविशदा चरणेन प्राप्य नाकमसमं सुखखानिं ।
राज्यभूतिमनुभोगविरक्त्या सत्तपश्चरणतोऽवपुषः स्युः ॥१०९॥

अर्थः—जो समीचीन बुद्धि के धारक उत्तम मुनिराज गुणानुराग से इस ग्रन्थ को पढ़ते है, वे शीघ्र ही ज्ञान रूपी अनुपम नेत्र (केवलज्ञान) को प्राप्त कर तीन लोक स्वरूप समस्त जगत को देख लेते है ॥१०७॥ वे विद्वान् उस अनुपम ज्ञान से नरकादि समस्त दु:ख मय पदार्थों को हस्ततल पर स्थित रेखा के सदृश देखकर समस्त अशुभादि क्रियाओं से भयभीत होते हैं, और समीचीन तपश्चरण आदि का आचरण करते है ॥१०८॥ तथा उस निर्दोष चारित्र के आचरण से सुख की खानि स्वरूप स्वर्गों के अनुपम सुखो को प्राप्तकर मनुष्य पर्याय में आकर राज्य विभूति का अनुभोग करके वैराग्य को प्राप्त होकर उत्तम तपश्चरण करते हुए सिद्ध पर्याय को प्राप्त करते है ॥१०९॥

शास्त्र श्रवण करने से क्या फल प्राप्त होता है ? उसे कहते हैं:—

शृण्वन्ति ये बुधजनाः परया विशुद्धया—
त्रैतच्छ्रुतं त्रिभुवनोरुगृहप्रदीपम् ।
ते श्वभ्रदुःखकलनादघभीतचित्ता
धर्मे तपःसुचरणे च परायणाः स्युः ॥११०॥

ते ज्ञानदृग्यमतपश्चरणादिधर्मै—
र्भुक्त्वा सुखं निरुपमं दिवि मर्त्यलोके ।
सम्प्राप्य रागविरतिं भवभोगकाये
सद्दीक्षया सुतपसा च भवन्ति सिद्धाः ॥१११॥

अर्थः—त्रैलोक्य को प्रकाशित करने के लिए प्रदीप के सदृश इस ग्रन्थ को जो विद्वज्जन मन, वचन और काय की विशुद्धि पूर्वक श्रवण करते हैं, वे नरको के दु खों को भलीभाति जान लेते हैं, इसलिए वे पापों से भयभीत चित्त होते हुए धर्म मे, तप मे और सम्यग्चारित्र मे दत्तचित्त हो जाते है ।।११०।। तथा वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, यम, नियम और उत्तम तपश्चरण आदि धर्म के फल स्वरूप स्वर्ग एव मध्यलोक के अनुपम सुखों को भोग कर संसार शरीर और भोगों से विरक्त होते हुए जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर उत्तम तप करके सिद्ध हो जाते हैं ।।१११।।

जो भव्य जन इस शास्त्र को लिखते हैं, उनके फल का दिग्दर्शन कराते हैं:—

येऽहो लिखन्ति निपुणा वरशास्त्रमेतत्
तद् वृद्धये च पठनाय तरन्ति तूर्णम् ।
ते ज्ञानवारिधिमनन्तगुणैकहेतु
सिद्धान्ततीर्थपरमोद्धरणात्सधर्मात् ।।११२।।

अर्थः—शास्त्र की वृद्धि के लिए तथा दूसरों को पढने के लिए जो विद्वज्जन इस उत्तम शास्त्र को अपने हाथो से स्वय लिखते है, वे सिद्धान्त रूप उत्कृष्ट तीर्थ के उद्धार स्वरूप पुण्य से अनन्त गुणों के कारण भूत ज्ञानसिन्धु को शीघ्र ही तर जाते है । अर्थात् पूर्ण ज्ञानी बन जाते है ।।११२।।

जो धनिक जन इस शास्त्र को लिखावेंगे, उनको प्राप्त होने वाले फल का दिग्दर्शन करते हैं:—

ये लेखयन्ति धनिनो धनतः किलेदम्
सारागमं भुवि सुवर्तन हेतवे ते ।
सज्ज्ञानतीर्थविमलोद्धरणात्तपुण्याद—
त्राप्यमुत्र सकलं श्रुतमाश्रयन्ति ।।११३।।

अर्थः—पृथिवी पर आगम के सार को प्रकाशित करने के लिए जो श्रीमान् (धनवान्) अपने धन से इस शास्त्र को लिखवाते है, वे समीचीन और निर्मल ज्ञान रूपी तीर्थ के उद्धार स्वरूप पुण्य फल से इस लोक और परलोक मे सकलश्रुतज्ञान को प्राप्त कर लेते है । अर्थात् श्रुतकेवली हो जाते है ।।११३।।

जो विद्वज्जन शास्त्र का अध्ययन कराते हैं, उनका फल दर्शाते हैं:—

ये पाठयन्ति सुविदो वरसंयतादीन्
विश्वार्थदीपकमिमं परमागमं ते ।
सज्ज्ञानदानजमहानघपुण्यपाकाज्
ज्ञातश्रुता जगति केवलिनो भवन्ति ।।११४।।

अर्थः—जो विद्वज्जन मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविका जनों को सम्पूर्ण अर्थ के प्रकाशन में दीपक सदृश इस शास्त्र का अध्ययन कराते है अर्थात् पढाते है, वे उत्तम ज्ञान दान के फल से उत्पन्न अत्यन्त शुभ पुण्योदय से संसार में सर्व श्रुत के ज्ञाता होकर पश्चात् केवली हो जाते है ।।११४।।

इस महान् ग्रन्थ की रचना करके आचार्य श्री क्या चाहते हैं ? उसका दिग्दर्शन कराते है:—

एतज्जैनवरागमं सुरचितं लोकत्रयोद्दीपकम्
तद् रागेण मया सुशास्त्ररचना व्याजेनमोक्षाप्तये ।
हत्वाज्ञानतमो मदीयमखिलं सद्वर्तमानागमम्
सर्वं मेऽत्र ततोऽप्यमुत्र विधिना दद्याच्छ्रुतं केवलम् ।।११५।।

अस्मिन् ग्रन्थवरे त्रिकालविषये ये वर्णिताः श्रीजिना
ग्रन्थादौ च नुताः समस्त जिनपाः सिद्धाश्च ये साधवः ।
सते वें कृपया ममाशुविमलं सम्पूर्ण रत्नत्रयम्
सर्वान् स्वांश्च गुणान् समाधिमरणं दद्युः स्वशत्रोर्जयम् ।।११६।।

अर्थः—यह त्रैलोक्य दीपक सदृश श्रेष्ठ जिनागम, जन कल्याण के राग से मेरे द्वारा शास्त्र की रचना के बहाने मोक्ष प्राप्ति के लिए रचा गया है, इसलिए विद्यमान यह सर्व समीचीन जिनागम मेरे सम्पूर्ण अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट कर विधिपूर्वक इस लोक में श्रुतज्ञान को और परलोक मे केवलज्ञान देवें ।।११५।। इस उत्तम ग्रन्थ में जिन जिनेन्द्रों ने तीन लोक का वर्णन किया है तथा ग्रन्थ के प्रारम्भ मे जिन अर्हन्तो, सिद्धो एवं साधुओं को नमस्कार किया है, वे सब कृपा करके मुझे शीघ्र ही निर्मल एवं सम्पूर्ण रत्नत्रय, अपने अपने सर्व गुण. समाधिमरण और स्वशत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की शक्ति देवें ।।११६।।

अब आचार्य पुनः मंगल याचना करते हैः—

तीर्थेशाः सिद्धनाथास्त्रिभुवनमहिताः साधवो विश्ववन्द्याः
सद्धर्मास्तत्प्रणेतार इह सुशरणाविश्वलोकोत्तमाश्च ।
दातारो भुक्तिमुक्ती दुरितचयहराः सर्व माङ्गल्यदा ये ।
ते मे वो वा प्रदद्युर्निजसकलगुणान् मङ्गलं पापहन्तॄन् ॥११७॥

अर्थः—स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करने वाले, दुष्कर्मों के समूह को हरण करने वाले तथा सर्व मंगलो को देने वाले, त्रैलोक्य पूज्य एव विश्व वन्द्य अर्हन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, सर्व साधु परमेष्ठी एवं केवली प्रणीत सद्धर्म ही लोक मे उत्तम मंगल हैं, उत्तमोत्तम है और परमोत्कृष्ट शरणभूत है, अतः ये सभी मुझे, आपको एव सभी को पाप नाशक अपने अपने सभी गुण प्रदान करे ॥११७॥

अब आचार्य इस सिद्धान्त ग्रन्थ के वृद्धि की वाञ्छा करते हैंः—

एतत्सिद्धान्ततीर्थं जिनवरमुखजं धारितं श्रीगणेशै-
र्वन्द्यं मान्यं सदार्च्यं त्रिभुवनपतिभिर्दोषदूरं पवित्रम् ।
अज्ञानध्वान्तहन्तृ प्रवरमिह परं धर्ममूलं सुनेत्रम्
विश्वालोके च भव्यैरसमगुणगणैर्यातु वृद्धिं शिवाय ॥११८॥

अर्थः - यह सिद्धान्त रूपी तीर्थ भगवान् जिनेन्द्र के मुख से निर्झरित है, गणधर देवो द्वारा धारण किया गया है, देवेन्द्र, नागेन्द्र, खगेन्द्र और चक्रवर्ती आदि त्रैलोक्य के अधिपतियो द्वारा वन्द्यनीय, आदरणीय एव सदा पूज्य है। दोषो से दूर, पवित्र, अज्ञान रूपी अन्धकार के नाश मे प्रवीण, धर्म का मूल और उत्तम नेत्र है, अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए भव्यो के अनुपम गुण समूहो द्वारा यह सम्पूर्ण लोक मे निरन्तर वृद्धिगत होता रहे ॥११८॥

ग्रन्थेऽस्मिन् पञ्चचत्वारिंशच्छतश्लोकपिण्डिताः ।
षोडशाग्रा बुधैर्ज्ञेयाः सिद्धान्तसारशालिनि ॥११९॥

॥ इति श्री सिद्धान्तसार दीपक महाग्रन्थे भट्टारक श्री सकलकीर्तिविरचिते
पल्यादिमानवर्णनो नाम षोडशोऽधिकारः ॥

॥ इति श्री सिद्धान्तसार दीपकनामाग्रन्थः समाप्तः ॥

ग्रन्थपर्यायन्त्रसमेत ४५१६ ।। सम्वत् १७८६ वर्षे आषाढमासे कृष्णपक्षे तिथौ चतुर्दशी शनिवासरे ।। लिखितं मानमहातमा चाटसु मध्ये ।। श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्द-कुन्दाचार्यान्वये भट्टारकजी श्री जगतकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री..............द्र कीर्तिजी आचार्यजी श्री कनककीर्तिजी तत् शिष्य पं० रायमल तत् शिष्य पं०..........................दजी तत् शिष्य पं० वृन्द्रावनेन सुपठनार्थं लिखापितं ।। लिखितं..ध्ये ।।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया ।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयताम् ।।१।।
भग्नपृष्टि कटिग्रीवा वा बद्धमुष्टिर्भ्रधोमुखम् ।
कष्टेन लिखितं ग्रन्थं यत्नेन परिपालयेत् ।।२।। श्री ।।

अर्थः—सिद्धान्त के सार से युक्त इस ग्रन्थ में सब मिला कर ४५१६ श्लोक है, ऐसा विद्वानों के द्वारा जानने योग्य है। अर्थात् जानना चाहिये ।।११६।।

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक
नाम महाग्रन्थ में पल्य आदि उपमा प्रमाणों का प्ररूपण
करने वाला सोलहवाँ अधिकार समाप्त ।।



